# नाटक समयसार अक्षरशः प्रवचन

## भाग-५

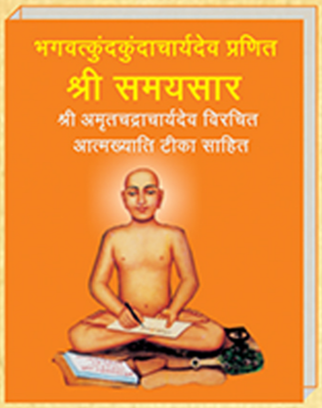


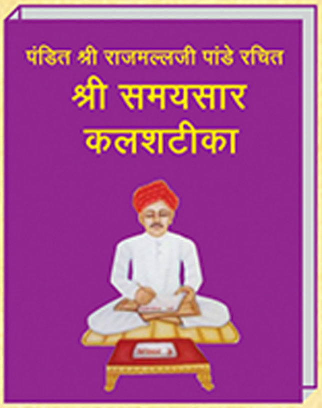

-:प्रकाशक:-
श्री कुंदकुंदकहान दिगंबर
जैन मुमुक्षु मंडल ट्रस्ट
पार्ला-सांताक्रुझ, मुंबई

ॐ

परमात्मने नमः

# नाटक समयसार प्रवचन

## (भाग–5)

**अध्यात्म प्रेमी कविवर पण्डित बनारसीदासजी** कृत
**नाटक समयसार ग्रन्थ** पर
**अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के
शब्दशः प्रवचन सर्वविशुद्धि द्वार, पद 62 से 137;
स्याद्वाद द्वार, पद 1 से 29;
साध्य–साधक द्वार, पद 1 से 22
प्रवचन क्रमांक 134 से 166

: हिन्दी अनुवाद :
**पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन**
**बिजौलियाँ, जिला–भीलवाड़ा ( राज. )**

: प्रकाशक :
**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ ( सौराष्ट्र ) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
**श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले ( वेस्ट ), मुम्बई–400 056
फोन : ( 022 ) 26130820

**विक्रम संवत**
**2080**

**वीर संवत**
**2550**

**ई. सन**
**2024**

**—: प्रकाशन :—**

**आध्यात्मिक सन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की 135वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर**

**वैशाख शुक्ल 2, दिनांक 09 मई 2024**

**—: प्राप्ति स्थान :—**

**1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट**

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846–244334

**2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

**विवेक कम्प्यूटर**

अलीगढ़।

# प्रकाशकीय

**नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।**
**चित्स्वभावायभावाय: सर्व भावान्तरच्छिदे॥**

सदेह विदेह जाकर महाविदेहक्षेत्र में विराजमान त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञ परमदेवाधिदेवश्री सीमन्धर भगवान की दिव्य देशना का अपूर्व संचय करनेवाले, भरतक्षेत्र में सीमन्धर लघुनन्दन, ज्ञानसाम्राज्य के सम्राट, भरतक्षेत्र के कलिकाल सर्वज्ञ, शुद्धात्मा में निरन्तर केली करनेवाले हालते-चालते सिद्ध-सम भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम संवत् 49 के वर्ष में हुए हैं।

भगवान महावीर से प्रवाहित ज्ञान में आचार्यों की परम्परा से श्री गुणधर आचार्य को ज्ञानप्रवाद पूर्व के दसवें पूर्व अधिकार के तीसरे प्राभृत का ज्ञान था। तत्पश्चात् के आचार्यों ने अनुक्रम से सिद्धान्त रचे और परम्परा से वह ज्ञान भगवान कुन्दकुन्द आचार्य को प्राप्त हुआ।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वि.सं. 49 में सदेह महाविदेह में आठ दिन गये थे, उन्होंने श्री सीमन्धर भगवान के श्रीमुख से प्रवाहित श्रुतामृतरूपी ज्ञानसरिता का तथा श्रुतकेवलियों के साथ हुई आध्यात्मिक सूक्ष्मचर्चा का अमूल्य खजाना हृदयगत करके भरतक्षेत्र में आकर पंच परमागम आदि आध्यात्मिक शास्त्रों की रचना की। उनमें का एक श्री समयसारजी द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सर्वोत्कृष्ट अध्यात्म शास्त्र है। जिसमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने 415 मार्मिक गाथाओं की रचना की है। यह शास्त्र सूक्ष्म दृष्टिप्रधान ग्रन्थाधिराज है, जो भवरहित अशरीरी होने का शास्त्र है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य के बाद लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् अध्यात्म के अनाहत प्रवाह की परिपाटी में इस अध्यात्म के अमूल्य खजाने के गहरे हार्द को स्वानुभवगत कर श्री कुन्दकुन्ददेव के ज्ञान हृदय को खोलनवाले, सिद्धपद साधक, मुनिवर सम्पदा को आत्मसात करके निज स्वरूप साधना के अलौकिक अनुभव से श्री समयसार शास्त्र की 415 गाथाओं की टीका करने का सौभाग्य श्री अमृतचन्द्र आचार्यदेव को प्राप्त हुआ। उन्होंने 'आत्मख्याति' नामक टीका की रचना की। तदुपरान्त उन गाथाओं पर 278 मार्मिक कलश तथा परिशिष्ट की रचना की। यह टीका वाँचते हुए परमार्थतत्त्व के मधुर रसास्वादी धर्मजिज्ञासुओं के हृदय में नि:सन्देह आत्मा की अपूर्व महिमा आती है, क्योंकि आचार्यदेव ने इसमें परम हितोपदेशक, सर्वज्ञ वीतराग तीर्थंकर भगवन्तों का हार्द खोलकर अध्यात्मतत्त्व के निधान ठसाठस भर दिये हैं। अध्यात्मतत्त्व के हार्द को सर्वांग प्रकाशित करनेवाली यह 'आत्मख्याति' जैसी सुन्दर टीका अभी तक दूसरी किसी जैन अध्यात्मग्रन्थ की लिखी हुई नहीं है।

श्री समयसार कलश पर अध्यात्मरसिक पण्डित श्री राजमलजी पाण्डे ने टीका लिखी है, जो वि.सं. सत्रहवीं शताब्दी में हुए हैं। वह उन्होंने राजस्थान के ढूंढार प्रदेश में बोली जानेवाली प्राचीन ढूंढारी भाषा में लिखी है। सामान्यबुद्धि के जिज्ञासु जीव भी सरलता से समझ सकें, इस प्रकार विस्तार से स्पष्टतापूर्वक और जोरदार शैली से स्पष्ट किया है। टीका में स्थान-स्थान पर निर्विकल्प सहज

स्वानुभव का अतिशय महत्त्व बतलाया है और उसकी प्राप्ति करने के लिये प्रेरणा दी है। वे कविवर श्री बनारसीदासजी से थोड़े से वर्ष पहले ही हो गये हों, ऐसा विद्वानों का मानना है।

श्री समयसार कलश की विद्वान् पण्डित राजमलजी ने टीका की और उसके आधार से विद्वान् पण्डित कविवर श्री बनारसीदासजी ने 'नाटक समयसार' की रचना की है। यह ग्रन्थ अध्यात्म का एक उज्ज्वल रत्न है।

पण्डित बनारसीदासजी का जन्म वि.सं. 1943 के माघ महीने में मध्य भारत में रोहतकपुर के पास बिहोली गाँव में हुआ था। उनका कुल श्रीमाण था और गोत्र बिहोलिया था। विद्वान कविवर श्री बनारसीदासजी ने पण्डित राजमलजी रचित 'समयसार कलश' के आधार से 'नाटक समयसार' की रचना की है। उसमें मंगलाचरण तथा उत्थानिका के 51 पद, जीवद्वार के 35 पद्य, अजीवद्वार के 14, कर्ता-कर्म-क्रिया द्वार के 36, पुण्य-पाप एकत्व द्वार—16, आस्रव द्वार—15, संवर द्वार—11, निर्जरा द्वार—61, बन्ध द्वार—58, मोक्ष द्वार—53, सर्वविशुद्धिद्वार—137, स्याद्वाद द्वार—21+1, साध्यसाधक द्वार—56, चौदह गुणस्थानाधिकार—115, ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति के 40 पद की रचना की गयी है।

वर्तमान इस काल में मोक्षमार्ग प्राय: लुप्त हुआ था। मिथ्यात्व का घोर अन्धकार छाया हुआ था। जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्त मृतप्राय: हुए थे। परमागम मौजूद होने पर भी उनके गूढ़ रहस्यों को समझानेवाला कोई नहीं था। ऐसे में जैनशासन के नभमण्डल में एक महाप्रतापी वीर पुरुष, अध्यात्ममूर्ति, अध्यात्मयुगसृष्टा, आत्मज्ञसन्त, अध्यात्म युगपुरुष, निष्कारण करुणाशील, भवोदधि तारणहार, भावि तीर्थाधिराज परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का उदय हुआ।

भारत की भव्य वसुन्धरा, वह सन्तरत्न पकने की पवित्र भूमि है। उसमें सौराष्ट्र का नाम अग्रगण्य है। अर्वाचीनयुग में अध्यात्मप्रधान जैन गगनमण्डल में चमकते नक्षत्र सम समीप समयज्ञ श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्म युगसृष्टा आत्मज्ञ सन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी और प्रशममूर्ति स्वानुभवविभूषित पवित्रात्मा बहिनश्री चम्पाबेन जैसे असाधारण स्वानुभूति धर्मप्रकाशक साधक महात्माओं की जगत को भेंट देकर, सौराष्ट्र की धरती पुण्यभूमि बनी है। तथा सोनगढ़ में एक ही रात्रि में सम्यग्दर्शन प्राप्त कर श्री निहालचन्द सोगानीजी ने सोनगढ़ से अपनी मोक्षयात्रा शुरु की है।

परम देवाधिदेव चरमतीर्थंकर परम पूज्य श्री महावीरस्वामी की दिव्यध्वनि द्वारा पुन: प्रवाहित और गुरु परम्परा द्वारा सम्प्राप्त जिस परम पावन अध्यात्मप्रवाह को भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 'परमागम समयसार' इत्यादि प्राभृत भाजनों में सूत्रबद्ध करके चिरंजीवी किया है, उस पुनीत प्रवाह के अमृत का पान करके, अन्तर के पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूति समृद्ध आत्मसाक्षात्कार पाकर, जिन्होंने सौराष्ट्र, गुजरात, समग्र भारतवर्ष तथा विदेश में भी शुद्धात्मतत्त्व प्रमुख अध्यात्मविद्या का पवित्र आन्दोलन

प्रसारित कर वर्तमान सदी के विषमय भौतिकयुग में दु:खी जीवों का उद्धार किया है, वे जिनशासन प्रभावक, करुणामूर्ति परमोपकारी परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी की शुद्धात्म सुधारस मंगलमय पवित्रता, पुरुषार्थ से धधकता ध्येयनिष्ठ सहज वैराग्य नितरता उत्तम बालब्रह्मचर्यसहित पवित्र जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्गदर्शक सदुपदेशों और दूसरे अनेकानेक उपकारों का वर्णन चाहे जितना संक्षिप्तरूप से किया जाये तो भी बहुत पृष्ठ भर जायें, ऐसा है।

पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने 45-45 वर्षों तक अलौकिक प्रवचनों और तत्त्वचर्चाओं द्वारा मुमुक्षुओं को निहाल कर दिया। उन्होंने 15 शास्त्रों पर सम्पूर्ण तथा अन्य सात शास्त्रों पर अमुक प्रवचन तथा अमुक शास्त्रों पर बहुत बार प्रवचन किये हैं। लगभग 9400 घण्टे के प्रवचन टेप और सी.डी. में संग्रहित किये गये हैं।

यदि अक्षरश: प्रवचन की पुस्तक बनायी जाये तो उसका बहुत लाभ मुमुक्षुओं को होगा। प्रवचन में आये हुए सन्दर्भ को शान्तचित्त से विशेष घोलन कर सके। न समझ में आये हुए सन्दर्भ पूछ सके, तथा किस अपेक्षा से और न्याय पूज्य गुरुदेव निकालकर देते हैं, उसका अवलोकन भी कर सके इत्यादि। अलग-अलग मण्डलों तथा व्यक्तियों की भावना थी कि सभी शास्त्रों के अक्षरश: प्रवचन प्रकाशित हों तो मुमुक्षुओं को बहुत लाभ का कारण होगा।

हमारे पार्ला मण्डल के ट्रस्टियों के समक्ष मुमुक्षुओं ने अनुरोध करने पर उन्होंने सहर्ष स्वीकारता पूर्वक अनुमोदना दी और पार्ला मण्डल ने श्री नाटक समयसार पर अक्षरश: प्रवचन प्रकाशित करने का निर्णय किया और तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यवाही श्री पंकजभाई प्राणभाई कामदार को सौंपी गयी। जिससे मुमुक्षुओं से प्रवचन लिखाना, उन्हें जाँचना, कम्पोज कराना, दो बार प्रूफ रीडिंग और भाषा दृष्टि से चैक कराना तथा प्रकाशित कराना इत्यादि गतिविधियाँ सम्मिलित हैं।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी लाभ प्राप्त करे, इस भावना से और हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज की विशेष माँग को दृष्टिगोचर करते हुए प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद और सी.डी. प्रवचन से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ में नाटक समयसार सर्वविशुद्धि द्वार, पद 62 से 137; स्याद्वाद द्वार, पद 1 से 29; साध्य-साधक द्वार, पद 1 से 22, के कुल 33 प्रवचन संग्रहित हैं।

सभी आत्मार्थी मुमुक्षुजन प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का भरपूर लाभ प्राप्त करें, इस पवित्र भावना के साथ विराम लेते हैं।

ट्रस्टीगण,
**श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,**
विले पार्ला, मुम्बई

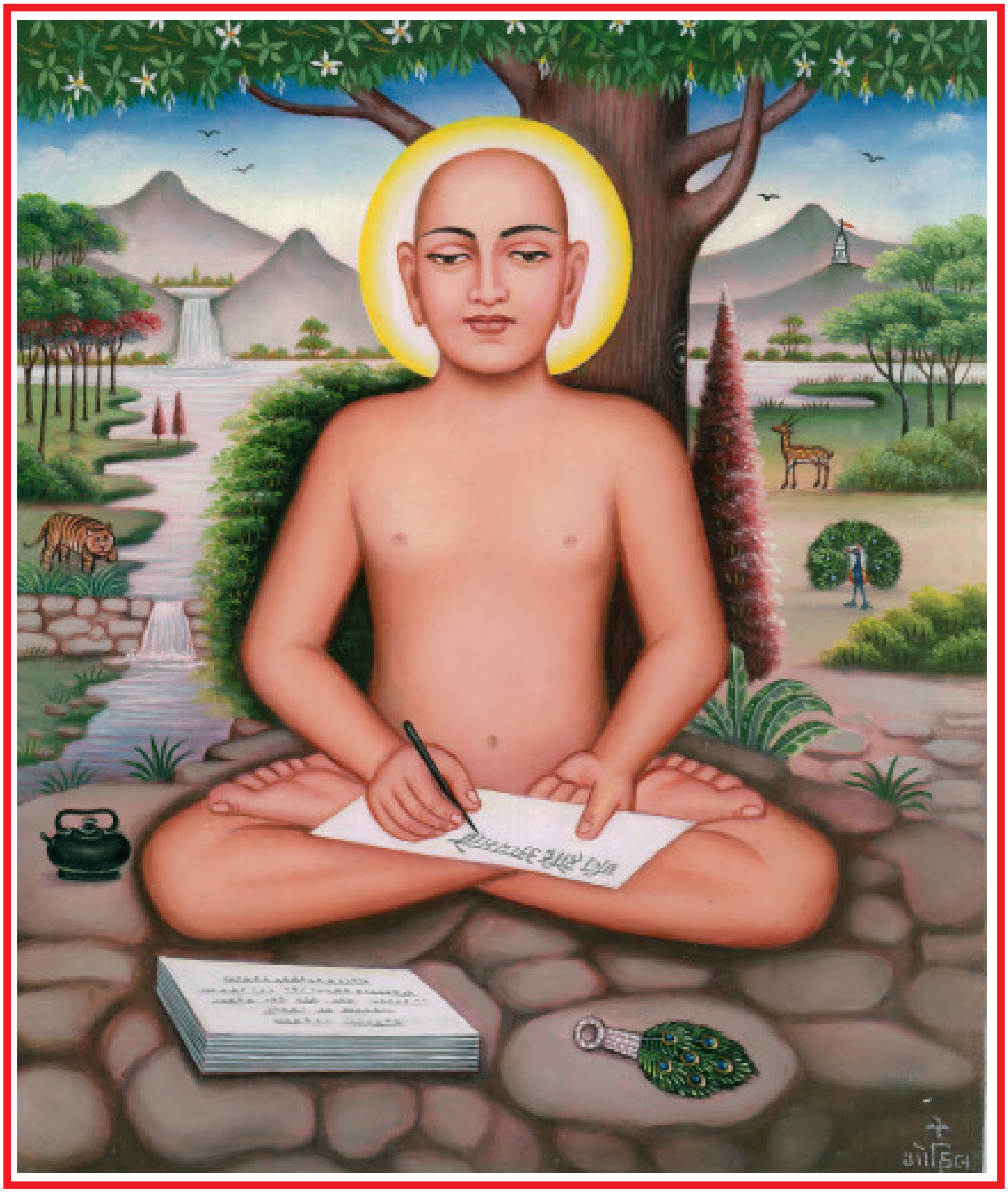

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

# श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

# श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

# अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

## ( संक्षिप्त जीवनवृत्त )

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

**शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।**

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह

अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की

देश–विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश–विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार–पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी–कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय–व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र–गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग–मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर–कमलों से हुई।

जन्म–मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म–जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और

मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन,

और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

# अनुक्रमणिका


| प्रवचन नं. | अधिकार तथा पद नम्बर | पृष्ठ नं. |
|---|---|---|
| १३४. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—६२ से ७० | ००१ |
| १३५. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—७० से ७४ | ०२० |
| १३६. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—७५ से ८१ | ०३८ |
| १३७. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—८२ से ८७ | ०६५ |
| १३८. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—८८ से ९२ | ०८६ |
| १३९. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—९३ से ९७ | १०८ |
| १४०. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—९८ से १०१ | १३० |
| १४१. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—१०२ से १०६ | १५० |
| १४२. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—१०७-१०८ | १७० |
| १४३. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—१०८ से ११० | १८८ |
| १४४. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—१११-११३ | २०७ |
| १४५. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—११४-११८ | २२७ |
| १४६. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—११९ से १२४ | २४७ |
| १४७. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—१२४ से १२९ | २६७ |
| १४८. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—१३० से १३८ | २८६ |
| १४९. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—१३९ तथा सार | ३०७ |
| १४९. | सर्वविशुद्धि द्वार, पद—१३९ तथा सार | ३०७ |
| १५०. | सर्वविशुद्धि द्वार सार तथा **स्याद्वाद द्वार,** पद १ से ४ | ३२५ |
| १५१. | स्याद्वाद द्वार, पद—९ - १० | ३४३ |
| १५२. | स्याद्वाद द्वार, पद—१० से १२ | ३६४ |
| १५३. | स्याद्वाद द्वार, पद—१३ से १५ | ३८३ |
| १५४. | स्याद्वाद द्वार, पद—१६ से १८ | ४०२ |
| १५५. | स्याद्वाद द्वार, पद—१९ से २१ | ४२१ |
| १५६. | स्याद्वाद द्वार, पद—२१ से २३ | ४३९ |
| १५७. | स्याद्वाद द्वार, पद—२४-२५ | ४५७ |
| १५८. | स्याद्वाद द्वार, पद—२६ से २९ | ४७५ |
| १५९. | स्याद्वाद द्वार का सार | ४९५ |
| १६०. | स्याद्वाद द्वार का सार | ५११ |
| १६१. | **साध्य-साधक द्वार** पद—१-२ | ५२९ |
| १६२. | साध्य-साधक द्वार, पद—२ से ४ | ५४८ |
| १६३. | साध्य-साधक द्वार, पद—५ से ९ | ५६७ |
| १६४. | साध्य-साधक द्वार, पद—९ से ११ | ५८७ |
| १६५. | साध्य-साधक द्वार, पद—११ से १३ | ६०७ |
| १६६. | साध्य-साधक द्वार, पद—१४ से २२ | ६२६ |

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

# नाटक समयसार प्रवचन

## ( भाग - 5 )

**कविवर पण्डित बनारसीदासजी** कृत **नाटक समयसार** पर
**अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के
अक्षरशः प्रवचन

## ( १० )
## सर्वविशुद्धि द्वार

**प्रवचन नं. १३४, श्रावण कृष्ण ८, शुक्रवार, दिनांक १३-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद ६२ से ७०**

समयसार नाटक (पद ६२), ६३ पहले आ गये हैं। ६४, ६५, ६६। उसके ऊपर है। वह आया न कल? **कोऊ मूरख यौं कहै राग दोष परिनाम...** आत्मा में मिथ्यात्व, राग-द्वेष, विषय की वासना होती है, वह पुद्गल की जोरावरी है। आत्मा में तो विकार होने की शक्ति है नहीं, ऐसा अज्ञानी कहते हैं।

**मुमुक्षु :** अज्ञानी कहते हैं? मूर्ख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्ख कहा न! बात तो सच्ची है। आत्मा में शक्ति नहीं—गुण नहीं है विकार होने का। परन्तु विकार कैसे होता है, उसकी खबर नहीं। **पुग्गलकी जोरावरी, वरते आतम राम...** कर्म का जैसा उदय आता है, ऐसा विकार करना पड़ता है। सेठी! **ज्यौं ज्यौं पुग्गल बल करै, धरिधरि कर्मज भेख...** कर्म का वेश धारण करके जो कर्म जोर करते हैं, **रागद्वेषकौ परिनमन त्यौं त्यौं होइ विशेष...** ऐसा आया अज्ञानी

को... अज्ञानी ऐसा मानते हैं। बड़े-बड़े मानधाता ग्यारहवें गुणस्थान से कर्म का उदय आकर गिर जाते हैं, लो। उदय आवे तो दसवाँ (गुणस्थान) हो जाये। वह तो अपनी पर्याय से नीचे उतरता है, कर्म के कारण से नहीं। समझ में आया? ग्यारहवाँ गुणस्थान... कहते हैं न? ऊपर चढ़े, परन्तु गिर जाता है, कर्म के उदय से। वह झूठ बात है। ऐसा है नहीं। वह उत्तर देते हैं, देखो।

**राग-जन्मनि निमित्ततां पर-द्रव्य-मेव कलयन्ति ये तु ते।**
**उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धय: ।।२८।।**

शब्द का अर्थ तो थोड़ा आता है इसमें। **अज्ञानियों को सत्यमार्ग का उपदेश।** देखो! यह कोई कहते हैं कि समयसार का उपदेश तो मुनियों को है। समझ में आया? क्या है, देखो। **अज्ञानियों को सत्यमार्ग का उपदेश।** यहाँ तो मिथ्यादृष्टि को कहते हैं। अज्ञानी ऐसा मानते हैं, अपनी पर्याय में अशुद्धता जो होती है, वह सब कर्म के जोर के कारण से होती है। देखो, शास्त्र में भी ऐसा लिखा है (कि) ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुक जाता है। लिखा नहीं है गोम्मटसार में? यह बात भी झूठ है। अपनी पर्याय में रागादि आता है, ज्ञानी को भी, वह अपने से होता है, पर से नहीं होता। आहाहा!

★ ★ ★

## काव्य - ६४-६६

**अज्ञानियों को सत्य मार्ग का उपदेश** (दोहा)

**इहिविधि जो विपरीत पख, गहै सद्दहै कोइ।**
**सो नर राग विरोधसौं, कबहूं भिन्न न होइ।।६४।।**

**सुगुरु कहै जगमैं रहै, पुग्गल संग सदीव।**
**सहज सुद्ध परिनमनिकौ, औसर लहै न जीव।।६५।।**

**तातैं चिदभावनि विषै, समरथ चेतन राउ।**
**राग विरोध मिथ्यातमैं, समकितमैं सिव भाउ।।६६।।**

**शब्दार्थ:–विपरीत पख=उल्टा हठ। भिन्न=जुदा। परिणाम=भाव। औसर=मौका। चिद्भावनि विषै=चैतन्यभावों में–अशुद्ध दशा में राग–द्वेष ज्ञानावरणीय आदि और शुद्ध दशा में पूर्णज्ञान पूर्ण आनन्द आदि। समरथ (समर्थ)=बलवान। चेतन राउ= चैतन्यराजा। सिव भाउ=मोक्ष के भाव–पूर्णज्ञान, पूर्णदर्शन, पूर्ण आनन्द, सम्यक्त्व, सिद्धत्व आदि।**

**अर्थ:–श्रीगुरु कहते हैं कि जो कोई इस प्रकार उल्टा हठ ग्रहण करके श्रद्धान करते हैं, वे कभी भी राग–द्वेष–मोह से नहीं छूट सकते।।६४।। और यदि जगत में जीव का पुद्गल से हमेशा ही सम्बन्ध रहे, तो उसे शुद्ध भावों का प्राप्ति का कोई भी मौका नहीं है – अर्थात् वह शुद्ध हो ही नहीं सकता।।६५।। इससे चैतन्यभाव उपजाने में चैतन्य राजा ही समर्थ है, सो मिथ्यात्व की दशा में राग–द्वेष भाव उपजते हैं और सम्यक्त्व दशा में शिवभाव अर्थात् ज्ञान–दर्शन–सुख आदि उपजते हैं।।६६।।**

---

काव्य-६४-६६ पर प्रवचन

---

**इहिविधि जो विपरीत पख, गहै सद्दहै कोइ।**
**सो नर राग विरोधसौं, कबहूं भिन्न न होइ॥६४॥**

इस विधि से... जो ऐसा माने कि कर्म के कारण से अपने में विकार होता है तो विकार से रहित तो कभी हो सकता नहीं, क्योंकि पर के कारण से विकार हुआ, तो पराधीन हुआ वह तो। पर नाश हो तो अपना विकार नाश होगा। अपने अधिकार की बात रही नहीं। सेठी ! सुना है या नहीं अभी तक वहाँ ? कर्म के कारण से होता है... कर्म के कारण से होता है। **सो नर राग विरोधसौं....** राग और द्वेष से **कबहूं भिन्न न होइ...** कर्म के कारण से विकार मानते हैं, वे विकार से कभी भी भिन्न नहीं हो सकते। अपने पुरुषार्थ से हो तो पुरुषार्थ से कर सकते हैं। समझ में आया ?

**सुगुरु कहै जगमैं रहै, पुग्गल संग सदीव।**
**सहज सुद्ध परिनमनिकौ, औसर लहै न जीव॥६५॥**

यदि कर्म के कारण से राग, द्वेष, अज्ञान, वासना, विपरीतता विकार की होती हो तो **पुग्गल संग सदीव...** पुद्गल का संग तो सदैव है। कब पुद्गल का संग नहीं ? कर्म

हों, कर्म की बात है। **सहज सुद्ध परिनमनिकौ,...** अपना शुद्ध आनन्दस्वभाव के परिणमन का तो उसको अवसर रहता नहीं। **औसर लहै न जीव।** औसर अर्थात् समय—वक्त। निमित्त होकर कर्म ही विकार करावे, तो कभी उसे विकाररहित होने का अवसर—टाईम रहता नहीं। शुद्ध, सहज... अपना पवित्र स्वरूप, उसके परिणमन का अवसर तो उसे रहता नहीं। ऐसा है नहीं।

**तातैं चिदभावनि विषै,...** अपने ज्ञान की और आनन्द की पर्याय विषे, **समरथ चेतन राउ...** चेतन भगवान स्वयं समर्थ है। विकार करने में भी समर्थ है और विकार का नाश करने में भी समर्थ है। कर्म से विकार होता है तो अपने को शुद्धता प्राप्त करने का अवसर मिले नहीं। चार गति में रुले। बराबर है ? पढ़ते नहीं। यह समयसार नाटक तो बाहर बहुत आ गये हैं। पहले से बाहर था ... समयसार रूपचन्दजी का है। देखा है ? वह भी है। यहाँ आया नहीं। समयसार तो पहले से है। बहुत वर्ष (पहले) हमको तो (संवत्) १९७८ के वर्ष में मिला। ... तुम सेठिया है या नहीं ? करना हो तो क्या है ? पैसा बहुत है तुम्हारे पास। कहो, समझ में आया ? ... समाप्त हो गया तो छपाओ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

यहाँ तो **चिदभावनि विषै,...** चैतन्यभाव उपजाने में तो चेतन राजा ही समर्थ है। है ? हाँ। क्या ? कि **राग विरोध मिथ्यातमैं...** जब विपरीत मान्यता है तो राग-द्वेष उत्पन्न होता है, यह अपना आत्मा ही करता है, कोई दूसरा कराता नहीं। **समकितमैं सिव भाउ,...** देखो ! विपरीत मान्यता में राग-द्वेष करते हैं और सम्यग्ज्ञान में आत्मा की शान्ति और आनन्द की ही उत्पत्ति करते हैं। समझ में आया ? स्पष्ट बात तो (यह है कि) आत्माधीन है। कर्म से होता है... कर्म से होता है... यहाँ आचार्य क्या कहते हैं ?

**रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते...** उसका कलश है यह। राग-द्वेष और विकार की उत्पत्ति में **निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति...** सदा पुद्गलकर्म परद्रव्य ही कारण है... यह तो पाठ में है। **उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं।** मिथ्यात्वरूपी नदी को पार कर सकता नहीं। **'शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः'** शुद्ध-बुद्ध से अन्धा, विधुर है, रंडुआ है। रंडुआ समझते हैं या नहीं ? विधुर कहते हैं न ? देखो ! विधुर है, अन्ध है। तेरा स्वामी तूने नहीं पहिचाना। आत्मा ही अपने अपराध से... 'अपने को आप भूलके

हैरान हो गया।' वेदराजजी! अपने को आप भूलके... कोई कर्म-बर्म ने भुलाया है, (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं है।

यही बात सम्प्रदाय में बहुत चलती है। कर्म का अधिकार आये, भैया! ... कर्म का धक्का लगा... हमें बहुत धर्म करने की भावना है, समझ में आया? ऐसा कर्म का (मन्द) उदय होगा तो धर्म होगा, कर्म का कठोर उदय होगा तो विकार होगा। हमारे अधिकार की बात नहीं, ऐसा अज्ञानी कहते हैं। है या नहीं बहिन? ...बहिन है या नहीं? गोकुलभाई थे, उनके घर से। पहले पैसे थोड़े थे और एकदम (पैसे) हो गये। क्या कहलाता है? पाईप। पाईप लिया हुआ थोड़ा। उसका भाव एकदम बढ़ गया। सरकार के साथ विवाद हुआ। कस्टम खाता की... ३२ गुना भाव बढ़ गया। बीस हजार के पचास लाख। इतना बहुत पैसा हो गया। बहिन एक बार कहती थी, 'परन्तु यह तुम कुछ धर्म करो न?' तब कहे... जवाब ऐसा दिया था। ... 'पैसा लेने को मैं कहाँ गया था? पैसा उसके कारण से आ गया या नहीं? ऐसे धर्म कर्म के कारण से होता है, (तो) होगा।' ऐसा कहा था। सेठी! पैसा एकदम आ गया। हम लेने गये थे? एकदम आ गया। बहुत लाखों रुपये हो गये। वैसे कर्म में धर्म लिखा हो तो धर्म होगा।

**मुमुक्षु :** क्रमबद्ध...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं। क्रमबद्ध यह नहीं। क्रमबद्ध को माननेवाला ऐसा बोले नहीं, ऐसा माने नहीं। क्रमबद्ध को माननेवाले की अपने स्वभाव पर दृष्टि है तो पुरुषार्थ से राग को नाश करता है। समझ में आया? क्रमबद्ध का ऐसा नहीं है। क्रम में होगा, वह होगा—ऐसा है नहीं। क्रम में होगा, इसका निर्णय किसको है? अपना ज्ञायकभाव शुद्धस्वभाव सहज परिणति ऐसी जिसकी दृष्टि हुई, वह क्रम-क्रम से होनेवाले का कर्ता न होकर ज्ञाता-दृष्टा रहता है। ऐसी बात है। अभी यहाँ के लोगों को कुछ खबर नहीं होती और ऐसा जवाब दे। वे मानो कि... होगा बड़बोला जैसा। ऐसा लगे बेचारे को। समझ में आया, सेठ!

क्रमबद्ध... क्रमबद्ध... ऐसा कहे कि हमारे क्रम में होनेवाला है, (वह होगा)। परन्तु तेरी दृष्टि कहाँ है? पर्याय के ऊपर दृष्टि है, कर्तापने की दृष्टि है और क्रमबद्ध का निर्णय तुझे हो गया? पोपटभाई!

**मुमुक्षु :** क्रमबद्ध नहीं तो कर्मबद्ध तो होगा ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यह तो कहते थे न ब्रह्मचारी, नहीं ? गोपालजी। ... हो गये साधु, कुछ भान नहीं होता। क्रमबद्ध आवे न ? कर्मबद्ध है न ? महाराज! कर्मबद्ध है न ? अरे! परन्तु क्रमबद्ध दूसरा और कर्मबद्ध दूसरा। ऐसे के ऐसे कुछ भान नहीं होता। क्रमबद्ध में तो प्रत्येक द्रव्य की पर्याय—परिणामधारा एकरूप धारा चलती है, उसका नाम क्रमबद्ध है। कर्मबद्ध वह तो दूसरी चीज़ हुई। परन्तु खबर नहीं। यहाँ रहते थे। क्रम और कर्म। अरे! क्रम और कर्म में पूर्व-पश्चिम की बात है।

यहाँ तो कहते हैं, समकितदशा में शिवभाव—ज्ञान, दर्शनादि, सुखादि उपजते हैं। आहाहा! जिसकी दृष्टि में मिथ्यात्वभाव है—राग में—पुण्य में मेरा लाभ है, पुण्य मेरी चीज़ है, मैं अल्पज्ञ हूँ और निमित्त से मुझमें कुछ विपरीतता होती है—ऐसी दृष्टि(वन्त) मिथ्यादृष्टि को क्या कहते हैं ? **राग विरोध मिथ्यातमैं...** विपरीत मान्यतावाले को राग-द्वेष अपने से उत्पन्न होता है, कर्म से नहीं (और) सम्यग्दृष्टि को अपने से शुद्धता की उत्पत्ति होती है, यह कहते हैं। सम्यग्दर्शन में तो अपना आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप पूर्ण आनन्दधाम अनन्त चतुष्टय से भरा पड़ा आत्मा है। जो अनन्त चतुष्टय प्रगट होता है केवली को, वह तो पर्याय है। परन्तु अनन्त चतुष्टय जिसमें से प्रगट होता है, वह द्रव्यस्वभाव में त्रिकाल पड़ा है। आहाहा! समझ में आया ? वस्तु में, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसा शक्तिरूप अनन्त चतुष्टय स्वभाव प्रत्येक आत्मद्रव्य में अनादि से पड़ा है। अभव्य में भी है। आहाहा! अभव्य जीव को भी अनन्त चतुष्टय है। (उसकी) प्रगट करने की योग्यता नहीं है और भव्य को प्रगट करने की योग्यता है, बस इतना अन्तर है। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** लायकात क्या होती है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** योग्यता। लायकात नहीं आती तुम्हारे हिन्दी में ? भव्य को अपने पुरुषार्थ से अज्ञान नाश करने की लायकात—योग्यता उसमें है। अज्ञानी को—अभव्य को है नहीं। पुण्य को धर्म मानते हैं... आता है न ? बन्ध अधिकार में आता है। पुण्य को धर्म मानते हैं अभव्य, परन्तु आत्मा ज्ञानमय है, उसको मानते नहीं। 'भोग

निमित्तं कर्मदृष्टि।' भोगने के कारण से... राग का भोग करना, ऐसे राग का कर्ता होकर राग का भोग करना, वह उसकी दृष्टि में है। धर्मी की दृष्टि में तो आत्मा ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप, विकार की पर्याय से भी रहित है। ऐसी दृष्टिवन्त धर्मी को **सिव भाउ**—मोक्ष का भाव प्रगट होता है। मोक्ष का मार्ग—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रभाव। राग-द्वेष नहीं। समकिती को राग-द्वेष उत्पन्न होते ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? एक ही बात! आत्मा चीज़ है पूर्णानन्द प्रभु, उसकी जिसको दृष्टि नहीं और पुण्य-पाप और निमित्त की जिसको दृष्टि है, ऐसा मिथ्यात्वी राग-द्वेष का उत्पन्न करनेवाला है। समकिती जीव शिवभाव का उत्पन्न करनेवाला है। आहाहा!

अब दूसरा श्लोक। २९। दीपक का दृष्टान्त है न!

**पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोधो न बोध्यादयं,**
**यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव।**
**तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो,**
**रागद्वेषमयीभवन्ति सहजां मुञ्चन्त्युदासीनताम्।।२९।।**

आहाहा! उसका पद। **ज्ञान का माहात्म्य।**

★ ★ ★

## काव्य - ६७

**ज्ञान का माहात्म्य** (दोहा)

**ज्यौं दीपक रजनी समै, चहुं दिसि करै उदोत।**
**प्रगटै घटपटरूपमैं, घटपटरूप न होत।।६७।।**

**अर्थः-जिस प्रकार रात्रि में दीपक चहुंओर प्रकाश पहुँचाता है और घटपट पदार्थों को प्रकाशित करता है, पर घट, पटरूप नहीं हो जाता।।६७।।**

## काव्य-६७ पर प्रवचन

**ज्यौं दीपक रजनी समै, चहुं दिसि करै उदोत।**
**प्रगटै घटपटरूपमैं, घटपटरूप न होत॥६७॥**

क्या कहते हैं ? दीपक का प्रकाश होता है, तो दीपक का प्रकाश घटपटरूप को प्रगट करता है कि यह घटपटादि है। दीपक है, वह प्रगट करता है कि यह घट है, पट है, .... यह कोयला है, यह अग्नि है। परन्तु ऐसे प्रगट करने पर भी **चहुँ दिसि करै उदोत।** दीपक चारों दिशा उद्योत करता है कि चारों दिशा में जो चीज़ है, उसे प्रगट करता है कि यह है, बस। **प्रगटे घटपटरूपमैं घटपटरूप न होत...** तथापि दीपक घटरूप और पटरूप होता नहीं। आहाहा! दीपक परप्रकाशन के काल में पर को प्रकाशता है, ऐसा दीपक का स्वभाव स्वतः स्वभाव है। ऐसा होने पर भी दीपक घट-पट, कोयलारूप होता नहीं। कोयला हो तो दीपक बताता है कि यह कोयला है, परन्तु दीपक कोयलारूप होता है ? सोनारूप होता है ? घटपटरूप होता है ? ऐसे यह तो दृष्टान्त आया। **त्यौं सुग्यान जानै सकल...** वह दृष्टान्त हुआ, अब सिद्धान्त।

★ ★ ★

## काव्य - ६८-७०

**ज्ञान का माहात्म्य** (दोहा)

**त्यौं सुग्यान जानै सकल, ज्ञेय वस्तुकौ मर्म।**
**ज्ञेयाकृति परिनवै पै, तजै न आतम-धर्म।।६८।।**

**ग्यानधर्म अविचल सदा, गहै विकार न कोइ।**
**राग विरोध विमोहमय, कबहूं भूलि न होइ।।६९।।**

**ऐसी महिमा ग्यानकी, निहचै है घट मांहि।**
**मूरख मिथ्याद्रिष्टिसौं, सहज विलोकै नांहि।।७०।।**

**अर्थः-उसी प्रकार ज्ञान सब ज्ञेय पदार्थों को जानता है और ज्ञेयाकार परिणमन करता है तो भी अपने निजस्वभाव को नहीं छोड़ता।।६८।। ज्ञान का जानना स्वभाव सदा अचल रहता है, उसमें कभी किसी भी प्रकार का विकार नहीं होता और न वह कभी भूलकर भी राग-द्वेष-मोहरूप होता है।।६९।। निश्चयनय से आत्मा में ज्ञान की ऐसी महिमा है, परन्तु अज्ञानी मिथ्यादृष्टि आत्मस्वरूप की ओर देखते भी नहीं हैं।।७०।।**

काव्य-६८-७० पर प्रवचन

**त्यौं सुग्यान जानै सकल, ज्ञेय वस्तुकौ मर्म।**
**ज्ञेयाकृति परिनवै पै, तजै न आतम-धर्म॥६८॥**
**ग्यानधर्म अविचल सदा, गहै विकार न कोइ।**
**राग विरोध विमोहमय, कबहूं भूलि न होइ॥६९॥**
**ऐसी महिमा ग्यानकी, निहचै है घट मांहि।**
**मूरख मिथ्याद्रिष्टिसौं, सहज विलोकै नांहि॥७०॥**

आहाहा! क्या कहते हैं? अर्थ में है, देखो। **जिस प्रकार रात्रि में दीपक चहुँ ओर प्रकाश पहुँचाता है और घटपट पदार्थों को प्रकाशित करता है, पर घट, पटरूप नहीं होता। उसी प्रकार ज्ञान...** भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, दीपक की तरह। ज्ञान परवस्तु को प्रकाशता है कि यह शरीर है, यह वाणी है, यह राग है। समझ में आया?

वह चैतन्य का प्रकाशक स्वभाव है कि अपने को और पर को प्रकाशता है। परन्तु पर को प्रकाशते (हुए) पररूप होता नहीं। आहाहा! ऐसा ज्ञानस्वभाव, देखो! **त्यौं सुग्यान जानै सकल...** सबको जाने। विष्टा को जाने, कस्तूरी को जाने, देव को जाने, गुरु को जाने। परन्तु जानने के काल में वह परचीज़ उसको कहती नहीं कि तुम हमें जानो और ज्ञान भी अपना स्थान छोड़कर पर को जानने जाता नहीं। वह श्लोक का आधार है। श्लोक का पद है। दीपक अपने स्वभाव से प्रकाशता है। प्रकाशन के काल में घट-पट रथ आदि जो चीज़ हो, उसे जानता है अर्थात् प्रकाशित करता है। प्रकाशने पर भी दीपक तो कभी पररूप नहीं होता। अज्ञानी की मान्यता में है, अरे! मैं रागरूप हो गया, मैं

कर्मरूप हो गया, शरीररूप हो गया। ऐसी भ्रान्ति अज्ञानी करता है। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, **ज्ञेयाकृति परिनवै...** जैसी जाननेयोग्य चीज़ है, उसरूप जाने—परिणमे ज्ञान। समझ में आया?

**तजै न आतम-धर्म...** परन्तु अपना जानना धर्म है, उसे छोड़ता नहीं। जानना क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं। यह तो ज्ञायकमूर्ति ज्ञातादृष्टा का पिण्ड प्रभु है। ऐसी जिसे दृष्टि हुई तो सम्यक् दृष्टि में परचीज़ जानने में आती है। ऐसा ज्ञान प्रकाशित करता है कि यह है। अपने को प्रकाशित करे और पर को प्रकाशित करे, द्विविध प्रकाशक स्वभाव है उसका—ज्ञान का। परन्तु द्विविध प्रकाशित करने पर भी पररूप कभी होता नहीं, रागरूप कभी होता नहीं, यह कहते हैं। आहाहा! दया-दान-व्रत-भक्ति के विकल्प को प्रकाशित करे। आहाहा! समझ में आया? अपना स्वरूप तो चैतन्यज्योति, जलहल चैतन्यज्योति है। वह जलहल ज्योति अपने को प्रकाशित करे (और) राग-शरीर-वाणी-मन को प्रकाशित करे... प्रकाशित करे। परन्तु आत्मा अपना ज्ञानधर्म छोड़कर रागरूप, शरीररूप कभी होता नहीं। बात तो बहुत सरल है, परन्तु लोगों को अन्दर ऐसा .... मानो सब एकमेक हो गया है वाणी, शरीर और आत्मा। समझ में आया?

कहते हैं, **ज्ञेयाकृति परिनवै पै तजै न आतम-धर्म...** अपना ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव, पर को प्रकाशने पर भी अपना ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव छोड़ता नहीं। रागरूप, व्यवहाररूप होता नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? आहाहा! व्यवहाररूप होता ही नहीं। व्यवहार राग को तो प्रकाशनेवाला है। भगवान चैतन्यस्वरूप, स्व-पर को प्रकाशना, यह तो आतम धर्म है। पर को प्रकाशन के काल में भी पररूप तो कभी होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। देखो तो सही! उसकी सत्ता—जानने की सत्ता का स्वभाव अपने (को और) पर को प्रकाशे, ऐसा स्वभाव है। पर प्रकाशन के काल में अपने को छोड़कर (पर का) प्रकाशन करता है, ऐसा नहीं। रागरूप हो जाता है, (ऐसा नहीं)। आहाहा!

चैतन्यस्वभाव की ऐसी शक्ति है। चैतन्यस्वभाव है, ऐसा जिसने माना—समकिती ने (माना), वह आत्मा रागरूप होता नहीं, यह कहते हैं। समकिती रागरूप होता नहीं। राग को प्रकाशनेवाला रहता है। आहाहा! धर्मी अपने ज्ञानधर्म को प्रकाशता है। उसमें रागादि हो, (वह) उसे जानने में आता है। जानने में आने पर भी भगवान आत्मा अपना

ज्ञानधर्म छोड़ता नहीं। अज्ञानी को भ्रम हो गया है कि मैंने राग किया, मैंने राग किया, मैंने दया पालन की, भक्ति की। वह राग का कर्ता अज्ञानी है, यह कहते हैं।

**मुमुक्षु :** दया पालना या नहीं पालना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन पाले? आहाहा!

कहा था न? (संवत्) १९९५। ज्येष्ठ शुक्ल १३। ऐसा कहा था कि पर की दया की पर्याय आत्मा कर सकता है? शरीर का संयोग आत्मा के साथ है, (तो) पर की वियोग पर्याय-हिंसा क्या आत्मा कर सकता है? और पर का संयोग रख सकता है? आहाहा! वह तो प्रकाशक है। होता है, ऐसा (जाने)। देह छूट गया, देह रहा, बस प्रकाशित करे। परन्तु उसकी क्रिया कर सकता (नहीं), इसकी तो बात है। समझ में आया? और इससे आगे जाकर जो दया का शुभभाव आया, उसे भी आत्मा प्रकाशता है, यह यहाँ कहते हैं। परमविशुद्ध है न? आहाहा! प्रकाशने पर भी रागरूप नहीं होता। आहाहा! वह रागरूप हो तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। कल आया न? राग विरोध मिथ्यात में। (पद ६६)। राग और विरोध तो मिथ्या दृष्टि में है। आहाहा! राग-द्वेष पर में नहीं, राग-द्वेष स्वभाव में नहीं, राग-द्वेष मिथ्या दृष्टिवाले को होता है। समझ में आया? टीका में बहुत स्पष्टीकरण है कलश का। कलश क्या, गाथा का।

कहते हैं, **ग्यानधर्म अविचल सदा, गहै विकार न कोई...** आहाहा! ऐसा ज्ञानधर्म का धरनेवाला धर्मी आत्मा... ऐसी चीज़ का जिसको भान हुआ, वह ज्ञानी राग को पकड़ता नहीं, राग-विकाररूप होता नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म। राग होता है न? समकिती युद्ध करते हैं। चक्रवर्ती हो छह खण्ड का (स्वामी)। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ चक्रवर्ती थे, कामदेव पुरुष थे। ढाईद्वीप में उनके जैसा रूप ऐसा किसी का नहीं था। ऐसे कामदेव, चक्रवर्ती और तीर्थंकर... आहाहा! छह खण्ड साधने गये तो विकल्प तो था। कहे, नहीं; ज्ञानी को विकल्प है नहीं, यह कहते हैं। गजब बात है! विकल्प के स्वामी नहीं, विकल्प—परचीज़ उसे प्रकाशन करते हैं। बस इतना। जानते हैं कि यह है, परन्तु अपने में है और मैं करता हूँ—ऐसा ज्ञानी को है नहीं। समझ में आया?

चक्रवर्ती थे न भरत। (वृषभाद्रि) पर्वत। छह खण्ड साधे। (वृषभाद्रि) पर्वत के पास गये। पूर्व के बहुत चक्रवर्ती हो गये (उन) सबका नाम लिखा था। कहीं जगह

नहीं थी लिखने की। छह खण्ड साधा? क्या साधा? अखण्ड को साधते थे। समझ में आया? मणिरत्न साथ में था। एक हजार देव मणिरत्न की सेवा करें। कहते हैं, (नाम) लिखने गये, परन्तु नाम से भरा था (वृषभाद्रि) पर्वत।....अनन्त तो नाम नहीं थे, संख्यात थे, परन्तु जगह नहीं थी। ऐसा बोले भरत, 'ओहो! जिसने छह खण्ड साधकर अपना नाम यहाँ लिखा, वह नाम मैं मिटाता हूँ।' जगह नहीं थी। मणिरत्न था, (जिसकी) एक हजार देव (सेवा करें)। आहाहा! संसार धिक्कार है, ऐसा उस समय (भाव) था। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** पर्वत कितना बड़ा था?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्वत तो यह (वृषभाद्रि) पर्वत है नहीं? पचास योजन चौड़ा, पच्चीस योजन ऊँचा। (वृषभाद्रि) पर्वत है न? जहाँ विद्याधर रहते हैं।.... (वृषभाद्रि) पर्वत है न? छह खण्ड। तीन खण्ड इस ओर, तीन खण्ड इस ओर।

अभी भले न जाने, परन्तु वस्तु है या नहीं? अपने बाप (दादा की) दस पीढ़ी न जाने, परन्तु थे या नहीं? दसवीं पीढ़ी में बाप न आवे? अगम्य है। अगम्य है, परन्तु थे या नहीं? थे नहीं तो तू कहाँ से आया?

**मुमुक्षु :** अब तक तो परम्परा चली आयी है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चली आयी है। जिसके लड़के को लड़का न होगा तो उसकी (वंश परम्परा) का अन्त आ जायेगा। (वंश परम्परा) तो अनन्त काल से चली आती है, अनन्त काल से है। उसके पिता, उसके पिता, उसके पिता। अनन्त काल से। जुगलिया में भी थे उसके पिता। समझ में आया? जब लड़का न हो, बाँझ मर जाये, वहाँ अन्त आ गया। उसे ख्याल में तो आता है या नहीं? मेरी दस पीढ़ी में हमारे पिताजी के पिताजी थे। समझ में आया? प्रतीति में आता है या नहीं? नहीं तो यह शरीर कहाँ से हुआ? इसी प्रकार भगवान, अनन्त ज्ञानी हो गये। समझ में आया? तो उनके ज्ञान में (वृषभाद्रि) पर्वत आदि सब ख्याल में आता है। सब वस्तु आती है। ऐसी प्रतीति करे... जब आत्मा अपने भान से विकार को नाश करके केवलज्ञान की प्राप्ति करे, ऐसी चीज़ है या नहीं? वर्तमान में नहीं है तो कहीं है या नहीं? है तो किसी क्षेत्र में है या नहीं? देहरहित हो तो सिद्ध में जाये। देहसहित हो तो महाविदेह में है। क्या कहा, समझ में आया?

आत्मा में केवलज्ञान हो सकता है। केवलज्ञान अरिनाश—अज्ञान का, राग-द्वेष का नाश करता है। केवलज्ञानी जगत में हैं। 'णमो अरिहंताणं।' तो अरिहन्त हैं या नहीं? अरिहन्त तो सशरीरी होते हैं तो किस क्षेत्र में हैं? यहाँ तो है नहीं। तो किसी क्षेत्र में है। अगम्य होने पर भी किसी क्षेत्र में गम्य है। समझ में आया? पूर्ण स्वरूप प्रगट करते हैं, ऐसा माने और ऐसा है, तो पूर्ण स्वरूप प्रगट शरीरसहित जीव हो अरिहन्त हैं, वे तो देहसहित हैं। किसी क्षेत्र में हैं या नहीं? यहाँ नहीं तो किसी क्षेत्र में हैं या नहीं? अरिहन्त हैं या नहीं? प्रत्यक्ष है कि भरतक्षेत्र में, ऐरावत में नहीं। कहा न, कोई क्षेत्र है। अरिहन्त विराजते हैं। न्याय अनुमान से (प्रमाण होता है)। अनुमान भी प्रमाण है, वह सच्चा ज्ञान है। अनुमान कोई गप्प है, ऐसा नहीं। प्रत्यक्ष प्रमाण सत्य और अनुमान प्रमाण झूठा, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

यह वांसा (पीठ) है देखो! वांसा। क्या कहलाता है? देखा है तुमने? तुमने देखी है वह पीठ? कहाँ देखी है? दिखती नहीं।

**मुमुक्षु :** हाथ फेरे तो दिखाई दे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाथ फिराये तो क्या दिखे? वह तो स्पर्श होता है, ऐसा जाने कि है। दर्पण में पीठ नहीं दिखती। दर्पण में तो उसका प्रतिबिम्ब दिखता है। दर्पण में पीठ नहीं है, पीठ तो यहाँ है। बराबर है? पीठ कभी देखी नहीं तो क्यों मानते हो? कभी देखा नहीं ऐसे नजर से। यह है न? यह है तो विषय है। दर्पण में दिखता है, (वह) यह चीज़ नहीं दिखती, वह तो प्रतिबिम्ब दिखता है। दर्पण की पर्याय है। न्याय से समझना न? **न्यायवयम...** भगवान कहते हैं, हमारा मार्ग न्याय से सिद्ध है। लॉजिक से, युक्ति से, ज्ञान से सिद्ध है। आहाहा!

प्रवचनसार में कहा है। प्रवचनसार चरणानुयोग (सूचक चूलिका)। गाथा है कि भगवान ने कहा, वह सब श्रुतज्ञानी युक्ति से सिद्ध कर सकते हैं। प्रवचनसार में है। समझ में आया? मुनि कहते हैं कि जो भगवान ने कहा, वह चीज़ श्रुतज्ञान से, युक्ति से अनुभव में आती है। युक्ति से, लॉजिक से सिद्ध होता है। ऐसे (ही) मान (लेना) ऐसा नहीं। कौन सी गाथा है? यह प्रवचनसार है न? २३७। दो सौ सैंतीस। दो, तीन, सात। 'आगमजनित ज्ञान से, यदि वह श्रद्धानशून्य हो तो सिद्धि नहीं होती और उसके (आगमज्ञान

के) बिना जो नहीं होता, ऐसे श्रद्धान से भी यदि वह संयमशून्य हो तो सिद्धि नहीं होती।' आगम बल से... देखो! संस्कृत टीका है। '**आगमबलेन सकलपदार्थान् विस्पष्टं तर्कयन्नपि, यदि सकलपदार्थ ज्ञेयाकारकरम्बित विशदैकज्ञानाकारमात्मानं न तथा प्रत्येति।**' जान सकते हैं, ऐसा कहते हैं।

देखो! 'सकल पदार्थों की विस्पष्ट तर्कणा करता होने पर भी जो जीव, सकल पदार्थों के ज्ञेयाकारों के साथ मिलित होता हुआ विशद एक ज्ञान जिसका आकार है, ऐसे आत्मा को उस प्रकार से प्रतीति नहीं करता...' उसकी श्रद्धा सच्ची नहीं होती। तो आगमबल से सिद्ध कर सकते हैं, ऐसा कहते हैं। 'तर्कणा' लिया न पाठ में? 'तर्कणा = विचारणा, युक्ति इत्यादि के आश्रयवाला ज्ञान।' जितना भगवान ने कहा, वह सब युक्ति और तर्क से सिद्ध हो सकता है। समझ में आया? ऐसा नहीं कि भगवान कहते हैं (तो) होगा। यह तो संशय हुआ। समझ में आया? उसकी प्रतीति में तो आया नहीं। बहुत स्पष्टीकरण! आचार्य ने टीका में कुछ बाकी नहीं रखा, सब है। आहाहा! आगम के विस्पष्ट बल से जितना (कहा), अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, छह द्रव्य, गुण और पर्याय—यह सब स्पष्ट तर्कणा से सिद्ध हो सकता है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, देखो! **ग्यानधर्म अविचल सदा गहै विकार न कोइ....** आहाहा! भगवान अपना स्वभाव ज्ञानस्वरूप... ज्ञान ही है आत्मा। ज्ञान सकल पदार्थ को जाने, **गहै विकार न कोइ....** रागादि विकार को ज्ञान पकड़ता नहीं, उसे ज्ञान कहने में आता है। राग मेरा है, ऐसा माने, वह तो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ ने कहा, (वह) वस्तु की स्थिति सिद्ध करके कहा है। बहुत तो ऐसा कहे, भाई! कपड़े के टुकड़े हों न, टुकड़े छोटे-छोटे... एक कपड़ा... छोटा-छोटा धर्म था, उसका एक कपड़ा बनाया, वह जैनधर्म। अरे!

वह और अनेकान्त का। एक-एक धर्म था जगत का, भगवान ने (उसे) अनेकान्त (कहा)। यह अनेकान्त कहा है? भगवान तो अनेकान्त पहले से जानते थे। भगवान तो सम्यक् दृष्टि, तीन ज्ञान लेकर आये हैं। जब सम्यग्दर्शन हुआ, तब आत्मा का अनेकान्त धर्म था, वह सब अनुभव में आया था। लोगों को देखकर अनेकान्त धर्म सिद्ध किया, ऐसा क्या है? वह तो बनावटी हुआ। वेदान्त एकरूप नित्य मानते हैं, सांख्य (एकान्त)

परिणमन मानते हैं, कोई एक ही आत्मा मानते हैं। सबका समन्वय करके जैनधर्म प्रगट हुआ। ऐई! (अनेकान्त) अनादि काल से है। ऐसे लोगों को देखकर अनेकान्त सिद्ध किया, ऐसा है ही नहीं।

वस्तु का स्वभाव ही अनन्त अनेकान्त है, ऐसा जाना और अनेकान्त प्रसिद्ध किया। वस्तु अनेकान्त स्वरूप ही है। इस कारण से इकट्ठा किया! क्या करे? लोगों को वास्तविक स्थिति की (खबर नहीं)। अनादि का है। अनादि से अनन्त तीर्थंकर ऐसा कहते आये हैं। अनन्त तीर्थंकर भूतकाल में... तीन काल में तीन काल को जाननेवाले का विरह कभी होता नहीं। बनाये क्या? अनन्त तीर्थंकर ने है ऐसा जाना। भूतकाल में किस काल में केवली नहीं थे? कौनसे काल में सर्वज्ञ नहीं थे? बोलो, बताओ। भूतकाल, वर्तमान, भविष्य में कौन से काल में सर्वज्ञ न होवें? सर्वज्ञ न होवें तो अरिहन्त न होवें, सिद्ध न होवें। आहाहा! तीन काल को जाननेवाले तीनों काल में अस्ति रखते हैं। भूतकाल में सर्वज्ञ थे, अभी भी हैं, भविष्य में भी होंगे। लोगों को अन्दर मनन नहीं, विचार नहीं (कि) वास्तविकता क्या चीज़ है।

ऐसे सम्यग्दर्शन का लक्षण, असंख्य समय में ... आस्था। परन्तु आस्था का अर्थ क्या? जैसी वस्तु की मर्यादा सत् द्रव्य-गुण-पर्याय है... त्रिकाल भूत-भविष्य-वर्तमान अरिहन्त हुए, वर्तमान में हैं, भूत में थे। सिद्ध भी अनादि से चले आये हैं। पहले सिद्ध नहीं थे और नये सिद्ध हुए, ऐसा है नहीं। अनन्त काल में पहले सिद्ध नहीं थे। संसार पहले और सिद्ध बाद में। कोई पण्डित कहते थे कि संसार, सिद्ध से आठ वर्ष पहले का है। पहले संसार, बाद में सिद्ध हुए। अरे, भगवान! क्या कहते हो? संसार भी अनादि और सिद्ध भी अनादि है। समझ में आया?

हमारे नारणभाई दृष्टान्त देते थे। गाड़ी हो न गाड़ी। क्या कहते हैं? बैलगाड़ी। तो घूंसरी को पाछल क्या कहलाये? वह शब्द वही का वही है। पीछे हो न? बैलगाड़ी। आगे घूंसरी हो न पीछे? इसी प्रकार पहले किसे कहना? पूरी गाड़ी, उसमें पहले और पश्चात् किसे (कहना)? संसार और सिद्ध अनादि से हैं। सिद्ध नहीं थे, तो पहले मोक्षमार्ग भी नहीं था, संवर-निर्जरा नहीं थी, अरिहन्त नहीं थे, (तो) सब तत्त्व छूट जाते हैं। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! यह कोई घर का मार्ग नहीं, यह

तो सिद्ध हुआ मार्ग है, साबित हो गया है। आहाहा!

कहते हैं, **ग्यानधर्म अविचल सदा...** देखो, सदा है या नहीं ? आत्मा का ज्ञानस्वभाव त्रिकाल अविचल है। **गहै विकार न कोइ....** आहाहा! शरीर, कर्म तो पकड़ते नहीं, परन्तु राग को—शुभभाव को पकड़ा नहीं, यह कहते हैं। उसका नाम आत्मा है। समझ में आया ? **गहै विकार न कोइ। राग विरोध विमोहमय कबहूं भूंलि न होइ।** ज्ञान में राग विरोध और मोह होकर भूल हो जाये, ऐसा कभी होता नहीं। आहाहा!

**इसमें कभी किसी भी प्रकार का विकार नहीं होता और न वह कभी भूलकर भी राग-द्वेष-मोहरूप होता है।** भूलकर भी ज्ञानस्वभाव में राग होता है, ऐसा उसका स्वरूप है ही नहीं। माने अज्ञान से, यह दूसरी बात हुई। समझ में आया ? चैतन्यस्वभाव ज्ञाता-दृष्टा अनादि-अनन्त, कभी राग को पकड़ता नहीं और अपना ज्ञाता-दृष्टा (स्वभाव) कभी छोड़ता नहीं। तो भूलकर भी आत्मा राग-द्वेष-मोह (मय) हो, ऐसी चीज़ है नहीं। आत्मा राग-द्वेष-मोह (मय) हो ? यह तो अज्ञानी अज्ञान में मानता है, तो पर्याय में राग-द्वेष-मोह होता है। समझ में आया ? यह तो अज्ञान से होता है।

भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति अविचल सदा है, (उसमें) कभी राग विरोध नहीं (होता)। अज्ञानी होकर अज्ञानी पर्याय में मानता है, वस्तु में क्या है ? वस्तु जो ज्ञायक स्वभाव त्रिकाल है, उसमें कभी राग होता नहीं। भूलकर भी विकार नहीं होता। भूल कहाँ से करे ? भूल करने का गुण ही नहीं। यह तो पर्याय में मान लिया है। आहाहा! समझ में आया ? यह तो सर्वविशुद्ध अधिकार है। सर्वविशुद्ध अधिकार। अज्ञानी को कहते हैं... यहाँ तो कहते हैं। आया या नहीं ? (कोई कहे), नहीं, यह तो साधु के लिये है। यह तो अज्ञानी भान बिना के हैं, उसे कहते हैं। समयसार का घर देखा नहीं।

**ऐसी महिमा ग्यानकी...** आहाहा! ज्ञान का दीपक कभी कोयलारूप होता नहीं, दीपक कभी अग्निरूप होता नहीं। प्रकाशने पर भी कभी पररूप होता नहीं। भगवान ज्ञानस्वरूप, (वह) राग विकार को प्रकाशता तो है, परन्तु ज्ञान कभी राग-द्वेषरूप होता नहीं। उसे आत्मा और आत्मा का स्वभाव कहने में आता है। आहाहा! ऐसी अन्तर में प्रतीति होना, अनुभव में प्रतीति होना, उसका नाम समकित है। ऐसे-ऐसे मान लेना कि समकित है, ऐसा समकित नहीं। समकित में बड़ी कीमत भरनी पड़ती है। समझ में

आया ? आहाहा ! भगवान ! तुझमें क्या कमी है कि तू पररूप हो ? तुझमें पूर्णता भरी है। आहाहा ! देखो न ! पद भी कैसे बनाये बनारसीदास ने। बनारसीदास। सादी भाषा में, सीधी हिन्दी भाषा में। समझ में आया ?

**ऐसी महिमा ग्यानकी निहचै है घट मांहि...** इस देह में रही, राग से भिन्न तेरी चीज़ में महिमा पड़ी है। आहाहा ! निजमहिमा की खबर नहीं और राग की, पुण्य की महिमा या वैभव धूल मिले बाहर में, उसकी महिमा (है, वह) भिखारी है। ऐ सेठ ! दोनों भाई बुन्देलखण्ड के बादशाह कहलाते हैं। ऐसा सुना था। लोग ऐसा कहते हैं। धूल में भी बादशाह नहीं। बाहर में क्या आया ? पैसेवाले हैं न ? छह लाख का बड़ा बँगला है। हजीरा अर्थात् मकान। संगमरमर का। गरीब लोग कहे, आहाहा ! यह तो बादशाह है। क्या बादशाह ? बादशाह अर्थात् भिखारी है। पर की मालिकी करे कि पर मुझे हो, वह तो भिखारी है। बादशाह तो (वह है), जिसे पर की इच्छा ही नहीं। आठ वर्ष की बालिका समकित पावे, तो वह बादशाह है। हमारा आत्मा हमें पूर्ण है। बस, दूसरा हमें कुछ चाहिए नहीं। वह कहते हैं न ?

ज्ञानी ने राग किया ही नहीं। आठ वर्ष की बालिका को सम्यग्दर्शन हुआ तो राग उसमें है ही नहीं। पकड़ा ही नहीं, यह कहते हैं। आहाहा ! है, ऐसा स्वभाव रहा, ज्ञाता-दृष्टा मेरा स्वभाव, बस वह मैं। रागादि मैं नहीं। राग का प्रकाशन हुआ, वह तो ज्ञेय है। समझ में आया ? ज्ञेय है ज्ञेय।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्ञेय है, वह तो ज्ञेय है। ज्ञेय का ज्ञान अपने में नहीं होता ? उस सम्बन्धी अपना ज्ञान हों, ज्ञान उसका नहीं है। **ऐसी महिमा ग्यानकी निहचै है घट मांहि...** भगवान ! शरीर में तेरी ज्ञानमहिमा का भण्डार तेरा आत्मा ही पड़ा है। आहाहा ! इसकी तुझे महिमा आती नहीं और राग किया, पुण्य किया थोड़ा, (उसकी) महिमा। आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसी बातें अब कल्याण में... कल्याण आता है न ? पालीताणा। चन्दनबाला और मृगावती साध्वी थे। भगवान के समवसरण में चन्द्र, सूर्य आये। आते हैं न ? चन्द्र और सूर्य उतरे नीचे। कभी चन्द्र और सूर्य नीचे उतरे ? श्वेताम्बर में आता है। कल्याणमित्र

मासिक आता है। ..... भगवान के समवसरण में चन्द्र, सूर्य विमान लेकर उतरे। कभी उतरते होंगे ? ऐसा प्रकाश हुआ तो चन्दनबाला को खबर पड़ी कि रात्रि है। तो चन्दनबाला तो चली गयी। मृगावती थी, उसे प्रकाश में, रात्रि थी उसकी खबर नहीं हुई। फिर उपाश्रय में जाकर चन्दनबाला तो सो गयी। यह मृगावती गयी। गोराणी सो गये। ....

चलते-चलते, अरे! मैं.... अन्धेरे में निन्दा करते-करते क्षपकश्रेणी हो गयी, केवलज्ञान हो गया। चन्दनबाला थी उसका हाथ ऐसा था। सर्प निकला। सर्प निकला... केवलज्ञान तो हो गया था, तो हाथ ले लिया। अरे! इस अन्धेरे में तुम क्या देखते हो ? सर्प.... पूछा चन्दनबाला को, चन्दनबाला! क्या है ? अप्रतिहत ज्ञान है या प्रतिहत ? कहे, अप्रतिहत... अप्रतिहत अर्थात् नहीं गिरेगा (-हानि नहीं होगी)। प्रतिहत अर्थात् गिर जायेगा। क्या है ? कैसा ज्ञान हुआ ? अप्रतिहत। आपकी कृपा से। ओहो! मैंने तो केवली की निन्दा की। देखो, यह केवलज्ञान।

स्त्री को साध्वी ठहरा दिया और केवलज्ञान... हिन्दी में तो बोला। इतना ध्यान नहीं रखा तुमने ? हिन्दी में तो बोला था। ऐसी कथा है। कहा न पहले ? बात तो हो गयी। तुम्हारा लक्ष्य कहाँ था ? पत्र में ऐसा आया है। हमने तो बहुत वर्ष पहले सुनी है। नयी बात नहीं है। चन्दनबाला और उसकी शिष्य भगवान के समवसरण में गये थे। समवसरण में गये वहाँ चन्द्र और सूर्य विमान लेकर आये। ....प्रकाश, प्रकाश हो गया रात्रि में। उसकी गोराणी थी चन्दनबाला, बड़ी साध्वी। तो उसको तो ख्याल आ गया कि अन्धेरा है। रात्रि हो गयी, चलो। शिष्या को प्रकाश में ख्याल नहीं रहा। उसको लगा (कि) प्रकाश है। ........

एक तो सूर्य, चन्द्र कभी ऊपर से उतरते ही नहीं। शाश्वत् विमान ऊपर से उतरते हैं ? पश्चात् वह देखा समवसरण में... वह आयी तब उसकी गोराणी सो गयी थी। बैठे-बैठे निन्दा की। क्षपकश्रेणी चढ़ी, केवलज्ञान हुआ।

**मुमुक्षु :** नींद में ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, जागते-जागते। नींद में तो गोराणी थी। पीछे केवलज्ञान हुआ तो गोराणी का हाथ लम्बा हुआ। सर्प निकला काला। तो हाथ उठा लिया।.... चन्दनबाला जग गयी तो कहे, क्या किया ? अन्धेरे में हाथ क्यों लिया ? गोराणीजी! सर्प

निकला। ज्ञान हुआ। अन्धेरे में क्या ज्ञान हुआ? क्या अप्रतिहत ज्ञान हुआ है? अप्रतिहत अर्थात् जो ज्ञान आये और न जाये, ऐसा ज्ञान हुआ है? कहे, हाँ, केवलज्ञान हुआ है। गोराणी की निन्दा करते-करते केवलज्ञान हो गया। अरे रे! मैंने केवलज्ञानी की असाता की। ..... ऐसी बात! पूरा मार्ग अलग। आहाहा!

**मुमुक्षु :** गोराणी को केवलज्ञान हो गया?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दोनों को हो गया। बहुत आता है। आता है न?

ऐलाची नट... नट। ऐलाची। ऐलची कुमार को डोरी पर नाचते-नाचते केवलज्ञान हो गया। नाच करता था। सस्ता सौदा है। बापू! केवलज्ञान... अरे! सम्यग्दर्शन का मार्ग कोई अपूर्व है। कोई साधारण चीज़ है नहीं और चारित्र में तो उससे अनन्तगुना पुरुषार्थ है और केवलज्ञान तो अनन्त-अनन्तगुना पुरुषार्थ से होता है। यह कोई सादा सौदा है नहीं। सादा सौदा हो गया। बात सच्ची है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं,

**ऐसी महिमा ग्यानकी, निहचै है घट मांहि।**
**मूरख मिथ्याद्रिष्टिसौं, सहज विलोकै नांहि॥**

अपना स्वभाव ज्ञाता आनन्दकन्द प्रभु है। मिथ्यादृष्टि उस ओर की नजर करता नहीं। अपने ज्ञायकभाव की सत्ता का स्वीकार मिथ्यादृष्टि करता नहीं। तीन काल-तीन लोक जानने की शक्ति मेरे घट में है, मेरे आत्मा में है। मैं तो जानने-देखनेवाला के अतिरिक्त कोई चीज़ मैं हूँ नहीं। मिथ्यादृष्टि ऐसी प्रतीति करता नहीं। सहज, देखो न! **निश्चयनय से आत्मा में ज्ञान की ऐसी महिमा है परन्तु अज्ञानी मिथ्यादृष्टि आत्मस्वरूप की ओर देखते भी नहीं।** यह क्या चीज़ है? आहाहा! जिसकी पर्याय पर की ओर झुकी है, वह पर्याय जहाँ से उठती है, वह चीज़ क्या है? समझ में आया? पर्याय है न वर्तमान दशा? राग पर झुकती है, पर के प्रति झुकती है। वह पर्याय झुकती है, वह है कौन? है कौन जिसकी भूमिका में यह पर्याय उठती है? ऐसी भूमिका का दल क्या है? समझ में आया? मिथ्यादृष्टि उस पर नजर करता नहीं और अपना राग-द्वेष आदि उत्पन्न करता है। अज्ञानी परद्रव्य में लीन रहते हैं, लो। वह स्पष्टीकरण करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १३५, श्रावण कृष्ण १०, रविवार, दिनांक १५-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद ७० से ७४**

यह समयसार नाटक, सर्वविशुद्ध द्वार है। अथवा यह आत्मा शुद्ध चैतन्य विज्ञानघन वह सर्वविशुद्ध है अर्थात् उसमें कर्म भी नहीं, शरीर नहीं, पुण्य-पाप का विकल्प भी नहीं और बन्ध-मोक्ष की पर्याय भी सर्वविशुद्ध द्रव्यस्वभाव में नहीं। यह पहले आ गया है। बन्ध है सही, बन्ध की अस्ति है राग में। रागपने रहना, वह बन्ध है और राग के अभावपने सिद्धदशा होना अबन्ध है। वह पर्याय—अवस्था है सही, परन्तु वह त्रिकाली वस्तु में नहीं। बन्ध-मोक्ष तो द्वैत हो गया। द्वैत में संसार है, अद्वैत में मोक्ष है। ... यह पद्मनन्दिपंचविंशति में आता है। पद्मनन्दि... एकत्व (सप्तति) अधिकार है न? अद्वैत अर्थात् सब होकर एक, ऐसा नहीं। त्रिकाली एकरूप स्वरूप अपना निज एकरूप स्वभाव, वह अद्वैत है, एक है। उसमें बन्ध और मोक्ष—दो / द्वैत नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का विषय। सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का विषय... बन्ध-मोक्ष की पर्याय से भी रहित अकेला सर्वविशुद्ध ध्रुव चैतन्यस्वभाव, वह सम्यग्दर्शन का विषय है, वह सर्वविशुद्धभाव है। उसमें कहते हैं कि निश्चयनय से... अन्त में आया है।

**ऐसी महिमा ग्यानकी, निहचै है घट मांहि।**
**मूरख मिथ्याद्रिष्टिसौं, सहज विलोकै नांहि॥७०॥**

सित्तेर, क्या कहते हैं तुम्हारी (हिन्दी में) ? (गुजराती) में सित्तेर कहते हैं। सत्तर, यह और तुम्हारी भाषा। समझ में आया? **ऐसी महिमा ग्यानकी,....** अपना नित्यानन्द स्वभाव, ज्ञानस्वभाव की महिमा **निहचै है घट मांहि।** देह से और राग से भिन्न ऐसा भगवान, उसकी अनन्त-अनन्त अपरिमित ज्ञान, आनन्द जिसकी महिमा है। **मूरख मिथ्याद्रिष्टिसौं,....** अनादि से अज्ञान के कारण **सहज विलोकै नांहि।** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य नित्यानन्द प्रभु है, अज्ञानी नजर करके उस निधान को देखता नहीं।

**मुमुक्षु :** दिखता नहीं है, इसलिए नहीं देखता...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दिखता नहीं क्या? 'दिखता नहीं'—ऐसा निर्णय किसने

किया? दिखता नहीं, वही देखता है। समझ में आया? मैं दिखता नहीं, (ऐसा) किसमें निर्णय हुआ यह? वही देखता है। समझ में आया? कहते हैं, **सहज विलोकै नांहि...** वह विशेष कहेंगे ७१ में। सहज स्वरूप भगवान पूर्ण शुद्ध ज्ञान-आनन्द, उसको तो अवलोके नहीं और शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप पर अज्ञानी की दृष्टि है और उसे शोधता है। निजस्वभाव को शोधता नहीं। क्या कहते हैं? ७१ में देखो। **अज्ञानी जीव परद्रव्य में ही लीन रहते हैं।**

★ ★ ★

## काव्य - ७१

### अज्ञानी जीव परद्रव्य में ही लीन रहते हैं

(दोहा)

**पर सुभावमैं मगन ह्वै, ठानै राग विरोध।**
**धरै परिग्रह धारना, करै न आतम सोध।।७१।।**

**शब्दार्थ:-पर सुभाव=आत्मस्वभाव के बिना सब अचेतन भाव। ठानै=करे। राग विरोध=राग-द्वेष। सोध=खोज।**

**अर्थ:-अज्ञानी जीव परद्रव्यों में मस्त रहते हैं, राग-द्वेष करते हैं और परिग्रह की इच्छा करते हैं, परन्तु आत्मस्वभाव की खोज नहीं करते।।७१।।**

### काव्य-७१ पर प्रवचन

**पर सुभावमैं मगन ह्वै, ठानै राग विरोध।**
**धरै परिग्रह धारना, करै न आतम सोध।।७१।।**

एक पंक्ति में तो बहुत (भर दिया)। आहाहा! **पर सुभावमैं मगन ह्वै,....** अनादि से अज्ञानी... जो पुण्य-पाप का विकल्प अर्थात् विभाव अर्थात् परभाव है, पुण्य और पाप के भाव वास्तव में अज्ञान और पुद्‌गल हैं। समझ में आया? अपना ज्ञानस्वरूप

भगवान, उससे विरुद्ध पुण्य-पाप का राग, वह तो पुद्‌गल है। एक ओर भगवान ज्ञानस्वरूप, एक ओर राग से लेकर सब अज्ञानस्वरूप हैं, (क्योंकि) यह ज्ञान उसमें नहीं। आहाहा! तो कहते हैं, **पर सुभावमैं मगन ह्वै,....** अरे! अपना निजस्वरूप शुद्ध चैतन्य अनन्त-अनन्त आनन्द और ज्ञान की शक्ति से पूर्ण भरा पड़ा प्रभु है, उसे छोड़कर अज्ञानी पुण्य-पाप के राग में मगन है। समझ में आया? शुभ-अशुभ विकल्प जो अशुद्धभाव—विभावभाव उसमें ही मगन है। नौवें ग्रैवेयक गया दिगम्बर सन्त होकर, परन्तु वह भी व्यवहार पुण्य-पाप की (क्रिया में) या तो पुण्य-पाप परिणाम के विकल्प में मगन था। आहाहा! समझ में आया? **ठानै राग विरोध....** वह तो राग-द्वेष ही करता है। परपदार्थ की अनुकूलता देखकर राग करे और प्रतिकूलता देखकर द्वेष करे। परपदार्थ तो मात्र ज्ञाता का ज्ञेय है, ज्ञाता का परज्ञेय है। ऐसा न समझकर अनुकूलता में राग और प्रतिकूलता में द्वेष या पर में प्रेम और अपने स्वभाव की ओर द्वेष... आहाहा!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द (अर्थात्) सत्—शाश्वत्, चिद्—ज्ञान और आनन्द का समुद्र, जिसमें से अनन्त केवलज्ञान और अनन्त आनन्द प्रगट हो, ऐसा निधान है। उस निधान को न जानकर, निधान को न पहिचानकर, अपने निधान की कीमत न करके, पुण्य-पाप के भाव—विभाव (कि जो) जहर का घड़ा है। पुण्यभाव, वह जहर का घड़ा है, उसमें अज्ञानी अनादि से मग्न है। क्या है? जहर है, मीठा जहर है। आहाहा! ज्येष्ठ महीने की तेज धूप हो। उसकी माँ (बच्चे को) बहुत दूध पिलाती हो। बच्चा हो एक वर्ष का, दूध बहुत देते हैं तो पतली दस्त हो जाती है। पतली दस्त। दस्त पतली हो जाये। फिर ठण्डा लगे, बालक (चाटकर) खाता है। देखा है? बहुत दूध पिलाये और प्रमाण की खबर न रहे। मेरा पुत्र पुष्ट होगा और ऐसा होगा। बहुत दूध पिलाये। उसमें पतले दस्त हो जायें। उस लड़के को पतले दस्त हो जायें और ज्येष्ठ महीने का समय हो, बाहर गर्मी हो। शीतल लगे न (तो माने कि) उसमें मजा आता है। लो। कहो, मूलचन्दभाई! ऐसी बात है। ऐई!

अज्ञानी, अपना स्वभाव आनन्दस्वरूप प्रभु का भान नहीं तो उसे पुण्य-पाप की अजीर्णता आती है, उसे ही चाटता है। समझ में आया? लीन कहा न? मजा आता है। यह तो विष्टा का दृष्टान्त दिया, यहाँ तो जहर का है। शीतलता के लिये दृष्टान्त दिया। गर्मी के

दिन हो तो ..... अपनी लार हो न लार। लार निकले फिर ऐसे करके... देखा है या नहीं? सेठ! हमने तो सब देखा है न? हम तो दुनिया का नाटक क्या है, देखते हैं या नहीं? सब नाटक देखा है। समझ में आया? वह लार गिरे न लार (तो) ऐसा करे, ले लेवे लार, चूसे। जैसे यह चूसनिया चूसे न? लकड़ी का चूसनिया। लकड़ी का नहीं आता? चूसनिया। इसी प्रकार अज्ञानी पुण्य-पाप का विकल्प जहर समान (है, उसे चूसता है)। विष्टा तो साधारण बात है। जहर का अनुभव करता है और मानता है कि हमें मजा आता है। कहो, सेठ! यह तुम्हारे पैसे में (सुख) है नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। मानते हैं न? बुन्देलखण्ड के बादशाह, लोग कहते हैं। लोग कहे, यह माने। जमीन का टुकड़ा भी इसके बाप का नहीं। इसके बाप का नहीं, इसका नहीं। बाप के पास कहाँ थे इतने पैसे। कहो, समझ में आया? आहाहा! ऐ मणिभाई! तुम्हारे बापू के पास इतने पैसे नहीं थे, जेठाभाई के पास। तीस रुपये महीने का वेतन था, (संवत्) १९८९ के वर्ष में। खबर है न?

**मुमुक्षु :** यह लकड़ी ऐसे फिराना...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह लकड़ी तो हाथ में पसीना आवे, इसलिए रखी है। आहाहा!

**पर सुभावमैं...** देखो, उसे स्वभाव कहा। पुण्य-पाप का विकल्प जो राग है, वह भी परस्वभाव है। उसमें मगन है, **तामैं राग विरोध...** आहाहा! उसमें राग और विरोध अर्थात् द्वेष करे। **धरै परिग्रह धारना...** भाषा तो देखो! जिसमें दृष्टि, रुचि है, उसकी भावना करते हैं। राग और द्वेष—यह परिग्रह पकड़ लिया है, तो उसकी भावना करते हैं, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा की खबर नहीं, तो भगवान आत्मा की भावना है नहीं। समझ में आया? शुभभाव विशेष हो, अशुभभाव हो—ऐसा परिग्रह जो है, यह परिग्रह की धारणा और उसकी भावना करते हैं। आहाहा! बात जरा (सूक्ष्म है)। सर्वविशुद्ध है न! यह शुभभाव विशेष हो, ज्यादा करूँ—यह सब राग की भावना अज्ञानी को आती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**धरै परिग्रह धारना...** परिग्रह की इच्छा करते हैं। क्योंकि चीज़ है, उसकी दृष्टि की तो खबर नहीं, तो उस ओर की भावना अर्थात् एकाग्रता तो है नहीं। तो राग में एकाग्रता और राग बढ़े, ऐसी उसकी भावना है। आहाहा! बढ़े कहते हैं न? राग की

वृद्धि हो, पुण्यभाव की वृद्धि हो, अति मन्द (राग) हो, एक-एक पुण्य विशेष हो। जो विभाव है, उसके परिग्रह की अज्ञानी को भावना है। देवीदासजी! ऐसा है भगवान! संसार। आहाहा! 'संसरणं इति संसारः' भगवान चिदानन्द आनन्दधाम, उससे संसरण (अर्थात्) हट गया है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वह उसका संसार है। समझ में आया?

**धरै परिग्रह धारना...** आहाहा! दूसरे प्रकार से बात करें तो, करे राग-द्वेष और उसने पकड़ लिया है न कि यह मेरी चीज़ है, तो उसकी भावना करता है (कि) कैसे पुण्य बढ़े, कैसे पाप बढ़े, शुभादि की वृद्धि हो। समझ में आया? यह शुभभाव व्यवहार दया, दान, व्रत की वृद्धि कैसे हो, यह भावना मिथ्यादृष्टि की है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **करै न आतम सोध...** इस ओर विकल्प की भावना, वह परिग्रह की भावना है। आत्मा क्या है, शुद्ध आनन्दकन्द है उसकी शोध करता नहीं। खजाने की ओर उसकी नजर जाती नहीं। आहाहा! अन्तर्मुख भगवान आत्मा विराजता है, उस ओर की खोज नहीं अज्ञानी को। बात तो दो और दो = चार जैसी है। बहुत शास्त्र कोई पढ़ते हों तो समझ में आये नहीं। यह तो टूंकी टच सत्य बात है। समझ में आया?

**करै न आतम सोध...** भगवान आत्मा की शोधना अर्थात् भावना अर्थात् एकाग्रता करता नहीं। आहाहा! **अज्ञानी को कुमति और ज्ञानी को सुमति उपजती है।** कुमति और सुमति का बनारसीदास विशेष स्पष्टीकरण करते हैं, कुब्जा और राधिका का दृष्टान्त देकर। कुमति कुब्जा जैसी है और सुमति राधिका जैसी है। श्रीकृष्ण को थी न? कंस की दास, वह कुब्जा। वह काली कुबड़ी थी। इसमें आयेगा अन्दर। 'कुबिजा कारी कूबरी', ७३ में है।

**कुबिजा कारी कूबरी करै जगतमैं खेद।**
**अलख अराधै राधिका, जानै निज पर भेद॥**

समझ में आया? राधिका श्रीकृष्ण की स्त्री—रानी थी। उसे छोड़कर वह कब्जा थी, उसे प्रेम किया। इसी प्रकार अनादि के भगवान आनन्दस्वरूप की प्रीतिरूपी परिणति शुद्ध की परिणति न करके राग की प्रीति करते हैं, वह कुब्जा जैसी बात है। समझ में आया? वह कहते हैं, देखो!

★ ★ ★

काव्य - ७२-७३

अज्ञानी को कुमति और ज्ञानी को सुमति उपजती है (चौपाई)

मूरखकै घट दुरमति भासी।
पंडित हियें सुमति परगासी।।
दुरमति कुबिजा करम कमावै।
सुमति राधिका राम रमावै।।७२।।

कुबिजा कारी कूबरी, करै जगतमैं खेद।
अलख अराधै राधिका, जानै निज पर भेद।।७३।।

अर्थः—मूर्ख के हृदय में कुमति उपजती है और ज्ञानियों के हृदय में सुमति का प्रकाश रहता है। दुर्बुद्धि कुब्जा[1] के समान है, नवीन कर्मों का बन्ध करती है, और सुबुद्धि राधिका है, आत्मराम में रमण कराती है।।७२।। कुबुद्धि काली कूबड़ी कुब्जा के समान है, संसार में सन्ताप उपजाती है, और सुबुद्धि राधिका के समान है, निज—आत्मा की उपासना कराती है तथा स्व—पर का भेद जानती है।।७३।।

काव्य-७२-७३ पर प्रवचन

मूरखकै घट दुरमति भासी।
पंडित हियें सुमति परगासी॥
दुरमति कुबिजा करम कमावै।
सुमति राधिका राम रमावै॥७२॥

अपनी पर्याय में इस प्रकार की बात (होती है)। यह तो उपमा दी है। **मूरखकै घट दुरमति भासी**। अज्ञानी मूर्ख की दृष्टि में जो पुण्य-पाप की रुचि है, वह सब दुर्मति

१. हिन्दू—धर्म देवी भागवत आदि ग्रन्थों का कथन है कि, कुब्जा कंस की दासी थी। उसका शरीर कुरूप, कान्तिहीन था। राजा श्रीकृष्णचन्द्र अपनी स्त्री राधिका से अलग होकर उससे फँस गये थे, राधिका के बहुत प्रयत्न करने पर वे सन्मार्ग पर आये। सो यहाँ पर दृष्टान्तमात्र ग्रहण किया है।

है। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु की रुचि नहीं, उसका प्रेम नहीं... समझ में आया? अभी कोई कहता था, भाई! हमारे फिल्म में... हमने तो फिल्म बहुत देखी नहीं। अभी तो सब फेरफार हो गया। पहले तो नाटक में भी वैराग्य बताते थे। समझ में आया? हमने नाटक बहुत देखे हैं न, जब दुकान (चलाते थे)। नरसिंह मेहता। अनुसूईया एक स्त्री थी, सती थी। नर्मदा की बहिन। बड़ा नाटक था। .... उसमें तो वैराग्य बहुत। वैराग्य, अन्दर स्वरूप के भान बिना का वैराग्य था। वह वैराग्य का इतना प्रेम दिखाते थे। समझ में आया?

मीराबाई और राणा की शादी हुई न? कौनसा गाँव? चित्तौड़ गये थे न हम चित्तौड़? सब देखा है, पूरा क्षेत्र देखा है। वहाँ मीराबाई थी। मीराबाई ने राणा के साथ विवाह किया। राणा कहे, चल मीराबाई! हम तुम्हें रानी बनायेंगे। अरे, राणा!.... नाटक में ऐसी बात आती है। समझ में आया? 'परणी मारा पियुजीनी साथ, बीजाना मींढोळ नहीं रे बांधुं।' मींढोळ समझते हैं? लकड़ी बाँधते हैं न शादी में? शादी करते हैं, तब लकड़ी (मण्डप) बाँधते हैं न यहाँ? मण्डप... मण्डप। लो, तुम्हारी भाषा। वह लकड़ी है। यह भरूच में (नाटक) देखा था। डाह्याभाई धोळशा का था भरूच में। वांकानेरवाले डाह्याभाई... सात दिन में तीन रात्रि नाटक (दिखाते थे)। एक-एक रात्रि में पन्द्रह सौ की आमदनी। उस समय, हों! (संवत्) १९६४-६५ के वर्ष में। संवत् १९६४-६५। वैराग्य था न! हम तो सब वैराग्य के नाटक देखते थे। वैराग्य की धुन चढ़ गयी थी। मीराबाई कहती है उसे, 'हे राणा! मुझे तो मेरे परमेश्वर—ईश्वर के साथ में प्रेम लगा है। दूसरा पति हम नहीं करेंगे। दूसरे के मण्डप अब नहीं बाँधेंगे।' समझ में आया? इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि जिसको आत्मा का अन्दर प्रेम लगा है, उसको राग का प्रेम कभी होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**मूरखकै घट दुरमति भासी।** राग का प्रेम... आहाहा! शुभराग हो, व्यवहाररत्नत्रय का राग हो, उस ओर की रुचि और प्रेम है, उस मूर्ख के **घटमें दुरमति भासी...** उस अज्ञानी को **घटमें दुरमति भासी...** है। आहाहा! समझ में आया**? पंडित हियें सुमति परगासी।** धर्मी जीव की दृष्टि में सुमति प्रकाश हुआ है कि जो सुमति अपने स्वभाव के साथ प्रेम करती है। समझ में आया? और राग का प्रेम जिसने नाश कर दिया है, उसे

सुमति कहा गया है। शास्त्र का पठन विशेष हो—न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? **मूरखकै घट दुरमति भासी।** भगवान आत्मा के अनन्त स्वरूप का प्रेम छोड़कर मूर्ख—अज्ञानी राग के प्रेम में लीन हो गया है, राग के प्रेम में एकाकार हो गया है। जड़ दिया है, अपनी पर्याय को राग में जड़ दिया है। समझ में आया?

**पंडित हियें सुमति परगासी...** सम्यग्दर्शन हुआ, वह पण्डित है। समझ में आया? अपना भगवान आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द का जहाँ स्वसंवेदन अनुभव हुआ, कहते हैं कि सुमति... ज्ञानी के हृदय में सुमति भासी। अपने आत्मा का प्रेम हुआ (और) सारी दुनिया का प्रेम जिसे उड़ गया है। समझ में आया? 'भरत' सम्यग्दृष्टि थे। ९६ हजार स्त्रियाँ थीं। ९६ हजार।

**मुमुक्षु :** परद्रव्य का बहुत प्रेम था?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यही कहते हैं कि एक कणमात्र भी प्रेम नहीं था। आहाहा! वह राग आता था तो काला नाग जैसा मालूम पड़ता था। आहाहा! जैसे रोग को उपद्रव देखे, ऐसे ज्ञानी को राग आता (है उसे) उपद्रव देखते हैं। आहाहा! पण्डितजी! भोग, रोग। यह रोग ही है। यह राग रोग समान। भोग दूसरी चीज़ है। राग आया न? रोग, कोढ़ रोग। ऐसे धर्मी को अपने आनन्द और ज्ञायकस्वभाव पर प्रेम आया, यह सुमति है। राग का प्रेम अन्तर में से हट गया है। आहाहा! समझ में आया?

**दुरमति कुबिजा करम कमावै...** दुर्मति... कुब्जा जैसी दुर्मति है। उसमें लिखा है, देखो! **दुर्बुद्धि कुब्जा के समान है, नवीन कर्मों का बन्ध करती है।** आहाहा! कुमति—अज्ञान। राग को ही अपना स्वरूप मानकर पुण्यभाव के प्रेम में पड़ा है व्यभिचारी आत्मा, आहाहा! विभाव के भाव में एकाकार (होना), वह व्यभिचार है। समझ में आया? व्यभिचार में तो अकेला कर्म का बन्ध होता है। दर्शनमोह आदि कर्म का बन्ध होता है। आहाहा! **सुमति राधिका राम रमावै...** राग की प्रीति छोड़कर भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप का प्रेम जिसे लगा, यह **सुमति राधिका राम रमावै...** आतमराम रमे, सो आत्मा। निजपद रमे सो राम कहिये, राग में रमे वह हराम कहिये। **सुमति राधिका...** है न? कुमति तो दर्शनमोह आदि का बन्ध कराती है, ऐसा कहते हैं, देखो! अकेले चारित्रमोह की यहाँ बात है नहीं। यह बन्ध है ही नहीं। कुमति... आहाहा! शास्त्र

पढ़ा, परन्तु जिसे राग का रस और प्रेम लगा है, (उसे) अकेला कर्मबन्धन होता है। दर्शनमोह आदि का बन्धन होता है।

**सुमति राधिका राम रमावै...** राधिका के समान सुमति है। निज आत्मा की उपासना कराती है, देखो! सम्यग्ज्ञान और सुबुद्धि इसे कहते हैं कि अपने निजपद में सेवा, उपासना कराती है, उसका नाम सुमति है। समझ में आया? क्योंकि? **जानै निज पर भेद। सुमति राधिका राम रमावै।** आहाहा! सम्यग्ज्ञान उसे कहते हैं कि आत्मा में लीनता करे, आत्मा के साथ क्रीड़ा। समझ में आया? जिसकी राग की क्रीड़ा छूट गयी है। आहाहा! और आत्मा के आनन्द के प्रति जिसकी रमणता है, उसे सुमति राधिका कहा जाता है। आहाहा! भारी सूक्ष्म भाई यह!

**कुबिजा कारी कूबरी, करै जगतमैं खेद...** कुबुद्धि काली, कुबड़ी कुब्जा के समान है, ऐसा कहते हैं। **करै जगतमैं खेद...** संसार में सन्ताप उपजावे। आहाहा! कुमति राग के प्रेमवाली बुद्धि, वह तो संसार में आताप और ताप उपजावे। आहाहा! समझ में आया? संसार की आकुलता कुमति उपजावे। और सुमति... **अलख अराधै राधिका...** अलख अर्थात् विकल्प और बाह्य (क्रिया) से लखा (-जाना) न जाये, ऐसी चीज़ भगवान आत्मा अलख अराधै। **सुबुद्धि राधिका के समान है, निज आत्मा की उपासना कराती है और स्व-पर का भेद जानती है।** (कुमति) कर्म बाँधती है। **जानै निज पर भेद...** सुमति उसे कहते हैं कि निज आनन्दस्वरूप है, ऐसा जानती है और रागादि विकल्प आदि विभाव पर है—ऐसा दो का भेदज्ञान जानती है। आहाहा! समझ में आया?

इतना जाना हो तो सुमति और इतना न जाना तो कुमति—ऐसा लिया नहीं। यहाँ तो, जिसकी राग में एकता पड़ी है, वह अज्ञानी कुब्जा समान है, उसकी कुमति है। कर्म को बाँधता है। **सुमति राधिका राम रमावै...** आतमराम... निजपद रमे सो राम कहिये। भगवान आत्मा चैतन्यशुद्ध भगवान में सुमति—सम्यग्ज्ञान अन्तर में रमणता करावे, उसका नाम सुमति है। निज आत्मा की उपासना करे, ऐसा लिखा न? यह सेवा। कुमति, पर की सेवा कर सकता हूँ, ऐसा संसार का आताप उपजाती है। कौन करे पर की सेवा? शरीरमात्र की क्रिया जहाँ आत्मा से बाहर है, करे कौन किसकी सेवा?

अज्ञानी राग की सेवा करे, ज्ञानी आत्मा की सेवा करे, बस इतनी बात है। समझ में आया? आहाहा! **जानै निज पर भेद।**

अब, दुर्मति और कुब्जा की समानता बताते हैं। दुर्मति कहो या कुब्जा कहो, उसकी उपमा दी है। बनारसीदास ने बनाया है। पहले बनारसीदास व्यभिचारी (शृंगारी कवि) थे। बहुत व्यभिचारी थे। माता-पिता को भी अपेक्षा थी कि सुधरे। अरे! फिर उन्हें भान हुआ, आतमज्ञान हुआ, तो जो व्यभिचारी पुस्तक थी, वह सब गोमती में डाल दी। झूठी थी वह। .... समझ में आया? कहते हैं कि दुर्मति और कुब्जा की समानता बताते हैं। आहाहा! पहली जो कुमति थी, उसका ख्याल है उन्हें। व्यभिचार बहुत था। शरीर में रोग हो जाये इतना व्यभिचार करते थे। समझ में आया? पश्चात् आत्मज्ञान हुआ (तो) सब डाल दिया गोमती में और अपने स्वरूप की आराधना की, लो।

★ ★ ★

## काव्य - ७४

**दुर्मति और कुब्जा की समानता** (सवैया)

**कुटिल कूरूप अंग लगी है पराये संग,**
**अपुनो प्रवांन करि आपुही बिकाई है।**
**गहै गति अंधकीसी सकति कबंधकीसी,**
**बंधकौ बढ़ाउ करै धंधहीमैं धाई है।।**
**रांडकीसी रीत लियें मांडकीसी मतवारी,**
**सांड ज्यौं सुछंद डोलै भांडकीसी जाई है।**
**घरको न जानै भेद करै पराधीन खेद,**
**यातैं दुरबुद्धि दासी कुबजा कहाई है।।७४।।**

**शब्दार्थः-कुटिल=कपटिन। पराये=दूसरे के। संग=साथ। कबंध=एक राक्षस का नाम। मांड (मण्ड)=शराब। सुछंद=स्वतन्त्र। जाई=पैदा हुई। यातैं=इससे।**

अर्थ:-कुबुद्धि माया का उदय रहते होती है, इससे कुटिला है, और कुब्जा मायाचारिणी थी, उसने पराये पति को वश में कर रक्खा था। कुबुद्धि जगत को असुहावनी लगती है, इससे कुरूपा है, कुब्जा काली कान्तिहीन ही थी, इससे कुरूपा थी। कुबुद्धि परद्रव्यों को अपनाती है, कुब्जा परपति से सम्बन्ध रखती थी, इससे दोनों व्यभिचारिणी हुईं। कुबुद्धि अपनी अशुद्धता से विषयों के आधीन होती है, इससे बिकी हुई के समान है, कुब्जा परवश में पड़ी हुई थी, इससे दूसरे के हाथ बिकी[१] हुई थी। दुर्बुद्धि को वा कुब्जा को अपनी भलाई-बुराई नहीं दिखती, इससे दोनों की दशा अन्धे के समान हुई। कुबुद्धि परपदार्थों से अहंबुद्धि करने में समर्थ है, कुब्जा भी कृष्ण को कब्जे में रखने के लिये समर्थ थी, इससे दोनों कबन्ध[२] के समान बलवान हैं। दोनों कर्मों का बन्ध बढ़ाती हैं। दोनों की प्रवृत्ति उपद्रव की ओर रहती है। कुबुद्धि अपने पति आत्मा की ओर नहीं देखती, कुब्जा भी अपने पति की ओर नहीं देखती थी, इससे दोनों की रांड सरीखी रीति है। दोनों ही शराबी के समान मतवाली हो रही हैं। दुर्बुद्धि में कोई धार्मिक नियम आदि का बन्धन नहीं, कुब्जा भी अपने पति आदि की आज्ञा में नहीं रहती थी, इसलिए दोनों सांड के समान स्वतन्त्र हैं। दोनों भाँड़ की सन्तति के समान निर्लज्ज हैं। दुर्बुद्धि अपने आत्मक्षेत्ररूप घर का मर्म नहीं जानती, कुब्जा भी दुराचार में रत रहती थी, घर का हाल नहीं देखती थी। दुर्बुद्धि कर्म के आधीन है, कुब्जा परपति के आधीन, इससे दोनों पराधीनता के क्लेश में हैं। इस प्रकार दुर्बुद्धि को कुब्जा दासी[३] की उपमा दी है।।७४।।

---

१. व्यभिचारिणी स्त्रियाँ अपने मुख से अपने शरीर को मोल करती हैं - अर्थात् अपना अमूल्य शील बेच देती हैं, यह बात ध्यान में रखके कवि ने कहा है कि 'आपनो प्रवांनकरि आपुही बिकाई है।'

२. यह भी हिन्दू-धर्म-शास्त्रों का दृष्टान्त मात्र लिया है, कि कबन्ध पूर्वजन्म में गन्धर्व था। अपने दुर्वासा ऋषि को गाना सुनाया, पर वे कुछ प्रसन्न नहीं हुए, तब उसने मुनि की हँसी उड़ाई, तो दुर्वासा ने क्रोधित होकर शाप दिया कि तू राक्षस हो जा। बस फिर क्या था, वह राक्षस हो गया, उसकी एक-एक योजन की भुजाएँ थी, और वह बहुत ही बलवान था, सो अपनी भुजाओं से वह एक योजन दूर तक के जीवों को खा जाता था, और बहुत उपद्रव करता था, इससे इन्द्र ने उसे वज्र मारा, जिससे उसका माथा उसी के पेट में धँस गया, पर वह शाप के कारण मरा नहीं, तब से उसका नाम कबन्ध पड़ा। एक दिन वन में विचरते हुए राजा राम लक्ष्मण दोनों भाई इसके सपाटे में आ गये, और इन्हें भी उसने खाना चाहा, तब रामचन्द्र ने उसके हाथ काट डाले और उसे स्वर्गधाम पहुँचा दिया।

३. दास्ता - विवाह-विधि के बिना ही धर्मविरुद्ध रक्खी हुई औरत।

## काव्य-७४ पर प्रवचन

**कुटिल कूरूप अंग लगी है पराये संग,**
**अपुनो प्रवांन करि आपुही बिकाई है।**
**गहै गति अंधकीसी सकति कबंधकीसी,**
**बंधकौ बढ़ाउ करै धंधहीमैं धाई है॥**
**रांडकीसी रीत लियें मांडकीसी मतवारी,**
**सांड ज्यौं सुछंद डोलै भांडकीसी जाई है।**
**घरको न जानै भेद करै पराधीन खेद,**
**यातैं दुरबुद्धि दासी कुबजा कहाई है॥७४॥**

लो यह आया। कवि हैं न, राजकवि थे। बड़े कवि थे न? कहते हैं, **हिन्दू धर्म के देवी भागवत आदि ग्रन्थों का कथन है...** नीचे लिखा है। **कि कुब्जा कंस की दासी थी। उसका शरीर कुरूप कांतिहीन था। राजा कृष्णचन्द्र अपनी स्त्री राधिका से अलग होकर उससे फँस गये थे, राधिका के बहुत प्रयत्न करने पर सन्मार्ग पर आये। सो यहाँ पर दृष्टान्तमात्र ग्रहण किया है।** उसका दृष्टान्त मात्र है। **कुटिल कुरूप....** कपटी। दुर्मति है वह कपटी है, मायावी है और कुरूप है। उसका रूप कुरूप है। **कुबुद्धि माया का उदय रहते होती है, इससे कुटिला है।** मायाजाल कपट, क्रोध, मान, माया, लोभ, विकार-वासना में लिपट गया है। समझ में आया? कुब्जा मायाचारिणी थी। दिखाव कुछ अन्दर हो, बाहर बोले कुछ। ऐसी दुर्मति कुब्जा समान है। यह दुर्मति माने कुछ, कहे कुछ, दुनिया को कुछ बताये, ऐसी कुबुद्धि है उसकी।

**पराये संग... कुटिल कुरूप अंग लगी है पराये संग...** एक-एक लाईन में भी कवित्व है। **अपुनौ प्रवांन करि आपही बिकाई है। व्यभिचारिणी स्त्री अपने मुख से अपने शरीर का मोल करती है।** नीचे नोट है। **अर्थात् अपना अमूल्य शील बेच देती है।** अमूल्य शील ब्रह्मचर्य... कुमति कुब्जा जैसी, अपने शील की कीमत करके, कीमत (खुद करके) अपना व्यभिचार सेवन करती है। समझ में आया? **अपना अमूल्य शील बेच देती है। यह बात ध्यान में रखके कवि ने कहा कि अपुनौ प्रवांन करि आपुही**

**बिकाई है।** अपना शील का प्रमाण छोड़ दिया और कीमत (पैसे) में ब्रह्मचर्य को बेच दिया। आहाहा! समझ में आया? यह दुर्मति की उपमा है।

**अपुनौ प्रवांन करि आपुही बिकाई है।** अपना ब्रह्मचर्य का प्रमाण छोड़ दिया और अपना ब्रह्मचर्य कीमत (लेकर) बेच दिया। छोड़ दिया (ब्रह्मचर्य)। आहाहा! ऐसी कुमति अपने आनन्द के ब्रह्मचर्य की एकता छोड़कर राग जो व्यभिचार है, उसमें कुमति लगी है। अपनी कीमत छोड़ दी और राग में अपनी कीमत मान ली। आहाहा! राग कहो या पुण्य कहो, मूल तो यहाँ पुण्य की बात है। पुण्य, वह जड़ है, विष है। राग का स्पष्टीकरण करे, तब राग समझ में आवे न! राग क्या? दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा के भाव, वह राग। राग में प्रेम, वह व्यभिचार है।

**मुमुक्षु :** नहीं करे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** होता है, (फिर) क्या प्रश्न है? हो, उसमें एकाग्रता नहीं, उसका आदर नहीं।

व्यभिचार कहा था न? निर्जरा अधिकार में आया था। निर्जरा अधिकार, गाथा २०३। राग व्यभिचार है, पुण्य व्यभिचार है। बताया था २०३ गाथा में। २०३। यहाँ तो जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह (भाव) व्यभिचार है। आहाहा! २०३ है, देखो! 'वास्तव में भगवान आत्मा में...' ऐसा पाठ है संस्कृत। '**इह खलु भगवत्यात्मनि बहूनां द्रव्यभावानां मध्ये**' संस्कृत। 'वास्तव में इस भगवान आत्मा में बहु द्रव्य-भवित प्रत्ये—शरीरादि द्रव्य और विकल्पादि भाव, जो अतत् स्वभाव से अनुभव में आते हैं...' पुण्य-पाप का विकल्प अतत् स्वभाव है, अनियत अवस्था है। २०३ (गाथा), निर्जरा अधिकार। उसकी टीका। अनियत स्वभाववाला है, अनेक हैं, पुण्य-पाप क्षणिक हैं और व्यभिचारी हैं। 'अतत् स्वभाव से अनुभव में आते हुए अनियत अवस्थावाले, अनेक, क्षणिक और व्यभिचारी (भाव हैं)।' आहाहा! पुण्य का भाव भी व्यभिचार है। अपने स्वभाव के साथ पुण्य को लगाना, यह बड़ा व्यभिचार मिथ्यात्व का है। गजब बात है न! लोगों ने बात सुनी नहीं।

भाई! तू भगवान है प्रभु! तुझमें विकल्प नहीं शोभते। इस विकल्प से तेरी शोभा

नहीं। विकल्प से शोभा मानता है, वह व्यभिचारी जीव है। आहाहा! पोपटभाई! बहुत कठिन काम! पैसा हो और लड़के भी छह व्यक्ति—सात व्यक्ति, आठ व्यक्ति सब बैठे हों और बातें चलती हों और उसमें दो-पाँच लाख की आमदनी होती हो। मिठास... मिठास! जहर की मिठास है। ऐ भीखाभाई! चूड़ी के व्यापार में यहाँ दुकान में बैठे। हीराभाई कहे, भाई! कुछ आवश्यकता नहीं। परन्तु ... यों ही घर में... दो घण्टे तो देखने आऊँ। समय नहीं बितता। मजा आवे दो घड़ी थोड़ा। यह तीस रुपये का वेतन था और उसके पास कितने हजारों की आमदनी बारह महीने में। कितने हजारों... धूल भी नहीं, सुन न!

यहाँ तो कहते हैं, यह परिणाम को व्यभिचार कहते हैं भगवान। दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा का परिणाम को अपना मानना, वह व्यभिचार सेवन करता है, ऐसा कहते हैं। ....अब तो कहाँ गुप्त रहा, अब तो बहुत चला है। अब तो प्रगट हो गया। मणिभाई कहे, गाँव-गाँव में हो गया अब तो। बात भी करते हैं और लोग निन्दा भी करते हैं। देखो! पुण्य को विष्टा कहते हैं। अरे! विष्टा क्या? जहर कहते हैं? .... विष्टा तो सूकर भी खाये। मर जायेगा, पुण्य मेरा मानेगा तो मर जायेगा तेर जीवन। सम्यग्दर्शन का जीवन का नाश कर दिया। समझ में आया? यहाँ तो रण में चढ़ा रजपूत छुपे नहीं... वस्तु ऐसी है। के... के... बनिया जैसा करे, वह बात है इसमें?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम प्रभु! आहाहा! उसका प्रेम अर्थात् एकाग्रता छोड़कर राग की एकाग्रता प्रेम से करते हैं और मजा मानते हैं, मिथ्यात्व का व्यभिचार सेवन करते हैं। अपने निज स्वभाव के साथ विभाव दूसरी चीज़ है। दो का एकत्व मानना, मैथुन है, मिथ्यात्व है। समझ में आया? ऐ हिम्मतभाई! ऐसी बात है, भैया! गुप्त-गुप्त कुछ पर्दा रखा नहीं। मार्ग ऐसा है तीन काल-तीन लोक में। आहाहा! .... यह जानेवाले हैं न। परन्तु यहाँ तो यह बात है। यह बात अपने कही थी न? योगसारप्राभृत है। पाँचवें अध्याय की १९वीं गाथा है। पाँचवें अध्याय की १९वीं गाथा है। आत्मा भी अपनी निर्मल पर्याय का दाता नहीं है। दिगम्बर सन्तों की बातें सुनना कठिन है। नागा बादशाह से आघा। नागा है न? मुनि नग्न बादशाह से आघा। बादशाह की परवाह नहीं। मार्ग यह है। पाँचवाँ अध्याय है। १९ गाथा है, लो।

**ज्ञानदृष्टि-चरित्राणी ह्रियन्ते नाक्षगौचरैः।**
**क्रियन्ते न च गुर्वाद्येः सेव्यमानैरनारतम्॥१८॥**

**उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति जीवस्य परिणामिनः।**
**ततः स्वयं स दाता न परतो न कदाचन॥१९॥**

आहाहा! अमितगति आचार्य का योगसार प्राभृत ग्रन्थ है। सब व्याख्यान हो गये हैं। एक-एक लाईन पढ़कर। देखो, 'ज्ञान-दर्शन-चारित्र का न तो इन्द्रियों के विषयों से हरण होता है, न तो गुरुओं की निरन्तर सेवा से उनकी उत्पत्ति होती है।' मूलचन्दभाई! साधु कहते हैं, हमारी सेवा से तुम्हें ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! 'और इस जीव के परिणमनशील होने से प्रतिसमय उसके गुणों की पर्याय पलटती है। मतिज्ञान आदि का उत्पत्ति-विनाश होता रहता है। इसलिए मतिज्ञान आदि का उत्पाद-विनाश न तो स्वयं जीव ही कर सकता है।' आहाहा! परिणमन पर्याय है, उसमें जीवद्रव्य ध्रुव क्या करे? आहाहा! पाँचवाँ अध्याय, १९ गाथा।

सुबह कहा था। पत्रिका में आ गया है, आत्मधर्म में आ गया है। बहुत वर्ष पहले से यह बात (कहते) हैं। समझ में आया? क्या विषय है, देखो! '**स्वयं स दाता न परतो न कदाचन**' आत्मा निर्मल पर्याय का दाता नहीं है। और 'न कदाचित् परतः' पर से उत्पन्न होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो पूरे स्वतन्त्र सत् का ढिंढ़ोरा है। १९ और २०, हों! गाथा १९ में है। मानते हैं कि इन्द्रियों के विषयों से पर जाने (और) उसमें ज्ञान हुआ.... यह भ्रम है। क्योंकि आत्मा परिणमनशील है। इसलिए उसके गुणों का स्वयं परिणमन हुआ करता है। स्वयं परिणमन पर्याय हुआ करती है। कभी ज्ञान मतिज्ञानरूप परिणमित हो जाता है, कभी श्रुतज्ञानरूप। ऐसा नहीं कि गुण तो थे नहीं और उत्पन्न हो जाये। अपनी गुण की परिणति पर्याय जो है, वह परिणति परिणति से उत्पन्न होती है। धर्म की परिणति पर से नहीं, आत्मा से नहीं। समझ में आया? स्वयं का दाता। गजब बात है!

एक समय का उत्पाद है। उत्पाद को ध्रुव का और व्यय का भी आश्रय नहीं। वह आता है प्रवचनसार में, १०१ गाथा। १०१। उत्पाद को ध्रुव का अवलम्बन नहीं। अपने से अपना अवलम्बन उत्पाद को अपने से है। आहाहा! सेठी! क्या वास्तविक तत्त्व है,

उसकी खबर नहीं और धर्म हो जाये। कहाँ से धर्म होता है, बाहर से धर्म होता है कोई?

**मुमुक्षु :** हमें तो धर्म करना है, सत्य जानने की क्या आवश्यकता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करनेवाला कैसा है और करते हैं, वह क्या होता है? इसकी खबर बिना कैसे धर्म होगा? करनेवाला कौन है, पर्याय में कैसे होता है, उसकी खबर नहीं और धर्म होता है उससे? लिखा है भाई! .... गये थे सोनगढ़व्यारा। कल्याण करनेवाला आत्मा और कल्याण करनेवाला कौन है, उसको जाने बिना कल्याण होता है? झूठ है। मंगलभाई है? नहीं सोनगढ़व्यारा? .... ऐ जयन्तीभाई के यहाँ। कल्याण करनेवाला आत्मा, उसे जाने नहीं (और) कल्याण होगा, तीन काल में नहीं होता।

यहाँ कहते हैं, देखो! **अपुनो प्रवांन करि आपुही बिकाई है...** आहाहा! शील छोड़नेवाले अपनी कीमत कराते हैं कि हमारी कीमत तो इतनी है। व्यभिचार। आहाहा! भगवान अमूल्य चैतन्यरत्न। अमूल्य हीरा, उसकी तो कीमत नहीं और व्यभिचार की कीमत करके अपनी कीमत कर देते हैं। आहाहा! पागल है। राग की कणिका... शुभराग के तीन भेद हैं। क्रियारूप राग—दया-दान-व्रत-पूजारूपी राग, एक भक्तिरूप राग और एक गुण-गुणी के भेदरूप राग। शुभ उपयोग के तीन भेद हैं। समझ में आया? भगवान की भक्तिरूप भाव, वह राग या क्रिया दया, दान, व्रत, पूजा आदि, वह राग, या गुण-गुणी का भेद... यह गुणी है और उसमें गुण हैं—ऐसा गुण का आधार गुणी है। ऐसा भेद भी शुभ उपयोग राग है। यह राग अपना है और अपने को लाभ करेगा... कहते हैं कि पहले शुभराग होता है न? आता है न? पहले सम्यग्दर्शन पाते हैं तो उसके पूर्व क्या अशुभराग था? शुभराग था। शुभराग था, परन्तु शुभराग से क्या हुआ है? समझ में आया?

यह कहते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक में भी लिया है। शुद्ध उपयोग होने से पहले शुभ तो होता है। होता है तो क्या है, उससे होता है शुद्ध उपयोग? उससे हो तो अशुभ से शुभ होता है, यह कहो। शुभभाव हुए पहले अशुभ था। शुभभाव होने से पहले अशुभ था, तो अशुभ कारण और शुभ उसका कार्य। अशुभ से पुण्य हुआ? जैसे शुभ को छोड़कर शुद्ध हुआ, तो अशुभ को छोड़कर शुभ हुआ। तो अशुभ के कारण से शुभ

हुआ है ? यह तो छोड़ने से हुआ। समझ में आया ? यह बात ली है मोक्षमार्गप्रकाशक में (ली है)। शुभभाव था न अन्त में ? हो तो क्या है ? न्याययुक्त कहते हैं। आहाहा!

अरे! कुमति को तो राग का रस पड़ा है, यह कहते हैं। समझे ? **गहै गति अंधकीसी,...** देखो! अन्धे की तरह कुमति काम करती है, कहते हैं। है न ? **कुबुद्धि अपनी अशुद्धता से विषयों के आधीन होती है, इससे बिकी हुई के समान है, कुब्जा परवश में पड़ी हुई थी, इससे दूसरे के हाथ बिकी हुई ही थी। दुर्बुद्धि को वा कुब्जा को अपनी भलाई-बुराई नहीं दिखती। गहै गति अंधकीसी...** यह कहते हैं। भान नहीं होता (कि) सत्य क्या, असत्य क्या ? राग में अन्ध हो गया है। आहाहा!

**गहै गति अंधकीसी सकति कबंधकीसी।** कबन्ध आता है न ? राक्षस की बात आती है न हिन्दू धर्मशास्त्र में ? राक्षस। सिर काट डाला था। अकेला देह रहा था। समझ में आया ? मस्तकरहित देह। ऐसे कुमति में, स्वामी अनन्त आनन्दमय पति की तो खबर नहीं। मैं पूर्णानन्द नाथ, यह मेरा ज्ञायक है, उसकी खबर नहीं और राग की क्रिया में अपना धर्म मानती है। आहाहा! कुबुद्धि है। समझ में आया ? आया न उसमें ? भलाई-बुराई नहीं दिखती, वह आया। **गहै गति अंधकीसी....** ऐसा आया न ? अन्धे की भाँति भलाई-बुराई की बात कुमति को खबर नहीं। **सकति कबंधकीसी... दोनों की दशा अन्धे के समान हुई।** यह कुब्जा और यह कुमति। **कुबुद्धि परपदार्थों से अहंबुद्धि करने में समर्थ है, कुब्जा भी कृष्ण को कब्जे में रखने के लिए समर्थ थी।** शक्ति तो कबन्ध जैसी है। सिररहित देह। यह कबन्ध राक्षस की बात आती है। इसी प्रकार अपना आत्मा आनन्दकन्द नाथ... अकेली परिणति में कुबुद्धि अपना धर्म विकार में मानती है।

**बंधकौ बढ़ाउ करै धंधहीमैं धाई है....** कुमति तो बन्ध का ही बढ़ाव करती है। राग और पुण्य की परिणति हमारी है, उससे हमें लाभ होगा, वह बन्ध का बढ़ाव करती है। मिथ्यात्व आदि का—बन्ध का बढ़ाव करती है। **धंधहीमैं धाई है....** लो। **दोनों कर्मों का बन्ध बढ़ाती हैं। दोनों की प्रवृत्ति उपद्रव की ओर रहती हैं।** लो। धंध-उपद्रव। राग-द्वेष उपद्रव है। कुमति की वृत्ति वहाँ रुक गयी है। दोनों की रांड की सी रीति है। सिर पर पति नहीं। **रांडकीसी रीत लिये।** रांड के सिर पर पति नहीं होता। इसी प्रकार

यह रांड रांड कुमति है। सिर पर कोई पति नहीं कि आत्मा क्या चीज़ है। समझ में आया? **कुबुद्धि अपने पति आत्मा की ओर नहीं देखती, कुब्जा भी अपने पति की ओर नहीं देखती थी। इससे दोनों की रांड सरीखी रीति है।** बनारसीदास। **दोनों ही शराबी के समान मतवाली हो रही हैं।** वह लिया, **मांडकीसी मतवारी।** मांड आया न, शराब। मदिरा-मदिरा। मदिरा पीवे। जैसे नशा करे और पागल हो जाता है। उसी प्रकार कुमति राग में अपने को मानकर लाभ माननेवाली पागल हो गया है। मदिरा पी है मिथ्यात्व की।

**मांडकीसी मतवाली ये सांढ ज्यौं सुछंद डोलै।** सांढ़-सांढ़। यह बैल होता है न सांढ़ स्वच्छन्द डोले। रतलाम में एक सांढ़ था। व्याख्यान चलता था न, (तब) सांढ़ आता। रतलाम में गये थे न दो दिन। बहुत आदमी थे। मुख्य आदमी का प्रेम बहुत था। बहुत आदमी। पूनमचन्द था। समझ में आया? बराबर व्याख्यान चले और सांढ़ आवे अन्दर और बाजार में गद्दी के ऊपर बैठे। दुकान में चढ़कर बैठ जाये। फिर उठे। हमने देखा। व्याख्यान चले, तब अन्दर आवे। ऐसे लोगों में खलबलाहट हो जाये। परन्तु किसी को मारे नहीं। खलबलाहट हो जाये। बड़ा सांढ़ था। ऐसा कहते हैं, **सांढ ज्यौं कुछंद डोलै।** कुमति सांढ़ की भाँति सुछन्द डोलती है।

**भांडकीसी जाई है।** भांड की पुत्री है। यह भांड होता है न? बहुरूपिया। बहुरूपिया नहीं होता? बहुरूपिया। वेश गोरा (अंग्रेज)का करे, मध्यम का करे, रंक का करे। भांड-भांड की पुत्री है, कहते हैं, कुमति। अलग-अलग वेश धारण करे। घड़ीक में राग और घड़ीक में द्वेष और घड़ीक में विषयवासना का प्रेम। समझ में आया? कुमति भांड जैसी है, कहते हैं। भांड की पुत्री जैसी है। **घरको न जानै भेद।** कुमति निज घर के भेद को जाने नहीं। क्या चीज़ है मेरे घर में, (उसकी) कुमति को खबर नहीं। **घरको न जानै भेद करै पराधीन खेद।** कुमति राग और पुण्य के पराधीन होकर खेद करती है। **यातैं दुरबुद्धि दासी कुबजा कहाई है....** लो! इसलिए दुर्बुद्धि को कुब्जा की उपमा देते हैं। यह दुर्बुद्धि समझकर छोड़ना, इसलिए कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १३६, श्रावण कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक १६-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद ७५ से ८१**

७५वाँ पद है। **सुबुद्धि से राधिका की तुलना।** कुबुद्धि से कुब्जा की तुलना, ऐसा कहा न ? सम्यग्ज्ञान सुबुद्धि। यहाँ ज्ञान की प्रधानता से कथन है। सुबुद्धि से राधिका की तुलना। ७५। बस, बस, अब भाई ऐसे ध्यान रखो। बहुत बोल-बोल नहीं किया जाता। ७५ (काव्य)।

★ ★ ★

**काव्य - ७५**

**सुबुद्धि से राधिका की तुलना**
(सवैया इकतीसा)

**रूपकी रसीली भ्रम कुलफकी कीली सील,**
**सुधाके समुद्र झीली सीली सुखदाई है।**
**प्राची ग्यानभानकी, अजाची है निदानकी,**
**सुराची निरवाची ठौर साची ठकुराई है।।**
**धामकी खबरदारि रामकी रमनहारि,**
**राधा रस-पंथनिकै ग्रंथनिमैं गाई है।**
**संतनकी मानी निरबानी नूरकी निसानी,**
**यातैं सदबुद्धि रानी राधिका कहाई है।।७५।।**

**शब्दार्थः-कुलफ=ताला। कीली=चाबी। झीली=स्नान की हुई। सीली=भीगी हुई। प्राची=पूर्व दिशा। अजाची=नहीं मांगनेवाली। निदान=आगामी विषयों की अभिलाषा। निरवाची (निरवाच्य)=वचन अगोचर। ठकुराई=स्वामीपन। धाम=घर। रमनहारि=मौज करनेवाली। रस-पंथनिके ग्रंथनिमैं=रस-मार्ग के शास्त्रों में। निरबानी= गम्भीर। नूरकी निसानी=सौन्दर्य का चिह्न।**

**अर्थः-सुबुद्धि आत्मस्वरूप में सरस है, राधिका भी रूपवती है। सुबुद्धि अज्ञान का ताला खोलने की चाबी है, राधिका भी अपने पति को शुभ-सम्मति देती है। सुबुद्धि और राधिका दोनों शीलरूपी सुधा के समुद्र में स्नान की हुई हैं, दोनों शान्तस्वभावी सुखदायक हैं। ज्ञानरूपी सूर्य का उदय करने में दोनों पूर्व दिशा के समान हैं। सुबुद्धि आगामी विषय-भोगों की वांछा से रहित है, राधिका भी आगामी भोगों की याचना नहीं करती। सुबुद्धि आत्मस्वरूप में भले प्रकार राचती है, राधिका भी पतिप्रेम में पगती है। सुबुद्धि और राधिका रानी दोनों के स्थान की महिमा वचन-अगोचर अर्थात् महान है। सुबुद्धि का आत्मा पर सच्चा स्वामित्व है, राधिका की भी घर पर मालिकी है। सुबुद्धि अपने घर अर्थात् आत्मा की सावधानी रखती है, राधिका भी घर की निगरानी रखती है। सुबुद्धि अपने आत्मराम में रमण करती है, राधिका अपने पति कृष्ण के साथ रमण करती है। सुबुद्धि की महिमा अध्यात्मरस के ग्रन्थों में बखानी गई है, और राधिका की महिमा शृंगाररस आदि के ग्रन्थों में कही गई है। सुबुद्धि साधुजनों द्वारा आदरणीय है, राधिका ज्ञानियों द्वारा माननीय है। सुबुद्धि और राधिका दोनों क्षोभरहित अर्थात् गम्भीर हैं। सुबुद्धि शोभा से सम्पन्न है, राधिका भी कान्तिवान् है। इस प्रकार सुबुद्धि को राधिका रानी की उपमा दी गई है।।७५।।**

## काव्य-७५ पर प्रवचन

**रूपकी रसीली भ्रम कुलफकी कीली सील,**
**सुधाके समुद्र झीली सीली सुखदाई है।**
**प्राची ग्यानभानकी, अजाची है निदानकी,**
**सुराची निरवाची ठौर साची ठकुराई है॥**
**धामकी खबरदारि रामकी रमनहारि,**
**राधा रस-पंथनिकै ग्रंथनिमैं गाई है।**
**संतनकी मानी निरबानी नूरकी निसानी,**
**यातैं सदबुद्धि रानी राधिका कहाई है॥७५॥**

सुबुद्धि की उपमा राधिका को दी। **रूपकी रसीली...** अपने आत्मस्वरूप में

सुबुद्धि रस रखनेवाली है। देखो! सम्यग्ज्ञान उसे कहते हैं कि अपने स्वरूप को उसे रस हो। राग का रस सुबुद्धि को होता नहीं। उसे सच्ची सुबुद्धि कहते हैं। सम्यग्ज्ञान— सुबुद्धि, जिसे राधिका की उपमा दी है। वह सुबुद्धि रसीली **भ्रम कुलफकी...** ताला खोलने की चाबी है। है न? कुलफ अर्थात् ताला। ताला... ताला यह। उसकी **कीली** अर्थात् चाबी है। आहाहा! सम्यग्ज्ञान, वह राग की एकता को तोड़ता है। वह निधान को खोलने की चाबी है। आहाहा! समझ में आया? राग, विकल्प और स्वभाव भिन्न है। यह व्यवहारमोक्षमार्ग का बहुत विवाद आया है बड़ा। विवाद। जैन संस्कृति पत्रिका प्रकाशित हुई है न अभी।

**मुमुक्षु :** आया है मेरे ऊपर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह सब आया है यहाँ का। तुम्हारे विरुद्ध का उसमें लिखा है। जैन संस्कृति पत्रिका है, भाई!

**मुमुक्षु :** भाई के ऊपर आया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। उसमें लेख ही यहाँ का है। निमित्त और उपादान और नियत, क्रमबद्ध और....

**मुमुक्षु :** उसमें उन्हें मजा आता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, यह तो कहा था न.... उनके लिये बनाया था। ऐसा कि स्पष्टीकरण देने के लिये।

मोक्षमार्ग दो है, ऐसा। दोनों सच्चे मार्ग हैं, ऐसा कहते हैं। कहो।

**मुमुक्षु :** वे तो बड़े पण्डित हैं न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अब वे स्वयं टोडरमलजी लिखते हैं कि मोक्षमार्ग दो नहीं, उसका कथन दो प्रकार से है। निमित्त का सहचरपना देखकर उसे व्यवहार से मोक्षमार्ग ऐसा आरोप (किया है)। है बन्धमार्ग।

**मुमुक्षु :** अब भगवान बन्धमार्ग को कहीं मोक्षमार्ग कहे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहे न, उपचार-व्यवहार से कहे। न कहे क्या? सेठ! यह बड़े पैमाने पर विवादित आयी है यह पत्रिका बड़ी। जैन संस्कृति।

**मुमुक्षु :** अजैन संस्कृति।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। अरे भगवान! दो मोक्षमार्ग न माने तो वह अज्ञानी है। यहाँ तो कहे, दो मोक्षमार्ग माने तो मिथ्यादृष्टि है। ऐसा लिखते हैं भाई टोडरमलजी। दो मार्ग हैं ही नहीं। परन्तु निमित्त को सहचर-उपचार देखकर उसे व्यवहार से कहा जाता है।

**मुमुक्षु :** व्यवहार....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! है ही नहीं। और दोनों उपादेय है, ऐसा मानो। दोनों सच्चे मार्ग हैं। कहो, अब इसमें लिखा छहढाला में। निश्चय... सत्यार्थ, वह निश्चय। आता है या नहीं? सत्यार्थ, वह निश्चय। सच्चा, वह निश्चय।

तो यह कारण, इसलिए कहे कि पहला (व्यवहार) कारण और पश्चात् आवे निश्चय। यह तो आरोप से कथन है। कारण-फारण कैसा? एकड़ा उल्टा उठाया। दूसरा पहला व्यवहार और फिर निश्चय। यह झूठा है। निश्चय-व्यवहार एकसाथ (होते हैं)। कहो, अब यहाँ तो कहे, भाई! जब निश्चय अन्तर भान हो, तब राग हो, उसे साथ का गिनकर व्यवहार कहा जाता है। श्वेताम्बर को और (दिगम्बर) शैली को तो बड़ा अन्तर है। ४१३ गाथा में है समयसार में। व्यवहार कैसा अन्धे को? निश्चय बिना व्यवहार तो अनादिरूढ़ भाव है। वह तो अनादि का है। अनादिरूढ़, व्यवहारमूढ़ और निश्चय अनारूढ़। तीन शब्द हैं। राग की एकताबुद्धि (कि) यह मुझे सहायता करेगा, मूढ़ है।

**मुमुक्षु :** लेख ऐसा है कि उसके कुछ वाँचनेवाले समझ सके नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। लम्बा-लम्बा करके... उसे लम्बे की आदत है न उसको। .... वाले को। यह तो बहुत लम्बे की आदत। बहुत पृष्ठ फिरावे बहुत।

एक निमित्त का है। कहीं सब शब्द हैं तुम्हारे विज्ञान के यह सब। फलाना में ऐसा होता है और फलाना में ऐसा होता है।

**मुमुक्षु :** ज्ञान-ज्ञेय में से लिये हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। लिया है कहीं से। नहीं, इन्होंने तो लिया है। ... यह तो वह निमित्तवालों ने। आहाहा! वर्धमान सरकार और कुछ है न। है न नाम सब ऐसे। फलाना यह और वह सब नाम दिये हैं। वह दूर रहकर भी वहाँ प्रेरे और कार्य करे।

**मुमुक्षु :** यह वह डॉक्टर....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा सब अन्दर... उसे तो यहाँ निमित्त का विवाद उठा था न न! उसका है वह। ठीक, परन्तु अब इतनी बात तो चर्चित करते हैं। बात तो चर्चित होगी (कि) यह क्या कहते हैं। उसमें विवाद क्या है ?

**रूपकी रसीली....** सुबुद्धि तो स्व स्वरूप की रुचि करे, वह सुबुद्धि। राग की रुचि करे, वह तो कुबुद्धि है। आहाहा! राग की रुचि तो अनादि काल की है। उसमें नवीन क्या? समझ में आया? समझ में आता है? **रसीली भ्रम कुलफकी कीली...** भ्रमणारूपी जो ताला, उसे खोलने की चाबी है। आहाहा! भगवान निधान अनन्त आनन्द का रस प्रभु और राग की एकता—उसे खोलने की चाबी सम्यग्ज्ञान है। राग, वह नहीं, मैं तो चैतन्य शुद्ध आनन्द हूँ। ऐसी सम्यग्ज्ञान की कला राग को तोड़कर भिन्न बतलाती है। आहाहा! अज्ञानी के निधान भ्रमणा में बन्द हैं—ताला (लगा है) उसे। राग और निमित्त की रुचिवाले को शुद्ध उपादान की रुचि नहीं, इसलिए वह ताला बन्द है, उसके निधान का ताला। खजाने में पूर्णता होने पर भी बन्द है। इसका खुल गया है, कहते हैं। **सुबुद्धि अज्ञान का ताला खोलने की चाबी है।** देखो! सम्यग्ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जो राग का भी स्वामी न हो, निमित्त का स्वामी न हो। निमित्त और राग से शुद्धता होती है, ऐसा माने नहीं। आहाहा! भारी कठिन! खलबलाहट... खलबलाहट हो जाये।

**सील सुधाके समुद्र,...** लो, कहते हैं, **सुबुद्धि और राधिका दोनों शीलरूपी सुधा के समुद्र में स्नान की हुई है।** सम्यग्ज्ञान सुबुद्धि में शीलरूपी सुधा—अमृत में स्नान किया है, राग को धो डाला है जिसने। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्ज्ञानरूपी बुद्धि ने स्नान किया अर्थात् कि अज्ञान और राग-द्वेष का नाश किया है। आहा! **दोनों शान्तस्वभावी सुखदायक हैं। सीली सुखदाई... सीली** अर्थात् शान्तस्वभावी। है अन्दर। **सीली=भीगी हुई, भीगी** अर्थात् शान्त। सम्यग्ज्ञान अपना निज शान्त रस स्वभाव, उसमें वह भींगी हुई है, भींगी हुई है। अज्ञान कुबुद्धि, वह राग से लिपटी हुई है। आहाहा! यह तो कठिन मार्ग! लोगों को नया लगा न, इसलिए भड़काभड़क भागे सब।

यह वाँचने जैसा है जरा अन्दर। तुम्हारी भाषा प्रयोग की है लोक की निमित्तवाले की। निमित्त में कुछ किया... ऐसी कुछ भाषा है। निमित्तकारण की वैज्ञानिक व्याख्या,

ऐसा करके... भाईसाहब कुछ समझे ऐसा नहीं किसी में कुछ। पोटेशियम क्लोरेट को गरम करने से ऑक्सीजन बनती है... और ऐसी भाषा है। इसलिए कौन (समझे) ? ऐसे सब बहुत शब्द हैं। लो! आहाहा! ऐसा कि एक चीज़ दूसरी को प्रेरणा करती है, उत्तेजित होती है।

**मुमुक्षु :** ऑक्टसीजन और हाइड्रोजन इकट्ठा करे तो पानी हो जाये न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पानी हो जाये। और पानी तो उसकी पर्याय के कारण से होता है। उसमें उसका क्या होता है ? आहाहा! इसमें बहुत ऐसे शब्द प्रयोग किये हैं सब वैज्ञानिक।

**मुमुक्षु :** वैज्ञानिक है न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! अब वैज्ञानिक अज्ञानी है।

यहाँ तो **सुबुद्धि सीली सुखदाई....** आहाहा! अपना निज शान्तस्वभाव, उसमें सुखदान—सुख देने की शक्ति है। ऐसी सम्यक् रूपी सुबुद्धि शान्त और सुख की दाता है। आहाहा! कुब्जा—अज्ञान दु:ख की दाता और अशान्त है। आहाहा! **सुधाके समुद्र झीली,...** लो। स्नान की हुई, **झीली** शब्द से।

**प्राची ग्यानभानकी।** सुबुद्धि तो.... **ज्ञानरूपी सूर्य का उदय करने में दोनों पूर्व दिशा के समान हैं,....** लो। **प्राचीन ग्यानभानकी....** सम्यक् बुद्धि, वह सूर्यरूपी ज्ञानभानु है। सूर्य ज्ञानभानु उसकी पूर्व दिशा है। पूर्व दिशा में जैसे सूर्य उगे, वैसे सम्यग्ज्ञान पूर्व दिशा में सूर्य—ज्ञानभानु हो, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा! सम्यग्ज्ञान अन्तर्मुख होकर सूर्य की भाँति सम्यग्ज्ञान की प्रगट करनेवाली है। आहाहा! कठिन बात! देखो, यह बनारसीदास के भाव में आयी। व्यवहार से होता है, ऐसा तो उसमें कुछ कहा नहीं।

**मुमुक्षु :** नहीं होता, ऐसा कहा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! नहीं होता। होता है, ऐसी बात ली नहीं। यहाँ से होता है। सम्यग्ज्ञान... पूर्व में जैसे सूर्य उगे, वैसे अन्तर्मुख में दृष्टि करने से सम्यग्ज्ञान होता है। आहाहा! गजब! **अजाची है निदानकी...** सम्यग्ज्ञान माँगता नहीं किसी चीज़ के फल को (कि) राग और पुण्य का फल होओ, स्वर्ग मिलना। वह **अजाची** है—

याचक है ही नहीं, माँगती ही नहीं। आहाहा! **विषयभोगों की वांछा से रहित है।** आत्मा के आनन्द की सम्यग्ज्ञान की बुद्धि वहाँ पड़ी है। उसे कोई विषय और फल—स्वर्ग आदि अनुकूलता मिलो, यह बात होती नहीं।

**सुराची निरवाची,....** लो। **सुबुद्धि आत्मस्वरूप में भले प्रकार राचती है। सुराची** है न! सम्यग्ज्ञान सुबुद्धि आत्मस्वरूप में भले प्रकार राचती है। **सुराची।** और उसकी महिमा **निरवाची।** महिमा वचनातीत है। सम्यग्ज्ञान उसे कहते हैं कि जो निर्वचन—वचनातीत ऐसे स्वभाव को वह बतलाती है। आहाहा! **निरवाची ठौर साची ठकुराई....** सम्यग्ज्ञान का स्थान सुखदायी है। सम्यग्ज्ञान का स्थान ठकुराई—ईश्वरता है। अपने स्वभाव जो जाननेवाली है। **सुबुद्धि का आत्मा पर सच्चा स्वामित्व है,...** देखो! सम्यग्ज्ञान का स्वामित्वपना आत्मा के ऊपर है। अज्ञानता—कुबुद्धि का स्वामीपना राग और पुण्य और फल के ऊपर है। आहाहा! क्यों पुस्तक-बुस्तक नहीं लाये? नहीं मिली। यहाँ है या नहीं? ...चश्मा तो है। यह सुबुद्धि का आत्मा पर सच्चा स्वामीपना है। आहाहा!

स्वस्वामी सम्बन्धशक्ति है न आत्मा में? स्व-स्वामी सम्बन्धशक्ति। यह सुबुद्धि आत्मा का स्वामीपना मानती है। राग और पुण्य और निमित्त का स्वामीपना सुबुद्धि जानती-मानती नहीं। आहाहा! वह तो कुबुद्धि मानती है। राग का स्वामी, व्यवहार का स्वामीपना... आहाहा! सम्यग्ज्ञान तो व्यवहार से मुक्त है। आहाहा! तो व्यवहार का स्वामीपना सम्यग्ज्ञानी मानता नहीं। निश्चयस्वरूप आनन्दमूर्ति का स्वामीपना मानता है, लो! कठिन काम! इसका तो, 'घर-घर नाटक कथा बखानी', ऐसा आया है। अब यह बहुत वाँचते थे, परन्तु इसे वाँचते नहीं।

**मुमुक्षु :** यह तो वँचता ही नहीं। पण्डित का है न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पण्डित का कहाँ है? यह तो सिद्धान्त का है।

**धामकी खबरदारि....** सम्यग्ज्ञान उसे कहते हैं कि अपना आत्मधाम, उसका खबरदार है। अपने स्थान को बनाये रखता है। आहाहा! समझ में आया? **सुबुद्धि अपने घर अर्थात् आत्मा की सावधानी रखती है।** राग और पुण्य की सावधानी रखती नहीं। आहाहा! थोड़े में बहुत भर दिया है। **रामकी रमनहारि...** सुबुद्धि तो आत्माराम में

रमनेवाली है। राग में रमनेवाली सुबुद्धि नहीं। आहाहा! **राधा रस-पंथनिके ग्रंथनिमैं गाई है...** राधा रस में उसमें गाते हैं, ऐसी सुमति की महिमा अध्यात्मग्रन्थ में गायी है। सुमति की महिमा अध्यात्मग्रन्थ में गायी है, लो! **संतनकी मानी...** यह सम्यग्ज्ञानरूपी सुबुद्धि सन्तों ने मानी है। मुनियों ने मानी है कि यह सम्यग्ज्ञान सुबुद्धि निज स्वभाव की स्वामीपना रखनेवाली है, यह सन्तों ने मानी है। आहाहा!

**निरवानी नूरकी निसानी...** राधिका... एक उपमा ली है। **सुबुद्धि की महिमा अध्यात्मरस के ग्रन्थों में बखानी गई है और राधिका की महिमा शृंगाररस आदि ग्रन्थों में की गई है। सुबुद्धि साधुजनों द्वारा आदरणीय है, राधिका ज्ञानियों द्वारा माननीय है। सुबुद्धि और राधिका दोनों क्षोभरहित अर्थात् गम्भीर हैं। निरवानी—**गम्भीर। निरबानी का अर्थ किया। **निरबान—**शान्त... शान्त... शान्त। **निरबानी—**वाणीरहित होता है। वाणी होती है? निरबानी ऐसा शब्द है। निरबानी है, ऐसा। निरबान—शान्त, गम्भीर, गम्भीर। सम्यग्ज्ञान का कलेजा गम्भीर है। जिसने पूरे चैतन्यस्वभाव को कब्जे में कर लिया है। आहाहा! **नूरकी निसानी...** वह तो सौन्दर्य का चिह्न है। आत्मा के आनन्द के नूर के प्रकाश का वह तेज है। आहाहा! **यातैं सदबुद्धि रानी राधिका कहाई है....** इससे सद्बुद्धि को राधिका कहा जाता है। यह सब अर्थ भरा है इसमें। अब **कुमति सुमति का कृत्य।** ७६ (पद)।

★ ★ ★

## काव्य - ७६

**कुमति सुमति का कृत्य** (दोहा)

**वह कुबिजा वह राधिका, दोऊ गति मतिवानि।**
**वह अधिकारनि करमकी, यह विवेककी खानि।।७६।।**

**अर्थ:-दुर्बुद्धि कुब्जा है, सुबुद्धि राधिका है, कुबुद्धि संसार में भ्रमण करानेवाली है और सुबुद्धि विवेकवान है। दुर्बुद्धि कर्मबन्ध के योग्य है और सुबुद्धि स्व-पर विवेक की खानि है।।७६।।**

## काव्य-७६ पर प्रवचन

**वह कुबिजा वह राधिका, दोऊ गति मतिवानि।**
**वह अधिकारनि करमकी, यह विवेककी खानि ॥७६ ॥**

दुबुद्धि कुब्जा और सुबुद्धि राधिका। कुबुद्धि संसार में भ्रमण करानेवाली है। आहाहा! कुब्जा, वह **अधिकारनि करमकी....** अज्ञानभाव—स्वरूप के भान बिना का भाव, वह अज्ञान—कुब्जा संसार में भटकानेवाली है। कर्म बाँधकर निगोद आदि में जाये, वह कुमति है। आहाहा! कुबुद्धि भ्रमणा करानेवाली है। सुबुद्धि विवेकवान है। विवेक है। राग, शरीर, वाणी, मन मेरा नहीं। मैं तो आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, उसका नाम सम्यग्ज्ञान, उसका नाम सुबुद्धि है, बाकी सब कुबुद्धि है। आहाहा! समझ में आया? थोड़े-थोड़े शब्दों में बहुत समाहित किया है। और एकदम अन्दर पर से भिन्न, वह विवेक की खान है। सम्यग्ज्ञान तो, पर से भिन्न (और) अपना निज स्वरूप अपने स्वभाव से भगवान अभिन्न है, ऐसा बतलानेवाली सुबुद्धि है। आहाहा! और शास्त्र पढ़कर भी यह कुबुद्धि निकाले। उससे ऐसा होता है और उससे ऐसा होता है और उससे ऐसा... **अधिकारनि करमकी**। वह कुब्जा अर्थात् अज्ञान—कुमति, वह कर्म की खान है। उसमें से तो कर्म उपजें और चार गति में भटके। और सुबुद्धि विवेक की खान है। आहा! **द्रव्यकर्म भावकर्म और विवेक का निर्णय।**

★ ★ ★

## काव्य - ७७

### द्रव्यकर्म, भावकर्म और विवेक का निर्णय

(दोहा)

**दरबकरम पुग्गल दसा, भावकरम मति वक्र।**
**जो सुग्यानकौ परिनमन, सो विवेक गुरु चक्र।।७७।।**

**शब्दार्थ:-दरबकरम (द्रव्यकर्म)=ज्ञानावरणीय आदि। भावकर्म=राग-द्वेष आदि। मति वक्र=आत्मा का विभाव। गुरु चक्र=बड़ा पुंज।**

**अर्थ:-ज्ञानावरणीय आदि द्रव्यकर्म पुद्‌गल की पर्यायें हैं, राग-द्वेष आदि भावकर्म आत्मा के विभाव हैं और स्व-पर विवेक की परिणति ज्ञान का बड़ा पुंज है।।७७।।**

काव्य-७७ पर प्रवचन

**दरबकरम पुग्गल दसा, भावकरम मति वक्र।**
**जो सुग्यानकौ परिनमन, सो विवेक गुरु चक्र॥७७॥**

आहाहा! बड़ा पुंज। द्रव्यकर्म पुद्‌गल, ज्ञानावरणीय आठ कर्म, वह तो पुद्‌गल की दशा है। पुद्‌गल की पर्याय है, जड़ की अवस्था है। **राग-द्वेष आदि भावकर्म आत्मा के विभाव हैं।** पुण्य और पाप, यह व्यवहाररत्नत्रय भी विभाव है। आहाहा! समझ में आया? और **सुग्यानकौ परिनमन, सो विवेक...** बड़ा पुंज... ज्ञान का पुंज, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। **स्व-पर विवेक की परिणति ज्ञान का बड़ा पुंज है।** शुद्ध चैतन्यघन विज्ञानघन आत्मा और राग से पृथक् करके सुबुद्धि अपने ज्ञान की स्वामी की और ज्ञान की पर्याय प्रगट करती है और कुब्जा—कुबुद्धि राग और विकार को उत्पन्न करती है। उसे यहाँ सुबुद्धि कहते हैं कि जो आत्मा और राग का विवेक करे और भिन्न करे। उसे कहते, ऐसा। फिर पढ़ा भले बहुत न हो और थोड़ा हो, परन्तु राग और विकार और व्यवहार से भिन्न अपना निज स्वभाव, उसका जो विवेक करे, वह स्व-पर के विवेक की खान है। उसे सुबुद्धि और सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

**कर्म के उदय पर चौपड़ का दृष्टान्त।** शतरंज खेलते हैं न यह। चौपाट है न पासा। क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** चौपड़।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, चौपड़, हाँ, वह।

★ ★ ★

## काव्य - ७८

### कर्म के उदय पर चौपर का दृष्टान्त
(कवित्त)

**जैसैं नर खिलार चौपरिकौ,**
**लाभ विचारि करै चितचाउ।**
**धरै संवारि सारि बुधिबलसौं,**
**पासा जो कुछ परै सु दाउ।।**
**तैसैं जगत जीव स्वारथकौ,**
**करि उद्दिम चिंतवै उपाउ।**
**लिख्यौ ललाट होई सोई फल,**
**करम चक्रकौ यही सुभाउ।।७८।।**

**शब्दार्थ:-चित्तचाउ=उत्साह। सारि=गोट। उपाउ (उपाय)=प्रयत्न। लिख्यौ ललाट =मस्तक का लिखा-तकदीर।**

**अर्थ:-जिस प्रकार चौपड़ का खेलनेवाला मन में जीतने का उत्साह रख के अपनी अकल के जोर से सम्हालकर ठीक-ठीक गोटें जमाता है, पर दाव तो पाँसे के आधीन है। उसी प्रकार जगत के जीव अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये प्रयत्न सोचते हैं, पर जैसा कर्म का उदय है, वैसा ही होता है, कर्म-परिणति की ऐसी ही रीति है। उदयावली में आया हुआ कर्म फल दिये बिना नहीं रुकता।।७८।।**

### काव्य-७८ पर प्रवचन

जैसैं नर खिलार चौपरिकौ,
लाभ विचारि करै चितचाउ।
धरै संवारि सारि बुधिबलसौं,
पासा जो कुछ परै सु दाउ॥

**तैसैं जगत जीव स्वारथकौ,**
**करि उद्दिम चिंतवै उपाउ।**
**लिख्यौ ललाट होई सोई फल,**
**करम चक्रकौ यही सुभाउ॥७८॥**

सेठ!

**मुमुक्षु :** पासा पड़े सीधा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** डाले भले, परन्तु पासा पड़ना—न पड़ना, कैसा पड़ना—वह कर्म के कारण से है, ऐसा कहते हैं। वह कहीं उसके अधिकार की बात नहीं है। पासा डालने जाये, पड़ जाये उल्टे। ऐसे **जैसैं नर खिलार चौपरिकौ, लाभ विचारि करै चितचाउ...** उत्साह करे, **चौपड़ का खेलनेवाला मन में जीतने का उत्साह रखके अपनी अक्ल के जोर से सम्हाल कर ठीक-ठीक गोटे जमाता है।** पासा ऐसे डाले। **पर दाव तो पाँसे के आधीन है...** लो! **धरै संवारि सारि बुधिबलसौं, पासा जो कुछ परै सु दाउ....** लो! परन्तु वह तो दाव... है न अन्दर लिखा है, दाव तो पासा के आधीन है (कि) पासा कैसे पड़े।

कहते हैं, **तैसैं जगत जीव स्वारथकौ,...** अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये कमाने का प्रयत्न करे, जवाहरात का, वकीलात का, वह तुम्हारे क्या कहलाता है? बीड़ी का धन्धा करे। प्रयत्न करे, परन्तु **करि उद्दिम चिंतवै उपाउ।**—उपाय भी चिन्तवन करे। ऐसे मिलेगा और ऐसे मिलेगा और ऐसे मिलेगा। पैसा-लक्ष्मी-इज्जत-कीर्ति, यह हमारा यश हो जगत में, ऐसा प्रयत्न करे कि हमारा यश हो जगत में, हमारी इज्जत हो, लोग हमारी महिमा करें। ऐसा प्रयत्न करता है। ऐ पोपटभाई! परन्तु कहते हैं कि ललाट में लिखा, ऐसा होगा। अरे... अरे!

**मुमुक्षु :** सुल्टा पड़े न किसी समय।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सुल्टा पड़े क्या? सुल्टा कहना किसे? यहाँ तो, कर्म का उदय है, तत्प्रमाण होगा, तेरा प्रयत्न काम आयेगा नहीं।—बस यह बात सिद्ध करनी है। होगा उसमें क्या हो गया? सुल्टा पड़ा बाहर में। सुल्टा कहना किसे? यहाँ तो कहते हैं कि

प्रयत्न अज्ञानी करता है, ऐसा कमाऊँ और ऐसा कमाऊँ और ऐसा होऊँ और दो-पाँच-दस लाख मिलें एक-एक महीने में और प्रयत्न ऐसा चक्कर चलावे, तथापि **लिख्यौ ललाट होई सोई फल,** लो। **पर जैसा कर्मों का उदय है, वैसा ही होता है।** आहाहा! समझ में आया?

**कर्म परिणति की ऐसी ही रीति है।** कर्म का उदय आवे, ऐसा फल मिले। प्रयत्न से मिलते नहीं। प्रयत्न से नहीं मिला यह सब, ऐसा कहते हैं। साईकिल लेकर बाहर चारों ओर फिरे, इसलिए यह बीड़ी का धन्धा बढ़ गया और पैसे मिले, ऐसी इनकार करते हैं, देखो! चाहे जैसा प्रयत्न करे... उपाय कहा न! **करि उद्दिम चिंतवै उपाउ।**—उपाय चिन्तवन करे। ऐसे मिलेगा, फिर तो ऐसे होगा, फिर ऐसा होगा। आहाहा! यह पुत्र के लिये मर जाते हैं न लोग। बाँझ हो, वहाँ पुत्र ऐसा हो और फलाने को ऐसा हो। मर जाये प्रयत्न (करके) परन्तु कर्म में लिखा हो, ऐसा होगा। वह तेरे उपाय से हो, ऐसा है नहीं। आहा! कहो, यह बात बराबर होगी? होशियार हो, उसके प्रमाण में पैसे मिलते हैं, ऐसा नहीं होगा? चिमनभाई गये? ठीक!

**मुमुक्षु :** सम्यग्दर्शन....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सम्यग्दर्शन तो पुरुषार्थ से होता है। वह तो अपना धर्म है। उसकी कहाँ बात है? वह तो बाद में आयेगा। यह तो लोग प्रयत्न करने में कमी नहीं रखते। कमी नहीं रखता, परन्तु पूर्व के कर्म प्रमाण होता है।

**मुमुक्षु :** उदय में आये हुए कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह और दूसरी बात। भोगने की बात नहीं है। यहाँ तो मिलता है, यह कहा।

**मुमुक्षु :** उसमें लिखा है, इसलिए वह पढ़कर बोलते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इतनी बात है। उदय में कर्म आया हो, आवे वस्तु बाहर की। प्रतिकूलता आवे, अनुकूलता आवे, वह तो सब कर्म के कारण से है, कहीं तेरे प्रयत्न के कारण से नहीं। चतुर हुआ, इसलिए यह किया, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। कहाँ गये माणिकलाल? ऐसा कहते हैं। चतुर हुए, इसलिए नहीं हुए। दवा-बवा व्यवस्थित करने

का प्रयत्न किया, इसलिए पैसे होते हैं, ऐसा यहाँ इनकार करते हैं।

**मुमुक्षु :** वह तो इनकार ही करे न। परन्तु हमको कैसे आप....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु उसे खबर नहीं कि बहुत बुद्धिवाला होता है, तो भी मिलता नहीं और यहाँ साधारण बुद्धिवाले को मिलता हो पाँच-पाँच हजार रुपया महीना, फलाना। वह तो कर्म के कारण से है। तेरे उपाय और तेरे प्रयत्न के कारण से है, ऐसा नहीं। आहाहा!

**कर्म परिणति की ऐसी ही रीति है। उदयावली में आया हुआ कर्म फल दिये बिना नहीं रुकता।**

**मुमुक्षु :** अघातिकर्म।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अघाति। हाँ, वह बाहर का संयोग है न। बाहर के संयोग की बात करते हैं। यहाँ तो संयोग की बात है। अन्दर राग-द्वेष करावे, वह प्रश्न यहाँ नहीं है। यह तो संयोग में लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, इज्जत, यश मिलेगा, ऐसा करूँ तो लोग मेरी महिमा करेंगे। ऐसा प्रयत्न करके मर जाये, तो भी पूर्व के कर्म के उदय प्रमाण होगा। यश—मेरी महिमा करेंगे, (ऐसा माने), वहाँ और कर्म का उदय हो तो उसकी निन्दा करे। समझ में आया? कि ऐसा करोगे तो ऐसे पाँच-पच्चीस लाख पैदा होंगे, उसके बदले सब नुकसान जाये। पूर्व के कर्म के उदय से भागीदार ऐसे मिलें खा जानेवाले। भागीदार समझे?

**मुमुक्षु :** पार्टनर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हिस्सेदार। ऐसे मिलें कि खा जायें।

कहाँ गये वजुभाई, हैं या नहीं? बरवाळा। भरोसा था न उनका और रुपये सौंपे। कितने—अस्सी हजार या कुछ था। हाँ, वजुभाई। वह ले गया। समाप्त हो गये। भरोसा था, विश्वास था। पहले कितना ही काम लिया। सही समय आया तब रुपया वहाँ छोड़ आऊँ मुम्बई, ऐसा कुछ कहा था उन्होंने। ले गया। समाप्त है अब। ऐसे सबको—बहुतों को होता है न यह।

**मुमुक्षु :** ऐसा ही रोज....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** होता है। परन्तु यह मानता है कि मेरा ध्यान नहीं रहा और मेरा ख्याल नहीं रहा, इसलिए ऐसा हो गया।

**मुमुक्षु :** तेरा ख्याल तुझमें रहेगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बहुत ख्याल नहीं रखा इसलिए, बराबर यदि ख्याल रखा होता तो किसका कोई ले जाये ?

**मुमुक्षु :** वह तो कौन ख्याल रखे परन्तु....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो उसके कर्म की उदय की स्थिति ऐसी, ऐसा संयोग में हुए बिना रहे नहीं। आत्मा का प्रयत्न वहाँ कोई काम करता नहीं। आहाहा! कठिन बात भाई! शान्तिभाई! कैसे होगा ? पालनपुर। चिमनभाई। ...हैं या नहीं ? अब क्या होगा यह ?

**मुमुक्षु :** आप कहते हो ऐसा ही है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा ही है। आहाहा! अब होशियारी हो तो बहुत यह सब होगा।

ऐसा देखो न, **लिख्यौ ललाट होई सोई फल,...** कितने ही लोग यह भी मानते नहीं। कहे कि नहीं ? कर्म के ऊपर नहीं डालो। धर्म के लिये कर्म के ऊपर नहीं डालना। कहते हैं कि कर्म में होगा तो धर्म होगा, यह बात झूठी है। आहाहा! बाहर का संयोग, इज्जत का, कीर्ति का, पुत्र होना, पुत्री होना, अच्छा दामाद मिलना, खोटा मिलना—यह सब पूर्व के कर्म के कारण से है। बहुत ध्यान रखा, इसलिए ऐसा मिला और ऐसा अच्छा घर मिल गया, इस बात में जरा भी दम नहीं है। भीखाभाई! कहो, ऐसा होगा ? बराबर होगा ? हीराभाई! वहाँ बहुत ध्यान रखा, इसलिए यह चूड़ी के व्यापार में पैसे पैदा हुए, ऐसा होगा ? यहाँ तो कहते हैं, **लिख्यौ ललाट...** बाँधा हुआ कर्म जो अन्दर है, वह उदय में आया, फल देकर ही रहेगा। तेरा प्रयत्न वहाँ कोई काम करता नहीं। आहाहा!

उसमें आता है न! नहीं, यह क्या कहलाता है ? कोढ़। कोढ़ हुआ उसके स्वामी को।

**मुमुक्षु :** सनतकुमार।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सनतकुमार नहीं, वह बाई।

**मुमुक्षु :** मैनासुन्दरी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मैनाकुमारी। हाँ। श्रीपाल-मैना। मैनासुन्दरी को उसके पिता ने कहा, बेटा! क्या दूँ तुझे? कहे, मेरे कर्म में होगा, वैसा होगा। ऐसा कहा मैनासुन्दरी ने। तब हल्के घर में एक राजा का कुँवर जिसे कोढ़ था, उसे दी। तो उसे कहे, 'मेरे कर्म में यह सृजित होगा। उसमें कुछ नहीं।' समझ में आया? दूसरी कन्या को पूछा कि तुझे कहाँ देना? 'पिताजी! आप ध्यान रखकर दो वहाँ।' वह कहे कि मेरे कर्म में होगा, वैसा होगा। पिताजी! तुम कुछ कर सको परमाणु मात्र में, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

एक बाई कहती थी। घिचडा की थी एक बाई घिचडा की, नहीं? रामजीभाई कहाँ गये? वह घिचड़ा की बाई नहीं थी एक वह? एक मोटे थे। विधवा छोटी उम्र की। गाँव क्या उसके बाप का? ध्रो... ध्रो। गाँव। ध्रो की थी एक। वह छोटी उम्र में विधवा हुई। व्याख्यान वाँचते थे न ऐसे समय में बाहर के बारांडा में। बाहर नहीं भाई यह भोजनशाला में बाहर के। वहाँ मैं बैठा था और वह बाहर निकली। ऐसी बोलती थी। 'ऐ माँ-बाप जन्म दे, परन्तु माँ-बाप कहीं कर्म दे? माँ-बाप ने अच्छा घर खोजकर दिया। मुझे दिया। परन्तु वह तो जन्म दिया। दी, परन्तु वह छोटी उम्र में विधवा हुई। कोई कर्म दे? होशियार लड़का खोजे, यह खोजे, परन्तु वह मर जाये छह महीने में तो करना क्या?

**मुमुक्षु :** कुछ नहीं होता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कुछ नहीं होता। ध्यान रखकर दे। बराबर निरोगी शरीर, पढ़ा-गुना हो, ऐसा हो और विचारेगा तो बारह महीने में भलीभाँति आमदनी करके आजीविका चलायेगा, उसे अपने देना। इससे वह क्या हो? उसके कर्म प्रमाण होगा। आहाहा!

छह महीने में पति मर जाये। हाय.. हाय! अरे! तब विवाह करते हुए वहीं का वहीं मरे। आहाहा! अभी रखवाली करता हो और पैर नीचे हो, उसमें सर्प आवे दोनों के बीच में। बना है न! बराबर। रखवाल.... यह होता होगा और नीचे पैर हों दोनों के।

नीचे यह सर्प आया नीचे, डसा। वहीं का वहीं पति मर गया। कर्म में माने उसमें तेरे प्रयत्न क्या काम आवे बाहर में? ऐसा कहते हैं। एक फुदड़ी बदलना तेरे अधिकार की बात नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! जहाँ-तहाँ अभिमान करे कि मैंने ऐसा ध्यान रखा और हमने ऐसा रखा....

**मुमुक्षु :** अब फिर बाहर के काम किये....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन करता है बाहर के? कर कौन सकता है?

**मुमुक्षु :** ध्यान रखना या नहीं रखना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या ध्यान रखन से होते होंगे? इसके लिये तो यह बात है।

कुँवरजीभाई ऐसा मानते थे। ध्यान रखना इसलिए यह हमारे कुँवरजी जादवजी की दुकान हुई। धूल भी हुई नहीं, कहा। दो रुपये का महीने का भेजता था उस लेख में। उसमें दो लाख की आमदनी दुकान की बारह महीने में। फिर अब तो बढ़ गया। इसलिए मैंने ध्यान रखा इसलिए (बढ़ गया)। पालेज में जो कोई सबकी दुकान (चलती नहीं)। कुँवरजी जादवजी... धूल भी नहीं, मैंने कहा। अभिमान में ऐसी की ऐसी जिन्दगी गयी। आहाहा! होशियार होने से मिलेगा, ऐसा होगा या नहीं मणिभाई? अब तुम्हारा लड़का करता है। कुछ करता नहीं, बापू! प्रयत्न करे। यहाँ कहते हैं न, **करि उद्दिम चिंतवै उपाउ...** उद्यम करके उपाय चिन्तवन करे कि ऐसे पुत्र का विवाह करना और ऐसे पुत्री का करना और ऐसा धन्धा कराना। अपने गरीब खोजकर पाँच लाख देना, जिससे पैसेवाला हो। ऐई, मलूकचन्दभाई! है या नहीं? उसमें कहते हैं, कुछ नहीं होता, ऐसा कहते हैं। मलूकचन्दभाई कहते थे कि भाई! सामनेवाले को गृहस्थ बनाना, अपने अधिकार में है। पाँच लाख दूँ तो गृहस्थ हो। परन्तु रहना या नहीं रहना, वह तो पूर्व के कर्म के कारण से है। मर जाये इतने प्रयत्न करे तो भी कुछ नहीं होता। आहाहा! यह बहुत ही....

**जगत जीव स्वारथकौ करि उद्दिम चिंतवै उपाउ....** आहाहा! है न? अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये... उसमें यह सब आ गया। पैसा, इज्जत, कीर्ति, पुत्र-पुत्री विवाह करना, मकान होना, ध्यान रखकर मकान बनाये। यह करे ऐसा कुछ हो कि मर

पड़े एकदम नीचे। आहाहा! करोड़ का मकान था एक वहाँ मुम्बई में। हुआ था न अभी बहुत वर्ष पहले। बराबर बेचारे खाने (बैठे थे)। खा-पीकर सोते थे। ऐसे पूरा करोड़ का मकान टूटा। सीमेण्ट में कुछ हवा-बवा लग गयी होगी। सीमेण्ट-सीमेण्ट। हाँ। जाँच रखी है। उन लोगों ने कुछ जाँच की। २००-४०० लोग नीचे।

**मुमुक्षु :** ४००।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ४०० थे। खा-पीकर... यह मकान चिनाता था। मकान चिनाता था वह एक करोड़ रुपये का मकान था। ४०० मजदूर काम करते थे। खा-पीकर सोते थे। उसमें गिरा।

**मुमुक्षु :** भूकम्प हुआ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या? भूकम्प नहीं। वह मकान गिरा। वह सीमेण्ट-सीमेण्ट की कचाश। यह तो मकान चिनाता था। यहाँ अमरेली में देखो न!

**मुमुक्षु :** पक्की नींव नहीं जमायी होगी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं जमायी होगी, इसलिए ऐसा हुआ। और सेठ तो पक्के नींव का (बनावे)। क्योंकि उसका मकान छह लाख का किया न देने का। दूसरे बहुत मकान गाँव में बनाये हैं। वह ईंटों का नहीं बताने ले गये थे तुम कहीं बाहर? ईंटों का बनाया है मकान नहीं। ....में ले गये थे कहीं साथ में। ऐसे बहुत मकान ध्यान रखकर बनावे, वे रहते होंगे? आहाहा! एक क्षण में गिरे एकदम। सीमेण्ट के कारण यहाँ अमरेली में, देखो न!

**मुमुक्षु :** पालीताणा में भी हुआ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पालीताणा में भी।

यह सिर पर गिरा और कितने लोग मर गये ऐसे के ऐसे। मर गये। मन्दिर चिनाता था न सीमेण्ट का वह... ओहो! यहाँ अमरेली। अचरतभाई, सोमपुरा दो थे बेचारे। खाते थे और खाकर ही जरा ऐसे.... वहाँ गिरा ऊपर से, दोनों मर गये। उसका चिननेवाला और मालिक। नौकर प्राय:। मर गया नीचे चूरा। ऊपर से गिरा बड़ा पाट सीमेण्ट का। निकालते-निकालते कितना समय लगा। आहाहा! बाहर की चीज़ का छिलका भी बदल सके, यह

तुझमें ताकत नहीं। यह सर्वविशुद्धि में कैसे डाला? कि पुरुषार्थ से आत्मा की शुद्धि प्रगट हो सकती है, परन्तु पुरुषार्थ से संसार की सुविधा और बाहर की प्रतिकूलता या अनुकूलता छोड़ी जा सकती है, प्रतिकूलता-अनुकूलता (की जा सकती है), ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो! पुरुषार्थ से आत्मा अपना स्वरूप—अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति (को प्राप्त करे), उसमें कर्म-फर्म की कोई अपेक्षा है नहीं।

**उदयावली में आया हुआ कर्म फल दिये बिना नहीं रुकता।** आहाहा! फिर रोवे। यह अभी आया था भाई एक। वे अहमदाबाद में नहीं मर गये चार व्यक्ति? पति-पत्नी दो मर गये। और मकान था श्वेताम्बर का। वहाँ हम गये थे, उसके दो-चार दिन पहले हुआ। मन्दिर का सब मुहूर्त किया। खातमुहूर्त कहे न, क्या कहे तुम्हारे?

**मुमुक्षु :** शिलान्यास।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शिलान्यास। शिलान्यास का बहुत गहरा। शिलान्यास किया। सब ऐसा किया। सब करते-करते और जहाँ ऊपर चढ़ने जाते हैं सीढ़ियाँ, वहाँ ऊपर से गिरा नीचे। आठ व्यक्ति। अभी उसका भाई आया था हमारे पास। 'महाराज! इसमें कुछ होगा?' मुझे पूछता था। क्योंकि एक साधु ने वह ऐसे न डालकर ऐसे डाला था, कहे, इसलिए यह गिरा होगा? कहा। (वस्तु) व्यवस्था। उसका भाई कहे, मैं भी दब गया था। दो भाई दबे थे, तीन भाई दबे थे, हमारी भाभी। और दो जो खास थे करनेवाले पति-पत्नी वहीं के वहीं मर गये। मन्दिर का खातमुहूर्त—शिलान्यास करते हुए। गहरे जाकर जमीन बहुत गहरी थी।

अभी हुआ वहाँ हम अहमदाबाद गये (उससे) पहले हुआ। नहीं, उसमें था कुछ। वह भाई उसका आया था तीन-चार दिन पहले। महाराज! यह इसका कुछ आपको ज्ञान हो सब, हों! कहे, मुझे किसी ने कहा था कि महाराज को सब खबर होती है। कहा, भाई! हमको कुछ ही खबर नहीं। हमको तो आत्मा की खबर है। वह कैसे आवे और कैसे नहीं, यह मुझे कुछ खबर नहीं। कोई कहता होगा, महाराज बहुत होशियार हैं, इसलिए ज्योतिष का जानते होंगे। अपने को कुछ खबर नहीं, मैंने कहा। ऐसा बेचारा उस समय कहता था, हों! एक किसी ने कहा। कोई कहता था। अपने महाराज को... उसे ऐसा कहा हुआ।

**मुमुक्षु :** महाराज ज्योतिष जानते होंगे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, कुछ जानते नहीं बापू! ज्योतिष-फ्योतिष, मन्त्र-तन्त्र-जन्त्र कुछ (हम) जानते नहीं। नाम बड़ा और यहाँ आनेवाले पैसेवाले हो जायें बहुत। इसलिए कुछ मन्त्र देते लगते हैं अन्दर। यह तो चैतन्य का मन्त्र है यहाँ तो....

**मुमुक्षु :** महामन्त्र।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा!

वह बेचारा एकान्त में आकर (बात की)। उसकी बहू थी, सब थे। एकान्त में अकेले आकर (कहा), 'महाराज! आप तो सब जानते हो। इसमें क्या हुआ? इसमें कारण क्या है?' और एक साधु कहे, ऐसे डालो न चावल... जो कुछ दे न ऐसे। उसके बदले दूर से ऐसे डाले। वह बीच की जमीन गिर गयी, कहे। कहा, बापू! कुछ नहीं भाई! यह तेरे चावल के कारण नहीं और किसी के भ्रम के (कारण से नहीं)। उस प्रकार से वहाँ होनेवाला ही था। पूर्व के कर्म का उदय आया और संयोग तत्प्रमाण हुए बिना रहता ही नहीं। बेचारा आया था। मैं यह दब गया था, परन्तु जीवित रह गया। भाई मर गये, उनकी बहू मर गयी और दो सोमपुरा। यह चिनते हैं न मकान। पालीताणावाले सोमपुरा होते हैं न। दोनों और... मर गये चारों ही। अभी दो-ढाई महीने पहले से हुआ था।

**मुमुक्षु :** दीवार गिर गयी महाराज?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं। वह तो दीवार नहीं। वह नींव में करते हैं न मुहूर्त? वहाँ अन्दर जाते हुए ऊपर से चट्टान गिर गयी। वह कच्ची थी और लोगों की भीड़ हुई ऊपर देखने के लिये।

**मुमुक्षु :** तब बोझा आया होगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बोझा आया और कुछ दरार-बरार पड़ी। अरे, एकदम चिल्लाहट कलकलाहट। आठ व्यक्ति दब गये। उसमें चार जीवित रह गये, चार मर गये। अभी ही हुआ है अहमदाबाद ढाई महीने पहले। कोई श्वेताम्बर होगा बेचारा पैसेवाला व्यक्ति। वह यह मन्दिर बनाता होगा। मन्दिर का मुहूर्त किया, सब किया, पूजा की। बाहर

निकलने की तैयारी सीढ़ियों पर चढ़ने की और.... उसमें प्रयत्न करे लाख बार... वह वापस मुझे पूछते थे। कहे, महाराज! यह मन्दिर अब होगा या नहीं? यह कहीं किसे (खबर)। उसमें मुझे तो कुछ खबर नहीं पड़ती। यहाँ तो आत्मा कैसे हो और मोक्ष कैसे हो, यह बात है यहाँ तो। इसके अतिरिक्त हमें कुछ खबर नहीं पड़ती। ऐई, सेठ! वह बेचारा आया था। नाम बड़ा न, इसलिए सब अन्दर कुछ महाराज सब जानते होंगे। ज्योतिष जाने, मन्त्र जाने, तन्त्र जाने। मन्त्र-तन्त्र आत्मा का है यहाँ तो। आहाहा! भगवान होना हो, उसकी बात है यहाँ तो। यह पुरुषार्थ से हुआ जाता है, इसके अतिरिक्त नहीं हुआ जाता। आहाहा! अरेरे!

वह फिर आया एकान्त में। इतना तो कहो कि यह मन्दिर अब होगा या नहीं? ऐसा कि यह अपशकुन हुए हैं वहाँ। मैंने कहा, मैं कुछ जानता नहीं। तुम्हारे साधु-बाधु...

**मुमुक्षु :** महाराज, फिर मन्दिर बना या नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभी बनाया नहीं। यह अपशकुन हो गया न!

**मुमुक्षु :** वे तो मर गये। परन्तु अब होगा या नहीं, होगा या नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। यह पूछा। अब होगा या नहीं, कहे। मैंने कहा, मैं कुछ जानता नहीं।

**मुमुक्षु :** खुद नींव में बैठ गया तो क्यों नहीं होगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो ऐसा कहे, अपशकुन हुए, चार लोग मर गये न, इसलिए अब यह मकान—मन्दिर होगा या नहीं? ऐसा। अपशकुन हुआ न! आहा! अरे, यहाँ एक मकान हुआ। देखो अभी दो-चार लाख का मन्दिर। एक प्रतिमा लाये। प्रतिमा जहाँ नीचे उतारने जाते हैं, रस्सी बाँधी हुई। नीचे उतारने जाये वहाँ गर्दन कट गयी प्रतिमा की। श्वेताम्बर। यह पाँच-सात लाख का एक मन्दिर हुआ न रास्ते में। तलेटी के बीच में से। बड़े हाथी और बड़े-बड़े। कोई तो बारह लाख कहते हैं, परन्तु छह-सात लाख किया होगा वह।

पहले एक प्रतिमा लाये। ट्रक में बाँधकर लावे न यहाँ। परन्तु यह उतारने की

तैयारी और डोरी निकाल दी। उसमें ट्रक आगे गया। ट्रक होता है न। इतने में मूर्ति गिर गयी, वह टूट गयी, गर्दन टूट गयी। वह तो भाई! होनेवाला हो, वह होता है। कर्म का उदय ऐसा हो तो यह होता ही है वह। उसे कोई रोक सके या ऐसे मन्त्र ध्यान रखें इसलिए रुके। मन्त्र आये नहीं, इसलिए ऐसा हुआ, यह सब बातें हैं।

**मुमुक्षु :** मन्त्र आते हों तो भी लड़के मर जाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह था न तुम्हारे वह इन्दौरवाला एक पण्डित। कौन? मुन्नालाल। मुन्नालाल न? मुन्नालाल पण्डित नहीं था एक? उसे बहुत वहम था। हमारे मन्दिर में वे आये थे। बहुत वहम। लोग कहे कि पुत्र मर गया। एक पुत्र मर गया। धीरे... धीरे... आहा! उसे इस धर्म की श्रद्धा की खबर भी नहीं होती। पुण्य की भी श्रद्धा नहीं होती कि मेरे पुण्य होगा, वैसा बाहर में होगा। आहाहा!

**विवेकचक्र के स्वभाव पर शतरंज का दृष्टान्त।** शतरंज है न। उस शतरंज को खेलनेवाला, लो।

★ ★ ★

## काव्य - ७९

### विवेक–चक्र के स्वभाव पर शतरंज का दृष्टान्त

(कवित्त)

**जैसे नर खिलार सतरंजकौ,**
**समुझै सब सतरंजकी घात।**
**चलै चाल निरखै दोऊ दल,**
**मौंहरा गिनै विचारै मात।।**
**तैसैं साधु निपुन सिवपथमैं,**
**लच्छन लखै तजै उतपात।**
**साधै गुन चिंतवै अभयपद,**
**यह सुविवेक चक्रकी बात।।७९।।**

**शब्दार्थ:-घात=दावपेंच। निरखै=देखे। मौंहरा=हाथी घोड़े वगैरह। मात=चाल बन्द करना-हराना।**

**अर्थ:-जिस प्रकार शतरंज का खेलनेवाला शतरंज के सब दावपेंच समझता है, और दोनों दल पर नजर रखता हुआ चलता है, वा हाथी, घोड़ा, वजीर, प्यादा आदि की चाल ध्यान में रखता हुआ जीतने का विचार करता है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग में प्रवीण ज्ञानी पुरुष स्वरूप की परख करता है और बाधक कारणों से बचता है। वह आत्मगुणों को निर्मल करता है और जीत अर्थात् निर्भय पद का चिन्तवन करता है। वह ज्ञानपरिणति का हाल है।।७९।।**

---

काव्य-७९ पर प्रवचन

---

**जैसे नर खिलार सतरंजकौ, समुझै सब सतरंजकी घात...** घात अर्थात् दाँवपेंच। कैसे डालूँ पासा, उसे बराबर जाने। **समुझै सब सतरंजकी घात। चलै चाल निरखै दोऊ दल,...** दोनों ओर का जाँचे (कि) मेरा किसकी ओर जाता है हाथी और घोड़ा, उसके सामनेवाले के कहाँ जाते हैं? जाये न ऐसे... दोनों ओर जाँच करे। **दोनों दल पर नजर रखता हुआ चलता है। हाथी, घोड़ा, वजीर** आते हैं न उसमें? **प्यादा आदि की चाल ध्यान में रखता हुआ जीतने का विचार करता है।**

**मुमुक्षु :** यह तो शतरंज के बड़े खिलाड़ी हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खिलाड़ी हैं। लिखा है, बड़ा खिलाड़ी। खिलाड़ी क्या करे वहाँ? **मौंहरा गिनै विचारै मात...** और यह हाथी, घोड़ा कहाँ जाये, ऐसा विचारे। मात और नाश करने के लिये, सामनेवाले को मात करने के लिये। मात है न नीचे। चाल बन्द करना-हराना। मात करना, ऐसा है न! मात करना अर्थात् हराना। ध्यान रखकर सामनेवाले को हराना।

**तैसें साधु निपुन सिवपथमैं,....** आहाहा! यहाँ यही सिद्धान्त है। धर्मात्मा निपुण शिवपंथ में... कैसे पासा डालना, उसकी उसे सब खबर है, कहते हैं। अन्दर में कैसे जाना, प्रवेश कैसे करना, स्थिर कैसे होना—यह सम्यग्ज्ञानी सन्तों को अन्दर की खबर

(होती है), आहाहा! **तैसें साधु निपुन सिवपथमैं,....** लो, यहाँ तो निपुण—विचक्षण है ज्ञानी। अपने मोक्ष का मार्ग, पुण्य-पाप के राग से भिन्न, स्वभाव सन्मुख का झुकाव, उसमें ज्ञानी विचक्षण और निपुण है। उसमें निपुण है, कहते हैं। बाहर का आवे—न आवे, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! होते हैं न परन्तु ऐसे सब होशियार, ऐसा कहते हैं। हम सब होशियार हैं, इसलिए ऐसा होता है। हमको आता है। तुमको क्या आता है? ऐसा कहे। ठीक भाई! कहा नहीं था एक बार कि तुम भगत को क्या आवे यह? सब माल-माल हम डालते हैं दो पैसे का पाव सेर। पास आवे न रेल का... परन्तु ऐसा मार्ग नहीं होता यह।

यह तो (संवत्) १९६४-६५ की बात होगी। हम दो व्यक्ति हैं तो पौन-पौन मण चाहिए (कुल) डेढ़ मण। यह छह मण वजन है हमारे पास। यह कहाँ किस प्रकार ले जाओगे तुम? कहा। एक व्यक्ति कहे, भाई! मैं पास लेकर आऊँगा। रख जाऊँगा। परन्तु तुम्हारे पालेज उतारने में दिक्कत कहाँ? कहा, बात सच्ची, परन्तु यह न्याय कहलाता है? यह काम तुम अन्याय का करते हो? भगत नहीं जानता, कहा। अच्छा। ऐसे अभिमानी। वह आणन्दजी का बहनोई था पालेज में। कैसे करना, कैसे कमाना, कैसे पैसे बचाना, वह अपने को आता है। कला आती है, कहे। इतनी... इतनी कला। मर जाओगे..., कहा। यह तो चोरी है। मोटा तिलक लगाये इतना। पूजा में... भगवान की पूजा करने को बड़ा तिलक खींचे इतना लम्बा। धन्धा ऐसा। बड़ा तिलक करता ऐसे लम्बा पीला तिलक। हम धर्मी पूजा करते हैं, यह बताने के लिये। और ऐसे माने कि हम ऐसा करते हैं और ऐसे दाँव-पेंच करके सब बचाते हैं, ऐसे पैदा होते हैं। ऐसे के ऐसे होते होंगे कहीं? ठीक। एक व्यक्ति आया था। नहीं आया था? मैंने कहा, भाई! तुम कुछ (धर्म करो)? अरे, अभी पैसा कमाने का जमाना है। पैसा कमायें, फिर और धर्म करेंगे बाद में। आहाहा!

**साधु निपुन सिवपथमैं, लच्छन लखै तजै उतपात।** आहा! कहते हैं, **मोक्षमार्ग में प्रवीण ज्ञानी पुरुष स्वरूप की परख करता है...** लो। स्वरूप की परीक्षा करे। दुनिया की दुनिया के पास रहे, ऐसा कहते हैं। **बाधक कारणों से बचता है।** ऐसा है न यहाँ? **उतपात। तजै उतपात....** विघ्न करनेवाले राग-द्वेष आदि हों... राग-द्वेष हों। दूसरा

विघ्न किसी का नहीं। उसे तजते हैं। **साधै गुन चिंतवै अभयपद....** आहाहा! धर्मी तो अभयपद—निर्भयपद अपना स्वरूप को साधता है। **साधै गुन चिंतवै अभयपद....** लो। है न नीचे! **आत्मगुणों को निर्मल करता है और जीत अर्थात् निर्भयपद का चिन्तवन करता है।** लो।

**यह सुविवेक चक्र की बात है।** आहाहा! सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र के विवेक की यह बात है। अन्तर का पुरुषार्थ करने की ( कला) कैसे सूझे, यह ज्ञानी जानता है। बाहर के पुरुषार्थ की बात वह जानता नहीं। पुरुषार्थ से ऐसे होगा और ऐसे होगा। बहुत धर्मी हो, वह बहुत कमा सके, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। और अज्ञानी हो और कमाये। वह तो पूर्व के पुण्य के कारण से होगा। वह कहीं कर्म में लिखा, ऐसा आया। वह धर्म की बुद्धि हो तो सबमें उसका प्रवीणपना होता है। कुछ नहीं आता हो धूल भी वह, एक आत्मा के अतिरिक्त। सम्यग्ज्ञान में आत्मा के अतिरिक्त दूसरा कुछ न आता हो, लो। तो भी, कहते हैं, **सुविवेक चक्र की बात है,...** लो। **निर्भयपद का चिन्तवन करता है, यह ज्ञानपरिणति का हाल है।** लो। यह ज्ञान परिणति के हाल हैं। आहाहा!

**कुमति कुब्जा और सुमति राधिका के कृत्य।**

★ ★ ★

## काव्य - ८०-८१

### कुमति कुब्जा और सुमति राधिका के कृत्य

(दोहा)

**सतरंज खेलै राधिका, कुबिजा खेलै सारि।**
**याकै निसिदिन जीतवौ, वाकै निसिदिन हारि।।८०।।**

**जाकै उर कुबिजा बसै, सोई अलख अजान।**
**जाकै हिरदै राधिका, सो बुध सम्यकवान।।८१।।**

**शब्दार्थः-निसिदिन=सदा। सारि=चौपड़। अलख=जो दिखाई न पड़े-आत्मा।**

**अर्थः–राधिका अर्थात् सुबुद्धि शतरंज खेलती है, इससे उसको सदा जीत रहती है, और कुब्जा अर्थात् दुर्बुद्धि चौपड़ खेलती है, इससे उसकी हमेशा हार रहती है।।८०।। जिसके हृदय में कुब्जा अर्थात् कुबुद्धि का वास है, वह जीव अज्ञानी है, और जिसके हृदय में राधिका अर्थात् सुबुद्धि है, वह ज्ञानी सम्यग्दृष्टि है।।८१।।**

**भावार्थः–अज्ञानी जीव कर्मचक्र पर चलते हैं, इससे हारते हैं–अर्थात् संसार में भटकते हैं और पण्डित लोग विवेकपूर्वक चलते हैं, इससे विजय पाते अर्थात् मुक्त होते हैं।**

---

## काव्य-८०-८१ पर प्रवचन

---

दोनों के कृत्य वर्णन करते हैं। **सतरंज खेलै राधिका, कुबिजा खेलै सारि...** सारि अर्थात् चोपाट। सारि का अर्थ किया है वह चोपाट। **याकै निसिदिन जीतवौ,...** धर्मी को तो सम्यग्ज्ञान जो आत्मा को निसदिन जीतना... जीतना और जीतना। हारना कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **याकै निसिदिन जीतवौ,...** प्रतिदिन उसे जीतना है। किसे? सम्यग्ज्ञानी को, ऐसा कहते हैं। शतरंज खेलती है और उसकी सदा ही जीत रहती है, लो। धर्मी को तो आत्मा की रुचि और दृष्टि का परिणमन है, इसलिए सम्यग्ज्ञान में सदा ही जीतबाजी ही है। हारना कहीं है नहीं। आहा! पैसा जाये, इज्जत जाये, कीर्ति जाये, परन्तु वह हारा नहीं, वह तो जीतने में है। बाहर के साथ क्या सम्बन्ध है? आहा!

**वाकै निसिदिन हारि...** कुब्जा और कुमति को तो निशदिन हार और जीत जाना है। आहाहा! हमेशा हार रहती है। दुर्बुद्धि चोपाट खेलती है। उसे हमेशा हार रहती है। आहा! बहुत ध्यान रखने जाये कि कोई मेरी (बात) जान न जाये। मेरे बिना कोई जान न जाये। मेरी यह अन्दर की बात बाहर में न आवे, ऐसा बहुत ध्यान रखे। तथापि वह जीव तो हार में ही है। हार में हार गया, हार गया। आत्मा के स्वरूप का भान नहीं उसे। **जाकै उर कुबिजा बसै, सोई अलख अजान...** जिसके हृदय में कुब्जा अर्थात् अज्ञान बसे, वह अलख का अजान है। चैतन्य भगवान अलख है, उसका वह अजान है।

अलख अर्थात् इन्द्रिय और विकल्प से ज्ञात नहीं हो, ऐसा जो आत्मा, उससे अनजान है।

**जाकै हिरदै राधिका,...** सुमति। **सो बुध सम्यकवान।** आहाहा! जिसके हृदय में सुबुद्धि है, वह ज्ञानी सम्यग्दृष्टि है। कुबुद्धि को हमेशा हारना और सुबुद्धि को हमेशा जीतना। जीत ही है उसकी, कहते हैं। ऐसा कहते हैं। 'जीत नगाड़ा बजा।' आहाहा! स्वभाव-सन्मुख की जहाँ दृष्टि पड़ी है। परिणमन स्वभाव-सन्मुख ही गति किया करता है। सदा ही जीत ही है, उसके नगाड़े जीत के बजते हैं। 'जीत नगाड़े बजे', यह आता है न? आनन्दघनजी में आता है। 'वीरजीने चरणे लागुं, ते जीत नगारुं वाग्युं रे।' इस प्रकार ज्ञानी को तो जीत नगाड़ा सदा ही है, कहते हैं। स्वभाव-सन्मुख की रुचि का ज्ञान, अनुभव का ज्ञान, ऐसे सुबुद्धि को सदा ही जीत है। उसका ज्ञान नहीं और जगत के ज्ञान में पड़े, प्रपंच में पड़े हैं, उन सबको निशदिन हारना है।

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १३७, श्रावण कृष्ण १२, मंगलवार, दिनांक १७-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद ८२ से ८७**

यह समयसार नाटक चलता है। सर्वविशुद्धि अधिकार—द्वार कहते हैं। ३०वाँ कलश है नीचे। उसका पद है ८२वां। यहाँ चारित्र अधिकार चलता है। सवेरे में भी चारित्र का अन्तर्भेद प्रत्याख्यान, यह चारित्र का वैभव कैसा है, उसकी बात चलती है। ३०वाँ कलश है।

**रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः,**
**पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात्।**
**दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिमयीं,**
**विन्दन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य सञ्चेतनाम्॥३०॥**

इसका ८२वाँ पद। **जहाँ शुद्धज्ञान है, वहाँ चारित्र है।** क्या कहते हैं? आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा अन्तर अनुभव होकर पश्चात् विशेषरूप से ध्यान में स्वरूप को विषय करके स्थिरता करे, वह ज्ञान की शुद्धता है। वह शुद्ध ज्ञान हुआ। शुद्ध ज्ञान (अर्थात्) ज्ञान की रमणता चैतन्य भगवान अपने ज्ञान में रमे, स्थिर हो, वह शुद्ध ज्ञान, वहाँ चारित्र होता है। चारित्र कोई क्रियाकाण्ड में होता नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है प्रज्ञाब्रह्मा, उसमें शुद्ध ज्ञान अर्थात् जैसा ज्ञान है, वैसा अन्तर्मुख होकर परिणमन होना, ज्ञान का सम्यग्दर्शनरूप से परिणमन होना, ज्ञान का ज्ञानरूप से होना और ज्ञान का चारित्ररूप से होना। वह शुद्धज्ञान है, वहाँ चारित्र है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान चैतन्यस्वरूप, उसकी दृष्टि में, अनुभव में प्रथम आवे कि यह आत्मा तो ज्ञान और आनन्द ही है। उसके पश्चात् ज्ञान की शुद्धता बढ़े, अर्थात् ज्ञान में—आत्मा में एकाग्र हो, तब शुद्धता—पवित्रता शुद्ध ज्ञान में हो, उसे यहाँ चारित्र अथवा मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहा! पद।

★ ★ ★

## काव्य - ८२

### जहाँ शुद्धज्ञान है, वहाँ चारित्र है

(सवैया इकतीसा)

जहां सुद्ध ग्यानकी कला उदोत दीसै तहां,
सुद्धता प्रवांन सुद्ध चारितकौ अंस है।
ता कारन ग्यानी सब जानै ज्ञेय वस्तु मर्म,
वैराग विलास धर्म वाकौ सरवंस है।।
राग दोष मोहकी दसासौं भिन्न रहै यातैं,
सर्वथा त्रिकाल कर्म जालकौं विधुंस है।
निरुपाधि आतम समाधिमैं विराजै तातैं,
कहिए प्रगट पूरन परम हंस है।।८२।।

**शब्दार्थः**-सवंस (सर्वस्व)=पूर्ण संपति। जानै ज्ञेय वस्तु मर्म=त्यागनेयोग्य और ग्रहण करनेयोग्य पदार्थों को जानते हैं।

**अर्थः**-जहाँ शुद्ध ज्ञान की कला का प्रकाश दिखता है, वहाँ उसके अनुसार चारित्र का अंश रहता है, इससे ज्ञानी जीव सब हेय-उपादेय को समझते हैं। उनका सर्वस्व वैराग्यभाव ही रहता है, वे राग-द्वेष-मोह से भिन्न रहते हैं, इससे उनके पहले के बँधे हुए कर्म झड़ते हैं, और वर्तमान तथा भविष्य में कर्मबन्ध नहीं होता। वे शुद्ध आत्मा की भावना में स्थिर होते हैं, इससे साक्षात् पूर्ण परमात्मा ही हैं।।८२।।

### काव्य-८२ पर प्रवचन

जहाँ सुद्ध ग्यानकी कला उदोत दीसै तहाँ,
सुद्धता प्रवांन सुद्ध चारितकौ अंस है।
ता कारन ग्यानी सब जानै ज्ञेय वस्तु मर्म,
वैराग विलास धर्म वाकौ सरवंस है॥

**राग दोष मोहकी दसासौं भिन्न रहै यातैं,**
**सर्वथा त्रिकाल कर्म जालकौं विधुंस है।**
**निरुपाधि आतम समाधिमैं विराजै तातैं,**
**कहिए प्रगट पूरन परम हंस है॥८२॥**

**जहाँ सुद्ध ग्यानकी कला उदोत दीसै तहाँ।** अर्थात् क्या ? कि आत्मा ज्ञानस्वभाव स्वरूप है। उसमें उस ज्ञान की शक्तिरूप से जो सर्वज्ञपद है, उसकी ज्ञान की कला उद्योत दिखे। जो ज्ञान व्यक्तरूप से—प्रगटरूप से, शुद्धतारूप से प्रकाशित हो। **तहां सुद्धता प्रमाण....** जितनी शुद्धता, पुण्य-पाप के रागरहित शुद्धता प्रकाशे, उसके प्रमाण में शुद्ध चारित्र का वह अंश है। समझ में आया ? पुण्य-पाप का प्रकाश हो, वह तो अचारित्र है। आज लेख आया है। भाई! यह पुण्य को मल कहते हैं और जहर कहते हैं, ऐसा नहीं। पुण्य से तो आत्मा को समकित प्राप्त होता है। ऐसा एक किसी डॉक्टर का लेख है, उसे जैनसन्देश में डाला है। जैनसन्देश में है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं ऐसा कि पुण्य को छोड़ने का कहो, उसका अर्थ ऐसा हुआ कि पाप करो। ऐसा इसका अर्थ हुआ। वह अर्थ किया था।

**मुमुक्षु :** उल्टा अर्थ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उल्टा।

यहाँ तो पहले दृष्टि में पुण्य का भाव छोड़नेयोग्य है, ऐसा निर्णय किये बिना स्वरूप-सन्मुख की दृष्टि और रुचि होगी नहीं। स्वरूप आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आनन्द का धाम प्रभु आत्मा तो है। आहाहा! उसका भान करने के लिये पुण्य परिणाम की रुचि छोड़ना। दृष्टि में वह हेय है, छोड़नेयोग्य है। अस्थिरता उत्पन्न न हो, वह दूसरी चीज़ है। वह तो स्वरूप में स्थिरता का उपयोग जमे, तब अस्थिरता उत्पन्न नहीं होती। परन्तु अस्थिरता उत्पन्न हो, वह हेय है, आश्रय करनेयोग्य नहीं, ऐसा जब तक (निर्णय) न करे, तब तक उसकी दृष्टि द्रव्य स्वभाव पर नहीं जाती। आहाहा! ऐसी इसके लिये यह बात है। .... खलबलाहट... खलबलाहट करते हैं। कोई डॉक्टर है, उसने लिखा है। अब जैन सन्देशवालों ने डाला न, लो। दरबारीलाल कोठिया और यह कैलाशचन्दजी,

दो होकर। परन्तु पुण्य स्वभाव है, वह राग है। यह कहते हैं न, **ग्यानकी कला उदोत दीसै...** ऐसा कहा, देखो न! कि राग का भाव उदय दिखे, उसमें सम्यग्दर्शन होगा? आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्य की खान है। अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा तो है। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द को ध्यान में विषय बनाकर... ध्यान में विषय बनाकर। इसका अर्थ किया है उसमें। बहुत बार आया है। इस अर्थ में ऐसा किया है संस्कृत टीका में। ध्यान में विषय कुरु। अन्तर्ध्यान में ध्रुव को विषय कर—त्रिकाली भगवान को, (विषय कर) तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का उद्योत होगा। आहाहा!

**सुद्ध ग्यानकी कला उदोत दीसै तहाँ....** भगवान आत्मा चैतन्य का कन्द चैतन्यमूर्ति प्रभु है। उसे जो अन्तर में ध्यान (करने से) और विषय बनाने से शक्ति में से ज्ञान शुद्ध प्रगट होता है, उसके प्रमाण में शुद्धता प्रमाण शुद्धचारित्र का अंश है। उसके प्रमाण में वह शुद्धचारित्र कहा जाता है। चारित्र कोई देह की क्रिया या पंच महाव्रत के विकल्प उठें, यह दया पालो, यह तो सब विकल्प और आस्रव है। आहाहा! क्या हो? जगत को ऐसा आत्मा... आत्मा... वह तो ऐसा मानो चीज़ ही नहीं। वह पुण्य से प्राप्त होगी।

**मुमुक्षु :** परन्तु क्या होगा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पुण्य से शुभभाव में ऐसा कि मोहनीय रस मन्द पड़े। मोह का रस कम हो, स्थिति कम हो और समकित प्राप्त करे। पहले अनन्त बार ऐसे पुण्य के परिणाम तो नौवें ग्रैवेयक में गया तो शुक्ललेश्या के (परिणाम) बहुत अनन्त बार किये। आहा! परसन्मुख की रुचि पड़ी है, वह स्वसन्मुख हो कैसे? आहाहा! अरेरे! भाई! तुझे तेरे आँगन में आकर अन्तर में जाना, यह तुझे खबर नहीं। समझ में आया?

(शुभ) हेय कहने से, वह तो हो रहा, तब उसे अशुभभाव का ही आदर करने का रहा, ऐसा कहे। ठीक। ऐसा अर्थ किया है। अरे भगवान! यह शुभ पहला... बात यह है कि शुभ और अशुभ जो राग है, वह विकार है, विभाव है, इसलिए उसकी दृष्टि और रुचि छोड़नेयोग्य है। ऐसा जहाँ तक निर्णय नहीं करे, वहाँ तक दशा की दिशा पलटेगी नहीं। आहाहा! क्या हो? लुटाया है न!

**मुमुक्षु :** लुटाया... लुटाया। उत्साह से लुटाया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उत्साह से लुटाया है। और लूटनेवाले कहे उसे उत्साह से कहे, हाँ, तुम्हारी बात बराबर लगती है। और यह तो अकेला आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... पन्नालालजी! व्यवहार परम्परा मुक्ति का कारण है। पन्नालाल सेठ नहीं कहते थे सवेरे? आता है, हो वह। शास्त्र में आता है। परन्तु वह कहीं नय का वाक्य है? वह तो व्यवहारनय का वाक्य है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य मूल श्लोक में से टीका बनाकर उसमें यह कलश बनाया है। उसका यह बनारसीदास ने, उस कलश का जो यह है न राजमल टीका, उसमें से यह समयसार नाटक बनाया है। राजमल टीका है न यह। कलश टीका। कहते हैं कि **सुद्ध ग्रान की कला...** राग की कला, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! आत्मा त्रिकाली ज्ञायक चैतन्यमूर्ति प्रभु प्रज्ञाब्रह्म आत्मा को विषय बनाने से तो राग का विषय दृष्टि में से छूट जाता है। समझ में आया? तब इसका विषय हो, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! क्या हो परन्तु अब यह? इस प्रकार वाद-विवाद में चढ़े हुए को पुण्य की मिठास (छूटती नहीं)। आहाहा!

कहते हैं, **जहाँ सुद्ध ग्रान की कला....** भाषा देखो न! चैतन्यमूर्ति प्रभु में अन्तर एकाग्र होने पर, ज्ञान की कला अर्थात् ज्ञान की दशा अर्थात् ज्ञान की पवित्रता प्रगट हो, **उदोत दीसै....** आहाहा! ज्ञान की शुद्धता जहाँ प्रगट होकर दिखायी दे, **तहाँ सुद्धता प्रवांन....** यह वीतरागी पर्याय प्रगट हो द्रव्य के अवलम्बन से—आश्रय से। स्पर्श कहा है न वहाँ। स्वभावस्पर्श। यह पहली लाईन। इसका अर्थ कि जितना चैतन्य भगवान शुद्ध का स्पर्श करे अर्थात् वेदन करे, उसे वेदन करे, वह शुद्ध आनन्द का आस्वाद करे। अरे, अरे, गजब! सेठ! ऐसा मार्ग है यह। जहाँ-तहाँ चारित्रवन्त है और यह है और वह है... बापू! चारित्रवन्त तो, गजब! वह तो परमेश्वर है। आहाहा! पंच परमेष्ठी में जिसका प्रवेश है। वह चारित्र ऐसा होता है, कहते हैं। पहला तो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप का अन्तर्मुख होकर अनुभव होता है। दृष्टि में वह आवे कि यह आत्मा पवित्र त्रिकाल है। ऐसा भान हो, उसे प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! पश्चात् जितने प्रमाण में वह ज्ञानस्वभाव शुद्धता का पूर्ण रूप, उस शक्ति में से अन्तर एकाग्रता

होने से शुद्धता का प्रकाश हो, पवित्र ज्ञान प्रगट हो, उसके प्रमाण में उसे चारित्र कहा जाता है। कहो, समझ में आया? **चारितकौ अंस है।**

**ता कारन ग्यानी सब जानै ज्ञेय वस्तु मर्म,....** देखो! **जहाँ शुद्धज्ञान की कला का प्रकाश दिखता है, वहाँ उसके अनुसार चारित्र का अंश रहता है। इससे ज्ञानी जीव सब हेय उपादेय को समझते हैं।** आहाहा! देखो! धर्मी जीव, ज्ञानानन्दस्वभाव, वही उपादेय अर्थात् विषय, ध्येय करनेयोग्य है और राग आदि भाव, वे विषय, ध्येय करनेयोग्य नहीं—ऐसा हेय-ज्ञेय को धर्मी समझता है। आहाहा! अरेरे! निज स्वभाव में पूर्ण शुद्धता का नाथ प्रभु, उसका आश्रय और उसका अवलम्बन अर्थात् आस्वाद करे नहीं, वहाँ तक उसे पुण्य-पाप का बन्धन होता है, वह बन्धन चार गति में (भटके)। आहाहा! चौरासी के अवतार। थोड़ी सी प्रतिकूलता आवे, वहाँ कायर... कायर हो जाये। पुत्र मरे, पुत्री विधवा हो, घर में रोग आवे, स्त्री मरने की तैयारी हो, उसे क्षय लागू पड़े, दुकान टूटे, तब बीमावाला नाश हो। ऐसी जहाँ थोड़ी प्रतिकूलता आवे कि हाय! उकताहट... उकताहट हो जाये इसे। आहाहा! हाय, हाय! अरेरे! इसमें कहाँ से उभरना? बापू! ऐसी प्रतिकूलता तो एक जरासी है। इससे अनन्तगुणी प्रतिकूलता निगोद में और नरक में... आहाहा! अरे! कैसे काल व्यतीत किया होगा? कैसे वहाँ रहा और कैसे काल व्यतीत हुआ? इस दुःख के प्रवाह में तेरा सब काल गया। आकुलता... आकुलता... आकुलता। भाई! यह सब मिथ्यात्व के फल हैं। समझ में आया?

यह तो कर्म के फल हैं। यह यहाँ न, भूत-भविष्य और वर्तमान, वह भिन्न ... है। वह तो कर्म का फल है। आहाहा! तेरा फल क्या? दुनिया के साथ मिलान करने जायेगा तो मिलेगा नहीं भाई ऐसा। यह ऐसा मार्ग है, हों! बहुत बार कहते, लोह लोहे से जंग चढ़े। अरे गौतम! ऐसा कहते न सम्प्रदाय में? प्रभु ऐसा कहते हैं, हे गणधर गौतम! हमारे मार्ग की रीति और पद्धति अन्तर के सद्पन्थ को ले जाने की है, उसके साथ लोगों के पंथ को मिलाना नहीं तू। आहा! कहो, भीखाभाई! अन्यत्र भीख माँगना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तुझमें कहाँ अपूर्णता है? तुझमें कहाँ विपरीतता है? तू अविपरीत और पूर्ण आनन्द से भरपूर तत्त्व है। सच्चिदानन्दस्वरूप है। आहाहा! सत् अर्थात् शाश्वत्, ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। उसमें एकाग्र होकर जो शुद्धता प्रगट हो,

उसे ज्ञानी जानता है कि यह एक आदरणीय है आत्मा त्रिकाली। अथवा शुद्धता प्रगट करने की अपेक्षा से भी वह शुद्धता आदरणीय कही जाती है और हेय, पुण्य के परिणाम भी हेय हैं।

**सब जानै ज्ञेय वस्तु मर्म....** ऐसा कहते हैं। राग के परिणाम, वे परज्ञेय हैं, वे हेय हैं और आत्मा के आश्रय से शुद्धता प्रगट हो, वह ज्ञेय है, परन्तु उपादेय है। आहाहा! अरे! अभी इसकी पद्धति की खबर नहीं होती। अनादि से बेखबर में पड़ा, भटकता है चौरासी में। अब इसकी इसे दया नहीं। अरे! मैं यह कितने दुःख में हूँ। कितने दुःख में हूँ और मुझे कितने दुःख भोगने पड़ेंगे। इसे खबर नहीं। यहाँ कहते हैं कि भगवान! राग के फलरूप से तो दुःख है। आस्रव में आ गया था, नहीं? ७४ गाथा। पुण्य और पाप दोनों दुःख हैं और दुःख का कारण है। आहाहा! भविष्य में दुःख का कारण है। पुण्यभाव वर्तमान में दुःख और भविष्य में दुःख का कारण, ऐसे पुद्गल के परिणाम, उसका कारण यह पुण्य है। आहाहा! दुःखफल।

**ता कारन ग्यानी ( धरमी जीव ) सब जानै ज्ञेय वस्तु मर्म...** ज्ञेय में तो आत्मा भी ज्ञेय है, शुद्ध परिणाम भी ज्ञेय है, अशुद्धभाव भी ज्ञेय है। जैसा है, वैसा अशुद्ध परिणाम जाननेयोग्य है। दृष्टि में उसका आदर नहीं। हो, परन्तु उतना अचारित्र है, परन्तु वह आदरणीय नहीं। समझ में आया? और यहाँ तो चारित्र का अधिकार है, इसलिए हेयरूप से जो जाना है, उसे छोड़कर अन्दर में स्थिरता करता है, उसे उपादेय कहा जाता है। **वैराग विलास धर्म वाकौ सरवंस है...** आहाहा! **सरवंस है...** सरवंस अर्थात् अर्वथा। ऐसा। सर्वस्व। **ज्ञानी जीव सब हेय-उपादेय को समझते हैं, उनका सर्वस्व वैराग्यभाव ही रहता है।** धर्मी को तो सम्यग्दर्शन होने पर राग और पुण्यभाव से विरक्त है। आहाहा! विरक्त न हो और रक्त हो, तब तो मिथ्यात्वभाव है। शुभभाव और अशुभ तो दुःख और जहर है। और उसने लिखा है कि उसे मल कहते हैं। भाई! मल है मल। उसे जहर कहते हैं। दोनों लिये। आहाहा! भाई! तेरे अमृत के सागर उछलें, उसे पुण्य लूटता है। उत्पन्न होने नहीं देता। राग उत्पन्न होने में अमृत का सागर प्रभु उत्पन्न नहीं होता। इसलिए उसे रुचि में हेय-ज्ञेयरूप से जाने। ज्ञेय है सही, परन्तु हेयरूप से है।

**वैराग विलास...** यह धर्मी का विलास तो वैराग्य—राग से भिन्न वह उसका

विलास है। राग में रमना, वह कहीं ज्ञानी का विलास—क्रीड़ा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **वैराग विलास...** भाषा कैसी की है, देखो! क्या कहते हैं यह? आहाहा! राग का भाव हो, परन्तु वह विलास अर्थात् क्रीड़ा करने जैसा नहीं उसके साथ। आहाहा! उस राग से रहित वैराग्य का जिसे विलास है। अरे! धर्मी का विलास, वह वैराग्य हो या धर्मी का विलास, वह राग होगा? आहाहा! राग का विलास तो अनादि से करता है। राग की क्रीड़ा में रमता है अनादि से। यह तो 'निजपद रमे सो राम कहिये' आतमराम। समझ में आया? शुद्धस्वरूप के प्रति प्रीति, उपादेय और राग से वैराग्य। उसे वैराग्य कहते हैं। पुण्य और पाप के दोनों भाव से वैराग्य, उसे वैराग्य कहते हैं। आहाहा! उनका सर्वस्व वैराग्यभाव ही रहता है। **वाकौ सरवंस है...** सर्वथा एक है। समझ में आया? यह तो उसका वंश ही वैराग्य है।

**मुमुक्षु :** चौथे गुणस्थान में चारित्र सिद्ध हो गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हो गया न, स्वरूपचारित्र है। अनन्तानुबन्धी गयी, इतना स्वरूपचारित्र तो है। वैराग्य ही है।

ज्ञान-वैराग्य शक्ति दो, आ गयी न निर्जरा अधिकार में। दो—दोनों शक्तियाँ हैं। आहाहा! अरे, यहाँ तक लिया, नहीं? शील, चौथे गुणस्थान में शील नारकी में है। शील अधिकार है अष्टपाहुड़ में। नारकी जीव है, उसे भी अन्दर आत्मा की अन्तर अनुभवदृष्टि हुई है, इससे जितना राग घटा अनन्तानुबन्धी, उतना शीलपना वहाँ है। और उसके कारण आचार्य तो ऐसा कहते हैं कि ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शील के कारण तीर्थंकर जैसे जीव वहाँ पड़े हैं (कि जो) तीर्थंकर होनेवाले हैं। वे वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होंगे। आहाहा! समझ में आया? यह शील के स्वभाव का माहात्म्य है। शील अर्थात् स्वभाव की रमणता, वह उसका शील है। उस ब्रह्मचर्य की यहाँ बात नहीं। शरीर से ब्रह्मचर्य आदि पालन करे तो विकल्प-राग है। ब्रह्मानन्द प्रभु ब्रह्म के आनन्द में रमना, वह उसका शील है। कठिन काम भारी! सेठ!

**मुमुक्षु :** चौरासी का चक्कर काटकर अब तो आपकी शरण में आये हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह लेने का यह है। अन्दर में शरण आत्मा में है। आहाहा!

कहा नहीं था? संभारे वह सेठ। श्रीमद् का कहा? भाई का, सेठिया। तुम्हारे है न वहाँ। ....है न? गुणीजन संभारे सो सेठ, बाकी अनुचर जाणजो। सेठी! आहा! भगवान गुणीजन... अरे! तेरी पूँजी की तूने सम्हाल की नहीं कभी, भाई! आहाहा! निधान के ऊपर तूने पर्दा डाला। आहाहा! देखना नहीं, खोलना नहीं, प्रगट करना नहीं, मानना नहीं। राग प्रगट करना हो, उसे राग की रुचि के प्रेम में यह निधान—धन ढँक गया है उसे। समझ में आया? **वैराग विलास धर्म वाकौ सरवंस है...** भाषा तो देखो! आहा! राग से रहित ऐसी जो दशा, वह धर्मी का विलास और सर्वस्व वह है। राग आदि उसका नहीं, निमित्त आदि उसका नहीं, देव-गुरु-शास्त्र उसके नहीं। आहा! अपने भगवान के अतिरिक्त सब चीज़ से जो पर से उदास वर्तता है। परपदार्थ के साथ क्या सम्बन्ध है? यहाँ तो राग से भिन्न पड़कर **वाकौ सरवंस है...** धर्म, रागरहित वह उसका सर्वधर्म है। देखो, वह राग हो पंच महाव्रत का आदि, वह धर्म नहीं, चारित्र नहीं, ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा!

**राग दोष मोहकी दसासौं भिन्न रहै यातैं...** धर्मी की दृष्टि तो धर्मी ऐसा भगवान उसकी दृष्टि में, रुचि में, वह आत्मा आया है। इससे **राग दोष मोहकी दसासौं भिन्न रहै...** राग-द्वेष और मिथ्यात्व से तो भिन्न रहता है। आहाहा! और स्वभाव के साथ एकता करता है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है, भाई! लोगों को बाहर में ऐसी सूझ पड़े, ऐसा करे न तो ठीक पड़े। उसमें—परमार्थवचनिका में कहा है न! आगमक्रिया—व्यवहारक्रिया उसे सरल लगती है। आहाहा! और निश्चय अध्यात्म की—निश्चय की व्यवहारक्रिया भी उसे खबर में नहीं पड़ती। निश्चय की व्यवहारक्रिया। रागरहित आत्मा की एकाग्रता, वही निश्चय की व्यवहारक्रिया है। समझ में आया? बैठना—समझना कठिन, इसलिए वह सरल मार्ग ले लिया। सेली, सेली—राख। हमारे यह राख है, उसे सेली कहते हैं यहाँ। राख—भस्म होती है न, (उसे) सेली (कहते हैं)। सेली अर्थात् सस्ता। राख और सस्ता। आहाहा! धूल मिलेगी वहाँ। भगवान आनन्द का नाथ चैतन्यरत्न का जिसे आश्रय, अवलम्बन, स्वाद नहीं और यह राग के अकेले स्वादिया मूर्ख है, कहते हैं यहाँ। धर्मी का तो रागरहित वैराग्य का विलास का आनन्द, इसलिए वह राग से भिन्न रहता है। आहाहा!

**सर्वथा त्रिकाल कर्म जालकौं विधुंस है।** है न, तीनों काल आ गये न ? '**पूर्वागामि-समस्तकर्मविकला**' और '**भिन्नास्तदात्वोदयात्**' भाई आया न ? वर्तमान... वह आता है न भाई १२वीं गाथा में ? **तदात्वे**—जाना हुआ प्रयोजनवान। उस काल में—वर्तमानकाल है वह। यहाँ यह वर्तमानकाल है यह। **तदात्वोदयात्।** टीका में है न कलश में। **भिन्नास्तदात्वोदयात्**—उस काल में वर्तमान में राग का उदय हो, उससे भी धर्मी विकला अर्थात् रहित है। **तदात्वो** है। आहाहा! दूसरी लाईन का अन्तिम शब्द। **तदात्वोदयात्...** वे दो काल तो रखे। **पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात्....** आहा!

**मुमुक्षु :** तीनों काल....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तीनों काल, बस। पूर्व के कर्म, भविष्य के और वर्तमान। धर्मी तो त्रिकाली आत्मा भगवान जिसका विषय है, वह त्रिकाल कर्म से विरक्त है। आहाहा! समझ में आया ?

**त्रिकाल कर्म जालकौं विधुंस है....** वह कर्म की जाल का तो नाश करनेवाला है। आहाहा! **सर्वभावांतर ध्वंसी....** आता है न ? भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और शुद्ध का अवलम्बन लेने से, यह आत्मा उसे कहते हैं कि जो दृष्टि में आया और बैठा। वह आत्मा तीन काल के कर्म का नाश करनेवाला है। किसी कर्म की अवस्था भूत-वर्तमान की पर्याय को रखे, यह उसके स्वभाव में है नहीं। समझ में आया ?

**निरुपाधि आतम समाधिमैं विराजै...** आहाहा! भगवान आत्मा... यह पुण्य-पाप का राग, वह उपाधि है। समझ में आया ? यह पदवी दे, उसे उपाधि कहते हैं या नहीं ? जयसुखभाई! यह वकील की उपाधि हमारे है और ढींकणा की उपाधि। सब उपाधि लिखे।

**मुमुक्षु :** डिग्री लिखे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** डिग्री कहो या उपाधि कहो, दूसरा क्या है ? यह कहते हैं कि पुण्य के परिणाम, वे आत्मा की उपाधि हैं। आहाहा! ऐसे परिणाम से निरुपाधि ऐसा भगवान आत्मा **समाधिमैं...** उपाधि से रहित और समाधि में विराजता है। आहाहा! राग से रहित भगवान, वह आत्मा की अरागी समाधि शान्ति में विराजता है। आहाहा! वह

समाधि यह, हों! वे बाबा लगावे, वह समाधि नहीं। राग से रहित होकर आधि-व्याधि से रहित होकर आत्मा में—स्वरूप में स्थिर हो, आनन्द की रमणता में रमे, उसे समाधि कहा जाता है। उस समाधि में शून्यता नहीं। समाधि में पूर्ण सत्ता के सत्त्व का स्वीकार है। समझ में आया? यह तो शून्य हो जाये अन्दर समाधि। वह तो जड़ हो गया, शून्य हो गया।

**कहिए प्रगट पूरन करम हंस है,....** लो। साक्षात् पूर्ण परमात्मा है मानो। आहाहा! चारित्रसहित लिया है न! वस्तु का स्वभाव रागरहित है, ऐसा विरक्त होकर स्वरूप को विषय बनाकर सम्यग्दर्शन किया है, वह जीव अब तीन काल के रागादि से पृथक् पड़कर स्वरूप की स्थिरता में समाधि में विराजे, उसे साक्षात् परमात्मपद प्राप्त होता है अथवा वह विराजे, उसे साक्षात् परमात्मा कहा जाता है। आहाहा! ३१ कलश।

**ज्ञानस्य संचेतनयैव नित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धं।**
**अज्ञानसंचेतनया तु धावन् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बन्धः।।३१।।**

आहाहा! श्लोक तो बहुत संक्षिप्त और भाषा के भाव की महिमा अपार है।

★ ★ ★

## काव्य - ८३

**पुनः** (दोहा)

**ग्यायक भाव जहां तहां, सुद्ध चरनकी चाल।**
**तातैं ग्यान विराग मिलि, सिव साधै समकाल।।८३।।**

**शब्दार्थः-ज्ञायक भाव=आत्मस्वरूप का ज्ञान। चरन=चारित्र। समकाल=एक ही समय में।**

**अर्थः-जहाँ ज्ञानभाव है, वहाँ शुद्ध चारित्र रहता है, इसलिए ज्ञान और वैराग्य एक साथ मिलकर मोक्ष साधते हैं।।८३।।**

## काव्य-८३ पर प्रवचन

**ग्यायक भाव जहां तहां, सुद्ध चरनकी चाल।**
**तातैं ग्यान विराग मिलि, सिव साधै समकाल॥८३॥**

ज्ञायकभाव... धर्मी को तो अकेला जाननेवाला चैतन्यप्रभु वह दृष्टि में तैरता होता है। आहाहा! दृष्टि के विषय में अकेला ज्ञायकभाव होता है। **जहाँ तहाँ ग्यायक भाव...** दृष्टि में ज्ञायक, ज्ञान में ज्ञायक और चारित्र में ज्ञायक में रमणता, जहाँ-तहाँ ज्ञायकभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

**ग्यायक भाव जहां तहां,...** भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, वही दृष्टि-ज्ञान और रमणता में जहाँ-तहाँ उसका ही आश्रय है। **सुद्ध चरनकी चाल।** वह शुद्ध रमणता की वह क्रीड़ा—चाल है। पाँच महाव्रत के विकल्प से रहित अपने शुद्ध आत्मा में क्रीड़ा... आहाहा! शुद्ध चारित्र रहता है। वहाँ शुद्ध चारित्र होता है। (जहाँ) ज्ञायकभाव—ज्ञानभाव वहाँ चारित्र रहता है, ऐसा कहते हैं। जहाँ ज्ञाता-दृष्टा रहे और राग में एकत्व न हो, अस्थिरता उत्पन्न न हो... एकत्व न हो और अस्थिरता न हो, वहाँ शुद्धपना ज्ञान का प्रकाशे, उसे चारित्र है, वहाँ चारित्र होता है। आहाहा! वे तो कहें, पंच महाव्रत के परिणाम, वह चारित्र है। बारह व्रत के विकल्प, वह चारित्र। चारित्र के भेद लिये, वहाँ यह लिये। भाई! यह तो निमित्त से कथन है। जहाँ पंच महाव्रत के विकल्प हों, उसका अन्दर निर्मल चारित्र शुद्ध हो, उसे यह बताते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसे व्यवहार पंच महाव्रत के विकल्प की मर्यादा, राग की मन्दता प्रगट हुई, उसे यहाँ शुद्धता बहुत प्रगट हुई है, ऐसा बताते हैं। अर्थात् व्यवहार से निश्चय बताया है। व्यवहार से निश्चय होगा, ऐसा कहा नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** इसलिए अनुसरनेयोग्य....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनुसरनेयोग्य तो इनकार किया। **व्यवहारनय न अनुसर्य...** आहाहा! भेद पाड़कर तुझे समझाते हैं, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। और भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो वह '**अतति गच्छति इति आत्मा**' अपने

निर्मल परिणाम को प्राप्त करे, वह आत्मा, ऐसा भेद से कहा, परन्तु वह भेद अनुसरनेयोग्य नहीं। आहाहा!

अन्तर ज्ञानानन्द प्रभु को अनुसरकर व्यवहार दृष्टि लक्ष्य में से छोड़नेयोग्य है। राग एक व्यवहार, वह कल्याण का कारण हो, व्यवहार पहले अच्छा हो। अच्छा कहना किसे? भाई! तब उसे यदि खराब कहोगे तो लोग अकेले पाप करेंगे। उसका मार्ग खुल्ला कर दिया, और ऐसा कहते हैं। अरे, गजब भाई! यहाँ तो दृष्टि में से, पाप-पुण्य को दृष्टि में से छोड़ना, ऐसा कहते हैं। उसे पुण्य को दृष्टि में से छोड़कर पाप करना, ऐसा कहते हैं? उसे खबर नहीं। मिथ्यात्व तो महापाप चाण्डाल है। आहाहा! यहाँ है। कोई डॉक्टर है। लिखा है। जैनसन्देश पढ़ा? कोई है। पुण्य की उपादेयता। (लेखक) डॉक्टर पुष्पमित्र जैन, एम.ए., पीएचडी. क्या कहे? डॉक्टर की उपाधि।

**मुमुक्षु :** पीएचडी, फिलोसफी के डॉक्टर हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वह डॉक्टर फिलोसफी के। यह फिलोसफी की खबर नहीं और यह... आहाहा! उसमें सब यह माण्डा लिखकर। पत्रकार कैसे?

**तातैं ग्यान विराग मिलि....** ज्ञायकभाव भगवान पूर्ण वस्तु स्वभाव की दृष्टि और राग से विरक्तता—यह दो—ज्ञान और वैराग्य मिलकर, **सिव साधै समकाल....** मुक्ति के मार्ग को यह समकाल में साधते हैं। समझ में आया? व्यवहार विकल्प और निश्चय चारित्र, यह दो साधे, ऐसा यहाँ कहा नहीं। समझ में आया? आवे यह भी बात। यह सब वहाँ आवे पुरुषार्थसिद्धि(उपाय) में आती है कि भाई! दोनों मोक्ष का मार्ग है, इसलिए एक यथार्थ और एक औपचारिक, ऐसा। परन्तु ज्ञान कराना हो वह समझावे न! २२२ में है न! पुरुषार्थसिद्धि (उपाय) (गाथा) २२२ न? २२२ में है। वही रखते हैं सब। देखो, यह दो मोक्षमार्ग है। परन्तु एक सत्यार्थ और एक झूठा। समझ में आया?

मैंने एक बार कहा था, हमारे पालियाद में एक वीसाश्रीमाली भूधरभाई था। वह उसकी पेढी में उसका बाप झूठा था। पेढ़ी में हुआ सात-आठ पेढ़ी में। सुरधन... सुरधन समझते हैं? बाप-दादा का पत्थर रखे न एक गाँव में, घर में। यहाँ तुम्हारे रखते हैं या नहीं? बाप-दादा हो न कोई पूर्व के हुए हों।

**मुमुक्षु :** वडवा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वडवा। हाँ, यह हमारे सुरधन हैं, वडवा थे वे (ऐसा कहे)। फिर धुने। एक ने फिर कहा, अरे भूधरभाई! यह तुम क्या करते हो? महाराज! मैं तो धुनते हुए कहता हूँ, कौन है कि झूठा, ऐसा कहूँ? परन्तु वह तो ठग हुआ, कहा। झूठा अर्थात् तेरा दादा झूठा, ऐसा समझे लोग। क्योंकि उसका नाम झूठा। बाप-दादा का नाम... सुरधन नहीं तुम्हारे? क्या होगा? कुछ है?

**मुमुक्षु :** सब जगह होते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब जगह होते हैं। चूल्हे में तो सर्वत्र राख ही होती है। दूसरा कुछ होगा? दो-पाँच पेढी का हो न। उसे बैठावे पथरा। आहाहा!

**मुमुक्षु :** उसकी वासना लगी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वासना। इसने उसे माना हो उसे कि ऐसा है और बैठाये।

हमारे परिवार में है संसार में। एक उमराला के पास कुछ है। लोनियाद या ऐसा गाँव। छोटी उम्र में देखा था। छोटी उम्र में, बहुत छोटी उम्र में, हों! ६-७ वर्ष उम्र में। तब कुछ लापसी-बापसी... मानी थी और गये थे। यह खबर है। एक वादी के पास है वह वडवा। वडवा को बैठाया हुआ। धूल भी नहीं, सुन न! आहाहा! वह कहे कि कौन है? मैं तो ऐसा कहूँ कि झूठा हूँ। परन्तु वह ऐसा समझे कि वह तेरा दादा झूठा है, वह आया है, ऐसा समझे। यह ७५ में बात हुई। ५२ वर्ष हुए। (संवत्) १९७५ में पालियाद में चातुर्मास था न! आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि यहाँ तो आत्मा का ज्ञान और राग से विरक्तता—दोनों मिलकर शिव साधे। आता है न! उस उपादान में यह आता है। ज्ञान क्रिया। बनारसीदास। हाँ, बनारसीदास ने कहा न, ज्ञान और क्रिया—दोनों। तू कहता है कि उपादान और निमित्त—दो से कार्य होता है, ऐसा नहीं। यह दो—आत्मा का ज्ञान और आत्मा में रमणतारूप चारित्र, उससे मुक्ति होती है। दो से होगी? अब सुन न...! हाँ, आता है न हाँ यह।

**तातैं ग्यान विराग मिलि....** आत्मा का अन्तर्मुख का विषय का ज्ञान अन्तर्मुख का और राग से विपरीतता अर्थात् राग से विरक्तता—यह दोनों मिलकर शिव साधे। समझ में आया? पाठ में तो ऐसा है। ८४ है न बाद में? दृष्टान्त है। परन्तु पाठ में ऐसा है। '**ज्ञानस्य संचेतनयैव नित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धं।**' भाई गये? ब्रह्मचारी थे न, गये? समझ में आया? ज्ञान का '**संचेतनयैव नित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धं।**' शुद्ध भगवान में एकाग्रता होने से वह ज्ञान का प्रकाश हो शुद्ध, उसे बन्ध नहीं है, ऐसा कहते हैं और '**अज्ञानसंचेतनया तु धावत् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि**' और राग की एकता का अज्ञानपने को चेतना, (उससे) दौड़कर बोधकर्म बँधता है। '**धावत् बोधस्य शुद्धिं**' और आत्मा की शुद्धि को रौंदता है। राग के प्रेम में—राग की रुचि में आत्मा की शुद्धि रूँध जाती है। आहाहा! '**बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि**' और बन्ध होता है, ऐसा। अज्ञान से तो बन्ध होता है। पुण्यपरिणाम अपने हैं, उनसे लाभ हो, ऐसी मान्यता से तो मिथ्यात्व का बन्ध होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अब **ज्ञान चारित्र पर पंगु अन्ध का दृष्टान्त।** ८४-८५।

★ ★ ★

## काव्य - ८४-८५

### ज्ञान चारित्र पर पंगु अन्ध का दृष्टान्त

(दोहा)

**जथा अंधके कंधपर, चढै पंगु नर कोइ।**
**वाके दृग वाके चरन, होंहि पथिक मिलि दोइ।।८४।।**

**जहां ग्यान किरिया मिलै, तहां मोख-मग सोइ।**
**वह जानै पदकौ मरम, वह पदमैं थिर होइ।।८५।।**

**शब्दार्थ:-पंगु=लँगड़ा। वाके=उसके। दृग=नेत्र। चरन=पैर। पथिक=रस्तागीर। क्रिया=चारित्र। पदकौ मरम=आत्मा का स्वरूप। पदमैं थिर होइ=आत्मा में स्थिर होवे।**

**अर्थः-जिस प्रकार कोई लँगड़ा मनुष्य अन्धे के कन्धे पर चढ़े, तो लँगड़े की आँखों और अन्धे के पैरों के योग से दोनों का गमन होता है।।८४।। उसी प्रकार जहाँ ज्ञान और चारित्र की एकता है, वहाँ मोक्षमार्ग है, ज्ञान आत्मा का स्वरूप जानता है और चारित्र आत्मा में स्थिर होता है।।८५।।**

काव्य-८४-८५ पर प्रवचन

**जथा अंधके कंधपर, चढै पंगु नर कोइ।**
**वाके दृग वाके चरन, होंहि पथिक मिलि दोइ॥८४॥**
**जहां ग्यान किरिया मिलै, तहां मोख-मग सोइ।**
**वह जानै पदकौ मरम, वह पदमैं थिर होइ॥८५॥**

ज्ञान से पंगु का दृष्टान्त। जैसे **अंधके कंधपर....** अन्धा हो, उसके कन्धे पर एक व्यक्ति बैठे तो वह मार्ग बतावे और अन्धा चले। वह पंगु। ऊपर पंगु। वह पग रहित यहाँ बैठे, वह (अन्धा) चले। इसी प्रकार ज्ञान है पंगु, मार्ग बताये कि ऐसा है, जो ऐसा है और चले वह चारित्र। स्वरूप में स्थिर हो, वह चले। ज्ञान पंगु है। जानने का काम करे और चारित्र स्थिर होने का काम करे। दोनों मिलकर गति हो, ऐसा कहते हैं। फिर से। **जिस प्रकार कोई लंगड़ा मनुष्य अन्धे के कन्धे पर चढ़े, तो लंगड़े की आँखों और अन्धे के पैरों के योग से दोनों का गमन होता है।** अन्धा चले और ऊपर (कन्धे पर) पंगु दिखलाये। इसी प्रकार चारित्रस्वरूप है, वह अन्धा है, जानता नहीं। और ज्ञान बताता है कि देख यह मार्ग। इसमें स्थिर होना, यह मार्ग। राग को छोड़ना, यह मार्ग। समझ में आया? आहाहा! दृष्टान्त दिया है।

**जथा अंधके कंधपर, चढै पंगु नर कोइ। वाके दृग वाके चरन,...** पंगु को आँखें और अन्धे को चरण है। इसी प्रकार ज्ञान मार्ग को बतलाता है कि यह मार्ग है। परन्तु स्थिर हो सकने की शक्ति तो चारित्र में है। आहाहा! चारित्र को अन्ध कहा है न यहाँ! क्योंकि वह जानता नहीं। ऐसा चारित्र यह है, वह भी ज्ञान जानता है; समकित यह है, वह भी ज्ञान जानता है। समकित और चारित्र कुछ जानते नहीं। वे तो अस्तित्व रखते हैं।

आहाहा! समझ में आया? **वाके दृग वाके चरन, होंहि पथिक मिलि दोइ...** वह पंथ काटे दोनों इकट्ठे होकर, ऐसा कहते हैं।

**जहां ग्यान किरिया मिलै,....** जहाँ आत्मा का ज्ञान सम्यक् और जहाँ स्वरूप की स्थिरतारूपी क्रिया अर्थात् चारित्र.... क्रिया अर्थात् चारित्र है, देखो, अन्दर भी लिखा है। क्रिया अर्थात् चारित्र। राग की क्रिया, वह यहाँ बात नहीं। चारित्र, वह भी क्रिया है। ज्ञान ने जाना कि आत्मा शुद्ध और पवित्र है और राग, वह हेय है। ऐसा जानकर चारित्र की क्रिया अन्दर स्वरूप में स्थिर होती है, उसे चारित्र की क्रिया कहा जाता है। आहाहा!

**जहां ग्यान किरिया मिलै, तहां मोख-मग सोइ...** देखो, यह मोक्षमार्ग। वह व्यवहार डाला नहीं इसमें। आत्मा का ज्ञान और आत्मा में स्थिरता, वह क्रिया, चारित्र, वीतरागी परिणति।—दोनों होकर मोक्षमार्ग है, ऐसा यहाँ कहते हैं। सम्यग्दर्शन और चारित्र—दो हैं, वे अन्ध हैं। सम्यग्ज्ञान, वह नेत्र है, इसलिए ही बीच में डाला है कि ज्ञान समकित को जाने, ज्ञान चारित्र को जाने। समझ में आया? चारित्र, चारित्र को नहीं जानता। स्थिरता है, वहाँ ज्ञान कहाँ है? समकित, समकित को नहीं जानता।

**मुमुक्षु :** चारित्र और श्रद्धान दोनों जड़ हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जड़ नहीं, ज्ञान अपेक्षा नहीं। इस अपेक्षा से उसे अनुपयोग कहा है, उसे अनुपयोग कहा है। सप्तभंगी ली है वहाँ ज्ञान उपयोग, वह चेतना चेतन और इसके अतिरिक्त की दूसरी चीज़, वह अनुपयोग। इसकी सप्तभंगी है। स्याद्वाद मंजरी में। क्या कहा? फिर से।

कि भगवान आत्मा में जो ज्ञानस्वभाव है, उसे जिसने प्रगट किया ज्ञान, वह ज्ञान द्रव्य को जाने, गुण को जाने, श्रद्धा को जाने, चारित्र को जाने—सबको जाने। परन्तु जो जानकर स्थिर हुआ है क्रिया—चारित्र—रमणता, वह चारित्र (वह) ज्ञान नहीं। इसलिए चारित्र, चारित्र को नहीं जानता। आहाहा! समकित, समकित को नहीं जानता। ज्ञान जानता है कि यह श्रद्धा। वस्तु की श्रद्धा निर्विकल्प की, वह सम्यक्त्व। इसलिए बीच में डाला है न? '**दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**' अनुभव हुआ, वह ज्ञान हुआ। उसमें प्रतीति हुई, वह सम्यक् हुआ। उसमें स्थिर हो, वह चारित्र हुआ। परन्तु वह चारित्र...

ज्ञान ज्ञान को जाने, ज्ञान समकित को जाने, ज्ञान द्रव्य को जाने, ज्ञान चारित्र को जाने। आहाहा! यह जीव है, वह जाननेवाला कौन? छद्मस्थ को भी ज्ञान में यह बात आये बिना, यह ऐसा है (ऐसा) आये बिना वह जाने कैसे? केवली को... होता है।

यहाँ कहते हैं, **ग्यान किरिया मिलै, तहां मोख-मग सोइ...** लो। जहाँ आत्मा का ज्ञान... आत्मा का ज्ञान, राग आदि और पर का नहीं, वह नहीं, वह नहीं कुछ। आत्मज्ञान और उसमें क्रिया अर्थात् स्वरूप में रमणता। अन्दर ध्यान में रम जाना, वह क्रिया।—यह दो मिलकर मोक्षमार्ग सोई। दो मिलकर मोक्ष का मार्ग है। व्यवहार मिलकर मोक्षमार्ग है, यह है नहीं। चिल्लाहट मचाये न लोग...। होता है। अरे! मार्ग ही ऐसा है, भाई! दूसरे प्रकार से किस प्रकार तुझे बात बैठेगी?

भगवान (आत्मा) अपने स्वरूप का ज्ञान करके और वह भगवान अपने में रमे, वह दो होकर मोक्ष का मार्ग है। वह सबमें बाहर की क्रियाकाण्ड में हो न, सब हो न, उसमें प्रमुख हो, वह सब यह मानते हों। अब पुण्य से धर्म होता है, यह व्यवहार करते-करते होता है और यह सब।

**मुमुक्षु :** किसी काल में नहीं होता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भाई, भाई हों न प्रमुख। सब कहे कि यह बराबर मार्ग। यहाँ कहते हैं कि यह मार्ग नहीं। वस्तुस्वरूप भगवान आत्मा का अन्तर ज्ञान और उसमें लीनता—दो होकर मोक्ष का मार्ग साधे। निश्चय और व्यवहार दो होकर साधे, ऐसा कहा नहीं यहाँ। समझ में आया? तकरार—विवाद रहा ही करता है सब।

**वह जानै पदकौ मरम,...** ज्ञान तो आत्मा के पद का मर्म जाने कि ओहोहो! अतीन्द्रिय आनन्द और वीतराग मूर्ति हूँ। ऐसा ज्ञान जाने। **वह जानै पदकौ मरम,...** लो। आत्मा का स्वरूप। और **वह पदमैं थिर होइ।** चारित्र, स्वरूप में रमणता वह चारित्र। आनन्द स्वरूपं चरणं चारित्र, आता है न वह, प्रवचनसार (गाथा ७ में)। स्वरूप में चरना, वह चारित्र। अपने यहाँ रखा है यह। नहीं दो दरवाजों में? एक दरवाजे में 'सर्वगुणांश समकित' और एक दरवाजे में 'स्वरूप में चरना, वह चारित्र'। दोनों और स्वाध्यायमन्दिर के दरवाजे के बाहर (यह लिखा है)। सर्वगुणांश समकित। समझ में आया? आहाहा!

अनन्त-अनन्त गुणें की संख्या का पिण्ड प्रभु, ऐसे अनन्त गुणों को जानते हुए—श्रद्धा करते हुए उसमें अनन्त गुणों की शक्ति की व्यक्तता आंशिक सब गुण प्रगट होते हैं। क्योंकि द्रव्य अभेद है न? आंशिक प्रगट होते हैं। पूर्णता में भेद पड़ता है, क्योंकि गुणभेद चीज़ है न? गुणभेद है, इसलिए पूर्णता होने में अन्तर पड़ता है। परन्तु प्रगट होने में तो सब आंशिक प्रगट होते हैं, नहीं तो अभेद द्रव्यदृष्टि हुई नहीं। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि यह अनन्त गुणों की दशा... मिथ्यात्व था, वहाँ वह दशा—पर्याय व्यक्त नहीं थी, दशा व्यक्त नहीं थी। वस्तु थी, परन्तु वस्तु का अनुभव नहीं इसलिए व्यक्तता नहीं थी। व्यक्तता राग-द्वेष और मिथ्यात्व की थी। समझ में आया? और जब दृष्टि पलटी, ज्ञायकमूर्ति आत्मा शुद्ध चैतन्यघन (ऐसी दृष्टि) पलटने पर मिथ्यात्व और राग-द्वेष के अंश गये और उसके बदले अनन्त गुणों के अंश प्रगट हुए। और फिर स्वरूप में रमे, वह चारित्र। पहले स्वरूप का ज्ञान हुआ, ऐसा कहा न! **वह जानै पदकौ मरम, वह पदमैं थिर होइ।** चारित्र आत्मा में स्थिर होता है। स्वरूप में रमण करता है, लो। अब। **ज्ञान ज्ञेय की परिणति।**

★ ★ ★

## काव्य - ८६-८७

**ज्ञान और क्रिया की परिणति** (दोहा)

**ग्यान जीवकी सजगता[१], करम जीवकी भूल।**
**ग्यान मोख अंकूर है, करम जगतकौ मूल।।८६।।**

**ग्यान चेतनाके जगे, प्रगटै केवलराम।**
**कर्म चेतनामैं बसै, कर्मबंध परिनाम।।८७।।**

**शब्दार्थ:-सजगता=सावधानी। अंकूर=पौधा। केवलराम=आत्मा का शुद्ध स्वरूप। कर्म चेतना=ज्ञानरहित भाव। परिनाम=भाव।**

**अर्थ:-ज्ञान जीव की सावधानता है, और शुभाशुभ परिणति उसे भुलाती है,**

१. 'सहजगति' ऐसा भी पाठ है।

**ज्ञान मोक्ष का उत्पादक है और कर्म जन्म-मरणरूप संसार का कारण है।।८६।। ज्ञानचेतना का उदय होने से शुद्ध परमात्मा प्रगट होता है, और शुभाशुभ परिणति से बन्ध के योग्य भाव उपजते हैं।।८७।।**

काव्य-८६-८७ पर प्रवचन

**ग्यान जीवकी सजगता, करम जीवकी भूल।**
**ग्यान मोख अंकूर है, करम जगतकौ मूल॥८६॥**
**ग्यान चेतनाके जगे, प्रगटै केवलराम।**
**कर्म चेतनामैं बसै, कर्मबंध परिनाम॥८७॥**

कहते हैं, ज्ञान जीव की सावधानी है। आहाहा! सावधान होकर जगा कि मैं तो अकेला आनन्द और ज्ञान हूँ। मेरे स्वरूप में विकार, संसार-फंसार है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान जीव की जागृत दशा है, सावधानी है। **करम जीवकी भूल...** यह पुण्य-पाप, वह जीव की भूल है, ऐसा कहते हैं। पोपटभाई! अब भूल, वह आत्मा को अभूल का कारण होगी? देखो! यहाँ तो भूल का अर्थ किया है कि शुभाशुभ परिणति उसे भुलाती है। मूल तो भूल है। पुण्य और पाप का राग, वह भूल है। भूल तो समझते हैं न? दोष। भूल नहीं समझे? हिन्दी में है या नहीं?

**मुमुक्षु :** गलती।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ भूल शब्द है। हिन्दी। **करम जीवकी भूल।** यह हिन्दी है यह। ज्ञान जीव की जागृति। सावधान... सावधान... मैं तो चैतन्यमूर्ति आनन्द हूँ, ऐसा ज्ञान में जागृत दशा की सावधानता होती है। और **करम जीवकी भूल...** शुभाशुभ परिणति तो भुलाती है अथवा भूल है, ऐसा।

**ग्यान मोख अंकूर...** ज्ञान अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति, वह ज्ञान, वह मोक्ष का अंकुर है, लो। मोक्ष का उत्पादक है। आहाहा! आत्मा अखण्ड आनन्द प्रभु का ज्ञान और वह ज्ञानस्वरूप ऐसी श्रद्धा, उसका ज्ञान और रमणता, वह तीनों ज्ञान कहलाते हैं। ज्ञानस्वरूप भगवान का श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र—तीनों ज्ञान।

यह ज्ञान **मोख अंकूर है...** मोक्ष की उत्पत्ति का कारण, यह ज्ञानस्वभाव है। **करम जगतकौ मूल।**—और राग तो संसार का मूल है। आहाहा! पुण्य को संसार का मूल कहने से (अज्ञानी) शोर मचाते हैं। मोक्ष का उपाय है। बन्ध का उपाय नहीं। अब ऐसा अर्थ करते हैं पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। अरे भगवान! उसके सामने जवाब दिया है, हों! हाँ, एक जगह दिया है। खोटी बात है। दूसरी जगह। इसमें नहीं उसमें। उसमें आया है जैनसन्देश में। भूल है यह बात। मोक्ष का उपाय बन्ध हो सकता ही नहीं। ऐसा तो जवाब देनेवाले अब स्थूलरूप से तो है न। अब तो सबको....

**ग्यान चेतनाके जगे, प्रगटै केवलराम....** ज्ञानचेतना... पुण्य-पाप के राग, वह कर्मचेतना और उसके फल को भोगना, वह कर्मफलचेतना, उससे रहित, वह ज्ञानचेतना। **ग्यान चेतनाके जगे,...** यह चौथे गुणस्थान में इस ज्ञानचेतना की बात है। पूर्ण ज्ञानचेतना तेरहवें में। **प्रगटै केवलराम...** आहाहा! आतमाराम। शुद्ध परमात्मा प्रगट होता है। अन्तर ज्ञान की कला से—सम्यग्ज्ञान की कला से, जैसे दूज हो और पूर्णिमा हो, वैसे सम्यग्ज्ञान की कला से परमात्मा होता है। राग की कला से और व्यवहार से नहीं, ऐसा कहते हैं। **कर्म चेतनामैं बसै कर्मबंध परिनाम...** राग के परिणाम हैं, वे कर्मचेतना हैं। वे तो कर्मबन्ध के परिणाम हैं। वे कहीं आत्मा के अबन्धपरिणाम नहीं। बन्ध के परिणाम और चैतन्य के परिणाम भिन्न हैं। चेतन के वीतरागी परिणाम से मुक्ति होती है। राग के परिणाम से तो बन्ध होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १३८, श्रावण कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक १८-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद ८८ से ९२**

यह समयसार नाटक, सर्वविशुद्धि द्वार। आत्मा परम आनन्द का नाथ प्रभु शुद्ध है। उसमें अनादि काल से कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से उसमें जो विकार भासित होता है, वह उसका स्वरूप नहीं। वह तो उपाधि हुई है। इसलिए कहते हैं कि कर्म और ज्ञान के भिन्न-भिन्न प्रभाव। है न? ८८। आत्मज्ञान का प्रभाव भिन्न है और कर्म के निमित्त का प्रभाव—दोनों चीज़ अत्यन्त भिन्न हैं।

★ ★ ★

**काव्य - ८८-८९**

**कर्म और ज्ञान का भिन्न-भिन्न प्रभाव**
(चौपाई)

**जबलग ग्यान चेतना न्यारी[1]।**
**तबलग जीव विकल संसारी।।**
**जब घट ग्यान चेतना जागी।**
**तब समकिती सहज वैरागी।।८८।।**

**सिद्ध समान रूप निज जानै।**
**पर संजोग भाव परमानै।।**
**सुद्धातम अनुभौ अभ्यासै।**
**त्रिविधि कर्मकी ममता नासै।।८९।।**

**अर्थः-जब तक ज्ञानचेतना अपने से भिन्न है, अर्थात् ज्ञानचेतना का उदय नहीं हुआ है, तब तक जीव दुःखी और संसारी रहता है, और जब हृदय में ज्ञानचेतना जागती**

१. 'भारी' ऐसा भी पाठ है।

**है, तब वह अपने आप ही ज्ञानी वैरागी होता है।।८८।। वह अपना स्वरूप सिद्ध सदृश शुद्ध जानता है, और पर के निमित्त से उत्पन्न हुए भावों को पर स्वरूप मानता है। वह शुद्ध आत्मा के अनुभव का अभ्यास करता है और भावकर्म द्रव्यकर्म तथा नोकर्म को अपने नहीं मानता।।८९।।**

## काव्य-८८-८९ पर प्रवचन

**जबलग ग्यान चेतना न्यारी।**
**तबलग जीव विकल संसारी॥**
**जब घट ग्यान चेतना जागी।**
**तब समकिती सहज वैरागी॥८८॥**

**सिद्ध समान रूप निज जानै।**
**पर संजोग भाव परमानै।**
**सुद्धातम अनुभौ अभ्यासै।**
**त्रिविधि कर्मकी ममता नासै॥८९॥**

**जबलग ग्यान चेतना....** भारी भी हो और न्यारी, दोनों शब्द आते हैं। हाँ, नीचे है। अर्थात् क्या ? कि अपना आनन्द और ज्ञानस्वभाव जब तक उसे अनुभव में और दृष्टि में आया नहीं, तब तक ज्ञानचेतना अपने स्वरूप से भिन्न राग और द्वेष, पुण्य और पाप के भाव में चेत गयी होती है। समझ में आया ? **जब तक ज्ञानचेतना अपने से भिन्न है अर्थात् ज्ञानचेतना का उदय नहीं हुआ है।** आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, ऐसी अन्तर्दृष्टि का अनुभव जब तक—जहाँ तक न हो, तब तक वह कर्मचेतना है। पुण्य और पाप के विकल्प को चेतता है, उसे एकत्व मानता है। तब तक जीव विकल—मूर्ख और संसारी है। दु:खी और संसारी है। अपना स्वभाव, भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान उसका स्वरूप है। ऐसा अन्तर में दृष्टि से विकास जहाँ तक न करे, तब तक वह पुण्य और पाप के विकल्प की एकता में दु:खी है। बराबर होगा ? कहाँ इसमें दु:ख लगे ? इसमें तो बाहर में कहीं दु:ख नहीं लगता।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहाँ दिखता है? लड़का कमाता है। चूड़ियों में पैसा पैदा होते हैं। घर के बड़े मकान हुए। अब इसमें दुःख कहाँ दिखता है? अन्दर राग और द्वेष, पुण्य और पाप के जो विकल्प—वृत्तियाँ हैं, वह दुःख है। आहाहा!

भगवान आनन्दस्वरूप होने पर भी, उसके ज्ञान की अन्तर की एकाग्रता का भान न हो, तब तक उसे पुण्य और पाप के राग के साथ एकताबुद्धि है। वह दुःखी और वह संसारी है। आहाहा! समझ में आया? **जबलग ग्यान चेतना न्यारी....** अर्थात् कि आत्मा के ज्ञान की एकाग्रता से भिन्न ज्ञानचेतना भिन्न पड़ती है। राग और पुण्य और पाप में जुड़ जाता है। आहाहा! तब तक तो जीव विकल—दुःखी है। यह राजा दुःखी, रंक दुःखी, कीड़ा दुःखी, कुंजर दुःखी, यह देव दुःखी। सेठ! देव दुःखी और सेठ दुःखी। आत्मा... देखो, सेठ! सबको देव ठहराते हैं यह मुफ्त। इस क्षेत्र के बड़े लोग कहलाये न ऐसा कि देव कहलाये यह, ऐसा। आहाहा! प्रभु आत्मा की दिव्यशक्ति आनन्द और ज्ञान का जिसे अन्तर में एकाग्रपना और भान नहीं, वे सब शुभ और अशुभराग में (कि जो) कर्मचेतना है, उस विकाररूपी कार्य में चेत गये प्राणी अनादि के दुःखी हैं और उसे संसारी कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

**जब घट ग्यान चेतना जागी....** जब घट-देह के अन्दर में भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है, ऐसा अन्तर में ज्ञान सम्यग्दर्शन हुआ। जिसे प्रतीति में आत्मा आनन्द और ज्ञान है, ऐसा ज्ञान भान होकर प्रतीति हुई, चेतना जागी। 'जागकर देखूँ तो जगत दीखे नहीं।' अन्तर में, हों! जगत जगत में है। 'नींद में अटपटा खेल देखे।' अज्ञान में। अरे! चैतन्य महाराज भगवान प्रभु को जाने बिना, देखे बिना, स्वीकार बिना, एकता बिना, इसे राग की और पुण्य की चाहे तो व्रत-तप आदि राग हो, परन्तु उसमें एकता है, वह दुःख है और वह संसारी प्राणी है, ऐसा कहते हैं। चाहे तो नग्न साधु होकर बैठा हो बाहर से। समझ में आया? परन्तु अन्दर में यह दया-दान-व्रत विकल्प है, वह कर्तव्य है, वह मेरा कर्तव्य है, (ऐसी) उनमें उसकी एकता है, वह दुःखी और संसारी है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

**जब घट ग्यान चेतना जागी....** परन्तु ज्ञानस्वरूप और आनन्दमूर्ति मैं आत्मा अनादि-अनन्त हूँ, ऐसा अन्तर में भान और ज्ञान की जागृति हुई, तब समकिती—तब सच्ची श्रद्धावाला और सच्चे भानवाला सहज वैरागी। अर्थात् राग और पर से उसका स्वाभाविक वैराग्य होता है। अज्ञानी को राग में एकता है। ज्ञानी को राग से विरक्तता—वैराग्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह ३२वाँ कलश है न यह, नीचे ३२ कलश है न। उसका (पद) है यह।

**कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः।**
**परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे।।३२।।**

आहाहा! कहते हैं कि **सिद्ध समान रूप निज जानैं....** आहाहा! पुण्य के भाव दया-दान-व्रत-तप-पूजा आदि का विकल्प—वृत्ति—राग में जब तक बुद्धि, रुचि, कर्तापना है, तब तक वह दुःखी संसारी है। सिद्ध... जब ज्ञानचेतना जागी, मैं तो ज्ञान और आनन्द सच्चिदानन्द प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप हूँ, ऐसा अन्तर में दृष्टि में सम्यग्दर्शन में भासित हुआ, तब वह पुण्य और पाप के दोनों राग से स्वाभाविक वैराग्य अर्थात् विरक्त होता है। समझ में आया? आहाहा! तब वह सुखी है, ऐसा कहते हैं।

**सिद्ध समान रूप निज जानैं....** ओहो! मेरी चीज़ तो अकेली सिद्ध ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता, स्वच्छता के सागर का पूरा आत्मा महासमुद्र है। आहाहा! ऐसी चैतन्यस्वभाव की शक्ति की प्रतीति और अनुभव हुआ, वह सहज वैरागी है। पूर्ण स्वरूप का भान और राग से वैराग्य। समझ में आया? दो बातें ली हैं, देखो! तब समकिती... अर्थात्? ज्ञानचेतना जागी। 'मैं तो ज्ञान... ज्ञान...' बात तो भाई सूक्ष्म है, परन्तु मार्ग तो यह है। सुखी होने का पंथ, आत्मा आनन्दमूर्ति में एकाग्र होकर अनुभव करना, वह सुखी होने का पंथ है। बाकी सब दुःख के रास्ते—दुःख के पंथ में दौड़ गये हैं। कठिन लगे।

**सिद्ध समान रूप निज जानैं....** अज्ञानी राग की एकता में संसारी और दुःखी था। ज्ञानी स्वभाव की एकता में राग का वैराग्य था, इसलिए वह सिद्ध समान अपने स्वरूप को जानता है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो', आता है न! 'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो, मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो, ज्ञानकला

उपजी अब मोहि, कहुं गुणनाटक आगम केरो, तासु प्रसाद सधै सिव मारग, वेगे मिटै घट वास बसेरो।' क्या कहते हैं ? चेतनरूप... मैं तो चेतन ज्ञानानन्द ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाववाला हूँ। आहाहा ! यह क्रिया करूँ और दूसरे को समझाऊँ और ऐसा विकल्प, वह मुझमें नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? यह बात है, भाई !

**मुमुक्षु :** संसारखाता....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** संसारखाता बन्ध। स्वभाव में संसार, राग है ही नहीं। चैतन्यस्वभाव का भान हुआ, वहाँ सिद्ध समान है। आहाहा ! समझ में आया ?

**सिद्ध समान रूप निज जानैं....** अपने स्वरूप को सिद्ध समान जाने। परमात्मा अशरीरी 'णमो लोए सव्व सिद्धाणं।' वे सिद्ध भगवान हैं, ऐसा ही मैं हूँ। आहाहा ! ऐसा ज्ञानी—धर्मी—समकिती सुख के पंथ में मुड़ा हुआ, ढला हुआ ऐसे आत्मा को सिद्ध समान जाने। आहाहा ! पामर और रागवाला और संसारी, ऐसा समकिती (अपने को) न जाने। आहाहा ! गजब ! अबद्धस्पृष्ट आत्मा है। राग और कर्म से बँधी हुई चीज़ ही नहीं। ऐसी राग और कर्म से भिन्न पड़कर '**णाण सहाव अधियं मुणदि आदं।**' आहाहा ! ३१ गाथा।, समयसार। चैतन्य का पिण्ड मैं तो हूँ। उसमें आवे और लीन हो तो आनन्द और शान्ति आकर प्राप्त हो। उसमें कुछ दुःख हो और आकुलता, वह स्वरूप में है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

**पर संजोग भाव पर मानै....** निज जाने और पर माने। दो बात। धर्मी जीव पर संयोगीभाव—कर्म के निमित्त के संग से उत्पन्न हुए दया-दान-व्रत-भक्ति आदि के भाव को पर माने। स्त्री-पुत्र और परिवार और मकान, पैसा, वह तो कहीं रह गये। आहाहा ! कहो, सेठ ! यह हमारे पैसे हैं और यह हमारे डालचन्दजी हैं और यह हमारे मकान हैं।

**मुमुक्षु :** प्रत्यक्ष तो दिखता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह प्रत्यक्ष दिखता है मूढ़ को, ऐसा कहते हैं। इसका भगवान अन्दर प्रत्यक्ष है, ऐसा इसे भासता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

**पर संजोग भाव परमानै....** आहाहा ! धर्मी जीव को अपना स्वरूप तो सिद्ध समान ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव भासे, तब उसे धर्मी कहा जाता है। यह व्रत, तप, पूजा, और

भक्ति करे, इसलिए धर्मी है, ऐसा नहीं। वह तो राग है। सेठी! आहाहा! रागवाला हूँ— ऐसी जब तक मान्यता है, वहाँ कर्मचेतना खड़ी है (और) ज्ञानचेतना का जहाँ नाश है। आहाहा! ऐ पण्डितजी! यह बात... परन्तु संसार में रहकर ऐसा ज्ञान होता है? संसार में है ही नहीं न, कहा न? राग में आत्मा नहीं और आत्मा में राग नहीं। फिर संसार कहाँ रहा? आहाहा! कर्म के संयोग से संयोगीभाव है, उसे तो पर जानता है, वह अपनी चीज़ में उन्हें मिलाता नहीं, उनका स्वामी होता नहीं, उसे धर्मी कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **पर संजोग भाव पर मानै....** कर्म के निमित्त से वृत्तियों का उत्थान हो शुभाशुभ का, उसे धर्मी पर मानता है। उसका स्वामी कर्म-पुद्‌गल है, मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**सुद्धातम अनुभौ अभ्यासै....** धर्मी का अभ्यास तो शुद्ध अनुभव करे, वह उसका अभ्यास है। राग करना और राग में एकता होना, वह अभ्यास धर्मी का नहीं। आहाहा! तो संसार के काम व्यवस्थित व्यवस्था से करना, वह धर्मी का कर्तव्य नहीं। अज्ञानी उसे मानता है। कहो, समझ में आया? आहाहा! **सुद्धातम अनुभौ अभ्यासै....** सुखी होनेवाला धर्मी सुखस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि अन्तर में आनन्द के निधान पर होने से उस शुद्ध का अभ्यास करता है, अशुद्ध का नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो न, किस शैली से बात करते हैं! कहो, जयसुखभाई! ऐसा गजब धर्म है, लो! ऐ निरंजन! कहाँ वहाँ था वहाँ? अमेरिका में क्या था? होली थी सब राग की, दु:खी होने की। पाँच वर्ष रह आया है न? अमेरिका में गया था। अपने हिम्मतभाई नहीं वह मुम्बई? जोबालिया वाँचनकार पण्डित, उनका पुत्र। हिम्मतभाई नहीं? यह चन्दुभाई के काका, उनका पुत्र। लिखता था कि यहाँ सुख नहीं, ऐसा लिखता वहाँ। किसी समय पत्र में लिखता। आहाहा! धूल भी नहीं भाई! तुझे खबर नहीं। यह सब पठन रागवाला और दु:खवाला है। समझ में आया? उसमें विकल्प की वृत्तियाँ, इसलिए दु:खरूप और वह तो संसारदशा है। आहाहा!

भगवान आत्मा का पठन... वह कहता है न? अपने है न दिलीप, जादवजीभाई का। जयन्तीभाई है या नहीं, गये? जयन्तीभाई का पुत्र। है? उनका पुत्र है नहीं १२ वर्ष का? १३वाँ लगा। वह कहता है कि पढ़ना, अब पठन... पठन यह तो... उसका पिता

कहता है, चल पढ़ने। अब पढ़े अब। ऐसा पठन तो अनन्त बार किया। क्यों पठन कुछ याद नहीं ? ऐसा कहता है। पढ़ा सच्चा हो तो याद रहना चाहिए न! वह तो सब खोटा-खोटा गप्प मारी है, कहे। आहाहा! वह पठन कैसा ? ऐसा कहता है। और हमारे एक यह प्रवीण का पुत्र नहीं बैठता था यहाँ ? लिखता नहीं यहाँ ? प्रवीणभाई। वह लड़का भी ऐसा बोला था। भाई कहे कि पढ़ना। परन्तु अब पढ़े क्या ? पढ़-पढ़कर यह पाप करने की अपेक्षा मुझे विरक्ति लेकर बैठना ठीक लगता है। मैंने कहा, यह सब बाप है, वह पुत्र के लिये ठगों की टोली और पुत्र है, वह बाप के लिये ठगों की टोली है सब। उसे चैन न आने दे। हाँ, आयी थी न वह।

बाप कहे, परन्तु तुझे यह पाल-पोसकर बढ़ा किया है, बड़ा हो। कमाये, इसके लिये तुझे यह किया है। और तू भाव करके मरकर कहाँ जाये, वह हमारे यहाँ कहाँ स्नान है ? तू मर जाये ऐसे तो स्नान आवे कि हाँ... कमानेवाला गया। तू मरकर कहाँ जाये, उसका स्नान यहाँ कहाँ है ?

**मुमुक्षु :** तो किसका स्नान है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसका, वह कमानेवाला जाये, उसका स्नान है, उसका स्नान है। वह मर गया और कहाँ गया दुःख में, उसका इसे स्नान नहीं (कि) जो रोवे। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं, मरकर बेचारा कहीं पशु में गया हो। जवान व्यक्ति हो, विषय का रस हो, इज्जत निकालने का भाव हो। दूसरे से अधिक होकर कुछ रहना जीवन में, ऐसा भाव हो, वह तो मरकर ढोर में जाये। या ईयळ में, या चींटी में और या मकोड़ा और या पशु और ऊँट और गधे में जाये। बेचारा माँस-बाँस न खाता हो इसलिए नरक में न जाये, ऐसा। कहो, समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, अज्ञानी संयोगी विकल्प को अपना मानता है, वह दुःखी और संसारी है। धर्मी परसंयोगीभाव को अपना नहीं मानता, मैं सिद्ध समान ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसा जानता हुआ, सुखी और वह सिद्ध है। वह (अज्ञानी) दुःखी और संसार है। भाई! ऐसा लिया है इसमें। पारस्परिक लिया है। यह सम्यग्दर्शन हुआ तो सिद्ध, सुखी और

सिद्ध है। जिसे आत्मा का भान निजकला खिली। आहाहा! चिदानन्द भगवान आत्मा को अन्तर में ज्ञान का भाव जगा और उठा, वह कहते हैं कि सिद्ध है, वह सुखी है। आहाहा! सेठी! आहाहा! छह खण्ड के राज में पड़ा समकिती, परन्तु वह राज में नहीं और राग में भी नहीं। आहाहा! सच्चिदानन्द निर्मल सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने जो आत्मा देखा और अनुभव किया, ऐसा जो देखता और जानता है, वह सिद्ध समान है और सुखी है। मूलचन्दभाई! यह सब बाहर के क्रियाकाण्ड करनेवाले, व्रत और दया और व्रत हम पालते हैं और हम तपस्या करते हैं। वे सब राग के कर्ता और राग की क्रिया के स्वामी, वे संसारी और दु:खी हैं। आहाहा! समझ में आया?

**सुद्धातम अनुभौ अभ्यासै.... 'नैष्कर्म्यमवलंबे'** है न, उसका आया। **त्रिविध कर्म की ममता नासै।** द्रव्यकर्म—जड़, भावकर्म—पुण्य-पाप के विकल्प, नोकर्म—वाणी और शरीर।—इन तीनों का, आत्मा शुद्धस्वरूप का अन्तर अनुभव में तीनों का नाश होता है। कहो, समझ में आया? कोई अपवास करे और व्रत पाले और नाश हो, ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। गजब! **त्रिविध कर्म की ममता नासै।**

**ज्ञानी की आलोचना।** प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान दोनों हो गये। वह आलोचना का आया अब। नीचे है न। **'यदहमकार्षं यदहमचीकरं यत्कुर्वन्तमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं, मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति'** ऐसे तो मिच्छामि दुक्कडं बहुत लिये प्रतिक्रमण संवत्सरी के आड़ में। यह चिल्लाहट सब इकट्ठे होकर। मिच्छामि दुक्कडं... मिच्छामि दुक्कडं... यह मिच्छामि दुक्कडं नहीं अब। वह तो वाणी जड़ है। उसमें विकल्प उठे कि मिच्छामि दुक्कडं वह पुण्य और राग है। वह मिच्छामि दुक्कडं नहीं। शाम-सवेरे किया होगा न प्रतिक्रमण या नहीं? गर्म पानी पी-पीकर। मिच्छा तो सत्यस्वरूप... देखो, यह आता है।

★ ★ ★

## काव्य - ९०

**ज्ञानी की आलोचना** (दोहा)

**[1]ग्यानवंत अपनी कथा, कहै आपसौं आप।**
**मैं मिथ्यात दसाविषै, कीने बहुविधि पाप।।९०।।**

**अर्थ:-ज्ञानी जीव अपनी कथा अपने ही से कहता है कि मैंने मिथ्यात्व की दशा में अनेक प्रकार के पाप किये।।९०।।**

### काव्य-९० पर प्रवचन

**ग्यानवंत अपनी कथा, कहै आपसौं आप।**
**मैं मिथ्यात दसाविषै, कीने बहुविधि पाप॥९०॥**

आलोचना करते हैं यह। **ग्यानवंत अपनी कथा,** मैं तो चैतन्य शुद्ध आनन्द और ज्ञान की मूर्ति। यह व्रत के विकल्प और तप का विकल्प और पूजा का राग, वह मेरी चीज़ में है नहीं। ऐसा ज्ञानी अपनी कथा पूर्व की जानता और कहता है। **कहै आपसौं आप, मैं, मिथ्यात दसाविषै,...** अरे, मैंने भ्रमणा में पुण्य-पाप के परिणाम की विकारी क्रिया मेरी (मानी), उसमें **दसाविषै कीने बहुविधि पाप।** बहुत पाप किये। समझ में आया? ऐसी आलोचन करता है। वह पाप और पुण्य मेरी चीज़ नहीं। उसे मैंने करके मेरा माना, वह मिथ्यात्व में बहुत पाप मैंने किये थे। आहाहा! मिच्छामि दुक्कडं ऐसा कहे और वह विकल्प और वाणी मेरी है... वह ऐसा कहते हैं कि मैंने ऐसे पाप किये, हों! मुझे मेरी चीज़ की खबर नहीं थी। मैं एक सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूपी मेरी जाति, सिद्ध की होड़ में बैठनेवाला मैं, सिद्ध की संख्या में बैठनेवाला मैं, वह यह संसारी की संख्या में मैंने मिथ्यात्वभाव से विकार किये। आहाहा! समझ में आया?

**कीने बहुविधि पाप।** लो। वापस एक प्रकार नहीं, बहुत प्रकार, ऐसा। पुण्य और

१. यदहमकार्षं यदहमचीकरं यत्कुर्वन्तमप्यन्यं समन्वज्ञासिषं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति।

पाप सब पाप है यहाँ, हों! आहाहा! एक ओर चैतन्यराम तथा एक ओर पुण्य की विकल्प से लेकर पूरा गाँव अर्थात् लोक—दोनों अत्यन्त भिन्न चीज़ें हैं।

**मुमुक्षु :** यह ज्ञानी की बातें हैं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्ञानी की यह बात है। अज्ञानी तो राग को अपना मानता है, संसारी और दुःखी है। ऐसी तो बात है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे पाँच-पाँच लाख पैदा करता हो महीने के और हूंफ की भात पड़े ऐसे, आहाहा! आठ-आठ पुत्र हों, पाँच-पाँच हाथ, चार हाथ के लम्बे, एक-एक पुत्र तीन-तीन लाख, दो-दो लाख पैदा करता हो और बापूजी... बापूजी... बापूजी (करता हो)। आहाहा! मूढ़ है, कहते हैं, ... सुन न! दुःखी... दुःखी... दुःखी। ऐई, मूलचन्दभाई! तुम्हारे दो गये हैं न अमेरिका में? इनके दो गये हैं वहाँ। मिले हो तुम?

**मुमुक्षु :** हाँ। वे हमारे बगल में रहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा? कहो, समझ में आया? आहाहा!

अमेरिका से उतरे तो दूसरे को ऐसा लगे कि आहाहा! यह तो कोई दैव में से उतरा। यह पढ़कर टोपा पहनता हो न सब वह और हाथ में एक छोटी लकड़ी-लकड़ी छोटी लकड़ी एक रखे ऐसे। और उतरा तो दैव में से आया। दुःखी का सरदार है, सुन न अब! यह तुम्हारा पुत्र गया था, पौत्र। है या नहीं?

**मुमुक्षु :** पालीताणा गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पालीताणा गया। यह शान्तिभाई का पुत्र, वह भी गया था। परन्तु उसे ऐसा हो जाये कि आहाहा! कितना पढ़ा? यह सब बडथोल जैसे यह सब यह काठियावाड़ी और गुजराती। बड़े दुःखी हो, तुझे खबर नहीं। आहाहा! दुःख के समुद्र में डुबकी लगायी है तूने सब। राग और विकल्प के परिणाम में अन्दर में एकाकार होकर दुःख के समुद्र में डोल गया है वह। आहाहा!

अरे! जाति का भान नहीं होता। मैं तो यह विकल्प और क्रियायें जड़ की, उनसे पार हूँ। मेरी चीज़ में संसार का स्पर्श नहीं, आहाहा! यह वह कुछ बात है! दीप समान, कहा न, भाई! उदय का स्पर्श मुझे नहीं। आहाहा! यह वह कहीं बात है! यह तो

पुरुषार्थ की अनन्तगुणी जागृति है। अमरचन्दभाई! आहाहा! सम्यग्दर्शन अर्थात् अनन्त पुरुषार्थ की जागृति का भाव। आहाहा! चैतन्यमूर्ति आत्मा, वह ज्ञान की अनन्त गुण की खान को जिसने कब्जे में प्रतीति में ले लिया। आहाहा! अज्ञानी ने राग और पुण्य के भाव और पाप के भाव को प्रतीति करके कब्जे में किया है विकार। विकार निकलेगा मिथ्यात्व। आहाहा! समझ में आया? **मैं मिथ्यात दसाविषैं कीने बहुविधि पाप**। अब ३३वाँ। ३३वाँ कलश है न नीचे।

**मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य।**
**आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते।।३३।।**

★ ★ ★

## काव्य - ९१

**पुनः** (सवैया इकतीसा)

**हिरदै हमारे महा मोहकी विकलताई,**
**तातैं हम करुना न कीनी जीवघातकी।**
**आप पाप कीनैं औरनिकौं उपदेस दीनैं,**
**हुती अनुमोदना हमारे याही बातकी।।**
**मन वच कायामैं मगन ह्वै कमाये कर्म,**
**धाये भ्रमजालमैं कहाये हम पातकी।**
**ग्यानके उदय भए हमारी दसा ऐसी भई,**
**जैसैं भानु भासत अवस्था होत प्रातकी।।९१।।**

**अर्थः-हमारे हृदय में महा मोहजनित भ्रम था, इससे हमने जीवों पर दया नहीं की। हमने खुद पाप किये, दूसरों को पाप का उपदेश दिया, और किसी को पाप करते देखा, तो उसका समर्थन किया। मन-वचन-काय की प्रवृत्ति के निजत्व में मग्न होकर कर्मबन्ध किये और भ्रमजाल में भटककर हम पापी कहलाये, परन्तु ज्ञान का उदय होने**

**से हमारी ऐसी अवस्था हो गई, जैसे कि सूर्य का उदय होने से प्रभात की होती है – अर्थात् प्रकाश फैल जाता है, और अन्धकार नष्ट हो जाता है।।९१।।**

काव्य-९१ पर प्रवचन

**हिरदै हमारे महा मोहकी विकलताई,**
**तातैं हम करुना न कीनी जीवघातकी।**

यह जरा सूक्ष्म बात है, हों! यह आलू और शक्करकन्द, कन्दमूल हैं न वह सब जीव का घात किया और माना नहीं कि यह जीव है। अज्ञान के वेग में। समझ में आया? ज्ञानी विचारता है कि अरेरे! जब हम अज्ञान में थे। तब यह आलू की ऐसी बारीक-बारीक पतरियों (चिप्स) बनाकर घी में तलकर कड़कड़ करते खाते थे। उन जीवों के घात का हमने विचार नहीं किया, ऐसा कहते हैं। बटाटा समझते हैं?

**मुमुक्षु :** आलू।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आलू। बारीक पतरी करके, घी में तलकर, चूरमा के लड्डू के साथ.... ब्राह्मण को वे चूरमा के लड्डू बहुत प्रिय होते हैं। उसमें आलू की वह (चिप्स) हो हर्षित होकर तलकर आयी हो। बारीक पतरी कड़कड़ती और साथ में सब्जी हो व्यवस्थित करेला की, आहाहा! कहते हैं कि उस जीव का घात अनन्त-अनन्त आत्मायें थीं। आहाहा! उन अनन्त आत्माओं की दया की हमें खबर नहीं थी। जीव है, उसकी मान्यता नहीं थी। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

**हिरदै हमारे महा मोहकी विकलताई, तातैं हम करुना न कीनी जीवघातकी।** आहाहा! वह अपने जीव का भी घात किया और दूसरे जीव का भी घात किया। माँस खाता है। है न? ऐसी छोटी-छोटी उम्र के जीव। आहाहा! राजा के पुत्र हों न! फिर बोलते न हों, भाषा बराबर स्पष्ट न हो, वह चिड़िया की जीभ खिलावे उसे। चकला समझते हैं? चिड़िया। चीं चीं नहीं करती। उसका बहुत बारीक कण्ठ होता है। चिड़िया नहीं छोटी? चिड़िया। हाँ, राजा का कुँवर हो, बड़े घर में आया और उसकी बोलने की शक्ति बराबर (न हो)। सैकड़ों, हजारों चिड़िया मारकर उनकी जीभ निकालकर, रस

करके केसरिया दूध पिलाये उसमें। भाषा के लिये। कुँवरसाहब को अब भाषा आयी, कहते हैं, यह खिलाकर। मर जायेगा नरक में जायेगा, सुन न! समझ में आया?

स्वयं आत्मा अनन्त गुण का धनी, उसे मैंने माना नहीं, मैंने मारकर घात किया। और जगत के प्राणी अनन्त थे, उनकी भी मैंने दया नहीं की। आहाहा! देखो न, यह घास—हरितकाय कितनी उगी है। घास है न घास हरी। खड़-खड़ कहते हैं न, क्या कहते हैं? धपाक ऐसे अन्दर चले पैर रखकर। दरकार भी नहीं कि यह जीव है या नहीं, इसकी भी उसे श्रद्धा नहीं। जेठाभाई! समझ में आया? एक-एक टुकड़ी में असंख्य जीव। यह हरी घास। असंख्य जीव। एक टुकड़े में असंख्य जीव। असंख्य शरीर और एक-एक शरीर में एक-एक जीव। फूल आदि हो तो अनन्त। यह फूल समझे? नीम के कोर। नीम के कोर। नीम नीम होती है न? नीम। नीम नहीं? यह नीम। क्या कहते हैं? नीम। उसका फूल होता है न फूल। फूल... फूल... उसमें एक टुकड़े में अनन्त जीव... अनन्त जीव। एक टुकड़े में असंख्य तो औदारिकशरीर। एक औदारिक में सिद्ध से अनन्तगुणे जीव। नीचे ढ़ेर पड़े होते हैं। भान नहीं होता कि मैं क्या करता हूँ तब। फूल की शैय्या पड़ी हो उसमें चले। हाँ, उसमें फिर जूते पहने हुए हो और फिर नाळवाले हों। ज्ञानी कहते हैं कि अरेरे! मैंने अज्ञानभाव में ऐसे जीव के घात के भाव किये, उसमें मैं घाता गया, ऐसी मुझे खबर नहीं थी। समझ में आया?

**तातैं हम करुना न कीनी जीवघातकी। आप पाप कीनैं....** स्वयं पाप किये। हिंसा की मुख्यता दी है भाई उसमें। बाकी झूठ, चोरी, विशेष इसमें ले लेना। क्योंकि हिंसा में ये पाँचों ही समाहित हो जाते हैं पाप—झूठ, चोरी आदि। अहिंसा में चार महाव्रत समा जाते हैं। अहिंसा की चार महाव्रत, वह वाड है। उसमें हिंसा का (पाप)-महा एकेन्द्रिय जीव, पंचेन्द्रिय जीवों की अस्ति का स्वीकार जहाँ नहीं, ऐसा अज्ञानी 'जीव है'—ऐसा मानता नहीं, वह जीव का घात करनेवाला है। जीव के जीवन ऐसे हैं अनन्त। समझ में आया? यहाँ एक रोम खींचे तो ऐसा हो जाये। आहाहा!

एक दृष्टान्त नहीं आता कहीं वह। एक कुछ दृष्टान्त आता है, हों! अपने शास्त्र में। ऐसे बाहर में कोई... २५ क्षत्रिय—राजकुमार आये थे। वे सब क्षत्रिय थे। मनुष्य तो राजा के बाद में आये। फिर मेहमान को, वहाँ गये वह खाट एक। खाट, खाटला समझे?

**मुमुक्षु :** खटिया, पलंग।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। पलंग एक। अब उस पर सोने के लिये दिया। भाई! यह (जो) बड़ा हो, इसमें सोना। खाटला समझे न? बड़ा हो ऐसा पलंग। वहाँ एक व्यक्ति कहे, मैं बड़ा। क्यों? मेरे पिता ने बहुत खटमल मारे थे, ऐसे शूरवीर थे। बहुत अच्छी बात। दूसरे कहे, मेरे पिता ने मक्खी को मसल डाला था। तीसरे कहे, मेरे पिता ने पापड़ पर ऐसे हाथ डाला, वहाँ चूरा कर डाला था। ऐई! इसलिए कोई वह कहे, परन्तु इसमें किसे... सब कहे—पच्चीसों व्यक्ति कहे, हम बड़े, अब सुलाना किसे?

अब फिर कहा कि भाई, इसमें नहीं सोओ, परन्तु सब इसके सामने पैर रखकर सोओ, इसलिए सबका—पच्चीस का भाग कहलाये। ....ऐसे अभिमानी। ऐसा कहे, पैर रखो, पैर। पच्चीस में सब कहते हैं, मेरा पिता बड़ा और मैं बड़ा। सब कहे, मेरा पिता बड़ा। अब करना क्या? कहीं पच्चीस भाग पड़े पलंग के? तब अब एक चतुर व्यक्ति ने कहा। भाई! ऐसा रहने दो। पलंग रखो खाली।

**मुमुक्षु :** उल्टा डालो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अब उल्टा चाहे जो वह, परन्तु उसके सामने पैर रखो। सोओ तो सबका भाग कहलाये। आहाहा! ऐसे वे मूर्ख हैं न? ऐई सेठ! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि मैंने विवेक किया नहीं अनन्त ऐसे प्राणी का। मैंने तो अपने अभिमान के कारण दूसरे को निर्दय होकर काट डाला मार डाला। देखो न अभी यह बांगलाओं का। तब बेचारे चिल्लाहट करते हैं परन्तु...

**मुमुक्षु :** बांगलादेश में।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बांगलादेश में, आहाहा! उन्हीं और उन्हीं के मुसलमान-मुसलमान कुकर्म करते हैं। चारों ओर कोई जागता नहीं, परन्तु उसके पाप के उदय से। समस्त सभी अपने-अपने में पड़े हैं। नहीं तो एक बड़ी संस्था है। वह भी जागती नहीं। सब सो गये, बहुत चिल्लाहट बहुत पाड़ते हैं। आते हैं अपने जैन में भी आते हैं। उसमें पढ़ा हो न हमने बाहर में से... मुझे ऐसा होशियार हो और आज्ञाकारी हो, उसे पहले मार डालने का। क्योंकि तुम तुम्हारे देश की व्यवस्था में आगे भाग लेते होंगे। दूसरे

बालक बाद में। दो-दो वर्ष के लड़कों को मारकर काट डालते। वह बड़ा होगा तो बैरी होगा। अरे, कुकर्म करते हैं न!

धर्मी कहते हैं कि मेरे भान बिना के काल में ऐसे पाप मैंने बहुत किये, हों! आहाहा! है न? **औरनिकौं उपदेस दीनैं,....** दूसरे को उपदेश (दो)। बाधा नहीं। जाओ, यह पाप लगे तो मेरे सिर पर जाओ, ऐसा और बहुत भाई कहे। यह खाना। कन्दमूल—आलू / बटाटा, शक्करकन्द को खाओ, उसका जो पाप लगे तो मेरे सिर पर। खाओ। ... मर जायेगा परन्तु कहीं आड़ा... आहाहा! समझ में आया? और यह एकबार बना है इसका, हों! यह अभी के सुधरे हुए हैं न कितने ही, कहे वहाँ। उसका पाप लगे तो मेरे सिर पर। खाओ। ऐई, मर गया परन्तु ऐसा कर-करके सुनकर....। धर्मी पूर्व के पाप के विचार करता है। अरेरे! मैंने ऐसे पाप किये थे। आलोचना है, हों! यह संवर का अधिकार है। आहाहा! समझाना हो तो ऐसा समझावे न!

**मन वच कायामैं मगन ह्वै कमाये कर्म,...** देखो! अरे! मैं तो मन-वचन और काया की क्रिया में लीन रहता था, जो मेरी चीज़ नहीं थी। आहाहा! मन, वचन और काया का शुभ-अशुभभाव आदि, उसमें मग्न रहते **कमाये कर्म—**कमायी की कर्म की। कर्म कमाये। ऐसा ज्ञानी पूर्व का विचार करता है। आहाहा! अभी कुछ नहीं कहते थे इन्दौर में, नहीं? कहा, कोई वैद। दिगम्बर। जवान व्यक्ति था। कुछ विवाद उठा होगा फिर स्त्री के साथ। भाई! कौन जाने क्या हुआ? लेने गया तो उसके माँ-बाप ने तेल छिड़का पहले कैरोसीन। आधे-आधे जले। स्वयं जल गया कैरोसीन छिड़ककर। तीनों मर गये। अभी इन्दौर में हुआ। ऐसे आत्मा के भान बिना के काल में कितना अविवेक करता है, इसकी कुछ खबर नहीं। आहाहा! **कमाये कर्म,** देखो। कर्म कमाये सही। आहाहा!

**धाये भ्रमजालमैं कहाये हम पातकी।** भ्रमजाल में भटककर हम पापी कहलाये। आहाहा! परदेशी राजा था न एक। श्वेताम्बर में आता है। एक परदेशी राजा को... में आता है ....में। राजा था पाँच सौ गाँव का। फिर बहुत पाप करता था, दूसरे को कहे कि तेरे बाप को मेरे बाप ने उस भव में पाँच लाख दिये थे, लाओ। ऐसा करे। राज में रहने न दे। ऐसे पाप। मरते समय कठोर रोग आया। ऐसा रोग आया। इसलिए कोई मुझे

कहेगा कि साहेब आपको रोग है। इसकी अपेक्षा पहले गाँव में ढिंढोरा पिटवाया। ढिंढोरा। ढिंढोरा समझते हैं?

**मुमुक्षु :** घोषणा की।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ढोल पिटवाया। राजा को ऐसा रोग हुआ है, इसलिए कोई वैद्य आकर मिटावे, उसे इतना दूँगा। कोई कहने आवे कि साहेब! तुमको रोग... परन्तु खबर नहीं? (ढिंढोरा) पिटवाया है कि दरबार को रोग है। रोग की दवा दो। कहे कि रोग है ऐसा तू किसलिए कहता है? इतना सहन नहीं होता। आहाहा! ऐसे अभिमानी आत्मा के भान बिना ऐसे अभिमान।

यहाँ एक नहीं? यह रतलाम का दरबार था। लालजीभाई का मित्र था न डॉक्टर। यहाँ आया था। वह डॉक्टर कहे, दरबार को दस लाख की आमदनी होगी, दस लाख की साधारण। परन्तु उसे बुखार आया ताव—बुखार। तो आपको बुखार आया, ताव आया, इसलिए दवा लाऊँ, ऐसा नहीं बोला जाता। ऐसा बोला ही नहीं जाता दरबार को। ऐई सेठ! ऐसा कहा जाता है कि साहेब! आपके दुश्मन को बुखार आया है, इसलिए दवा लाऊँ? ऐसा बोला जाता है। अभिमानी सिर के भी... वे कहते थे भाई, नहीं? डॉक्टर आये थे न अपने लालजीभाई। लालजीभाई थे न आपने वहाँ, उनके मित्र थे डॉक्टर। कोई हरिद्वार जाते थे और यहाँ आये थे। कहे, ऐसा हमारे दरबार का था। अब दस लाख की आमदनी साधारण। परन्तु अभिमानी मस्तिष्क इतना। आपको बुखार आया है, इसलिए दवा लोगे, ऐसा नहीं कहा जाता। ऐई! आहाहा! सेठ!

**मुमुक्षु :** ....ऐसा नहीं कहा जाता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। यह तो मार डाला बेचारे को यहाँ।

नायखा, मुगुट के पास नायखा गाँव है। एक बनिये का लड़का बेचारा खबर नहीं, हों! नायखा।

**मुमुक्षु :** चन्दुभाई का रिश्तेदार होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वह लड़का बारह वर्ष का। वह पढ़कर आवे। ऐसे जाता होगा। सामने काठी, गाँव का काठी था। तलवार हाथ में। ... दरबार सामने और पीछे

गाय। इसलिए वह लड़का कहे, दरबार! गाय पीछे। ऐसा कि यह मारेगा, ऐसा। तुम्हारे पीछे गाय। दरबार! तुम्हारे पीछे गाय। ऐसा बोला जैसे लड़का, वैसे तलवार निकालकर लड़के के दो टुकड़े कर दिये। बाजार के बीच। क्यों? कि तूने अपशकुन किया।

दरबार! आपके पीछे गाय अर्थात् मैं मर जाऊँ और फिर गाय दे, ऐसा तू बोला, ऐसा। कहो, अब वह बेचारा... आपके पीछे गाय, ऐसा। दरबार आपके पीछे गाय। अब वह तो ऐसा कहे, गाय मारेगी अब। ऐसे उल्टे यह कोई सिर घूमे हुए। अब वे नरक में न जायें तो कहाँ जायें?

**मुमुक्षु :** दरबार को गाय कह दिया तो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दरबार को गाय नहीं। आपके पीछे गाय। अर्थात् आप मर जाने के बाद गाय दे न? ऐसा तूने कहा मुझे, ऐसा।

**मुमुक्षु :** गौदान दिया जाता है न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, गाय का दान दे न! क्योंकि नरक में जाये वहाँ गाय की पूँछ पकड़कर नरक में से बाहर निकले। नरक में जाना है न उसे। आहाहा! ऐसे के ऐसे। मार डाला, काट डाला।

वह और यहाँ। यहाँ वह वरतडा। वरतडा है न यहाँ अमरेली और लाठी के बीच। वह उसका एक पिता था। दुकान में धन्धा पिता का। दस बजे का समय हुआ जीमने का। पिता गया घर में और लड़का बैठा था। लड़का दुकान सँभाले। उसमें एक काठी आया। घोड़े पर चढ़कर हाथ में... यह क्या कहलाता है वह?

**मुमुक्षु :** भाला।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भाला। ऐई, लड़के सुपारी दे। तौल दे सवा सेर। बापू! मेरे पिता नहीं, ऐसा कहा। भाला मारा। मार दिया लड़के को, कहो। बापू! मेरे पिता नहीं, ऐसे किस प्रकार दूँ? ऐसा मैं तो यों ही बैठा हूँ। मार डाला। आहाहा! घर में खाकर आया और लड़के को मरा हुआ देखा। अब दरबार (की आज्ञा) बिना वापस निकाला नहीं जाये।

दरबार के पास गये कि दरबार साहेब! आज्ञा दो। हम मुर्दे को निकालें। दरबार

कहता है, वह भाला जो खूनवाला पड़ा है, धुलाने के रुपये रख डेढ़ सौ। खून से बिगड़ा हो न वह। मार डाला और बिगड़ा। भाला रखा था घर में। सेठ गया बेचारा कि यह आज्ञा बिना बाहर नहीं ले जाया जाता। कि साहेब! यह आज्ञा दो न! डेढ़ सौ रुपये रख पहले भाला को धोने के लिये।

**मुमुक्षु :** बच्चे को मार डाला था।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ।

**मुमुक्षु :** क्यों मार डाला था उस बेटे को?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सुपारी, कहा न। सुपारी तौल दे। तौल दे। उसके पिता नहीं थे। पिता घर में गये थे। बापू नहीं, घर में है। किस प्रकार दूँ? ऐसा वापस वह भाला धोने के रुपये लिये १५१। ऐसे लोग। आहाहा! गजब करते हैं या नहीं? समझे या नहीं पण्डितजी? समझे नहीं? लो, यह भी न समझे। ऐसी भाषा जहाँ... यह तो सादी भाषा है। यह तो सादी भाषा है, उसमें और... यह कहीं.....

**मुमुक्षु :** दृष्टान्त समझ में नहीं आता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहो। यह तुम पहले ध्यान नहीं रखते। भाषा तो बहुत सादी है।

**मुमुक्षु :** गुजराती तो अपने को समझ में न आये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा बस मन में ऐसा है। अपने को गुजराती नहीं समझ में आती। नहीं समझ में आती, यह (धारणा) समझने नहीं दे।

यहाँ कहते हैं, अरेरे! मैं आत्मा। मेरा स्वरूप तो आनन्द और ज्ञान। ऐसा भान हुआ उसे। (उस) भूतकाल के ऐसे पाप का आलोचन करते हैं। मैंने ऐसे पाप किये। **धाये भ्रमजालमैं कहाये हम पातकी।** दुनिया ऐसा कहना चाहती है कि यह तो पापी प्राणी है। मैं प्रसन्न हुआ था। आहाहा! **ग्यानके उदय भए हमारी दसा ऐसी भई,...** आहाहा! देखो! अरे! हम तो आत्मा हैं। भाई! हमारा सत्त्व, हमारा माल तो सिद्ध समान हमारे पास है। आहाहा! यह राग आदि मेरा माल नहीं। आहाहा! बाहर की लक्ष्मी, शरीर सुन्दर आदि से अधिक मनाना, वह मूढ़ जीव है, ऐसा कहते हैं। शरीर की सुन्दरता, लक्ष्मी की अधिकता,

मकान की बहुलता, लड़कों की होशियारी आदि सेवा से हम अधिक हैं सबसे। बड़ा मिथ्यात्व है, कहते हैं। समझ में आया? ऐ पोपटभाई! भारी कठिन काम! आहाहा!

कहते हैं, **ग्यानके उदय भए...** अरेरे! अज्ञान में तो ऐसा किया था। ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान भान होने पर **हमारी दसा ऐसी भई, जैसैं भानु भासत अवस्था होत प्रातकी।** लो, ठीक। प्रकाश फैल जाता है। सूर्य का उदय होने पर प्रभात होता है और अन्धकार नष्ट हो जाता है। आहाहा! हम तो चैतन्य हैं। हमको कोई मान दे-अपमान दे, वह हमको नहीं। हमको वह पहिचानता नहीं, वह क्या दे? समझ में आया? आहाहा! हम तो आनन्द के धाम। ज्ञान के सागर ऐसे हम आत्मा। ऐसा सम्यक्‌धर्म होने पर ऐसी दशा हुई। **भानु भासत**—सूर्य का प्रात: जैसे सूर्य का प्रकाश होकर प्रभात भासे, वैसे प्रभात सत् हो गया। आहाहा! राग तथा पुण्य और पाप, वे दोनों अन्धकार मेरे नहीं। हम तो चैतन्य के प्रकाश के नूर के पूर हम हैं। आहाहा! अरे! यह तो कहीं धर्म की दशा और श्रद्धा कोई अलौकिक है। यह साधारण ऐसे मान बैठे कि हम ऐसे हैं और वैसे, ऐसा नहीं। **जैसैं भानु भासत अवस्था होत...** लो। **प्रकाश फैल जाता है, और अन्धकार नष्ट हो जाता है।**

**ज्ञान का उदय होने पर अज्ञानदशा हट जाती है।** विशेष इसका स्पष्टीकरण है।

★ ★ ★

## काव्य - ९२

### ज्ञान का उदय होने पर अज्ञानदशा हट जाती है

(सवैया इकतीसा)

**ग्यानभान भासत प्रवान ग्यानवान कहै,**
**करुना-निधान अमलान मेरौ रूप है।**
**कालसौं अतीत कर्मजालसौं अजीत जोग-**
**जालसौं अभीत जाकी महिमा अनूप है।।**

**मोहकौ विलास यह जगतकौ वास मैं तौ,**
**जगतसौं सुन्न पाप पुन्न अंध कूप है।**
**पाप किनि कियौ कौन करै करिहै सु कौन,**
**क्रियाकौ विचार सुपिनेकी दौर धूप है।।९२।।**

**शब्दार्थ:-अमीत=निर्भय। किनि=किससे। सुपिने=स्वप्न।**

**अर्थ:-ज्ञान-सूर्य का उदय होते ही ज्ञानी ऐसा विचारता है कि मेरा स्वरूप करुणामय और निर्मल है। उस पर मृत्यु की पहुँच नहीं है, वह कर्मपरिणति को जीत लेता है, वह योग-समुदाय से निर्भय[१] है, उसकी महिमा अपरम्पार है, यह जगत का जंजाल मोहजनित है, मैं तो संसार अर्थात् जन्म-मरण से रहित हूँ, और शुभाशुभ प्रवृत्ति अन्ध-कूप के समान है। किसने पाप किये? पाप कौन करता है? पाप कौन करेगा? इस प्रकार की क्रिया का विचार ज्ञानी को स्वप्न के समान मिथ्या दिखता है।।९२।।**

---

काव्य-९२ पर प्रवचन

---

**ग्यानभान भासत प्रवान ग्यानवान कहै,**
**करुना-निधान अमलान मेरौ रूप है।**
**कालसौं अतीत कर्मजालसौं अजीत जोग-**
**जालसौं अभीत जाकी महिमा अनूप है॥**
**मोहकौ विलास यह जगतकौ वास मैं तो,**
**जगतसौं सुन्न पाप पुन्न अंध कूप है।**
**पाप किनि कियौ कौन करै करिहै सु कौन,**
**क्रियाकौ विचार सुपिनेकी दौर धूप है॥९२॥**

आहाहा! यह क्या हो गया यह सब? स्वप्न है सब, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **ग्यानभान भासत प्रवान ग्यानवान...** यह अन्तर चैतन्यसूर्य जहाँ उगा,

---

१. वह जानता है कि मन वचन काया के योग पुद्गल के हैं, मेरे स्वरूप को बिगाड़ नहीं सकते। न करोमि न कारयामि न कुर्वन्तमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति।

सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में भान हुआ, चैतन्यसूर्य उगा। **ग्यानभान भासत प्रवान...** ऐसा। **करुना-निधान...** हम तो करुणा का निधान **अमलान मेरौ रूप है।** आहा! सर्व प्राणी सिद्ध सम और मेरे सम—समान हैं। सब ज्ञान के पूर हैं। किसे मारूँ, किसे उभारूँ, वह मुझमें है नहीं। आहाहा! 'सर्व जीव हैं ज्ञानसम', ऐसा आता है न! योगसार। आहाहा! यह भगवान आत्मा दूसरे भी ज्ञान के भानु हैं। राग आदि, वह आत्मा नहीं। ऐसा प्रत्येक आत्मा को देखकर **अमलान मेरौ रूप है।** निधान। किसी प्राणी को दु:ख हो, ऐसा विकल्प भी मेरा नहीं। आहाहा!

**कालसौं अतीत...** यह त्रिकाल से भिन्न। आहाहा! है? **कालसौं अतीत...** मृत्यु की जहाँ पहुँच नहीं। मृत्यु किसकी हो? भगवान आत्मा शाश्वत् ज्योति है, उसमें मृत्यु किसकी हो? आहाहा! कौन मरे, कौन जन्मे? हम तो आत्मा चैतन्यस्वरूप हैं। उसमें मरे कौन? आहा! परन्तु सम्यग्दर्शन पावे, तो इस प्रकार से उसके अनुभव में होता है। आहाहा! समझ में आया? **कालसौं अतीत कर्मजालसौं अजीत...** कर्मजाल से जीता नहीं जाये ऐसा आत्मा है। **जोगजालसौं अभीत...** योग के जाल से निर्भय है। योग के जाल जिसमें हैं नहीं। आहाहा! **जाकी महिमा अनूप है।** भगवान आत्मा सूर्यप्रभु का सम्यग्दर्शन हुआ, धर्म की दशा पहली प्रगट हुई, वहाँ कहते हैं, जिसकी महिमा अनूप है, जिसे महिमा दे सकें, ऐसी कोई उपमा है नहीं। आहाहा! **अभीत जाकी महिमा अनूप है।**

**मोहकौ विलास यह जगतकौ वास....** यह राग-द्वेष के भाव, वह तो मोह का जगत का वास। **मैं तो जगतसौं सुन्न...** हूँ। आहाहा! धर्मी उसे कहते हैं कि जो जगत और संसार से आत्मा को शून्य माने। आहाहा! समझ में आया? **जगतसौं सुन्न पाप पुन्न अंध कूप है।** पुण्य और पाप तो अन्ध कूप है। आहाहा! यह जागती ज्योति चैतन्य नहीं, ऐसा कहते हैं। धर्मी को पुण्य और पाप अन्ध कूप जैसे दिखते हैं। समझ में आया? प्रथम धर्मदशा में हों यह।

**पाप किनि कियौ कौन...** अरे! कौन करे और किसने कराया? किसने किये? कौन करावे? कौन करेगा? इस क्रिया का विचार ज्ञानी को स्वप्न समान लगता है।

आहाहा! क्या हुआ यह? स्वप्न आया है, ऐसा लगता है। आत्मा में राग करना, वह कुछ है नहीं। व्यवहार की क्रिया करना, वह आत्मा में है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। **क्रियाकौ विचार सुपिनेकी दौर धूप है।** आहाहा! मिथ्या दिखे। पूर्व का क्या हुआ यह सब? आहा! भोग की वासना और मजा की लहर और यह क्या हुआ यह? मेरे स्वरूप में तो यह है नहीं। ऐसा अन्दर आत्मा की श्रद्धा और अनुभव हो, उसे धर्मी और समकिती और सुखी होने के पंथ में पड़ा कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १३९, श्रावण कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक १९-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद ९३ से ९७**

यह समयसार नाटक। सर्वविशुद्ध अधिकार चलता है। ९३-९४ और ९५। पद-पद, नीचे (कलश) है न, उसका है यह। **न करोमि न कारयामि न कुर्वन्तमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति**। कर्म-प्रपंच मिथ्या है।

★ ★ ★

**काव्य - ९३-९५**

**कर्म-प्रपंच मिथ्या है** (दोहा)

**मैं कीनौं मैं यौं करौं, अब यह मेरौ काम।**
**मन वच कायामैं बसै, ए मिथ्या परिनाम।।९३।।**

**मनवचकाया करमफल, करम-दसा जड़ अंग।**
**दरबित पुग्गल पिंडमय, भावित भरम तरंग।।९४।।**

**तातैं आतम धरमसौं, करम सुभाउ अपूठ।**
**कौन करावै कौ करै, कोसल है सब झूठ।।९५।।**

**शब्दार्थ:-अपूठ=अजानकार। कोसल=कौशल (चतुराई)।**

**अर्थ:-मैंने यह किया, अब ऐसा करूँगा, यह मेरी कार्रवाई है, ये सब मिथ्याभाव मन-वचन-काय में निवास करते हैं।।९३।। मन-वचन-काय कर्म जनित हैं, कर्म-परिणति जड़ है, द्रव्यकर्म पुद्‌गल के पिण्ड हैं, और भावकर्म अज्ञान की लहर है।।९४।। आत्मा से कर्मस्वभाव विपरीत है, इससे कर्म को कौन करावे? कौन करे? यह सब कौशल मिथ्या है।।९५।।**

## काव्य-९३-९४-९५ पर प्रवचन

**मैं कीनौं मैं यौं करौं, अब यह मेरौ काम।**
**मन वच कायामैं बसै, ए मिथ्या परिनाम॥९३॥**

**मनवचकाया करमफल, करम-दसा जड़ अंग।**
**दरबित पुग्गल पिंडमय, भावित भरम तरंग॥९४॥**

**तातैं आतम धरमसौं, करम सुभाउ अपूठ।**
**कौन करावै कौ करै, कोसल है सब झूठ॥९५॥**

कहते हैं कि **मैं कीनौं...** मैंने यह राग और कर्म की, शरीर आदि की क्रिया मैंने की, यह सब झूठ है। ज्ञानस्वभाव में वह राग और शरीर की अथवा कर्म की क्रिया होना, वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं। आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव चैतन्यस्वभावी वस्तु, वह जिसे भान हुआ। वस्तु ऐसी है और (ऐसा) जिसे भान हुआ। वह कहता है कि **मैं कीनौं मैं यौं करौं, अब यह मेरौ काम।** यह मेरा काम है नहीं। कहो, इस शरीर का करूँ, धन्धे का करूँ, परिवार का करूँ, देश का करूँ, यह व्यापार का करूँ।

**मुमुक्षु :** शास्त्र का करना तो बराबर न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शास्त्र का करना, सेठ! आहाहा!

**मुमुक्षु :** .... उसका करना-न करना, उपाधि।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करना, वह मरना। यहाँ यह बात चलती है। कुछ देह का करूँ, परिवार का करूँ, जाति का करूँ और राग का करूँ, विकारी परिणाम करूँ, यह मिथ्याभाव है। आहाहा! गजब यह!

**मैं कीनौं मैं यौं करौं,...** और मैं ऐसा करूँगा, मैं ऐसा करूँगा। मैंने ऐसा किया और अब मैं ऐसा करूँगा। सेठी! जेवर का धन्धा मैंने किया और अभी ऐसा मैं करूँगा। माणिकलालभाई! मूलचन्दभाई! कहाँ गये माणिकलाल? बाहर बैठे होंगे।

**मुमुक्षु :** सब झूठा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब झूठा है ? करते हैं न पूरे दिन ? कहो, यह बीड़ियाँ बाँधे, बीड़ियों का करे, यह सेठ कानपुर जाकर पैसा उगाहे। कहते हैं कि यह राग और देह की क्रिया मैं करूँ, **अब यह मेरौ काम।** और यह तो मेरा ही काम है। अमुक काम, वह तो मेरा काम, वह दूसरे का काम नहीं। ऐसा जो पर के कर्तापने का मान, वह मिथ्यात्वभाव है।

**मुमुक्षु :** आप कहो मिथ्यात्व.....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है या नहीं ? सामने लेकर बैठे हैं या नहीं ?

**मैं कीनौं मैं यौं करौं, अब यह मेरौ काम, मन वच कायामैं बसै, ए मिथ्या परिनाम।** मन से करूँ... ऐसी भाषा तो ऐसी है मूल तो। मन से राग करूँ और मन से वाणी करूँ, वाणी करूँ और देह की क्रिया करूँ—यह तीनों कर्तापना मिथ्या दृष्टि में भासित होता है। आहाहा! यह सब बहियों के नामा लिखे थे न, क्या किया ?

**मुमुक्षु :** ऑडिट किया था।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऑडिट।

**मुमुक्षु :** दूसरे की भूलें निकाली थीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहो, दूसरे को आवे नहीं, वह हमको आते हैं उसके नामा। ऐ, पोपटभाई! यह टाईल्स के काम तो हमको ही आते हैं, उसमें डिजाईन डालना, फलाना करना, ढींकना करना।

**मुमुक्षु :** मिथ्यात्व के नामा हैं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। शान्तिभाई! यह हम चतुर हैं... आयेगा आगे, देखो न! **कोसल है सब झूठ....** यह सब चतुराई झूठी मिथ्यादृष्टि की है। है या नहीं अन्त में ?

**मनवचकाया करमफल,...** यह मन, वचन और काया की क्रिया और राग-द्वेष के भाव, वे सब कर्मजनित भाव हैं। समझ में आया ? यह पुण्य और पाप के विकल्प और शरीर-वाणी की क्रिया, वह सब कर्मजनित भाव है, आत्मजनितभाव नहीं। आहाहा! गजब काम! वह होशियार व्यक्ति धन्धा करे, पोपटभाई! वह तो कितने पैसे पैदा किये,

देखो वढवाण से मुम्बई जाकर। सेठ! तुम्हारे पिता कहाँ छोड़ गये थे इतने पैसे? नहीं? दोनों भाई एक किये और यह बड़े भाई ने अधिक मेहनत की पाप की।

**मुमुक्षु :** अज्ञान में तो सब कुछ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तो यही कहते हैं। कि राग और पुण्य-पाप का भाव और वाणी और देह की क्रिया तथा धन्धा आदि की क्रिया, यह मकान बनाने की क्रिया, वह मैंने की और अभी भी मैं करनेवाला हूँ। आहाहा!

**मनवचकाया करमफल,...** वह तो कर्मजनित भाव है। विकार परिणाम भी कर्मजनित और कर्म के उदय के निमित्त से देह आदि की क्रिया, वह कर्मजनित है। वह आत्मा की क्रिया नहीं। आहाहा! भारी कठिन। **करम-दसा जड़ अंग...** कर्म अर्थात् पुण्य-पाप के भाव भी अचेतन हैं, अज्ञानभाव है और कर्म भी जड़भाव है जड़। समझ में आया? चैतन्य प्रभु ज्ञाता-दृष्टा आनन्दकन्द में जो पुण्य और पाप के भाव, वे अचेतन जड़ हैं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प अर्थात् राग, वह जड़ है और शरीर-वाणी-मन की क्रिया तो जड़ है। ऐसे दोनों लिये हैं, कर्म और भाव।

**दरबित पुग्गल पिंडमय,....** द्रव्यकर्म जो है, वह तो जड़ पुद्गल का पिण्ड जड़ है। और **भावित भरम तरंग।** भावकर्म तो भ्रमणा की तरंग है। आहाहा! गजब बात है। आत्मा तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, वह राग और पर का क्या करे? करे, ऐसा माने, वह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! महा मिथ्यात्वभाव है। यहाँ **भावित भरम तरंग।** भगवान आत्मा अपने ज्ञानानन्दस्वभाव को भूलकर पुण्य-पाप के भाव को करूँ, यह भ्रमणा की तरंग दशा है। आहाहा! है न?

**मुमुक्षु :** कर्म है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, कर्म है। भावकर्म अज्ञान की लहर है, ऐसा लिखा, देखो अर्थ में। भावकर्म अज्ञान की लहर। **भरम तरंग...** पुण्य और पाप का भाव, वह मेरा काम, वह अज्ञान की तरंग है। आहाहा! यह सब धन्धा करते हैं पूरे दिन, यह सब व्यापार, नामा लिखे, चोपड़ा लिखे, शास्त्र बनाये, लो। ऐई भीखाभाई! अपने यहाँ प्रत्येक शास्त्र बने, उसे रामजीभाई पहले वाँच जाये। फिर छपाने के बाद वाँच जाये।

ऐई! ऐसे मकान बनाने में पहले करे और फिर बाद में कितना हुआ, यह देख ले।

**मुमुक्षु :** नहीं तो वापस उलहाना मिले।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उलहाना... १०-१० लाख के मकान किये इन्होंने, इनके राज में यह वांकानेर।

**मुमुक्षु :** वह तो दरबार सिर पर खड़े रहकर....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इंजीनियर को रखे साथ में इकट्ठा। आहाहा!

अरे! कहते हैं, यह कर्म की जड़ दश मिट्टी की आठ कर्म की और यह बाहर के परमाणु आदि की क्रिया कौन करे? भाई! वह जड़ स्वयं करता है। आत्मा उसका कर्ता, ऐसी भ्रमणा मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। वह अज्ञान की लहर है। अज्ञान की एक लहर उठी, ऐसा कहते हैं। ठीक। आहाहा! यह नहीं किया, यह चिमनभाई ने कितना किया, ले।

**मुमुक्षु :** बड़े कारखाने....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बड़े कारखाने डाले और कांप में डाले और मुम्बई में अन्दर....

**मुमुक्षु :** वापस अभिमान।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभिमान? ऐ सेठ! कितना किया अभी तक देखो न कितने वर्ष व्यतीत किये?

**मुमुक्षु :** उम्र चली गयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मैंने किया, ऐसी मान्यता में उम्र गयी। यह किया नहीं। मूलचन्दभाई! आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है न भ्रम। यह अज्ञान की लहर। पुण्य-पाप के भाव, वह अज्ञान है। अज्ञान अर्थात् उसमें चैतन्य का अंश नहीं। आहाहा!

भगवान तो चैतन्यमूर्ति प्रभु है। वह अज्ञान ऐसा जो राग आदि और जड़ उसे क्या करे? कर्ता मानो, वह अज्ञान की मान्यता है। आहाहा! गजब! ऐ मगनभाई! क्या यह सब काम किये न अभी तक उसके—सट्टा के।

**मुमुक्षु :** भटकाभटक के काम किये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह काम किया नहीं, माना है, यह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! करे क्या पर का? **तातैं आतम धरमसौं,...** भगवान आत्मा का धर्म तो ज्ञान और आनन्द है। उस धर्म के अन्दर **करम सुभाउ अपूठ।** पुण्य-पाप के भाव इसे स्पर्शते नहीं। आहाहा! **अपूठ...** आहाहा! छूते नहीं, तुम्हारी भाषा में। हमारी भाषा में अड़ते नहीं, काठियावाड़ी में। आहा!

**मुमुक्षु :** छूते नहीं या स्पर्श करते नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** छूते नहीं, स्पर्शते नहीं, अड़ते नहीं। भगवान ज्ञानज्योति स्वरूप प्रज्ञाब्रह्म आनन्दकन्द आत्मा, कहते हैं कि उसमें पुण्य और पाप के विकल्पों का राग छूता नहीं। उसे स्पर्शता नहीं। वह तो भिन्न चीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

**करम सुभाउ अपूठ।** वह तो सब कर्म का भाव है, कहते हैं। दुश्मन जड़ का वह भाव है। पुण्य और पाप के भाव... गजब बात है न! समझ में आया? आहाहा! यह महिलायें बहुत होशियार हों तो सब पुडला अच्छा बनाये, हलुवा अच्छा बनाये। नहीं? सेव अच्छा बनाये। वह सेव-सेव। क्या कहते हैं? सेव कहते हैं। वह वटे, ऐसे वटे। लकड़ी का पाटिया निकालकर उस खाट में। खाट में ऐसा... वह व्यवस्थित आना चाहिए। आवे उसकी अच्छी सेव हो, नहीं तो अन्दर सेव में लोंदा पड़े। यह लापसी बनावे। लापसी कहते हैं न लापसी? लापसी करे, उसमें भी बराबर गर्म करना उसमें आना चाहिए। वह आने से होता है, कहते हैं न, कौशल। यह चतुराई से (हुआ ऐसा) मूढ़ मानता है, ऐसा कहते हैं।

लापसी होती है न लापसी। लापसी कहते हैं न!

**मुमुक्षु :** कंसार।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कंसार। उसमें गेहूँ का आटा मोण डालकर बेलन से हिलावे। वरना हो जाये वह गेहूँ के आटे के लोंदे हो जायें।

**मुमुक्षु :** हाँ, सब गाँठ हो जाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गाँठ हो जाये। होशियार हो तो अच्छा करे, वह मूढ़ है, ऐसा

कहते हैं। यह मूढ़ मानता है कि मेरी चतुराई से यह सब होता है। होता है जड़ के कारण से। तेरे कारण से क्या हो? धूल? तू तो अरूपी चैतन्य और उसे छूता नहीं। वह तुझे छूता भी नहीं। आहाहा! देखो, यह धर्म भगवान का। जानना-देखना और आनन्द, वह उसका स्वभाव। उसे छोड़कर यह करूँ, यह करूँ, यह सब अज्ञानभाव और मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

**कौन करावै कौ करै,...** राग और द्वेष, पुण्य और पाप, दया और दान और व्रत के परिणाम कौन कहते हैं कि उस राग को करे कौन? आहाहा! कठिन काम, भाई! कौन करे, करावे कौन? तब कहे, हम करते नहीं, परन्तु पर से कराते हैं। कौन करावे? धूल? आहाहा! **कोसल है सब झूठ।** यह सब चतुराई... यह वकालत की चतुराई रामजीभाई करते होंगे या नहीं उस जज को पानी भराने की यह। एक व्यक्ति कहता था। कहो, समझ में आया? अमरचन्दभाई! भाषा है ऐसी बराबर ऐसा करे, ऐसा करे। कर सकता है या नहीं? ऐ वकील! यह रहे वकील जयसुखभाई। यह एक वकील रहे पालीताणा में नटुभाई। कहो, जज के समक्ष दलील-बलील करना, वह कर सकते हैं या नहीं?

**मुमुक्षु :** .... मर गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कोर्ट में और कोर्ट में मर गया, दलील चलते।

**मुमुक्षु :** भावनगर की कोर्ट में वह वढवाण के वकील थे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। उसमें हार्टफेल हुआ। यह क्रिया कहाँ आत्मा की है? आहाहा!

**कौन करावै कौ करै, कोसल है सब झूठ।** यह संसार की चतुराई से यह सब काम चलता है, वह मूढ़ जीव मानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन काम, भाई! ऐई निरंजन! यह क्या सब पढ़ आया वहाँ से? पाँच वर्ष निकाल आया। कहते हैं कि पढ़ने का जो विकल्प था, उसे करे कौन? आहाहा! अज्ञानी मूढ़ मानता है कि मैं करता हूँ। चैतन्य के स्वभाव में राग का करना या होना है ही नहीं, ऐसा सर्वज्ञ परमात्मा का स्वभाव है। आहाहा! सर्वज्ञ अर्थात् स्वयं सर्वज्ञ। परमेश्वर सर्वज्ञ हुए, उन्होंने तो कहा।

परन्तु स्वयं सर्वज्ञ अर्थात् जानने का स्वभाव है सबको। परन्तु अपने को छोड़कर किसी पर का–राग का, पर का करना, वह आत्मधर्म में है नहीं। और वह आत्मधर्म इसका नाम। आहाहा! ९६। यह तो उसका आ गया और वह भी आ गया। अब अर्थ में भी आ गया।

**आत्मा से कर्मस्वभाव विपरीत है,...** ऐसा आया न अन्दर। **इससे कर्म को कौन करावे? कौन करे?** यह सब कौशल्य, यह चतुराई सब मूढ़ की—अज्ञानी की है। आहाहा! कठिन इसमें। ऐई जयसुखभाई! सब वकील ऐसे दलील करे। ऐई नटुभाई! कहते हैं कि उस दलील का विकल्प और दलील की वाणी... आहाहा! यह मैंने चतुराई से यह किया, यह मैंने कराया और मैं उसमें—केस में जीता। कहते हैं कि जीता गया है, मूढ़ है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** वकील से झट काम निपट जाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो वकील, तुम भी वकील हो न सब तुम्हारे बीड़ियों में। बाल बीड़ी। बड़ा दरवाजा नहीं डाला था? नहीं था वहाँ मल्हारगढ़? बाल बीड़ी का वह क्या था? दरवाजा। ऐई सेठ! बताया था सेठ ने एक बार, उसमें ले जाकर। नहीं? किसमें वह? जीप–जीप। आहाहा! यह सब पड़ाव कौन करे और उसमें राग हो, वह करे कौन? कहते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऐसी बहुत गम्भीर भूलें करके अनादिकाल से....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनादि से यह भटकता है। आत्मा के धर्म को भूलकर (भटकता है)। आत्मा का धर्म जानना और देखना, उसका स्वभाव है। उसे राग का करना, पुण्य का करना, व्रत पालने के विकल्प करना, यह उसका स्वभाव नहीं, ऐसा कहते हैं। विकार और विभाव का करना, वह इसका स्वभाव है। समझ में आया? त्रिकाली ज्ञान के आनन्द का कन्द प्रभु त्रिकाली, वह कृत्रिम राग और बाहर की क्रिया का कर्ता हो, तेरी मिथ्या चतुराई है। समझ में आया? आहाहा! बहुत आते हैं ऐसे। हमने हमारे बाहुबल से कमाया। हमारे पास कुछ नहीं था। हमने ऐसा किया। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या हो? सच्ची बात यह। परन्तु दूसरे को ऐसा कहे, हमारे

बापू को कुछ नहीं था परन्तु हमने ऐसा बाहुबल से कमाया। वे भाई नहीं बोले थे एक जगह ? प्रभाशंकर पट्टणी। ये दूसरा बोले थे कि तुम ऐसा करो तो यह उसमें कुछ भला नहीं होगा। ऐसा करो, कुछ काम करो देश के, फलाना के और ढींकणा के, ऐसा बोले थे। पट्टणी थे न यहाँ दीवान भावनगर दरबार में। आये थे यहाँ (संवत्) १९९३ में पर्यूषण में ९३-९३। चौतीस वर्ष हुए। यह बोले थे वे।

सब व्याख्यान सुनने आये थे। पूरी कोर्ट आयी थी भावनगर से। वे यह नहीं, यह तुम्हारे क्या कहलाये ?

**मुमुक्षु :** गुरुकुल।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह कोर्ट का था न यह मकान है न, उनका है न? तुम्हारा मकान, नहीं ?

**मुमुक्षु :** सेनेटरी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सेनेटरी परन्तु वह बड़ा जहाँ .... यह उसका नाम भूल गये। यह नहीं, उस मकान के मालिक। यह मकान था न!

**मुमुक्षु :** .... के जज।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वे कोई जज थे। ... ... यहाँ आये थे। व्याख्यान में आये थे यहाँ। सब आये, पूरी कोर्ट आयी। भाई थे तब चूडासमवाले। रामजीभाई तो हो न ऐसे भी, वह चूडावाले बेरिस्टर पोपटलाल थे। सब ....९३-९३। व्याख्यान दिया। वे ... को लेकर वे बड़े व्यक्ति कहलाये न, इसलिए यहाँ शोभा हो जायेगी। फिर मुझे कहे, 'यह मल्ल से मल्ल की लड़ाई है, महाराज!', कहे। कर्म की लड़ाई में कोई हार जाये और कोई आत्मा की लड़ाई में जीत जाये, ऐसे दो मल्ल हैं।

**मुमुक्षु :** ऐसा कहकर अपना बचाव किया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दीवान थे। मल्ल से मल्ल की लड़ाई। यह जड़कर्म की और आत्मा की दोनों की लड़ाई है। यहाँ धूल भी नहीं। आहाहा! लड़ाई कैसी ? अज्ञानी मानता है कि मैं राग करूँ और कर्म की क्रिया करूँ। वह कर्म लड़ते हैं, उसके साथ, ऐसा है नहीं। आहाहा!

**मोक्षमार्ग में क्रिया का निषेध...** अब इस क्रिया को बताया कि पुण्य और पाप की क्रिया, दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा के भाव और यह कमाना, विषय भोगवासना के राग, कमाना, ब्याज रखना, व्यवस्था करना—ऐसा जो शुभ-अशुभराग, वह मुक्तिमार्ग में (नहीं है)। वास्तव में तो यहाँ शुभराग का निषेध है। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन काम परन्तु, हों! यह कठोर कड़ी आयेगी। कहते हैं कि दया के भाव, दान के भाव, भक्ति के भाव, पूजा के भाव, नामस्मरण के भाव, परोपकार के भाव—यह सब भाव विकल्प और राग है। व्रत का भाव, अपवास का भाव, तप का भाव—यह सब विकल्प और राग है। यह मोक्षमार्ग में इसका निषेध है। यह मोक्षमार्ग है नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

## काव्य - ९६

**मोक्ष-मार्ग में क्रिया का निषेध** (दोहा)

**करनी हित हरनी सदा, मुकति वितरनी नांहि।**
**गनी बंध-पद्धति विषै, सनी महादुखमांहि।।९६।।**

**अर्थः-क्रिया आत्मा का अहित करनेवाली है, मुक्ति देनेवाली नहीं है, इससे क्रिया की गणना बन्ध-पद्धति में की गई है, यह महादुःख से लिप्त है।।९६।।**

### काव्य-९६ पर प्रवचन

**करनी हित हरनी सदा, मुकति वितरनी नांहि।**
**गनी बंध-पद्धति विषै, सनी महादुखमांहि ॥९६॥**

आहाहा! लोग यह चिल्लाहट मचाते हैं न। ऐसा सुनकर दूसरे तो सब पण्डित सर्वत्र खलबलाहट.... ऐसे भेड़ की भाँति। **करनी हित हरनी सदा...** पुण्य की क्रिया का भाव, वह आत्मा के हित को हरण करनेवाली है। तब यह कहे कि शुभभाव, वह आत्मा

को शान्ति और धर्म का देनेवाला है। अरे! यह गजब बात है न! आहाहा! रागभाव, पुण्यभाव, वह जीव को **हित हरनी** है। हित की नाश करनेवाली है। तब वे कहे कि शुभभाव, वह हित को मदद करनेवाला है। ऐई सेठ! है या नहीं परन्तु उसमें ?

**मुमुक्षु :** आपने लिखाया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लिखा है क्या हमारा ? यह तो बनारसीदास का है। ठीक कहते हैं।

**करनी हित हरनी सदा,...** सदा तीनों काल में। कोई जीव को शुभभाव हित का करनेवाला है, ऐसा तीन काल में है नहीं। आहाहा! गजब यह बात! कहो, पण्डितजी! है उसमें ? **करनी हित हरनी सदा,...** अहित करनेवाली है। आहाहा! **हित हरनी** के बदले अहित करनेवाली, ऐसा लिया। छनावट जरा स्पष्ट कर डाली। आहाहा! पाप के परिणाम तो हित को नाश करनेवाले, उनकी तो बात यहाँ है नहीं। क्योंकि उसमें तो लोग ऐसा तो जाने कि......

**मुमुक्षु :** यह तो जानते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, जानते हैं। परन्तु यह दया-दान-व्रत-तप-भक्ति-पूजा, ऐसा जो विकल्प अर्थात् शुभराग, वह आत्मा के हित को नाश करनेवाला अर्थात् कि अहित का करनेवाला है। अब ऐसी बात है, उसे हित का मदद करनेवाला है ऐसा मानना.... आहाहा!

**मुमुक्षु :** आचार की परम्परा माने।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आचार की परम्परा उसे कहना। वरना यह सोनगढ़ कहता है, उसमें मार्ग लुट जायेगा, ऐसा (वे) कहते हैं। ऐई पण्डितजी! अभी पत्रिका में आया है। सोनगढ़ की परम्परा आचार्य की है... शुभभाव से धर्म हो और शुभभाव करना, उसके लिये सोनगढ़वाले निषेध करते हैं। कहो, वे राजेन्द्रकुमार भी ऐसा लिखे। राजकुमार न, क्या ? वे राजेन्द्र नहीं ? वह मथुरावाला। मिले तब .... ऐसा-ऐसा लिखे। सामने कुछ बोले नहीं। बाद में पीछे ऐसा लिखे।

यहाँ तो भगवान त्रिलोकनाथ ने कहा, वह कुन्दकुन्दाचार्य ने शास्त्र में रचा, वह

यहाँ बनारसीदास ने उसमें से यह भाव निकाला पद रचकर। आहाहा! कहो, पूनमचन्दजी! क्या आया? देखो!

**मुमुक्षु :** लोग समझते नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** और कितने ही तो ऐसा कहे कि हम यह किसलिए कहते (हैं) कि लोगों की इतनी तैयारी नहीं। इससे हम उन्हें शुभभाव से धर्म होता है, ऐसा कहते हैं। वाह मूर्ख! यहाँ तो स्पष्ट बात। राजमल टीका कलश की टीका करके उसमें से यह बनाया और इन कलशों के बनानेवाले अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि सन्त वनवासी।

**करनी हित हरनी सदा,...** सदा... किसी काल में पंचम काल में लाभदायक और चौथे काल में लाभदायक नहीं, ऐसा है नहीं। आहाहा! अशुभभाव की तो बात ही क्या करना? यहाँ उसकी बात है ही नहीं। परन्तु शुभभाव—रागभाव, विकल्प दया का, दान का, व्रत का, तप का, भगवान की पूजा का, भगवान के स्मरण का, यात्रा का... अरे! गजब है। ऐ मूलचन्दभाई! उसमें है या नहीं? देखो! यह शुभभाव **करनी हित हरनी...** यह शुभभाव आत्मा के अहित का कारण है। राग, वह वीतरागभाव को अहित का कारण है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** जो जाने स्वतन्त्र जाने।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो पहले कहा न, कि श्रद्धा कराने और वस्तु की स्थिति बतलाने के लिये यह बात है। पुण्य छोड़कर पाप करना, यह बात है? यह प्रश्न ही कहाँ परन्तु सवाल है? आहाहा!

चैतन्य भगवान वह तो ज्ञान का सागर है, उसमें राग की क्रिया, वह तो अहित का कारण है। ज्ञान की क्रिया, वह ज्ञान में एकाग्र हो, वह हित की करनेवाली है। आहाहा! ज्ञान स्वभाव अपना स्वभाव, वह ज्ञान ज्ञान में एकाग्र हो, वह क्रिया, वह मोक्ष का कारण है। कहो, सेठी! अब भड़कते नहीं। तब भड़कते थे। शुरुआत में भड़कते थे। ऐसा कठोर ..... आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम, कहे, अहित का कारण

**मुमुक्षु :** अहित का कारण।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ले। तो कुन्दकुन्दाचार्य ने किसलिए पालन किया?

**मुमुक्षु :** कहाँ पालन किया?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा वे कहते हैं।

**मुमुक्षु :** छोड़ा था।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अरे, पालन नहीं किया। आया उसे जाना है और दुःखदायक है, ऐसा उन्होंने जाना है। आहाहा! समझ में आया? कहो, मीठालालजी! इसमें है या नहीं यह? या सोनगढ़ का है यह?

**मुकति वितरनी नांहि...** आहाहा! भगवान! तेरा स्वभाव तो वीतरागस्वरूप चैतन्यमूर्ति ज्ञान है। उसे मुक्ति होने में राग, वह बिल्कुल कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा! **मुकति वितरनी नांहि...** वह मुक्ति को देनेवाला नहीं। आहाहा! पण्डितजी! ऐसी तो स्पष्ट बात है। आहा! क्या कहते हैं। आवे न? आवे वह क्या है? वह दुःखदायक है आवे वह। आहा! कहते हैं न! कितने चार बोल डाले हैं। **करनी हित हरनी सदा,...** करनी अर्थात् यह क्रिया—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि का विकल्प—राग और तपस्या, अनशन और ऊनोदरी तथा यह करना और वह करना, ऐसा जो विकल्प-राग, वह **हित हरनी—**आत्मा की शान्ति को अहित करनेवाली है। आहाहा! **मुकति वितरनी नांहि...** सदा ही—तीन काल में राग की क्रिया, वह मुक्ति के लिये नहीं। परन्तु नहीं, तब अब क्या वह? समझ में आया? आहाहा!

**गनी बंध-पद्धति विषै,...** आगम में भगवान की वाणी में उस शुभक्रिया को बन्ध पद्धति में गिनने में आया है। ऐ मूलचन्दभाई! अब यह तो खुल्ला है। यह सब बैठता है या नहीं अब घर में महिलाओं को?

**मुमुक्षु :** महाराज! वे भूले हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भूले हैं, ठीक। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का दुनिया के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं। आहाहा! यह करो... यह करो... यह करो। पुण्य को हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा (वे) कहते हैं। आहाहा! ऐई पूनमचन्दजी! यह तुम्हारे गाँव में ऐसा कहते हैं। शुभाशुभभाव... यह शुभ हेय? मिथ्यादृष्टि है। यहाँ कहते हैं कि शुभाशुभभाव... शुभ अहित का करनेवाला और भगवान के आगम में उसे बन्ध

पद्धति में, बन्ध की पंक्ति में उसे गिनने में आया है। उसे मोक्ष के मार्ग में गिनने में आया नहीं। आहाहा!

फिर इतना गिना परन्तु **सनी महादुखमांहि...** वह तो महादु:ख में लिप्त है। आहाहा! वाह रे वाह! शुभभाव तो दु:ख है। शुभभाव दु:ख है। बन्धपद्धति में गिना क्यों? कि शुभभाव दु:ख है, दु:ख से लिप्त है। आहाहा! अरेरे! अभी इसे अपना निज स्वभाव, उससे विरुद्ध यह बात है, यह भी अभी बैठता नहीं, उसे आत्मा अन्दर आनन्दकन्दप्रभु है, यह कैसे बैठे? आहा! यह अशुभभाव तो दु:खदायक है। परन्तु जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव दु:खदायक और दु:ख से लिप्त है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** एक-एक बात सत्य है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लोगों को यह कठिन पड़ती है। सुना नहीं न! कितनों ने तो, अपने तो भक्ति करो भगवान की। भक्ति का भाव, वह महादु:खदायक और बन्धपद्धति में भगवान ने गिना है, सुन! और तू कहे कि यह श्रीमद् की भक्ति करो, कल्याण हो जायेगा। धूल भी नहीं होगा, सुन न!

यहाँ तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर कहते हैं कि मेरी भक्ति, मेरी ओर का लक्ष्य वह तेरा शुभभाव है। उसे बन्धपद्धति में हमने कहा है और महादु:ख से वह लिप्त शुभभाव है। ऐ कान्तिभाई! आहाहा! कान्तिभाई (को) जानते हो न? वकील! इनका पन्द्रह सौ रुपये वेतन मासिक था। छोड़कर बैठे हैं। निवृत्तिवाले हैं, हों! कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! कठिन पड़े, हों! महिलाओं को यह कठिन पड़े। भगवान चैतन्य का कन्द आत्मा है। प्रज्ञाब्रह्म है। उसमें राग उसका स्वरूप है? आहाहा! दो बातें ली कि करनी अहितकारी है शुभभाव, वह मुक्ति की देनेवाली नहीं। आगम—परमागम की वाणी में त्रिलोकनाथ की वाणी में ऐसा आया है कि वह शुभभाव को बन्ध की पंक्ति की श्रेणी में गिनने में आया है और महादु:ख से लिप्त है। आहाहा! अब, **क्रिया की निन्दा...**

**मुमुक्षु :** निन्दा कहते हैं अब तो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है या नहीं भैया?

**मुमुक्षु :** लिखा तो है।

★ ★ ★

काव्य - ९७

**क्रिया की निंदा** (सवैया इकतीसा)

**करनीकी धरनीमैं महा मोह राजा बसै,**
**करनी अग्यान भाव राकिसकी पुरी है।**
**करनी करम काया पुग्गलकी प्रतिछाया,**
**करनी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है।।**
**करनीके जालमैं उरझि रह्यौ चिदानंद,**
**करनीकी वोट ग्यानभान दुति दुरी है।**
**आचारज कहै करनीसौं विवहारी जीव,**
**करनी सदैव निहचै सुरूप बुरी है।।९७।।**

**शब्दार्थः-राकिस=राक्षस। वोट=ओट (आड़)। दुरी है=छिपी है।**

**अर्थः-क्रिया की भूमि पर मोह महाराजा का निवास है, क्रिया अज्ञानभावरूप राक्षस का नगर है, क्रिया कर्म और शरीर आदि पुद्गलों की मूर्ति है, क्रिया साक्षात् मायारूप मिश्री लपेटी हुई छुरी है, क्रिया के जंजाल में आत्मा फँस रहा है, क्रिया की आड़ ज्ञान-सूर्य के प्रकाश को छुपा देती है। श्रीगुरु कहते हैं कि क्रिया से जीव कर्म का कर्ता होता है, निश्चय स्वरूप से देखो तो क्रिया सदैव दुःखदायक है।।९७।।**

काव्य-९७ पर प्रवचन

करनीकी धरनीमैं महा मोह राजा बसै,
करनी अग्यान भाव राकिसकी पुरी है।
करनी करम काया पुग्गलकी प्रतिछाया,
करनी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है।।
करनीके जालमैं उरझि रह्यौ चिदानंद,
करनीकी वोट ग्यानभान दुति दुरी है।

**आचारज कहै ( करनीसौं विवहारी जीव,**
**करनी सदैव निहचै सुरूप बुरी है॥९७॥ )**

देखो! यह सन्त कहे दिगम्बर मुनि, अनादि के सन्त ऐसा कहते हैं। यह कहते हैं, वह वीतराग की वाणी भी ऐसा कहती है। **आचारज कहै करनीसौं विवहारी जीव,...** देखो। यह शुभभाव की करनी, वह व्यवहारी जीव। **करनी सदैव निहचै सुरूप बुरी है।** इस करनी का रूप ही बुरा-खोटा है, कहते हैं। आहाहा! कहो, अब यह कठिन लगे या नहीं इसमें? ऐ बसन्तलालजी! क्या है? उसमें है या नहीं?

**करनीकी धरनीमैं...** क्या कहते हैं? **क्रिया की भूमि पर मोह महाराजा का निवास है।** शुभभाव का स्वामी हूँ और शुभभाव के भाव (मेरे), यह मिथ्यात्व का राजा शुभभाव में मिथ्यात्वभाव पड़ा है। आहाहा! मोह महाराजा। यह मिथ्यात्व की बात कही। उसमें निवास है। राग-शुभभाव करूँ, करनेयोग्य है, यह मिथ्यात्व का महाराजा शुभभाव में पड़ा है। गजब बात है। आहाहा! है या नहीं इसमें? कहो, सेठ!

**मुमुक्षु :** बात बराबर आयी है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाहर आयी है सब बात। श्रद्धा में तो निर्णय कर कि शुभभाव धरनी—शुभभाव की भूमिका में (आत्मा नहीं)। क्योंकि वह तो अज्ञान विकार है। अज्ञान अर्थात् उसमें ज्ञान नहीं अर्थात् कि उसमें आत्मा नहीं। शुभराग में आत्मा नहीं। शुभराग में तो जड़ और अज्ञानभाव है। आहाहा! बापू! इसका मार्ग अलग है। आहाहा!

अनन्त जन्म-मरण में अनन्त बार ऐसा करता आया है। अरेरे! एक-एक अवतार में कितने दुःख सहे, उसकी इसे खबर नहीं। यह दुःख तो... कहते हैं कि यह शुभभाव स्वयं दुःख है, ऐसा कहते हैं। यह आकुलता है, यह कषाय का भाव है। आहाहा! शुभभाव, भाई ने कहा न! निहालचन्द्रभाई ने। खुल्ला रख दिया वह। प्रेमचन्दभाई! रखा न उन्होंने कि शुभभाव भट्टी है। अग्नि की भट्टी। भड़क गये। ऐई! किसने कहा?

**मुमुक्षु :** निहालचन्दभाई।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निहालचन्दभाई सोगानी कलकत्तावाले। शुभभाव। अरे,

शान्तस्वभाव भगवान आत्मा में अशुभभाव तो भट्टी है। और शुभभाव कषाय है न! राग दाह आग। यह छहढाला में आता है न!

**मुमुक्षु :** राग, वह आग है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तुम बोलते हो, परन्तु इसकी अभी तक खबर थी कुछ? यह याद आया। इतना याद तो रखा है। छहढाला में आता है न? राग दाह आग। रागरूपी अग्नि दाह है। वह शुभरागरूपी राग भी अग्नि दाह है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। आहाहा!

प्रभु तो शान्त झरना झरे, ऐसा वह स्वभाव है। उसमें तो शान्ति बहे अकषायभाव। उसमें राग कहाँ से आया? कहते हैं। आहाहा! **करनीकी धरनीमैं महा मोह राजा बसै,...** आहाहा! महामोह अर्थात् मिथ्यात्व। उस शुभभाव का कर्ता होना और वह मेरा कर्तव्य है, ऐसा मानना, वह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। उसमें कहाँ अब गुप्त रखा है? यह भक्ति में, एक व्यक्ति कहता था, भक्ति ऐसी करना, ऐसी धुन लगाना, निर्जरा हो जाये कर्म की। धूल भी नहीं होती। बन्ध होता है, सुन न! राग में एकाकार होकर राग के कर्तव्य करे, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि होता है, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** भक्ति में तन्मय हो जाये बाहर का....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तन्मय हो जाता है राग में और स्वभाव का अनादर करता है। अरे, कठिन बात, भाई! तब अब नहीं करना न? करे कौन? आता है, उसे दु:ख का घर है, ऐसा उसे जानना। आहाहा! ऐई, लिखा है या नहीं इसमें? यह तो बनारसीदास। अमृतचन्द्र आचार्य के कलश हैं, उनकी राजमलजी ने टीका की है। (पण्डित) राजमलजी है न यह। यह उसमें से यह समयसार नाटक बनाया है। कहीं इनके घर की बात नहीं। वीतराग के घर की बात है। आहाहा!

कहते हैं, **करनीकी धरनीमैं...** शान्ति की धरनी में... आत्मा बसता है और करनी की धरनी का स्वामी हो, वह मोह मिथ्यात्वभाव राजा बसता है। आहाहा! यह शब्द तो अवरोधक हमारे सेठियाजी को भी, लो! रामजीभाई के प्रति उनका एक पत्र आया था न भाई कैसे? सेठिया कैसे? शोभालालजी। सौभाग्यचन्दजी। भाई सौभाग्यचन्दजी है

न, वह सेठ करोड़पति, नहीं बैंगलोर। यह ६० लाख रुपये दिये और नहीं लिये, नहीं? सौभाग्यचन्दजी। रतनचन्दजी। गये थे कभी?

**मुमुक्षु :** गये थे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अच्छा। गये थे तुम? अच्छा। व्यक्ति नरम है, हों! उसका ही एक प्रश्न आया है भाई के ऊपर कि यह शुभभाव को भट्टी कहते हैं, वह क्या? ऐ पूनमचन्दजी! वहाँ से प्रश्न आया था सेठिया का और भाई का। क्योंकि हम तो भक्ति में तो हमारा लक्ष्य भगवान के ऊपर है। वहाँ राग कहाँ से अग्नि आ गयी? ऐ बसन्तलालजी! भगवान के प्रति भक्ति में वहाँ राग है? भगवान के प्रति लक्ष्य ऐसा है न, वह भगवान। आहाहा! भाई! भगवान परद्रव्य हैं। तीन लोक के नाथ विराजते हों समवसरण में, परन्तु उनके ऊपर लक्ष्य जाये, वहाँ शुभराग है। और वह शुभराग दुःख का कारण है। आहाहा! ऐई नटुभाई! श्रद्धा ही उल्टी है जगत की पूरी। आहाहा!

व्यवहार श्रद्धा का ठिकाना नहीं। अनुभव की श्रद्धा, वह तो और दूसरी चीज़ हुई। समझ में आया? यह तो अभी उसे नहीं... अरे, शुभराग... भगवान की भक्ति है, वहाँ कहाँ हम स्त्री की भक्ति करते हैं? हम वहाँ कहाँ सेठिया की भक्ति, हम सेठ की नौकरी करते हैं? हम तो भगवान की नौकरी करते हैं। अरे! सुन न अब। यह भगवान की भक्ति भी राग है। आहाहा! और वह राग का कर्तव्य मेरा और करनेवाला मैं, वह राग करना मेरा कर्तव्य है, यह मिथ्यात्वभाव है। मूलचन्दभाई!

**मुमुक्षु :** ऐसा अर्थ और कोई नहीं कर सके।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** न करे ऐसा अर्थ। परन्तु है या नहीं इसमें? चतुर व्यक्ति हो या मूर्ख हो? ऐसा करके दूसरा करे। यह कहा था न! भाई आये थे। एक हजार छपाकर सोनगढ़ से। कौन आया था, नहीं कोई? दस हजार पुस्तक छपाने का। तुम नहीं? दूसरा कोई अभी आया था?

**मुमुक्षु :** ....डॉक्टर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, हाँ। डॉक्टर, बस। वह डॉक्टर अंक लाये थे। कहा, सुनते हैं अपन। हमारा काम नहीं। यह करनेवाले को कहो।

यहाँ तो कहते हैं कि वह होने के काल में हो, उसे करे कौन? ऐसा कहते हैं। ऐई सेठ! आहाहा! भारी काम ऐसा, भाई! आहाहा! प्रभु तो चैतन्यमूर्ति, जिसकी आँखें चैतन्य है। उसकी राग आँखें हैं? भाई! उसे अनादि से यह शल्य पड़ी है। समझ में आया? आहाहा! हमारे हीराजी महाराज जब यह हुआ न, (संवत्) १९७२ में चर्चा हुई। वे कहे, भाई कानजी! यह नहीं मिले, हों! यह कुछ मूर्ति मानते हो तो मिले। कहा, महाराज! नौवें ग्रैवेयक गया, कुछ शल्य रह गयी दूसरी। सूक्ष्म शल्य रह गयी है, कहा। (संवत्) १९७२ में कहा, हों! यह नहीं। ऐसी साधारण बात की बात नहीं। शल्य अन्दर रह गयी है। शल्य समझते हैं?

**मुमुक्षु :** काँटा....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाण। काँटा लगता है न अन्दर। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, प्रभु! यह बन्धभाव को इसने धर्मभाव और धर्म का कारण माना है। यह महामिथ्यात्व का शल्य है। और वह मिथ्यात्व कसाईखाना से अनन्तगुणा पाप है। उसकी इसे खबर नहीं। आहा!

**करनीकी धरनीमैं महा मोह राजा बसै, करनी अग्यान भाव राकिसकी पुरी है।** यह अज्ञानभावरूप क्रिया राक्षस का नगर है। यह राक्षस का नगर तुझे खा जायेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो बनारसीदास ने बनाया है। आहाहा! कहते हैं कि **करनी अग्यान भाव...** एक तो अज्ञानभाव। पुण्य का भाव, यह उसमें ज्ञान का अंश नहीं। राग अचेतन है, वह जड़ है। भले रजकण नहीं रंग-गन्ध-रस-स्पर्श, परन्तु वह चेतन नहीं। और चैतन्य नहीं, वह अज्ञान है। और वह अज्ञानभाव राक्षस का नगर है। उसमें गया तो खा लिया जायेगा। शान्ति खा जायेगा, तेरी शान्ति खा जायेगा, कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात भी सुनने को नहीं मिलती। वह बेचारा करे कब और श्रद्धा करे कब? आहाहा! जगत को उल्टे मार्ग ने मार डाला।

कहते हैं, **करनी** तो अज्ञान भाव है। यह शुभविकल्प अज्ञान है। अर्थात् चैतन्य भगवान प्रभु... सूर्य की किरण वह तो सफेद होती है। सूर्य की किरण कोयलावाली होगी?

**मुमुक्षु :** किसी काल में नहीं होती।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसी प्रकार राग, वह तो कोयला जैसा राग, वह चैतन्य के ज्ञान का भाग नहीं। आहाहा! चैतन्य की जाति से राग उल्टी दशा है। आहाहा! अब जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव अपराध और वह अपराध, वह कषाय का अंश और वह आत्मा की शान्ति खा ली जाती है। आहाहा! गजब बात है। यह वीतराग ऐसा कहते हैं, हों! वीतराग के सन्त और वीतरागता माननेवाले समकिती वे कहते हैं। दूसरे तो चिल्लाहट मचाते हैं। यह समाज के साथ कैसे खड़े रहना? मूलचन्दभाई!

**मुमुक्षु :** हाँ, डरते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** डरते हैं।

कहते हैं कि यह शुभभाव अज्ञानभावरूप... अज्ञानभावरूप राक्षस का नगर है। ऐई सेठी! अब तो बहुत आया। पाप के भाव की तो बात ही क्या करना? वह तो साधारण प्राणी भी कहे कि यह छोड़नेयोग्य है। परन्तु यहाँ तो धर्मी ऐसा कहते हैं, भाई! तेरा स्वभाव—धर्म तो ज्ञान है। तो ज्ञान की दशा होना, वह तेरा धर्म है। राग की दशा होना, वह धर्म है? वह अज्ञान का नगर है। उसका राजा राक्षस है। तुझे खा जायेगा। आहाहा! राक्षस की पुरी है। ऐसा है न?

**करनी करम काया...** लो। यह क्रिया कर्म और शरीर आदि पुद्गल की मूर्ति है। यह शुभभाव की क्रिया, वह कर्म की काया है। वह आत्मा की काया नहीं। ऐसी स्पष्ट बात है, तथापि लोग विरोध... विरोध... विरोध (करते हैं)।

**मुमुक्षु :** स्वयं अपना विरोध करते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसका—स्वयं का विरोध करते हैं। भान नहीं। अरे प्रभु! तेरा मार्ग, भाई! तेरी जाति तो ज्ञान और आनन्द की है और राग तो कुजाति है। आहाहा! अब यह शुभभाव से लाभ हो और पुण्य से हो और उसमें लाखों लोग इकट्ठे हों और उन्हें सुहावे।

**मुमुक्षु :** मानते आये हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनादि से मानता आया है और मानने की बात करे वापस

वह। दोनों एक समान हैं। आहाहा! 'द्रव्यक्रिया रुचि जीवडा भाव धर्म रुचि हीन। उपदेशक भी ऐसे ही क्या करे जीव नवीन!' कहनेवाले भी ऐसे और सुननेवाले भी ऐसे। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग इसे श्रद्धा में अभी बैठता नहीं। उसे अनुभव की श्रद्धा तो कहाँ से आवे? आहाहा! समझ में आया? अनुभव कर श्रद्धा होना वापस। ऐसी की ऐसी श्रद्धा, वह नहीं। समझ में आया? यह आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। राग की क्रियारहित है, ऐसा अन्तरज्ञान हुए बिना उसकी प्रतीति सच्ची होती नहीं। अन्दर हाँ, हाँ करे, परन्तु अन्दर उसे बराबर बैठे नहीं। आहाहा!

**करनी करम काया...** क्रिया, कर्म और शरीर आदि पुद्गल की मूर्ति है। वह कर्म का स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। राग और कर्म, वह कर्म का—जड़ का स्वरूप है। वह चेतन का स्वरूप नहीं। **पुग्गलकी प्रतिछाया,...** आहाहा! वह तो पुद्गल की मूर्ति है। **पुग्गलकी प्रतिछाया,...** गजब बात है न! चैतन्य की छाया राग नहीं, तब पुद्गल की छाया है। आहाहा! भारी काम, भाई कठिन यह! यह समयसार नाटक बनाया तब तो.... लिखा न आगे! घर-घर (नाटक) कथा बखानी।

**मुमुक्षु :** उन दिनों में तो यह जिनवाणी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह जिनवाणी, देखो। अब यह चिल्लाहट मचाये। ऐसा पहले नहीं वाँचना। ऐसा वाँचना। पहले यह कथानुयोग वाँचना। उसमें से यह वाँचना। अरे सुन न, बापू! यह उसमें भी उसने लिखा थोड़ा काल और करना है कुछ महान। उसमें तू ऐसा इनकार करेगा, तेरा उद्धार कब होगा? आँखें बन्द करके चला जाता है। आहाहा! यह पुण्यभाव, यह शुभभाव, यह पुद्गल की छाया है, यह पुद्गल का रूप है। आत्मा का रूप नहीं।

**करनी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है।** आहाहा! क्रिया साक्षात् मायारूप मिश्री लपेटी छुरी है। राग है न, मन्द है न, राग शुभ है न, ऐसा। ऐई! इसमें है, यह है या नहीं? **माया मिसरीकी छुरी...** ऐसा। माया-विकार विभाव मिश्री लपेटी हुई। शुभभाव वह अच्छा है, ऐसी खाण्ड से लपेटी हुई छुरी है। छुरी (पर) खाण्ड—मिश्री लपेटी हो, मार डाले, कहते हैं। आहाहा! गजब! समझ में आया? वह तो बस धुन लगाओ। ऐसी धुन लगाओ, अपने को भूल जाओ।

**मुमुक्षु :** उसमें भूला पड़ गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** और भक्ति में निर्जरा हो जाये। तुमको बहुत निर्जरा हो जाये। आत्मा का आत्मा चला जाये उसमें। आहाहा! गजब मार्ग, बापू! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग अर्थात् कि सत्य मार्ग सुनना कठिन हो गया है। ऐसा हो जाये हाय... हाय..! यह तो व्यवहार का तो सब लोप कर डाला। परन्तु व्यवहार जो दुःखदायक है, इसलिए लोप करनेयोग्य है। यहाँ क्या कहते हैं? आचार्य ही कहते हैं। आहाहा! **करनी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है।** संसार का भाव वह खाण्ड से लपेटी हुई छुरी है। तुझे मार डालेगी। तेरी शान्ति को रौंद डालेगी। आहाहा!

**करनीके जालमैं उरझि रह्यौ चिदानंद,...** उसी और उसी में उल्लसित हो रहा है, कहते हैं। **क्रिया के जंजाल में आत्मा फँस रहा है।** यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... माला गिनना, फिर यह करूँ और फिर यह करूँ और फिर यह करूँ, पूजा करूँ, फिर भक्ति करूँ और शास्त्र वाँचना, यह सब भाव अच्छा। कहते हैं, आहाहा! **करनीके जालमैं उरझि रह्यौ चिदानंद,...** है न उसमें? जंजाल में आत्मा फँस रहा है। **क्रिया की आड़ ज्ञान-सूर्य के प्रकाश के छुपा देती है,...** लो। **करनीकी वोट...** आड़ में—शुभभाव की आड़ की क्रिया में **ग्यानभान दुति दुरी है।** आहाहा! ज्ञानसूर्य के प्रकाश छुपा देती है। राग की रुचि में भगवान आत्मा सूर्य ढँक जाता है। **आचारज कहै करनीसौं विवहारी...** यह राग का रुचिवाला व्यवहारी जीव है, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** निश्चय जीव नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, ऐसा कहते हैं। **करनी सदैव निहचै सुरूप बुरी है,** लो। **क्रिया सदैव दुःखदायक है। निश्चयरूप से देखो तो क्रिया सदैव दुःखदायक है।** यह पचाने जैसी बात है। आहाहा! विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १४०, श्रावण कृष्ण अमावस्या, शुक्रवार, दिनांक २०-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद ९८ से १०१**

९८, समयसार नाटक, सर्वविशुद्धि द्वार का ९८वाँ पद है। यहाँ नीचे कलश है।

**प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसम्मोहः।**
**आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते।।३५।।**

**समस्तमित्येवमपास्य कर्म त्रैकालिकं शुद्धनयावलम्बी।**
**विलीनमोहो रहितं विकारैश्चिन्मात्रमात्मानमथावलम्बे।।३६।।**

★ ★ ★

**काव्य - ९८**

**ज्ञानियों का विचार** (चौपाई)

**मृषा मोहकी परनति फैली।**
**तातैं करम चेतना मैली।।**
**ग्यान होत हम समझी एती।**
**जीव सदीव भिन्न परसेती।।९८।।**

**अर्थः-पहले झूठा मोह का उदय फैल रहा था, उससे मेरी चेतना कर्मसहित होने से मलिन हो रही थी, अब ज्ञान का उदय होने से हम समझ गये कि आत्मा सदा पर परिणति से भिन्न है।।९८।।**

काव्य-९८ पर प्रवचन

**मृषा मोहकी परनति फैली।**
**तातैं करम चेतना मैली।।**

**ग्यान होत हम समझी एती।**
**जीव सदीव भिन्न परसेती॥९८॥**

धर्मी की श्रद्धा और ज्ञान कैसा होता है, उसकी बात है।

धर्मी उसे कहते हैं कि जिसकी श्रद्धा में **मृषा मोहकी परनति फैली...** पहली अनादि की राग-द्वेष और पुण्य-पाप के भाव, वे झूठे मोह की परिणति थी। इसलिए **करम चेतना मैली।** आहाहा! पुण्यभाव, वह मोह की परिणति थी।

**मुमुक्षु :** उसे मृषा कहा है, विशेषण बताये हैं मृषा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। झूठी थी। सत्य क्या थी वह वस्तु? पुण्य का भाव जितना दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा आदि, आहाहा! वह सब कर्मचेतना थी और झूठी, मोह की परिणति थी। कठिन। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूपी प्रभु को भूलकर अनादि की फैली मोह की झूठी, राग का भाव वह मोह का भाव, झूठा भाव है, आहाहा! वह परिणति मोह की फैली थी। इससे कर्मचेतना, राग में मैं चेत जाता था, वह कर्मचेतना मैली थी। आहाहा! मूलचन्दभाई! यह दया-दान-व्रत-भक्ति के परिणाम, कहते हैं कि मलिन हैं, ऐसा कहते हैं। ऐई सेठ! आहाहा! दुःखकृत आया है न? **सनी महा दुःखमांहि...** ९६ (पद)। आहाहा! कठिन बात, भाई! होता है यह राग, परन्तु है वह दुःखदायक और कर्मचेतना मलिन दशा है। भगवान आत्मा तो आनन्दस्वरूप ज्ञान की खान आत्मा, उसमें से राग कहाँ से पसरे? ऐसा कहते हैं। **मृषा मोहकी परनति फैली...** यह राग की दशा, यह झूठी मोह की अवस्था थी और इसलिए वह दया-दान-व्रत आदि के परिणाम जो थे, वे सब मलिन कर्मचेतना थी। आहाहा! कितने विशेषण देकर समझाया है।

**ग्यान होत हम समझी एती।** परन्तु सम्यग्ज्ञान होने पर, मैं तो चैतन्य हूँ, ज्ञान हूँ, आनन्द हूँ, ऐसा धर्म का भान होने पर, **ग्यान होत हम समझी एती जीव सदीव भिन्न परसेती।** यह मलिन राग की भावदशा, उससे तो मेरी दशा अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया? लोगों को पचना कठिन लगे न! अनादि का वह रस चढ़ गया है न! राग का रस चढ़ गया है अनादि का। वह राग रहित चीज़, कहते हैं कि धर्मी को ऐसा हुआ, अरे!

मेरी चीज़ तो यह मैली—राग मैली चीज—कर्मचेतना से तो भिन्न है, ऐसा भेदज्ञान होने से **ग्यान होत हम समझी एती जीव सदीव भिन्न परसेती।** तीनों काल उस राग की परिणति से भगवान आत्मा भिन्न है। आहाहा! यह स्त्री-पुत्र, परिवार, धन्धा से तो भिन्न, वह तो कहीं रह गया। वह तो मुम्बई रहे। लड़के मुम्बई रहे। आहाहा!

यहाँ तो अज्ञानपने में, राग की परिणति मोह की वह झूठी थी। मेरी चीज़ नहीं थी। परन्तु उसमें मैंने माना था कि मेरी दशा थी। वह मिथ्यात्वदशा थी। **ग्यान होत हम समझी एती...** धर्मदशा का भान होने पर, अरे! यह आत्मा तो ज्ञान चैतन्य ज्योति ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसा भान होने पर **जीव सदीव...** त्रिकाल ज्ञायकभाव भगवान, वह व्रत के दया-दान-पूजा के भाव से त्रिकाल भिन्न है। कठिन काम! पण्डितजी! उसमें तो धर्म मनावे सब। सेठ! व्रत पाले, पूजा करे, भक्ति करे, वाँचन करे, बस यह सब धर्म। आहाहा! है न अनादि की मान्यता। वह सब अनादि का है। और ज्ञान का भान होने पर, उस राग की दशा से त्रिकाल मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा भान होने पर ज्ञानचेतना प्रगट हुई, उसे धर्म और उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहाहा! दोहा। वह चौपाई था। कैसा आत्मा है, यह बात अब करते हैं।

★ ★ ★

## काव्य - ९९

(दोहा)

**जीव अनादि सरूप मम, करम रहित निरुपाधि।**
**अविनासी असरन सदा, सुखमय सिद्ध समाधि।।९९।।**

**हमारा स्वरूप चैतन्य है, अनादि है, कर्मरहित है, शुद्ध है, अविनाशी है, स्वाधीन है, निर्विकल्प और सिद्ध समान सुखमय है।।९९।।**

## काव्य-९९ पर प्रवचन

आहाहा! भरतेश वैभव में एक चर्चा आती है न, भाई! भरतेश वैभव है न! ऐई! भरतेश (वैभव) पढ़ा न? इसने पढ़ा है। यह कहता था पहले पढ़ा है। उसमें वह (चर्चा) आती है न भरतेश के पुत्र और उस नेमिराज के बीच। उनके मामा। दो के बीच में चर्चा चलती है। फिर नेमिराज कहते हैं... विद्याधर थे। नेमिराज की बहिन थी भरत की पत्नी और लड़कों को स्वयं कन्या देने आता है। भाणेज को कन्या देते थे। नेमिराज विद्याधर राजा थे और उनकी बहिन थी भरत की पत्नी। अपनी पुत्री भाणेज को देने आये थे। यह प्रथा अभी भी है न। प्राय: रबारी में है, क्षत्रिय में भी है। इसलिए कन्या देने आये और उनके साथ चर्चा हुई। फिर भरत ने चर्चा की लड़कों के साथ। लड़के को कहे, अरे लड़कों! यह भगवान की भक्ति है। ऋषभदेव भगवान अपने दादा विराजते हैं। तीर्थंकर केवली हैं, उनकी पूजा-भक्ति करना, वह धर्म है या नहीं? ऐसा पूछा लड़कों को। भरत चक्रवर्ती ने अपने लड़कों को (पूछा)।

तीन लोक के नाथ भगवान अपने दादा। मेरे पिता, तुम्हारे दादा और अभी तीर्थंकर धर्म के दादा। यह दादाजी, कहते हैं न उसे, सेठी को। .... वह कहे, अपने दादा भगवान की पूजा भक्ति से धर्म होगा या नहीं? लड़के को कहे। लड़के कहे कि नहीं होगा। भरतेश वैभव है। बहुत सरस लेखन है। लेखन विद्वान का है। है तो साधारण व्यक्ति। अभिमानी था। बनाया परन्तु उसे बराबर मान नहीं मिला, इसलिए और फिर... ऐसे के ऐसे सब। परन्तु उसमें ऐसा भी लिया है। भरत ने कहा, 'यह तीन लोक के नाथ तीर्थंकर, जिन्हें इन्द्र पूजे और अपने तो पिता, उनकी भक्ति करने से धर्म होगा या नहीं?' नहीं, बापूजी! धर्म नहीं होगा। 'अरे! भगवान की भक्ति से धर्म नहीं होगा? क्या हुआ? यह कन्या देने आये हैं तेरे मामा, तुम उनके पक्ष में चढ़ गये?' अरे बापूजी! क्या कहते हो तुम यह? पिताजी! पहले आप ही कहते थे। अब अभी क्या हुआ यह? लड़कों के सामने मांडते हैं।

**मुमुक्षु :** मांडे। लड़कों को दया ही नहीं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दरकार ही कब है उसे.... ? यह तो पूनमचन्द है न... समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं। लड़कों ने ऐसा कहा, पिताजी ! आप पहले कहते थे और अभी कैसे बदल गये ? 'अरे, परन्तु यह क्या हो गया लड़कों को ? यह कन्या देने आये हैं, उसके लोभ में भगवान की भक्ति को तू धर्म नहीं कहता ? तेरे मामा के पक्ष में चढ़ गया।' अरे पिताजी ! यह क्या कहते हो ? आप कहते थे कि भगवान की भक्ति तो राग है, पुण्य है। तीन लोक के नाथ की भक्ति भी पुण्य है। व्यवहाररत्नत्रय व्यवहार है और व्यवहाररत्नत्रय, वह हेय है—ऐसा आप कहते थे। लड़कों ने कहा। पश्चात् भरत (कहते हैं) 'वाह बेटा वाह !' यहाँ ठिकाना नहीं होता। यहाँ के बाप का ठिकाना नहीं, वहाँ लड़के का ठिकाना कहाँ से लाना ? कहो, समझ में आया ? यह भीखाभाई और हीराभाई बीच में हैं, हों ! ऐसा बनता है न दोनों को तो। परन्तु यह तो दूसरे साधारण गृहस्थ को। भीखाभाई से तो हीराभाई चढ़ जाये।

यहाँ कहते हैं,

**मुमुक्षु :** बापू की ही बात चलती है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसकी ही चलती है। आहाहा ! वाह बेटा वाह ! बात तो तेरी सच्ची है, कहते हैं। परन्तु हम तो पहले तेरी परीक्षा लेते थे कि तेरा मामा आया, उसके रास्ते तू चढ़ गया है या यह कुछ... ? पिताजी ! आप कहते थे न ! व्यवहाररत्नत्रय तो पराश्रित है, वह हेय है, वह धर्म नहीं। आप ही कहते थे न, और यह क्या हो गया तुम्हारे ? कहो, ऐसे तो लड़के थे। शोभालालजी ! आहाहा ! यहाँ तो लड़कों का ठिकाना नहीं होता। उसके बाप का ठिकाना नहीं होता तो लड़कों को कहाँ से लाना ?

**मुमुक्षु :** अब आपकी शरण आये हैं तो अब....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ तो आत्मा की शरण है.... यह अशरण अर्थात् ईश्वर है आत्मा, ऐसा कहते हैं। ईश्वर है अर्थात् उसे दूसरे की किसी की शरण नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर का भी भगवान आत्मा को शरण नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

**जीव अनादि सरूप मम, करम रहित निरुपाधि।**
**अविनासी असरन सदा, सुखमय सिद्ध समाधि॥९९॥**

भगवान तो आत्मा... झूठे मोह का उदय फैल रहा था, उसके कारण (अज्ञान) था। अब तो हमारा स्वरूप तो चैतन्य है। आहाहा! हम तो जगत के साक्षी सूर्य हैं। आहाहा! चैतन्यसूर्य हम हैं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्ज्ञान होने पर धर्मी ऐसा जानता और मानता है। **जीव अनादि सरूप मम**—मेरा स्वरूप तो अनादि है। वह नया हुआ नहीं। सच्चिदानन्द प्रभु अविनाशी अनादि है। आहाहा! **अनादि सरूप मम...** और (मैं) और स्वरूप मेरा, (ऐसा भेद कहाँ है?) परन्तु समझाना कैसे? मैं स्वयं ही अनादि हूँ, मेरा स्वरूप अनादि है। विकार-फिकार और शरीर-फरीर मुझमें है नहीं। यह सम्यग्ज्ञान होने से ऐसा भान होता है। भले गृहस्थाश्रम में हो, छह खण्ड के राज में दिखाई दे। 'दिखाई दे', है नहीं उसमें। धर्मी को तो अपना अनादि स्वरूप है।

**करम रहित निरुपाधि..** है वह तो। कर्म है ही नहीं उसमें। अरे! राग भी जिसमें नहीं, ऐसा मैं हूँ। आहाहा! शुद्ध हूँ। निरुपाधि कहा है न! **निरुपाधि....** महा चैतन्यस्वभाव शुद्ध, राग की उपाधिरहित मेरी चीज़ है। दूसरी तो उपाधि कुछ नहीं, परन्तु राग-विकल्प उठे, उस उपाधिरहित मैं हूँ। समझ में आया? देखो! यह धर्मी सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ीवाला। ऐसे आत्मा को जाने—अनुभव करे, तब उसे समकिती कहा जाता है। कहो, यह तो अभी गृहस्थाश्रम की बात चलती है। साधु, तुम कहते थे न सवेरे। आहा! अविनाशी हूँ। भगवान सत्-सत् है। 'है', उसका नाश कैसे हो? अनादि अविनाशी हूँ। और अशरण हूँ अर्थात् कि मैं स्वाधीन हूँ। मुझे किसी की शरण है, ऐसा मैं नहीं। तीर्थंकर त्रिलोकनाथ की भी मुझे शरण नहीं, ऐसा कहते हैं। यह भक्तिवाले को कठिन पड़े। वे भक्ति को धर्म माने, मोक्ष माने न! भगवान की भक्ति करो। ऐसे यह श्रीमद् की भक्ति करो। जाओ तुम्हारा कल्याण होगा। पकड़ो उनको।

यहाँ कहते हैं कि तीन लोक के नाथ तीर्थंकर को पकड़ तो भी धर्म नहीं, ले! वह तो विकल्प है और राग है। आत्मा अशरण है। उसे किसी का शरण है नहीं, ऐसा है। ईश्वर है वह तो। आहाहा! ईश्वर को किसकी शरण होगी? समझ में आया? मैं तो अशरण अर्थात् किसी का मुझे शरण नहीं। 'अरिहंते सरणं, सिद्धे सरणं'। वह तो सब

व्यवहार की बातें हैं। आहाहा! शरणरहित अर्थात् मुझे किसी की शरण नहीं, ऐसा। मुझे सिद्ध की भी शरण नहीं।

**मुमुक्षु :** अपनी ही शरण है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्वयं ही शरण, स्वाधीन और ईश्वर है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी दृष्टि को सत्दृष्टि कहा जाता है। भगवान की भक्ति करोगे और भगवान का स्मरण करोगे तो तुमको कल्याण हो जायेगा। मिथ्यादृष्टि है। जैन को नहीं माननेवाला है। वीतराग देव को नहीं माननेवाला है वह। ऐई सेठी! सेठी कहते हैं पुराने व्यक्ति कहते हैं, कड़वी भाई कड़क।

**मुमुक्षु :** बहुत कड़वी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कड़वी या कड़क?

**मुमुक्षु :** कड़वी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कड़वी।

**मुमुक्षु :** कड़क।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कड़क, कड़क।

**मुमुक्षु :** कड़क है परन्तु सच्ची है या नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! यह तो आत्मा स्वयं अनादि-अनन्त ईश्वर है। ईश्वर को किसी की शरण नहीं हो सकती। आहाहा!

देखो तो यह। सम्यग्ज्ञान में आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, जिसे—आत्मा को पर की शरण की बिल्कुल आवश्यकता नहीं। ऐसा मैं पर की आवश्यकता, शरण की आवश्यकता रहित हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, चिमनभाई! उस मांगलिक में ऐसा आवे। 'अरिहंते सरणं, सिद्धे सरणं, साहू सरणं, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं'। मांगलिक में ऐसा आवे। यह तो व्यवहार की बात है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** नास्तिक हो जायेगा ऐसे तो...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर से नास्तिक है, ऐसा ही उसका स्वरूप है। पर से नास्तिक

वही इसका स्वरूप है, तब वह स्व-अस्ति होगा। और पर का शरण है, तब तक वह वास्तव में नास्तिक है। पर की शरण-फरण रहित मैं हूँ।

भगवान चैतन्यज्योति प्रभुता से भरपूर... प्रभुता शक्ति है न! प्रभुता से भरपूर परमेश्वर, मेरी सब शक्तियाँ परमेश्वर हैं। परम सामर्थ्यवाली हैं। उसे किसी की शरण है नहीं। आहाहा! व्यावहारिक जीवों को भारी कठिन लगे। मीठा, यह मीठा व्यक्ति है। कड़क है, ऐसा कहा है। कड़वी बात है। परन्तु वही सत्य बात है।

**मुमुक्षु :** अनादि काल से नहीं सुनी हुई है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनादि का गुलाम है न भिखारी। अब कुछ भगवान का सहारा हो, फलाने का... कुछ ऐसा वाणी-बाणी मिले तो मुझे सहारा मिले। ऐसा यह आत्मा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

**असरन सदा...** त्रिकाल मेरा स्वरूप, अशरण है। आहाहा! किसी का शरण हो तो मैं रहूँ, ऐसा मैं हूँ नहीं। आहाहा! आत्मा... आत्मा की आस्तिकता करे। आस्तिकता कहना किसे? कि आत्मा जैसा है पर की शरणरहित, ऐसा माने तो वह स्वयं आत्मा माना कहलाये। आत्मा को पर का आधार मिले तो आत्मा खिले, ऐसा आत्मा है ही नहीं। अमरचन्दभाई! आहाहा! हाँ, अपने स्वभाव से प्रत्यक्ष ज्ञात हो, ऐसा यह आत्मा है। पर से ज्ञात हो और पर के आधार से ज्ञात हो, ऐसी आत्मा की चीज़ ही नहीं। आत्मा ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

**अविनासी असरन सदा, सुखमय सिद्ध समाधि।** लो। सुखमय सिद्ध। निर्विकल्प और सिद्ध समान। सुखमय हूँ, ऐसा। विकल्परहित, उस दुःख के विकल्परहित और सिद्ध समान सुखमय हूँ। गजब बात! कहो, यह सम्यग्दर्शन में यह होता है। सम्यग्ज्ञान में यह चीज़ मान्यता में होती है। ऐसा माने भगवान सच्चे, नव तत्त्व सच्चे, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह कहे, भाई! परन्तु लड़के जब तक चल न सके तो उन्हें चलनगाड़ी चाहिए न पहले। लकड़ी की नहीं रखते? लड़के ऐसे पकड़ रखें और फिर.... यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा को किसी का आधार है ही नहीं। ऐसा आत्मा ही नहीं, सुन न! आहाहा! यह चलनगाड़ी नहीं लड़के... ? ऐसे लड़के चल सकते नहीं तो .... रखे.... हाथ पकड़े न। चल नहीं सकता हो तो भी उसके सहारे-सहारे फिर पैर ऐसे....

ऐसा पहले कुछ देखे या नहीं शरण? पहला-फहला कुछ नहीं, यहाँ तो कहते हैं। सदा ही पर की शरणरहित हूँ। आहाहा! यह वस्तु की बात है। पुरुषार्थ तो बाद में, परन्तु वस्तु ऐसी है। यह मूल को.... आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....पाया नहीं तब तक?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पाया नहीं, उसके लिये कहते हैं। तू पूर्ण शरणसहित है। पर की शरण तुझे है ही नहीं, ऐसा आत्मा है। ऐसा आत्मा माने, तब आत्मा माना कहलाये। आहाहा! समझ में आया? कठिन बातें भारी। यह तो वीतराग के दरबार की बात है। आहाहा! रंक तो वहाँ हाय... हाय... अब... परम शान्तरस मूल, श्रीमद् कहते हैं न! 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल। औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' समझ में आया? कायर-हिंजड़े जैसों को यह प्रतिकूल लगता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मूलचन्दभाई! यहाँ तो ऐसी बात है। 'रण चढ़ा रजपूत छुपे नहीं।'

भगवान आत्मा शान्त और आनन्द का रूप जिसका त्रिकाल है। उसे पर का शरण हो तो टिके, ऐसा वस्तु में है नहीं। आहाहा! उसकी एक-एक शक्ति ईश्वरशक्ति से भरपूर है। अनन्त शक्तियाँ हैं न आत्मा में? उसमें एक ईश्वरशक्ति है न? प्रभुत्वशक्ति है या नहीं? तो एक प्रभुत्वशक्ति, ऐसी अनन्त एक-एक शक्ति को प्रभुत्व निमित्त है। तो प्रत्येक शक्ति ईश्वर के स्वभाव से भरपूर है। आहाहा! कहो, यह जयपुर के सेठिया कहलाते हैं, यह पुराने व्यक्ति। अब उसे ऐसा लगे। क्या किया अभी तक तब इसने? सेठिया!

**मुमुक्षु :** कही हुई बात नहीं मानी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो खानदानी व्यक्ति है न मुख्य। आहाहा! अरे! उसे आत्मा कैसा और कैसा है, इस बात को इसने समझण में, श्रद्धा में कभी ली नहीं। आहाहा!

सिद्ध समान मेरा सुख है, कहते हैं। आहाहा! जैसा सिद्ध को अतीन्द्रिय आनन्द है, वैसा ही अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ मैं पूर्ण हूँ। पूर्ण ही हूँ। आहाहा! श्रद्धा में तो द्रव्यस्वभाव की श्रद्धा करनी है न? पर्याय तो एक अंश है। राग-बाग पर है। आहाहा!

समझ में आया? **सुखमय सिद्ध समाधि।** आनन्दमय, सिद्ध जैसी शान्ति मुझे। स्वभाव तो त्रिकाल वह मैं आत्मा। एक समय की पर्याय और राग, वह आत्मा नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम परन्तु। है न, शून्य करके नीचे डाला है। ऊपर कलश है। कलश का अर्थ नीचे आयेगा।

**विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव।**
**सञ्चेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानम्।।३७।।**

सम्यग्दृष्टि श्रद्धावान आत्मा की आस्तिकता माननेवाला आत्मा ऐसा है, ऐसा माननेवाला, जाननेवाला, अनुभव करनेवाला, वह ऐसा जानता है कि,

★ ★ ★

## काव्य - १००

**पुनः** (चौपाई)

**मैं त्रिकाल करनीसौं न्यारा।**
**चिदविलास पद जग उजयारा।।**
**राग विरोध मोह मम नांही।**
**मेरौ अवलंबन मुझमांही।।१००।।**

**अर्थः-मैं सदैव कर्म से पृथक् हूँ, मेरा चैतन्य पदार्थ जगत् का प्रकाशक[1] है, राग-द्वेष-मोह मेरे नहीं हैं, मेरा स्वरूप मुझ ही में है।।१००।।**

### काव्य-१०० पर प्रवचन

**मैं त्रिकाल करनीसौं न्यारा।**
**चिदविलास पद जग उजयारा॥**

१. यदि ज्ञान ढँक जाय, तो समस्त संसार अन्धकारमय ही है।

**राग विरोध मोह मम नांही।**
**मेरौ अवलंबन मुझमांही॥१००॥**

देखो, ऐ सेठी! यह समयसार नाटक तो बहुत घर-घर में है। तुम्हारे घर में होगा? पढ़े कौन? पढ़े तो वापस अपनी दृष्टि से। मूलचन्दभाई! आहाहा! **मैं त्रिकाल करनीसौं न्यारा।** करनी शब्द से कर्म राग। यह दया-दान-व्रत आदि का विकल्प जो राग की क्रिया, उससे **त्रिकाल करनीसौं न्यारा।** आहाहा! समझ में आया? क्योंकि राग की क्रिया है, वह तो पुण्यतत्त्व है, वह आस्रवतत्त्व है और भगवान तो ज्ञायकतत्त्व है। तो उस राग की क्रिया से त्रिकाल भिन्न है। आहाहा! दोनों एक होंगे, आस्रव और आत्मा दोनों एक हो तो दो तत्त्व भिन्न रहते नहीं। आहाहा! एक भी तत्त्व रहता नहीं। नौ को नौ रूप से रखना हो तो... आहाहा! देखो न, यह वर्षा नहीं आती और दुष्काल पड़े वहाँ चिल्लाहट मचा जाते हैं लोग। परन्तु इस ओर में है न कहीं भाई! ऐसा नेमिचन्दभाई कहते थे। मलकापुर में हाहाकार। बहुत दुष्काल। चार-पाँच दिन चला होगा हाहाकार।

छप्पनिया (संवत् १९५६) का दुष्काल तो देखा है न! यह तो चार-पाँच इंच होगी। वह तो छप्पनिया में था न।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** छप्पनिया में पाँच-छह इंच बरसात आयी थी। इसलिए घास... देना? दाना-बाना कुछ नहीं। छप्पनिया में। (हमारी) दस वर्ष की उम्र थी। देखा था। त्रास... त्रास... त्रास... त्रास... हों! आहाहा! गायें ५०-५० खड़ी हों ऐसे। पाँच-पाँच-छह दिन तक घास का कण नहीं ऐसा। वह ग्वाला गाय के ऊपर कम्बल डालकर रोता था। नजरों से देखा है, हों! और गायों को पाँच-पाँच-छह दिन हुए तिनका नहीं। पानी पिलावे। अब उस पानी से क्या हो? यह सब आँसू सूख गये हों। चिल्लाहट करे। और अनाज तो था सस्ता। ढाई रुपये मण चावल मिलते रंगून के। बहुत सस्ता था।

**मुमुक्षु :** एक रुपया १४ आना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यह होगा। परन्तु यह तो चावल बहुत सस्ते थे। बाजरा

भी... भाव में वह नहीं था। परन्तु पैसे नहीं थे और बहुत वर्ष से दुष्काल पड़ा, वे चिल्लाहट मचा गये।

परन्तु यह तेरी पर्याय में अनन्त काल से दुष्काल पड़ा है, उसका क्या? नेमिचन्दभाई! यह उसकी बात चलती है। यह दुष्काल तो... आहाहा! यह पर्याय में अनादि से दुष्काल है। यह आत्मा कौन है, इसके अंकुर का अभाव है। आहाहा! पर्याय में राग को अपना मानना और राग से कल्याण मानना, वह दुष्काल है। भाई! यह तो सर्वज्ञ का मार्ग है, अर्थात् कि सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा का है। आहा! सर्वज्ञ हुए, वे कहाँ से हुए? सर्वज्ञस्वभाव, वस्तु ही सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। रागवाली तो नहीं परन्तु अल्पज्ञ रहे, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? शरीर के सम्बन्ध में रहे और राग के सम्बन्ध में रहे, वह तो है ही नहीं, आहाहा! परन्तु अल्पज्ञरूप से रहे, वह उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे सर्वज्ञ... सर्वज्ञ भगवान है, ऐसा कहना, परन्तु वह वस्तु स्वयं सर्वज्ञस्वभावी है। वह सर्वज्ञ होकर रहे, यह उसका स्वभाव है। राग होकर और अल्पज्ञ होकर रहे, यह उसका स्वभाव नहीं। आहाहा!

**मैं त्रिकाल करनीसौं न्यारा, चिदविलास पद जग उजयारा।** यह आया, देखो अब। मेरा तो चैतन्य पदार्थ जगत का प्रकाशक है। आहाहा! कहते हैं। नीचे स्पष्टीकरण किया है। **यदि ज्ञान ढंक जाय तो समस्त संसार अन्धकारमय है।** चैतन्यप्रकाश नाश हो जाये तो सब अन्धकार है। जाननेवाली ज्योति चैतन्यमूर्ति है। बाकी तो सब अन्धकार है। कर्म, शरीर, जड़, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति और राग, वह सब अन्धकार है। आहाहा! चैतन्यज्योति भगवान ज्ञान की मूर्ति, वह तो ज्ञान का प्रकाश है। वह यदि न हो तो दुनिया में अन्धकार है, यह कौन कहेगा वापस। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन सब अन्धे। वाणी, मन, दाल-भात, लड्डू, मकान, पैसा, इज्जत सब अन्ध है। सब द्रव्य अन्धे हैं। अरे! राग—व्यवहाररत्नत्रय का राग, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प, वह अन्ध है। पोपटभाई! ऐसी बातें हैं, भाई! इस अन्धकार को पकड़कर चेतन बैठा है, परन्तु वह अन्धकार इसका स्वरूप नहीं है। आहाहा!

**चिदविलास....** भाषा देखो न! चैतन्य का प्रकाश, वह मेरा स्वरूप है। **जग**

**उजयारा...** वह तो इस जगत का उजियारा है। आहाहा! जगत में जागती ज्योति हो तो वह आत्मा ही है। बाकी सब अन्ध है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय विकल्प भी अज्ञान है। अज्ञान अर्थात् उसमें ज्ञान नहीं, उसमें आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसी बात! समझ में आया? **मैं त्रिकाल करनीसौं न्यारा, चिदविलास...** यह ज्ञान का विलास, वह मेरा पद है। वह जग का उजियारा मैं हूँ। आहा! प्रकाश का करनेवाला मैं हूँ। मैं हूँ तो मैं जानता हूँ, मुझे और मैं हूँ तो जानता हूँ उसे—राग आदि को।—ऐसा उजियारा मेरा तत्त्व है। आहाहा! गजब बात, भाई! **राग विरोध मोह मम नांही।** यह विकल्प—दया-दान-व्रत-भक्ति का राग और स्वरूप के विरोध का द्वेष और मोह अर्थात् पर में सावधानी, यह **मम नांही।** मुझमें यह नहीं, हों! मुझमें यह नहीं और मुझमें है, वह सब चैतन्य की जाति का उजियारा है। आहाहा! समझ में आया?

**राग विरोध मोह मम नांही। मेरौ अवलंबन मुझमांही।** आहाहा! अरे! आत्मा को अवलम्बन? मूर्ति का अवलम्बन, आगम का अवलम्बन... ऐई! यह तुम्हारे कहा जाता है। यह आगम और मूर्ति का, भाई, अपने तो अवलम्बन है। तुम्हारे भाई... प्रकाश। ऐ चेतनजी! क्या शब्द है यह?

**मुमुक्षु :** आगम अर्थात् जिनागम और जिनबिम्ब।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जिनबिम्ब। जिनागम और जिनबिम्ब, इन दो की शरण है, आधार है। आहाहा! पंचम काल में, ऐसा कुछ.... भाई नहीं कहते थे भाई? .....हाँ, यह बोलते हैं। इन्हें मुखाग्र है। ....और मुखाग्र है। 'भविजन को आधार।'' ...जिनागम और जिनबिम्ब भविजन को आधार' बस ऐसा बोलते हैं ये। पण्डितजी याद रखे बहुत पकड़कर।

**मुमुक्षु :** हमारे याद रहता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो सब ऐसा कहें। अरे, अरे! यहाँ तो कहते हैं, भगवान मेरा आत्मा। मेरा अवलम्बन मुझमें है, मेरा है। आहाहा! ऐई जेठाभाई! कायर के तो कलेजे काँप जायें, ऐसा है। हमारे सेठी जैसे को कठोर पड़ता है न! कहे, कठिन है। कहो, समझ में आया?

यह तो चैतन्य महाराजा का धर्म है। आहाहा! किसी को नमे, ऐसा वह नहीं। किसी को नमे तो वह विकल्प है, कहते हैं। वह नमे, ऐसा है नहीं, उसमें विकल्प है ही नहीं। आहाहा! ऐई भाई! किसी को नमे, ऐसा नहीं। यह विवाह करने जाते हैं न, वहाँ यह बोलते हैं। नहीं नमे रे नहीं नमे... बोले अवश्य हैं कुछ, बड़े का लड़का, बड़े का लड़का। वह सुना हुआ है कुँवरजीभाई के विवाह में जब आये थे। (संवत्) १९७२ में गढडा। तब सुना हुआ है। ७२ में .... विवाह हुआ न जब, तब हम...

**मुमुक्षु :** नहीं नमे रे नहीं नमे भारतीय जोड़ी नहीं नमे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भारतीय जोड़ी, ऐसा नहीं होता। यह तुम्हारा... तुम्हारे छेडा छोड़ने जाये तब बोले। यह तो विवाह करने जाये, वहाँ यह बोले। नहीं नमे रे नहीं नमे, बड़ों का लड़का नहीं नमे। इसी प्रकार यह बड़ा भगवान आत्मा तीन लोक का नाथ। आहाहा! ऐई! वह सिद्ध को नहीं नमे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह ढीला नहीं छोड़े।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जवाहरात में ऐसे तोल बराबर रखे या नहीं बराबर? .... ढीला-ढीला हीरा-माणेक में देने में ढीला रखे थोड़ा (तौल से ज्यादा दे थोड़ा)? सेठी!

दस हजार का हीरा हो तो थोड़ा ज्यादा रखो थोड़ा, थोड़ा रखो यहाँ पाँच सौ चले जायें उसमें से। रतिभार, नहीं कहते थे भाई? बेचरभाई। दो हीरा लाये थे बेचरभाई (संवत्) १९९९ के वर्ष में। एक हीरा था साठ हजार का और एक था अस्सी हजार का। आठ रति का अस्सी हजार का और वह साठ हजार का तो अर्धाभार का बड़ा था वह। कैरेट का होगा। दो हीरा लाये थे।

**मुमुक्षु :** अभी तो नहीं आयेगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभी नहीं आयेगा। उस समय ९९ के वर्ष में। मखमल की डिब्बी थी (उसमें) गढ्डा। हीरा ऐसे... आठ रतिभार। एक रति के दस हजार रुपये। भगवान के समय में तो हीरा बड़ा करोड़ का था। करोड़-करोड़ का एक हीरा। आहाहा! हीरा की तो यह टाईल्स थी राजा के घर में। यह पत्थर—टाईल्स होती है न टाईल्स। धूल की क्या कीमत है? तीर्थंकर जैसे को पुण्य देखो तो ऐसे, इन्द्र-नरेन्द्र ऐसे

कुत्ती का बच्चा हो न ऐसे, महाराज! ऐसा करे। बड़े सत्ताश्री के साहेबा हो। दस-दस हजार राजा नीचे सेवा करते हों, वे भी भगवान के निकट आकर ऐसे.... चक्रवर्ती के पास ३२ हजार राजा (नमते हैं)।

यहाँ कहते हैं कि ऐसा आत्मा है, आहाहा! वह किसी को नमे विकल्प से, ऐसा वह वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा! गजब बात है न! साधारण मनुष्य को बेचारे को सुनने को मिलता नहीं। उसे विकल्प आवे, परन्तु वह पुण्य है और वह पुण्य आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! भारी कठिन बात है। मीठालालजी! **मेरौ अवलंबन मुझमांही।** मेरा स्वरूप तो मेरा अवलम्बन मुझमें हैं। यह और संक्षिप्त कर दिया है। मेरा स्वरूप मुझमांहि, यह नहीं परन्तु **मेरौ अवलंबन मुझमांही।**

**मुमुक्षु :** यह मूल में बराबर है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यह मूल में है। अब १०१ (काव्य)।

★ ★ ★

## काव्य - १०१

(सवैया तेईसा)

**सम्यकवंत कहै अपने गुन,**
**मैं नित राग विरोधसौं रीतौ।**
**मैं करतूति करूँ निरवंछक,**
**मोहि विषै रस लागत तीतौ।।**
**सुद्ध सुचेतनकौ अनुभौ करि,**
**मैं जग मोह महा भट जीतौ।**
**मोख समीप भयौ अब मो कहुं,**
**काल अनंत इही विधि बीतौ।।१०१।।**

**शब्दार्थ:-रीतौ=रहित। मोय=मुझे। तीतौ (तिक्त)=चरपरा।**

**अर्थः-सम्यग्दृष्टि जीव अपना स्वरूप विचारते हैं कि मैं सदा राग-द्वेष-मोह से रहित हूँ, मैं लौकिक क्रियाएँ इच्छारहित करता हूँ, मुझे विषय-रस चरपरा लगता है, मैंने जगत में शुद्ध आत्मा का अनुभव करके मोहरूपी महा योद्धा को जीता है, मोक्ष मेरे बिल्कुल समीप हुआ, अब मेरा अनन्त काल इसी प्रकार बीते।।१०१।।**

## काव्य-१०१ पर प्रवचन

**सम्यकवंत कहै अपने गुन,**
**मैं नित राग विरोधसौं रीतौ।**
**मैं करतूति करूँ निरवंछक,**
**मोहि विषै रस लागत तीतौ॥**
**सुद्ध सुचेतनकौ अनुभौ करि,**
**मैं जग मोह महा भट जीतौ।**
**मोख समीप भयौ अब मो कहुं,**
**(काल अनंत इही विधि बीतौ॥१०१॥)**

यह सम्यग्दृष्टि की बात है। सेठी! सेठ!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सेली तो राख होती है, भाई! सेली, हमारे (काठियावाड़ में) राख को सेली कहते हैं। राख होती है न भभूती। सेली डालो इसमें थोड़ी राख। इस मूँग में, बाजरा में डालते हैं न। बिगड़े नहीं।

**मुमुक्षु :** कण्डे की राख।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** डाले, कण्डे की राख डाले। आहा! वह सेली यह है राख। यहाँ तो खड़े रहना कठिन है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** खड़ा रखने से कभी पार पड़े।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पार पड़ जाये।

**मुमुक्षु :** खड़ा रहनेवाले को तो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खड़ा रहनेवाला क्या? यह श्रद्धा ऐसी है, उसमें ऐसी करना, यह खड़े रहना। खड़े रहना, वह बाहर में खड़े रहना है?

**सम्यकवंत कहै अपने गुन, मैं नित राग विरोधसौं रीतौ।** मैं तो पुण्य और पाप तथा भाव से तो खाली हूँ। मुझमें वह कभी है नहीं। आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय का राग मुझमें नहीं, ऐसा कहते हैं। सर्वविशुद्ध अधिकार है न! **मैं नित राग विरोधसौं रीतौ... रीतौ** अर्थात् खाली। जैसे घी बिना घड़ा खाली हो न! खाली घड़ा, उसी प्रकार मैं तो राग और द्वेषरहित खाली हूँ। मेरे स्वभाव से परिपूर्ण हूँ और राग-द्वेष से खाली हूँ। आहाहा! **मैं करतूति करूँ निरवंछक,...** यह राग आता है। इससे क्रिया होती है, ऐसा दिखता है, परन्तु वह वांछारहित क्रिया है। व्यवहार आओ और व्यवहार की इच्छा है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**मैं लौकिक कियाएँ इच्छा रहित करता हूँ।** यह लौकिक क्रिया का अर्थ राग। व्यवहार राग है न, वह व्यवहार क्रिया है। लौकिक क्रिया—व्यवहार क्रिया। व्यवहार और लौकिक दोनों एक हैं। आहाहा! **मैं करतूति करूँ निरवंछक,...** इच्छारहित राग है। राग का राग नहीं। राग की इच्छा नहीं। आता है। क्रिया होती है, उसे मैं जानता हूँ। कठिन काम भाई! यह तो अभी चौथे गुणस्थान—सम्यग्दर्शन की बात है। आहाहा! सम्यक्वन्त की बात करनी चाहिए न! मानो यह तो कोई बड़े की—केवली की बड़ी किसी की बात होगी।

**मैं करतूति करूँ निरवंछक, मोहि विषै रस लागत तीतौ।** आहाहा! यह छह खण्ड के राज, इन्द्राणी जैसी देवियाँ—रानियाँ, यह भोग, कहते हैं कि मुझे कड़वा जहर जैसे लगते है। आहाहा! चरपरा रखा है न उसमें।

**मुमुक्षु : विषै रस तीतो**

**पूज्य गुरुदेवश्री : तीतौ** अर्थात् तीखा। यहाँ ज्ञानी को तो जहर जैसा लगता है। आहाहा! धर्मी को विषय की वासना हो, वह जहर जैसी लगती है, कहते हैं। आहाहा! निखार है, राग में से निकल जायेगा। अनुकूल स्त्री, अनुकूल पैसा, अनुकूल साहेबी,

लाखों रुपया का वेतन मासिक हो और भोगसामग्री हो। क्या कहलाता है? फर्नीचर।

**मुमुक्षु :** फर्नीचर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** फर्नीचर। पचास हजार—लाख का—दो लाख का फर्नीचर।

कोई कहता था न, मेरा फर्नीचर देखने आओ। दो लाख का बँगला लिया है, वहाँ एक भाई ने। भावनगरवाले। अमेरिका में जाते हैं न ये सब। बहुत जाते हैं न अब लड़के लुटाने। निरंजन गया था न? कहते हैं कि नौकरी में दस हजार वेतन भाई को। अमेरिका में नौकरी। यह नीमुभाई को। आया था बीच में पालेज। दस हजार वेतन। रहे कितना? सब खर्च में निकले। क्या कहलाता है वह? इनकमटैक्स का। तो भी....

**मुमुक्षु :** सर्वत्र महँगाई है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** महँगाई है। अब तो डालर का दस गुना-बीस गुना (मूल्य) है। यहाँ का दस हजार का वेतन वहाँ का तीन सौ का वेतन। ऐई!

**मुमुक्षु :** मजा कितना होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी मजा नहीं। होली—अग्नि है। यह पाँच बार गया था न वहाँ। वहाँ साठ हजार पढ़ाने के थे, साठ हजार। यह वापस छोड़े और इसके अतिरिक्त ४०-५० हजार का माल लाया, खर्च को निकालकर। ... पागल हो न लोग।

**मुमुक्षु :** होशियार....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी होशियार नहीं। पोपटभाई! ऐसा कि साठ हजार पढ़ने को रखे थे उसके पिता ने, वे वापस दिये। ...साथ में तदुपरान्त खर्च निकला और तदुपरान्त ४०-५० हजार का माल ले आया। फर्नीचर सब किया वह वहाँ रखना कहाँ? ऐसे ताबड़तोड़ करना क्या? भाई, देखो मैं ले आया पाप करके। आहाहा! और कितने ही फिर वहाँ जाकर वापस आने का विचार रखते नहीं। मैं आऊँगा तो अब... एक महीने तक हूँ। फिर विवाह करके भाग जाये। इसलिए महीने में कोई दे। यह तो लिखते हैं अखबार में कि एक महीने के लिये हूँ। इसलिए क्या शीघ्रता से कोई कन्या दे। एक महीने के अन्दर कोई....

**मुमुक्षु :** फोटो दे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब दे। ऐसा है और वैसा है। इतना वहाँ वेतन है। धूल भी नहीं, सब हैरान के रास्ते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, वह सब विषय पाँच इन्द्रिय का रस ज्ञानी को तीखा-कड़वा लगता है। आहाहा! यह कुर्सी के ऊपर बैठा हो, वह सब फर्नीचर ऐसे खूँटी से टंगी हुई हो। आहाहा! कहते हैं कि वह तो सब पाँच इन्द्रिय हों। यह कीर्ति सुनूँ तो भी, कहता है कि मेरा विकल्प उसमें जाये (तो) दु:खरूप है। आहाहा! बहुत प्रशंसा चले। अभिनन्दन पत्र दे। इकट्ठे होकर कहे, यह लड़का बहुत कमाऊँ। वापस बहुत अच्छा पका।

**मुमुक्षु :** कर्मी हुआ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कर्मी हुआ कर्मी। कर्म किया इसने। कहते हैं धर्मी, अरे! यह सब शब्द सुनकर तो मुझे यह विषय कठोर लगते हैं तीखे (लगते हैं)। जहर जैसे लगते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव को। आहाहा! देखो, इसका नाम धर्म कहते हैं। ऐसे धर्म-धर्म करे, बातें, बापू! धर्म अलग चीज़ है। जिसे धर्म का रस जगा है आनन्द का, उसे तो **मोहि विषै रस लागत तीतौ।** आहाहा! खम्मा... खम्मा करे चारों ओर। अरेरे! यह नहीं, हों! कि यह तो दुश्मनों के घेराव में मैं आया हूँ। समझ में आया? इसका नाम धर्म की दृष्टि और धर्मी कहलाता है।

**सुद्ध सुचेतनकौ अनुभौ करि,...** मैं तो, मेरा आत्मा भगवान शुद्ध पवित्र है, उसे अनुसरकर, अनुभव होकर, आहाहा! **मैं जग मोह महा भट जीतौ। मैंने जगत में शुद्ध आत्मा का अनुभव करके मोहरूपी महा योद्धा को जीता है,...** देखो! आहाहा! भगवान आत्मा स्वरूप के आनन्द का अनुभव करके मैं तो, मोह को—मिथ्यात्व को मैंने जीता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **सुद्ध सुचेतनकौ अनुभौ करि, मैं जग मोह महा भट जीतौ।** आहाहा! **मोख समीप भयौ अब मो कहुं,** आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** स्वयं अपना स्वभावरूप किया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अपना आत्मा पुकार करता है कि अब तो मोक्ष समीप-

नजदीक जा। एक या दो भव आगे, वह मोक्ष है। आहाहा! ऐसी पुकार करते हैं कि ... जिसे यह। समझ में आया? देखो, यह कहते हैं कि खबर पड़ी या नहीं सम्यक्त्व में? आहाहा!

**मोख समीप भयौ अब मो कहुं,** मुझे तो मोक्ष—परमानन्द की दशा अब तो नजदीक है। आहाहा! क्योंकि मैं स्वयं ही मोक्षस्वरूप हूँ। ऐसे मोक्षस्वरूप भगवान आत्मा के अबन्ध परिणाम प्रगट किये तो अब अबन्ध पूर्ण होने में मुझे देरी नहीं। आहाहा! समझ में आया? **काल अनंत इही विधि बीतौ।** मूल तो यह काल... है न। काल तो बाद में आता है। '**कालावलीयमचलस्य वहत्वनन्ता**' इस ओर आता है, ३८ में। परन्तु इसका यहाँ सामने डाला पहले। ओहो! समझ में आया?

भगवान आत्मा ऐसा जो पर की शरणरहित और पूर्ण ज्ञानचेतना के भण्डारवाला ऐसा मैं, ऐसा जहाँ सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन में भान हुआ, कहते हैं, मोक्ष तो समीप है अब। सिद्धपद तो अब ऐसे नजदीक है, कहते हैं। मेरे संसार में पड़ा है और पड़ेगा साथ में, यह बात रही नहीं अब। आहा! गजब बात है न! वह कहे, परन्तु गिर जायेगा। अब सुन न! गिरे कौन? द्रव्य गिर जाये? द्रव्य का अभाव हो? ऐसा जहाँ द्रव्य का अनुभव हुआ, गिरे कौन? आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऐसी खुमारी आ जाये तो अब .... तैयारी है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शान्तिभाई! यह तुम्हारे डॉक्टर आये हैं। यह तो कभी आते हैं। आहाहा! खुमारी चढ़ जाये ऐसा है यह तो। 'जैसे अमली अमल करत समय लाग रही खुमारी, जिनराज सुजस सून्यो मैं काहू के कहे, अब कछु न छूटे लोकलाज सब डारि।' दुनिया क्या कहती है। दुनिया उसके घर रही, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **काल अनंत इही विधि बीतौ।** मेरा काल अब इसमें ही जाओ। बस, जो आनन्द में गया, उसे आनन्द में से बाहर कैसे निकलना सुहावे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में।' इसका नाम समकिती और उसका नाम धर्मी कहा जाता है। वह नाम धरावे धर्मी के और वापस ठिकाना न हो कुछ। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १४१, भाद्र शुक्ल १, शनिवार, दिनांक २१-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद १०२ से १०६**

यह समयसार नाटक, सर्वविशुद्धि द्वार, १०२ पद। १०२-१०३ है न?

★ ★ ★

**काव्य - १०२-१०३**

(दोहा)

**कहै विचछन मैं रह्यौ, सदा ग्यान रस राचि।**
**सुद्धातम अनुभूतिसौं, खलित न होहुं कदाचि।।१०२।।**
**पुव्वकरम विषतरु भए, उदै भोग फलफूल।**
**मैं इनको नहि भोगता, सहज होहु निरमूल।।१०३।।**

**शब्दार्थ:-विचच्छन=ज्ञानी पुरुष। राचि=रमण। खलित=च्युत।**

**अर्थ:-ज्ञानी जीव विचारते हैं कि मैं सदैव ज्ञानरस में रमण करता हूँ और शुद्ध आत्म-अनुभव से कभी भी नहीं चूकता।।१०२।। पूर्वकृत कर्म विषवृक्ष के समान हैं, उनका उदय फल-फूल के समान है, मैं इनको भोगता नहीं हूँ, इसलिए अपने आप ही नष्ट हो जायेंगे।।१०३।।**

**काव्य-१०२-१०३ पर प्रवचन**

**कहै विचछन मैं रह्यौ, सदा ग्यान रस राचि।**
**सुद्धातम अनुभूतिसौं, खलित न होहुं कदाचि॥१०२॥**
**पुव्वकरम विषतरु भए, उदै भोग फलफूल।**
**मैं इनको नहि भोगता, सहज होहु निरमूल॥१०३॥**

क्या कहते हैं? सर्वविशुद्ध अधिकार है न! जिसे आत्मा का धर्म प्रगट हुआ है...

आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु है, ऐसा जिसे अन्तर में भान होकर शुद्धता दशा में प्रगट हुई, उसे धर्म कहते हैं। अनादि काल से अल्प अवस्था में जो राग-द्वेष के विकार और उनका भोगना है, वह अज्ञानभाव है। समझ में आया? भगवान आत्मा पुण्य-पाप के, राग-द्वेष और हर्ष-शोक के राग से—विकल्प से तो भिन्न है। ऐसा जिसे भान नहीं, वह अनादि से वे राग-द्वेष के भाव, पुण्य-पाप, शुभ-अशुभभाव की दृष्टि, वहाँ विकार के ऊपर है अनादि की, इससे उसका कर्ता होकर, उसका भोक्ता अज्ञानी अनादि से होता है, यह चार गति में भटकने का कारण है। समझ में आया?

भगवान आत्मा तो सच्चिदानन्द निर्मल पवित्र आनन्द का धाम है। उसे अनादि से भूलकर और स्वभाव जो पवित्र और शुद्ध है, उसके ऊपर अनादि की दृष्टि नहीं होने के कारण वर्तमान पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव में उसकी दृष्टि की अस्ति होने से अनादि से अज्ञानी विकार पुण्य-पाप का कर्ता और उनका भोक्ता (होता है), वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप आनन्द के स्वभाव की दृष्टि हो, तब तो उस जीव राग-द्वेष के और हर्ष-शोक के परिणाम पर उसकी दृष्टि नहीं होती, इसलिए वह राग-द्वेष, पुण्य के परिणाम का कर्ता नहीं होता, तथा उसे भोगने का विकार नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

**कहै विचछन मैं रह्यौ,..** यहाँ तो धर्म प्राप्त जीव की बात है। वह पहली बात की थी कि धर्म नहीं प्राप्त की क्या स्थिति है? कि आत्मा ज्ञान और आनन्द का धाम प्रभु के भान बिना अनादि से त्यागी हो, जैन का साधु आदि हो, तो भी जिसका स्वभाव सागर शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु है, उसके ऊपर दृष्टि और उसका जिसे अन्तर में स्वीकार नहीं, वह हर्ष, पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम, उसका वह कर्ता, वह मेरा कर्तव्य और वह मेरा फर्ज है, ऐसे कर्ता होता है और इससे वह हर्ष-शोक के परिणाम का भोक्ता मिथ्यादृष्टि होता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** अनादि से जैन में जन्मा नहीं तो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह अनन्त बार लिया। अनन्त बार जन्म लिया, जैन के स्थान में, उसमें क्या हुआ? समझ में आया? चक्रवर्ती के महल के अन्दर में कुतिया प्रसव करे, क्या कहलाता है वह? उसका बच्चा जन्मे, इससे कहीं चक्रवर्ती हो गया वह?

उसके बँगले के नजदीक में कुत्ती, क्या कहा यह ? वियाणी... वियाणी। वियाणी, भाषा है हमारे काठियावाड़ की। तुम्हारी क्या भाषा है ?

**मुमुक्षु :** बच्चा जन्मता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इससे कहीं चक्रवर्ती का घर उसका हो गया ? इसी प्रकार अज्ञानी जैन वाड़ा में जन्मकर...

**मुमुक्षु :** कुत्ती का हिसाब लागू करना है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कुत्ती से भी गया-बीता है। यह तो चिमनभाई ने प्रश्न किया था वह। वह और यह आया। आहाहा! इसी प्रकार जैन के वाडा में—सम्प्रदाय में कुल में जन्मा तो क्या हुआ ? परन्तु आत्मा, यह राग और विकल्प की मर्यादा जो विकार की, उसका कर्तापना जैन की दृष्टि में हो नहीं सकता। समझ में आया ? आहाहा!

जैन अर्थात् जीतना। वह पुण्य और पाप के विकल्प को जीतना अर्थात् कि उनका आश्रय लेना नहीं और त्रिकाली ज्ञायक चिदानन्द आनन्द का आश्रय लेकर उन्हें भिन्न करना। भिन्न करने से उसका कर्ता और भोक्ता रहता नहीं, उसे जैन कहा जाता है। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। समझ में आया ? और ऐसा जिसने जाना नहीं, वह तो अनादि से चिदानन्द भगवान से विपरीत ऐसा जो पुण्य-पाप का भाव—विकार—मैल—जहर उसका परिणमन, वह मैं, यह दशा, वह मेरी और उसमें हर्ष-शोक का अनुभव हो, वह भोक्ता मैं—ऐसा माननेवाला अज्ञानी अनादि का ....वाला वह है। ऐसी बात है। समझ में आया ? परन्तु जब ऐसा भान हुआ कि अरे! यह विकार के परिणाम, वह मेरी चीज़ नहीं। मैं तो निर्विकारी ज्ञानघन आत्मा हूँ। मेरे स्वभाव में आनन्द और ज्ञान ही पड़ा है। यह पुण्य-पाप के विकल्प—वृत्तियाँ, वह मेरी चीज़ नहीं। इससे उन पुण्य-पाप का कर्ता, उनका परिणमन अशुद्ध का ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा! ऐ पाटनीजी! कठिन धर्म भाई ऐसा!

**मुमुक्षु :** जयपुर....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जयपुर में, वहाँ भी यही चलता। यह कहीं वहाँ चलता नहीं था। पैसा खर्च करते थे भाई और व्यवस्था करते थे भाई नेमिचन्दभाई। उसकी बराबर

व्यवस्था। पूरे बीस दिन की व्यवस्था बराबर। वहाँ यही चलता था, सोनगढ़ की ही लाईन। बीस दिन में कहीं ऐसा नहीं लगा कि यह कुछ जयपुर की लाईन, दूसरे की लाईन है। बैठा या नहीं बैठा, वह अलग, परन्तु चलता था यही। पण्डितजी को ख्याल है न? ..... सेठिया थे दोनों भाई। आहाहा! यह कहीं किसी के घर की चीज़ नहीं।

**मुमुक्षु :** भगवान के घर की तो है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भगवान अर्थात् स्वयं। भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त आनन्द और बेहद जिसका स्वभाव ज्ञान, बेहद जिसका आनन्दभाव, बेहद जिसका अन्तर वीर्य और पुरुषार्थ, उसका नाम आत्मा। तो ऐसे आत्मा की जहाँ दृष्टि नहीं, उसे तो अनादि का पुण्य-पाप का राग और हर्ष-शोक का अनुभव है। उसे करे और उसे भोगे। कहो, सेठ! बीड़ी-बीड़ी का धन्धा करे, वह नहीं। पैसा-बैसा लेने जाये कानपुर, वह नहीं—ऐसा कहते हैं। ऐई अमरचन्दभाई! कठिन बात, भाई!

**मुमुक्षु :** हेय-उपादेय का भेदज्ञान होता क्यों नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करता नहीं, इसलिए नहीं होता। अभेद करता है, इसलिए भेद करता नहीं। क्या कहा यह? विकार के पुण्य-पाप के दया, दान, व्रत के भाव, वे भिन्न हैं, और भेद पाड़कर करता नहीं, उसे एकत्वरूप से अभेदरूप से मानता है। अभेद मानता है तो वह भेद कैसे करे? आहाहा! अमरचन्दभाई! बापू! मार्ग तो तेरा ऐसा है, क्या हो? जगत लुटाया है। वह उत्साह से लुटता है। आहाहा! दौड़कर... ऐसा कहीं आया था न एक बार। दौड़कर जाता है जेल में, कहे।

यह जेल में था न। गाँधी का चलता था न, तब कितने ही युवक ऐसे थे कि किसने यह गुनाह किया है? कौन था यह? दौड़कर जेल में पहले जाता कि हमारा केस चलाओ, हमने गुनाह किया है, ले। समझ में आया? ऐ पोपटभाई! ऐसे भी थे न! पतंगिया जैसे हो न ऐसे। पड़े जाकर... आहाहा! नहीं, ऐसा हुआ था। ऐसा सुना था, हों! एक तो भाई था कोई तुम्हारा। वेणीचन्द का कोई साला का पुत्र। तुम्हारा वेणीचन्द। वेणीचन्द जेसंग। उनका कोई था साला का पुत्र कोई था। करसन और नन्दलाल, उनमें से कोई एक था। गाँधी की लाईन में। नाम भी याद था तब तो। अब नाम भूल गये।

परन्तु तब यह पहले कहा था। इस प्रकार से किसी ने किया हो, वह भाई कौन है ? कहे, केस चलाओ। मैं अभी दौड़कर जेल में जाता हूँ। यह तो बहुत वर्ष की बात है।

इसी प्रकार यहाँ भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द के धाम में प्रवेश न करके, उसका स्वीकार न करके, उसका सत्कार न करके, उसे उपादेयरूप से आदरणीय न करके, आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो मिट्टी-जड़ है, उसकी कुछ बात नहीं यहाँ। क्योंकि उनका यह कर्ता हो नहीं सकता और उनका यह भोक्ता भी हो नहीं सकता। परन्तु अज्ञानभाव से राग-द्वेष का कर्ता हो सकता है। समझ में आया ? यह शरीर, वाणी, मन तो परपदार्थ स्वतन्त्र, यह तो जड़—अजीव है। उनका बदलना या इनका वेदन करना, यह कहीं जीव में नहीं है। उसमें जब, चैतन्य ज्ञायक और आनन्द का धाम प्रभु जो अकेला स्वभाव का ईश्वर स्वयं, आहाहा! ऐसी ईश्वरता अन्तर की अन्तर में नहीं आयी, इसलिए उसे पामरता जो पुण्य और पाप के विकल्प का राग, उसका परिणमन और वह मेरा कर्तव्य, ऐसा स्वीकार करके मिथ्यात्वभाव को सेवन करनेवाला हुआ। वह भाव मिथ्या—झूठा है, ऐसा। समझ में आया ? आहाहा!

यह बीड़ियों का धन्धा किया और साईकिल जाकर घुमायी, उसकी यह बात खोटी है, कहते हैं। विकल्प जो किये, ऐसा करूँ तो ऐसा होगा और ऐसा करूँ तो ऐसा होगा—ऐसी वृत्तियाँ जो हुई, उनके ऊपर दृष्टि है। वृत्तिरहित चीज़ है, उसके ऊपर दृष्टि नहीं। नेमिचन्दभाई! आहाहा!

**मुमुक्षु :** अजानपने में....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह अज्ञान अर्थात् कुछ बचाव है यह ? (हरड़) के बदले जहर आया पीने में, कहे, मुझे खबर नहीं थी, इसलिए मार न डाले ? कहो, यह अज्ञान बचाव है ? ....प्रेमचन्दभाई। यहाँ गुजर गये न बहिन। नहीं मणिबेन ? सर्प, सर्प डसा उसे। गुजर गयी न... नानुभाई की बहिन। ....सर्प डसा और मर गयी। उसके पति थे वैष्णव। वे रात्रि में कुछ उसकी जरूरत पड़ी थी सोमल। वह सोमल क्या ? यह हरड़। हरड़ वह शीशी में पड़ी थी नीचे। उसके साथ सोमल था और शीशी बदल गयी। लेना था हरड़ या हीमेज होगा चाहे जो। उसके बदले वह सोमल आया। ऐसे हाथ डाला,

सोमल लिया चार आना भार। तुम्हारे हरड़ का चार आना भार रेच हो या नहीं? और लिया और हालमेल हो गया। बुलाओ डॉक्टर को। डॉक्टर जहाँ आये, वहाँ सो गया। सो गया। हो गया, मर गया। चार आना भार सोमल था।

भाई को हुआ नहीं था यह मलूकचन्दभाई को?

**मुमुक्षु :** उन्हें कुनैन ले लिया गया था।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कुनैन लिया गया। कितना कुनैन?

**मुमुक्षु :** ढाई भार।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ढाई भार कुनैन। कुनैन आती है न बुखार उतारने की। कुनैन न? नमक लेना था जरा यह। नमक के बदले कुनैन लिया गया। नमक... मीठुं समझे न? लवण... लवण। लवण ढाई रुपया भार लेना था। उसमें आया कुनैन ढाई रुपया भार। यह मलूकचन्दभाई, हालमेल हो गया। वह तो उल्टी करायी और फिर क्या कुछ कहा था? आहाहा! यह उन्हें हुआ था। इसलिए अज्ञान से लिया, वह कहीं बचाव है? इसी प्रकार जिसे आत्मा कौन है, उसका भान नहीं, (इसलिए) अज्ञानरूप से विकार का कर्ता और विकार का भोक्ता (होता है)। हमको खबर नहीं थी। नहीं थी खबर अर्थात्? मर जा चौरासी के अवतार में। सेठ! ऐसी बात है, भाई! यहाँ तो नगद की बात है। आहाहा!

सर्वविशुद्ध अधिकार है न! भगवान आत्मा सर्वविशुद्ध निर्मलानन्द चैतन्यकन्द, वह तो बन्ध और मोक्ष की पर्याय से भी रहित, ऐसा उसका स्वरूप है। आहाहा! ऐसे स्वरूप की दृष्टि बिना अनादि से जो कुछ उसकी दृष्टि में जो सत्ता का ख्याल आया, वह पुण्य-पाप के विकार की सत्ता का ख्याल आया। निर्दोषता का ख्याल आना चाहिए, उसके बदले सदोषता का ख्याल आया। उस सदोषता का कर्ता और सदोषता का भोक्ता अनुभव, जहर का कर्ता और जहर का वेदन, वह मिथ्यादृष्टि। आहाहा! गजब बात हुई उसकी! तब... जब ऐसी खबर पड़ी, अरे! पुण्य-पाप के विकार और उसका अनुभव जहर के फल आते हैं, देखो! आहाहा!

**कहै विचछन मैं रह्यौ, सदा ग्यान रस राचि।** अज्ञान में मिथ्यात्व में राग रस

राचि... समझ में आया ? और धर्मदृष्टि में भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप सच्चिदानन्द—सत्-शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द का सागर, उसमें विकार नहीं और उसमें विकार का भोगवटा भी नहीं। आहाहा! ऐसा जहाँ अनुभव और भान हुआ तो **कहै विचछन मैं रह्यौ, सदा ग्यान रस राचि।** मैं तो आनन्द के रस के राचनेवाला हूँ। आहाहा! यह राग के रस का कर्ता और भोक्ता मैं नहीं। मूलचन्दभाई! ऐसा धर्म का स्वरूप है। वह सुनने को मिला है, वह गड़बड़-गड़बड़। कठिन पड़े लोगों को। शास्त्र में ऐसा लिखा है न ? साधु को पंच महाव्रत पालने की क्रिया, वह सब तो मानते नहीं यह लोग, ऐसा (वे) कहते हैं। अरे भगवान! सुन न प्रभु! तू क्या कहता है ? भाई! शास्त्र में व्यवहार के वचन हों, उसे तू निश्चय में डाल दे (ऐसा नहीं चला)।

एक का लेख आया है। साधु नहीं वहाँ ? बोरीवली। बोरीवली... बोरीवली। ....हुआ, भाई नेमिचन्दभाई थे या नहीं ? हाँ, महेन्द्रभाई थे। महेन्द्रभाई थे। महेन्द्रभाई ने कहा, निर्विकल्प समकित चौथे में होता है। वह कहे, निर्विकल्प समकित सातवें में होता है। तुम्हारा चिरंजीव था वहाँ। यह विवाद उठा। मैं बोला नहीं। बाद में लिखा, देखो, स्वामीजी बैठे थे बोले नहीं कुछ। खोटा था उन लोगों का। ....ऐसे के ऐसे। हे प्रभु! तू क्या करता है ? भाई! आज बड़ा लेख आया है। यहाँ का आक्षेप बहुत। और वह तो लिखे। उसे बैठा, ऐसा हो, उसमें क्या करे ?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यह होता है, होता है। नहीं बैठे। उसे बैठा हो, वैसा वहाँ लिखे। शास्त्र में लिखा है कि पंच महाव्रत आचरण, नग्न रहना, फलाना रहना, उसे वे मानते नहीं। क्योंकि उसे धर्म मानते नहीं। शास्त्र में लिखा है उसे। अब सुन न!

**मुमुक्षु :** प्रभु आपका निमित्त नहीं होता तो हजारों लोग उलझन में ही रहते।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसमें यह उलझे हुए ही है न अनादि के। वह कहीं नयी चीज़ नहीं। आहाहा!

भाई! यह पंच महाव्रत के विकल्प, वह भी राग, उसका कर्ता और भोक्ता हो, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? अमरचन्दभाई! ऐसी बात है। शास्त्र में तो अनेक

वचन व्यवहार के होते हैं, निश्चय के होते हैं। समझ में आया? ऐसा आचरण पालना, ऐसा-ऐसा करना। शास्त्र के वचन को मानते नहीं, ऐसा कहा। ठीक! अरे भगवान! भाई! तुझे खबर नहीं। प्रभु! तू आत्मा अकेला ज्ञानबिम्ब प्रज्ञाब्रह्म आत्मा है, ऐसा जहाँ भान हुआ तब राग का कर्ता (मिटकर), **सदा ग्यान रस राचि।** मैं तो ज्ञान की परिणति के रसवाला हूँ। राग की परिणति का रसवाला मैं नहीं। ऐसा है। आहाहा! हीराभाई! ऐई भीखाभाई! यह तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति के राग का रसवाला मैं नहीं, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु है या नहीं उसमें? देखो न!

**कहै विचच्छन....** विचिक्षण उसे कहना, होशियार और समझदार उसे कहना कि जो पुण्य-पाप के राग और कर्ता-भोक्ता से भिन्न पड़कर अपने आत्मा को करे—स्वभाव की दशा को भोगे, उसे समझदार और चतुर कहा जाता है। आहाहा! भारी कठिन काम! **सदा ग्यान रस राचि।** ज्ञान शब्द से आत्मा। आत्मा के अनुभव के रस का रसिया धर्मी होता है। राग के और पुण्य के भाव का और उसके भोक्ता का रसिक ज्ञानी नहीं होता। समझ में आया? पर यह शरीर, वाणी, मन, लड्डू, दाल-भात, स्त्री का शरीर, वह कोई तो आत्मा भोग सकता नहीं। इसलिए उसकी बात है नहीं। मात्र उसमें से राग को उत्पन्न करके, प्रेम को उत्पन्न करके प्रतिकूलता के द्वेष को उत्पन्न करके, उस राग को-द्वेष को करे और उसे भोगे, वह अज्ञान की भूमिका है। समझ में आया? आहाहा! जब ऐसा भान हुआ कि अरे! यह राग और विकार और सदोषदशा, वह मेरी चीज़ नहीं। मेरी चीज़ में वह हो तो मैं त्रिकाल विकारी हो जाऊँ। आहाहा! मैं तो त्रिकाली निर्विकार आनन्द का धाम प्रभु, उसकी परिणति जो ज्ञान और आनन्द की, वह मेरी दशा। आहाहा!

**सुद्धातम अनुभूतिसौं,...** अज्ञानी शुद्ध आत्मा की अनुभूति से स्खलित हो गया है अनादि से। इससे उसे विकार और पुण्य-पाप तथा हर्ष-शोक का अनुभव है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! धर्मी, जिसे जन्म-मरण के चक्र मिट गये हैं। आहाहा! चौरासी

के अवतार के कारण जो विकार, वह विकार भी मैं नहीं। मैं तो निर्विकारी आनन्द का धाम आत्मा हूँ। ऐसा जहाँ भान हुआ, **सुद्धातम अनुभूतिसौं,...** मैं मेरे शुद्धस्वरूप का अनुभव, उससे **खलित न होहुं कदाचि।** राग को भोगना, ऐसा मैं नहीं। आहाहा! धर्मी को राग आवे, ऐसा कहना, वह धर्मी का राग है ही नहीं। आहाहा! धर्मी व्यवहार से मुक्त है। समझ में आया?

जिसका स्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का रूप है, ऐसी चीज़ जहाँ श्रद्धा-ज्ञान में अनुभव में आयी, कहते हैं धर्मी, मैं तो **सुद्धातम अनुभूतिसौं, खलित न होहुं कदाचि।** सेठी! आया या नहीं यह? कहाँ आया? ऊपर, ऊपर। वहाँ नहीं। यह ऊपर। १०२ और १०३। पहले कहा था। १०२। ऊपर। उसका अर्थ। **ज्ञानी जीव विचारते हैं कि मैं सदैव ज्ञानरस में रमण करता हूँ।** आहाहा! क्या कहते हैं यह! अज्ञानी सदा रागरस में रमता है। ज्ञानी ज्ञानरस में रमता है। यह दोनों का अन्तर। आहाहा! अरे! इसके घर की बातें जिसने सुनी नहीं। घर की क्रीड़ा कैसी हो? ऐसा का ऐसा अवतार व्यर्थ चला जाता है। यह कमाया और खाया और पीया और स्त्री-पुत्र हुए। यह पुत्र का विवाह किया और पढ़ाया। सब पाप है। मानते हैं न यह। ऐई निरंजन! क्या यह कर आया वहाँ? पाप किया, ऐसा कहते हैं, पाँच वर्ष रहकर। अमेरिका। परन्तु यह पढ़ना-बढ़ना सब पापभाव है। आहाहा! गजब बात है!

**मुमुक्षु :** कैसा मीठा लगता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मीठा लगे परन्तु वैसा नहीं। आहाहा! राग और विकार की सूजन चढ़ी, उसे माना कि मैं निरोग हुआ और मैं कुछ बढ़ गया हूँ। सोजा समझते हैं? सूजन। शरीर में सूजन आती है न! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, धर्मी को तो शुद्धात्मा का अनुभव होता है। उसे राग और पुण्य परिणाम शुभ, उसका अनुभव और कर्तापना धर्मी को होता नहीं। और राग का कर्ता, शुभ का भोक्ता, वह धर्मी नहीं। गजब बातें यह! समझ में आया? ऐसा वस्तु का स्वरूप है, हों! यह कहीं भगवान ने घर का कहा है, ऐसा नहीं। यह तो चीज़ में ऐसी चीज़ ही है। लोगों को कठोर लगे, क्या हो? लो, यह समकिती छह खण्ड का राज करते हैं न। अरे! कौन कहता है करते हैं? सुन न!

**मुमुक्षु :** शास्त्र कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शास्त्र कुछ नहीं कहते। यह हुआ है, ऐसा बताते हैं। उसके समीप में ऐसा होता है, ऐसा बताते हैं। नजदीक क्षेत्र में, हों! भाव में समीप नहीं। और उसे जरा रागादि होते हैं, उसके क्षेत्र में, ऐसा यहाँ बताते हैं। उसके भाव में नहीं। उसका भाव तो शुद्धस्वरूप ज्ञान में रस में रसिया है। आहाहा! यह गजब! तलवार की धार जैसा मार्ग है। यह सरल है, हों! तुमको कठोर लगता है, ऐसा नहीं। चिदानन्द आत्मा, उसे **खलित न होहुं कदाचि।**

**पुव्वकरम विषतरु भए,...** धर्मी अपने निजस्वरूप के ज्ञानानन्द का रसीला, वह ऐसा कहता है कि यह पूर्वकर्म के विषतरु, यह आठों कर्म जहर के वृक्ष। ऐई! जहर के वृक्ष। १४८ प्रकृति सब जहर। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, तीर्थंकर और आहारक वह सब ही जहर प्रकृति, ऐसा कहते हैं। कठोर मार्ग वीतरागमार्ग। **पुव्वकरम विषतरु भए,...** भगवान आत्मा तो अमृत का पेड़ है। उसमें तो अमृत के फल आते हैं। परन्तु पूर्व के कर्म आठ कर्म उनका वह स्वयं जहर का वृक्ष है। **उदै भोग फलफूल।** उसका जब उदय आया, तब संयोग अनुकूल-प्रतिकूल हो, वह उदय का फल-फूल है। जहर के फल-फूल हैं। जहर के वृक्ष के वे फल-फूल हैं। आहाहा! अरे! राग और हर्ष-शोक का विकल्प हुआ, वह विषवृक्ष के फल और फूल हैं। कठिन काम, भाई! समझ में आया?

**पुव्वकरम विषतरु भए,...** आठों ही कर्म, हों! **उदै भोग फलफूल।** आहाहा! चक्रवर्ती की बादशाही, कहते हैं कि वह कर्म जहर वृक्ष के फल है। धर्मी ऐसा मानता है, 'चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखे भोग; कागवीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोक।' यह कौवे की विष्टा। मनुष्य की विष्टा तो शूकर भी खाये। कौवे की विष्टा ऐसी कठिन, ऐसी सूखी, उसे कहीं खाद में भी नहीं डाला जाता। खातर समझ में आता है यह? खेत खेती न खेत कृषि, उसमें वह कौवे की विष्टा काम नहीं आती। धर्मी... यह कहते हैं, यहाँ देखो। आहाहा! बापू! धर्म अर्थात् क्या? समझ में आया? यह धर्म ऐरा-गैरा मान

ले कि यह व्रत पालन किये और यह तपस्यायें कीं और यह अपवास किये और धर्म हुआ। वह तो अधर्म है। व्रत के परिणाम, वह शुभराग अधर्म है। वह जहर के वृक्ष का फल है। अरे! यह वह कैसे बैठे? भीखाभाई!

**मैं इनको नहि भोगता,...** अज्ञानी मिथ्यादृष्टि को तो वह अनुकूलता देखकर, आहाहा! अपने को ऐसी स्त्रियाँ, इतने लड़के, इतने पैसे, इतने मकान, ऐसा मूढ़ मिथ्यात्व में जहर के फल को अनुभवता हुआ खुशी और प्रसन्न होता है। समझ में आया? आहाहा! **मैं इनको नहि भोगता,...** अरे! मेरा स्वभाव तो ज्ञान और आनन्द है न! त्रिकाली अविनाशी की तो चीज़ यह है। तो उसे मैं ज्ञान और आनन्द का भोगनेवाला, वह कर्म के उदय के विषवृक्ष के फल, उन्हें मैं भोगता नहीं। आहाहा! रागधारा और निर्मल वीतरागी आत्मधारा—दोनों जहाँ भिन्न पड़ गयी, वहाँ ज्ञानी कहे, राग के भाव को मैं भोगता नहीं, आहाहा! **सहज होहु निरमूल।** मेरे भोगे बिना चले जाओ। यह आठों कर्मों का आता है न! मतिज्ञानावरणीय को मैं नहीं भोगता। वहाँ उसका सब आयेगा। यह कर्म आवरण है न! उसके उदय को मैं भोगता नहीं। आहाहा!

**मैं इनको नहि भोगता, सहज होहु निरमूल।** वह तो नाश हो जाये स्वभाव से। मेरी भोगने की वह चीज़ नहीं। मेरी भोगने की चीज़, आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द, वह मेरी भोगने की चीज़ है और उसे परिणमना, वह मेरा कर्तव्य है। समझ में आया? ओहोहो! धर्म और अधर्म में बात का अन्तर कितना, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! कुछ शुभभाव किया और माना कि हम कुछ करते हैं। शास्त्र कहता है, ऐसा धर्म करते हैं। आहाहा! अरे! शास्त्र ने ऐसा कहाँ कहा है? वह तो उसकी भूमिका में ऐसी एक मर्यादित राग की दशा होती है, उसे बतलाते हैं। उसका कर्ता और उसका भोक्ता ज्ञानी नहीं हो सकता। आहाहा! गजब! 'धार तलवारनी दोह्यली सोह्यली, चौदमा जिन तणी चरण सेवा।' अनन्तनाथ ऐसा आत्मा, उसकी सेवा बहुत अलौकिक है। समझ में आया? यह दृष्टि में पलटा मारकर रागदृष्टि छोड़कर, वीतरागस्वभाव अन्तर है, उसकी दृष्टि होना, मैं (राग का) भोक्ता नहीं। कर्म का उदय आकर खिर जाओ, निर्मूल होओ, मूल में से जाओ। आहाहा! मूलचन्दभाई! वहाँ कहाँ ऐसी बात थी? इतने वर्ष सुना था। आहाहा!

भाई ! तेरे घर की बातें उल्टी भी कैसे तूने उसे सुना नहीं था उन्हें ? विपरीतता में राग और विकार करे, वह उसकी विपरीतता। उसे करे और भोगे, वह उसकी विपरीतता मिथ्यात्व, इसकी भी उसे खबर नहीं। समझ में आया ? ऐई पोपटभाई ! आहाहा !

**मुमुक्षु :** ....करे परन्तु क्षयोपशम....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्षयोपशम नहीं, विपरीतता है। वह उल्टा करता है न!

**मुमुक्षु :** क्षयोपशम उस ओर चला जाता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कोई चला नहीं जाता। खोटी बात है। उस क्षयोपशम को इसने स्वयं ने लगाया है। समझ में आया ? कर्ता होकर करे और कोई कराता है, (ऐसा माने), यह अनीति है, अन्याय है। आता है न मोक्षमार्गप्रकाशक में। ऐसी अनीति संभवे नाहि। जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभवे नाहि। आहाहा !

**मुमुक्षु :** विषय कषायरूप रहना....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तुझे विषय-कषायरूप रहना है, इसलिए कर्म के कारण से होता है और इसके कारण से होता है, ऐसा कहता है.... ! विपरीतता करके दूसरे के सिर पर डालता है। समझ में आया ? **....उनका उदय फलफूल के समान है, मैं इनको भोगता नहीं हूँ इसलिए अपने आप ही नष्ट हो जाओ।** वैराग्य।

**यः पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां, भुङ्क्ते फलानि न खलु स्वतः एव तृप्तः।**
**आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं, निष्कर्मशर्ममयमेति दशान्तरं सः ।।३९।।**

★ ★ ★

## काव्य - १०४-१०५

**वैराग्य की महिमा** (दोहा)

**जो पूरवकृत करम-फल, रुचिसौं भुंजै नांहि।**
**मगन रहै आठौं पहर, सुद्धातम पद मांहि।।१०४।।**

**सो बुध करमदसा रहित, पावै मोख तुरंत।**
**भुंजै परम समाधि सुख, आगम काल अनंत।।१०५।।**

**शब्दार्थ:-भुंजै=भोगे। आगम काल=आगामी काल।**

**अर्थ:-जो ज्ञानी जीव पूर्व में कमाये हुए शुभाशुभ कर्मफल को अनुरागपूर्वक नहीं भोगता, और सदैव शुद्ध आत्म-पदार्थ में मस्त रहता है, वह शीघ्र ही कर्मपरिणति रहित मोक्षपद प्राप्त करता है, और आगामी काल में परम ज्ञान का आनन्द अनन्त काल तक भोगता है।।१०४-१०५।।**

### काव्य-१०४-१०५ पर प्रवचन

**जो पूरवकृत करम-फल, रुचिसौं भुंजै नांहि।**
**मगन रहै आठौं पहर, सुद्धातम पद मांहि॥१०४॥**

**सो बुध करमदसा रहित, पावै मोख तुरंत।**
**भुंजै परम समाधि सुख, आगम काल अनंत॥१०५॥**

कालावळी यहाँ डाला वापस थोड़ा। उसमें डालते हैं। सब इकट्ठा है और यहाँ वापस डाला। पीछे आता है। '**सर्वकालं पिबन्तु**' पीछे आता है। ४० में आता है। '**सर्वकालं पिबन्तु**'। वह यह है परन्तु यह आता है। इसका अर्थ पीछे बहुत फेरफार कर डाला। व्यवस्थित नहीं। उसको—वाँचनकार को कहाँ खबर हो?

कहते हैं, **जो पूरवकृत करमफल....** अरे! अज्ञानभाव से बँधे हुए कर्म... मैं तो अबन्धस्वरूपी हूँ, परन्तु अबन्धस्वरूपी के अज्ञान और अभान द्वारा बँधे हुए कर्म **रुचिसौं भुंजै नांहि....** रुचि नहीं। आहाहा! **रुचिसौं भुंजै नांहि....** जरा अस्थिरता आ

जाती है, उसका प्रेम ज्ञानी को नहीं। आहाहा! जैसे कड़वी औषधि पीवे, उसी प्रकार उसके **रुचिसौं** आड़ नहीं उसे। आहाहा! कड़वाहट आती है न, बहुत कड़वाहट। बहुत तीखी। सरगोटा और क्या बहुत कड़वा... कड़वा। सरगोटा (कड़वी औषधि) आता है न।

**मुमुक्षु :** चिरायता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चिरायता हुआ। वह सरगोटा आता है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सरगोटा बहुत कड़वा। काजी जीरी से भी वह बहुत कड़वा।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चिरायता नहीं। सरगोटा आता है। भाई! हमारी भाषा में समझ लो। हाँ, बहुत कड़वा हो। हमारे जीवणलाल बहुत खाते थे। उन्हें कफ बहुत था न!

**मुमुक्षु :** मुख में रखे न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुख में रखे। बहुत कड़वा। ऐसा कहते हैं, जिसे आत्मधर्म का भान हुआ, आनन्द का धाम जिसे नजर में और अनुभव में आया, वह राग को और फल को रुचि से भोगता नहीं। आहाहा!

दवा के लिये किसी ने कहा, रोग मिटाने के लिये ऐसी कड़वी दवा (लो)। यह बोतल भरकर रखना भाई, पीछे किसी दिन रोग आवे तो। ऐसी भावना करता होगा? इसी प्रकार ज्ञानी राग को रोग समान जानता है। आहाहा! वह रोग के उपचार करने के लिये ऐसा... हो, वह अनुकूल (वह) जहर है। आहाहा! मेरी शान्ति को लूटनेवाला है। रुचि से, सम्यग्दृष्टि—धर्म की पहली दशावन्त राग को, हर्ष-शोक को रुचि से भोगता और करता नहीं। आहाहा! नेमचन्दभाई! ऐसा धर्म का रूप है, ऐसी उसे खबर भी नहीं होती। आहाहा!

**मुमुक्षु :** बहुतों को सुनने को नहीं मिलता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है मनुष्य की लाईन, दृष्टि उल्टी हो गयी है। कहीं तत्त्व की

खबर नहीं और ऐसा का ऐसा काल गँवाता है, ऐसा जीवन (गँवाता है)। आहाहा! अरेरे! रजकण तेरे भटकेंगे जैसे भटकती रेत, फिर नर तन कहाँ पायेगा? भाई! ऐसा सुनने का योग मिलना जो अनन्त काल में महा दुर्लभ है। पैसा मिलना और पुत्र मिलना और कीर्ति, वह दुर्लभ नहीं। वह तो अनन्त बार मिल गयी है। आहाहा!

**मगन रहै आठौं पहर...** बस धन्धा यह समकिती का, ले! कहे। ऐई! वह सम्यग्दृष्टि अपने स्वभाव के परिणमन में ही सदा होता है। राग आदि परिणमन, वह उसका है नहीं, ऐसा कहते हैं। भाई! शुद्धता का परिणमन उसका सदा वर्तता है। जगत को यह बात जँचना (कठिन है)। अनादि का अभ्यास दूसरा और कहनेवाले भी ऐसे मिले, इसलिए उसे ऐसा लगे, आहाहा! यह तो अकेली निश्चय की सच्ची बात करते हैं। परन्तु खोटी थोड़ी करते नहीं। आहाहा! कहते हैं, **मगन रहै आठौं पहर...** सम्यग्दृष्टि तो अपने ज्ञानस्वरूप की रुचि में ही सदा पड़ा है। उसे राग की रुचि एक समय भी होती नहीं। आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसकी जहाँ भेंट हुई, उसे आनन्द की रुचि के समक्ष राग की रुचि एक क्षण भी होती नहीं। आहाहा! **सुद्धातम पद मांहि....** आठों पहर उसे तो शुद्धात्मा की दृष्टि है। समझ में आया? धर्मी आत्मा का जो धर्म—स्वभाव प्रगट हुआ, वह धर्मी तो आठों पहर अपने शुद्धात्मपद में ही दृष्टि और रुचिवाला है।

**सो बुध करमदसा रहित....** आहाहा! वह तत्त्वज्ञानी, बुद्ध अर्थात् तत्त्वज्ञानी—समकिती। **करमदसा रहित....** वह तो कर्म, जड़ और रागरहित ही है उसकी दशा। ऐसी दशा के घोलन में **पावै मोख तुरंत।** उसे अल्प काल में केवलज्ञान होकर मोक्ष होगा। आहाहा! समझ में आया? **सो बुध करमदसा रहित, पावै मोख तुरंत। भुंजै परम समाधि सुख....** आत्मा राग और कर्मरहित चीज़ है, ऐसा अनुभव में आने पर वह दृष्टि में तो कर्मरहित और रागरहित ही है। परन्तु अब थोड़ी अस्थिरता रही है, वह ऐसे अनुभव से क्रम-क्रम से केवलज्ञान पाकर मुक्ति होगी। **भुंजै** परम आनन्द का सुख। वह तो आत्मा के आनन्द की समाधि अर्थात् आनन्द में सुख को भोगता है, भविष्य में अनन्त काल। केवलज्ञान होने के पश्चात् अनन्त काल रहेगा न वह। **आगम काल अनंत।** आहाहा! आत्मा का आनन्द और केवलज्ञान पूर्ण प्रगट हो, उसका उपाय राग और

कर्मरहित आत्मा की एकाग्रता, उसे अनुभवते हुए उसको केवलज्ञान और मुक्ति होती है कि जो केवलज्ञान और मुक्ति हुई, वह हुई, अनन्त काल रहेगा। कहो, समझ में आया?

इसका अर्थ कि आत्मा का, राग और कर्मरहित उसका स्वरूप ही ऐसा है। ऐसे स्वरूप का भान और अनुभव हुआ, वह आत्मा की शान्ति को वेदते-वेदते पूर्ण शान्ति को प्राप्त करेगा। पश्चात् उस शान्ति को प्राप्त, अवतार लेगा, ऐसा कितने ही कहते हैं, ऐसा नहीं है। मोक्ष होने के पश्चात् भी दुनिया का भार उतारने के लिये अवतार ले, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! जो निचलीदशा में राग की एकता करता नहीं, वह पूर्ण दशा में राग आवे और अवतार हो, ऐसा तीन काल में बनता नहीं, यह कहते हैं। समझ में आया? **आगम काल अनंत।** भविष्य का अनन्त काल, आहाहा! **आगामी काल में परम ज्ञान का आनन्द अनन्त काल तक भोगता है,....** लो। फिर कभी आनन्द का अनुभव घटकर राग का (अनुभव) और संसार का अवतरना हो, ऐसा कभी नहीं होता। **ज्ञानी की उन्नति का क्रम।**

★ ★ ★

## काव्य - १०६

**ज्ञानी की उन्नति का क्रम** (छप्पय)

**जो पूरवकृतकरम, विरख-विष-फल नहि भुंजै।**
**जोग जुगति कारिज करंति, ममता न प्रयुंजै।।**
**राग विरोध निरोधि, संग विकलप सब छंडइ।**
**सुद्धातम अनुभौ अभ्यासि, सिव नाटक मंडइ।।**
**जो ग्यानवंत इहि मग चलत, पूरन ह्वै केवल लहै।**
**सो परम अतींद्रिय सुख विषैं, मगन रूप संतत रहै।।१०६।।**

**शब्दार्थ:-विरख-विष-फल=विषवृक्ष के फल। कारिज=कार्य। प्रयुंजै=करे। छंडइ=छोड़े। मंडइ=करे (खेले)। संतत=सदैव।**

**अर्थ:-जो पूर्व में कमाये हुये कर्मरूप विष-वृक्ष के विष-फल नहीं भोगता, अर्थात् शुभ फल में रति और अशुभ फल में अरति नहीं करता, जो मन-वचन-काय के योगों का निग्रह करता हुआ वर्तता है, और ममतारहित राग-द्वेष को रोककर परिग्रहजनित सब विकल्पों का त्याग करता है, तथा शुद्ध आत्मा के अनुभव का अभ्यास करके मुक्ति का नाटक खेलता है, वह ज्ञानी ऊपर कहे हुए मार्ग को ग्रहण करके पूर्ण स्वभाव प्राप्त कर केवलज्ञान पाता है, और सदैव उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख में मस्त रहता है।।१०६।।**

---

काव्य-१०६ पर प्रवचन

---

**जो पूरवकृतकरम, विरख-विष-फल नहि भुंजै।**
**जोग जुगति कारिज करंति, ममता न प्रयुंजै॥**
**राग विरोध निरोधि, संग विकलप सब छंडइ।**
**सुद्धातम अनुभौ अभ्यासि, सिव नाटक मंडइ॥**

लो! यह नाटक आया।

**जो ग्यानवंत इहि मग चलत, पूरन ह्वै केवल लहै।**
**सो परम अतींद्रिय सुख विषैं, मगन रूप संतत रहै॥१०६॥**

**जो पूरवकृतकरम, विरख-विष-फल नहि भुंजै।** जो अज्ञानभाव से पूर्व में कर्म बँधे हुए थे, उसके फल को ज्ञानी भोगता नहीं। वह कर्मरूपी वृक्ष, उसका विषफल। कर्मरूपी जहर का फल। आहाहा! वह आत्मा के आनन्द के (फल को) भोगता है या कर्म के फल को भोगता है? **जोग जुगति कारिज करंति,...** योग और युक्ति से कार्य होता है। **ममता न प्रयुंजै।** वह क्रिया राग की और द्वेष की मेरी, ऐसी ममता उसे नहीं है। समझ में आया? **जो मन-वचन-काय के योगों का निग्रह करता हुआ वर्तता है।** यह बाद में आता है। परन्तु इस प्रकार से अर्थ है। मन-वचन और काया की क्रिया हो, उसमें वह ममता करता नहीं। अर्थात् कि वह मेरी क्रिया है, ऐसा मानता नहीं। आहाहा!

कर्म शब्द से दिखता है और इसीलिए करता है, ऐसा कहते हैं। योग युक्ति से

ऐसा लगे कि यह बराबर विचिक्षणता से यह काम लेता है और देह का फलाना, वाणी का... ऐसा यह है नहीं, भाई! मन-वाणी-देह यह जड़ है वे तो। उसमें हलन-चलन हो, बोलना, वह तो सब जड़ की सत्ता में होता है। धर्मी उस सत्ता को अपनी मानता नहीं। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई! यह तो नाटक 'समयसार नाटक' है यह तो। उसमें इतनी छनावट है। सादी भाषा है जरा.... यहाँ तो कहते हैं, **जोग जुगति कारिज करंति,...** योग और युक्ति से कार्य (करता है), परन्तु **ममता न प्रयुंजै... करंति** यह तो शब्द की शैली से कहा है। उसमें योग की क्रिया, मन-वचन की क्रिया दिखती है धर्मी को, तथापि वह मेरी है—ऐसा मानता नहीं। आहाहा!

**राग विरोध निरोधि...** धर्मी तो राग और विरोध अर्थात् द्वेष, अनुकूलता और प्रतिकूलता में होता राग-द्वेष को निरोधकर (अर्थात्) उत्पन्न होने नहीं देता। आहाहा! गजब मार्ग! यह ऊँची-ऊँची बात करे परन्तु कैसे करना... और एक व्यक्ति ऐसी आलोचना करता था। भाई! मार्ग ऊँचा कहो या सच्चा कहो, यह है। **राग विरोध निरोधि...** करना क्या? होता है, उसे जानता है—यह करना है। आहाहा! ज्ञानस्वभाव को जानना, वह क्रिया उसकी है। रागादि की क्रिया आत्मा की नहीं। आहाहा! कर्ता-कर्म में आ गया ६९-७० (गाथा)। जाननक्रिया। वह निषेध हो नहीं सकती, क्योंकि उसका स्वरूप है। रागक्रिया निषेध हो सकती है। उसका अभाव हो सकता है, इसलिए वह निषेध है। आहाहा! यदि रागक्रिया उसकी हो तो सिद्ध में रहनी चाहिए। अशरीरी परमात्मा में भी रहनी चाहिए। ऐसा है नहीं।

**राग विरोध निरोधि, संग विकलप सब छंडइ।** यह राग का और उसका विकल्प सब छोड़े। संग ही करे नहीं राग का, ऐसा कहते हैं। ऐसे शरीर-वाणी की क्रिया का संग न करे। आहाहा! सर्व विकल्पों का त्याग करते हैं परिग्रहजनित। **परिग्रहजनित सब विकल्पों का त्याग करता है।** हम तो भाई, गृहस्थी हैं न। परन्तु यह आत्मा गृहस्थी है ही नहीं। आहाहा! यह विकल्प जो आवे, उसका भी दृष्टि में तो त्याग है। वह—धर्मी गृहस्थी है नहीं। आहाहा! न गृहस्थ है न यति है, आता है न! चेतनरूप (पद) में आता है। न गृहस्थ है, न यति है। आत्मगवैषी। न गृहस्थ है न यति है। चौथे गुणस्थान की

बात है। गृहस्थ भी नहीं, पंचम (गुणस्थानवर्ती) व्रत धारण किये नहीं, नहीं यति। वह आत्मा में है। आहाहा! उसका मार्ग ऐसा है, भाई! धर्ममार्ग अनन्त काल में नहीं किया, वह कोई अपूर्व होगा या नहीं? अनन्त-अनन्त काल, आहाहा!

अनन्त काल व्यतीत हुआ। अनन्त-अनन्त... एक पल्योपम का असंख्यवाँ भाग असंख्य वर्ष का। पल्योपम का असंख्यवाँ भाग असंख्य वर्ष का। ऐसे अनन्त पल्योपम और ऐसे दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का सागरोपम, ऐसे अनन्त सागरोपम। आहाहा! देव में ऐसे सागर व्यतीत किये ३१-३१ सागर।

**मुमुक्षु :** पुद्गलपरावर्तन....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो हुआ न अनन्त सागर में आ गया न अनन्त पुद्गलपरावर्तन। अनन्त सागरोपम में अनन्त पुद्गलपरावर्तन हुए। एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त सागर-सागर जाते हैं।

**मुमुक्षु :** विस्तार बहुत बड़ा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनादि है, उसकी बात क्या! है, वह कब नहीं था? अनन्त काल... अनन्त काल... अनन्त काल... अनन्त काल। अनन्त काल नहीं था? था। भटकने में था। आहाहा! अरे! इसने अन्तर का त्रिकाली हूँ, ऐसा विचार भी कब अन्दर लम्बाया है?

**सुद्धातम अनुभौ अभ्यासि,...** धर्मी तो अपना शुद्धस्वभाव पवित्र आनन्दकन्द के अनुभव का अभ्यास करे। लो, यह पढ़ने का अभ्यास न करे, ऐसा कहते हैं। ऐई! आहाहा! **सुद्धातम अनुभौ अभ्यासि, सिव नाटक मंडइ।** यह तो मोक्षमार्ग के नाटक की शोभा करता है, रचना (करता है)। यह फर्नीचर की रचना करते हैं न लोग। लाख-दो लाख का फर्नीचार लाकर ऐसे... यह मकान हमने श्रृंगारित किये। अरे, धूल मकान! यह हड्डियों को श्रृंगारना, यह गहने और टीका-तिलक। हड्डियों की माला को श्रृंगारना। आहाहा! यहाँ कुण्डल लम्बा लटकता हो ऊपर और यह... गले-गले... देना.... क्या कहलाता है? हेयर स्टाईल। लकड़ी में सोने का हत्था। लकड़ी में सोने का हो न सामने। यह मुर्दा चले, उसे कहे कि मैं चलता हूँ।

**मुमुक्षु :** मलूकचन्दभाई के यहाँ मजा मिला होगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं वहाँ। होली है वहाँ। ऐई मलूकचन्दभाई! वहाँ सब सुख होगा स्विट्जरलैण्ड में? धूल भी नहीं था। उसे पतलून पहनना पड़ा था। इतने वर्ष पतलून पहनी नहीं और (अब पहनकर) वहाँ बैठना पड़े। देखो इसका वेश... आहाहा! वेश पहनना पड़े किसी को लेकर। यह वह दबाव था या यह वह स्वतन्त्रता थी? आहाहा!

**जो ग्यानवंत....** यह नाटक कहा न! आहाहा! मुक्ति का नाटक खेलता है... आहाहा! आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी एकाग्रता के आनन्द को खेलता है वह तो। उस आनन्द का खेल करता है धर्मी। राग के खेल में वह आत्मा नहीं होता। आहाहा! **पूरन ह्वै केवल लहै।** ऐसा **ग्यानवंत इहि मग चलत,...** देखो, यह स्वभाव में एकाग्र होकर मार्ग चलते **पूरन ह्वै केवल लहै**—केवलज्ञान पाता है। **सो परम अतींद्रिय सुख विषैं, मगन रूप संतत रहै।** अनादि-अनन्त संसार, उसमें संसार अनादि-सान्त करके सादि-अनन्त केवलज्ञान प्रगट किया। **अतींद्रिय सुख विषैं, मगन रूप संतत...** लो। आनन्द... आनन्द में मग्न। अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण, उसका नाम मुक्ति, उसका नाम मोक्ष और उसका नाम परमात्मदशा। उसे फिर अवतार और फिर से दुःख कुछ हो सकता नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १४२, भाद्र शुक्ल २, रविवार, दिनांक २२-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद १०७ - १०८**

१०७ पद, समयसार नाटक, सर्वविशुद्धि द्वार। ४१वाँ कलश है। नीचे है न ४१।

**इतः पदार्थप्रथनावगुण्ठनाद्विना कृतेरेकमनाकुलं ज्वलत्।**
**समस्तवस्तु व्यतिरेकनिश्चयाद्विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते।।४१।।**

कैसा है आत्मा? शुद्ध आत्मद्रव्य को नमस्कार। अर्थात् क्या? कि अनादि से आत्मा, पुण्य-पाप के राग और शरीरादि संयोग को नमा है, अर्थात् उसका आदर किया है। वह दुःख के पंथ में है। आत्मा निर्भय आनन्दमय है, उसे छोड़कर शरीर, वाणी, इज्जत, पैसा, पुण्य और पाप के भाव को जिसने ज्ञान की दशा में ढाला है, वह दुःखी है, वह कषाय अग्नि से सुलग रहे हैं। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** मन्द कषाय से सुलगे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मन्द कषाय से सुलग रहे हैं। क्योंकि जिसका आनन्द स्वयप है, उससे उल्टा भाव... सर्वविशुद्ध है न? यह पुण्य और पाप के भाव और संकल्प-विकल्प से जिसके जन्म हैं, जिसके मरण हैं और जिसके जीवन हैं। क्या कहा?

**मुमुक्षु :** जीवन, जन्म, मरण।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जन्म, वह भी संकल्प-विकल्प के भावों का फल है। मरण, वह भी संकल्प-विकल्प का फल, इतनी मर्यादा से छूट जाता है और जीवन भी संकल्प-विकल्प का है। वह दुःख है, अज्ञान है, भ्रान्ति है। भ्रम में पड़ा है वह। आहाहा! सेठी! पाटनीजी!

देह में भगवान आत्मा जो है। यह (शरीर) तो हड्डियाँ हैं, यह शरीर तो जड़-मिट्टी है। वाणी जड़, शरीर जड़, यह सब दिखता है, वह भी पर अचेतन है, अर्थात् कि यह चेतन, वह नहीं है। ऐसा जो आत्मा, जिसमें—त्रिकाली चीज़ में जो नहीं... भगवान अनादि-अनन्त आत्मा है। उसमें तो आनन्द और ज्ञान की निर्भयता आदि पड़ी हुई है। वह यहाँ कहते हैं। उसे छोड़कर शरीर, वाणी, मन, कीर्ति, लक्ष्मी—यह मेरे और पुण्य-

पाप के भाव होते हैं, वे मेरे, ऐसा जो मिथ्याभ्रम का भाव, उससे जन्मता है, उससे मरता है और उससे जीता है। पाटनीजी! आहाहा! जिसका जीवन विकारी परिणाम से जीना, वे सब दुःखी प्राणी हैं। सेठ! सत्य होगा यह? यह सब पैसेवाले दिखते हैं.... आहाहा!

बात ऐसी है कि भगवान इस देह में प्रभु चैतन्य, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का सागर और निर्भय चीज़ है। जिसे भय की गन्ध नहीं जिसमें। कहते हैं कि निर्भय और आनन्द है। शुरुआत करते हैं न! ऐसे आत्मा में... उसे सर्वविशुद्ध कहते हैं। और ऐसा सर्वविशुद्ध का जहाँ भान नहीं और यह सब लौकिक—राग और द्वेष तथा पुण्य और पाप और संकल्प-विकल्प तथा संयोगी चीज़ें, जो पर और पृथक् हैं, उन्हें अपना मानकर राग-द्वेष में जिसका जीवन है, वे सब दुःखी प्राणी हैं। वह अज्ञान के कारण से विषयकषाय के परिणाम में पिलते हैं। आहाहा! बराबर होगा वकील? कहाँ थे? ५००-५००, हजार रुपये मिले। महीने में दो हजार, पाँच हजार मिले। अधिकारी हो तो अधिक मिले। सिरपच्ची। ऐई मूलचन्दभाई! अरे! भगवान जिसे नहीं मिले, आत्मा जिसे नहीं मिले, उसे सब मिले (तो भी) वे सब दुःखी हैं।

**मुमुक्षु :** बहुत संक्षिप्त सिद्धान्त।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** संक्षिप्त सिद्धान्त है। यह तो कलश है न। सवेरे में जरा आया था न। नौ बाकी है न! थोड़े बाकी हैं।

उसमें एक में आया है, 'मति में आत्मा को स्थाप।' मति में आत्मा को स्थाप, ऐसा कहा। आत्मा में मति को स्थाप, ऐसा नहीं। क्योंकि वर्तमान मति की पर्याय जो ज्ञान की... वह तो दूसरे अर्थ में दूसरे .... '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' ऐसा डाला। अर्थात् कि भगवान आत्मा अनादि से पुण्य और पाप की लागणियाँ—वृत्तियाँ, राग, विकार, जहर, अग्नि, कषाय में ही स्थित है, उसमें ही रहा है। वह दुःखी है। दुःख है, संसार है, वह जहर का पेय है। नटुभाई! ज्ञान में जिसने राग को, पुण्य को, पाप को रखा है, उसे अब ज्ञान की पर्याय में आत्मा को रख, ऐसा कहते हैं। बात तो आत्मा में मति जाये, परन्तु उसके बदले आत्मा में राग रखा है पर्याय में—मति में, उसे उस पर्याय में आत्मा रख, भाई!

**मुमुक्षु :** इसका अर्थ कि आत्मा का आश्रय....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यह तो उसकी पद्धति है। आहाहा! समझ में आया?

जो इसमें नहीं तीन काल, तीन लोक में, इसके स्वरूप में (नहीं)—ऐसा शरीर, वाणी, मन, कीर्ति, पैसा, धूल, धमाल और पुण्य-पाप के भाव—उसे जिसने अपनी वर्तमानदशा में ढाला है, रखा है, वह मेरी चीज़ है, ऐसा जो मान्यता में, भ्रमणा में भूला है। आहाहा! ऐसा है। ऐसा लगे... वह दुःखी है और ऐसे पंथ के दुःख में जहाँ अवतार होगा, वहाँ ठिकाने अवतरेगा। नरक और निगोद में वह अवतरेगा। आहाहा! समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि एक बार अब तेरी वर्तमान मति अर्थात् ज्ञान की दशा में यह स्थापित किया है, उसके बदले आत्मा को स्थापित कर न, प्रभु! अमरचन्दभाई! ओहोहो! सन्तों की करुणा और उनके हृदय की बात जिसे समझ में आये उसे समझाये, ऐसी बात है। आहाहा! चौरासी के अवतार में दुःखी है। यह पैसेवाले कहो, राजा कहो, सेठिया कहो या देव कहो, वे सब भटकाऊ... भटकाऊ दुःखी हैं। आहाहा! यह भ्रम में मूढ़पने में पड़े हैं। उनकी मति मूढ़ हो गयी है, कहते हैं। मूढ़ हो गयी है, समझ में आया? मूढ़ है। चैतन्य भगवान तीन लोक का नाथ सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा, उसे तू धरता नहीं, उसे देखता नहीं, उसके सन्मुख देखता नहीं, सन्मुख होता नहीं। वे सब पर सन्मुख में दुःखी और भटकाऊ हैं। समझ में आया? तो कहते हैं कि अब यदि यह भटकना मिटाना हो तो उसका उपाय क्या? यह कहते हैं, देखो।

★ ★ ★

## काव्य - १०७

**शुद्ध आत्मद्रव्य को नमस्कार** (सवैया इकतीसा)

**निरभै निराकुल निगम वेद निरभेद,**
**जाके परगासमैं जगत माइयतु है।**
**रूप रस गंध फास पुदगलकौ विलास,**
**तासौं उदवास जाकौ जस गाइयतु है।।**

**विग्रहसौं विरत परिग्रहसौं न्यारौ सदा,**
**जामैं जोग निग्रह चिहन पाइयतु है।**
**सो है ग्यान परवांन चेतन निधान ताहि,**
**अविनासी ईस जानि सीस नाइयतु है।।१०७।।**

**शब्दार्थ:-निराकुल=क्षोभरहित। निगम=उत्कृष्ट। निरभै (निर्भय)=भय-रहित। परगास=प्रकाश। माइयतु है=समाता है। उदवास=रहित। विग्रह=शरीर। निग्रह=निराला। चिहन=लक्षण।**

**अर्थ:-आत्मा निर्भय, आनन्दमय, सर्वोत्कृष्ट, ज्ञानरूप और भेदरहित है। उसके ज्ञानरूप प्रकाश में त्रैलोक्य का समावेश होता है। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण ये पुद्गल के गुण हैं, इनसे उसकी महिमा निराली कही गई है। उसका लक्षण शरीर से भिन्न, परिग्रह से रहित, मन वचन काय के योगों से निराला है, वह ज्ञानस्वरूप चैतन्य-पिण्ड है, उसे अविनाशी ईश्वर मानकर मस्तक नवाता हूँ।।१०७।।**

---

काव्य-१०७ पर प्रवचन

---

**निरभै निराकुल निगम वेद निरभेद, जाके परगासमैं जगत माइयतु है।** १०७ पद। १०७ पद ऐसा है इस ओर। देखना ही आता नहीं न! यह चोपडा देखा नहीं। देखो, इस ओर है यह। हाथ दब गया है वहाँ। कहो, समझ में आया? **निरभै निराकुल....** इस देह के देवल में... यह तो मिट्टी का पिंजर है। प्रभु अन्दर चैतन्य दीपक जलहल ज्योति... आहाहा! ऐसा भगवान तू निर्भय है अर्थात् कि उसमें भय और विकल्प और आकुलता है नहीं। समझ में आया? यहाँ तो जहाँ तहाँ, अरे, कहाँ जाऊँगा? क्या होगा? कहाँ अवतार होगा? कहाँ जायें तो सुविधा मिलेगी? कहाँ जायें तो असुविधा खड़ी होगी? आहाहा! यह सब आकुलता की अग्नि में सुलग रहा है। इसका उसे भान नहीं। आहाहा! समझ में आया? नटुभाई! यह तो लॉजिक से बात चलती है, न्याय से। ऐसे का ऐसा मान लेना—ऐसा नहीं। वस्तु क्या है? चैतन्य भगवान देह में... जैसे यह तत्त्व जड़ है, पैसा जड़ वस्तु तत्त्व है, वैसे एक आत्मा तत्त्व है। जैसे वह तत्त्व है, वैसे एक

आत्मा अन्दर वस्तु तत्त्व है। यह तत्त्व है, वह कैसा है? उसे विकल्पवाला माना है, परन्तु ऐसा नहीं। कर्मवाला, शरीरवाला, दोषवाला माना है। ऐसा वह तत्त्व है नहीं। आहाहा! उसे तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं। उल्टी दृष्टि से भटकाऊ होकर चार गति में भटकता है। सुमनभाई! यह तो निर्भय है। आहाहा!

और निराकुल है। भगवान आत्मा... आकुलता से जो जीवे, मरे और जीवे, उस आकुलता से तो रहित स्वरूप है। आहाहा! वस्तु भगवान सच्चिदानन्द—सत् अर्थात् शाश्वत् कायम रहनेवाला और ज्ञान और आनन्द जिसकी चीज़ है, वह निराकुल स्वरूप है। उसके सामने इसने कभी देखा नहीं। समझ में आया? यह त्यागी हुआ, साधु हुआ, बाबा हुआ, मर गया क्रियाकाण्ड करके। पंच महाव्रत पालन किये और दया-दान पालन किये। परन्तु इसने यह आत्मा ऐसा एक आनन्दमय प्रभु है, उसके सन्मुख देखा नहीं, और मति में स्थापित किया नहीं, मति को उसमें झुकाया नहीं। मीठालालजी! यह किसमें आता है? परन्तु ऐसा आता है न वस्तु तो। यह आयेगा। दूसरी गाथा में ही आता है न! कुन्दकुन्दाचार्य ने ही कहा है। पहले से कहा है। आहाहा! '**जीवोचरित्तदंसणणाण ठिदो।**'

भगवान आत्मा उसकी पवित्र दशा में रहे, इसका नाम धर्म। वह अपवित्रता में रहे, इसका नाम संसार। समझ में आया? भगवान निर्भय, निराकुल, निगम—उत्कृष्ट है। वाह! प्रभु निगम। अगम निगम की बातें नहीं कहते? प्रभु अन्दर चैतन्य जाननेवाला प्रज्ञाब्रह्म प्रभु, वह निगम है। साधारण से गम में आवे, ऐसा नहीं। विकल्प से और राग से और दया-दान के भाव से—उनसे वह जानने में आवे, ऐसा नहीं है। ऐसी वह उत्कृष्ट वस्तु है।

**मुमुक्षु :** ....विकल्प के बल से तो जानने में आया न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी जानने में आया नहीं। आहाहा! वह तो सब निर्बल, पामर, रंक, भिखारी है। विकल्प तो नपुंसकता है। नपुंसक (वह) बल पुरुष को देता होगा? हिंजड़ा।

एक बार वह जामनगर का दृष्टान्त नहीं दिया था? राजा थे। ....थे। फिर पुलिस

को पैसा तो देना पड़े न! तब बहुत कम था न। बीस (रुपये) वेतन। पच्चीस (रुपये) वेतन अर्थात् बहुत। अभी तो कोई बीस गुणा करे (तो) पाँच सौ रुपये। क्या हो बीस गुना? पच्चीस का बीस गुना। पाँच सौ वेतन अभी का (और) तब का पच्चीस, समान था। समझ में आया? सब पुलिस को पच्चीस-पच्चीस, बीस (रुपये) वेतन दे। वहाँ हिंजड़े बहुत थे, तब। रामजीभाई की गली में थे। पालियाद की गली में। ... कबीर ने कहा न, 'कबीर का घर गौकटो के पास, करेगा सो भरेगा भैया तू क्यों हुआ उदास?' साथ में कसाई का घर, उसमें तुझे क्या है? समझ में आया? वे हिंजड़े बहुत थे तब, हों! अब कम हो गये। अब दिखते नहीं। दुकान पर हम थे तो हिंजड़े बहुत आते थे। पैसे लेने आते थे। बहुत नंगे हों। असभ्य भाषा। मुसलमान हिंजड़े थे। भारी नंगे। आठ-आठ आना लाओ, रुपया लाओ। वस्त्र ऊँचा करके शर्मावे... यह तो ६० वर्ष पहले की बात है। अब तो बहुत कम हो गये। वहाँ हिंजड़े बहुत थे।

एक बार विभासराव को कहा कि साहेब! यह सब पैसे इतने अधिक भरते हो तो हमको रखो न! हम दस रुपये महीने में रहेंगे। हम थोड़े वेतन में रहेंगे। देखो, हमारा शरीर कैसा है। क्योंकि वीर्य भराये नहीं इसलिए शरीर अच्छा लगे नपुंसक का—हिंजड़ा का। भाई! तुम काम नहीं कर सकोगे अब हमारे लश्कर जैसा। परन्तु एकबार देखो तो सही। ठीक, भाई लाखो, करो नौकरी। पाँच सौ-हजार दिये हिंजड़े को। बड़ा शरीर, मोटा... उसमें पहले रिवाज था कि राजा आवे और उसे युद्ध करना हो, तब गायें जो हों न, गायें जाती हों, गायों का घण। घण समझ में आता है? समूह। उस वन में से गाँव में आता हो तो (दूसरे) राजा को युद्ध करना हो तो वह गायों को वापिस मोड़े। इस राजा को खबर पड़े कि किसी की चढ़ाई आयी। वह समूह को वापस मोड़े गाँव में जाने से। तो राजा को खबर पड़े। उसने ऐसा मोड़ा। गजब किया। उन हिंजड़ों को पुलिस रखा था। कहे, जाओ, गायों को ले आओ। बराबर तैयार हुए। पच्चीस-पचास-सौ... बड़े घोड़े। वे सब भागे। .... वहाँ एक नदी आयी न नदी। नदी में किनारा हो न किनारा—उतरने का रास्ता। एक ओर गहरा होगा जरा यह उतरने का ऐसा। हिंजड़ों की भाषा बोले कुछ। बोले और वे समझ गये कि यह तो हिंजड़े हैं। वापस मुड़े। हिंजड़े

भागे, राजा के पास गये। विभा तारा... कहा नहीं था तुमको पहले? यह हिंजड़ों का काम नहीं है।

इस प्रकार यहाँ कहते हैं कि हिंजड़े का काम नहीं आत्मा के स्वरूप के भान में। समझ में आया? राग और पुण्य में जो रुल गये हैं, रगड़ गये हैं, उसे तो भगवान नपुंसक कहते हैं। राग की उत्पत्ति करे, उस वीर्य को नपुंसक कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द, राग और विकल्परहित, उसके स्वरूप की रचना करे, उस पुरुष को वीर्यवान कहते हैं। आहाहा! अमरचन्दभाई! दो-पाँच-दस लाख पैदा करे, इसलिए वीर्यवाला है (-ऐसा नहीं)। नपुंसक है, सुन न! ऐ पोपटभाई! सच्ची बात है यह। नपुंसक जैसे सेठिया होकर घूमे। सिद्धान्त में लेख है। राग को करना, उसे नपुंसक कहा है और उसमें राग मेरा—ऐसा माने, वह तो और नपुंसक में नपुंसक है। सेठ! यहाँ तो जो हो वह आये। सिद्धान्त में एक लेख है। दो-तीन जगह है। समयसार में है और वहाँ भी है प्रवचनसार ९४ गाथा। आहाहा!

भगवान! तेरा स्वरूप तो अन्दर आनन्दकन्द सच्चिदानन्दस्वरूप, उसे जब तक मति में स्थापित न करे और मति को उसमें न ले जाये, तब तक संसारी, दु:खी, नपुंसक है। आहाहा! ऐई, चेतनजी! मति जो ऐसे ढ़ली हुई है दया, दान, व्रत, भक्ति, विकल्प में, उस मति को ऐसे झुकाना। वह ऐसे झुके उसका वीर्य काम करे स्वरूप की रचना का। उसे वीर्यवान और उसे पुरुष कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, भाई! कहते हैं.... फिर तो वे हिंजड़े कहें, भाई! हमारा काम नहीं, बापू! यहाँ भी परमात्मा कहते हैं कि जिसे राग का रस है, ऐसे नपुंसकों को आत्मा के काम का काम है नहीं। झेल न सके यह बात। आहाहा! कुछ न कुछ राग से लाभ हो या कुछ पुण्य से लाभ हो, ऐसा कहो तो हमको कुछ ठीक पड़े। राजमलजी! उसे ठीक पड़ता है वहाँ। अनादि का वहाँ अभ्यास है न! ऐसी बातें यदि आप हमको करो, हाँ, वह ठीक पड़ता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आनन्दमय प्रभु सर्वोत्कृष्ट और जिसका रूप वेद है। वेद अर्थात् ज्ञान। भगवान आत्मा ज्ञानचक्षु है। चैतन्यबिम्ब आत्मा, वह ज्ञान के स्वभाव से भरपूर

पदार्थ है। जैसे खड़ी (कलई) सफेदाई से भरपूर है। नमक-लवण। लवण खार के स्वभाव से भरपूर है, अफीम कड़वाहट के स्वभाव से भरपूर है, इसी प्रकार यह भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वभाव से भरपूर है। समझ में आया? आहाहा! ज्ञान। वेद अर्थात् ज्ञान। ज्ञान जिसका रूप है। वह पुण्य-पाप के विकल्प, वह उसका रूप नहीं। वह तो हुतानी का कुरूप है। हुतानी, नहीं? हुतानी क्या कहलाये? होली। होली में नहीं कोयले-बोयले चुपड़ते ऐसे? पहले तो गधे के लींडा को डालकर चुपड़ते थे। वह सो गया हो न, उसे चुपड़ते। पहले ऐसा बहुत करते थे। साठ वर्ष पहले। अब तो सब.... वह सो रहा हो सेठिया का लड़का, जाकर कोयला और गधे का लींडा करके चुपड़ आवे। वहाँ वह उठ गया। ऐई, क्या करता है? कुछ नहीं, होली है।

इसी प्रकार अनादि की राग और द्वेष की रुचि की होली सुलगती है तुझे। आहाहा! सेठी! यह प्रभु अन्दर विराजता है सच्चिदानन्द आनन्द का नाथ, वह ज्ञान और भेदरहित है। है न **निरभेद?** निर्भेद अभेद अखण्डानन्द प्रभु है। आहाहा! सुना नहीं, देखा नहीं, जाना नहीं। समझ में आया? ऐई निरंजन! यह सब पढ़ आया अमेरिका। क्या कहलाये? अमरेली नहीं, अमेरिका। पाँच वर्ष गया था न पढ़ने अमेरिका, रुपये लेकर आया। नपुंसकता लेकर आया, ऐसा कहते हैं यहाँ। ऐई!

**मुमुक्षु :** भले नपुंसकता हो, रुपये तो लाया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** रुपये लाया नहीं, वे तो उसके कारण से आये हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

अनादि का व्यसन ही है न यह। व्यसन में तो कष्ट है। यह अनादि से कष्ट में ही पड़ा है। आहाहा! चाहे तो वह पुण्य के भाव हो—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह भी राग और कष्ट और दु:खदायी और जहर है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! समझ में आया? यह हिंसा, झूठ, चोरी, विषय भोगवासना, कमाना, कमाना और यह पढ़ना बड़े-बड़े पूँछड़े लगाना एलएलबी और एम.ए. के। समझ में आया? ऐई! पूँछड़ा लाया है या नहीं वहाँ से?

**मुमुक्षु :** एम.एस.।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एम.एस. समझ में आया? यह सब, कहते हैं कि पूँछड़े दु:खदायी हैं। यह संसार का पठन दु:खदायी है। यह वकालत का पठन दु:खदायी है। रामजीभाई तो कितने ३० वर्ष पहले २०० रुपये लेते कोर्ट में। ऐई! तुम इतने अभी कमा नहीं सकते। दस गुना करे तो भी, बीस गुना करे तो भी इतने... २०० के बीस गिनो तो २००० हों। २००० क्या बहुत हो। आहाहा! आहाहा! धूल भी नहीं, कहते हैं। आहाहा! कष्ट से मरने के रास्ते हैं सब। भाई! तूने तुझे मार डाला है, भाई! तेरी जीवित ज्योति निर्भेद आनन्दमूर्ति, उसे तूने माना नहीं और यह राग, वह मेरा माना, तेरे जीवन की ज्योति को तूने बुझा दिया। समझ में आया? आहाहा! जीवित जीव आनन्द की मूर्ति प्रभु निर्भेद—भेदरहित है। आहाहा!

अभेद है। उसे भेद में अपना माना है, ऐसे अभेद का जीवन, उसका उसे निषेध—नास्ति है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अध्यात्म की सूक्ष्म बात है, भाई! धर्म का रूप ही कुछ सूक्ष्म है। साधारण यह दया पालन की और व्रत पालन किये, और भक्ति करके ब्रह्मचर्य वह धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। वह तो सब विकल्प, राग है। ऐ मणिभाई! सुनाई देता है या नहीं? आहाहा! **उसके ज्ञानरूप प्रकाश में त्रैलोक्य का समावेश होता है। जाकै परगासमैं जगत माइयतु है।** क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? कि भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, उसमें राग से लेकर लोकालोक सब ज्ञात हो जाये, ऐसा उसका स्वभाव है। वह चैतन्य प्रभु जाननेवाला-देखनेवाला स्व-परप्रकाशक की मूर्ति है। पर उसका है, ऐसा है नहीं, परन्तु पर और स्व का प्रकाशक है। आहाहा!

**जाकै परगासमैं जगत माइयतु है।** लोकालोक चैतन्य के प्रकाश के तेज के सामर्थ्य में तीन काल, तीन लोक ज्ञात हो, ऐसा है। तीन काल, तीन लोक की चीज़ में का एक राग भी उसका है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात, भाई! पाटनीजी! यह तो सत्य ही ऐसा है। यह तो वस्तु का स्वरूप है। ऐसा भगवान जाननेवाला ज्योति एक समय की दशा में तीन काल-तीन लोक जाननेवाला, ऐसा तेरा स्वरूप है। तीन काल और तीन लोक में राग से लेकर परचीज़ तेरी तीन काल में नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय का श्रद्धा-ज्ञान का विकल्प भी तेरा नहीं। हाँ, उसका प्रकाशक है। आहाहा!

सेठी! अब इसमें महेन्द्रभाई को क्या करना? यह सब जगत की चीज़ें हैं—स्त्री, पुत्र, परिवार, दुकान, मकान, वे इसकी चीज़ें नहीं, जगत की चीज़ें हैं। उन्हें आत्मा प्रकाशित करे ऐसा उसका स्वभाव है। है, ऐसा जाने। है, ऐसा अपने को जाने। बाकी इसके अतिरिक्त परचीज़ मेरी है, यह मान्यता उसके स्वरूप से विरुद्ध है। भ्रम की मान्यता, भ्रमणा की मान्यता है। इसने भगवान को तोड़ डाला। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, **जाकै परगासमैं जगत माइयतु है।** बनारसीदास है। देखो न कितना... गृहस्थाश्रम में थे। पहले शृंगारी थे, भोग के विलासी पक्के। गुलाँट खा गये। आहाहा! व्यभिचारी थे। बनारसीदास। समझ में आया? बड़े कवि। बड़े गायन बनाये हुए। भान जहाँ हुआ, आहाहा! वह लिखी हुई पुस्तकें गोमती में (डाल) दीं। अरेरे! इस वस्तु से लोग उल्टे रास्ते चढ़ेंगे। उन्हें पानी में डाल दिया। इसके पश्चात् बनाया। समझ में आया? सम्यग्दर्शन हुआ, आत्मा का अनुभव हुआ, आत्मा है—ऐसा जानने में आया, इसलिए यह नाटक बनाया। आचार्यों के कलश की टीका थी, उसमें से यह बनाया। आहाहा!

**रूप रस गंध फास पुदगलकौ विलास...** यह रूप, रस, गन्ध और स्पर्श यह साधारण, यह तो सब पुद्गल का विलास है। यह जड़ की क्रीड़ा है। यह आत्मा की नहीं, आत्मा में नहीं। आहाहा! **तासौं उदवास जाकौ जस गाइयतु है...** उससे उदवास (अर्थात् कि) रहित है। यह शब्द, रूप, रस, गन्ध, वाणी से तो रहित प्रभु आत्मा है। उनसे सहित मानना, यही भ्रम है। समझ में आया? आहा! **जाकौ जस गाइयतु है...** उसका यश ज्ञानी गाते हैं। आहाहा! उसके यश की क्या बात करना! वचनातीत, वर्णातीत, रूपातीत, मनातीत, वचनातीत महाप्रभु चैतन्य प्रभु है। उसका यश गाते हैं। है न? **इनसे उसकी महिमा निराली कही गई है।** उसकी महिमा तो निराली है। आहाहा! अब उसके मूल तत्त्व को जाना नहीं। मूल तत्त्व को दृष्टि में लिया नहीं और बाकी सब पुण्य और पाप को, उनके फल को 'मेरा' मानकर मर गया। दुःखी का सरदार चौरासी के अवतार में भटककर (मर गया)। समझ में आया?

**विग्रहसौं विरत...** इस शरीर से रहित होकर... भगवान! यह शरीर तो मिट्टी का है। उससे तो चैतन्य अरूपी भिन्न है। समझ में आया? लोटे में—कलश में जैसे पानी भिन्न होता है, ऐसे लोटा भिन्न और पानी भिन्न। उसी प्रकार यह कलश है, देखो न ऐसा।

काशीघाट का कलश है यह। इसी प्रकार यह भगवान चैतन्यरस, वह भिन्न तत्त्व है। नटुभाई! आहाहा! **विग्रहसौं विरत...** आहाहा! आठ-आठ वर्ष के राजकुमार जब आत्मज्ञान पाते हैं, और पश्चात् जब उन्हें साधने का वैराग्य आता है। आहाहा! माता! हमारे आनन्द की चीज़ साधने के लिये अब हम वन में जाते हैं। हमने अनन्त काल से दुःख को तो बहुत साधा। हमारा भगवान आनन्द का नाथ, उसमें एकाग्र होने के लिये, माता! वनवास में जायेंगे। आहाहा! माता! आज्ञा दे, हों! वह मर जाने के बाद मुर्दे को उठाकर श्मशान में ले जाये, उसके बदले जीते जी श्मशान में जाऊँगा, हमारा आत्मा शोधने, खोजने और रमने। समझ में आया?

....शिवलालभाई के घर से। वहाँ गये थे न! ....हरीबेन कहे, महाराज! यह सुना है, वह निष्फल नहीं जाने दूँगी। बहुत वर्ष से (सुनती है न)। उसके घर में उसके कारण यह सबको हुआ है न, शिवलालभाई और सब। कहाँ गये गाँधी? यह सब उसके कारण। हेमकुंवरबहिन को उसके कारण। परन्तु ऐसा बोले, हों! ...महाराज! यह सुना हुआ निष्फल नहीं जायेगा। बहिन! तुमने तो बहुत सुना था। अपने मूलजीभाई निरंजन। मूलजी मास्टर। बड़े गृहस्थ। बहुत पैसे। मरने का अवसर आया यह हार्टअटैक। उतावले बहुत। हार्टअटैक आया, फिर लोग कहे, बुलाओ डॉक्टर को। यह कहे, बुलाओ लालूभाई को। मूलजीभाई राजकोट लाखाणी... (संवत्) १९७६ का वर्ष। छोतेर, छोतेर समझे? कितने हुए? इक्यावन वर्ष पहले। सोलह-अठारह लाख दो भाईयों ने इकट्ठे किये हुए। ....दो भाई हैं। ....मरते हुए ऐसा बोले।

लालूभाई कहे, मूलजीभाई! शरीर का धर्म, वह रोग आदि शरीर का धर्म है। यह आत्मा उसे जानता है। आत्मा उसमें है नहीं। मेरे हैं, ऐसा नहीं। ऐई सेठ! तब उन्होंने जवाब दिया, आत्मा रोग को जानता है या स्वयं अपने को जानता है? क्या कहते हो तुम? रोग को जाने? मरते हुए, हों! मरने की तैयारी में। जोरदार... लालूभाई ने कहा... वह तो दाँत निकालने लगा डॉक्टर। 'लालूभाई को बुलाओ।' लालचन्दभाई। लालचन्दभाई ने कहा, भाई! यह जड़ का स्वभाव जीव में ज्ञात होता है। रोग है, वह जीव जानता है। 'वह रोग को जानता है? रोग तो परवस्तु है। या स्वयं को जानता है?' ऐ सेठ! गृहस्थ थे। अब बहुत पैसेवाले हो गये। परन्तु उस समय तो कौन था ७६ में। १६ लाख.... ७६

के वर्ष। ५१ वर्ष पहले। बहुत इज्जत थी उनकी। अपने वहाँ उतरे थे। भाई तो प्रमुख थे। ....मरते हुए ऐसा बोले। आहाहा! भीखाभाई! जवान लड़का मर गया था, हों, विवाह करके। बहुत बड़े लाखोंपति में विवाह हुआ था। परन्तु मरने के समय कि यह जाता है। जाता है तो इसमें स्थिति पूरी करके जाता है। यह तो जाने के काल में जाता है, उसे तू जान न! तेरा स्वरूप ज्ञानानन्द है, उसे जान न अब। यह जाता है और वह जाता है। क्या है परन्तु अब? किसका लगाया मातम सब? आहाहा! दीवाली कर न घर में। आहाहा!

तू चैतन्यमूर्ति, कहते हैं कि पुद्‌गल के गुणों से भगवान तो भिन्न है। आहाहा! उसको मेरा मानना और उसे जानना, ऐई, यहाँ नहीं, कहते हैं। वह तो अपने को जानता है, उसमें वह ज्ञात हो जाता है। समझ में आया? ऐसा उसका स्वरूप है। उसे सही अवसर में काम आवे न, सच्चा ज्ञान हो तो। तब ही ज्ञान कहलाये। व्यक्तरूप से भी उस प्रकार की श्रद्धा और ख्याल आना चाहिए न इसे! आहाहा! भगवान! मैं तो पुद्‌गल के गुण से निराला हूँ। यह पुद्‌गल की पर्याय रोग की जड़ में खड़ी हो, वह सब जड़ है। वह मुझमें है नहीं। आहाहा! वह आती ही नहीं। मानता है मुफ्त में। यदि सर्दी हो न तो बाहर निकलते नहीं तीन-तीन, चार-चार दिन। शान्तिभाई गये? तीन-चार दिन न निकले। सर्दी हो न जरा, घर में फँसकर रहे। फिर दिखे तब खबर पड़े। कितने दिन से आये नहीं? किसे? कहाँ थे? शरीर के रजकण-रजकण की दशा भगवान आत्मा से भिन्न है। उसकी धी और धीर आत्मा में कहाँ है? आहाहा! आत्मा तो पुद्‌गल के गुण और पर्याय से भिन्न है। यह तो चलता है। हीराभाई! आहाहा! अरे! अवसर में तेरा काम न आवे तो तूने क्या किया?

कहते हैं, **विग्रहसौं विरत परिग्रहसौं न्यारौ सदा...** शरीर से भिन्न और परिग्रह से पृथक्। आहाहा! उसका लक्षण शरीर से भिन्न, परिग्रह से रहित। यह धूलधाणी लाखों और करोड़ों और अरबों पैसे, वह तो अजीवतत्त्व मिट्टी—धूल तत्त्व है। उससे भगवान अरूपी चैतन्यघन भिन्न है। उस भिन्न को—भिन्न चीज़ को अपनी मानना, वह महा भ्रमणा और दु:ख के पंथ में जीव को ले जाना है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कुछ देते हैं, वह तो व्यवहार की बातें हैं। बातें। यह तो आता

है न! यह तो उस समय मुनि को भाव आवे न तब... अरे! मन! कहाँ है तुमको? सदा जागृत रहो, ऐसा कहे। परन्तु तूने जागृति नहीं रखी? नहीं, नहीं, वह तो यहाँ विकल्प आवे, अपने को उस प्रकार का राग है न! तथापि उस विकल्प से हुआ, इसलिए तैयार होता है? अन्दर की भूमिका में अन्दर तेज में पड़ा है। यहाँ जरा आया तो देखा और निकल गया। जाननेवाला—देखनेवाला हूँ। मेरे स्वरूप में कोई निर्बलता और रागादि है नहीं। आहाहा! उसका नाम धर्मदृष्टि और सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। समझ में आया? ऐसे प्रौषध और प्रतिक्रमण और उपवास किये और हो गये धर्मी। बापू! धर्मी होना, वह तो जन्म-मरण का टलना है धर्मी का तो। आहाहा! जिसमें मोक्ष का किनारा नजर में पड़े, संसार का अन्त आवे, उसे धर्म कहते हैं। धर्म वह कहीं एकदम मामूली चीज़ है? आहाहा! मन-वचन-काय के योगों से... लो।

**परिग्रहसौं न्यारौ सदा....** भगवान आत्मा, यह पैसे के रजकण से त्रिकाल न्यारा है। रजकण जड़, भगवान चैतन्य। रजकण रूपी, प्रभु अरूपी। रजकण मैल का पुतला और आत्मा निर्मल आनन्द का कुमार। अरे! दोनों चीज़ें भिन्न, उसकी इसे खबर होती। और यह सब पढ़-पढ़कर बड़े पूँछड़े लगवाये। ऐ निरंजन! दस हजार का वेतन... क्या परन्तु दस हजार? बचे कितने? हजार-दो हजार बचे। इतना वहाँ खर्च होता है। वरना बहुत खर्च हो। वहाँ तो दस क्या पन्द्रह-पन्द्रह हजार का वेतन हो अमेरिका में। महीने के पन्द्रह-पन्द्रह हजार, बीस-बीस हजार महीने। खर्च में सब डूब जाये, इतने खर्चे। परन्तु बचे तो भी क्या और रहे तो भी क्या? वह सब अज्ञान की ज्वाला है। आहाहा! अग्नि की ज्वाला अन्दर में आवे और हमको बस ऐ...य! शीतलता होती है। कोई रोके, वह इस अग्नि की ज्वाला से तो बन्द हो। बाकी कषाय की अग्नि से जल रहा है। भाई! शीतलनाथ भगवान आत्मा अन्दर है। समझ में आया? शीतलनाथ, अनन्तनाथ ऐसा भगवान आत्मा मन-वचन और काया के योगों से निराला है।

**जामैं जोग निग्रह चिह्न पाइयतु है...** जिसमें मन-वचन-काया का निग्रह अर्थात् रहितपना ऐसा चिह्न है। आहाहा! एक-एक पद और एक-एक श्लोक में कितना भरा है, देखो न! यह भगवान आत्मा उसे कहते हैं कि जिसमें योगरहितपना जिसका चिह्न है। मन-वचन-काया का कम्पन, वह उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! **सो है ग्यान**

**परवांन चेतन निधान ताहि....** ऐसा भगवान आत्मा ज्ञानप्रमाण वस्तु है। जिसका ज्ञानपिण्ड प्रभु चैतन्य का दल है वह तो। **चेतन निधान ताहि, अविनासी ईस जानि सीस नाइयतु है...** वह अविनाशी परमेश्वर मैं हूँ, ऐसा जानकर मैं वहाँ ढल जाता हूँ। शीश नाइयतु है, वह शरीर की बात नहीं वहाँ। मेरी पर्याय उसमें मिल जाती है। आहाहा! समझ में आया? इसका नाम धर्म। गजब धर्म! मन्दिर में टोकरा बजावे और धर्म करके गाते हैं, सुनो। परन्तु कहाँ धर्म था? धर्म कहीं आत्मा में है या बाह्य में वहाँ मन्दिर में है? वह बड़ा टोकरा है न अपना। परन्तु उसे ऐसा हो कि हम धर्म करके गाते हैं। उसका टोकरा.... धर्म किसे कहना, उसका भान नहीं होता। ऐ हीराभाई!

उसको टोकरा बड़ा है वहाँ। मुम्बई न? बुद्ध का। मुम्बई या काशी? काशी में। काशी में बड़ी देहरी है न बुद्ध की। सारगया। वहाँ गये थे और सब देखा हो न हमने। वहाँ टोकरा बड़ा। घण्टा-घण्टा। टोकरा नहीं जाने। घण्टा बड़ा। जबरदस्त इतना बड़ा... यहाँ कहते हैं कि घण्टा बजा अन्दर में। मैं तो आनन्द का नाथ चैतन्यमूर्ति हूँ। उसकी झनझनाहट कर, वह तेरी चीज़ है। राग और यह और (वह नहीं)। वापिस विशिष्टता क्या की है! यह अविनाशी ईश्वर मैं हूँ। पर्याय बदले, राग बदले, वह मैं नहीं। आहाहा! **अविनासी ईस जानि सीस नाइयतु है...** मैं उसमें ढल जाता हूँ। आहाहा! मेरा स्वभाव ऐसा, उसमें मेरी दशा उन्मुख हुई है। उसे नमन कहा जाता है। अनादि से राग को नमन था। पुण्य-पाप में नमन, मेरा माना, वह नमन। विकार को नमन था। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा अन्तर में ज्ञान और भान करके अन्तर पर्याय को झुकाना, उसका नाम आत्मा का ज्ञान और आत्मदर्शन और धर्म कहा जाता है। यह १०७ हुआ। १०८। ४२ कलश नीचे।

**अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं विभ्रत्पृथग्वस्तुता-**
**मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम्।**
**मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः,**
**शुद्धज्ञानघनो यथाऽस्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति।।४२।।**

आहाहा! भगवान आत्मा के स्वभाव की क्या महिमा! अनन्त जिसकी महिमा,

परन्तु वस्तु की खबर नहीं होती। एक राग पुण्य का करे, वहाँ आहाहा.... हमने मानो क्या किया! भौंके। लाख-दो लाख दिये हों कुछ दान में, नाम डालना हमारा। उस समय पत्रिका पढ़ावे दूसरे को। इस कौने में लिखा, देखो! एक लाख ११ हजार १११ दिये यह। ढल गये सब तेरे, सुन न! पैसे कहाँ तेरे थे? पैसे मैंने दिये, और मेरे थे, यह मान्यता ही भ्रम और मिथ्यात्व का पाप है। आहाहा! ऐ मूलचन्दभाई! देने का विकल्प, वह तो राग की मन्दता, अपने पुरुषार्थ की (कचाश)। तथापि वह मन्दता भी आत्मा की वस्तु नहीं। शान्तिभाई! आहाहा! **शुद्ध आत्मद्रव्य अर्थात् परमात्मा का स्वरूप,** लो। यह तो परमात्मस्वरूप है। यह विकल्प-फिकल्प उसमें कहाँ? उसकी चीज़ कहाँ?

★ ★ ★

## काव्य - १०८

**शुद्ध आत्मद्रव्य अर्थात् परमात्मा का स्वरूप**
(सवैया इकतीसा)

**जैसौ निरभेदरूप निहचै अतीत हुतौ,**
**तैसौ निरभेद अब भेद कौन कहैगौ।**
**दीसै कर्म रहित सहित सुख समाधान,**
**पायौ निजस्थान फिर बाहरि न बहैगौ।।**
**कबहुं कदाचि अपनौ सुभाव त्यागि करि,**
**राग रस राचिकैं न पर वस्तु गहैगौ।**
**अमलान ग्यान विद्यमान परगट भयौ,**
**याही भांति आगम अनंत काल रहैगौ।।१०८।।**

**शब्दार्थः-निरभेद=भेदरहित। अतीत=पहले। राचिकैं=लीन होकर। अमलान=मलरहित। आगम=आगामी।**

**अर्थः-पूर्व में अर्थात् संसारी दशा में निश्चयनय से आत्मा जैसा अभेदरूप था,**

**वैसा प्रगट हो गया, उस परमात्मा को अब भेदरूप कौन कहेगा? अर्थात् कोई नहीं। जो कर्मरहित और सुख-शान्ति सहित दिखता है, तथा जिसने निजस्थान अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति की है, वह बाहर अर्थात् जन्म-मरणरूप संसार में न आवेगा। वह कभी भी अपना निज-स्वभाव छोड़कर राग-द्वेष में लगकर परपदार्थ अर्थात् शरीर आदि को ग्रहण नहीं करेगा, क्योंकि वर्तमानकाल में जो निर्मल पूर्णज्ञान प्रगट हुआ है, वह तो आगामी अनन्त काल तक ऐसा ही रहेगा।।१०८।।**

## काव्य-१०८ पर प्रवचन

**जैसौ निरभेदरूप निहचै अतीत हुतौ, तैसौ निरभेद अब भेद कौन कहैगौ। अर्थात् संसारी दशा में निश्चयनय से आत्मा जैसा अभेदरूप था, वैसा प्रगट हो गया।** अनादि भगवान निर्मल आनन्द प्रभु, सच्चिदानन्द अभेद एकरूप है। उसका भान होकर पर्याय में अभेदता प्रगट (हुई)। जैसा अभेद था, वैसी दशा अभेद प्रगट हुई। निश्चय से तो संसारदशा में ऐसा अभेद ही था। तीनों काल मैं द्रव्यस्वरूप एकरूप अभेदरूप—भेदरहित स्वरूप उसका था। उसकी अभेद की दृष्टि की, अभेद में स्थिरता करके अभेदपना पर्याय में प्रगट हुआ, अब भेद रहा नहीं जरा भी। समझ में आया? आहाहा! **तैसौ निरभेद अब भेद कौन कहैगौ।** पूर्ण पर्याय प्रगट हुई, ऐसा कहना है यहाँ तो। भगवान आत्मा एकरूप अभेद का आश्रय लेकर पर्याय में एकरूप अभेद दशा हुई। कौन कहे अब भेद है? वस्तु में नहीं, वैसे पर्याय में भी भेद रहा नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** उसमें हेय-उपादेय कौन?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह उपादेय आत्मा त्रिकाली। हेय रागादि करना नहीं, हो जाता है। बात ऐसे की है यहाँ। किसे हेय करना? वह तो छूट जाता है, इसलिए हेय कहा और ग्रहण हो, इसलिए उपादेय कहा। बाद में आयेगा। ग्रहण करने का था वह किया और छोड़ने का था, (वह) छूट गया। यह तुरन्त ही आयेगा। यह तो श्लोक ही उनका है। समझ में आया?

**दीसै कर्म रहित सहित सुख समाधान....** भगवान आत्मा तो अभेद चैतन्यमूर्ति

राग और शरीर से रहित है, ऐसा जहाँ भान हुआ, उसकी दशा में भी एकता और अभेदता प्रगट हुई, अब कर्मरहित हो गया। राग और शरीररहित ही दशा जिसकी है। **सहित सुख समाधान....** सहित क्या हुआ? **जो कर्मरहित और सुख-शान्ति से दिखता है।** अहाहा! अज्ञान में राग और द्वेष उठते थे, वह मैं पुण्य-पाप हूँ। इस भान में आया तब सुख और समाधान दिखता है। आहाहा! शान्ति समाधान। आनन्द और अकषाय की शान्ति, ऐसा। अरे, यह समझना कठिन। ऐसा आत्मा तुम कहो, परन्तु गया कहाँ? भगवानदास कहते थे, ऐसा आत्मा धुले हुए मूला जैसा गया कहाँ? वकील थे। कुछ भान नहीं होता। सब वकील-फकील को पूँछड़े बड़े। ऐई नटुभाई! (संवत्) १९९९ के वर्ष। व्याख्यान में आते थे। ऐसा आत्मा महाराज बतलाते हैं, परन्तु गया कहाँ धुले हुए मूला जैसा? यह वकील। परन्तु है कहाँ? तूने देखा नहीं, कहाँ जाये? राग में गया है, उसे तूने माना है कि यह मैं।

वे रामजीभाई के मित्र थे। वकील थे न! पैसे हुए होंगे पुण्य के कारण। पोपटभाई! प्रश्न ऐसा था, लो! महिमा की न आत्मा की। वह धोये हुए मूला जैसा गया कहाँ? आहाहा! वह है, वह है और है वहाँ है। परन्तु तेरी नजर वहाँ गयी नहीं। आहाहा! अरे! तूने नजर में निधान लिये नहीं। इसलिए तुझे गया कहाँ, ऐसा लगता है। महा शाश्वत् वस्तु है। सुख समाधान। आहाहा! **पायौ निजस्थान फिर बाहरि न बहैगौ।** आहाहा! निज स्थान मोक्ष की प्राप्ति है। अपना स्थान निर्मल ऐसी दशा प्राप्त की, अब बाहर कहाँ जायेगा? अब उसे अवतार कहाँ? जिसकी दशा ऐसे आत्मा के स्वभाव का अनुभव होकर, स्थिरता होकर जिसने यह अधिक दशा प्रगट की अपने स्थान में आ गया, उसे बाह्य स्थान में जाना रहता नहीं।

**पायौ निजस्थान फिर बाहरि न बहैगौ। कबहुं कदाचि अपनौ सुभाव त्यागि करि,...** आहाहा! निर्मल प्रभु आत्मा की दशा में निर्मल स्वरूप की एकाग्रता करने से निर्मल दशा हुई। **कबहुं कदाचि अपनौ सुभाव त्यागि करि, राग रस राचिकैं न पर वस्तु गहैगौ। वह कभी भी अपना निजस्वभाव छोड़कर राग-द्वेष में लगकर परपदार्थ अर्थात् शरीर आदि को ग्रहण नहीं करेगा।** अब उसे, 'राग मेरा है' ऐसा होगा नहीं। शरीर और

वह तो उसकी रहित दशा। जैसी थी, वैसी प्रगट हुई—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** झूठे को झूठा ठहराया।

**अमलान ग्यान विद्यमान परगट भयौ,...** देखो! अमलान ज्ञान। आहाहा! **वर्तमान काल में जो निर्मल ज्ञान प्रगट हुआ है।** यह चन्द्र जैसे दूज उगी और पूर्णिमा हो, पूनमरूप से हो, उसी प्रकार भगवान आत्मा अखण्ड आनन्द पूर्ण अभेद हूँ, ऐसा अनुभव दृष्टि होकर पूर्ण ज्ञान को प्राप्त किया। समझ में आया? .... गजब अलग भाई यह तो! ऐसा धर्म कैसा यह वह? उसमें तो ऐसा कहा जाता है, यह पैसा देना, दुखिया के दु:ख टालना, विधवा के... मकान-बकान देना, वस्त्र देना, ... सेवा करना। ....किसका मनाना? ... धूल तो वह की वह रही है। ...नेता सब अपने पैसे—कुर्सी रखने की क्रिया है। प्रजा का क्या होगा, उसकी दरकार... बहुत लिखा है बहुत लिखा जैन गजट में।

यहाँ कहते हैं, **अमलान ग्यान विद्यमान परगट भयौ...** था वह हुआ। पूर्णानन्द का नाथ जहाँ, वह अनुभव करके प्रगट किया। **याही भांति आगम अनंत काल रहैगौ।** जो प्रगट है, वह अनन्त काल रहेगा। मुक्तदशा हुई, वह ऐसी की ऐसी रहेगी... उसे फिर से संसार में अवतार नहीं हो सकता। ऐसे आत्मा को जानकर अनुभव करना चाहिए, इसका नाम धर्म कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १४३, भाद्र शुक्ल ३, सोमवार, दिनांक २३-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद १०८ से ११०**

१०८वाँ पद है। **शुद्ध आत्मद्रव्य अर्थात् परमात्मा का स्वरूप**। २९५ पृष्ठ। पहले से लिया है।

**जैसौ निरभेदरूप निहचै अतीत हुतौ,**
**तैसौ निरभेद अब भेद कौन कहैगौ।**
**दीसै कर्म रहित सहित सुख समाधान,**
**पायौ निजस्थान फिर बाहरि न बहैगौ॥**
**कबहुं कदाचि अपनौ सुभाव त्यागि करि,**
**राग रस राचिकैं न पर वस्तु गहैगौ।**
**अमलान ग्यान विद्यमान परगट भयौ,**
**याही भांति आगम अनंत काल रहैगौ॥१०८॥**

कहते हैं कि भगवान आत्मा निर्भेदरूप अनादि-अनन्त है। वस्तु है, वह आत्मा तो निर्भेद-अभेद है। वह कोई निमित्त में आती नहीं, राग में आती नहीं, एक समय की पर्याय में भी वस्तु ध्रुव नित्य, वह कहीं आती नहीं। निर्भेद है। **निरभेदरूप निहचै अतीत हुतौ...** अनन्त काल में वह अभेदरूप ही वस्तु द्रव्यरूप से तो अभेद ही थी। **तैसौ निरभेद अब भेद कौन कहैगौ**। ऐसी निर्भेद वस्तु अखण्ड अभेद की दृष्टि करके— उसकी दृष्टि करके, उसमें लीन होकर पर्याय में निर्भेद दशा प्रगट हुई, अब भेद कहाँ से होंगे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अन्तिम अधिकार है न! गाथायें, इसलिए पूर्ण करेंगे। आहाहा!

आत्मा एक समय की पर्याय में छह द्रव्य को जाने, ऐसी तो उसकी सामर्थ्य है और ऐसी अनन्त-अनन्त सामर्थ्य का पूरा तत्त्व अभेद है। ऐसा निश्चय अतीत काल में था, ऐसा निर्भेद हो गया, अभेद हो गया। पर्याय में—अवस्था में आनन्द की एकता— अभेदता प्रगट हुई, अन्तर के आश्रय और अवलम्बन के कारण **अब भेद कौन कहैगौ।** उसे अब भेद कहाँ रहा? पूर्ण आनन्द का स्वरूप था, वैसा वर्तमान दशा में प्रगट किया।

अब भेद कहाँ है उसमें? ऐसा कहते हैं। इसका नाम मुक्ति और इसका नाम केवलज्ञान, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

**दीसै कर्म रहित...** भगवान कर्मरहित था अनादि से, परन्तु निमित्त-नैमित्तिक... विकारी पर्याय के साथ कर्म का निमित्त इतना सम्बन्ध था, वह छूट गया, कर्मरहित हो गया। आहाहा! **दीसै कर्म रहित सहित सुख समाधान,...** सुख और समाधान सहित प्रगट हुआ। अनन्त आनन्द का धाम था, वह अनन्त आनन्द पर्याय में प्रगट हुआ। सुख-शान्ति सहित दिखता है। समाधान का अर्थ यह किया। आनन्द और वीतरागता जो शक्तिरूप से थी, वह अन्तर की एकाग्रता द्वारा पर्याय में शान्ति और सुख प्रगट हो गया। इसका नाम मुक्ति, इसका नाम सुखी जीवन, अनन्त-अनन्त सुख का जीवन।

यह संसार में तो राग और द्वेष, विकार वह दुःखमय जीवन है, आकुलता का जीवन है। यह भगवान आत्मा अनाकुल का जीवन अर्थात् जीवता जीव था। आहाहा! ऐसा अन्दर में आश्रय लेकर, अन्तर अवलम्बन लेकर, अन्तर एकाग्र होकर निर्मल पूर्ण ज्ञान और आनन्द जहाँ प्रगट हुआ, अब कहते हैं। शान्ति और समाधानसहित है। अशान्ति रही नहीं, दुःख रहा नहीं। **पायौ निजस्थान...** अपना असंख्य प्रदेश स्थान, उसे निर्मल प्राप्त किया। **फिर बाहरि न बहैगौ।** बाहर अब आयेगा नहीं। बाहर विकल्प उसे होगा नहीं। फिर से उसे अवतार नहीं। यहाँ तक कल आया था।

**कबहुं कदाचि अपनौ सुभाव त्यागि करि,...** पूर्ण शुद्ध आनन्दस्वरूप का स्वभाव जहाँ प्रगट हुआ, उसे अब उस स्वभाव को छोड़कर **राग रस राचिकैं न पर वस्तु गहैगौ।** राग और द्वेष का रस छोड़कर **न पर वस्तु गहैगौ।** अब परवस्तु पकड़ेगा नहीं। आहाहा! कितने ही कहते हैं न, मुक्ति होने के बाद भी वापस अवतार है। उसके लिये बात है। समझ में आया? **कबहुं कदाचि अपनौ सुभाव त्यागि करि, राग रस राचिकैं...** राग में एकाग्र होकर, राचकर **पर वस्तु न गहैगौ।** परवस्तु ग्रहेगा—पकड़ेगा नहीं। इसका नाम आनन्द का जीवन और मुक्ति है।

**अमलान ग्यान विद्यमान परगट भयौ,...** यह तो चैतन्य निर्मलानन्द प्रभु है। उसमें अन्तर एकाग्र होकर **अमलान ग्यान**—निर्मल ज्ञान **विद्यमान परगट भयौ,...**

वर्तमान पर्याय में प्रगट हुआ। **याही भांति आगम अनंत काल रहैगौ।** इस प्रकार से अनन्त काल इस प्रमाण रहेगा। तब लोगों को प्रश्न होता है न, उसमें एक प्रश्न आया है। वह है न कोई दौलतराम, इन्दौर का मित्र। एक प्रश्न किया एक भाई ने। सबको प्रश्न करे, उसमें यह एक प्रश्न किया मनोहरलालजी को। कि सर्वज्ञ भविष्यज्ञ हो तो पुरुषार्थ करने का कुछ रहता नहीं। आहाहा! देखो न कहाँ बात खड़ी? भविष्य का ज्ञान सर्वज्ञ को हो, सर्वज्ञ यदि भविष्यज्ञ हो तो कुछ करने का रहता नहीं आत्मा को। तब उत्तर ऐसा दिया साधारण। परन्तु ऐसी श्रद्धा रहेगी कहाँ? इस प्रकार और ऐसा जवाब दिया। आहाहा!

मूल में पूरा विवाद आया क्रमबद्ध की व्याख्या में। परन्तु बात यह है कि जिसे, जहाँ जहाँ होगा, वहाँ होगा—ऐसा जिसने निर्णय किया और उसने निर्णय किया उसमें सर्वज्ञपर्याय तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा जिसने निर्णय किया, ऐसा निर्णय स्वद्रव्य के सन्मुख बिना होता नहीं। समझ में आया? इसमें होगा कहीं। क्या कहा? जैनसिद्धान्त, जैनसन्देश—किसमें होगा कहीं। वह गुरुवार का १८ अगस्त.... कहीं है अवश्य। आहाहा! ....हो गया यह। उसमें कुछ... उसमें होगा कहीं तो लो। यह दौलतराम के मित्र सोनपना। प्रश्न आया उसे। प्रश्न किया।

इन्दौर में वर्णी मनोहरलालजी की सभा थी। मैं पचासों बार शास्त्र सभा में गया, पर आगे बैठकर कभी उन्हें मिला नहीं। सिर्फ एक दिन उसकी विदाई के दिन मिला। मैंने पूछा, 'यदि सर्वज्ञ भविष्यज्ञ हैं, तो प्रयत्न निरर्थक है।' गजब बात, भाई! सर्वज्ञ भविष्यज्ञ हैं... सर्वज्ञ परमेश्वर भविष्य का सब जाने तो प्रयत्न निरर्थक जाता है। सर्वज्ञ के ज्ञान में जो होना है, सो हो ही जायेगा। तो वे बोले। 'अरे भाई! ऐसे दृढ़ श्रद्धानी हैं कितने?' ऐसा जवाब दिया।

**मुमुक्षु :** कितने हैं, ऐसा जानने से कैसे जाने?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसे ऐसा कि श्रद्धानी कितने होंगे? अरे! परन्तु बात यह है कि सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक को जाने... ऐसा जीव का स्वभाव है। आहाहा! जीव स्वयं आत्मा सर्वज्ञस्वरूपी ही है। ऐसा जो ज्ञान जिसे प्रगट हुआ, वह तीन काल-तीन लोक

को जाने। यह उत्तर ऐसा दिया साधारण। वे बोले, मेरे भाई! ऐसे दृढ़ श्रद्धानी कितने? आहाहा! परन्तु इसका अर्थ क्या?

सर्वज्ञ एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने। ८० गाथा में यह है। **'जो जाणदि अर्हंतम्'** आहाहा! अर्हंत के द्रव्य को—वस्तु को, उनके गुण को और उनकी दशा को केवलज्ञान जो तीन काल भविष्य का पूरा सब जाने, ऐसी जिसे ज्ञान की पर्याय अन्तर में बैठे, उसे तो अन्तर्मुख होकर अकर्तापना जागे, तब ही वह बैठे। समझ में आया? यह पुरुषार्थ है। बाकी तो जिस समय में जहाँ जो पर्याय परिणमने की—होने की है, वह होने की, और होने की ही है। उसके परिणमन को इन्द्र... केवली भी अपने परिणमन को बदल नहीं सकते। आहाहा! परन्तु उसका निर्णय किसे होता है? समझ में आया? जिसे, सर्वज्ञ पर्याय में तीन काल ज्ञात होते हैं, ऐसा आत्मा है, ऐसा आत्मा उसे स्वयं को अन्दर में बैठे कि मैं तीन काल-तीन लोक को जानने के स्वभाववाला हूँ। राग आदि किसी का करना, वह मेरे स्वभाव में (नहीं)। इसमें ही पुरुषार्थ आया। आहाहा! अमरचन्दभाई!

यह क्रमबद्ध में भारी गड़बड़ उठा। क्रमबद्ध (की) बात बाहर आयी। जिस समय में जहाँ जिस द्रव्य की पर्याय जड़ की—चैतन्य की होनेवाली उस समय में वही पर्याय होती है। आगे-पीछे तीन काल में जड़ और चैतन्य की (पर्याय) नहीं होती। भीखाभाई! अरे! परन्तु यह बात बैठे किसे? और बैठी किसे कहलाये? समझ में आया? वहाँ भी प्रश्न उठा था न जयपुर, नहीं? एक भाई ने प्रश्न किया था। क्रमबद्ध का स्पष्टीकरण करो। सबको यह विवाद उठता है। वह तो बेचारा समाधान के लिये... भाई पहिचानते हैं। हाँ। वह व्यक्ति.... परन्तु पूछे तो समाधान।

**मुमुक्षु :** समझने की भावना से।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** समझने की भावना से। थोड़े दिन रह जाते हैं। यह क्रमबद्ध का रह जाता है, इसका स्पष्टीकरण करो।

अरे भाई! क्रमबद्ध में तो आत्मा का ज्ञ-स्वभाव जाननस्वभाव है, वह साबित होता है वहाँ। समझ में आया? किसी का करना और अपनी पर्याय का बदलना भी

जिसमें नहीं। आहाहा! कठिन बात है। ऐसा जो आत्मस्वभाव, जिसे प्रगट होकर परिणमित हुआ है परमात्मा को, वह भविष्य का—जहाँ जो पर्याय जिस जीव की होती है, वह सब भगवान जानते हैं। परन्तु उन भगवान के केवलज्ञान की एक समय की पूर्ण सामर्थ्य दशा, उसका अन्तर में भरोसा कब आवे ? समझ में आया ? कि वह पर्यायदृष्टि छूटकर, निमित्तदृष्टि छूटकर, रागदृष्टि छूटकर, वस्तु तो वह की वह है। आहाहा! और ज्ञायक त्रिकाली ज्ञायकभाव की दृष्टि हो, तब वह क्रमबद्ध का—पर्याय का कर्ता न होकर जाननेवाला रहे। तब उसे ज्ञाता-दृष्टा (कहा जाता है)। जैसे सर्वज्ञ ज्ञाता-दृष्टा होकर रहते हैं, यह भी ज्ञाता-दृष्टा होकर रहे, तब उसे क्रमबद्ध का यथार्थ निर्णय कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

एक सम्यग्दर्शन का विषय आत्मा, उसमें यह कहते हैं... आहाहा! गजब! अरे क्रमबद्ध नहीं। अक्रम और क्रम होता है। किसी समय होनेवाला हो वह होता है और किसी समय फेरफार होता है। अरे भगवान! ज्ञान में ज्ञात हुआ, उसमें फेरफार क्या हो ? आहाहा! नहीं होनेवाला था, वह होगा ? मूलचन्दभाई! यह वीतरागमार्ग बहुत अलौकिक, बापू! इसका अर्थ ही यह है कि तेरा स्वभाव ज्ञानस्वभाव है, ऐसा जिसने अनुभव में निर्णय किया, बस! उसे सब बात बैठ गयी कि क्रम से होता है, उसे जाननेवाला हूँ। जैसे सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक को जाननेवाले हैं पूर्ण रीति से। इसे इसकी शक्ति प्रमाण जो हो, उसे जाननेवाला-देखनेवाला है। ऐसे जीव को, क्रमबद्ध और भगवान ने सर्वज्ञपना में भवितव्य जाना, ऐसा इसे प्रतीति में तब आवे। जेठाभाई! आहाहा! यह तो बात लगे और वहीं की वहीं रखकर, वह बात अमल करे, तो होता है।

भाई! तू तो सर्वज्ञस्वरूपी है प्रभु! आहाहा! यह सर्वज्ञ हुए, वह सर्वज्ञस्वभावी थे, वे हुए। स्वभाव बाहर से आता है ? इसी प्रकार जिसे, आत्मा एक समय में मैं सर्वज्ञ स्वभावी तीन काल-तीन लोक को है, वैसा जानना—ऐसा मेरा स्वभाव है, ऐसी दृष्टि कब होगी ? कि इसकी दृष्टि निमित्त से उठ जाये, राग से उठ जाये, एक समय की पर्याय से उठ जाये। पाटनीजी! यह बात, बापू! वीतराग का मार्ग कोई... वीतराग की वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! दृष्टि में सर्वज्ञस्वभाव जिसे पर्याय में प्रगट हुआ, उसकी प्रगट हुई पर्याय जिसे निर्णय में आवे, उसे तो द्रव्यस्वभाव के ऊपर दृष्टि जाये, तब निर्णय में

आये। यह सर्वज्ञस्वरूप है। जानने का... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला, यह मैं। ऐसा अनुभव में आवे, उसे समकित होता है और वह ज्ञाता-दृष्टा हो जाता है। आहाहा! प्रेमचन्दभाई! भारी कठिन बात! कोई कहीं अटके, कोई कहीं अटके और भटकाभटक चारों गति में। आहाहा!

भाई! यहाँ तो कहते हैं न। यह विज्ञान अमलान जिसे प्रगट हुआ, वह **आगम अनंत काल रहैगौ...** वह सर्वज्ञदशा में तो तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए एक जीव को। अनन्त केवली की पर्याय कि जिस केवलज्ञान में भविष्य में होनेवाला कहाँ? कैसे? वह सब केवल (ज्ञान) में ज्ञात हो गया। ऐसे अनन्त केवलियों को स्वयं केवलज्ञान अपनी श्रद्धा में लेता है। केवलज्ञान में आ जाते हैं सर्वज्ञ। ऐसे सर्वज्ञ जिसमें अनन्त सर्वज्ञ की प्रतीति हो गयी, अनुभव हो गया और प्रगट हो गया, ऐसी जिसकी प्रतीति हो, आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन होता है और वह राग का कर्ता मिट जाता है। और ऐसा मैं परिणमूं, ऐसी बुद्धि भी मिट जाती है। अमरचन्दभाई! ऐसा मार्ग... आहाहा! परन्तु यह बाहर था ही नहीं न, बाहर आया, इसलिए लोगों में खलबलाहट... खलबलाहट... हाँ, यह तो नियत हो गया। अब सुन न! नियत ही है। परन्तु नियत के साथ स्वभाव और पुरुषार्थ की जागृति है। अकेला नियत नहीं। समझ में आया?

यह आज आया है। उसमें आया है, भाई ने डाला है। मुन्नालाल ने डाला है। मुन्नालाल ने बड़ा लेख लिखा है क्रमबद्ध का। मुन्नालाल को तो ऐसी बात बैठी है न! मुन्नालाल आये हैं यहाँ? जयपुर आये हैं न? आये हैं।.... और वे यहाँ से बाहर प्रसिद्ध हो सके न बाहर में। बहुत बोलनेवाले अधिक हो और ऐसी बातें करे। किसी को खबर नहीं पड़े।

**मुमुक्षु :** यह तो पुण्य का प्रताप।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो आयेगा अभी। आहाहा! रिद्धि-सिद्धि आगम में, उसमें कुछ ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बोलने की शक्ति हो और दूसरे को पुण्य से ऐसा प्रभाव डाल सके, इससे वह कहीं ज्ञान नहीं, वह ज्ञान नहीं। कहेंगे अभी। अष्ट महा रिद्धि अष्ट सिद्धि, वह कोई ज्ञान नहीं। १११ में, १११ पद आता है न!

**दरबलिंग न्यारौ प्रगट, कला वचन विग्यान।**
**अष्ट महारिधि अष्ट सिधि, एऊ होहि न ग्यान॥**

ज्ञान को आत्मा के साथ सम्बन्ध है, ऐसा जहाँ भान हुआ, पूरा हो गया। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञों को यह कहना है, गुरु ने यह साधा है, शास्त्र में यह वचन आये हैं। ऐसे कथन जो हों, वह आगम के कथन हैं। कुछ आगे-पीछे करना चाहे, वह आगम के वचन नहीं। समझ में आया? भाई! तुझे दृष्टि बदलनी है। सर्वज्ञ को मानना और क्रमबद्ध हो, उसे जानना, उसमें तेरी दृष्टि का.... फेरफार करनापना पड़ा है। उसे मानने से दृष्टि द्रव्य के ऊपर जाती है, पूरा हो गया। राग और चलती पर्याय का भी परिणमना कि कर्ता वह रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसका नाम सम्यग्दर्शन और इसका नाम सम्यग्ज्ञान। अरे! लोगों को यह बड़ी बात लगती है। यहाँ कहते हैं। (पद) १०९।

**उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत् ।**
**यदात्मनः सन्हृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य सन्धारणमात्मनीह ।।४३।।**

★ ★ ★

## काव्य - १०९

**पुनः** (सवैया इकतीसा)

**जबहीतैं चेतन विभावसौं उलटि आपु,**
**समै पाइ अपनौ सुभाउ गहि लीनौ है।**
**तबहीतैं जो जो लेने जोग सो सो सब लीनौ,**
**जो जो त्यागजोग सो सो सब छांड़ि दीनौ है।।**
**लैबैकौं न रही ठौर त्यागिवेकौं नांहि और,**
**बाकी कहा उबर्‌यौ जु कारजु नवीनौ है।**
**संग त्यागि अंग त्यागि वचन तरंग त्यागि,**
**मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा सुद्ध कीनौ है।।१०९।।**

**शब्दार्थ:**–उलटि=विमुख होकर। समै (समय)=मौका। उबर्‌यौ=शेष रहा। कारजु (कार्य)=काम। संग=परिग्रह। अंग=देह। तरंग=लहर। बुद्धि=इन्द्रिय जनितज्ञान। आपा= निज–आत्म।

**अर्थ:**–अवसर मिलने पर जब से आत्मा ने विभावपरिणति छोड़कर निज स्वभाव ग्रहण किया है, तब से जो जो बातें उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य थीं, वे वे सब ग्रहण कीं, और जो जो बातें हेय अर्थात् त्यागने योग्य थीं, वे वे सब छोड़ दीं। अब ग्रहण करनेयोग्य और त्यागनेयोग्य कुछ नहीं रह गया और न कुछ शेष रह गया जो नया काम करने को बाकी हो। परिग्रह छोड़ दिया, शरीर छोड़ दिया, वचन की क्रिया से रहित हुआ, मन के विकल्प त्याग दिये, इन्द्रियजनित ज्ञान छोड़ा और आत्मा को शुद्ध किया।।१०९।।

---

काव्य-१०९ पर प्रवचन

---

**जबहीतैं चेतन विभावसौं उलटि आपु,**
**समै पाइ अपनौ सुभाउ गहि लीनौ है।**
**तबहीतैं जो जो लेने जोग सो सो सब लीनौ,**
**जो जो त्यागजोग सो सो सब छांड़ि दीनौ है॥**
**लैबैकौं न रही ठौर त्यागिवेकौं नांहि और,**
**बाकी कहा उबर्‌यौ जु कारजु नवीनौ है।**
**संग त्यागि अंग त्यागि वचन तरंग त्यागि,**
**मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा सुद्ध कीनौ है॥१०९॥**

**जबहीतैं चेतन विभावसौं उलटि आपु,** जब समय पाकर (अर्थात्) उस पर्याय में परिणमन का स्वकाल है तब, आहाहा! समझ में आया? **जबहीतैं चेतन विभावसौं...** विकार—विकल्प से **विभावसौं उलटि**—गुलाँट खाकर। पर्यायबुद्धि है, वह द्रव्यबुद्धि करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न? **अवसर मिलने पर,...** उसमें लिखा है। **जब से आत्मा ने विभाव परिणति छोड़कर निजस्वभाव ग्रहण किया है।** अरे! मैं तो सर्वज्ञस्वभावी

पूर्ण आनन्द, ऐसा जहाँ उपादेयरूप से दृष्टि से ग्रहण किया। **विभावसौं उलटि**—गुलाँट खायी। आहाहा! समझ में आया? निमित्त तो एक ओर रहा, परन्तु जो विकल्प है, पुण्य का विकल्प व्यवहार का उसे, कहते हैं, **चेतन विभावसौं उलटि आपु,...** उससे उल्टी दशा जिसने की है। आहाहा! कहते हैं, **जबहीतैं चेतन विभाव...** अर्थात् पुण्य और पाप व्यवहार विकल्प से **उलटि आपु**—गुलाँट खाकर द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि पड़ी, आहाहा! तो **समै पाइ अपनौ सुभाउ गहि लीनौ...** ज्ञानानन्दस्वभाव अपना, उसे पकड़ा।

**तबहीतैं जो जो लेने जोग सो सो सब लीनौ,...** अन्दर आनन्द पूर्ण प्रभु आत्मा, ऐसी अन्तर में दृष्टि होने से लेने योग्य ले लिया गया पूरा आत्मा। डाह्याभाई! आहाहा! अरे रे! वस्तु का स्वरूप क्या है, उसकी खबर नहीं और चलो यह धर्म करो और ऐसा होगा और ऐसा होगा और ऐसा होगा। आहाहा! या गुरु की कृपा से मिल जायेगा, या सर्वज्ञ ने देखा तब होगा। परन्तु यह देखा तब होगा, इसका निर्णय तुझे कहाँ है? समझ में आया? उसका निर्णय तो विभाव से उल्टी गुलाँट खायी, भगवान अपना स्वभाव ग्रहण कर लिया। शुद्ध उपादान ग्रहण किया उसने। दृष्टि में, ज्ञान की पर्याय में पूरा द्रव्य ग्रहण किया और राग को जिसने दृष्टि में से छोड़ दिया, इसका नाम त्याग। अरे! इसने कहाँ उल्टा किया है और इसे कैसे सुल्टा हो, इसकी खबर नहीं और यह संसार चलता जाता है। आहाहा! कहीं शान्ति नहीं, भाई! शान्ति का सागर तो प्रभु तू है। उसे विकल्प से पृथक् करके, आहाहा! परमात्मा की जहाँ भेंट हुई, वहाँ राग से गुलाँट खा जाता है। राग, विकल्प, व्यवहार, वह मैं नहीं। आहाहा! यह तो धर्म के काम हैं, बापू! धर्म कोई अपूर्व चीज़ है। जिसके फल में केवलज्ञान और अनन्त आनन्द, वह धर्म कैसा होगा! समझ में आया?

यह परलक्ष्यी दया, दान, व्रत, पूजा और भक्ति, वह तो सब राग है। वह ज्ञानस्वरूप नहीं। उसमें ज्ञान की गन्ध नहीं, यह कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह तो शान्ति का मार्ग है। धीर का मार्ग है यह तो। समझ में आया? लाख बात की हो, कहते हैं न, आया न उसमें—छहढाला में। 'लाख बात की बात (यहै) निश्चय उर आनो, छोड़ी सकल द्वंद्व फंद निज आतम ध्याओ।' यह लाख बात की, अनन्त बात की बात यह है।

**मुमुक्षु :** व्यवहार उड़ाना क्यों नहीं कहा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह व्यवहार उड़ गया और उसमें उड़ गया ऐसे। लाख बात की बात, निश्चय ज्ञायकमूर्ति है, उसे दृष्टि में ले, बस इतनी बात! व्यवहार का लक्ष्य छूट जायेगा, व्यवहार का आदर छूट जायेगा, त्रिकाली ज्ञायकभाव का आदर होने पर तुझे आनन्द और शान्ति होगी। यह मार्ग है। समझ में आया? डाह्याभाई! आहाहा!

**तबहीतैं जो जो लेने जोग सो सो सब लीनौ,...** आहाहा! व्यवहार लिया या व्यवहार छोड़ा? लेनेयोग्य तो प्रभु चैतन्यमूर्ति आनन्द का धाम है। यह है, वहाँ दृष्टि पड़ने पर उसे लिया। यह लेनेयोग्य, वह ले लिया। छोटूभाई! यह सब समझना पड़ेगा, हों! धूल में कुछ नहीं, ....मार डाला। वे पैसेवाले कह-कहकर निवृत्त न हो। धन्धा... धन्धा... धन्धा पाप का पूरे दिन।

**मुमुक्षु :** कमाने का।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पाप का। कमाने का क्या? कमाने का पाप कमाये। ऐ सेठ! यह सब सेठिया बैठे हैं। धूल में भी नहीं कोई, सुन न! जहाँ है, वहाँ नजर जाती नहीं और नहीं है, वहाँ तेरी नजर काम करे। यह नजर ही अन्धी है। आहाहा!

भगवान अनन्त... अनन्त... आनन्द और अनन्त... अनन्त... ऐसी शक्ति का समुदाय आत्मा है। और एक-एक शक्ति में अनन्तता! स्वभाव है न। शक्ति वह स्वभाव है न! ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, कर्ता—इत्यादि एक-एक शक्ति स्वभाव है और स्वभाव है, वह अनन्त ही होता है, अपरिमित होता है। मर्यादावाला हो नहीं सकता। ऐसा जिसका स्वभाव अनन्त... अनन्त शक्ति का पिण्ड है, ऐसे जिसने राग की रुचि छोड़कर, विभाव से गुलाँट खाते द्रव्य को जिसने पकड़ा, उसने सब ग्रहण करने का ग्रहण कर लिया। पूरा आत्मा पकड़ा। आहाहा! जिसमें से केवलज्ञान की धारा प्रगट होगी, ऐसा पूरा आत्मा उसने दृष्टि में पकड़ा। यह वस्तु है। अरे! धर्म को कहाँ खोजना, कहाँ मानना, इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया?

कहते हैं, **जो जो त्यागजोग सो सो सब छांड़ि दीनौ...** यह पर्यायबुद्धि और रागबुद्धि छूट गयी। यह छोड़नेयोग्य था, वह छूट गया। समझ में आया? पूरा चैतन्य

प्रभु समाधि से शान्ति से भरपूर, उसे जहाँ दृष्टि में ज्ञेय करके पकड़ा, ग्रहणयोग्य ग्रहण कर लिया, छोड़नेयोग्य छूट गया। राग, कर्म और शरीर, एक समय की पर्याय की रुचि—यह सब छूट गये। गजब मार्ग! लोग इसे समझे नहीं फिर... सोनगढ़वाले एकान्त कहते हैं, नियति कहते हैं, क्रमबद्ध कहते हैं। अरे भगवान! तुझे खबर नहीं, बापू! तेरे घर में यह है। समझ में आया? सबको जानना, ऐसा तेरे घर में है। किसी का करना, ऐसा तेरे घर में नहीं। तुझे तेरे घर की खबर नहीं। आहाहा! राग को करना और पर को करना, वह वस्तु में कहाँ है? पर का करना तो नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ उसके काल में—उसके परिणमन के स्वकाल में परिणमता है। परन्तु राग का करना उसे कहाँ है? क्योंकि वह तो ज्ञायक चैतन्यज्योति है। रागरूप हूँ, वह इसका स्वभाव कहाँ है? आहाहा! रागरूप हुआ हूँ, यह तो एक मान्यता भ्रम—मिथ्यात्व की है। यह भगवान की भक्ति का राग भी मेरा, यह मान्यता मिथ्यात्व है। आहाहा! गजब बात है!

**मुमुक्षु :** कौन से भगवान की?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तीन लोक के नाथ। यह भगवान ऐसा है, ऐसा जो विकल्प, वह भी राग है। गुण-गुणी के भेद का विकल्प उठना, वह भी राग है। उससे लाभ माने, वह मिथ्यात्व है। अभेद को भेद से लाभ माननेवाले, स्वभाव में राग से लाभ माननेवाले पूरे स्वभाव का अनादर करते हैं। जाननेवाला—देखनेवाला चैतन्य प्रभु ऐसा तू अनादि का... आ गया न यह? अतीत काल ऐसा ही रहा है। यह प्रवचनसार में आया है न यह! ज्ञायक ही रहा है अनादि से। मान्यता में उसने अन्तर किया है। वस्तु तो ज्ञायक चैतन्य वस्तु है न, तो उसका स्वभाव क्या? जानना—ज्ञायक। ऐसे ज्ञायकरसरूप ही अनादि से रहा है। परन्तु इसने माना कि मैं रागवाला और यह पर का करनेवाला। वह तो अन्य अध्यवसाय से इस प्रकार से तूने माना है। यह मान्यता भ्रम है। आहाहा! समझ में आया?

**तबहीतैं जो जो लेने जोग सो सो सब लीनौ,...** जो ग्रहणयोग्य तो सब ले लिया। आहाहा! पूरा भगवान आत्मा प्रतीति और अनुभव में ले लिया, क्या बाकी रहा अब? आहाहा! समझ में आया? ग्रहण योग्य ग्रहण किया और छोड़नेयोग्य छूटा। यह कहते

हैं, **जो जो त्यागजोग सो सो सब छांड़ि दीनौ है। लैबैकौं न रही ठौर...** अब कुछ बाकी रहा नहीं। भगवान पूरा जहाँ अनुभव में, श्रद्धा में, ज्ञान में आया तो... कभी देखा नहीं क्यों मानते हैं ? कभी देखा नहीं ऐसे नजर से किसी ने। परन्तु यह है न ? कि यह है तो पीछे है। दर्पण में यह चीज़ दिखती नहीं। वह तो उसका प्रतिबिम्ब है। दर्पण की पर्याय है।

**मुमुक्षु :** न्याय से .... है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** न्याय से समझना चाहिए न, न्याय से, **न्यावयम्** भगवान कहते हैं कि हमारा मार्ग न्याय से सिद्ध है। लॉजिक से, युक्ति से, ज्ञान से, युक्ति से सिद्ध है। आहाहा! प्रवचनसार में कारण आया है। प्रवचनसार—चरणानुयोग (सूचक चूलिका)। गाथा है कि भगवान ने कहा, वह सब श्रुतज्ञानी युक्ति से सिद्ध कर सकते हैं। प्रवचनसार में है। समझ में आया ? मुनि कहते हैं कि जो भगवान ने कहा, वह चीज़ श्रुतज्ञान से, युक्ति से अनुभव में आती है। युक्ति से, लॉजिक से सिद्ध होता है। ऐसे (ऊपर से) मानना, ऐसा नहीं। कौनसी गाथा है ? २३७ होगी। यह प्रवचनसार है न, देखो! हाँ, २३७।

'आगमजनित ज्ञान से जो श्रद्धाशून्य हो तो सिद्धि होती नहीं और उसके आगमज्ञान बिना भी होता नहीं ऐसा श्रद्धान से, संयमशून्य हो तो सिद्धि होती नहीं।' आगमबल से... देखो संस्कृत टीका है। '**आगमबलेन सकलपदार्थान् विस्पष्टं तर्कयन्नपि, यदि सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदैकज्ञानाकारमात्मानं न तथा प्रत्येति।**' आहाहा! शास्त्र ने भी कैसी बात की है। भाई! तेरा स्वभाव... विकार से उल्टी गुलाँट खाकर जहाँ द्रव्यस्वभाव को पकड़ा। आहाहा! अब कहते हैं कि उस प्रकार के कोई विकल्प व्रत के, दोष के आदि हो, आहाहा! अब ... लेते हैं, देखो! यह भी एक विकल्प है, उसका वह जाननेवाला है। जाननेवाले को पकड़ने से क्या बाकी रह गया अब ? कहते हैं। यह छूटनेयोग्य सब दृष्टि में से—ज्ञान में से छूट गया। ऐसा मार्ग, बापू! आहाहा! दुनिया के साथ तुलना नहीं होती। आया था न सवेरे ? कमल... कमल... एक पृष्ठ आया है या नहीं तुमको ? है न ? कमल... कमल। जयपुर में मिला। तुम्हारे भाई के यहाँ। थोड़े से पत्र रखे थे। रखे हैं, वह पढ़ो तो सही। आहाहा!

**लैबैकौं न रही ठौर...** अर्थात् कोई स्थान रहा नहीं, लो, उसके साथ। कोई भाव (आश्रय) लेनेयोग्य नहीं रहा। पूरा भगवान आत्मा... दृष्टि में गुलाँट खायी। जो दृष्टि राग की रुचिवाली थी, एक समय के अंश की रुचिवाली थी। अंशरुचि कहो या पर्यायरुचि कहो। आहा! उसने ग्रहणयोग्य ग्रहण किया और छोड़नेयोग्य छोड़ा। **लैबैकौं न रही ठौर...** कोई भाव नहीं, कोई स्थान यह लेनेयोग्य रहा नहीं। **त्यागिवेकौं नांहि और,...** छोड़नेयोग्य कुछ रहा नहीं। यह बाहर की बातें लोगों को ऐसी अच्छी लगे कि भाई! यह स्वराज्य ऐसे मिला। उसमें अभी स्वराज्य का चलता नहीं। सब समान इकट्ठे होओ तो स्वराज्य व्यवस्थित हो। समाधान करो। नहीं तो अब... उसमें क्या समान हो? सुन न भाई! हैरान... हैरान होने के रास्ते हैं सब। ऐसे इकट्ठे होकर ऐसा करना, वह स्वराज्य को ऐसा करना। क्या करे? तेरा स्वराज्य तो यहाँ अन्दर पड़ा है। आहाहा!

**बाकी कहा उबर्यौ...** अन्दर भगवान अखण्डानन्द... तब कहे, यह हमारे बन सकता नहीं। परन्तु अब बन सकता नहीं, ऐसा कैसे कहता है तू? पूरा सिद्धपद लेने के योग्य है, उसके बदले ऐसा नहीं बन सकता, यह वचन शोभा नहीं देता इसे। समझ में आया? आहाहा! अरे! जन्म-जरा के दुःख, जन्म के दुःख आकुलता के, मरण के दुःख आकुलता के और जीवन के दुःख आकुलता के, आहाहा! यह वह कहीं जीवन कहलाये? कहते हैं। राग और द्वेष से जीना और राग और द्वेष से जन्मना तथा मरना, वह कहीं जीवन जीया कहलाये? आहाहा! उस जीव का जीवन तो... जीवत्वशक्ति आती है न! अभी कहते हैं न कि जीओ और जीने दो। महावीर का (सन्देश)। अरे! महावीर का सन्देश नहीं। भाई! तुझे खबर नहीं। रामजीभाई कहे, यह तो अंग्रेजों की बात है। तुम कहाँ से लेकर बैठे? ऐई! जीओ और जीने दो, यह नहीं। आहाहा!

पर को जिला सकता नहीं, स्वयं भी आयुष्य प्रमाण रहे, उसमें जीना और जीने का रहा कहाँ? बोलते हैं न लोग। महावीर का सन्देश। कौन जीवे? बापू! तेरे आयुष्य के कारण जीना और दूसरे को जिलाना, ऐसा है? यह तत्त्व है? यह तो अंग्रेज लोगों के गोला मारे हों और वह लोग चल निकले। कुछ भान नहीं होता।

**मुमुक्षु :** परन्तु लोगों को रुचता है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दुनिया गहल-पागल है, वह उसे रुचे न! पागल हो तो। आहाहा! समझ में आया?

पागल होता है न, फिर उसे पुराना घी देते हैं। पुराना घी बहुत मैला। बहुत वर्ष का पुराना हो न, बहुत बहुत वर्ष का। घी दे परन्तु बहुत वर्ष का पुराना सड़ा हुआ। वैद्य दे उस पागल को .... पुराना घी बहुत आवे। पुराने से पुराना घी लावे और उसे दवा में डाले।

**मुमुक्षु :** बहुत पुराना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बहुत पुराना। ऐसा सुना था। बहुत पुराना सड़ा हुआ। ईयळ पड़ी हो जीवांत (पड़ी हो)। आहाहा! फिर उसे पिलावे। रोग मिट गया। पागल को होता है यह, कहते हैं। यह दुनिया की क्रियायें करके अपने सुधार करना। अपने को फिर सबको समान होना। एक व्यक्ति बहुत परिग्रह रखे और एक व्यक्ति थोड़ा रखे। इससे बहुतों को मिलता नहीं, इसलिए थोड़ा परिग्रह घटा दो। क्या घटाये? सुन तो सही। राग, वह परिग्रह है वास्तव में तो। वह (पर) रख कौन सके, छोड़ कौन सके? आहाहा! बापू! राग को पकड़ा, उसने पूरी दुनिया—लोकालोक को पकड़ा है, ऐसा कहते हैं। अब उसकी तो तुझे खबर नहीं। मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा!

वस्तु की मर्यादा और स्थिति होगी, वैसी रहेगी। कोई उसे फेरफार कर देगा? वस्तु बदल देगा? और बहुत माननेवाले निकलें लाखों और करोड़ों और यह नहीं माननेवाले निकलें तो कहीं वस्तु बदल जायेगी? चींटियों के नगरां (झुण्ड) बहुत हों। चींटियाँ... चींटियाँ। आटा डालते हैं न आटा। चींटियाँ बहुत होती हैं, इसलिए कहीं मनुष्य हो जाती हैं? इसी प्रकार ऐसे बहुत उल्टे माननेवाले हों, इससे कहीं सत् हो जाये? समझ में आया? आहाहा! जिसने राग को छोड़ा और स्वभाव को ग्रहण किया, उसे क्या बाकी है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! दृष्टि में से राग का विकल्प, तीन लोक के नाथ परमात्मा की भक्ति का राग छोड़। दृष्टि में से छोड़ तो स्वभाव का ग्रहण होगा। गजब बात! कहते हैं, यह नहीं हो सकता। नहीं हो सकता तो धर्म नहीं हो सकता। इसका अर्थ क्या? पाप और अधर्म हो सकता है और धर्म नहीं हो सकता, इसका अर्थ क्या यह? ऐई पाटनीजी!

**मुमुक्षु :** मानता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मान्यता में फँस गया है। महँगा कहकर और यह नहीं हो सकता मुझे। इसलिए यह नहीं होता, तब तक दूसरा करना या नहीं ? आहाहा!

अरे भाई! परन्तु यह तो दूसरा करता है, वह अनादि से करता है। वह मिथ्यात्वभाव है। राग को करूँ और यह करूँ, वह तो मिथ्यात्वभाव है। अब सुल्टा करना है या नहीं ? आहाहा! प्रेमचन्दभाई! यह अलग प्रकार की दवा है यह। यह भगवान होने की ऐसी दवा है यह तो। वह दवा दे और निरोग हो, या न हो, वह तो फिर वापस उसके आधीन हो, परमाणु के आधीन। वह कहीं दवा दे, इसलिए रोग मिट जाये ? वह तो दवा से परमात्मा होता है, होता है और होगा ही। एक बार केवलज्ञानी होकर, वह भी खड़ा रहेगा आत्मा। ऐसी यह चीज़ है। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि **लैबैकौं न रही ठौर...** यह तो भाषा रखी है। वह **ठौर** और **और** चाहिए है न इसलिए। **लैबैकौं न रही ठौर... ठौर** अर्थात् स्थान नहीं, परन्तु सब भाव। कोई भी भाव अब ग्रहणयोग्य बाकी रहा नहीं। भगवान पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण शक्ति सत्त्व को जहाँ पकड़ा, सब आ गया। **त्यागिवेकौं नांहि और,..** अब कोई त्यागनेयोग्य बाकी रहा नहीं। पर्यायबुद्धि छूट गयी, रागबुद्धि छूट गयी, रुचि छूट गयी सब...। आहाहा! **बाकी कहा उबर्‌यौ...** अब क्या बाकी रहा, ऐसा कहते हैं। शेष क्या रहा ? कि **कारजु नवीनौ।** नवीन कार्य करने का क्या रहा अब ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! बनारसीदास ने भी.... आहाहा!

**संग त्यागि अंग त्यागि...** शरीर मैं नहीं, ऐसा शरीर का त्याग हुआ दृष्टि में से। परिग्रह छोड़ दिया, शरीर छोड़ दिया। संग अर्थात् परिग्रह। राग आदि का परिग्रह, पर छोड़ दिया, शरीर छोड़ दिया। **संग त्यागि अंग त्यागि वचन तरंग त्यागि,** वचन की बोलने की क्रिया भी छोड़ दी है। दृष्टि में वह क्रिया मेरी नहीं। आहाहा! समझ में आया ? **संग त्यागि अंग त्यागि वचन तरंग त्यागि,** ऐसा। वचन की जो तरंगें छोड़ दिये। वाणी मेरी है और मैं बोलता हूँ तथा ऐसा बोलना चाहिए, ऐसा बोलना चाहिए—यह सब छोड़ दिया है। बोलने की क्रिया के काल में बोलने की होगी, मुझमें वह कुछ है नहीं। आहाहा!

**मन त्यागि,** लो। मन के विकल्प वहाँ लिये। मन को त्याग—छोड़ दिया। आहाहा! अकेला भगवान जहाँ पकड़ा, वहाँ मन का त्याग हो गया। दृष्टि में सम्यग्दर्शन में मन का त्याग। अरे, इन्द्रियबुद्धि त्यागी। इन्द्रिय का ज्ञान त्यागा। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के निमित्त से जो जानपना होता है, वह नहीं। वह सब तुम्हारे जज का जानपना और यह वकील के जानपना छोड़ दिया, ऐसा कहते हैं। ऐई निरंजन! यह क्या सब पढ़ा वहाँ पढ़कर? निरंजन पढ़ने गया था स्वयं। कहो, समझ में आया? **मन त्यागि बुद्धि त्यागि...** ले। बुद्धि का त्याग किया। इन्द्रिय के निमित्त से होता ज्ञान, वह मैं नहीं। आहाहा! वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। यह कहीं घडतर की है कि ऐसा किया, ऐसा कुछ है? आहाहा!

कितने ही कहते हैं न, भगवान ने तो, सबके मत अनेक-अनेक थे, (उन्हें) इकट्ठा करके अनेकान्त किया। अरे...! मूर्खाई का प्रदर्शन है, करते हैं। उन्होंने तो अन्दर स्वभाव जैसा था, ऐसा जहाँ जाना, उस प्रकार की प्ररूपणा आयी। सबके मत ऐसे करना और एकान्त मानते हैं। इसलिए उन्हें ले लिया। वेदान्त नित्य मानता है, ऐसा लिया। बौद्ध क्षणिक मानता है, ऐसा लिया। अरे! यह कहाँ लिया, यहाँ तो यह लिया। समझ में आया? आहाहा! भाषण में ऐसा भौंके। सेठ!

**मुमुक्षु :** सब छुड़वा दिया बुद्धि से....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बुद्धि छूट जाये। उसमें कहाँ थी बुद्धि? वह तो सब अज्ञान है, अचेतन है। अहाहा! इन्द्रियज्ञान, वह अचेतन। चेतन की जाति हो, वह कभी नाश होगी? पाँच इन्द्रियजनित वह नाश(वान) ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भावमन वह सब... सब... सब भावमन का संकल्प-विकल्प। **त्यागि आपा सुद्ध कीनौ है।** भगवान आत्मा... उसका त्याग और उसका ग्रहण। शुद्ध हुआ। दृष्टि में शुद्ध हुआ और स्थिरता में शुद्ध होकर केवलज्ञान हो गया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ४४वाँ है। कलश है न ४४।

**व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेवं ज्ञानमवस्थितम्।**
**कथमाहारकं तत्स्याद्येन देहोऽस्य शङ्क्यते।।४४।।**
**एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते।**
**ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिङ्गं मोक्षकारणम्।।४५।।**

आहाहा!

★ ★ ★

## काव्य - ११०

**मुक्ति का मूल कारण द्रव्यलिंग नहीं है** (दोहा)

**सुद्ध ग्यानकै देह नहि, मुद्रा भेष न कोइ।**
**तातै कारन मोखकौ, दरबलिंग नहि होइ।।११०।।**

**शब्दार्थः-मुद्रा=आकृति। भेष (वेश)=बनावट। दरबलिंग=बाह्य वेष। प्रगट= स्पष्ट। एऊ=यह।**

**अर्थः-आत्मा शुद्धज्ञानमय है, और शुद्धज्ञान के शरीर नहीं है, और न आकृति-वेष आदि हैं, इसलिए द्रव्यलिंग मोक्ष का कारण नहीं है।।११०।।**

### काव्य-११० पर प्रवचन

**मुक्ति का मूल कारण द्रव्यलिंग नहीं है।** यह नग्नपना और २८ मूलगुण विकल्प साधु के, वह मुक्ति का कारण नहीं। नग्नपना, वह मुक्ति का कारण नहीं। तब वे कहें, परन्तु बाहर दिखता है, उससे अभ्यन्तर परखा जाता है। बाहर में न हो, उसका अभ्यन्तर कैसे परखा जाये? इसलिए बाहर ही साधन है, ऐसा कहते हैं। आज लेख है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं। वह तो निमित्त है, नैमित्तिक को प्रसिद्ध करता

है। परन्तु नैमित्तिक हो तो इसे निमित्त कहा जाये न?

**मुमुक्षु :** होवे तो प्रसिद्ध करे या न होवे तो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तो प्रसिद्ध करे। मुफ्त का प्रसिद्ध करे? ऐसे द्रव्यलिंग तो अनन्त बार धारण किये। पाँच महाव्रत के परिणाम, २८ मूलगुण का राग, क्रिया, नग्नदशा अनन्त-अनन्त बार हुआ। वह वस्तु कहाँ थी? वह समकित का भी कारण कहाँ है? समझ में आया? आहाहा!

**सुद्ध ग्यानकै देह नहि, मुद्रा भेष न कोइ।**
**तातै कारन मोखकौ, दरबलिंग नहि होइ॥११०॥**

ऐई सेठ! अब नग्न हो तो माने कि जय महाराज।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या... ? खोटी श्रद्धा मिट जायेगी। तुम्हारे पास पैसे बहुत हैं। बिक गये तो क्या है?

**मुमुक्षु :** जल्दी छपाओ ऐसा कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो कहते है न कब के। **सुद्ध ग्यानकै देह नहि,** अरे! चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा में राग नहीं, वहाँ देह कहाँ आयी? कहते हैं। राग-विभाव वहाँ नहीं, वहाँ देह तो जड़ है, वह आत्मा में है नहीं। इसलिए देह नग्नपने का लिंग, वह आत्मा का नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **सुद्ध ग्यानकै...** आत्मा शुद्ध ज्ञानमय है। चैतन्य के सूर्य का स्वभाव अकेला भरा है। चैतन्य का सूर्य है वह तो। अन्ध जड़ परमाणु उसमें कहाँ थे? वह तो मिट्टी धूल है। यह देह है और शरीर है, ऐसा जाननेवाला कौन? वह तो चैतन्य है। देह को कहाँ खबर थी कि मैं इस जगत का कौन तत्त्व हूँ? आहाहा! जिसने प्रसिद्ध किया ज्ञान ने (प्रसिद्ध किया) कि यह देह है, यह देह है। यह मुझमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? **मुद्रा भेष न कोइ।** लो। आकृति और वेश आदि वह द्रव्यलिंग मोक्ष का कारण नहीं। **तातै कारन मोखकौ, दरबलिंग नहि होइ।** यह नग्नपना और बाह्य साधु की क्रिया २८ मूलगुण की, वह मुक्ति का कारण नहीं। वह द्रव्यलिंग आत्मा में है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इससे वापस कितने ही ऐसा कहे, द्रव्यलिंग उसमें नहीं, फिर लिंग बाहर का चाहे जो हो। ऐसा भी नहीं है। आहा! यह तो बहुत आता है न, यह वह नट कौन? ऐलाची नट... नट। ऐलाचीकुमार। उसे नाचते-नाचते केवलज्ञान हो गया डोरी के ऊपर।... सस्ता सौदा है। पण्डितजी कहते हैं, बराबर है। बापू! मार्ग केवलज्ञान... अरे! सम्यग्दर्शन का मार्ग कोई अपूर्व है। यह साधारण चीज़ है नहीं और चारित्र तो इससे अनन्तगुना पुरुषार्थ है और केवलज्ञान तो अनन्त अनन्तगुना पुरुषार्थ से होता है। वह कहीं सादा सौदा (नहीं है), पण्डितजी कहते हैं न, सादा सौदा हो गया। बात सच्ची है। समझ में आया? आहाहा! आज तो एक देखा। यहाँ तो कहते हैं, **ऐसी महिमा ज्ञानकी निहचै है घटमांहि, मूरख मिथ्यादृष्टिसौं सहज विलोकै नांहि...** अपना स्वभाव ज्ञाता-आनन्दकन्द प्रभु... मिथ्यादृष्टि उस ओर की नजर से देखता नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १४४, भाद्र शुक्ल ३, मंगलवार, दिनांक २४-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद १११ से ११३**

समयसार नाटक, सर्वविशुद्धि द्वार। १११ पद का अर्थ बाकी है।

★ ★ ★

## काव्य - १११

**मुक्ति का मूल कारण द्रव्यलिंग नहीं है** (दोहा)

**दरबलिंग न्यारौ प्रगट, कला वचन विग्यान।**
**अष्ट महारिधि अष्ट सिधि, एऊ होहि न ग्यान।।१११।।**

**शब्दार्थ:-दरबलिंग=बाह्य वेष। प्रगट= स्पष्ट। एऊ=यह।**

**अर्थ:-बाह्य वेष जुदा है, कला-कौशल जुदा है, वचन-चातुरी जुदा है, अष्ट महाऋद्धिएँ[१] जुदी हैं, सिद्धिएँ[२] जुदी हैं और ये कोई ज्ञान नहीं हैं।।१११।।**

### काव्य-१११ पर प्रवचन

**दरबलिंग न्यारौ प्रगट, कला वचन विग्यान।**
**अष्ट महारिधि अष्ट सिधि, एऊ होहि न ग्यान॥१११॥**

क्या कहते हैं ? बाह्य वेश अलग है। शरीर का वेश मुनि का या श्रावक का या क्षुल्लक आदि का, वह वेश तो भिन्न चीज़ है, वह कहीं आत्मा नहीं और उसमें ज्ञान भी नहीं। कला-कौशल भिन्न है। संसार की चतुराई कला, उसकी चतुराई भी भिन्न चीज़

१. अष्ट ऋद्धिएँ -
(दोहा) अणिमा महिमा गरमिता, लघिमा प्राप्ती काम।
वशीकरण अरु ईशता, अष्ट रिद्धि के नाम।।
२. अष्ट सिद्धिएँ - आचार, श्रुत, शरीर, वचन, वाचन, बुद्धि, उपयोग और संग्रह संलीनता।

है। वह कहीं आत्मज्ञान नहीं। ६४ कला आती है न शास्त्र में। ७२ कला और... वह सब कहीं आत्मा नहीं, वह कहीं ज्ञान नहीं। वह तो सब उपाधि का भाव है। आहाहा! वचन चातुर्य अलग है। **वचन विग्यान....** वाणी को बोलने की पद्धति आती हो, व्याख्यान करना आता हो, बोलते हों, वह वस्तु अलग है। वह कहीं आत्मा और ज्ञान नहीं। महा अष्ट ऋद्धि, वह अलग है। कोई ऋद्धि प्रगट हो... नीचे आठ नाम हैं।

**अणिमा**—कोई ऋद्धि प्रगटे और शरीर को छोटा बना दे, वह अलग चीज़ है। वह कहीं आत्मा और ज्ञान नहीं। लोगों को जिसमें चमत्कार लगे कि ऐसा शरीर छोटा बना दे, बड़ा बना दे, ऐसा बना दे। वह कहीं आत्मा नहीं और वह कहीं ज्ञान नहीं। उसका नाम ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। ज्ञान तो भगवान आत्मा में है, वहाँ दृष्टि करे और ज्ञान हो, उसे ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? कि जिस ज्ञान में अतीन्द्रिय आनन्द के साथ ज्ञान हो, उसे ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? **अणिमा।**

**महिमा**—मोटा रूप धारण करे। उसका आया था न अपने विष्णुकुमार का। बड़ा रूप धारण किया। वह कहीं ज्ञान नहीं, वह कहीं आत्मा नहीं, वह कहीं धर्म नहीं। अरे! लाख योजन का विशाल शरीर बनाये, लोगों को ऐसा लगे कि आहाहा! भारी धर्मी! यह धर्म नहीं, कहते हैं। समझ में आया? **गरिमा**—बड़ा भारी शरीर बनावे। हो ऐसे छोटा, परन्तु भारी बनावे। वजन जोरदार... वह कहीं आत्मा और वह कहीं धर्म नहीं। वह तो बाहर की ऋद्धि पुण्य की स्थिति है। आहाहा!

**लघिमा**—ऐसा कुछ है। भाई ने निकाला था न। लिखा है? लघिमा क्या?

**मुमुक्षु : लघि** अर्थात् छोटा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह छोटा तो अणिमा में आ गया। अणिमा में छोटा शरीर... परन्तु यह लघिमा में छोटा शरीर करके कोई ऐसे पर्वत में प्रवेश करना हो तो प्रवेश कर सके। वह कुछ वस्तु नहीं। वह तो अनन्त बार अभव्य को भी होता है। **प्राप्ति...** उसका कुछ पढ़ा था न! तत्त्वार्थ राजवार्तिक में। मोटा। प्राप्ति का अर्थ 'मोटा' किया है कुछ, नहीं? मोटा... आहार आदि बने, आहार औषध की भाँति काम करे। वह कहीं आत्मा नहीं, वह कहीं धर्म नहीं। वह तो बाहर की पुण्य की सामग्री है। आहाहा! **काम**—

इच्छे तत्प्रमाण हो पुण्य के कारण से, ऐसी एक लब्धि होती है। वह कहीं वस्तु नहीं।

**वशीकरण...** यह वशीकरण नहीं करते? वश करे, आधीन करे, फलाना। वह क्या चीज़? वह कहीं आत्मा और ज्ञान नहीं। वशीकरण। आधीन करे न तुम्हारे, देखो न! घनाते हैं और वह करते हैं। चलता है न यह। पीला वस्त्र पहने। रजनीश। रजनीश, नहीं? वह कुछ ज्ञान और आत्मा नहीं वह कोई। वह तो बाहर का वेश है। आहाहा! उसमें भी आया है साधु का आज जगवाणी में। मैं ऐसे विश्व को देखना चाहता हूँ कि जिसमें युद्ध न हो। यह युद्ध है तब ... युद्ध, युद्ध। यह विश्व जिसमें नाना ऊपर ऐसा करे और फलाना ऐसा करे। अरे! भाई, बापू! यहाँ है आत्मा। उसे बाहर में देखना है। बहुत देश देशपने में स्वयं से रहे और किसी के ऊपर आक्रमण न करे, ऐसा विश्व मैं देखना चाहता हूँ। आहाहा! अरे भगवान! वहाँ ऐसी चीज़ तो अनन्त बार की। वह कहीं आत्मा है और वह आत्मा का ज्ञान है और वह कल्याण का कारण है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

**ईशता—**ईश्वरता। बड़ी प्रभुता हो, बड़ा देव हो, बड़ा राजा हो, वह कहीं ज्ञान नहीं। **अष्ट रिद्धिके नाम...** है। ...लो सब। उसमें विस्तार आता है। कल फिर देखा था। किसमें? राजवार्तिक में। अष्ट ऋद्धि वह कहीं ज्ञान नहीं। समझ में आया? वह आत्मा नहीं, वह धर्म नहीं और धर्म के लिये ऐसा उसे होता है, ऐसा नहीं। यह तो सब पुण्य की ऋद्धि वह सामग्री है, भटकने में निमित्त है। आहाहा! एक के बड़े लाख रूप करे, लाख को फिर समेटकर कंथवा जैसा हो जाये, वह बाहर की चीज़ है। वह कहीं आत्मा नहीं, वह कहीं ज्ञान नहीं।

आठ सिद्धि। है न? **आचार—**ऐसा आचार हो, बाहर का आचरण। वह कहीं बाहर का आचरण वह कहीं आत्मा नहीं, ज्ञान नहीं। आहाहा! अपवास करे महीने-महीने के, छह-छह महीने के अपवास, आचरण की क्रिया ऐसी करे। सिद्धि, जिससे सिद्धि दिखाई दे। प्राप्ति हो। वचन दे वहाँ पुत्र हो, फलाना हो। अब यह क्या चीज़ है? आहाहा! **श्रुत...** यह श्रुत—शास्त्र जाना हो। एक पद में से बहुत पद को जानने की कल्पदृष्टि हो, ऐसी एक लब्धि है। यह क्या चीज़ है? आहाहा! समझ में आया? **शरीर...** शरीर की कान्ति और शरीर की समृद्धि सुन्दर मिले, एक-एक अवयव अनुकूल

हों जो दुनिया देखकर प्रसन्न हो। वह कहीं चीज़ है? वह कहीं आत्मा है और उसका नाम कुछ ज्ञान है? और उसका नाम कहीं धर्म है? आहाहा!

**वचन...** ऐसा वक्ता हो, लाखों लोगों को ऐसे रंजन कर दे। करोड़ों लोगों को रंजन करे, परन्तु वह कहीं आत्मा है? वह कहीं ज्ञान है? आहाहा! कठिन बात, भाई! **बुद्धि...** यह बाहर की बुद्धियाँ यह वकालत की और यह डॉक्टर की, यह जज की। तुम्हारे क्या? ऑडिटर की। दु:खी होने की बुद्धि है, कहते हैं। ऐ पूनमभाई! यह तुम्हारी बुद्धि यह खिड़की-खिड़की में और यह मकान बनाना और ढींकणा करना। परन्तु यह कहे न, ऐसा हो तो होता है, ऐसा हो तो होता है। अब पूछकर बैठे हो न थोड़ा। यह बुद्धि नहीं। यह तो भटकने की बुद्धि है। मलूकचन्दभाई!

**उपयोग।** आहाहा! उपयोग काम करता है यह शास्त्र आदि में, वह भी आत्मा नहीं, वह ज्ञान नहीं, कहते हैं। बाहर का उपयोग है। ऐसी धारणा हो तो ऐसे फट... फट... फट काम करे। यह तो ऐसे, इसके बाद ऐसे... यह क्या कुछ वस्तु है वह? **संग्रह संलीनता...** किसी चीज़ का संग्रह करने की बुद्धि, ऐसी लब्धि होती है कि संग्रह कर जाने। इकट्ठा कर जाने। यह नहीं था वह मोहम्मद छेल? भाई मोहम्मद छेल देखा था।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह अफीम के पिण्ड... उमराला में आया था। दुकान में अफीम के गोटे को हाथ लगाया। उड़ाकर बाहर फेंका, चला गया। मुसलमान था। अरे, यह अफीम के पिण्ड कहाँ गये? उठ गये। ऐसी एक लब्धि है। मुसलमान था। मोहम्मद छेल। रेल में बैठा हो तो वह जरा एक मास्टर के पास जाकर टिकिट को हाथ लगाये। ऐसे बाहर निकले तो सब टिकिट बिना का हो। वहाँ बोटाद में मिला था। (संवत्) १९८० के वर्ष में चातुर्मास... साथ में निवास था। स्वयं ऐसे बैठा था। वह पिंजारा था मूल तो, परन्तु ऐसा कहीं आ गया हाथ। उसमें क्या वस्तु है? समझ में आया? वह कहीं ज्ञान है? वह कहीं आत्मा है? वह कहीं आत्मा को शान्ति का—धर्म का कारण है? आहाहा!

अभी कहा न कि आया था। जादूगर नहीं, के. लाल? के. लाल वहाँ था। भाई

देखने गये थे। जरा दस रुपये का टिकिट। कहो, समझ में आया? नहीं, नहीं, कोई बातें करे तो सुना हो या नहीं? यह सच्ची बात है। वहाँ गये थे। सेठिया कहलाये न ऐसे। जादूगर, अपने एक बड़ा जादूगर है।

**मुमुक्षु :** के. लाल।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** के. लाल अर्थात् कान्तिलाल। छोटी उम्र का रूपवान देखो तो। बगसरा में अपने यहाँ जगजीवनभाई बाबूचन्द नहीं? गुणचन्दभाई का साला। काका का—काकाजी का...

**मुमुक्षु :** काकाजी का पुत्र।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। वह आया। लाखों पैदा करे। जापान में एक बार तीन घण्टे में... क्या कहलाता है वह? ऐसा बतावे।

**मुमुक्षु :** टेलीविजन।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** टेलीविजन पर बताया। सरकार ने पाँच लाख दिये। तीन घण्टे के पाँच लाख। परन्तु लोग देखनेवाले बारह करोड़, हों! ऐसे बाहर से।

एक दिन आया। अभी जब जूनागढ़ गये थे न। .... एक-एक रात्रि के पाँच - छह-छह हजार की आमदनी। अपना जैन है। आया, बैठा। कहे, 'महाराज! यह मेरा सब धतंग है।

**मुमुक्षु :** आपके पास तो धतंग ही कहलाये न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मेरे पास क्या कहे? लाखों रुपये... ऐसा पूरा उसमें और बड़े-बड़े कार्यवाहक उसके पास आवे और फिदा हो जाये। यह जादूगरी का जोर है न! एक तो कहे, बड़ा व्यक्ति मिलने आया और मैंने हाथ ऐसे किया हाथ। काँपने लगा। सब धतंग, हों! आहाहा! वह तो यहाँ तक कहता था। मैंने कहा, भाई! यह तेरा पुण्य खा लिया जाता है। प्रेमचन्दभाई! यह तो पुण्य कोई ऐसा है, वह खा लिया जाता है। क्योंकि यह सब जादू का है। हमारा जादू है और यह रजनीश का जादू है। परन्तु हमको, स्त्री-पुत्रवाले हैं, हमारा जादूगर... वचन... वह क्या कहलाये? नजरबन्दी। हमको नजरबन्दीवाला कहे और वह जरा बाहर का त्यागी सही न, (इसलिए) उसकी शक्ति

होगी, ऐसा कहे। बाकी है सब जादूगर, कहे।

यह रजनीश उसके पास दो वर्ष से जादू सीखा है और वह भी जादूवाला है न सांईबाबा। बहुत मानते हैं न जैन-बैन कुछ... मुसलमान है। बहुत चलता है वह। दुनिया गहल-पागल है। कुछ भान नहीं होता। यहाँ कहते हैं कि वह सब चीज़ें पूर्व के पुण्य के कारण से बाहर दिखती है, वह कहीं धर्म और ज्ञानस्वरूप है, ऐसा नहीं। ऐसा करके हाथ करे और ऐसे बतावे यह चेन। यह नींबू लो। यह चीज़ें... परन्तु यह कहीं धर्म है? समझ में आया? ऐसे हाथ करके कुछ वह ऐसे बतावे। देखो, यह सोने की चेन। इसकी जैसे सोने की कड़ी बनाकर रखता हो तो तेरे घर में? ऐई! एकाध रखी हो और ऐसा बाह्य इस प्रकार से लोगों को बतावे। आहाहा! भारी चमत्कार। कहते हैं, वह ज्ञान नहीं, वह धर्म नहीं। यह आत्मा का आश्रय उसमें नहीं। आहाहा!

कहते हैं, वह कोई ज्ञान नहीं। ऐसा है न? **एऊ होहि न ग्यान...** यह ज्ञान अर्थात् आत्मा जिसे समझण कहते हैं, वह चीज़ नहीं। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान, वह कहीं ज्ञान नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। पठन पढ़े ग्यारह अंग और नौ पूर्व, वह कहीं ज्ञान नहीं। आहाहा! ज्ञान तो इसे कहते हैं कि जो चैतन्य भगवान ज्ञान की मूर्ति में अन्दर स्पर्श कर जो ज्ञानदशा आनन्दसहित आवे, उसे ज्ञान कहते हैं। भीखाभाई! आहाहा!

**मुमुक्षु :** यह बात मुद्दे की है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुद्दे की बात यह है।

**मुमुक्षु :** गुरु बिना कौन कहे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह बोले तो सही। आहा! **एऊ होहि न ग्यान...** यह १११।

११२। **आत्मा के सिवा अन्यत्र ज्ञान नहीं है।** यह समझण का पिण्ड प्रभु चैतन्य उसमें नजर करने से, उसका आश्रय करने से जो ज्ञान प्रगट होता है, आनन्दसहित प्रगट होता है, उसे ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! बोलना आवे और हजारों को ऐसे रंजन करना आवे न, इसलिए वह ज्ञान।—वह ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया?

★ ★ ★

## काव्य - ११२

आत्मा के सिवाय अन्यत्र ज्ञान नहीं है (सवैया इकतीसा)

भेषमैं न ग्यान नहि ग्यान गुरु वर्तनमैं,
मंत्र जंत्र तंत्रमैं न ग्यानकी कहानी है।
ग्रंथमैं न ग्यान नहि ग्यान कवि चातुरीमैं,
बातनिमैं ग्यान नहि ग्यान कहा बानी है।।
तातैं भेष गुरुता कवित्त ग्रंथ मंत्र बात,
इनतैं अतीत ग्यान चेतना निसानी है।
ग्यानहीमैं ग्यान नहि ग्यान और ठौर कहूं,
जाकै घट ग्यान सोई ग्यानका निदानी है।।११२।।

शब्दार्थ:-मंत्र=झाड़ना फूँकना। जंत्र=गण्डा-तावीज। तंत्र=टोटका। कहानी=बात। ग्रंथ=शास्त्र। निसानी=चिह्न। वानी=वचन। ठौर=स्थान। निदानी=कारण।

अर्थ:-वेष में ज्ञान नहीं है, महन्तजी बने फिरने में ज्ञान नहीं है, मन्त्र, जन्त्र, तन्त्र में ज्ञान की बात नहीं है, शास्त्र[1] में ज्ञान नहीं है, कविता-कौशल में ज्ञान नहीं है, व्याख्यान[2] में ज्ञान नहीं है, क्योंकि वचन[3] जड़ है, इससे वेष, गुरुता, कविताई, शास्त्र, मन्त्र-तन्त्र, व्याख्यान इनसे चैतन्यलक्षण का धारक ज्ञान निराला है। ज्ञान ज्ञान ही में है, अन्यत्र नहीं है। जिसके घट में ज्ञान उपजा है, वही ज्ञान का मूल कारण अर्थात् आत्मा है।।११२।।

### काव्य-११२ पर प्रवचन

भेषमैं न ग्यान नहि ग्यान गुरु वर्तनमैं,
मंत्र जंत्र तंत्रमैं न ग्यानकी कहानी है।

---

१-२. ये ज्ञान नहीं ज्ञान के कारण हैं।

३. वचन शब्द का प्रकार है, सो शब्द जड़ है, चैतन्य नहीं है।

**ग्रंथमैं न ग्यान नहि ग्यान कवि चातुरीमैं,**
**बातनिमैं ग्यान नहि ग्यान कहा बानी है॥**
**तातैं भेष गुरुता कवित्त ग्रंथ मंत्र बात,**
**इनतैं अतीत ग्यान चेतना निसानी है।**
**ग्यानहीमैं ग्यान नहि ग्यान और ठौर कहूं,**
**जाके घट ग्यान सोई ग्यानका निदानी है॥११२॥**

**भेषमैं न ग्यान...** बाबा, योगी, नग्नपना धारण किया, वह कहीं ज्ञान नहीं। और उसे लोग त्यागी देखकर वह बोले उसका ज्ञान। ऐसा कि वह लोगों को पसन्द आये। समझ में आया? वह ज्ञान... लोगों को ऐसा लगे कि यह त्यागी है, इसलिए इसका सच्चा होगा। और श्रीमद् जैसे गृहस्थाश्रम में पगड़ी पहनकर बैठे हों, परन्तु वे बोले वह सच्चा ज्ञान है अन्दर उन्हें। यह सब त्यागी और बड़े फूंकारा देकर बैठे हों नग्न होकर, इससे यह बोले इसलिए ज्ञान है।—वह ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान तो भगवान आत्मा ज्ञान का पिण्ड प्रभु है। उसमें से धारावाही परिणति प्रगट हो, उसे मोक्ष के कारणरूप ज्ञान कहा जाता है। वह उसका ज्ञान उसे हितकर है। यह सब संसार का ज्ञान और जानपना अहितकर है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** धारावाही ज्ञान क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धारावाही ज्ञान, ध्रुव है, उसमें से प्रगट हो, वह अन्दर एकाकार ज्ञान धारावाही। ठीक कहा। ध्रुव चैतन्य का कन्द जो है प्रभु, उसमें दृष्टि देने से जो स्व का ज्ञान प्रगट हो, वह ज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात, भाई! यह बहियाँ पढ़े और पुस्तक पढ़े और शास्त्र पढ़े; इसलिए वह ज्ञान है, ऐसा नहीं, भाई! आहाहा! समझ में आया?

**भेषमैं न ग्यान नहि ग्यान गुरु वर्तनमैं। महन्तजी बने फिरने में ज्ञान नहीं है...** गुरु बड़े महन्त हो जाये, बड़े तिलक खींचे और यह हो, वह कहीं धर्म नहीं। वह तो बाहर के जड़ के वेश। आहाहा! महन्तजी बने फिरने में... हम तो महात्मा हैं। किसके महात्मा? आत्मा जो ज्ञानानन्द है, उसका आश्रय लेकर जो ज्ञान प्रगट हुआ हो, वह

महन्त है। हमने ऐसी परीक्षा दी है। बहुत-बहुत आता है न परीक्षा शास्त्र की। मन्त्र में ज्ञान नहीं। लो, झाड़नेवाला, फूँक का, यह सब मन्त्र। यह बिच्छू को उतारने, सर्प को उतारने, भूत लगा हो उसे, वह मन्त्र-फन्त्र, वह ज्ञान नहीं, वह धर्म नहीं। वह तो जगत के मुफ्त के पाखण्ड हैं। समझ में आया? मन्त्र-जन्त्र गण्डा ताबीज करते हैं न? नहीं बाँधते? उसे करके ताबीज बाँधे न। अब उसमें ज्ञान कहाँ? वह तो जगत की भ्रमणा है। आहाहा! उसे बहुत आता है, हों.... फलाना और ढींकणा, बहुत ज्ञानी है। मन्त्र... मन्त्र।

यह अभी जयपुर में थे न वे मोहनलाल बड़जात्या हैं न एक। उनका पुत्र वहाँ रहता है उसरूप से। अरविन्द। अरविन्द घोष के पास। एक तो तुम्हारा दामाद। ताराचन्द और नाम क्या? ताराचन्द। हाँ, उसके भाई का दामाद। दो-तीन करोड़ रुपये हैं। यह बात रुचती नहीं। सुने आया तो सही। उसके पिता भी आये हुए उसके घर में वहाँ। परन्तु जहाँ बात निकाली। सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्हें एक समय में तीन काल का ज्ञान है, वे कहते हैं, वह सच्चा। वहाँ उठ गये। उनके पिता को कुछ ठीक होगा। वहाँ जयपुर लेकर आये बड़ा थोकड़ा मन्त्र का। ऐई! तुमको तो खबर होगी यह? नहीं खबर? मोहनलाल। मन्त्र... मन्त्र... मन्त्र। अब थोथा मन्त्र क्या है यह? फलाना मन्त्र और इसका मन्त्र और इसका मन्त्र और... यह भगवान 'णमो अरिहंताणं' मन्त्र, यह मन्त्र यथार्थ में नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो विकल्प है। आहाहा! तो यह दूसरे मन्त्र-फन्त्र की तो बात (क्या करना?) आहाहा!

लोगों को बाहर की ऐसी... कुछ मन्त्र आता है? फलाना आता है? तन्त्र आता है? उसकी व्याख्या करते हैं, हों तन्त्र-टोटका। टोटका अर्थात् क्या? टोटका है न? क्या कहते हैं उसमें? होगा कोई। हिन्दी भाषा है। मन्त्र, जन्त्र।

**मुमुक्षु :** मन्त्र-तन्त्र....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, परन्तु उस तन्त्र का अर्थ टोटका किया है। टोटका अर्थात् क्या? तुम्हारी हिन्दी भाषा में आता है कुछ?

**मुमुक्षु :** नजर उतारने में....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। वह सब नजर उतारने... यह सब करते हैं न आँख में,

नहीं यह बहुत... ऐसा हो तो ऐसा करे, ऐसा खून झरे और फलाना हो। आँख में बहुत लाली हो न सब। ऐसा करे, झाड़ू फेरे। अब थोथा है, उसमें है क्या...? समझ में आया? मन्त्र-जन्त्र-तन्त्र में ज्ञान की बात नहीं। वह धर्म का सच्चा ज्ञान नहीं। आहाहा!

**ग्रंथमैं न ग्यान...** यह समयसार पुस्तक, इसमें ज्ञान कहाँ है? यह तो जड़ है, मिट्टी है।

**मुमुक्षु :** यह सब सिद्धान्तशास्त्र न्याय क्या है वह?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सिद्धान्तशास्त्र सब जड़। वहाँ कहाँ ज्ञान था? ज्ञान तो आत्मा में है।

**मुमुक्षु :** महाराज! फिर पढ़ना, सुनना या नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पढ़ने, सुनने का विकल्प होता है, परन्तु ग्रन्थ है, वह जड़ है। ग्रन्थ में ज्ञान नहीं। कितने ही कहते हैं न? जिनवाणी... प्रतिमा में तो कुछ ज्ञान नहीं और जिनवाणी में तो भगवान का भरा हुआ ज्ञान है। केवली की वाणी है। एकदम झूठी बात है। अब ग्रन्थ में ज्ञान कैसा? वह तो जड़ मिट्टी है, धूल है। जिनवाणी, वह वाणी तो जड़ है, अजीव है। उसमें ज्ञान कैसा? ऐई!

भाई ने बहुत लिखा हुआ है। भगवानदास नाम पण्डित... ताराचन्द और पण्डित है न तुम्हारे वह हिम्मतलाल और चम्पकलाल।

**मुमुक्षु :** चम्पालाल।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, चम्पालाल न। शब्दों में ज्ञान है जिनवाणी में। प्रतिमा में कहाँ ज्ञान है, इसलिए वह नहीं। परन्तु वाणी और प्रतिमा दोनों एक समान जड़ हैं। वाणी में भी ज्ञान नहीं और प्रतिमा में भी ज्ञान नहीं।

**मुमुक्षु :** तो शुभभाव क्यों कहा है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुभभाव अर्थात् राग। जब स्वरूप में स्थिर नहीं हो सका हो, तब अशुभ से बचने के लिये उस काल में उस प्रकार का भाव होता है इतना, परन्तु है हेय। वीतराग न हो, तब तक वह वाणी को भी पूज्य मानता है।

**मुमुक्षु :** होता है तो फिर करना किसलिए?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन करे? वह आता है अन्दर। वीतरागता न हो, वहाँ ऐसा शुभराग आये बिना रहता नहीं।

**मुमुक्षु :** करना या नहीं करना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करे कौन? आवे उसे जानना, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है भाई! आहाहा!

**ग्रंथमैं न ग्यान नहि...** वाणी में ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। इसलिए चैत्य है, वह वाणी, इसलिए पूजनीय है, ऐसा नहीं। वह तो उसमें निमित्तपना है न वाणी में स्व-पर वार्ता कहने की शक्ति है। ज्ञान उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? इससे वह व्यवहार से पूज्य कही जाती है। निश्चय से वह पूज्य है ही नहीं। आहाहा! निश्चय से तो ज्ञानानन्द भगवान वह पूज्य है। समझ में आया? भारी कठिन काम, भाई! जहाँ चैतन्यमूर्ति प्रभु विराजता है, वहाँ ज्ञान है और उसमें नजर डालने से ज्ञान होता है। कहीं ज्ञान बाहर से आता है? आहाहा! पढ़-गुनकर विचारकर ज्ञान हुआ, वह ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा! यह पढ़ा और वाँचन किया और धारण किया, वह ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। पाटनीजी! आहाहा! जिस ज्ञान के आश्रय में आत्मा न आवे और जिस ज्ञान में अतीन्द्रिय आनन्द साथ में न हो, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! अरे! उसे सत्यस्वरूप क्या है, उसकी खबर नहीं। ऐसे का ऐसा भटका भटक। बाहर से यहाँ से होगा और यहाँ से होगा और यहाँ से... वाणी सरस्वती वीतराग की वाणी, कहते हैं कि वह ग्रन्थ—आगम में ज्ञान नहीं। सेठी! यह तो ऐसा अजर प्याला है।

**ग्रंथमैं न ग्यान नहि ग्यान कवि चातुरीमैं,...** ऐसे शीघ्र कवि बोले और कविता बनावे। ऐसी बनावे परन्तु हू-ब-हू। वह कविपना कहीं ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? **कविता-कौशल में ज्ञान नहीं है।** आहाहा! होशियार कवि ऐसा हो। शीघ्र कवि। अपना है न प्रेमचन्दभाई का पौत्र? कमल... कमल... रमेश, बनाता है न गायन-कविता। एक बार दीक्षा लेकर गये थे (संवत्) १९७० में जूनागढ़। वह दिशा को बाहर गये हुए थे, बड़े पत्थर पड़े थे। वहाँ एक व्यक्ति ऐसा मिला कि .... सीधे जोड़ दिया।

मूलचन्दभाई कहे, शीघ्र कवि लगता है। (संवत्) १९७० की बात है पोष महीना। शीघ्र कवि क्या कि यह साधु निकले न, उसकी मजाक करने, वह गायन बनावे। गायन ऐसी भाषा ऐसी लिख जाने, उसमें क्या है? वह तो शीघ्र कवि है ऐसे होते हैं कि जिसके... देखो न शुद्धेश्वरी और बहुत अच्छे। यहाँ नहीं आये थे?.... शुद्धेश्वरी यहाँ आये थे। बहुत नरम व्यक्ति था, हों! बेचारा मर गया। यहाँ आये थे न भाई? आये थे। पुस्तक दे—ले हुई। परन्तु वह कहीं ज्ञान नहीं। कविता बनाने की ताकत, इसलिए वह ज्ञान (ऐसा नहीं)। आहाहा!

ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जो चैतन्यप्रभु अकेला ज्ञान में चैतन्य में समझण का पिण्ड है, उस स्पर्श कर, उसका आश्रय लेकर जो ज्ञान प्रगट हो, वह ज्ञान मोक्ष का कारण है। आहाहा! अभिमान आ जाये बहुतों को तो जानपना जरा अधिक हो, अपने को ज्ञान। बापू! वह तो मर जाने का रास्ता है। समझ में आया? आहाहा! शास्त्र का पठन हो और पठन का उसे अभिमान आ जाये। अपने को आता है, हों! उसे आता नहीं, लो। बोलना भी आता नहीं और हम तो फटाफट जवाब देते हैं। भाई! यह कहीं ज्ञान का सम्बन्ध नहीं बापू! पुस्तक बना जाने, वह कहीं ज्ञान नहीं। ऐई जेठाभाई! देवीलालजी! आहाहा! भगवान ज्ञान का चैतन्य पुँज-पिण्ड, उसमें से दशा प्रगट हो, उसका नाम ज्ञान है। भले दूसरी जानकारी कम हो, बोलना न आता हो, समझाना न आता हो। आहाहा! परन्तु अपना काम करना आता हो, वह ज्ञान। आहाहा! समझ में आया?

**ग्रंथमैं न ग्यान नहि ग्यान कवि चातुरीमैं,** कविता के कौशल्य में ज्ञान नहीं। **बातनिमैं ग्यान नहि...** व्याख्यान में। व्याख्यान में कुछ ज्ञान नहीं। नीचे स्पष्टीकरण किया है। वह ज्ञान का कारण है। कारण अर्थात् निमित्त है। निमित्त-नैमित्तिक। वह ... कहाँ कारण है? कारण तो आत्मा चिदानन्द। समझ में आया? अरे, निराश्रय भगवान में पर के आश्रय बिना का तत्त्व... अशरण आया था न! जिसे पर का कुछ शरण नहीं, ऐसा स्वतन्त्र शरणभूत स्वरूप। जिसे तीन लोक के नाथ का भी आधार नहीं, ऐसा भगवान आत्मा है। ऐसा आत्मा है, इस प्रकार से जब तक न बैठे, तब तक उसे आत्मा बराबर बैठा नहीं। वह मिथ्यात्व में है। पाटनीजी! ऐसी बात है। आहाहा!

**बातनिमैं ग्यान नहि ग्यान कहा बानी है।** वाणी में ज्ञान है कहीं? ऐसा कहते हैं।

**चैतन्य लक्षण का धारक ज्ञान निराला है,...** लो। कविता शास्त्र। आया। है न, यह रखा है। ज्ञान नहीं, वाणी है वाणी। वाणी कहो, बोलना—भाषा कहो या शास्त्र लिखे हुए कहो, उसमें कुछ ज्ञान नहीं। अरूपी प्रभु ज्ञान, वह कहीं रूपी में आ जाता होगा? बहुत लोग कहे, देखो यह बोला जाता है, उसमें ज्ञान आता है या नहीं? धूल भी नहीं आता, सुन न! वह वाणी तो जड़ है। और वह वाणी है, तब यहाँ ज्ञान होता है या नहीं? नहीं? तब सुनना किसलिए? अरे भाई! यह जब सुनने का विकल्प हो, तब आवे, परन्तु उससे ज्ञान होता है, ऐसा है नहीं। ऐसा वीतराग का मार्ग है। आहाहा! अरे! इसकी श्रद्धा में, अभी बाह्यलक्षी ज्ञान में भी यथार्थ में न बैठे... बाह्यलक्षी, वह तो परलक्षी ज्ञान है सबका, उसमें यथार्थ ज्ञान न बैठे, उसे यथार्थ तत्त्व दृष्टि में आवे कहाँ से? आहाहा! अब यह अनन्त काल से ऐसे का ऐसा भटकता है बेचारा। भिखारी रंक होकर दबैल। कोई मुझे दे और आशीर्वाद मिल जाये न किसी का तो मुझे आत्मा का ज्ञान मिल जाये।

**चैतन्य लक्षण का धारक ज्ञान निराला है,...** लो। वाणी में ज्ञान नहीं। वाणी अर्थात् शास्त्र कहो या वाणी—बोलना कहो, उसमें कुछ ज्ञान है नहीं। **तातैं भेष गुरुता कवित्त ग्रंथ मंत्र बात, इनतैं अतीत ग्यान चेतना निसानी है।** आहाहा! चैतन्य भगवान में ज्ञान है, चेतना जिसका लक्षण है, उसमें से जो ज्ञान आवे, उसे ज्ञान कहा जाता है। उसे सम्यग्ज्ञान का अंश कहा जाता है। आहाहा! **ग्यानहीमैं ग्यान नहि ग्यान और ठौर कहूं,...** जिसके घट में ज्ञान उपजा, अन्तर ज्ञान में से ज्ञान उपजा, वह ज्ञान। **वही ज्ञान का मूल कारण अर्थात् आत्मा है।** उस ज्ञान का कारण तो आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! अन्त में मोड़कर वहाँ लाया। जहाँ जा, तू है वहाँ जा। वहाँ आगे ज्ञान होगा। बाकी बाहर में बहुत विचार और बहुत संकल्प-विकल्प करे और बहुत पढ़े और बहुत धारे, इसलिए ज्ञान हो जाये, (ऐसा नहीं)। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ज्ञान में से ज्ञान आता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यही कहते हैं और उस ज्ञान का मूल कारण आत्मा, ऐसा। है न?

**घट ग्यान सोई ग्यानका निदानी है।** उस ज्ञान का निदान आधार तो आत्मा है, कहते हैं। बाहर से कुछ ज्ञान आता नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** दोनों—शास्त्र और वाणी ज्ञान नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वाणी में ज्ञान नहीं, शास्त्र में भी ज्ञान नहीं।

**मुमुक्षु :** ज्ञान का कारण है न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कारण भी नहीं। जड़ कारण होगा ज्ञान का ? मूलचन्दभाई ! यह तो अगम्य बातें हैं।

**मुमुक्षु :** यह कारण लिखा है न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कारण लिखा है, वह सब समझाने के लिये। सब बहुत भड़क न जाये इसलिए। कारण-फारण कैसा ? निमित्तकारण, कारण ही नहीं। बात ऐसी है, भाई ! यह सम्यग्ज्ञान के अंश का कारण प्रभु आत्मा, उसके आश्रय बिना सच्चा ज्ञान तीन काल में हो नहीं सकता। आहाहा ! भगवान की वाणी में ज्ञान... यह परमात्मप्रकाश में कहा है कि वाणी से ज्ञान नहीं होता, शास्त्र से ज्ञान नहीं होता। तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि खिरी और समवसरण में सुनी, उससे ज्ञान नहीं होता।

**मुमुक्षु :** एक जगह उससे ज्ञान होता है, ऐसा लिखा है न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह लिखा, वह निमित्त का कथन है। व्यवहार बीच में आता है, वह जानने में उसे व्यवहार कहा। आहाहा !

समवसरण में यह अनन्त बार गया है। भगवान की वाणी सुनी है अनन्त बार। पूजा की है अनन्त बार समवसरण में। मणिरत्न के दीपक, कल्पवृक्ष के फूल, साक्षात् भगवान सामने बैठे हों। जय प्रभु ! यह सब विकल्प और राग है, कहते हैं। ऐ भगवानदासजी ! ऐसा मार्ग है। आहाहा ! साधारण लोगों को बेचारों को तो हाय... हाय ! यह सब जो करनेयोग्य है, वह तो सब उत्थापित कर देते हैं। बात तुम कहते हो, वह बराबर है, परन्तु फिर इसका साधन ? भगवान की भक्ति करना, शास्त्र वाँचना, पूजा करना। अरे भगवान ! यह तो सब बातें हैं। क्या कहें ! आहाहा ! पूरा साधन नाम का गुण तुझमें पड़ा है। वह कारण होकर कार्य ज्ञान में आवे, उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। डाह्याभाई ! आहाहा !

**ज्ञान के बिना वेषधारी विषय के भिखारी हैं।** देखो, अब जरा....

**मुमुक्षु :** कठिन बात आती है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जरा कठिन बात है, परन्तु अब है तो... आहाहा! ४६ कलश है न नीचे। प्रश्न तो इसका लिया है। उसका ही है। फिर आयेगा उसका। **ज्ञान के बिना वेषधारी विषय के भिखारी हैं।** आहाहा! क्या कहते हैं?

★ ★ ★

## काव्य - ११३

### ज्ञान के बिना वेषधारी विषय के भिखारी हैं

(सवैया इकतीसा)

**भेष धरि लोकनिकौं बंचै सौ धरम ठग,**
**गुरू सो कहावै गुरुवाई जाहि चहिये।**
**मंत्र तंत्र साधक कहावै गुनी जादूगर,**
**पंडित कहावै पंडिताई जामैं लहिये।।**
**कवित्तकी कलामैं प्रवीन सो कहावै कवि,**
**बात कहि जानै सो पवारगीर कहिये।**
**एतौ सब विषैके भिखारी मायाधारी जीव,**
**इन्हकौं विलोकिकै दयालरूप रहिये।।११३।।**

**शब्दार्थ:-बंचै=ठगै। प्रवीन=चतुर। पवारगीर=बातचीत में होश्यार-सभाचतुर। बिलौकि=देखकर।**

**अर्थ:-जो वेष बनाकर लोगों को ठगता है, वह धर्म-ठग कहलाता है, जिसमें लौकिक बड़प्पन होता है, वह बड़ा कहलाता है, जिससे मन्त्र-तन्त्र साधने का गुण है, वह जादूगर कहलाता है, जो कविताई में होश्यार है, वह कवि कहलाता है, जो बात-चीत में चटपटा है, वह व्याख्याता कहलाता है। सो ये सब कपटी जीव विषय के**

**भिक्षुक हैं, विषयों की पूर्ति के लिये याचना करते फिरते हैं, इनमें स्वार्थ-त्याग का अंश भी नहीं है। इन्हें देखकर दया आनी चाहिए।।११३।।**

काव्य-११३ पर प्रवचन

**भेष धरि लोकनिकौं बंचै सौ धरम ठग,...** पण्डितों का वेश रखे, साधु का वेश रखे, वह **भेष धरि लोकनिकौं बंचै...** वह धर्मठग है। आहाहा! अरे! अन्तर में आत्मा के आनन्द का आश्रय लिये बिना ज्ञान नहीं और बाहर के वेश से दूसरे को अधिकपने मनवाना है। हम कुछ दूसरे से अधिक हैं, ऐसा मनवाना है, वह ठग है, कहते हैं। आहाहा! गजब बात है!

**मुमुक्षु :** सत्य बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सत्य बात यह है। हमारे हीराभाई प्रसन्न हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा! **जो वेष बनाकर लोगों को ठगता है।** गृहस्थ का वेश हो तो लोग ठगायें नहीं। वह तो कहे, है तो अपने जैसा। वेश में जहाँ अन्तर पड़ा, वहाँ दूसरे को भी अधिकरूप से मनवाने का भाव और वे अधिकपने माने। आहाहा!

**गुरू सो कहावै गुरुवाई जाहि चहिये। जिसमें लौकिक बड़प्पन होता है, वह बड़ा कहलाता है।** बड़ा प्रमुख... संघवी... संघी क्या कहलाये? संघपति। बड़े-बड़े पद आवे ऐसे। अरे भाई! यह क्या बापू! यह कहीं महत्ता की चीज़ है? समझ में आया? **गुरू सो कहावै गुरुवाई जाहि चहिये।** उसे महत्ता चाहिए है कहीं, कहते हैं। आहाहा! आत्मा की महत्ता नहीं चाहिए। दुनिया में कहीं महत्ता, गिननेयोग्य गिने मुझे, मैं कुछ-कुछ हूँ, उसमें हूँ, जानपने में बड़ा हूँ। समझ में आया? फलाना में बड़ा हूँ, वक्ता वाचाल दूसरों से मैं जोरदार हूँ, मेरे जैसी वचनकला दूसरे के पास नहीं। अरे! यह महत्ता तो जगत की है भटकने की। आहाहा! समझ में आया?

**मंत्र तंत्र साधक कहावै गुनी जादूगर,...** लो। देखो, जादूगर आया। मन्त्र आवे, तन्त्र आवे। आया था न उसमें तन्त्र—टोटका का। साधने का गुण... हाँ, साध सके मन्त्र और विद्या, आहाहा! देवी हाजिर हो, देव हाजिर हो। धूल, वह क्या कहीं आत्मा है?

आहाहा! **जिसमें मन्त्र साधने का गुण है, वह जादूगर कहलाता है।** वह तो जादूगर है, कहते हैं। ऐसे जादू की... ऐसे तो धतंग करता है अकेला। परन्तु नजरबन्दी हमको लोग कहते हैं। हमारी नजर बाँधी, ऐसा लोग कहते हैं। उसके तो दाढ़ी बड़ी हो, वह हो ऐसा कुछ ऐसे... आहाहा! जरा शक्ति लगती है। धूल भी शक्ति नहीं, जादूगर है। सेठ!

गजब यह खुल्ला किया। ....यह क्या कहलाता है तुम्हारे? हिप्नोटिज्म कुछ कहलाता है न... वह उसके पश्चात् वह बुलावे ऐसा बोले। सो जाओ... ऐसा करो। परन्तु वह तो धूलधाणी है, सुन न अब! आहाहा! वह जादूगरी है। जादूगर है, वह धर्मी नहीं। आहा! ऐसा गुण धराकर जादूगर कहलावे। वह जानकारी हो न, इसलिए मानो ऐसा-ऐसा जानपनेवाला है। जादूगर है, कहते हैं। आहाहा! ठग है, ठग।

वह तो बेचारा कहता था, हमारा धतंग है। पहले आ गया है सब, हों! महाराज! हमारा सब धतंग है, हों! भाई! यह जिन्दगी जाती है, हों! पुण्य जल जाता है, बापू! पुस्तक दी एक-दो। पुस्तक दी, कुछ पढ़ो... पढ़ो... विचारो, क्या चीज़ है। यह सब जिन्दगी चली जाती है। और ऐसे.... पहनकर आवे न वह जादूगर में। वह भाषण दे, आहाहा! और जवान व्यक्ति हो, आहा! वह आकर्षित हो जाये न कुछ। हाथ की चतुराई प्रयोग करे। टुकड़े करे दो और बतावे और फिर, ऐई... यहाँ आवे। सेठ! कुछ किया होगा या नहीं तब? यह देखने गये थे वहाँ। रात की निपट गयी चर्चा हो गयी, बाद में (गये)। यहाँ का पूरा हो जाने के बाद.... बात ऐसी करते थे। आहाहा!

फिर कहते हैं, **पंडित कहावै पंडिताई जामैं लहिये।** लो। **जो कविताई में होशियार है, वह कवि कहलाता है।** पण्डित... पण्डित... **पंडित कहावै पंडिताई जामैं लहिये।** धारणा, बातें, पण्डित बड़े। पण्डिताई... ऐसे। आहाहा! कहते हैं, वह सब विषय के भिखारी हैं। अपना जानपना बताकर दूसरे से महत्ता लेनी है। आहाहा! साधु भी कुछ कितने ही ऐसे होते हैं न! पूजा करावे नौ अंग की—पूरे शरीर की। स्वयं बैठे हो....

**मुमुक्षु :** नव अंगी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नव अंगी। नव अंग अर्थात् क्या? आहाहा! कहते हैं कि सब भिखारी दुनिया से महिमा लेना चाहते हैं। **पंडित कहावै पंडिताई जामैं लहिये।** आहाहा!

**कवित्तकी कलामैं प्रवीन सो कहावै कवि,** बातचीत में... कवि होशियार हो कविता में। उसमें क्या वह ? कविता बताकर भी दूसरे से अपनी महत्ता प्रसिद्ध करनी है। भिखारी है, कहते हैं। हमको अभिनन्दन दो, हमको लिख दो। स्वयं लिखे अपना नाम बड़ा-बड़ा। समझे न! सब भिखारी हैं, कहते हैं। आहाहा! अपना नाम लिखे, हम ऐसे हैं, ऐसे हैं। अरे प्रभु! क्या करता है तू यह ? परविषय के भिखारी हैं वे तो सब। आहाहा! **बात कहि जानै सो पवारगीर कहिये।** बात में व्याख्याता हो... बातचीत में चटपटा है। वह तो बोले और उत्तर एकदम। परन्तु उसमें क्या हुआ अब यह ? ग्यारह अंग और नौ पूर्व के पठन सब अज्ञान है। आहाहा!

जहाँ भगवान आत्मा का पहलू हाथ आया नहीं, उस बिना की बाहर की अधिकाई मनवानी है, वे विषय के भिखारी हैं, कहते हैं। कठिन काम है, भाई! परम सत्य, परम सत्य यह है, प्रभु! आहाहा! तेरी प्रभुता अन्दर में से आयी नहीं और यह बाहर की प्रभुता और उसका दिखाव और अधिकाई मनवानी है, भिखारी है, कहते हैं। प्रेमचन्दभाई! आहाहा! डॉक्टर हो न बड़ा, पहले निःशुल्क काम करे। फिर हेतु तो यह हो कि प्रसिद्ध होने के बाद अपना दवाखाना व्यवस्थित चले। भिखारी है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! दुनिया के पास यहाँ जायें और यहाँ जाना और यहाँ जाना, वहाँ से कुछ मिलेगा, बड़े लेख लिखावे अपने नाम के, उत्सव करावे अपने नाम का। आहाहा! हम दूसरे से होशियार हैं, ऐसा बाहर प्रसिद्ध करो। मित्रों को कहकर खड़ा करे। आहाहा! व्याख्याता कहलाये।

**सो ये सब कपटी जीव विषय के भिक्षुक हैं। एतौ सब विषैके भिखारी मायाधारी जीव,...** वाह प्रभु वाह! कहते हैं। समझ में आया ? बाहर में अपनी कुछ अधिकता प्रगट हुई हो, उसके द्वारा पर में अधिकता की इच्छा रखना, विषय का भिखारी है। मेरी महिमा करे, मुझे कुछ गिनती में गिने, लेखा में ले। जिसे भगवान आत्मा चाहिए है, उसे इस बात में रस हो भी किसका ? कहते हैं। समझ में आया ? एक प्रश्न अच्छा पूछना आवे, वहाँ उसे ऐसा हो जाये कि आहा... मुझे बहुत आ गया, हों! ऐसा कहे, मैं प्रश्नकार होशियार हूँ, ऐसा तुम मुझे गिनो। भिखारी है, कहते हैं, विषय का रंक। ऐई!

और कुछ उत्तर देना आया हो, उसे अन्दर में से ऐसा हो, यह मुझे आता है, देखो! मुझे ही आता है लो इसका उत्तर। और यह तुम मुझे गिनो कि मुझे आता है, ऐसा। आहाहा! भारी काम, भाई! जिसे चैतन्यप्रभु आनन्द की खान, शान्ति का सागर, उसकी श्रद्धा का भान हुआ और वह ज्ञान हुआ, उसकी भावना तो आत्मा में एकाग्र होने की होती है। बाहर में प्रसिद्ध होने की हो या उसे अन्दर में महत्ता प्रगट करने की हो? आहाहा!

**एतौ सब विषैके भिखारी...** वह विषय के ही भिखारी हैं। इन्द्रिय के ज्ञान द्वारा जिसे बाहर में अधिकता मनवानी है... आहाहा! कठिन बात, भाई! भीखाभाई! बहुत बात आयी यह तो। आहाहा! **विषयों की पूर्ति के लिये याचना करते फिरते हैं।** आहाहा! जहाँ-तहाँ जाये, पम्पलेट में लिखावे, मेरा नाम लिखना, उसका कर्ता मैं हूँ, यह मैंने बनाया है। आहाहा! समझ में आया? विषय के भिक्षुक हैं। यह शब्द-रूप-रस-कीर्ति माँगता है। आहाहा! उसे भगवान आत्मा की माँग अन्दर अन्तर में नहीं है। आहाहा! बनारसीदास ने भी बात का स्पष्टीकरण किया! यह विषयों की पूर्ति के लिये याचना करते हैं।

**विषैके भिखारी मायाधारी...** वह कपटी है। आहाहा! जैसे बाहर की कविता आवे, यह जानपना हो, धारणा हो, उससे मुझे कोई बड़ा कहे, कहते हैं कि वह तो कपटी-मायावी भिखारी है। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतराग के मार्ग में जाना, बापू! आहाहा! उसे ऐसे भिखारीपना होता नहीं। दुनिया माने, न माने... दृष्टान्त दिया था न एक? वन में ऊँचे फूल उगे हों, उनकी सुगन्ध कोई सूँघने न आवे और खबर न पड़े तो कहीं सुगन्ध चली जाये ऐसी है? प्रश्न था भाई सोगानी का। है न? बात तो सच्ची है। और सिद्ध अनन्त हुए। उन कितने ही सिद्ध को तो जानते भी नहीं कि क्या सिद्ध हुए। उनकी खबर भी नहीं। यह न जाने और उनकी महिमा न करे तो सिद्धपना चला जाता है वहाँ से? दुनिया जाने, माने तो उसका गुण रहे, ऐसा होगा? आहाहा!

वे सब विषय की पूर्ति के कारण याचना करते फिरते हैं। भिखारी हैं। पम्पलेट में हमारा नाम रखना। कोई पुस्तक बनी उसमें नाम डाले। किसने बनाया और अपना

नाम डाले। यह कविता के चोर नहीं होते। कविता किसी की हो और अपने नाम से चढ़ा दे। ऐई, भिखारी है यह सब। मिथ्यात्व के याचक हैं सब। समझ में आया? **इन्हकौं विलोकिकै दयालरूप रहिये।** ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसे भिखारियों को देखकर दया रखना।

**मुमुक्षु :** दयनीय प्राणी है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्राणी है। आहाहा! दया आनी चाहिए। कहते हैं। अरेरे! ऐसे भिखारी मिथ्यात्व में पड़े हुए और बाहर में अधिकाई मनाते हैं, उसका फल तो उसे कठोर आयेगा। इसलिए उसकी दया करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? विशेष कहेंगे।

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १४५, भाद्र शुक्ल ५, गुरुवार, दिनांक २६-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद ११४ से ११८**

दशलक्षणी पर्व है। क्योंकि चारित्र का भेद है और चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है। कहो, सेठ! दस प्रकार के जो धर्म हैं उत्तम क्षमादि, वे चारित्र के—वीतराग परिणति के भेद हैं और जो चारित्र है, वह मुक्ति का कारण है। चारित्र का दस प्रकार का आराधन, वह तो सदा हो सके। परन्तु मुख्य तो यह तीन .... में कहा है। माघ, चैत्र और भाद्र (माह में)। तीन पर्यूषण हैं। पर्यूषण में तीन है। माघ महीने में है, माघ शुक्ल पंचमी से। चैत्र में है और यह भाद्रपद में। उसमें यह लोगों को निवृत्ति अधिक हो, इसलिए .... मुनि के धर्म दस प्रकार के। यहाँ तो आचार्य कहते हैं। पहली गाथा है न पहली। दस प्रकार के धर्म का वर्णन। ....परम भक्ति से दस प्रकार का धर्म सुनो—सुनना। दस प्रकार का धर्म है, यह हम कहेंगे, परम भक्ति से सुनना। आचार्य पद्मनन्दि आचार्य। कार्तिकेयस्वामी। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा। पुराना (ग्रन्थ है)। २२०० वर्ष पहले हो गये हैं बड़े (मुनि)। वे कहते हैं, मैं कहूँगा। २२०० वर्ष पहले। ....मैं कहूँगा दस प्रकार के धर्म, वह बहुमान से भक्ति से सुनना। ऐसी बात कही है।

उत्तम क्षमा। .....जिसको आत्मज्ञान हुआ है, उसको यह उत्तम क्षमा होती है। उत्तम शब्द है न? साधारण अज्ञानभाव से क्षमा करते हैं, वह तो पुण्यबन्ध का, मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध का कारण है। परन्तु यह तो आत्मा सच्चिदानन्द परमात्मा आनन्दकन्द मैं हूँ, मैं तो शुद्ध वीतरागमूर्ति हूँ। ऐसी अन्तर में दृष्टि प्रगट होकर स्वरूप में स्थिरता का चारित्रभाव (होना), उसका एक अन्तर्भेद उत्तम क्षमा कहा जाता है। जो मुनि देव, मनुष्य और तिर्यंच आदि से रौद्र भयानक उपसर्ग करने पर भी... रौद्र भयानक उपसर्ग होने पर भी '**कोहेन न तपधि**'—क्रोध से तप्तायमान नहीं होता। मैं तो ज्ञानानन्द हूँ, उसमें क्रोध होना, वह मेरा स्वभाव नहीं। मुझे तो आनन्द हो, क्षमा में आनन्द हो, अतीन्द्रिय आनन्द मेरी स्थिति है और मेरा स्वभाव वह है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द में रहकर क्रोध का उत्पन्न नहीं होना, उन मुनि के निर्मल क्षमा होती है। उसमें ....कदाचित्, कहते हैं, कोई मेरे दोष कहते हैं, यदि मुझमें विद्यमान है तो क्या मिथ्या कहते हैं? ऐसा

धारकर समता रखना। समझ में आया?

और (ऐसा) विचार करके क्षमा करना कि यदि मुझमें दोष नहीं है तो यह बिना जाने कहता है, तो इस अज्ञानी को कैसा दोष? खबर नहीं (और) कहता है, उसका क्या दोष? ऐसा विचार (करके) क्षमा करना। अज्ञानी के बालस्वभाव का चिन्तवन करना कि बालक तो प्रत्यक्ष भी कहता है, यह तो परोक्ष कहता है। अपनी निन्दा आदि परोक्ष कहता है। बालक तो प्रत्यक्ष भी कहे। ऐसा विचारकर क्षमा करना। ज्ञाता-दृष्टापने रहना, उसका नाम क्षमा। आहाहा! प्रत्यक्ष भी कुवचन कहे तो यह विचार करना कि बालक तो ताड़न भी करता है, मारता है। यह तो कुवचन ही कहता है, मारता तो नहीं। ऐसा समझकर क्षमा करना। ताड़न करे तो यह विचार करना कि बालक अज्ञानी तो प्राणघात भी करता है। प्राणघात तो करता नहीं, ऐसा धारकर क्षमा करना। समझ में आया? यदि प्राणघात करे तो यह विचार करे कि अज्ञानी तो धर्म का भी विध्वंस करता है। यह प्राणघात ही करता है। धर्म का विध्वंस तो नहीं करता? ऐसा विचार करके पर का समाधान करना और शान्ति में रहना। उसका नाम सम्यग्दर्शनसहित चारित्र का अन्तर्भेद उत्तम क्षमाधर्म मुक्ति का कारण कहने में आता है। समझ में आया? देखो, यह तो धर्म शुरुआत की न! यहाँ अपने समयसार नाटक। ११४ और ११५ बोल। है? नीचे श्लोक है ४६।

**दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वमात्मनः।**
**एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा।।४६।।**

क्या कहते हैं?

★ ★ ★

## काव्य - ११४

**अनुभव की योग्यता** (दोहा)

**जो दयालता भाव सो, प्रगट ग्यानकौ अंग।**
**पै तथापि अनुभौ दसा, वरतै विगत तरंग।।११४।।**

**शब्दार्थ:-प्रगट=साक्षात्। तथापि=तौ भी। विगत=रहित। तरंग=विकल्प। सुधी= भेदविज्ञानी।**

**अर्थ:-यद्यपि करुणाभाव ज्ञान का साक्षात् अंग है, पर तो भी अनुभव की परिणति निर्विकल्प रहती है।।११४।।**

### काव्य-११४ पर प्रवचन

**जो दयालता भाव सो, प्रगट ग्यानकौ अंग।**
**पै तथापि अनुभौ दसा, वरतै विगत तरंग॥११४॥**

**यद्यपि करुणाभाव ज्ञान का साक्षात् अंग है।** अनुकम्पा आती है तो यह ज्ञान का अंग है। **तथापि अनुभौ दसा...** अपना आत्मा आनन्दस्वरूप, उसकी दृष्टि और आनन्द का वेदन ज्ञान और उसमें लीनता का अनुभव, यह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? अहिंसा आदि का विकल्प उठे, भक्ति का विकल्प उठे, सब पुण्यबन्ध का कारण है, मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया? अहिंसा परमोधर्म जो कहते हैं, वह दूसरी चीज़ है। अपने आत्मा में आनन्द में रहकर राग की उत्पत्ति न होना और अन्तर के आश्रय से वीतराग आनन्द सहित की उत्पत्ति होना, उसका नाम अहिंसा परमोधर्म कहा जाता है।

**मुमुक्षु :** अपनी दया....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अपनी दया। दूसरे किसकी करता है? कौन कर सकता है? आहाहा!

**मुमुक्षु :** अपनी दया किस प्रकार से?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह राग की उत्पत्ति करना, वह अपनी हिंसा है। चाहे तो

दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा का जो विकल्प है, वह राग है। वह अपनी शान्ति की हिंसा है। आहाहा! प्रसन्नजी! और यह राग की उत्पत्ति नहीं होना और त्रिकाल ज्ञायकभाव के आश्रय से आनन्द और वीतराग की उत्पत्ति होना, उसे अहिंसा परमधर्म कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **अनुभौ दसा....** विकल्प अर्थात् रागरहित अपने चैतन्य आनन्द स्वभाव का अनुभव करना, उसके अनुसार होकर वीतरागीभाव प्रगट करना, यह एक ही **वरतै विगत तरंग...** विकल्प के—राग के तरंग से रहित निर्विकल्प अनुभवदशा, यह एक ही मोक्षमार्ग है। समझ में आया?

यह आया है न! वह आया है यह। दो पुस्तकें आयी हैं न? दो शास्त्र आये हैं। पहले? उसमें कुछ प्रस्तावना में... थोड़ी प्रस्तावना पढ़ी। और उसका क्या कहा है? है निमित्त का प्रश्न। हाँ, करे, करे निमित्त का...

**मुमुक्षु :** उससे ही काम होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भाई! काम तो आत्मा की पर्याय से होता है। निमित्त क्या? यहाँ तो विकल्प है निमित्त की ओर का लक्ष्य, वह राग है। चाहे तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा समवसरण में विराजते हों, उनकी भक्ति का भाव भी राग है। राग, वह मोक्ष का कारण बिल्कुल नहीं, संवर-निर्जरा बिल्कुल नहीं।

**मुमुक्षु :** तब क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आस्रव, अधर्म है। ऐ पण्डितजी! ऐसी बात है। आस्रव है। निश्चय होने पर संवर... यह वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है। वीतराग के मार्ग में वीतरागभाव हो, वह धर्म है या राग, वह धर्म है? महाव्रत का पालन... महाव्रत वह भी राग है, विकल्प है। वह आस्रव है, बन्ध का कारण है और आत्मा के स्वरूप की इतनी हिंसा है। जेठाभाई! कठिन काम, भाई!

भाई! तू चैतन्यस्वरूप आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द का अवलम्बन लेकर अतीन्द्रिय आनन्द की दशा प्रगट करना, वही वीतरागी परिणति मुक्ति का कारण है। जितने परद्रव्य आश्रित विकल्प उठते हैं, सब राग है। मूलचन्दभाई! बन्ध का कारण है। वे नये सुनने आवे और ऐसा आवे, उन्हें तो इस

प्रकार ऐसा लगे, हाय! भाई! तू तो... तेरी चीज़ भी वीतरागमूर्ति है। समझ में आया? और वीतरागता में से तो वीतरागता ही प्रगट होती है। राग प्रगट होता है तो पर के लक्ष्य से उत्पन्न होता है। आहाहा! समवसरण में भगवान के समीप में—तीन लोक के नाथ के समीप में अनन्त बार समवसरण में गया, दिव्यध्वनि सुनी और मणिरत्न के.... क्या कहलाते हैं? मणिरत्न के दीपक और कल्पवृक्ष के फूल... ऐई सेठ! कहते हैं कि उसका वह भाव शुभ है, पुण्य है; धर्म नहीं।

**मुमुक्षु :** पुण्य तो वहाँ तक ठीक, धर्म नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पुण्य कहो या धर्म नहीं कहो या अधर्म कहो—सब एक ही बात है। अमरचन्दभाई! आहाहा!

लिया था यह, नहीं? दीपचन्दजी। अधर्म है ऐसा स्पष्ट लिया। हाँ, धर्माधर्म। श्रावक को जितनी वीतराग परिणति है, उतना धर्म है और जितनी रागदशा, वह अधर्म है। दीपचन्दजी ने आत्म-अवलोकन में लिया है। मार्ग बापू ऐसा है प्रभु! आहाहा! राग हो, आता है। जब तक वीतरागता पूर्ण प्रगट न हो तो बीच में सम्यग्दर्शन-ज्ञान की शान्तिपूर्वक राग आता है, परन्तु है बन्ध का कारण। समझ में आया? यह दान के पैसे देना दो-पाँच लाख, इतने तो न दे परन्तु यह दस-बीस हजार दे, लो न कदाचित् इतने। परन्तु वह राग मन्द करे तो भी पुण्य है, धर्म नहीं। दान करने में धर्म नहीं।

**मुमुक्षु :** दान तो थोड़ा करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करे कौन? वह तो राग आये बिना रहता नहीं। ऐई पोपटभाई! कहो, सेठ! यह सब तुम दानी कहलाते हो न! तुम दो भाई, ऐसा कहते हैं लोग लो, यह दानी हैं। अब दान में राग मन्द हो, पुण्य है। राग है, धर्म नहीं। दान तो अपने स्वरूप की शान्ति को प्रगट करके अपने में देना, वीतराग परिणति प्रगट करके अपने को देकर अपने में रखना, उसका नाम यथार्थ धर्मदान है। आहा! **तथापि अनुभौ दसा, वरतै विगत तरंग।** अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ११५

**दरसन ग्यान चरन दसा, करै एक जो कोइ।**
**थिर ह्वै साधै मोख-मग, सुधी अनुभवी सोइ।।११५।।**

**शब्दार्थ:-सुधी= भेदविज्ञानी।**

**अर्थ:-जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतापूर्वक आत्मस्वरूप में स्थिर होकर मोक्षमार्ग को साधता है, वही भेदविज्ञानी अनुभवी है।।११५।।**

## काव्य-११५ पर प्रवचन

**दरसन ग्यान चरन दसा, करै एक जो कोइ।**
**थिर ह्वै साधै मोख-मग, सुधी अनुभवी सोइ॥११५॥**

जो कोई प्राणी अपने भगवान आत्मा का दर्शन, उसमें है पीछे, सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन वह नहीं कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, नौ तत्त्व की श्रद्धा करना। वह सम्यग्दर्शन नहीं, वह तो विकल्प है। निश्चय में आये बिना होता है और सब रखा है थोड़ा-थोड़ा। होता है, वह अलग बात है और मार्ग तो एक ही है। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति ज्ञान का सागर, उसकी ओर के झुकाव से जो अन्तर की दृष्टि प्रगट हुई, अन्तर आत्मा की प्रतीति अन्दर हुई, (वह) निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और अपने ज्ञानस्वरूप में ज्ञान शुद्धज्ञान की कणिका शान्ति के साथ उत्पन्न हुई, वह सम्यग्ज्ञान और स्वरूप में लीनता और शान्ति वीतरागता, वह चारित्र। आहाहा! है? **एकतापूर्वक आत्मस्वरूप में स्थिर होकर...** तीनों भेद भी लक्ष्य में से छोड़ देना। आहाहा! व्यवहार का विकल्प तो मोक्षमार्ग नहीं। आहाहा! वीतरागमार्ग अपूर्व है। समझ में आया? साधारण कहे, हमारे साधारण प्राणी को भी? प्राणी आत्मा साधारण नहीं। वह तो महा असाधारण परमात्मा का रूप है। आहाहा! पर्याय का लक्ष्य छोड़कर देखो तो द्रव्य तो परमात्मास्वरूप ही है। समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऐसा बताते हैं, वे ही भगवान।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तू परमेश्वर है। पूरा परमेश्वर। '**अप्पा सो परम अप्पा।**' सेठ! आता है या नहीं? तारणस्वामी में बहुत आता है। '**अप्पा सो परम अप्पा।**' आत्मा ही परमात्मा है। दूसरा परमात्मा उसका है। यहाँ क्या आया? समझ में आया? तू ही परमेश्वर है। तू ही अपने को भगवान स्थाप। ऐसा आता है, भाई! अनुभवप्रकाश में आता है न, भाई! यह शब्द आता है। तू तुझे परमेश्वर स्थाप। ऐई!

**मुमुक्षु :** कबूल कर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परमेश्वर स्थाप, ऐसा लिया है अनुभवप्रकाश में। तू अपने को परमेश्वर स्थाप। मैं परम ईश्वर का स्वामी हूँ। मैं अल्पज्ञ नहीं, राग नहीं, निमित्त तो मैं हूँ ही नहीं। समझ में आया? ऐसे स्वरूप की दृष्टि अन्तर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और आत्मा का ज्ञान... शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। शास्त्र में तो ज्ञान नहीं, पर शास्त्र के ज्ञानवाले को ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आता है?

शास्त्र तो जड़ है, अजीव है। समयसार हो या भगवान की साक्षात् वाणी हो, पुद्गल की पर्याय है। उसमें ज्ञान है? उसमें तो ज्ञान नहीं, परन्तु उसके जाननेवाले को भी ज्ञान नहीं। समझ में आया? परद्रव्य पर तेरा लक्ष्य है, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ तो पूर्णानन्द प्रभु का लक्ष्य करके, दृष्टि करके, आश्रय करके, अवलम्बन लेकर जो अन्तर में पर की अपेक्षा बिना निरपेक्ष ज्ञान—स्व की अपेक्षा सहित और पर की अपेक्षा रहित, आहाहा! उसका नाम सम्यग्ज्ञान। यह ज्ञानी में ज्ञान होता है, जड़ में होता नहीं। और चारित्र—स्वरूप में चरना, रमना, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करना। सेठ! यह लड्डू-बड्डू देते हैं न सब। धूल में भी नहीं है, विष्टा है वह तो। लड्डू तो आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द, यह अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव और भोजन करना, जमना, रमना, उसका नाम चारित्र है। वस्त्र-बस्त्र बदले और नग्न होवे, चारित्र हो गया। धूल में भी नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, स्थिरतापूर्वक... **थिर ह्वै साधै मोख-मग। करै एक जो कोइ....** सम्यक् चैतन्यमूर्ति प्रभु की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसकी लीनता—ये तीनों एक करे, भेद न रहे। आत्मा में तीनों एक करे। **थिर ह्वै साधै मोख-मग।** स्वरूप की रमणता करके, जो

मोक्ष का मार्ग साधते हैं.... **सुधी**—बुद्धिवन्त। सुधि—बुद्धिवन्त। सुधि—सम्यग्ज्ञानवाला वह प्राणी **अनुभवी सोइ...** उसे अनुभव कहते हैं। समझ में आया? 'अनुभव रत्न चिन्तामणी, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' आहाहा! राग हो। है तो क्या है? बन्ध का करण है। शुद्ध उपयोग से छूटता है। निमित्त, बस इतना बताया। ऐसा होता है और ऐसा होता है और ऐसा होता है। होता है। आहा! अरे! ...में बहुत अन्तर। थोड़ा-थोड़ा देखा हो। ऐसे जीव को यहाँ भेदविज्ञानी कहा जाता है। भेद किससे करना? राग से। अभेद किसमें होना? स्वभाव में। आहाहा!

**आत्म-अनुभव का परिणाम।** ११६। इस ओर है न! ३८० पृष्ठ।

★ ★ ★

## काव्य - ११६

**आत्म-अनुभव का परिणाम** (सवैया इकतीसा)

**जोई द्रिग ग्यान चरनातममैं बैठि ठौर,**
**भयौ निरदौर पर वस्तुकौं न परसै।**
**सुद्धता विचारै ध्यावै सुद्धतामैं केलि करै,**
**सुद्धतामैं थिर ह्वै अमृत-धारा बरसै।।**
**त्यागि तन कष्ट ह्वै सपष्ट अष्ट करमकौ,**
**करि थान भ्रष्ट नष्ट करै और करसै।**
**सोतौ विकलप विजई अलप काल मांहि,**
**त्यागि भौ विधान निरवान पद परसै।।११६।।**

**शब्दार्थ:-निरदौर=परिणामों की चंचलतारहित। परसै (स्पर्शे)=छूवे। केलि=मौज। सपष्ट (स्पष्ट)=खुलासा। थान (स्थान)=क्षेत्र। करसै (कृश करे)=जीर्ण करे। विकलप विजई=विकल्प जाल जीतनेवाला। अलप (अल्प)=थोड़ा। भौ विधान=जन्म-मरण का फेरा। निरवान (निर्वाण)=मोक्ष।**

**अर्थः–जो कोई सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप आत्मा में अत्यन्त दृढ़ स्थिर होकर विकल्प–जाल को दूर करता है, और उसके परिणाम पर–पदार्थों को छू तक नहीं पाते। जो आत्मशुद्धि की भावना व ध्यान करता है, वा शुद्ध आत्मा में मौज करता है, अथवा यों कहो कि शुद्ध आत्मा में स्थिर होकर आत्मीय आनन्द की अमृतधारा बरसाता है, वह शारीरिक कष्टों को नहीं गिनता, और स्पष्टतया आठों कर्मों की सत्ता को शिथिल और विचलित कर देता है, तथा उनकी निर्जरा और नाश करता है, वह निर्विकल्प ज्ञानी थोड़े ही समय में जन्म–मरणरूप संसार को छोड़कर परमधाम अर्थात् मोक्ष पाता है।।११६।।**

## काव्य-११६ पर प्रवचन

**जोई द्रिग ग्यान चरनातममैं बैठि ठौर,**
**भयौ निरदौर पर वस्तुकौं न परसै।**
**सुद्धता विचारै ध्यावै सुद्धतामैं केलि करै,**
**सुद्धतामैं थिर ह्वै अमृत-धारा बरसै॥**
**त्यागि तन कष्ट ह्वै सपष्ट अष्ट करमकौ,**
**करि थान भ्रष्ट नष्ट करै और करसै।**
**सोतौ विकलप विजई अलप काल मांहि,**
**त्यागि भौ विधान निरवान पद परसै॥११६॥**

जो कोई सम्यग्दर्शन-ज्ञान **चरनातममैं बैठि ठौर,...** अनादि से राग और पुण्य में बैठा था। उसमें अपना(पन) मान रखा था। उसे छोड़कर भगवान अपना अन्तर्मुख चैतन्यप्रभु में श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र करके **बैठि ठौर,** लो। **आत्मा में अत्यन्त दृढ़ स्थिर होकर... भयौ निरदौर...** विकल्प जाल को दूर करता है। परिणामों की चंचलता रहित... है न! शब्द है। **निरदौर**—परिणामों की चंचलतारहित। यह तो प्रीतिभोज है। हरख जमण समझते हो? हरख जमण समझते हो? हरख—हर्ष जमण (प्रीतिभोज)।

हमारे यहाँ लगन—विवाह होता है न! पश्चात् उसका प्रीतिभोज करते हैं। पहले तो नौ टंक (समय) खिलाते थे। सात दिन के पश्चात् आठवें दिन प्रीतिभोज करे।

प्रीतिभोज अर्थात् खुशी का भोजन। दूधपाक, पूड़ी, अरबी के भुजिया। केलावड़ा नहीं होते। यह तो पहले प्रीतिभोज करते थे। ऐ पोपटभाई! खबर है या नहीं? या वह सामनेवाला बरौठी करे। तो उसे बरौठी में तो फिर जितने लोग तुम्हारे (हों) लाओ। जिमाओ। उस समय प्रीतिभोज कहे। हर्ष का भोजन इसलिए ऊँचे में ऊँचे बादाम के मैसूर। बादाम के मैसूर, पिस्ता के पापड़, मिर्ची का अथाणा। अथाणा... समझे? अचार। मिर्ची होती है न चरपरी। मिर्ची, काली मिर्ची। काली मिर्ची का अचार... होता है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वह यह बात अभी... वह बाहर की धूल की बात नहीं यह। समझ में आया? भगवान आनन्दकन्द की एकाग्रता, वह बादाम का मैसूर है। अन्दर की मींगी की मिठास है। आहाहा!

कहते हैं, **भयौ निरदौर पर वस्तुकौं न परसै।** आहाहा! भगवान आत्मा अपना ज्ञानानन्द निर्विकल्प वीतरागस्वभाव उसमें स्थिर होकर **भयौ निरदौर...** विकल्प के परिणामरहित हो। **पर वस्तुकौं न परसै...** राग को छूता ही नहीं। पर देव-गुरु-शास्त्र को भी छूता ही नहीं। देव-गुरु अपना आत्मा त्रिलोकनाथ परमात्मा, आहाहा! उसे अन्तर अनुभव में स्पर्शते हैं। **सुद्धता विचारै ध्यावै...** परम पवित्रता का धाम मैं हूँ, ऐसा विचारे—ध्यावे—ध्यान करे और **सुद्धतामैं केलि करै।** आहाहा! यह शुद्ध पवित्र प्रभु समाधि, आनन्द का धाम, (उसमें) केलि करे, रमणता करे। आनन्द की केलि, देखो! **जो आत्मशुद्धि की भावना और ध्यान करता है व आत्मा में मौज करता है।** केलि का अर्थ मौज। **सुद्धतामैं थिर ह्वै...** राग और पुण्य में स्थिर था, तब जहर बहता था। आहाहा! देखो! परन्तु भगवान अपने निज आनन्दस्वरूप में स्थिर है। **अमृत-धारा बरसै...** समझ में आया? अमृत का सागर प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द की मौज जिसमें है, उसमें स्थिर होकर अमृतधारा बरसे। लो, यह धर्म। अरे गजब धर्म! प्रसन्नकुमारजी! बाहर व्यवहारवालों को ऐसा लगे न! हो व्यवहार साथ में, कौन इनकार करता है? परन्तु वह धर्म नहीं।

**मुमुक्षु :** धर्म नहीं, लाभ के साथ अलाभ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अलाभ, लाख बार अलाभ है। कहते हैं, आनन्द की अमृतधारा बरसाता है। आहाहा!

जैसे गन्ने का रस घूँट लेते पीते हैं न? गन्ना, गन्ना। शेरडी। हमारे (गुजराती में) शेरडी कहते हैं न?

**मुमुक्षु :** बर्फ का टुकड़ा डाले तो फिर और ठण्डा लगे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आईसक्रीम डाले तो बहुत वैसी लगे अन्दर से। धूल जैसा है सब। अरे भगवान! तुझमें तो आनन्दसागर पड़ा है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर तू है। अरे! वहाँ नजर कर, तुझे आनन्द आयेगा। बाहर में नजर करने से तो जहर—राग उत्पन्न होगा। आहाहा! भारी कठिन! मूल चीज़ ही पड़ी रही पूरी। अपनी चीज़ जो अनादि अनन्त आनन्द का धाम प्रभु, उसको छोड़कर सब बात। दया पालो, व्रत पालो, भक्ति करो और पूजा करो, ऐसा करो और फैसा करो। यह राग करना, वह तो मरना है। ऐई! आहाहा!

'क्षण क्षण भयंकर भावमरण', श्रीमद् में आता है न, 'प्रवाह में चकचूर है।' भगवान अन्दर ज्ञान और आनन्द का धाम, उसमें स्थिर न रहकर, राग और पुण्य में स्थिर रहता है, जहर का अनुभव है। वह संसार की उत्पत्ति का कारण है। यहाँ **सुद्धतामैं थिर ह्वै....** शुद्धस्वरूप चैतन्य आनन्द में स्थिर रहे, अमृतधारा बरसे। यहाँ पाँच-पच्चीस लाख पैसे मिले, उसमें हर्ष हो जाये। धूल में हर्ष नहीं, जहर है। ऐ पोपटभाई! एक दिन में पाँच लाख पैदा किये—कमाये। धूल भी कमाये नहीं, सुन न! राग और जहर को कमाया। ऐई भीखाभाई! सेठ! कानपुर जाकर कितने रुपये ले आवे शोभालालजी।

**मुमुक्षु :** यह माल, वह तो उसके घर का था, फिर लेकर आये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहाँ उसका माल था? जड़ का था। पैसे भी उसके कहाँ थे? दलाली जहर की, ऐसा कहते हैं। कोयले की दलाली है वह। यह तो अमृतधारा की दलाली है। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने तीन काल-तीन लोक देखे, ऐसा ही यह आत्मा है। इस आत्मा और उस आत्मा में कोई अन्तर नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! उसकी समझण में तो यथार्थता ले। अभी समझण का ठिकाना नहीं। श्रद्धा

भ्रष्ट। तत्त्व की श्रद्धा नहीं कि क्या तत्त्व है, तो विचार में लीनता कहाँ से आयेगी ? समझ में आया ?

**त्यागि तन कष्ट ह्वै...** लो, शारीरिक कष्टों को नहीं गिनता। जड़ की अवस्था में कोई रोग आदि आया, वह तो जड़ की दशा है। और किसी ने छुरा भी मार दिया, वह जड़ की अवस्था है। मुझमें हुई नहीं। मैं तो उसको छूता ही नहीं। आहाहा! 'बहु उपसर्गकर्ता के प्रति भी क्रोध नहीं।' आता है न अपूर्व अवसर में ? 'बहु उपसर्गकर्ता के प्रति भी क्रोध नहीं, वंदे चक्री तथापि न होवे मान जब, देह जाये किन्तु माया होय न रोम में, लोभ नहीं सो प्रबल सिद्धि निदान जो।' सिद्धि प्रगट हुई हो कितनी, तो भी उसका लोभ नहीं होता। आत्मा की सिद्धदशा प्रगटे, उसके ऊपर उसकी—ज्ञानी की भावना होती है। आहाहा! कहो, मूलचन्दभाई! गजब बात!

**त्यागि तन कष्ट ह्वै सपष्ट अष्ट करमकौ,... स्पष्टतया आठों कर्मों की सत्ता को शिथिल कर डाले।** है न ? **करि थान भ्रष्ट नष्ट करै और करसै।** कृश डाले, ऐसा। कर्म को कृश डाले। पतले कर दे, मूल में नाश कर दे। आहाहा! निमित्त का कथन है। **करि थान भ्रष्ट...** विचलित कर देता है। सत्ता को शिथिल कर देता है, जड़ की सत्ता को शिथिल कर देता है। अपनी सत्ता को समर्थ करता है। (जड़ सत्ता) विचलित कर देता है, उनकी निर्जरा और नाश करता है। आहा! **सोतौ विकलप विजई...** अपने स्वरूप में निर्विकल्प स्थिरता करना, वह विकल्प पर विजय है। विकल्प का जीतनेवाला है। **अलप काल मांहि...** ऐसे जीव को अल्प काल में **त्यागि भौ विधान...** संसार को छोड़कर, जन्म-मरणरूप संसार को छोड़कर **विधान निरवान पद परसै।** अपनी आनन्दस्वरूप मुक्ति को ही अनुभवे। यह अनादि संसार राग का—जहर का अनुभव है... समझ में आया ? वह छोड़ दे। अपने आनन्द का स्पर्श मुक्ति का (स्पर्श) करे। उसे मोक्षमार्ग का फल आया कहने में आता है। आहाहा! अब ११७।

★ ★ ★

## काव्य - ११७

**आत्मअनुभव करने का उपदेश** (चौपाई)

**गुन परजैमैं द्रिष्टि न दीजै।**
**निरविकलप अनुभौ-रस पीजै।।**
**आप समाइ आपमैं लीजै।**
**तनुपौ मेटि अपनुपौ कीजै।।११७।।**

**शब्दार्थ:-द्रिष्टि=नजर। रस=अमृत। तनुपौ=शरीर में अहंकार। अपनुपौ=आत्मा को अपना मानना।**

**अर्थ:-आत्मा के अनेक गुण-पर्यायों के विकल्प में न पड़कर निर्विकल्प आत्म-अनुभव का अमृत पियो। आप अपने स्वरूप में लीन हो जाओ, और शरीर में अहंबुद्धि छोड़कर निजआत्मा को अपनाओ।।११७।।**

---

### काव्य-११७ पर प्रवचन

---

**गुन परजैमैं द्रिष्टि न दीजै निरविकलप अनुभौ-रस पीजै.... गुन परजैमैं द्रिष्टि न दीजै....** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र और स्त्री-कुटुम्ब के ऊपर तो दृष्टि छोड़ दे। वह तो अपने गुण-पर्याय भेद (उसकी) दृष्टि छोड़ दे। भगवान अभेद चैतन्यमूर्ति, ऐसी दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। वह धर्म की पहली शुरुआत है। आहाहा! समझ में आया? **निरविकलप अनुभौ-रस पीजै.... आप समाइ आपमैं लीजै, आप समाइ आपमैं लीजै, तनुपौ मेटि अपनुपौ कीजै...** बहुत पुराना। आहाहा! कहते हैं कि **गुन परजैमैं द्रिष्टि न दीजै... आत्मा के अनेक गुण-पर्यायों के विकल्प में न पड़कर** (अर्थात्) भेद में लक्ष्य न रखकर... आहाहा! गुण-पर्याय के भेद में लक्ष्य करने से भी विकल्प उठते हैं। **निर्विकल्प आत्म-अनुभव का अमृत पियो।** भगवान रागरहित। व्यवहार के विकल्प की वृत्तिरहित स्वरूप के आनन्द का अमृत अनुभव करो, यह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! गुण-पर्याय में दृष्टि न दीजिये। भगवान के ऊपर ऐसे दृष्टि देकर, हे भगवान!

मुझे तारना। भगवान कहते हैं कि तुझे तू तारना। समझ में आया?

**निरविकलप अनुभौ-रस पीजै....** राग की-पुण्य की क्रिया से पार प्रभु चैतन्यमूर्ति का आनन्दरस पीओ। वह आनन्द का अनुभव, वह मोक्ष है अथवा मोक्ष का मार्ग है। यह करना इसे .... कि यदि कुछ करना हो तो यह। कहीं व्यवहार करें तो फिर निश्चय होगा। लहसुन खायें तो कस्तूरी की डकार आयेगी। ऐई सेठ! नहीं आयेगी? लहसुन... लहसुन। ढोकला बनाते हैं न। ढोकला हमारे काठियावाड़ में कहते हैं। ढोकला बनावे न चावल का। ढोकला को क्या कहते हैं तुम्हारे?

**मुमुक्षु :** ढोकला ही कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ढोकला कहते हैं। ढोकला बनाकर लहसुन का मसाला डालकर घी में—तेल में डुबोकर खाये। खा-खाकर दवायें भी खाये। वहाँ ओ... कस्तूरी की डकार आवे उसमें?

**मुमुक्षु :** वह गरीब की कस्तूरी कहलाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ....वह बेचारे प्राणी को कम मिलता हो न। परन्तु कहीं लहसुन खाकर कस्तूरी का ओडकार—डकार आवे? वह तो लहसुन का आवे। इसी प्रकार पुण्य की क्रिया करते-करते धर्म की डकार आवे? तीन काल में नहीं आवे। आहाहा! समझ में आया?

**आप समाइ.... आप अपने स्वरूप में लीन हो जाओ।** आहाहा! भगवान! तुम्हारे सामने तो थोड़ा देखने दो। वीतरागदशा... क्या है? वह वीतरागदशा। तेरा लक्ष्य पर के ऊपर जाये तो भी विकल्प उठता है, वह राग है। यहाँ तो **आप समाइ आपमैं लीजै....** अपने स्वरूप में लीन हो जाओ। **आप समाइ—**आप में समाकर **आपमैं लीजै...** तेरा आत्मा राग में है, उसे स्वभाव में ले। आहाहा! यह तो अध्यात्म की बात है, इसलिए सूक्ष्म है। यह कहीं कथा-वार्ता नहीं। आहाहा! भगवान की कथा है। यह भागवत् शास्त्र है। समझ में आया? अहो! **तनुपौ मेटि अपनुपौ कीजै... शरीर में अहंबुद्धि छोड़कर निज आत्मा को अपनाओ।** आहाहा! **तनुपौ मेटि—**शरीर की बुद्धि छोड़कर **अपनुपौ कीजै—**अपने आत्मा के आनन्द के ऊपर दृष्टि दे। आनन्द पर दृष्टि देने से तुझे

आत्मा की प्राप्ति होगी। राग और विकल्प से तुझे आत्मा की प्राप्ति होगी नहीं। कठिन काम! यह बनारसीदास ने ऐसा बनाया है, देखो! अब ११८ (काव्य)।

★ ★ ★

## काव्य - ११८

**पुनः** (दोहा)

**तजि विभाउ हूजै मगन, सुद्धातम पद मांहि।**
**एक मोख-मारग यहै, और दूसरौ नांहि।।११८।।**

**अर्थः-राग-द्वेष आदि विभावपरिणति को हटाकर शुद्ध आत्मपद में लीन होओ, यही एक मोक्ष का रास्ता है, दूसरा मार्ग कोई नहीं है।।११८।।**

---

### काव्य-११८ पर प्रवचन

---

**तजि विभाउ हूजै मगन, सुद्धातम पद मांहि।**
**एक मोख-मारग यहै, और दूसरौ नांहि॥११८॥**

यह ४७ की बात है। नीचे ४७ कलश है न ४७। क्या कहते हैं? (गुजराती में) सुडतालीस। सैंतालीस तुम्हारे (हिन्दी में)।

**एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक-**
**स्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति।**
**तस्मिन्नेव निरन्तरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्,**
**सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति॥२४०॥**

**तजि विभाउ हूजै मगन,...** भाई! यहाँ तो जरा स्त्री का पति मर जाये, विधवा हो। तो कहे, अरे! दु:खी हो गयी। परन्तु किसकी दु:खी? कौन कहे दु:खी? समझ में आया? अरे! विधवा हुई दु:खी। कौन कहे दु:खी? परवस्तु का वियोग हुआ, उसमें दु:ख क्या हुआ?

**मुमुक्षु :** पूरी दुनिया कहती है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह दुनिया गहल-पागल। यह सेठिया आगे-पीछे ऐसा कहे, आहाहा! बहुत दुःख आ पड़ा। ऐसा हुआ। परन्तु परवस्तु गयी, उसमें दुःख क्या आया? क्या आया? वह तो परचीज़ थी। समझ में आया? हमारे काठियावाड़ में रोवे स्त्री, जब पति मरे न। छोटी उम्र का हो। यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है। अरे! कुँए में उतारकर यह डोरी काटी। काल जैसा रोवे। दोरडा समझते हैं न? रस्सी। वह सब सुना था (संवत्) १९५७ में। हमारे बड़े भाई थे न, गुजर गये। ५७ में गुजर गये। आठ वर्ष का विवाह। एक ही लड़का दो वर्ष का। फिर उसकी बहू रोती। उस समय ग्यारह वर्ष की उम्र। ग्यारह वर्ष की। लड़कों को कहे कि जाओ अब। मामा के पास जाओ, मामा के घर में। मामा बड़े .... क्या है यह सब!

भाई की मरने की स्थिति। २८ वर्ष की उम्र। मुम्बई का पानी लगा। उसकी बहू रोती थी। उम्र छोटी। (संवत्) १९५७। कितने वर्ष हुए? वह ऐसे रोती थी। ७०, ७०। १०० में तीस (कम)। आठ वर्ष का विवाह था। उसे एक लड़का हुआ था। समझे न? ५७। (संवत्) १९४८ में विवाह। ४८ में। ४६ में इस देह का जन्म। ४८ की खबर है, उसके विवाह के समय में। ५७ में गुजर गया। फिर ऐसे रोती। कहा, यह क्या? लड़के खड़े न रहो, जाओ मामा के घर में चले जाओ। क्योंकि तुम यह रोना सुन नहीं सकोगे। ऐसे रोवे फिर तो आहा! किसका रोते हो? 'रोनेवाला रे नहीं रहनेवाला रे।' तू कहाँ रहनेवाला है, वह रोने लगी यह? हम दुःखी हुए। अब कौन दुःखी कहलाये? दुःखी तो राग और द्वेष करे, वह दुःखी है। पर का संयोग गया, इसलिए दुःखी है, तो सिद्ध को तो सब संयोग गया है। भगवान सिद्ध हुए, उन्हें तो एक राग का रजकण भी रहा नहीं और महा सुखी हैं। पर के जाने से दुःख हो तो उन्हें दुःख होना चाहिए। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **तजि विभाउ हूजै मगन,...** यह विभाव और विकार को छोड़। वह तो छूटी हुई पड़ी .... है। आहाहा! **तजि विभाउ हूजै मगन, सुद्धातम पद मांहि।** शुद्ध चैतन्यपद अनाकुल आनन्द का नित्य ध्रुवपद, उसमें लीन हो। **एक मोख-मारग यहै,...**

उसका नाम एक ही मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग दो नहीं हैं। नहीं; आया था न? **और दूसरौ नांहि...** मोक्षमार्ग दो नहीं। कथन दो प्रकार का आता है—निश्चय और व्यवहार। मोक्षमार्ग दो नहीं, एक ही है। उसने गड़बड़ की उसमें। हाँ, मोक्षमार्ग दो प्रकार कहा, फलाना कहा। भाई! यह तो कथन है, कथन है। यहाँ तो एक **सुद्धातम पद...** राग छोड़कर शुद्धात्मा में लीन होना, वही एक मोक्षमार्ग है। तीन काल—तीन लोक में ऐसा मोक्ष का पंथ एक ही है। पंचम काल हो, चौथा काल हो, महाविदेह हो या भरतक्षेत्र हो। आहाहा! यह किसका कहते हैं? चौथे काल के लिये यह कहते हैं? कहे, पंचम काल में ऐसा नहीं होता और चौथे काल में ऐसा होता है। आहाहा!

**एक मोख-मारग यहै, और दूसरौ नांहि।** देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का राग, शास्त्र का पढ़ना, वह मोक्षमार्ग नहीं। और यह दसलक्षणी पर्व। दस अपवास करे, पानी-बानी न ले। ओहोहो! कितना धर्म किया! कितनी तपस्या निर्जरा! शोभायात्रा निकले न तुम्हारे वह सेठ जैसे साथ में घूमे। चलो। कहो, समझ में आया? आहा! एक। पाठ है न? **'एको मोक्षपथो'**। ४७ कलश है नीचे अमृतचन्द्र आचार्य का लिखा। **'एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक।'** निश्चय से स्वरूप में दृष्टि, ज्ञान और लीनता, एक ही मोक्षमार्ग है। समझ में आया? यह व्रत, तप और भगवान की भक्ति—वह सब विकल्प राग है। वह मोक्षमार्ग नहीं। आहाहा! समझ में आया? **और दूसरौ नांहि।** अब ४८ कलश।

**ये त्वेनं परिहृत्य सम्वृतिपथप्रस्थापितेनात्मना,**
**लिङ्गे द्रव्यमये वहन्ति ममतां तत्त्वावबोधच्युताः।**
**नित्योद्योतमखण्डमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभा-**
**प्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यन्ति ते।।२४१।।**

★ ★ ★

## काव्य - ११९

### आत्म-अनुभव के बिना बाह्य चारित्र होने पर भी जीव अव्रती है

(सवैया इकतीसा)

**केई मिथ्याद्रिष्टी जीव धरै जिनमुद्रा भेष,**
**क्रियामैं मगन रहैं कहैं हम जती हैं।**
**अतुल अखंड मल रहित सदा उदोत,**
**ऐसे ग्यान भावसौं विमुख मूढ़मती हैं।।**
**आगम संभालैं दोस टालैं विवहार भालैं,**
**पालैं व्रत जदपि तथापि अविरती हैं।**
**आपुकौं कहावैं मोख मारगके अधिकारी,**
**मोखसौं सदीव रुष्ट दुष्ट दुरमती[१] हैं।।११९।।**

**शब्दार्थ:**-क्रिया=बाह्यचारित्र। जती (यति)=साधु। अतुल=उपमा रहित। अखंड= नित्य। सदा उदोत=हमेशा प्रकाशित रहनेवाला। विमुख=परांमुख। मूढ़मती=अज्ञानी। आगम=शास्त्र। भालैं=देखें। अविरती (अव्रती)=व्रत रहित। रुष्ट=नाराज। दुरमती=खोटी बुद्धिवाले।

**अर्थ:**-कई मिथ्यादृष्टि जीव जिनलिंग धारण करके शुभाचार में लगे रहते हैं, और कहते हैं कि हम साधु हैं, वे मूर्ख अनुपम, अखण्ड, अमल, अविनाशी और सदा प्रकाशवान ऐसे ज्ञानभाव से सदा पराङ्मुख हैं। यद्यपि वे सिद्धान्त का अध्ययन करते, निर्दोश आहार-विहार करते और व्रतों का पालन करते, तो भी अव्रती हैं। वे अपने को मोक्षमार्ग का अधिकारी कहते हैं, परन्तु वे दुष्ट मोक्षमार्ग से विमुख हैं, और दुर्मति हैं।।११९।।

---

१. दुरमती - ऐसा भी पाठ है।

**काव्य-११९ पर प्रवचन**

**आत्म-अनुभव के बिना बाह्य चारित्र होने पर भी जीव अव्रती है।** यह अन्तर्दृष्टि अनुभव के बिना बाहर के पंच महाव्रत आदि पाले, नग्न रहे, वह अव्रती है। यहाँ तो बिना ठिकाने के व्रत हों तो कहे, हो गया चारित्र। हो गये आचार्य भगवान। आहाहा! कुकर्म के फल भी आयेंगे, कठोर पड़ेगा भाई तुझे! दुनिया तो पागल है पूजा करे। पागल बेचारे... राग घटाने.... बड़ा करने। आहाहा! उसकी अपेक्षा महाराज कितना छोड़कर बैठे। स्त्री और पुत्र.... क्या छोड़ा? मिथ्यात्व छोड़े बिना छोड़ा क्या? जिसने मिथ्यात्वभाव छोड़ा नहीं, उसने कभी कुछ छोड़ा नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं, देखो न! **आत्म-अनुभव के बिना....** भगवान, पुण्य-पाप के राग से रहित, ऐसी अन्तर चीज़ की अनुभव दृष्टि बिना **बाह्य चारित्र होने पर भी....** बाह्य व्रत पालन करे, नग्नपने शरीर से ब्रह्मचर्य पालन करे, आजीवन बालब्रह्मचारी हो, परन्तु भगवान आत्मा के अनुभव बिना वह अव्रती है। आहाहा! बहुत कठिन काम। समझ में आया? भगवान चैतन्य आनन्द का जिसे स्पर्श नहीं, जिसे अनुभव नहीं, जिसे वेदन नहीं, वह जीव महीने-महीने के अपवास करे, सब अव्रती है। आहाहा!

**केई मिथ्याद्रिष्टी जीव धरै जिनमुद्रा भेष, क्रियामैं मगन रहैं कहैं हम जती हैं।... केई मिथ्याद्रिष्टी जीव धरै जिनमुद्रा भेष,....** जिनमुद्रा कौनसी? नग्न, हों! वस्त्रवाली जिनमुद्रा, वह तो व्यवहार से भी जिनमुद्रा नहीं है। आहाहा! जिनमुद्रा ऐसे वीतरागी केवल, आहाहा! लो, प्रकाश हुआ देखो। जिनमुद्रा... आहाहा! नग्नपना, पंच महाव्रत, २८ मूलगुण ऐसे पाले, फिर भी **क्रियामैं मगन...** यह राग की क्रिया है। **कहैं हम जती हैं...** हम साधु हैं। मूढ़ हो। अब कठिन लगे। परन्तु कुछ तो करते हैं या नहीं दूसरों की अपेक्षा? राग की क्रिया करते हैं दया-दान-व्रत आदि, दृष्टि तो मिथ्यात्व है। राग से रहित भगवान आत्मा का तो अनुभव (है नहीं)। जिसे दृष्टि में लेना है, वह तो लिया नहीं और मन्द राग की क्रिया करके करते हैं और अव्रती हैं। कहते हैं कि हम तो जति हैं। जति अर्थात् साधु, हों! वे बाबा जति, वह नहीं।

**अतुल अखंड मल रहित सदा उदोत,...** यह आया न। **कई मिथ्यादृष्टि जीव**

**जिनलिंग धारण करके शुभाचार में लगे रहते हैं।** है, अर्थ में है। शुभाचार में लगे रहते हैं। आहा! सामायिक करना, ऐसा करना, मिच्छामि दुक्कडं, खमासमणा। २४ घण्टे शुभक्रिया में मगन रहे। **अतुल अखंड मल रहित सदा उदोत,...** भगवान आत्मा... **ऐसे ग्यान भावसौं विमुख मूढ़मती हैं।** आहाहा! क्या बातें प्रभु यह तेरे घर की! नग्नमुद्राधारी की बात करते हैं, हों! आहाहा! दिगम्बर लिंग धारण किया और शुभाचार में मग्न रहे।

भगवान ज्ञानभानु ये **ग्यान भावसौं विमुख**—उससे विमुख हैं। मूढमति हैं। दो विशेषण लिये। पहले कहा मिथ्यादृष्टि, दूसरा कहा मूढमति। भारी कठिन परन्तु, भाई! बेचारे इतना पालते हैं न, कहते हैं लो। क्या पाले? धूल पाले। भगवान आनन्दस्वरूप निष्क्रिय रागरहित की तो दृष्टि है नहीं। वह पाले वह ....। पाले क्या? खोटे कर्म करे। समझे? **ऐसे ग्यान भावसौं विमुख मूढ़मती हैं।** आहाहा! कषायेला शब्द नहीं कहना। सुन न... यहाँ तो स्पष्ट बात करते हैं, लो। '**लिङ्गे द्रव्यमये वहन्ति ममतां तत्त्वावबोधच्युताः**' तत्त्वबोध से च्युत—भ्रष्ट हैं। अखण्ड आनन्द का तो बोध है नहीं और राग की क्रिया में मग्न हैं, वे मूढ़मति हैं। इसके अतिरिक्त इत्यादि-इत्यादि बात है थोड़ी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १४६, भाद्र शुक्ल ६, शुक्रवार, दिनांक २७-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद ११९ से १२४**

इस ओर। '**ये त्वेनं परिहृत्य संवृतिपथप्रस्थापितेनात्मना**' ऐसा कहा। '**संवृतिपथ।**' कल्पना..., ऐसा कहा भाई ने।

**मुमुक्षु :** अध्यात्म तरंगिणी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यवहार राग है, वह कल्पना है, कथनमात्र है। वस्तु का स्वरूप नहीं। समयसार नाटक, सर्वविशुद्धि अधिकार। ४८ कलश है न। यह तो चला था। फिर से।

**केई मिथ्याद्रिष्टी जीव धरै जिनमुद्रा भेष,**
**क्रियामैं मगन रहैं कहैं हम जती हैं।**
**अतुल अखंड मल रहित सदा उदोत,**
**ऐसे ग्यान भावसौं विमुख मूढ़मती हैं॥**
**आगम संभालैं दोस टालैं विवहार भालैं,**
**पालैं व्रत जदपि तथापि अविरती हैं।**
**आपुकौं कहावैं मोख मारगके अधिकारी,**
**मोखसौं सदीव रुष्ट दुष्ट दुरमती हैं॥११९॥**

क्या कहते हैं? **केई मिथ्याद्रिष्टी जीव...** चिदानन्दस्वरूप अखण्ड परमात्मा मैं हूँ, ऐसी अनुभव दृष्टि तो है नहीं और अकेला क्रिया-नग्नपना धारण करता है। **कई मिथ्यादृष्टि (जीव) जिनलिंग धारण करके शुभाचार में लगे रहते हैं।** है न? **जीव धरै जिनमुद्रा भेष क्रियामैं मगन रहैं।** अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य—ऐसा जो शुभभाव—राग, **उसमें मगन रहैं कहैं हम जती हैं...** कहे कि हम साधु हैं। **अतुल अखंड मल रहित सदा उदोत,** परन्तु भगवान आत्मा राग की क्रिया से भिन्न है। जिसकी तुलना नहीं, (ऐसा) अखण्ड द्रव्यस्वभाव मलरहित और सदा उद्योत त्रिकाल प्रगटरूप सच्चिदानन्द-स्वभाव ऐसा ज्ञानभाव, ऐसा अपना ज्ञायकभाव, शुद्धभाव... **विमुख मूढमति हैं...** उससे

विमुख है और क्रिया-व्रत-तप आदि करता है, मूढ़मति है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **सदा पराङ्मुख हैं,** लो। मूरख है ऐसा लिखा है। अर्थ में लिखा है। मूरख है। मूलचन्दभाई! हाँ, फिर बात आयेगी। यह तो पहला मूर्ख... **( हम साधु हैं ), ये मूर्ख अनुपम, अखण्ड अमल अविनाशी और सदा प्रकाशमान ऐसे ज्ञानभाव से सदा पराङ्मुख हैं।** अर्थ में लिखा हैं, हों! आहाहा!

जिसे, आत्मा दया-दान-व्रत आदि का परिणाम विकल्प-राग से भिन्न है, ऐसी जिसे दृष्टि नहीं, अपने निज स्वभाव का ज्ञान नहीं और निज स्वभाव का वेदन नहीं, वे मूढमति व्रत आदि तप करके कहे कि हम साधु हैं, ऐसा मानते हैं, वे मूढ़मति हैं, मूर्ख हैं। कहो, समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यही चल रहा है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लो, बात तो सच्ची। यह तो व्यवस्थित व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। व्यवस्थित व्यवहार भी नहीं। आहाहा! पाटनीजी! आहाहा! उनके तो पंच महाव्रत, २८ मूलगुण, श्रावक क्षुल्लक (हो) तो भी उसके बारह व्रत निर्दोष होते हैं। आहाहा! समझ में आया? देव क्या कहते हैं? गुरु कैसे होते हैं? धर्म कैसे प्रगट होता है? उसकी तो खबर नहीं। यह व्रत पालना और अपवास करना, भूखा मरना। सेठ! **ऐसे ग्यान भावसौं विमुख मूढ़मती हैं।** अहो! निजानन्द प्रभु विकल्प की, राग की क्रिया से बिल्कुल विमुख—बिल्कुल भिन्न है। उसकी दृष्टि तो है नहीं और अकेले व्रत-तप करते हैं। जेठाभाई! परन्तु लोगों को भारी कठिन।

**मुमुक्षु :** यह यहाँ करते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसके लिये यह भी कहाँ है? आहाहा!

**आगम संभालैं...** है न? सिद्धान्त का अध्ययन करते हैं बराबर सवेरे-दोपहर-शाम-रात्रि। आहाहा! शास्त्र-सिद्धान्त सर्वज्ञ का कहा हुआ। सिद्धान्त को सम्हाले—अध्ययन करे, वह तो विकल्प है, राग है। आहाहा! समझ में आया? **और निर्दोष**

**आहार-विहार करते हैं,...** लो। **दोस टालैं...** है न? यह तो उसके बदले दोष टाले। उसके लिये बनाया हुआ आहार उद्देशिक आदि ले नहीं। **दोस टालैं...** आहार और विहार निर्दोष करते हैं। हैं? **विवहार भालैं...** व्रतों का पालन बराबर करे। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, शरीर से—काया से आजीवन ब्रह्मचर्य पाले। तो क्या हुआ? वह तो राग है। आहाहा! वह कहीं आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि व्रतों का पालन करे तो भी **पालैं व्रत जदपि तथापि अविरती हैं।** वे अव्रती हैं। आहाहा! दृष्टि मिथ्या है, वहाँ व्रत कैसे? सेठ! आहाहा! स्वरूप क्या चीज़ है अन्दर? आनन्दस्वरूप ज्ञाता, राग की क्रिया से पार ऐसी अन्तर की दृष्टि (और) स्व का तो आश्रय तो है नहीं और एक क्रियाकाण्ड में माने कि हम साधु हैं, (वह) मूर्ख है, मिथ्यादृष्टि है। मूलचन्दभाई!

**मुमुक्षु :** लोगों को दिखावे में तो आये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दिखाव नहीं और यह तो सच्चा हो, परन्तु अन्तर स्व के आश्रय की दृष्टि नहीं, वह अव्रती मूढ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पालन करे, कहा है न। न पालन करे, उसकी यहाँ बात नहीं। व्रत पाले, शास्त्र पढ़े, कहो। आगमदोष टाले। ४२-४७-९६ दोषरहित आहार ले। समझ में आया? आहाहा! परन्तु वह तो सब विकल्प-राग की क्रिया है। आहाहा! राग से भगवान भिन्न है। यह तन्दुल का दृष्टान्त देंगे। तन्दुल और उसके ऊपर का छिलका दोनों भिन्न चीज़ हैं। यह २८ मूलगुण, पंच महाव्रत का विकल्प तो छिलका है। आहाहा! समझ में आया?

अभी सम्यग्दर्शन क्या और सम्यग्दर्शन का विषय क्या और किसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है—यह खबर नहीं। समझ में आया? निर्विकल्प सम्यग्दर्शन सातवें में होता है, लो एक वेशधारी ने कहा। वहाँ मैं तो बैठा था ऐसे। अपने कहाँ किसी को... अपने क्या काम है? परन्तु ये भाई बैठे थे, हमारे सेठी के पुत्र महेन्द्रभाई। वे फिर जरा बोले। महाराज, तुमको खबर नहीं कि निर्विकल्प सम्यग्दर्शन सातवें में क्या, चौथे में होता है। ऐई, चला विवाद। फिर लेख में आया कि महाराज स्वामीजी बैठे थे, कुछ बोले नहीं। क्या बोले? किसके सामने बोले? खोटे कर्म कर डाले हैं। यह कुछ यहाँ

सब पत्रिका में आया है। अपने कुछ बोले नहीं। बैठा था। तुम थे ? नहीं। महेन्द्रभाई थे। मुम्बई। महेन्द्रभाई थे। महेन्द्रभाई जरा सा बोल गये। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र... प्राण जाये तो भी दूसरे को माने नहीं, ऐसी जिसकी श्रद्धा हो तो भी वह राग है।

**मुमुक्षु :** वह भी क्या है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! और उस श्रद्धासहित पंच महाव्रत, नग्नपना—अचेलपना, खड़े-खड़े आहार, एक बार आहार, ऐसी क्रिया करे और निर्दोष आहार-विहार, देखकर चले बराबर ध्यान से कि कोई एकेन्द्रिय जीव को भी दु:ख न हो, शान्ति से-धीरज से चले—ऐसी क्रिया करे, परन्तु भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, राग और व्यवहार संसार से भिन्न है, ऐसी दृष्टि बिना ऐसा व्रतधारी भी मूर्ख और अव्रती है। आहाहा! कठिन पड़े मूल तो भारी! समझ में आया ? मार्ग ऐसा है।

**आपुकौं कहावैं मोख मारगके अधिकारी,** यह '**संवृतिपथ**' का अर्थ किया। हम तो मोक्षमार्ग के अधिकारी हैं। व्रत पालते हैं, त्याग किया, तपस्यायें करते हैं, स्त्री-कुटुम्ब-परिवार-दुकान-धन्धा सब छोड़ दिया है।

**मुमुक्षु :** रिद्धि-सिद्धि छोड़ी है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, रिद्धि-सिद्धि छोड़ी, और अभी ऐसा आया है वहाँ। हमने रिद्धि-सिद्धि छोड़कर दीक्षा ली है। ऐसे ही दीक्षा नहीं ली है, एक व्यक्ति ने अब ऐसा कहा। अरे, कहाँ ऋद्धि थी तेरी बाहर ? ऋद्धि-सिद्धि तो अपने आनन्द में अपने स्वभाव में है। उसे छोड़कर दीक्षा ली है। आहाहा! बाहर की ऋद्धि-सिद्धि तेरी कहाँ से आयी ? शरीर-लक्ष्मी-इज्जत-कीर्ति तो सब परचीज़ है, जड़ है। जड़ आत्मा का कैसे हुआ ? और आत्मा उसे छोड़े कैसे ? आत्मा में पर का ग्रहण और त्याग तो है नहीं।

कहते हैं, **आपुकौं कहावैं मोख मारगके अधिकारी, मोखसौं सदीव..** परन्तु मोक्ष की त्रिकाल... **रुष्ट**—नाराज **दुरमती**—खोटी बुद्धिवाले हैं। **रुष्ट** और **दुष्ट दुरमती,** ऐसा है। आहाहा! **वे दुष्ट मोक्षमार्ग से विमुख है और दुर्मति हैं।** आहाहा! चैतन्य भगवान अपना स्वभाव का अवलम्बन लेकर जो सम्यग्दर्शन होता है, उसकी तो खबर नहीं और

उसके बिना अकेले क्रियाकाण्ड में लवलीन रहे, मूर्ख मिथ्यादृष्टि अव्रती है। ४९। नीचे कलश। इस ओर है, इस ओर।

**व्यवहारविमूढदृष्टय: परमार्थं कलयन्ति नो जना:।**
**तुषबोधविमुग्धबुद्धय: कलयन्तीह तुषं न तण्डुलम्।।४९।।**

उसका पद

★ ★ ★

## काव्य - १२०

**पुन:** (चौपाई)

**जैसैं मुगध धान पहिचानै।**
**तुष तंदुलकौ भेद न जानै।।**
**तैसैं मूढ़मती विवहारी।**
**लखै न बंध मोख गति न्यारी।।१२०।।**

**अर्थ:-जिस प्रकार भोला मनुष्य धान को पहिचाने और तुष तन्दुल का भेद न जानै, उसी प्रकार बाह्यक्रिया में लीन रहनेवाला अज्ञानी बन्ध और मोक्ष की पृथक्ता नहीं समझता।।१२०।।**

---

### काव्य-१२० पर प्रवचन

---

**जैसैं मुगध धान पहिचानै।**
**तुष तंदुलकौ भेद न जानै॥**
**तैसैं मूढ़मती विवहारी।**
**लखै न बंध मोख गति न्यारी॥१२०॥**

देखो! बन्ध का मार्ग और मोक्ष का मार्ग भिन्न है। व्रत और तप, यह सब

बन्धमार्ग है। आहाहा! गजब! यह तो भड़के, हों! तुम्हारे वे आचार्य-बाचार्य बैठे हों तो। सुना नहीं न उसे बात में, विचार में, दरकार भी नहीं। सम्यग्दर्शन किसे (कहे) ? साधु पद तो कहाँ रहा? परन्तु सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं, उसकी खबर नहीं। व्यवहारमोक्षमार्ग कैसा, उसकी भी खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं, जैसे भोला मनुष्य... ऐसा लिया है। **मुगध** है न **मुगध। धान को पहिचाने और तुष-तन्दुल का भेद न जाने।** फोतरा—छिलका और अनाज—तन्दुल भिन्न है, ऐसा जाने नहीं। समझ में आया? दृष्टान्त दिया है न वह मोक्षमार्गप्रकाशक में उसका। एक लक्ष्मीवन्त स्त्री थी। बहुत पैसेवाली। तो वह छिलका कूटती थी। थे तो चावल-तन्दुल। क्या कहलाता है वह?

**मुमुक्षु :** कमोद।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कमोद... कमोद। कमोद—तन्दुल—चावल कूटती थी तो ऊपर छिलका दिखे। ऊपर छिलका आये। जो चावल है, वह तो अन्दर जाये, चावल अन्दर जाये। धान जो है चावल, वह तो अन्दर जाये।

डांगर एक प्रकार का धान है। डांगर ही एक प्रकार का धान है। वह धान को कूटती थी तो उसका तन्दुल छूटकर अन्दर जाता था और छिलका ऊपर रहता था। तो यह देखकर (दूसरी ने) उसके पति को कहा, यह करोड़पति बाई है। देखो, छिलका खाण्डती है। इसलिए अपने करो। अपने भी लाओ फोतरा—छिलका। छिलके में क्या है? छिलका दूसरी चीज़ है। इसी प्रकार ज्ञानी को अपने आनन्दस्वरूप की दृष्टि—स्थिरता तो अन्दर माल है। और ऊपर में व्रत आदि के विकल्प की क्रिया—छिलका देखे अज्ञानी, तो आप भी (करते हो), हम भी करें ऐसे। समझ में आया? आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य ने पंच महाव्रत नहीं पाले थे? २८ मूलगुण नहीं लिये थे? निर्दोष आहार नहीं लेते थे? भगवान के दर्शन को नहीं जाते थे? परन्तु वह फोतरा—छिलका है ऊपर का। छिलका मानकर हेय मानते थे। और अन्तर में आत्मा अखण्डानन्द प्रभु ऐसा शुद्धभाव के पिण्ड के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, उसे ही मोक्षमार्ग मानते थे। समझ में आया? यह तो अज्ञानी उसका अनुसरण करे। दृष्टान्त है न एक दूसरा।

जंगल में सर्दी बहुत थी सर्दी। तो उस सर्दी में एक आदमी ने घास इकट्ठा करके दियासलाई लगायी। भड़का हुआ—अग्नि हुई। तो एक बन्दर को (अग्नि) देखकर ऐसा हुआ कि अहो! कहीं (अग्नि) करें, सर्दी बहुत है। तो जुगनू है न जुगनू। क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** जुगनू।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चमकते जीव। वहाँ सम्मेदशिखर में बहुत थे। सम्मेदशिखर हम बाहर रहे थे न, बीस पंथी के (स्थान) में रहे थे। नीचे रहे थे। रात को कहाँ चले जाते? रात्रि में क्या कहलाता है उसका नाम?

**मुमुक्षु :** जुगनू, आगिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आगिया। अपने (गुजराती में) आगिया कहते हैं।

आगिया अर्थात् आग जैसे हों। चमक-चमक-चमक। दूसरे को ऐसा लगे कि भूत है। भाई, मैंने कहा, आगिया (जुगनू) हैं। भूत-बूत कोई नहीं। जंगल में है न! हम तो रात्रि को वहाँ रहे थे न? वहाँ वे आवे। भूत लगता है। अरे, यह तो जीव है। बहुत... बहुत थे हजारों। तो बन्दर ऐसा (सोचे)। इस आदमी ने तो घास सुलगायी इस दियासलाई से। उसने घास इकट्ठा करके जुगनू को पकड़कर बन्दर ने उसमें डाला। तो भड़का होगा? धूल भी नहीं होगा। अग्नि होगी अग्नि। बन्दर ने जैसे कॉपी (नकल) की, वैसे यह मूर्ख कॉपी करता है, कहते हैं।

धर्मी जीव तो अपना शुद्ध चैतन्यभगवान का अनुभव और उसका ज्ञान, उसकी रमणता, वह उसकी चीज़ है। और ऊपर से वह पंच महाव्रत आदि का विकल्प आता है। तो उसे देखकर वह अज्ञानी, बन्दर ने जैसा अनुकरण किया, ऐसा यह भी अनुकरण करे। हम भी पालते हैं। क्या पालते हैं? राग को पालते हैं, विकार को पालते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**जैसैं मुगध धान पहिचानै, तुष तंदुलकौ भेद न जानै॥** छिलका क्या है और तन्दुल क्या माल है—उसका भेद—भिन्नता जाने नहीं। **तैसैं मूढ़मती विवहारी।** देखो!

व्यवहार क्रिया करनेवाला अकेला व्यवहारपक्षी मूढ़मति है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! हम व्यवहार तो करते हैं न? व्यवहार तो करते हैं। क्या तेरा व्यवहार? वह तो क्रियाकाण्ड—राग है। **तैसैं मूढ़मती विवहारी, लखै न बंध मोख गति न्यारी। उसी प्रकार बाह्यक्रिया में लीन रहनेवाला अज्ञानी बंध और मोक्ष की पृथक्ता नहीं समझता।** अरे! मोक्षमार्ग तो प्रभु! तेरे चैतन्यस्वभाव के आश्रय से निर्विकारी शुद्ध आनन्द की दशा प्रगट हो, वह मोक्षमार्ग है। समझ में आया? यह व्रत-तप आदि के भाव, वे तो बन्धमार्ग हैं। आहाहा!

**लखै न बंध... लखै** अर्थात् जाने। न जाने बन्ध और मोक्ष गति न्यारी है। दोनों गति न्यारी है। राग व्यवहारक्रिया की दिशा पर है। राग विकार है, दुःख उसका फल है। और अन्तर स्वभाव के आश्रय से (हुआ) अन्तर का मोक्षमार्ग, उसकी गति—ध्येय द्रव्य है, परिणति वीतरागी है और उसका फल आनन्द है। समझ में आया? ऐसे जानते नहीं। उसका यहाँ विशेष स्पष्ट करते हैं। १२१, १२२ और १२३।

**जे विवहारी मूढ़ नर, परजैबुद्धी जीव।** इसकी बड़ी चर्चा चली। पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि नहीं।

**मुमुक्षु :** मूढ़मति।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ तो एक समय की पर्याय को (द्रव्य) माने, वह मूढ़ है। त्रिकाली द्रव्य जो अखण्डानन्द प्रभु है, उसकी तो दृष्टि रह गयी, आत्मा पर्दे में रह गया। एक (समय की) पर्याय(रूप) आत्मा को तो व्यवहार आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? निश्चय आत्मा तो त्रिकाली अनन्त-अनन्त शुद्ध सम्पदा का स्वामी, आहाहा! परमेश्वर परमात्मा भगवान भगवती मूर्ति। आहाहा! समझ में आया? ऐसा निश्चय आत्मा, वह आ गया है अपने नियमसार में।

वास्तव में वही आत्मा है। राग नहीं, निमित्त नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय भी भूतार्थ आत्मा नहीं। कहो, पोपटभाई! आहाहा!

**मुमुक्षु :** अभूतार्थ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यवहार, अभूतार्थ व्यवहार है। इन्होंने अर्थ किया था। एक

व्यक्ति ऐसा कहता था कि व्यवहार अभूतार्थ सही, परन्तु असत्यार्थ नहीं। ले! इन्होंने डाला है। सब अर्थ पाठ में है न! इन्होंने डाला है, हों! अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। अपने को यही चाहिए। यह तो उसकी फिर प्रस्तावना की है। पश्चात् .... गड़बड़ है। उसमें भी अर्थ में गड़बड़ की है। वह है कहीं। आहाहा! कहते हैं,

★ ★ ★

## काव्य - १२१-१२३

**पुनः** (दोहा)

**जे विवहारी मूढ़ नर, परजै बुद्धी जीव।**
**तिन्हकौं बाहिज क्रियाविषै, है अवलंब सदीव।।१२१।।**

**कुमती बाहिज दृष्टिसौं, बाहिज क्रिया करंत।**
**मानै मोख परंपरा, मनमैं हरष धरंत।।१२२।।**

**सुद्धातम अनुभौ कथा, कहै समकिती कोइ।**
**सो सुनिकैं तासौं कहै, यह सिवपंथ न होइ।।१२३।।**

**अर्थः-जो व्यवहार में लीन और पर्याय ही में अहंबुद्धि करनेवाले भोले मनुष्य हैं, उन्हें हमेशा बाह्य क्रियाकाण्ड ही का बल रहता है।।१२१।। जो बहिर्दृष्टि और अज्ञानी हैं, वे बाह्यचारित्र ही अंगीकार करते हैं, और मन में प्रसन्न होकर उसे मोक्षमार्ग समझते हैं।।१२२।। यदि कोई सम्यग्दृष्टि जीव उन मिथ्यात्वियों से शुद्ध आत्म-अनुभव की वार्ता करे, तो उसको सुनकर वे कहते हैं कि यह मोक्षमार्ग नहीं है।।१२३।।**

### काव्य-१२१-१२२-१२३ पर प्रवचन

**जे विवहारी मूढ़ नर, परजै बुद्धी जीव।**
**तिन्हकौं बाहिज क्रियाविषै, है अवलंब सदीव॥१२१॥**

**कुमती बाहिज दृष्टिसौं, बाहिज क्रिया करंत।**
**मानै मोख परंपरा, मनमैं हरष धरंत॥१२२॥**

यह तो परम्परा ऐसा लगे कि समकिती का राग तो परम्परा मोक्ष, ऐसा। यह तो मिथ्यात्वी की बात है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अर्थकार ने डाला है। **सुद्धातम अनुभौ कथा, कहै समकिती कोइ।** लो। समकिती भी शुद्ध आत्मा के अनुभव की कथा कह सकता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **सो सुनिकैं तासौं कहै, यह सिवपंथ न होइ।**

**जे विवहारी मूढ़ नर,..** व्यवहार में लीन। निश्चय से अनारूढ़, व्यवहार में मूढ़। राग आदि परिणाम व्रत के, तप के, पूजा के, भक्ति के, उस व्यवहार राग में मूढ़ है। आहाहा! **व्यवहार में लीन और पर्याय ही में अहंबुद्धि करनेवाले...** उस मूढ़ का अर्थ किया भोला। भोला मनुष्य है बेचारा, कहे। आहाहा! भोला का अर्थ मूर्ख होता है। आहाहा! बातचीत में ऐसा हो न। बनिया-बनिया बात करे न, और ऐसा व्यक्ति आवे। भोला है तू। ऐसा कहकर मूर्ख कहना था वहाँ भोला कहने में (आवे), ऐसा।

**मुमुक्षु :** खोटा लगे बेचारे को।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भोला है। राजा व्यक्ति है, भाई! ऐसा कहे। राजा व्यक्ति अर्थात् भोला मूर्ख।

**मुमुक्षु :** बड़ा व्यक्ति।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो राजा व्यक्ति कहलाये भाई। ऐ भीखाभाई! बनिया को बातों में गाली देना हो तो ऐसा बोले। बात करना आवे नहीं और फिर उसमें बोले कि उसका ऐसा रख। राजा व्यक्ति है, तुमको बापू! वस्तु की खबर नहीं। यह राजा व्यक्ति अर्थात् मूर्ख मनुष्य, ऐसा। समझ में आया?

कहते हैं, व्यवहार में मूढ़-लीन (अर्थात्) पर्याय में अहंबुद्धि करनेवाला भोला मनुष्य। यह शरीर मेरा, पर्यायअंशी मैं हूँ, राग की क्रिया यह मैं हूँ—यह पर्यायबुद्धि है। समझ में आया? **तिन्हकौं बाहिज क्रियाविषै, है अवलंब सदीव।** देखो, सदीव। उसे तो सदाकाल वह क्रिया—व्रत और नियम, वही उसे अवलम्बन है। अवलम्बन है, ऐसा

अज्ञानी मानते हैं। आहाहा! क्रिया करते रहो। करते-करते एक दिन बेड़ा पार हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। भारी कठिन यह। **तिन्हकौं बाहिज क्रियाविषै, है अवलंब सदीव।** है न? **बहिर्दृष्टि और अज्ञानी हैं, वे बाह्य चारित्र अंगीकार करते हैं और मन में प्रसन्न होकर मोक्षमार्ग समझते हैं...** लो। बाह्य क्रियाकाण्ड में बल रहता है, उसका यह अर्थ। **अवलंब सदीव** का अर्थ किया। बल रहता है, ऐसा क्रियाकाण्ड का बल बस, ऐसा। इतने अपवास किये, इतने व्रत पालन किये, इतना ऐसा किया। ऐसे अपने मुख से बस बात करे कि दूसरे को बल है। बहुत त्यागी तपस्वी भाई। यह महीने-महीने के उपवास करे... समझ में आया?

**कुमती बाहिज दृष्टिसौं, बाहिज क्रिया करंत।** मिथ्यादृष्टि अपना निज स्वरूप राग की क्रिया से भिन्न निर्मलानन्द... आया था पहले अतुल, अखण्ड, मलरहित, सदा उद्योत। ऐसी चीज़ को तो जानता नहीं, अनुभव में आया नहीं, दृष्टि में लिया नहीं। ऐसे **अज्ञानी बाहिज क्रिया करंत...** करो बराबर, व्रत पालते-पालते-पालते स्वर्ग में जायेगा। स्वर्ग में जाकर भगवान के पास जायेगा। धूल भी नहीं जायेगा, सुन तो सही! भगवान के पास अनन्त बार गया, क्या हुआ? यह कहते हैं। पत्रिका में आया था पहले कि ऐसी क्रिया करो, स्वर्ग में जायेंगे, बाद में भगवान के पास जायेंगे। वहाँ सीमन्धर भगवान विराजते हैं। अब यहाँ भगवान कहते हैं, ऐसा तो मानता नहीं। कहाँ से जायेगा तू? आहाहा! समवसरण में अनन्त बार गया। समझ में आया?

परमात्मप्रकाश में लिया है—'भवे भवे जिन पूजियो' ऐसा आता है। भव-भव में जिन की पूजा की, भक्ति की, सुना। क्या हुआ? वह तो परद्रव्य की कथा सुनी। 'भवे भवे जिन पूजियो', ऐसा आता है। परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव। दिगम्बर सन्तों ने तो गजब काम किया है। एक-एक गाथा। पूज्यपादस्वामी का समाधिशतक। यहाँ यह परमात्मप्रकाश, यह समयसार। गजब बात है। सम्यग्दर्शन क्या है, यह बताने की चीज़ एक ही है। समझ में आया? ऐसे समझे बिना... कहते हैं, **कुमती बाहिज दृष्टिसौं, बाहिज क्रिया करंत।** अन्तर्मुख क्या चीज़ है, उसकी तो दृष्टि करता नहीं।

**मानै मोख परंपरा,..** अरे! राग क्रिया करो तो परम्परा मोक्ष होगा। पहले शुभभाव करो तो शुभभाव में से शुद्ध में जायेगा। ऐ जेठाभाई! यह सुना था या नहीं?

**मुमुक्षु :** ऐसा ही था।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा ही था। गर्म पानी पीते थे, सामायिक करे, प्रौषध करे, उपधान करते थे। थोथा निकले सब। यह तो महा नग्न मुनि होकर पंच महाव्रत निरतिचार पालन करे, उनके लिये (बनाया हुआ) उद्देशिक आहार आदि (न ले), टाले, दोष टाले। यह उद्देशिक का अभी भारी कठोर हो गया है। गुप्तरूप में पूछा कि इस उद्देशिक आहार का यदि कुछ स्पष्टीकरण हो जाये तो सबमें संगठन हो जाये। उसे मानो कि ऐसे स्वामीजी का अभी बाहर में जोर वर्तता है और लोग खम्मा करते हैं... आहा! मैंने कहा, भैया! मैं तो क्षुल्लक द्रव्यलिंगी भी नहीं मानता हूँ। द्रव्यलिंगी क्षुल्लक कोई है नहीं। उसके लिये (बनाया हुआ) भोजन लेता है तो द्रव्यलिंग कहाँ से आया? शान्ति के कहा, एकदम प्रेम से सुना। मार्ग तो... परमात्मा का विरह हुआ तो भगवान ने जो कहा, उससे (विरुद्ध चीज़) का बचाव करना, ऐसा मार्ग नहीं है। मार्ग तो जैसा है, ऐसा श्रद्धा में लेना चाहिए।

आता है वह स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है। सत्य है न सत्य। सत्यधर्म आता है न! अपने से न पल सके तो बचाव करके ऐसा कहना कि ऐसा भी मार्ग अभी वर्तमान में है, ऐसा नहीं चलता। 'सत्यव्रत' में है। वह दस प्रकार के धर्म हैं न। उसमें आयेगा। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में है। पालन न सके, इसलिए बचाव करना कि ऐसा भी मार्ग है। ऐसा भी.... एक ने प्रश्न किया था कि सिद्धान्त में तो सर्वोत्कृष्ट बात है। इसलिए कोई थोड़ा फेरफार—शिथिलपना हो, तो भी मार्ग एक है। कहा, बिल्कुल बात नहीं।

**मुमुक्षु :** वह अपवाद मार्ग।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अपवाद तो यहाँ विकल्प आये, वह अपवाद मार्ग है। अन्तर उत्सर्ग (मार्ग) और (राग की) उपेक्षा और वीतरागमार्ग अन्दर में हो। राग की उपेक्षा और वीतराग की दशा, राग से उदासीनदशा, वह उत्सर्गमार्ग है। और पंच महाव्रत का विकल्प आना, २८ मूलगुण का (विकल्प आना), वह अपवादमार्ग है। समझ में आया? आहाहा!

अपवाद तो दूसरा भी होता है। ऐ चेतनजी! उसे कहा है एक व्यक्ति ने। आहा! भाई! ऐसा न हो। मार्ग तो जैसा है, ऐसा रखो। वस्तु की स्थिति जैसी है, ऐसे रखो। बचाव न करो। समझ में आया? अनन्त सर्वज्ञ और अनन्त तीर्थंकरों की असातना होती है। समझ में आया? दोष होता है तो दोष को स्वीकार करो। समझ में आया? भगवान ने दोष कहे और तुम न मानो, तो भगवान को ही माना नहीं। देव-गुरु को माना नहीं, शास्त्र को माना नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, अज्ञानी, अपने शुद्ध चैतन्य के आश्रय और अवलम्बन के भान बिना अकेली व्रत और तप की क्रिया करते-करते परम्परा से हमारा मोक्ष हो जायेगा, ऐसा माननेवाला मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? श्रावक को भी लागू पड़ती है सब बात ऐसी। आहा! मार्ग तो जैसा है, ऐसा रखो। श्रद्धा में तो पक्का होना चाहिए। चारित्र न हो और चारित्र मान लेना, ऐसा नहीं है। यह रत्नकरण्डश्रावकाचार में आया है न! '**मोखमगो... गृहस्थो मोखमगो।**' मोही मिथ्यादृष्टि अनगार राग को धर्म माननेवाला पुण्य की क्रिया से धर्म होगा, परम्परा से होगा। ऐसे अज्ञानी (से तो) गृहस्थ समकिती मोक्षमार्ग में है। समझ में आया? आहाहा!

'**गृहत्थो मोखमगो**' है न! गृहस्थ मोक्षमार्ग में है और अनगार मूढ़ है। उल्टा मार्ग है। आहा! अभी मार्ग की खबर नहीं, मार्ग की प्रतीति नहीं और चारित्र व्रत हो गया उसे? आहाहा! कहते हैं कि **मनमैं हरष धरंत...** ऐसा तो नहीं करते हैं। ऐसा तो हम करते हैं न! शरीर से ब्रह्मचर्य पालते हैं, स्त्रियों का त्याग किया है, दुकान-धन्धा छोड़ दिया है। इतना तो पालन किया या नहीं? **मनमैं हरष धरंत...** ऐसी क्रिया करके हर्ष धरे। किसी को थोड़े भव में हो, हमें ज्यादा भव में (हो, परन्तु) मोक्ष तो हमारा होगा उसमें से। ऐसा मूढ़ मिथ्यादृष्टि मानते हैं। आहाहा! जिनेश्वर वीतरागमार्ग के अतिरिक्त यह ऐसी बात कहीं होती नहीं। आहा! देखो!

**सुद्धातम अनुभौ कथा, कहै समकिती कोइ।** उसमें से दो न्याय निकालना है कि सम्यग्दृष्टि आत्मा का भानवाला शुद्धातम, वह मोक्षमार्ग—ऐसा कहे। भाई! यह कहे, कह सके।

**मुमुक्षु :** कहे, अनुभव की बात करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। मार्ग तो यह है, भाई! भले चौथे गुणस्थान में हो, मार्ग तो यह है। **सुद्धातम अनुभौ...** यह क्रियाकाण्ड तो अशुद्ध परिणाम है, मैला है। मैल का वेदन और अनुभव तो संसार है। आहाहा! **सुद्धातम अनुभौ कथा,... यदि कोई सम्यग्दृष्टि जीव उन मिथ्यात्वियों से शुद्ध अनुभव की वार्ता करे,...** देखो! **कहै समकिती कोइ, सो सुनिकैं तासौं कहै,...** यह सुनकर कहे कि यह मोक्षमार्ग नहीं, नहीं। यह तो तुम्हारी ऊँची बात यह केवलज्ञान लेने की। अभी पहली तो कहो, ऐसा कितने ही कहते हैं। उसे ऐसा कि यह तो तुम्हारी एम.ए. और एल.एल.बी. की बातें हैं। परन्तु पहले एकड़ा तो सीखो। यही एकड़ा है, सुन तो सही! आहाहा! भगवान तीन लोक के नाथ परमेश्वर अपने निजस्वरूप की सम्हाल करे बिना तेरे क्रियाकाण्ड सब मूर्खाई से भरपूर है। बालव्रत और बालतप है। आता है न वह पुण्य-पाप अधिकार में।

**सो सुनिकैं तासौं कहै,...** वापस वह और सामने बोले। मौन रहे, ऐसा नहीं वापस, ऐसा। **यह सिवपंथ न होइ।** ऐसा तो मोक्षमार्ग होगा? एल.एल.बी. की बातें जैसा। सुन तो सही! मार्ग तो सम्यग्दर्शन से उत्पन्न होता है, सम्यग्दर्शन द्रव्य के अनुभव से उत्पन्न होता है। बाकी कोई चीज़ है नहीं। इसके अतिरिक्त तेरी लाख बात कर, करोड़ बात, सब मिथ्याश्रद्धा का पोषण है। कहो, जेठाभाई! व्यवहार का प्राण पोषना, व्यवहार की देशना देना। अब यहाँ का सुनकर ऐसा बाहर निकला है। आहाहा! कहो, आचार्य नाम धरावे। यहाँ की बात निकलने के पश्चात् उन्होंने यह तो मूल मारा... हमारे साधु को कोई....

**मुमुक्षु :** लोग निश्चय में खिंच जायें, इसलिए यह व्यवहार....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** रखो व्यवहार। सत्य में खिंच जायें, इसकी अपेक्षा असत्य रखो। उसमें ऐसा हो गया।

कोई आये थे बेचारे, हों! चार व्यक्ति यहाँ १०-१२ वर्ष पहले। थे वे छोटी उम्र के दो-चार। परन्तु यह तुम्हारा अभ्यास करना हो तो यहाँ क्या सुविधा है? कहा, यहाँ तो सुविधा कुछ नहीं। सबको (अपनी) जिम्मेदारी से रहना। जिसे अपने बल के ऊपर

रहना हो, वह रह सकता है। सुविधा फिर यह अनुकूल... यहाँ तो गौशाला भराये। लोग बहुत आते हैं क्योंकि एक चलना नहीं, विहार करना नहीं, तैयार आहार मिले और यहीं के यहीं रहना, ....मजा मिले। यहाँ ऐसा मार्ग नहीं, भाई! कहा। यहाँ तो अभ्यास करना हो तो अपने खर्च से यहाँ आकर करे। ऐसे बहुत पत्र आते हैं इनको। कहे, महाराज! अब वहाँ रहने का भाव है। मेरी उम्र ६० वर्ष की हो गयी है। कोई है नहीं। तो हमें यहाँ किस प्रकार पकाना–रहना? यह हमको कुछ मदद करो। ऐसी मदद करने जाये तो यहाँ पार नहीं पड़े। इतने सब बुजुर्ग और वृद्ध होकर आवे। ऐ पोपटभाई!

यहाँ तो कहते हैं कि मिथ्यात्वियों से शुद्ध अनुभव की वार्ता करे। लो, भाई! ऐसा आया न? एक तो वार्ता कहे और मिथ्यात्वी को कहे।

**मुमुक्षु :** समयसार में १३८वीं गाथा में....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आया है न? उसमें क्या है? आहाहा! कहे। मिथ्यादृष्टियों को समझावे। मिथ्यादृष्टि की सभा है। उसमें सम्यग्दृष्टि उसे समझाता है। यह मार्ग है भाई! ऐसा मार्ग है। 'अप्रतिबुद्ध' नहीं आता? अप्रतिबुद्ध को समझाते हैं, समझाते हैं, ऐसा पाठ है समयसार में। अब कितने कहे कि समयसार तो मुनियों को वाँचना। मुनि हो गया, उसमें क्या है? समझ में आया? अप्रतिबुद्ध ऐसा कहते हैं, उसके लिये अप्रतिबुद्ध को समझाते हैं। आहा! कहो, समझ में आया?

**सो सुनिकैं तासौं कहै,...** मिथ्यादृष्टि को सुनाते हैं। सुन तो सही! मोक्ष का मार्ग तो अपने निज आत्मा के आश्रय से होता है। व्रत–तप की क्रिया पराश्रय से मोक्ष का मार्ग नहीं। आहा! उसको सुनकर यह कहे। **यह सिवपंथ...** सादी भाषा की। **यह सिवपंथ न होइ।** अर्थात् ऐसा कठोर मार्ग पहला नहीं होता, ऐसा। पहला कठोर नहीं। फिर एल.एल.बी. हो। पहले तो सिर्फ.... राग मन्द हो, क्रिया हो तो आगे बढ़ेगा। इसलिए उसे कहा न, राग की मन्दता और क्षयोपशम भाव द्रव्यनिक्षेप से... अपने आया था। यहाँ पंचास्तिकाय में है। वे लोग ऐसा कहते हैं। और यह बड़ी चर्चा (संवत्) १९८० में हुई। राणपुर। ८० के वर्ष।

देखो, मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक गया, परन्तु क्षयोपशमभाव से गया। राग का

पुरुषार्थ मन्द किया। ऐई पाटनीजी! ८० के वर्ष। कार्तिक-मगसिर होगा। कार्तिक कृष्ण न? नहीं? कार्तिक कृष्ण। ....चातुर्मास था बोटाद। वहाँ से आये। इकट्ठे हुए राणपुर। अन्दर चर्चा होती थी। मैं था ऊपर। चर्चा होती थी कि यह नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, परन्तु वह राग का क्षयोपशम तो सही। क्षयोपशमभाव से गया। धूल भी नहीं, मैंने कहा, क्षयोपशमभाव। ऐ पोपटभाई! ऐसा तो हमारे ठेठ से चलता है। कितने वर्ष हुए? २० और २७, ४७ वर्ष। ऐई चिमनभाई! आहाहा!

वे नीचे बात करते थे। दोनों गुजर गये हैं। इन रामजीभाई के ससुर थे जयचन्दभाई और हमारे मूलचन्द, दोनों बातें करते थे। ऐसा हो न... नौवें ग्रैवेयक गया परन्तु पुरुषार्थ था न, क्षयोपशमभाव था न। वह क्षयोपशम द्रव्यनिक्षेप से, यह क्षयोपशम है। भावनिक्षेप से नहीं, कहा। ऐ मूलचन्दभाई! सम्प्रदाय में बात चलती थी। आहाहा! वापस यहाँ आये तो वह की वह मण्डली वापस। तुम्हारे मांडे अब। मूलचन्दभाई! तुम्हारी महिलायें तो वहाँ प्रमुख थीं उन क्रियाकाण्डियों में। जब से समझे, तब से सवेरा। उसमें क्या हुआ? भूल तो अनादि की है। उसमें क्या है? आया न कहीं आया था अपने, नहीं? समझे तब से सवेरा। नहीं आया?

**मुमुक्षु :** उस बाई ने गाया था।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। बहिन बोली थी न। भक्ति नहीं बोली थी बहिन? छिन्दवाड़ा? ललितपुर। ललितपुर की बहिन थी न? वह पन्ना था वहाँ पन्ना। उसमें था। 'सवेरा', नहीं था? तुम थे?

**मुमुक्षु :** जब जागे तब सवेरा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, जब जागे तब सवेरा। कुछ गायन गाया था। बाई होशियार। एक पन्ना है। पन्ना अपने यहाँ दे गये हैं, हों! थे तो सही। देखो यहाँ... बहिन का रस बहुत है वहाँ। 'न समझो अभी मित्र कितना अन्धेरा, जभी जाग जाओ तभी है सवेरा।' धरमचन्दजी! एक बाई है ललितपुर की। वहाँ आई थी। 'न समझो....' तुम थे या नहीं? थे। 'न समझो अभी मित्र कितना अन्धेरा, जभी जाग जाओ तभी है सवेरा। गई सो गई मत गई को बुलाओ, नया दिन हुआ है नया डग बढ़ाओ।' भूल गई, गई। अब

उसकी क्या लगायी है? यह कहते हैं अपने यहाँ। 'न सोचो न लाओ वदन पर मलिनता, तुम्हारे करों में हैं कल की सफलता।' यह तो हिन्दी है तुम्हारी। एक बार उसके पति को पूछा था। वह कहे, यह तो विवाह करके आयी है, तब से यह सब ऐसा करती है। व्याख्यान सुनने जाये, उसका (गीत) बना दे एकदम। व्याख्यान सुनकर बना दे। बहुत नरम बाई थी। आयी थी यहाँ हमारे पास।

'जली ज्योति बनकर ढलेगा अन्धेरा। जली ज्योति बनकर ढलेगा अन्धेरा, जभी जग जाओ तभी है सवेरा।' जब से जागो तब से सवेरा—सवेरा ही है। तुम थे वहाँ? तुम नहीं थे। एक बाई है। ऐसे अपने पास बहुत थे। कहीं है न! स्वाध्यायमन्दिर में होंगे। ऐई पाटनीजी! लेना एक-एक। 'पीओ मित्र शोले समझकर के पानी, दु:खों ने लिखी है सुखों की कहानी। नहीं पढ़ सका कोई किस्मत का कासा, नहीं जानता कब पलट जाय पासा। कल जो मिला मंजिलों का बसेरा। कल जो मिला मंजिलों का बसेरा, जभी जाग जाओ तभी है सवेरा।' ठीक है न! यह हिन्दी को ठीक पड़ता है। यह एक वहाँ है। अपने स्वाध्यायमन्दिर में होगा। 'गाथायें मिले तो उन्हें तुम दुलारो, प्रगटती प्रेम से मिले तो पुकारो। दु:खों की सदा उम्र छोटी रही।' क्या कहते हैं? सेठ!

**मुमुक्षु :** दु:खों की उम्र सदा छोटी रही।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अर्थात्?

**मुमुक्षु :** थोड़ी....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** थोड़ी सी बस... बस... आहाहा! यह तुम्हारे मुख से कहलवाना था हमें। दु:ख की तो उम्र थोड़ी है और सुख की उम्र अनन्त, सादि-अनन्त है। ठीक?

'दु:खों की सदा उम्र छोटी रही है, सदा शम सुखों के ही भोग भोगती रही है। सदा पतझड़ों ने बहारों को छेड़ा।' यह भाषा अपने को समझ में नहीं आती।

**मुमुक्षु :** पतझड़ होगी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पतझड़ यानि क्या?

**मुमुक्षु :** पतझड़ होती है न। पत्ते गिरते हैं न।

**मुमुक्षु २ :** पानखर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ठीक, पानखर। हाँ, 'सदा पतझड़ों ने बहारों को छेड़ा।'

**मुमुक्षु :** फिर वह नये पत्ते आये, उससे पहले पत्ते झड़ते हैं न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अपने को बराबर समझ में नहीं आता। 'गुरुदेव के द्वारा नया दिन मिला है। जो निधियाँ बिखरती वह लूटो हमेशा, अनेक ग्रन्थ मंथन से हीरा निकाला, तुम जौहरी बनके कर दो उजाला। जरा भूल की तो नरक में बसेरा।' यदि मिथ्यात्व की थोड़ी भूल होगी तो नरक में जायेगा। तारणस्वामी तो बहुत कहते हैं। यह लोकरंजन के लिये करेगा, मरकर नरक में जायेगा। तारणस्वामी कड़क हैं।

**मुमुक्षु :** यह तो दोनों कहते हैं, नरक और निगोद।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नरक, निगोद जायेगा। लोकरंजन के लिये... व्यवहार से धर्म है, निश्चयधर्म का कारण है, निश्चयधर्म है। मरकर नरक में जायेगा....।

**मुमुक्षु :** जनरंजन।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जनरंजन। यह तो अपने आता है अष्टपाहुड़ में। 'जरा भूल की तो नरक में बसेरा, जभी जाग जाओ तभी है सवेरा। अभी जाग जाओ तो अभी है सवेरा।' यह पन्ना किसने डाला है ? तुम दूसरा लेना। यह सेठ को चाहिए। भाई ! हमारे सेठ को दो एक। तुम दूसरा ले जाना वहाँ अपने यहाँ से। कहो, समझ में आया ? आहा !

**मुमुक्षु :** बाई ने बनाया ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाई ने बनाया है ललितपुर की (बाई है)। नहीं गाया था अपने ? सुबह में गाया था। तुम नहीं हो। व्याख्यान में गाया था। गाया था। यह वह १७ या २७ में... २७ में आयी है थोड़ी वर्षा। एक व्यक्ति कहता था न। १७ से २७ में बहुत मूसलधार वर्षा आयेगी। नदियाँ और नाला उफान जायेंगे। ऐसी तो नहीं आयी, परन्तु २७ में आयी कुछ थोड़ी-बहुत। आज २७ है न ! बहुत वर्षा होगी। आहा !

यह वर्षा अच्छी है यहाँ तो अपने। पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो जाये, वह सुकाल है। मिथ्यादर्शन है, वह दुष्काल है। समझ में आया ? चाहे तो चारित्र बाह्य का व्रत पाले, परन्तु मिथ्याश्रद्धा है, वहाँ तो उसकी पर्याय में दुष्काल है। आहाहा !

अपने शान्तस्वभाव में से शान्ति का अंकुर न फूटे तो दुष्काल है। यह ४९ आ गया न। अब ५०-पचास है न? यह ५०-५०। क्या ५०? कलश।

**द्रव्यलिङ्गममकार-मीलितैर्दृश्यते समयसार एव न।**
**द्रव्यलिङ्गमिह यत्किलान्यतो ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः।।५०।।**

★ ★ ★

## काव्य - १२४

**अज्ञानी और ज्ञानियों की परिणति में भेद है** (कवित्त)

**जिन्हके देहबुद्धि घट अंतर,**
**मुनि-मुद्रा धरि क्रिया प्रवांनहि।**
**ते हिय अंध बंधके करता,**
**परम तत्तकौ भेद न जानहि।।**
**जिन्हके हिए सुमतिकी कनिका,**
**बाहिज क्रिया भेष परमानहि।**
**ते समकिती मोख मारग मुख,**
**करि प्रस्थान भवस्थिति भानहि।।१२४।।**

**शब्दार्थः-देहबुद्धि=शरीर को अपना मानना। प्रमानहि=सत्य मानना। हिय=हृदय। परमतत्त=आत्मपदार्थ। कनिका=किरण। भवस्थिति=संसार की स्थिति। भानहि=नष्ट करते हैं।**

**अर्थः-जिनके हृदय में शरीर से अहंबुद्धि है, वे मुनि का वेष धारण करके बाह्य चारित्र ही को सत्य मानते हैं। वे हृदय के अन्धे बन्ध के कर्त्ता हैं, आत्म-पदार्थ का मर्म नहीं जानते, और जिन सम्यग्दृष्टि जीवों के हृदय में सम्यग्ज्ञान की किरण प्रकाशित हुई है, वे बाह्यक्रिया और वेष को अपना निज-स्वरूप नहीं समझते, वे मोक्षमार्ग के सन्मुख गमन करके भवस्थिति को नष्ट करते हैं।।१२४।।**

**काव्य-१२४ पर प्रवचन**

आहाहा! **अज्ञानी और ज्ञानियों की परिणति में भेद है।** धर्मी और अज्ञानी की दशा में भेद—अन्तर।

**जिन्हके देहबुद्धि घट अंतर,**
**मुनि-मुद्रा धरि क्रिया प्रवांनहि।**
**ते हिय अंध बंधके करता,**
**परम तत्तकौ भेद न जानहि॥**
**जिन्हके हिए सुमतिकी कनिका,**
**बाहिज क्रिया भेष परमानहि।**
**ते समकिती मोख मारग मुख,**
**करि प्रस्थान भवस्थिति भानहि॥१२४॥**

वेश के प्रमाण में हो, ऐसा कहते हैं। अर्थ दूसरा करेंगे। भवस्थिति को नाश कर डालता है वहाँ। आहाहा! .... आया था। इसका अर्थ बाद में होगा।

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १४७, भाद्र शुक्ल ७, शनिवार, दिनांक २८-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद १२४ से १२९**

यह समयसार नाटक, सर्वविशुद्धि अधिकार, १२४वाँ पद है पद। कलश ५० आ गया। **अज्ञानी और ज्ञानियों की परिणति में भेद है।** अज्ञानी और ज्ञानी की वर्तमानदशा में अन्तर।

**मुमुक्षु :** भूल है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भूल और अभूल, क्या चीज़ है, वह बताते हैं।

**जिन्हके देहबुद्धि घट अंतर,**
**मुनि-मुद्रा धरि क्रिया प्रवांनहि।**
**ते हिय अंध बंधके करता,**
**परम तत्तकौ भेद न जानहि॥**
**जिन्हके हिए सुमतिकी कनिका,**
**बाहिज क्रिया भेष परमानहि।**
**ते समकिती मोख मारग मुख,**
**करि प्रस्थान भवस्थिति भानहि॥१२४॥**

क्या कहते हैं? क्या कहते हैं, देखो! जिसके अन्तर में **देहबुद्धि घट अंतर...** राग और शरीर मैं हूँ, ऐसी जिसकी बुद्धि है, **वे मुनि-मुद्रा धरि...** मुनि की नग्न मुद्रा धारण करे और **धरि क्रिया प्रवांन...** अपनी जो क्रिया है, उसे सच्ची मानता है। उसको सत्य मानते हैं। समझ में आया? देह अर्थात् राग और देह पर घट अन्तरबुद्धि है। अपना आत्मा निर्विकल्प शान्त आनन्दकन्द है, ऐसी तो अन्तर्दृष्टि, अनुभव नहीं। यह अनुभव बिना का प्राणी मुनि मुद्रा धारण करे, नग्नलिंग हो, **धरि क्रिया प्रवांन...** अपनी क्रिया को ही प्रमाण मानते हैं। यह व्रत पालना, दया-दान शुभभाव, यह हमारी क्रिया है, यह हमारा कर्तव्य है। उसको सत्य मानते हैं।

**ते हिय अंध बंधके करता...** वे हृदय के अन्धे। हृदय के अन्ध, है न? अन्दर में

है न अर्थ। मूल शब्द है न, देखो! **वे हृदय के अंध बंध के कर्ता हैं।** ऐसी २८ मूलगुण की क्रिया करे, पंच महाव्रत पाले, नग्नपने रहे, वस्त्ररहित रहे, परन्तु अपना आत्मा आनन्दमूर्ति सच्चिदानन्द ज्ञाता की अन्तर में स्व-आश्रय की दृष्टि के बिना, वे पराश्रित क्रिया **हिय अंध**—यह अन्तर हृदय में अन्धा है। **बंधके करता....** वह तो मिथ्यात्वसहित बन्ध ही करते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसी मुनिपने की क्रिया पाले, बाह्य व्रत-तप, अपवास छह-छह महीने के अपवास करे, रूखा खाये। लुख्खा को क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** लुख्खा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कोरा-लुख्खा खाये। परन्तु अन्तर आत्मा आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु का अन्तर में अनुभव और दृष्टि नहीं, समकित नहीं। ऐसी नग्नदशा की क्रियावाले भी अन्ध हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **ते हिय अंध बंधके करता...** कवि हैं न वापस मिलाते हैं। आहाहा! अपना निजस्वरूप भगवान, विकल्प की क्रिया से पार—भिन्न हैं, ऐसी सम्यक् दृष्टि जहाँ नहीं, वहाँ राग की क्रिया को सच्ची मानते हैं। वे हृदय के अन्ध, बन्ध के कर्ता हैं। दर्शनमोह का बन्ध करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**परम तत्तकौ भेद न जानहि...** पंच महाव्रत का शुभभाव, दया-दान-व्रत-तप-अपवास आदि सब शुभराग है। उसको अपना सत्य प्रमाण मानते हैं। **परम तत्तकौ भेद न जानहि...** मैं आत्मा सच्चिदानन्द निर्मलानन्द ज्ञान-दर्शन-आनन्द हूँ, ऐसा तत्त्व का भेद—अन्तर का मर्म—अन्तर का रहस्य नहीं जानते। वस्तु ऐसी है, परन्तु लोगों को ऐसी लगती है। अरे! व्यवहार... कितने कहे, अन्तर किसे दिखने में आता है? व्यवहार क्रिया करे, उससे देखने में आये कि यह साधु है, यह श्रावक है। पत्रिका में ऐसा आता है। आहाहा! **परम तत्तकौ भेद न जानहि...** अन्दर का परमतत्त्व... **आत्म पदार्थ का मर्म नहीं जानते।** अर्थ में लिखा है।

**जिन्हके हिए सुमतिकी कनिका...** अब सुल्टा। जिनके हृदय में अन्तर, मैं ज्ञानानन्द शुद्ध आनन्द की किरण जगी है। समझ में आया? जैसे सूर्य की किरण प्रगट होती है, वैसे अपना आत्मा पुण्य-पाप की क्रिया—राग से रहित और त्रिकाल शुद्ध

आनन्दधाम, ऐसी कणिका जिसके हृदय में जगी है, वे समकिती हैं। कहो, सेठ! बाहर की क्रिया की कुछ कीमत नहीं, ऐसा कहते हैं। कीमत है, बन्ध के कर्ता। आहाहा! अरे! भगवान आत्मा परमतत्त्व की दृष्टि का अभाव और पंच महाव्रत आदि क्रिया और नग्नपना का भाव, वह तो जड़पना है। आहाहा! उसे देहबुद्धि है। राग, वह अचेतन है। आहाहा! **ज्ञानी जिन्हके हिए सुमतिकी....** उसमें आया था न वह यह। वह **हिय अंध बंधके करता।** परन्तु जिसके हृदय में **सुमतिकी कनिका**—किरण। अर्थ में 'किरण' डाला है। एक कणिका जगी, अपना निजानन्दस्वरूप पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् राग से रहित मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति आनन्दकन्द हूँ, ऐसी दृष्टि हुई, उसे सुमति की किरण और कणिका जागृत हुई।

**बाहिज क्रिया भेष परमानहि....** बाह्य क्रिया वेश प्रमाण हो। इन्होंने तो अर्थ दूसरा ही किया है उस अर्थ में। यहाँ तो प्रमाण कहा है। उस वेश को अपना निजस्वरूप नहीं समझते हैं। अर्थ ऐसा किया है। परन्तु यहाँ तो ऐसा कहना है, बाह्य क्रिया हो, वेश प्रमाण हो, निमित्त ऐसा हो, वह कोई चीज़ नहीं। समझ में आया? **बाहिज क्रिया भेष परमानहि....** ऐसा है न? प्रमाण। जैसा वेश है, वैसी यहाँ क्रिया हो। पंच महाव्रत आदि हो, परन्तु अन्तर आनन्दकन्द की कणिका जगी, वह धर्म है। क्रियाकाण्ड, वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

**बाहिज क्रिया भेष परमानहि....** नग्नपना है, अन्दर में आनन्द का अनुभव है और प्रचुर आनन्द का वेदन स्वद्रव्य के आश्रय से प्रगट हुआ है। बाह्य में वेश क्रिया आदि जैसी होनी चाहिए, ऐसी हो। समझ में आया? कहो, मूलचन्दभाई! अन्तर में मुनिपना अन्तर आनन्द की जागृति हुई हो, विशेष आनन्द हो और बाह्य में वस्त्र आदि रह जाये, ऐसी चीज़ नहीं। इसलिए कहा **भेष परमानहि....** यह बात है। सेठ! मुनिपना या समकिती, समकिती को उसके प्रमाण में वेश गृहस्थाश्रम आदि का हो, परन्तु अन्दर चैतन्यरत्न की अनुभवकणिका किरण जगी है तो धर्मी है, मोक्षमार्गी है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** भावलिंग सहित।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। मुनि को भावलिंग हो, अन्तर आनन्द का निर्विकल्प

शान्ति का अनुभव, स्वाद अन्तर उग्ररूप से आता हो, वही वस्तु। बाह्य वेश तो उसी प्रकार से होता है। समझ में आया? ऐसा नहीं कि उसे ऐसी दशा हो तो वेश कैसे भी प्रकार हो। ऐसा नहीं। आता है न, 'जाति-वेश को भेद नहीं कहा मार्ग जो होय।' ऐई! ऐसा नहीं। उसका अर्थ ऐसा किया था। ९५ (संवत् १९९५)।

आता है न आत्मसिद्धि में। ९५ में ऐसा (अर्थ) किया था। कहा मार्ग होय तो जाति-वेश का भेद नहीं, ऐसा अर्थ किया था। ९५। बत्तीस वर्ष हुए। जाति-वेश का भेद नहीं और कहा मार्ग होय, ऐसा नहीं। चाहे जिस जाति और चाहे जिस वेश में मुनिपना उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, परन्तु सम्यक्चारित्र की उत्पत्ति जिसे अन्तर के आश्रय से वीतरागभाव की दशा उत्पन्न हुई, उसका तो वेश, भगवान ने कही वह जाति, भगवान ने कहा वह वेश (होता है)। समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** पन्द्रह भेद से सिद्धि, वह खोटी बात है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खोटी बात है। पन्द्रह भेद से सिद्ध है ही नहीं। श्वेताम्बर में यह कहते हैं, पन्द्रह भेद से सिद्ध। स्त्रीलिंग से सिद्ध, गृहस्थलिंग से सिद्ध, अन्यलिंग से सिद्ध—ऐसे १५ भेद हैं। वीतरागमार्ग में ऐसा है नहीं।

**मुमुक्षु :** सत्य का मार्ग वह रहा ही नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा कि अन्दर में भाव प्रगट हुआ, फिर लिंग चाहे जो हो, ऐसा। ऐसा कहते हैं। ऐई चेतनजी!

हमारे चेतनजी को मिला था। चाहे जो हो। प्रवचनसार में अपवाद नहीं कहा? परन्तु अपवाद का अर्थ क्या? मुनि को उत्सर्ग और पर से उदासीन बिल्कुल वीतरागता हो गयी है। अन्तर में तो उनको पंच महाव्रत का विकल्प आदि होता नहीं। वह (मुनि) अन्तर में रह सके नहीं, तब उन्हें छठवीं भूमिका में—छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत आदि विकल्प होता है, वह अपवादमार्ग है। विकल्प से रहित निर्विकल्प स्थिर होना, वह उत्सर्गमार्ग है। आहाहा! लोगों ने ऐसी गड़बड़ कर दी है न! और वे लोग तो यही बोले श्रीमद् का वाक्य। 'जाति-वेश का भेद नहीं।' चाहे जो जाति और वेश हो, परन्तु मार्ग प्रगट होता है, मुनिपना आता है। ऐसा कहते हैं। ऐसा है नहीं।

वह कहते हैं, **जिन्हके हिए सुमतिकी कनिका...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की दशा प्रगट हुई, **बाहिज क्रिया भेष परमानहि...** उसका जो वेश है, क्षुल्लक का वेश हो तो क्षुल्लक के प्रमाण में क्रिया हो। एक लंगोटी हो.... मुनि हो तो उसके प्रमाण में नग्नदशा और पंच महाव्रत का विकल्प हो। समझ में आया? मार्ग ऐसा है। लोग अपना पक्ष रखने को ऐसी गड़बड़-गड़बड़ करे, वह वीतरागमार्ग में नहीं चलती, भाई! समझ में आया? क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** जिनकल्पी, स्थविरकल्पी....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह दूसरी बात है। जिनकल्पी, स्थविरकल्पी हैं दोनों ही नग्न। स्थविरकल्पी वस्त्रवाले और जिनकल्पी वस्त्ररहित, ऐसी दशा है नहीं। ऐसा है ही नहीं। आहाहा!

यह तो हमारे (संवत्) १९८६ के वर्ष में भावनगर में चर्चा हुई थी। वह आये थे न, एक मुनिन्द्रसागर आये थे। भावनगर में आये थे मुनिन्द्रसागर। चैत्र महीने में। कौन सा वर्ष कहा? (संवत्) १९८६। संवत् १९८६। कितने वर्ष हुए? ४१—१४+२७। वे आये थे। तो कभी देखे नहीं नहीं थे कि दिगम्बर साधु कैसे होते हैं। तो यह वजुभाई को कहा था। भाई! आता हूँ। देखें तो कैसे हैं तुम्हारे (मुनि)। अपने वजुभाई सुतरिया। वे साधु आये। हम गये थे सुनने को। तो (हमारा) व्याख्यान बन्द रखा। लोग बहुत, ऐसे बहुत लोग। फिर व्याख्यान बन्द रखा। लोग बहुत आते थे न!

उसने (कहा), स्थविरकल्पी ऐसा होता है, जिनकल्पी ऐसा होता है। वह मानो कि यह स्थविरकल्पी और हम जिनकल्पी। भाई! जिनकल्पी, हम साधु हैं ही नहीं। भगवान ऐसा कहते नहीं, कहा। समझ में आया? ८६ में, हों! उसने मक्खन लगाने को (कहा), ऐसा भी होता है। वस्त्रसहित स्थविरकल्पी और वस्त्ररहित जिनकल्पी। (तीन काल में ऐसा होता नहीं, कहा)। हमने तो पहले से देखा था न तब समयसार, नाटक समयसार, ऐसा है नहीं। सुमनभाई! यह तो ४०-४५ वर्ष से यह बात बहुत चलती है। गड़बड़... गड़बड़... गड़बड़। ऐसा चले नहीं। यहाँ मार्ग तो, जैसे अनादि परम्परा वीतरागमार्ग चला आया है निश्चय और व्यवहार, वही होता है; दूसरा होता नहीं। पालन न हो, इसलिए उसको अधिक बताना, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया?

वह यहाँ कहते हैं, **जिन्हके हिए सुमतिकी कनिका...** अरे, मैं तो पूर्ण आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ। जैसे सर्वज्ञ ज्ञाता हैं, वैसे मैं तो ज्ञाता हूँ। मेरी चीज़ में कोई राग का करना, ऐसा है नहीं। ऐसे भानपूर्वक जिसे अन्तर में संयम अर्थात् चारित्रदशा हुई, उसे तो वेश भगवान ने कहा ऐसा होता है, दूसरा होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** जिनकल्पी अकेले विचरें.....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अकेले। और स्थविरकल्पी अधिक (इकट्ठे) और वस्त्रसहित, (ऐसा) उसमें (-अन्य में) है। अपने उसमें है स्थविरकल्पी...

**मुमुक्षु :** इसमें है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अपने है न, उसमें है न स्थविरकल्पी....

समयसार नाटक तो हमने बहुत वर्ष पहले देखा था। (संवत्) १९७८ के वर्ष से। समझ में आया? कहा था वह भाई, नहीं? नागनेश। नागनेश में समयसार था न। अपने हैं यहाँ। वह ७८ के वर्ष से देखा। २२ और २७—४९ वर्ष हुए। वह कहा था न एक बार। कि यह समयसार प्रमाण क्यों है? महाविदेह में कुन्दकुन्द आचार्य गये थे, इसलिए उनका वचन प्रमाण है, ऐसा लिखा है। बताया था न! ७८ की बात है। ४९ वर्ष। उसमें वहाँ आया था कि स्थविरकल्पी और जिनकल्पी दोनों ही वनवासी और नग्न हैं। समझ में आया? स्थविरकल्पी वस्त्रसहित हो और जिनकल्पी नग्न हो, ऐसा वीतरागमार्ग नहीं। समझ में आया? आहा!

तो यहाँ कहते हैं, **बाहिज क्रिया भेख परमानहि।** इसका अर्थ तो ऐसा है। **वे बाह्यक्रिया और वेश को अपना निज स्वरूप नहीं समझते हैं,...** ऐसा कहते हैं भाई! उसके अर्थ में ऐसा कहा है। अपने अर्थ तो जैसा हो, वैसा लेते हैं। प्रमाण है, इसमें प्रमाण है। प्रमाण है न उसमें मूल में प्रमाण है। ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? अन्तर में सम्यग्दर्शन स्व चैतन्यप्रभु निर्विकल्प आनन्द का धाम, ऐसा जहाँ अन्तर में अनुभव हुआ तो चौथे गुणस्थान से सम्यग्दृष्टि... समझ में आया? और आगे बढ़कर द्रव्य का—वस्तु का तीव्र आश्रय करके जो चारित्र जो प्रगट हुआ, वे भावलिंगी सन्त यथार्थ हैं।

और उनको द्रव्यलिंग नग्नपना और २८ मूलगुण के विकल्प होते हैं। दूसरी चीज़ होती नहीं। मूलचन्दभाई! मार्ग तो ऐसा है, भाई! समझ में आया? हीरा की डिब्बी—हीरे को रखने की डिब्बी भी दूसरे प्रकार की होती है। कहीं थैली में डाले? थैला। शण-शण। शण का थैला होता है न, शण का, उसमें हीरा रखे? उसकी तो वह डिब्बी ही अलग प्रकार की होती है।

हमारे यह लाये थे न। हाँ, ऐ ....भाई। मखमल की और खड्डा। (उसमें) खड्डा-खड्डा। हमने देखा है न। ८० हजार का एक हीरा यहाँ लाये थे बेचरभाई। (संवत्) १९९९ के वर्ष में। जवाहरात के व्यापारी हैं न झबेरी। बेचरभाई आणंदलाल। ८० हजार का और एक ६० हजार का। दो लाये थे बताने को। ८० हजार का छोटा था। ६० हजार का बड़ा था। कहा, ऐसा क्यों? और डिब्बी थी इतनी छोटी। लाल मखमल और खड्डा। उसमें डालकर लाये थे। ऐसा क्यों? दाग और मैलरहित हीरा है ८० हजार का। एक रति का दस हजार रुपया। एक रतिभार का दस हजार। सेठ!

**मुमुक्षु :** महंगाई बढ़ गयी....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो सस्ते का जमाना था। उस समय की—९९ की बात है। २८ वर्ष पहले की बात है। यह रहे सेठी। यह तो पुराने व्यापारी तो ये हैं हीरे के।

**मुमुक्षु :** एक रति का दस हजार, ९३ की बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं। वह तो बड़ा था। आठ रतिभार आठ रतिभार हीरा। अस्सी हजार। तो उसे डिब्बी में रखते हैं या थैले में? इसी प्रकार मुनिपना है, वह तो उसकी नग्नदशा और विकल्प की व्यवहारदशा में ही होता है। समझ में आया?

वेश (उसके) प्रमाण में होता है। वेश दूसरा होता नहीं। अन्यमति का वेश हो बाबा का और केवलज्ञान हो जाये और साधुपना आ जाये, ऐसा मार्ग है नहीं।

**मुमुक्षु :** गृहस्थपने में आ जाये तो क्या बाधा आवे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आता नहीं परन्तु गृहस्थ को जब तक पंचम गुणस्थान है। नौ कोटि का मन-वचन-काया, करना-कराना-अनुमोदन, नौ कोटि से परिग्रह छूटे बिना

मुनिपना कभी अन्तर में आता नहीं। समझ में आया? तीन काल-तीन लोक के परमात्मा का पंथ है। तुम काया से परिग्रह नहीं रखना, नहीं रखाना और अनुमोदना नहीं करना (ऐसा) कब आयेगा?

**मुमुक्षु :** यह तीनों का अनुमोदन करता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तीनों का अनुमोदन। वस्त्र ठीक है, मन से ठीक है, वाणी से ठीक है, काया से रखना है। वह मार्ग वीतराग का नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **बाहिज क्रिया भेख परमानहि... परमानहि...** '**ही**' लिखा है उसमें फिर उसे ऐसा कैसे कहना कि यह मानता नहीं? भाषा तो ऐसी है।

**मुमुक्षु :** भगवान ने कहे अनुसार बाह्यक्रिया और वेश होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** होता है।

**मुमुक्षु :** मात्र उसे अपना स्वरूप....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मानता नहीं, ऐसा कहा है। अपना मानता नहीं। है परवस्तु। राग पर,

**मुमुक्षु :** ल्र माने वह...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर माने वह। ठीक, ऐसा कहा है।

**मुमुक्षु :** इसलिए अलग पड़ गये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अलग पड़ गये। उसमें एक लिया है। अपना निजस्वरूप नहीं समझते। ... मूल तो बाह्यक्रिया प्रमाण हो, वही वस्तु है। समझ में आया? **ये मोक्षमार्ग के सन्मुख गमन करके....** देखो। **ते समकिती मोख मारग मुख...** मोक्षमार्ग भगवान आत्मा पूर्णानन्द के ऊपर आरूढ़ होकर स्वभाव त्रिकाल परमात्मा का अवलम्बन लेकर, आरूढ़ होकर, मोक्षमार्ग जिसने प्रगट किया **करि प्रस्थान...** वहाँ गति करके... **मोक्षमार्ग के सन्मुख गमन करके...** प्रस्थान (अर्थात्) गमन करके। **भवस्थिति भानहि...** भवस्थिति को नाश करते हैं। संसार का अन्त लाकर केवलज्ञान पाते हैं। आहाहा! **समयसार का सार।** ५१ कलश है न नीचे।

**अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पैरयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेक:।**
**स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा–न्न खलु समयसारादुत्तरं किञ्चिदस्ति।।५१।।**

उसमें क्या था ५१ में? यहाँ अर्थ किया है न। **जिन्हके हिए....** सम्यग्दृष्टि सुमति कणिका जगी हो, वह तो बाह्यक्रिया को वेशरूप प्रमाण करे। ऐसा कहा है रूपचन्दजी में। वेशरूप प्रमाण करे, वह तो समकिती कहते हैं। वह पुस्तक यह है। ... हाँ, उनका प्रमाण है। परन्तु मेरे ख्याल में इस प्रमाण में ऐसा अर्थ लिया है। वेश, क्रिया उसके प्रमाण में ही होती है, बस। तथापि अपना मानता नहीं। पंच महाव्रत का राग, नग्नपना अपना है, ऐसा माने नहीं। परन्तु हो वेश प्रमाण उसका। समझ में आया?

**अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पैरयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेक:।**
**स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा–न्न खलु समयसारादुत्तरं किञ्चिदस्ति।।५१।।**

★ ★ ★

## काव्य - १२५

**समयसार का सार** (सवैया इकतीसा)

**आचारज कहैं जिन वचनकौ विसतार,**
**अगम अपार है कहैंगे हम कितनौ।**
**बहुत बोलिबेसौं न मकसूद चुप्प भली,**
**बोलिये सुवचन प्रयोजन है जितनौ।।**
**नानारूप जलपसौं नाना विकलप उठैं,**
**तातैं जेतौ कारज कथन भलौ तितनौ।**
**सुद्ध परमातमकौ अनुभौ अभ्यास कीजै,**
**यहै मोख-पंथ परमारथ है इतनौ।।१२५।।**

**शब्दार्थ:-विसतार (विस्तार)=फैलाव। अगम=अथाह। मकसूद=इष्ट। जलप=बकवाद। कारज=काम। परमारथ (परमार्थ)=परम पदार्थ।**

**अर्थः-श्रीगुरु कहते हैं कि जिनवाणी का विस्तार विशाल और अपरम्पार है, हम कहाँ तक कहेंगे। बहुत बोलना हमें इष्ट नहीं है, इससे अब मौन ही रहना भला है, क्योंकि वचन उतने ही बोलना चाहिए, जितने से प्रयोजन सधे। अनेक प्रकार का बकवाद करने से अनेक विकल्प उठते हैं, इसलिए उतना ही कथन करना ठीक है, जितने का काम है। बस, शुद्ध परमात्मा के अनुभव का अभ्यास करो, यही मोक्षमार्ग है और इतना ही परमार्थ है।।१२५।।**

## काव्य-१२५ पर प्रवचन

समयसार का सार :—

**आचारज कहैं जिन वचनकौ विसतार,**
**अगम अपार है कहैंगै हम कितनौ।**
**बहुत बोलिबेसौं न मकसूद चुप्प भली,**
**बोलिये सुवचन प्रयोजन है जितनौ॥**
**नानारूप जलपसौं नाना विकलप उठैं,**
**तातैं जेतौ कारज कथन भलौ तितनौ।**
**सुद्ध परमातमकौ अनुभौ अभ्यास कीजै,**
**यहै मोख-पंथ परमारथ है इतनौ॥१२५॥**

मकसूद अर्थात् क्या.. ?

क्या कहते हैं? देखो! कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने जो कहा, उसमें अब अमृतचन्द्राचार्य कलश द्वारा कहते हैं। **अलम् अलम् अति...** बस होओ... बस होओ... विशेष कथन की इसमें आवश्यकता नहीं, यह कहते हैं। **जिन वचनकौ विसतार,...** वीतराग वचन का विस्तार कितना कहे। **अगम अपार है कहैंगै हम कितनौ।** वीतराग का कथन तो अगम अपार है। **कहैंगै हम कितनौ।** कितना कहेंगे, ऐसा कहते हैं। विशाल अपरम्पार। हम कहाँ तक कहेंगे। बहुत बोलना हमें इष्ट नहीं, लो। **बहुत बोलिबेसौं न मकसूद चुप्प भली,...** इससे तो मौन ही भला है, (चुप) रहना। आहा!

श्रीमद् में आत्मसिद्धि में आता है न। एक पद आता है न।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। वह ... पद आता है न! श्रीमद् में नहीं आता? ऐसा कुछ मौन....

**मुमुक्षु :** धरी मौन दृढ़ समाधि में...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धरी मौन, ऐसा कहकर दृढ़ समाधि में भी। यह आता है न! उसके पहले क्या उसके पहले? इसके पहले बुध?

**मुमुक्षु :** .... निश्चय सर्व ज्ञानीनो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बस यह। 'निश्चय सर्वे ज्ञानीनो आवी अत्र समाये, धरी मौनता अेम कही सहज समाधिमांय।' उसमें आता है। .... 'निश्चय सर्वे ज्ञानीनो आवी अत्र समाय धरी मौनता अेम कही....' कितना कहें, अब तो मौन रहते हैं। सहज समाधिमांय। हम तो विकल्प छोड़कर... आहाहा! यह कहते हैं यहाँ।

**बोलिये सुवचन प्रयोजन है जितनौ...** जितना प्रयोजन है, इतना वचन प्ररूपणा में आता है। **नानारूप जलपसौं नाना विकलप उठैं,...** नाना अर्थात् अनेक। **अनेक प्रकार बकवाद करने से अनेक विकल्प उठते हैं।** आहाहा!

**मुमुक्षु :** उसे विकथा कैसे कहा जाये?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विकथा न कहा जाये? परमार्थ से विकल्प है, वह विकथा ही है। विकल्प है, वह राग है और राग है, वह विकथा ही है। धर्मकथा की वाणी और राग, वह तो व्यवहार है। सूक्ष्म है, भाई! समझ में आया? परमार्थ से धर्म क्या कहे वाणी में? वाणी आती है वाणी तो जड़ है और राग उत्पन्न हो, वह विकार है। उपदेश करने में आ जाता है। आहाहा! यह बात ऐसी है। वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा!

**तातैं जेतौ कारज कथन भलौ तितनौ।** जितना कार्य यथार्थ आवे, इतना कहना, वह बराबर है। क्या? **सुद्ध परमातमकौ अनुभौ अभ्यास कीजै,** यह बात है, लो। पूरे

बारह अंग का विस्तार करके चाहे जितना कहा, करना यह है कि शुद्ध परमात्मा अपना निजानन्द प्रभु कारणपरमात्मा अपना कारणजीव ध्रुवस्वभावी ज्ञायकस्वभावी का अनुभव। उसका अनुभव कीजिये, यह बात है। अभ्यास कीजिये। शास्त्र के अभ्यास से भी नहीं। यह अभ्यास, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा विकल्परहित—रागरहित, उसका अनुभव करना, वह कार्य है। बारह अंग में जितना विस्तार किया, उसका सार तो यह है। आहाहा! पाटनीजी! आहाहा!

**सुद्ध परमातमकौ अनुभौ अभ्यास कीजै, यहै मोख-पंथ परमारथ है इतनौ।** यह परमार्थ है। आहाहा! व्यवहार विकल्प आदि कहा, उसके प्रमाण में हो, परन्तु अनुभव तो आत्मा का करना, वही परमार्थ है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन प्रगट करने में भी प्रथम आत्मा का अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का कारण है। आहाहा! और सम्यक्चारित्र प्रगट करने में भी अपने स्वरूप का आश्रय करके अनुभव विशेष करना, वह चारित्र है और उग्र आश्रय लेकर रहना, वह शुक्लध्यान है और उग्र आश्रय पूरा हो गया, वह केवलज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

**यहै मोख-पंथ....** यह अनुभव मोक्षपंथ है। व्यवहार-फ्यवहार, निमित्त, नग्नपना, वह कहीं मोक्षपंथ नहीं है। समझ में आया? **यहै मोख-पंथ परमारथ है इतनौ।** लो। परमार्थ का अर्थ परम पदार्थ, ऐसा लिखा है। अर्थ में लिखा है यहाँ शब्दार्थ में। परमार्थ—परम पदार्थ भगवान आत्मा। महाव्रत आदि के विकल्प तो आस्रवतत्त्व है, नग्नपना तो अजीवतत्त्व है। भले हो। हो तो छह द्रव्य जगत में पड़े हैं, उसमें क्या है? अपना कारणपरमात्मा शुद्ध ज्ञानकन्द निर्विकल्प आनन्दस्वरूप का अनुभव करना, वह सार है। पण्डितजी! परन्तु न हो, तब क्या करना?

**मुमुक्षु :** उसका प्रयत्न करना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। वह प्रयत्न करना। आहाहा! अन्तर स्वभाव सन्मुख बार-बार प्रयत्न करना, वही अनुभव का कारण है। आहा! गजब बात! ५२ (कलश)।

**इदमेकं जगच्चक्षुर-क्षयं याति पूर्णताम्।**
**विज्ञान-घन-मानन्दमय-मध्यक्षतां नयत्॥५२॥**

इससे पहले... वह इकट्ठा लेते हैं। वह है न, यह अनुभवयोग्य शुद्ध आत्मा, वहाँ लेंगे। उसमें लिया १२६। वह भी यह कहा, इसका स्पष्टीकरण है। यह ५१ में कहा न, उसका अर्थ विशेष है।

★ ★ ★

## काव्य - १२६

**पुनः** (दोहा)

**सुद्धातम अनुभौ क्रिया, सुद्ध ग्यान द्रिग दौर।**
**मुकति-पंथ साधन यहै, वागजाल सब और।।१२६।।**

**शब्दार्थः-क्रिया=चारित्र। द्रिग=दर्शन। वागजाल=वाक्याडम्बर।**

**अर्थः-शुद्ध आत्मा का अनुभव करना ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, बाकी सब वाक्याडम्बर हैं।।१२६।।**

### काव्य-१२६ पर प्रवचन

**सुद्धातम अनुभौ क्रिया, सुद्ध ग्यान द्रिग दौर।**
**मुकति-पंथ साधन यहै, वागजाल सब और॥१२६॥**

देखो, क्रिया!

**सुद्धातम अनुभौ क्रिया,...** शुद्ध आत्मा का अनुभव करना, यही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, बाकी सब वाक्य का आडम्बर है। आहाहा! **सुद्धातम अनुभौ क्रिया,...** करना, इस अर्थ में। **सुद्ध ग्यान द्रिग दौर।** बस सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और चारित्र—तीनों आ गये। आहाहा! अपना पूर्ण स्वरूप चैतन्य ध्रुव का ध्यान करना, उसके अनुसरण में होना, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कोई आत्मा की पर्याय से भिन्न नहीं है। वह तो अपनी अभिन्न पर्याय है। आहाहा! समझ में

आया ? सत्य बात निश्चय लोगों को बहुत कठिन लगे, इसलिए छोड़ दिया। कैलाशचन्दजी कहते थे। निश्चय की बात आवे तो छोड़ देते थे, व्यवहार की बात आये तो बहुत स्पष्टीकरण करते थे।

यहाँ (विद्वत्) परिषद आयोजित की थी न वह तीसरे साल में (संवत् २००३ में)। २४ वर्ष हुए। यहाँ थी। पण्डित आये थे, ३०-३२ पण्डित। विद्वत् परिषद। कैलाशचन्दजी अध्यक्ष थे। उस समय कहा था कि निश्चय की बात आती थी तो हम छोड़ देते थे और व्यवहार की बात आती थी तो हम उसा विस्तार करते थे। ऐसा कहते थे पण्डितजी।..... २२ वर्ष हुए। देखो, यह बात तो यहाँ लिखी है। हम तो व्यवहार का ही स्पष्टीकरण करते थे, निश्चय को तो छोड़ देते थे। यहाँ निश्चय एक ही बात है। व्यवहार तो असत्यार्थ—झूठा है। उसका स्पष्टीकरण सच्चा स्पष्टीकरण नहीं।

**सुद्धातम अनुभौ क्रिया,...** करना, ऐसा लिया भाई! **सुद्ध ग्यान द्रिग दौर।** चारित्र है, लो। **दौर** अर्थात् चारित्र। आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव, वह दर्शन; अनुभव, वह ज्ञान; अनुभव, वह चारित्र। यह करना है, यह मार्ग है। शास्त्र का विशेष ज्ञान हो, न हो, उसके साथ सम्बन्ध है (नहीं)। पशु है पशु—मेंढ़क। उसे तो नौ तत्त्व के नाम भी नहीं आते हों। परन्तु यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका अनुभव करता है तो सब सार आ गया, कहते हैं। समझ में आया? **मुकति-पंथ साधन यहै,...** लो, यह साधन। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अनुभव, वह साधन। व्यवहार-फ्यवहार के साधन-फाधन का नाम भी यहाँ लिया नहीं। पंचास्तिकाय में ऐसा कहा है, व्यवहार साधन-निश्चय साध्य। यह डालते हैं सब जहाँ-तहाँ। वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। साधन अर्थात् राग की मन्दता छठवें गुणस्थान में कितनी होती है, यह बताते हैं। राग साधन हो?

अपने चैतन्यप्रभु की अन्तर्मुख दृष्टि करके उसका अनुभव करना, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। दूसरी कोई चीज़ है नहीं। आहाहा! बोलना भी न आवे, समझाना न आवे, लो। उसमें क्या हुआ? एक आदमी ने प्रश्न किया था बहुत वर्ष पहले, कि अपना काम करे, वह ऊँचा या किसी को समझा सके, वह ऊँचा? आहाहा! ऐसा कि दूसरे को समझावे और भाषण करे और व्याख्यान आवे, वह ऊँचा। धूल भी ऊँचा नहीं, सुन न

अब! समझ में आया? वह प्रश्न सम्प्रदाय में हुआ था। अब यह समझावे, दूसरे को समझावे, ऐसी भाषा अर्थात् लोगों को यह ठीक पड़े। राजमलजी! एक प्रश्न हुआ था। देवीलालजी! राजमल नहीं, देवीलाल। राजमलजी, वे तो भोपाल। वे आये नहीं। आये नहीं। वहाँ भी नहीं आये थे जयपुर। यहाँ रोग हो गया था उनको। आये नहीं वहाँ। आनेवाले थे। आहा!

कहते हैं, अपना भगवान आनन्दधाम अनन्त गुण के पिण्ड का अन्तर्मुख होकर अनुभव करना, वह अनुभव मोक्षमार्ग। 'अनुभव रत्नचिंतामणी, अनुभव है रसकूप, अनुभव मार्ग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' यह बात है। पण्डितजी! व्यवहार-फ्यवहार कुछ रहता नहीं उसमें। उसमें, हों! व्यवहार में व्यवहार रहता है। आहा! लोगों को कठिन पड़े। एकान्त निश्चयाभास ऐसा लगे। महाप्रभु की अन्तर भेंट करना और उसके साथ लीनता करना, दूसरी चीज़ क्या है। समझ में आया? समझाने में विकल्प ऐसा आता नहीं, समझाने की ऐसी शक्ति भी न हो और दुनिया उसे पसन्द करे। जेठाभाई! भाषण करना आवे बराबर, तब पसन्द किया न उसे रामजी को। ऐसा बोलना आवे, सुनते हुए (लगे), आहाहा! ऐ अजमेरा.... आहाहा! बड़ा डॉक्टर है।

**मुमुक्षु :** वक्ता की कीमत करते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वक्ता की कीमत करते हैं। हीरालालभाई! था या नहीं? था। यह तो वक्ता की व्याख्या चलती है न! दूसरे विचार साधारण हो, बोलना बहुत न आवे।

यह तो नहीं कहा था? तेरापंथी साधु था वह रतनचन्द। बेचारे को दृष्टि की खबर नहीं, तत्त्व की खबर नहीं। परन्तु उसका आचरण, उसका वैराग्य, बाह्य का व्यवहार, बस कोई पूछे तो 'भगवान देख रहा है', बस एक ही बात। भगवान देख रहा है। वैरागी था। हमने देखा है। ५७ के वर्ष। संवत् १९५७। कितने वर्ष हुए? ७१। सत्तर और एक। ७१ वर्ष पहले हमने उमराला में देखा था। ऐसे वैराग्य और चलता जाये। दृष्टि विपरीत। आत्मा का भान नहीं और बाह्य में अकेला वैराग्य मस्त। श्मशान में रहे। कोई पूछे, कहाँ रहना है महाराज? यहाँ कहाँ उतरना है? 'भगवान देख रहा है' ऐसा कहे। बस एक ही जवाब। लम्बा पल ही नहीं। ५७ में देखा है। संवत् १९५७, उमराला में। यहाँ यह कहते

हैं कि 'आत्मा देख रहा है।' क्या होता है ? कि आत्मा देख रहा है। राग आये तो देख रहा है और द्वेष आये तो देख रहा है और शरीर की क्रिया होती है तो देख रहा है। ऐसा आत्मा का अनुभव करना, वही एक मोक्ष का साधन है। आहाहा! समझ में आया ? अब ५२ और ५३ (कलश)।

**इदमेकं जगच्चक्षुर-क्षयं याति पूर्णताम्।**
**विज्ञान-घन-मानन्दमय-मध्यक्षतां नयत्।।५२।।**
**इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितम्।**
**अखण्ड-मेक-मचलं स्वसम्वेद्य-मबाधितम्।।५३।।**

देखो! अन्तिम सार। **अनुभवयोग्य शुद्ध आत्मा का स्वरूप।** जब अनुभव मोक्ष का मार्ग कहा और अनुभव सर्वस्व कहा तो अनुभवयोग्य शुद्ध आत्मा कैसा है ?

★ ★ ★

## काव्य - १२७-१२८

### अनुभव योग्य शुद्ध आत्मा का स्वरूप

(दोहा)

**जगत चक्षु आनंदमय, ग्यान चेतनाभास।**
**निरविकलप सासुत सुथिर, कीजै अनुभौ तास।।१२७।।**

**अचल अखंडित ग्यानमय, पूरन वीत ममत्व।**
**ग्यान गम्य बाधा रहित, सो है आतम तत्व।।१२८।।**

**अर्थः-आत्मपदार्थ जगत के सब पदार्थों को देखने के लिये नेत्र है, आनन्दमय है, ज्ञान-चेतना से प्रकाशित है, संकल्प-विकल्प रहित है, स्वयं सिद्ध है, अविनाशी है, अचल है, अखण्डित है, ज्ञान का पिण्ड है, सुख आदि अनन्त गुणों से परिपूर्ण है, वीतराग है, इन्द्रियों के अगोचर है, ज्ञानगोचर है, जन्म-मरण वा क्षुधा-तृषा आदि की बाधा से रहित निराबाध है। ऐसे आत्मतत्त्व का अनुभव करो।।१२७-१२८।।**

## काव्य-१२७-१२८ पर प्रवचन

**जगत चक्षु आनंदमय...** भगवान आत्मा तो जगत की चक्षु है। तीन काल-तीन लोक को देखनेवाला और जाननेवाला है। आहाहा! भगवान सर्वज्ञ भी क्या करते हैं? देखते-जानते हैं, बस। वास्तव में तो अपने को ही देखते हैं, जानते हैं। उसमें वह दूसरी चीज़ का ज्ञान अपनी शक्ति के सामर्थ्य से आ जाता है। ऐसे भगवान आत्मा जगतचक्षु, ओहोहो! तीन लोक और तीन काल ऐसी चीज़ का वह चक्षु है। **'जहेव दिट्ठी णाणं',** आता है न, ३२० (गाथा समयसार में)? आनन्दमय है। जिसका अनुभव करना है, वह चीज़ आनन्दमय है। आहा! अतीन्द्रिय आनन्द अपरम्पार... अपरम्पार.... ऐसा भगवान आत्मा आनन्दवाला है, ऐसा नहीं, आनन्दमय है। सेठी! आनन्दमय है। कहीं से लाना नहीं आनन्द। आहाहा!

**ग्यान चेतनाभास...** उसका ज्ञान चेतना का स्वभाव है। स्वयं ज्ञानचेतना से प्रकाशित है। 'है'। भगवान तो चैतन्यप्रकाश ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित है। ऐसी वह चीज़ है। **निर्विकल्प**—यह तो विकल्परहित चीज़ है। है न? संकल्प-विकल्प रहित है। आहाहा! पर का संकल्प-विकल्प करना, उससे रहित यह चीज़ है। आहाहा! **स्वयंसिद्ध** है। **सासुत**—शाश्वत्। त्रिकाल चिदानन्द ध्रुव पड़ा है। वह स्थिर है। **सुथिर** है। स्वयंसिद्ध है, स्थिर है, स्थिर को इकट्ठा कहा। **सासुत-सुथिर**—नित्यानन्द स्थिर।

**अचल अखंडित...** अब अन्तिम पद में। ५३... ५३... कैसा तत्त्व है? **अचल** है। अपने स्वरूप से कभी चलित नहीं होता। चलता नहीं, चलता नहीं—चलता नहीं। आहाहा! **अखंडित** है। खण्डरहित पर्याय का खण्ड भी द्रव्य में नहीं है। आहाहा! उसका अनुभव करना है, ऐसा कहते हैं। ऐसी चीज़ का अनुभव करना, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! अविनाशी है, अचल है। समझ में आया? उस अविनाशी का अर्थ यह किया उसमें। **सुथिर...** और अचल का अर्थ यहाँ अलग आया। उस अविनाशी का अर्थ यह किया। **स्वयंसिद्ध अविनाशी, शाश्वत, अचल है, अखण्डित है, ज्ञान का पिण्ड है।** आहाहा! ज्ञानमय। अकेला जाननस्वभाव, जाननस्वभावमय है। उसमें कोई संसार रागादि है नहीं। ऐसी चीज़ का अनुभव करना, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा!

**पूरन—** पूर्ण है। **सुख आदि अनन्त गुणों से परिपूर्ण है।** वस्तु अतीन्द्रिय आनन्द। अरे! दूसरी चीज़ की कीमत करे तो ऐसा कहे, ओहोहो! क्या करोड़ का हीरा! क्या उसकी चमक! क्या उसकी शक्ति! परन्तु वह जाननेवाला कौन है, उसकी शक्ति क्या है? समझ में आया? चैतन्य हीरा महा चमकता ज्ञान से चमकता हीरा है। ज्ञान से चमकता हीरा। ऐसा **सुख आदि अनन्त गुणों से परिपूर्ण है।** परिपूर्ण है। वस्तु की शक्ति अनन्त। यह शक्ति—गुणों से परिपूर्ण है। वस्तु स्वयं परिपूर्ण है। आहाहा! **वीतराग है,** देखो! **वीत ममत्व,** है न! ममत्व से रहित। यह वस्तु तो वीतराग है। ममतारहित ही उसका स्वरूप है। आहाहा! **निर्मम** है न! उसका अर्थ। **वीत ममत्व—** ममत्व से रहित। आहाहा! वस्तु आत्मपदार्थ तो वीतरागस्वभाव से भरा है। यह मेरा, ऐसी ममत्व (से) रहित ही चीज़ है। आहाहा!

**ग्यान गम्य...** यह तो अन्तर ज्ञान का स्वसंवेदनगम्य है। **स्वसंवेद्य** की व्याख्या की। स्वसंवेद्य है। अपने से—ज्ञान से ज्ञान जानने में आता है, ऐसी चीज़ है। राग से, निमित्त से जानने में आता है, ऐसी वह चीज़ ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? **बाधा रहित—** उसमें विघ्न है नहीं। भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु ज्ञान का प्रकाश का पुंज, वह ज्ञानगम्य है। वह अपने अनुभवगम्य में ज्ञानगम्य है। आहाहा! वाणी और विकल्प से जानने में आता है, ऐसा नहीं। आहाहा! वाणी, अच्छी वाणी सुनते हुए उसे कुछ जाने ऐसे आहा... इतने सब गुणगान.... ऐ पोपटभाई! आहाहा!

**सो है आतम तत्त्व,...** लो। **सो है आतम तत्त्व,...** पूर्णानन्द प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड—अनन्त गुण का राशि, ऐसा परिपूर्ण ज्ञानगम्य ऐसा आत्मतत्त्व है, लो। **सो है आतम तत्त्व,...** उसे भगवान ने सर्वज्ञदेव ने आत्मतत्त्व कहा है। ऐसे आत्मा की दृष्टि करना, ऐसे आत्मा का ही ज्ञान करना और आत्मा में रमणता करना। लो, यह पूरे समयसार का सार। आहाहा! जगत के सब पदार्थ देखने के लिये नेत्र है। आनन्दमय है। यह आ गया।

★ ★ ★

## काव्य - १२९

(दोहा)

**सर्व विसुद्धी द्वार यह, कह्यौ प्रगट सिवपंथ।**
**कुंद कुंद मुनिराज कृत, पूरन भयौ गरंथ।।१२९।।**

**अर्थ:-साक्षात् मोक्ष का मार्ग यह सर्वविशुद्धि अधिकार कहा और स्वामी कुन्दकुन्दमुनि रचित शास्त्र समाप्त हुआ।।१२९।।**

### काव्य-१२९ पर प्रवचन

**सर्व विसुद्धी द्वार यह,...** यह सर्वविशुद्धि है न अधिकार। **कह्यौ प्रगट सिवपंथ। सर्व विसुद्धी द्वार यह, कह्यौ प्रगट सिवपंथ।** मोक्ष का पंथ प्रगट किया, कहते हैं, गुप्त नहीं रखा है। समझ में आया? **कुंद कुंद मुनिराज कृत, पूरन भयौ गरंथ।** आहाहा! कब से चलता है अपने? बहुत समय से, हों! यह १६वीं (बार समयसार) चलता है न या १७वीं? १६वीं बार? १६वीं बार चलता है। यह समयसार १६वीं बार चलता है पहले से। अभी स्याद्वाद अधिकार बाकी है। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने कहा... ८३ चलता है न? २५? खबर नहीं। लिखा है, नहीं? २५। २५ न? यह समयसार कब से चलता है, ऐसा पूछा। शुरुआत कहाँ से हुई? क्यों खबर नहीं?

**मुमुक्षु :** समयसार की बात करते हो... ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इस समयसार की। अपने नाटक तो अभी था। यह पौष शुक्ल ८ से चालू हुआ है यह समयसार नाटक। पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, अषाढ़ और श्रावण। आठ महीने हुए। इसे, हों! **पूरन भयौ गरंथ।** इसका स्वरूप समझे, अनुभव करे और पूर्ण हुआ मोक्षदशा पंथ, उसे पूर्ण पद हो जायेगा। अब, **ग्रन्थकर्ता का नाम और ग्रन्थ की महिमा।** यह तो बनारसीदास कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १४८, भाद्र शुक्ल ८, रविवार, दिनांक २९-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, पद १३० से १३८

समयसार नाटक। सर्वविशुद्ध अधिकार पूरा होता है। **ग्रंथकर्ता का नाम और ग्रन्थ की महिमा।**

★ ★ ★

काव्य - १३०-१३१

**ग्रन्थकर्ता का नाम और ग्रन्थ की महिमा** (चौपाई)

**कुंदकुंद मुनिराज प्रवीना।**
**तिन्ह यह ग्रंथ इहांलौं कीना।।**
**गाथा बद्ध सुप्राकृत वानी।**
**गुरुपरंपरा रीति बखानी।।१३०।।**
**भयौ गिरंथ जगत विख्याता।**
**सुनत महा सुख पावहि ग्याता।।**
**जे नव रस जगमांहि बखानै।**
**ते सब समयसार रस सानै[१]।।१३१।।**

**अर्थः-आध्यात्मिक विद्या में कुशल स्वामी कुन्दकुन्द मुनि ने यह ग्रन्थ यहाँ तक रचा है, और वह गुरु-परम्परा के कथन अनुसार प्राकृत भाषा में गाथाबद्ध कथन किया है।।१३०।। यह ग्रन्थ जगत्प्रसिद्ध है, इसे सुनकर ज्ञानी लोग परमानन्द प्राप्त करते हैं। लोक में जो नव रस प्रसिद्ध हैं, वे सब इस समयसार के रस में समाये हुए हैं।।१३१।।**

१. 'मानै' ऐसा भी पाठ है।

## काव्य-१३०-१३१ पर प्रवचन

**कुंदकुंद मुनिराज प्रवीना।**
**तिन्ह यह ग्रंथ इहांलौं कीना॥**
**गाथा बद्ध सुप्राकृत वानी।**
**गुरुपरंपरा रीति बखानी॥१३०॥**
**भयौ गिरंथ जगत विख्याता।**
**सुनत महा सुख पावहि ग्याता॥**
**जे नव रस जगमांहि बखानै।**
**ते सब समयसार रस सानै॥१३१॥**

४१५ गाथा तक कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा।

क्या कहते हैं? बनारसीदास कहते हैं कि कुन्दकुन्द अध्यात्म मुनि हुए। **मुनिराज प्रवीना।** है न? अध्यात्मविद्या में कुशल स्वामी। '**मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमौ गणी**' आता है न? उसमें '**मंगलं कुंदकुंदार्यो**' तीसरे नम्बर पर आया है। अब वहाँ तो यह कहा है कि '**जैन धर्मोस्तु मंगलं**' ऐसा कहा न? '**मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमौ गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।**' उसमें कुन्दकुन्दाचार्य (के लिये) कहते हैं बनारसीदास कि **तिन्ह यह ग्रंथ इहांलौं कीना...** ४१५ श्लोक (गाथा) तक भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार रचा। **गाथा बद्ध सुप्राकृत वानी गुरुपरंपरा रीति बखानी...** बाद में परम्परा गुरु अमृतचन्द्राचार्य हुए। उन्होंने समयसार की टीका करके प्रसिद्धि की। **गुरुपरंपरा रीति बखानी...** अनादिकाल से जो सत्य मार्ग था, उस मार्ग की प्रसिद्धि कुन्दकुन्दाचार्य ने की और परम्परा अमृतचन्द्राचार्य ने की।

**भयौ गिरंथ जगत विख्याता...** लो यहाँ तो कहा, समयसार जगत में विख्यात—प्रसिद्ध हुआ। **भयौ गिरंथ जगत विख्याता सुनत महा सुख पावहि ग्याता...** यह समयसार सुनने से आत्मा निर्विकल्प अभेद शुद्ध चैतन्य है, ऐसी दृष्टि उसमें बतायी है, ऐसी दृष्टि करनेवालों को **पावहि सुख**—आनन्द की प्राप्ति होती है। है न? **सुनत महा सुख... सुनत महा सुख पावहि ग्याता...** क्योंकि समयसार में ऐसा बताया है कि तू तो परम पवित्र

आनन्द का धाम है। ऐसे आनन्द का धाम के सुनत ही ज्ञाता-दृष्टा जीव को आनन्द की प्राप्ति होती है। समझ में आया? **सुनत महा सुख पावहि ग्याता...** आहाहा! सुनने से, ऐसा कहते हैं। ऐसी चीज़ भरतक्षेत्र में... अपने आ गया है अजोड़चक्षु, अद्वैतचक्षु। पहले आ गया है न! जगतचक्षु। १२७। आनन्दमय ज्ञानचेतनाभाव जगतचक्षु है वह। आहाहा!

अमृतचन्द्राचार्य मुनि ९०० वर्ष पहले हुए, दिगम्बर सन्त। शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि यह तो अपूर्व ग्रन्थ है। और चक्षु, जगत की चक्षु है। आहाहा! एक-एक गाथा में और एक-एक पद में अलौकिक बात है। उसकी टीका... सुनने में आया नहीं। जिसको यह सुनने में आता है... पहले आ गया है **सुनत हिये फाटक खुलत है।** फाटक कहते हैं न फाटक। क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** नाटक।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं। फाटक। **नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है।** पहले आया है।

**मुमुक्षु :** कपाट।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कपाट। १२वें पृष्ठ पर है। १२वें पृष्ठ पर है, देखो!

**हाटकसौ विमल विराटकसौ विसतार नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है।** आहा! १५वाँ पद है। **यह ग्रन्थ शुद्ध सुवर्ण के समान निर्मल है। विष्णु के विराटरूप जैसा विस्तृत है। यह ग्रन्थ के सुनने से हृदय के कपाट खुल जाते हैं।** आहाहा! दृष्टि पूरे आत्मा को कब्जे में कर लेती है। समझ में आया? पूरा आत्मा पूर्णानन्द प्रभु दृष्टि का विषय ध्रुव, वह बताया है। यह दृष्टि जिसे लागू हो गयी, उसका हृदय कपाट खुल गया। राग और स्वभाव की एकताबुद्धि अनादि की थी, (मिट गयी)। करना वही था, वही बताया था। भगवान! तेरा स्वभाव आनन्द का धाम और राग—दो चीज़ भिन्न है। बहुत अल्पकाल में.... यह निचोड़ बताया न!

**यह निचौर या ग्रंथकौ, यहै परम रसपोख।**
**सुद्धनय त्यागै बंध है, सुद्धनय गहै मोख॥**

आस्रव अधिकार में आया है आस्रव अधिकार। पूरे शास्त्र का... बारह अंग का सार (अर्थात्) पूरे समयसार का सार, **सुद्धनय गहै मोख।** शुद्ध अखण्ड आनन्दमूर्ति प्रभु, वही शुद्धनय, उसका अनुभव करना, उससे मोक्ष है और उसके त्याग से, बस संसार है। शुद्धनय का विषय और वस्तु शुद्ध, उसकी दृष्टि छोड़ना, वही संसार है। समझ में आया? ऐसे समयसार में अलौकिक बात है। यह तो नाटक है। मूल श्लोक में तो अलौकिक बात है न! वह कहते हैं कि उसे सुनते ही फाटक खुल जाता है। भगवान! तेरा राज अनन्तगुण का समाज ऐसी तेरी चीज़ राग आदि, अल्पज्ञता आदि से भिन्न... आहाहा! एक समय की पर्याय, राग और निमित्त—तीनों से भिन्न हृदय में कपाट खुल जाता है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बहुत अल्प शब्द में बहुत गम्भीरता से कथन आया है। **सुनत महा सुख पावहि ग्याता...** उसका स्वभाव ही ज्ञायक और जानन-देखन है, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई और वही बताना था। समयसार को वही बताना था। ऐसी दृष्टि हुई, **महा सुख पावहि ग्याता...** समझ में आया?

**जे नव रस जगमांहि बखानै...** अब नवरस का वर्णन शुरु किया। जगत में नवरस कहे जाते हैं। **ते सब समयसार रस सानै...** वे नौ रस समयसार में शान्तरस में समा जाते हैं। समयसार के रस में समा जाते हैं। लोक में नव रस कहते हैं न? रस की व्याख्या क्या ली? कि अपने ज्ञान में एकरूप एकाकार हो जाना, उसका नाम रस है। कोई भी चीज़ लक्ष्य में लेकर उसमें एकाकार हो जाना, वह रस। यहाँ तो शान्तरस में नव रस समा जाते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा... बहुत अलौकिक बात है। पर्यायदृष्टि, रागदृष्टि छोड़कर त्रिकाल शान्तरस का पिण्ड प्रभु, उसकी दृष्टि और अनुभव करना, उसमें शान्तरस प्रगट होता है। और इस शान्तरस में नव रस गर्भित हैं। समझ में आया? यहाँ तो दो बात करेंगे। एक लौकिक भी कहेंगे और परमार्थ भी। इस शान्तरस में परमार्थ नव रस समा जाते हैं।

★ ★ ★

## काव्य - १३२

**पुनः** (दोहा)

**प्रगटरूप संसारमैं, नव रस नाटक होइ।**
**नवरस गर्भित ग्यानमय, विरला जानै कोइ।।१३२।।**

**अर्थः-संसार में प्रसिद्ध है कि नाटक नव रस सहित होता है, पर ज्ञान में नव ही रस गर्भित हैं, इस बात को कोई विरला ही ज्ञानी जानता है।**

**भावार्थः-नव रसों में सबका नायक शान्तरस है, और शान्तरस ज्ञान में है।।१३२।।**

### काव्य-१३२ पर प्रवचन

**प्रगटरूप संसारमैं, नव रस नाटक होइ....** देखो, यह नाटक। नाटक में भी रस बताते हैं न! **नवरस गर्भित ग्यानमय,....** लो! ज्ञान में नवों रस गर्भित हैं। अपने भगवान आत्मा का ज्ञान हुआ, शान्तरस हुआ, सम्यक् हुआ, उसमें नव रस समा जाते हैं। आहाहा! **विरला जानै कोइ।** विरला कोई जाने, ऐसी बात है। **नवरसों में सबका नायक शान्तरस है और शान्तरस ज्ञान में है।** उसमें नव रस समा जाते हैं। **नवरसों के नाम।** साधारण नाम देंगे।

★ ★ ★

## काव्य - १३३

**नव रसों के नाम** (कवित्त)

**प्रथम सिंगार वीर दूजौ रस,**
**तीजौ रस करुना सुखदायक।**
**हास्य चतुर्थ रुद्र रस पंचम,**
**छट्टम रस बीभच्छ विभायक।।**

**सप्तम भय अट्ठम रस अद्भुत,**
**नवमो शांत रसनिकौ नायक।**
**ए नव रस एई नव नाटक,**
**जो जहं मगन सोइ तिहि लायक।।१३३।।**

**अर्थ:-पहला शृंगार, दूसरा वीर रस, तीसरा सुखदायक करुणा रस, चौथा हास्य, पाँचवाँ रौद्र रस, छट्ठा घिनावना बीभत्स रस, सातवाँ भयानक, आठवाँ अद्भुत और नवमा सब रसों का सरताज शान्त रस है। ये नव रस हैं। और यही नाटकरूप हैं। जो जिस रस में मग्न होवे उसी को वही रुचिकर होता है।।१३३।।**

काव्य-१३३ पर प्रवचन

नव रस के नाम। लौकिक अपेक्षा बात है।

**प्रथम सिंगार वीर दूजौ रस,**
**तीजौ रस करुना सुखदायक।**
**हास्य चतुर्थ रुद्र रस पंचम,**
**छट्ठम रस बीभच्छ विभायक॥**
**सप्तम भय अट्ठम रस अद्भुत,**
**नवमो शांत रसनिकौ नायक।**
**ए नव रस एई नव नाटक,**
**जो जहं मगन सोइ तिहि लायक॥१३३॥**

जो राग में मग्न है, वह (उस ही) रस में मगन है। जो स्वभाव में मगन है तो वह (उस ही) रस में मगन है। जिसमें मगन है, उसको वह रुचिकर और यथार्थ होता है। अज्ञानी को यह होता है, ज्ञानी को यहाँ होता है। आहाहा! **नव रसों के लौकिक स्थान।** अब कहते हैं। वह तो नाम लिये।

★ ★ ★

**काव्य - १३४**

**नव रसों के लौकिक स्थान**

(सवैया इकतीसा)

**सोभामैं सिंगार बसै वीर पुरुषारथमैं,**
**कोमल हिएमैं करुना रस बखानिये।**
**आनंदमैं हास्य रुंड मुंडमैं बिराजै रुद्र,**
**बीभत्स तहां जहां गिलानि मन आनिये।।**
**चिंतामैं भयानक अथाहतामैं अदभुत,**
**मायाकी अरुचि तामैं सांत रस मानिये।**
**एई नव रस भवरूप एई भावरूप,**
**इनिकौ विलेछिन सुद्रिष्टि जागैं जानिये।।१३४।।**

**शब्दार्थ:-रुंड मुंड=रण-संग्राम। विलेछिन=पृथक्करण।**

**अर्थ:-शोभा में श्रृंगार, पुरुषार्थ में वीर, कोमल हृदय में करुणा, आनन्द में हास्य, रण-संग्राम में रौद्र, ग्लानि में बीभत्स, शोक मरणादि में चिन्ता में भयानक, आश्चर्य में अद्‌भुत और वैराग्य में शान्त रस का निवास है, ये नव रस लौकिक हैं और पारमार्थिक हैं, सो इनका पृथक्करण ज्ञानदृष्टि का उदय होने पर होता है।।१३४।।**

---

**काव्य-१३४ पर प्रवचन**

---

**सौभामैं सिंगार बसै वीर पुरुषारथमैं....** लौकिक। यह श्रृंगार-बृंगार करे न, गहने और वस्त्र पहनते हैं न सवेरे, नहीं ऐसे?

**मुमुक्षु :** अप टू डेट हो न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दर्पण में—शीशा में साफ करके, माँग काड़े और यह बराबर क्या कहलाता है? कंघा। वह कंघा होता है न? ऐसे करते हैं ऐसे। लटकावे ऐसे गहने को... **सौभामैं सिंगार बसै...** कपड़ा-बपड़ा बराबर ... अप टू डेट। और उसमें फिर

कुछ इत्र-वित्र डाला हो। आहाहा! यह अज्ञानी के शोभा के शृंगार हैं। **वीर पुरुषारथमैं....** वीररस तो पुरुषार्थ में होता है। लौकिक या लोकोत्तर दोनों ही। वह तो दोनों का स्पष्टीकरण करेंगे। **कोमल हिएमैं करुना...** जिसका हृदय कोमल है, नरम है, उसके हृदय में करुणा रस बसता है।

**आनंदमैं हास्य...** यह लौकिक आनन्द होता है न, उसमें हास्य कुतूहल करते हैं। आहाहा! लड़के की शादी हो, लड़की की हो, बाजे बजते हों, बड़े आनन्द में बैठा हो। लौकिक आनन्द हो धूल का। दाँत निकाले खिलखिलाकर... खिलखिलाकर... खिलखिलाकर दाँत निकाले। आहाहा! आज तो बड़ा मजा है। और वे हास्यरसवाले सब ऐसा कहे कि दिन में बहुत हँसना, वरना शरीर निरोगी नहीं रहेगा। वह एक हास्यरसवाला आया था यहाँ। बहुत हँसना, आहाहा! धूल में... हँसने से तो पाप बँधता है। परन्तु दुनिया बाहर के विषय-भोग आदि में आनन्द मानकर हास्य करते हैं। रस का अर्थ एकाकार होना। जहाँ-जहाँ लगन लगी, वहाँ एकाकार होना, उसका नाम रस। आहाहा! **रुंड मुंडमैं बिराजै रुद्र....** आहाहा! है न। रणसंग्राम। रणसंग्राम में विराजे रुद्र... घोर महा मनुष्य का संहार, हाथी का, अश्व का—घोड़ा का बहुत लाखों... ऐसे वहाँ रुद्ररस है, पापरस है।

**बीभत्स तहां जहां गिलानि मन आनिये,...** शरीर में ग्लानि। कीड़े पड़े हों जीवांत। और ऐसा कलेवर देखकर बिल्ली का, ऊँट का सड़ा हुआ **बीभत्स तहां जहां गिलानि...** ऐसी भी एक जगत में ग्लानि होती है। एकाकार... **चिंतामैं भयानक...** चिन्ता... चिन्ता... चिन्ता... क्या होगा? मैं अकेला रहा। परिवारवाले सब मर गये। **चिंतामैं भयानक....** भयरूप रस है। ऐसे ध्रुजे। **अथाहतामैं अद्भुत....** अद्भुत। आश्चर्य में अद्भुत। अज्ञानी को आश्चय जहाँ लगे, वहाँ अद्भुतता लगे। आहाहा! क्या उसका अद्भुत कण्ठ! क्या उसकी वाणी अद्भुत! क्या उसका रूप अद्भुत! वहाँ एकाकार हो। **मायाकी अरुचि तामैं सांत रस मानिये....** लो अब। पुण्य-पापरूपी माया, उसकी अरुचि और आत्मा की—आनन्द की रुचि, वहाँ शान्तरस बखानिये और वहाँ शान्तरस मानिये। आहाहा!

**एई नव रस भवरूप....** ये नवरस संसाररूप दु:ख है और यही नवरूप भावरूप

परमार्थ भी हैं। लौकिक भी हैं और लोकोत्तर भी हैं। **इनिकौ विलेछिन सुद्रिष्टि जागैं जानिये...** नवरस को बराबर जानने से सुदृष्टि जगती है। पापरस और धर्मरस दोनों ही में नवरस है। तो दोनों का विश्लेषण करके आलोकन करे तो उसको आनन्द उपजता है। **नव रसों के पारमार्थिक स्थान।** यह साधारण बात कही।

★ ★ ★

### काव्य - १३५

**नव रसों के पारमार्थिक स्थान** (छप्पय)

**गुन विचार सिंगार, वीर उद्यम उदार रुख।**
**करुना समरस रीति, हास हिरदै उछाह सुख।।**
**अष्ट करम दल मलन, रुद्र वरतै तिहि थानक।**
**तन विलेछ बीभच्छ, दंद मुख दसा भयानक।।**
**अदभुत अनंत बल चिंतवन, सांत सहज वैराग धुव।**
**नव रस विलास परगास तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव।।१३५।।**

**शब्दार्थ:-उछाह=उत्साह। दल मलन=नष्ट करना। बिलेछ=अशुचि।**

**अर्थ:-आत्मा को ज्ञानगुण से विभूषित करने का विचार श्रृंगार रस है, कर्म-निर्जरा का उद्यम वीररस है, अपने ही समान सब जीवों को समझना करुणा रस है, मन में आत्म-अनुभव का उत्साह हास्यरस है, अष्ट कर्मों का नष्ट करना रौद्ररस है, शरीर की अशुचिता विचारना बीभत्सरस है, जन्म-मरण आदि का दु:ख चिन्तवन करना भयानक रस है, आत्मा की अनन्त शक्ति चिन्तवन करना अद्‌भुत रस है, दृढ़ वैराग्य धारण करना शान्तरस है। सो जब हृदय में सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है, तब इस प्रकार नव रस का विलास प्रकाशित होता है।।१३५।।**

## काव्य-१३५ पर प्रवचन

**गुन विचार सिंगार, वीर उद्यम उदार रुख।**
**करुना समरस रीति, हास हिरदै उछाह सुख॥**
**अष्ट करम दल मलन, रुद्र वरतै तिहि थानक।**
**तन विलेछ बीभच्छ, दंद मुख दसा भयानक॥**
**अदभुत अनंत बल चिंतवन, सांत सहज वैराग ध्रुव।**
**नव रस विलास परगास तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव॥१३५॥**

जब अपना आत्मा का ज्ञान और राग का ज्ञान भिन्न हुआ, तब वह नवरस का भान उसको होता है। आहाहा! **गुन विचार सिंगार...** यह शृंगार के कपड़े पहनना और जेवर लटकाना, टीका-तिलक करना, मुर्दे को शृंगारना। यह मुर्दे को शृंगारना है। यह सुबह में करते हैं न। ... वह चुपड़ने का आता है न सफेद?

**मुमुक्षु :** पाउडर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पाउडर। हाँ। दर्पण में देखे तो बन्दर जैसा दिखाई दे इसे। दर्पण छोटा हो, शरीर सिर बड़ा हो। एक नम्बर का बन्दर है। ऐ सेठ! आहाहा! उसमें उसकी शोभा दिखती है। धर्मी को तो **गुन विचार सिंगार...** अपने आनन्द और ज्ञान का धनी परमेश्वर अपना स्वरूप, उसके गुण का विचार, वही उसको शोभा है, वह शृंगार है। कहो, सेठ! **गुन विचार सिंगार...** दर्पण की जरूरत नहीं, कोई विकल्प की जरूरत नहीं, यहाँ तो यह कहते हैं। आहाहा!

चैतन्य के गुण अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता, अनन्त स्वच्छता, आत्मा की अनन्त शान्ति प्रगट हो, ऐसी प्रत्यक्ष शक्ति ऐसी अनन्त... अनन्त... शक्ति का विचार ज्ञान में घोलन हो, वही शोभा है, यह शृंगार है। आहाहा! समझ में आया? अपने आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं। एक-एक शक्ति का विचार करने से उसे शृंगार अर्थात् शोभा दिखती है। आहाहा! गुण की शोभा है, यहाँ तो कहते हैं। आहा! धूल को शृंगारे और घड़ीक में ऐसी उल्टी हो जाये। घड़ीक में ऐं... ऐं... हो जाये,

जीवांत निकले उसमें से। क्या है शरीर में? वह तो मिट्टी है, धूल है। भगवान आत्मा में जो अनन्त ज्ञान आदि अनन्त गुण, उसका विचार... **आत्मा को ज्ञानगुण से विभूषित करने का विचार,....** ऐसा लिया। सम्यग्ज्ञान द्वारा अपने आत्मा को शोभा देना, उसका नाम श्रृंगाररस है। आहाहा!

**वीर उद्यम उदार रुख... कर्म-निर्जरा का उद्यम वीररस है।** अपना पुरुषार्थ चैतन्यस्वभाव की ओर झुकने से जो वीररस उत्पन्न होता है, उससे कर्म की निर्जरा होती है। समझ में आया? **वीर...** 'प्रेरते इति वीर्य', आता है, न। अपना पुरुषार्थ—वीर्य—बल अपने स्वभाव की ओर उद्यम करे, उसका नाम कर्म की निर्जरा का पुरुषार्थ, उसका नाम वीररस है। समझ में आया? अपना परमात्मा शुद्धस्वरूप, उसमें आरूढ़ होकर अपने वीररस की जागृति करना। वीर्य यानि स्वरूप की रचना करे, वह वीर्य। पुण्य-पाप के परिणाम की रचना करे, वह वीर्य तो नपुंसक है और पर की रचना तो कर सकता नहीं। आहाहा!

अपना अनन्त गुण शान्तरस आदि से भरा, उसकी पर्याय में जो वीररस पुरुषार्थ से रचना हो और रचना होने से कर्म की निर्जरा हो, उसका नाम यहाँ वीररस कहा गया है। **उद्यम उदार रुख...** ऐसा है न? हाँ। यह उदार का ही उसे रुख है। चाहे जितना पुरुषार्थ निकाले तो भी वहाँ कम हो, ऐसा नहीं। आहाहा! भारी कठिन।

**मुमुक्षु :** बाजार का रुख।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाजार का रुख, कहते हैं न! बाजार में, नहीं? यह रुख है। यह रुई की रुख है और फलाने का... तुम्हारे बीड़ियों का रुख। रुख समझते हैं? क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** बाजार में रुख अर्थात् तेजी है या मन्दी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यह। तेजी है या मन्दी है। नुकसान का है या लाभ का है, ऐसा रुख देखते हैं न! यहाँ तो आत्मा को देखते हैं, शुद्धता को, अन्दर तेजमय प्रभु, उसका नाम वीररस और यह निर्जरा का कारण है। समझ में आया?

**करुना समरस रीति... करुणा समरस रीति...** वह आता है न! 'सर्व जीव है

ज्ञानसम।' वह आता है योगसार में। सर्व जीव है ज्ञान सम। चैतन्यमूर्ति प्रभु तू है, ऐसी समता करना, उसका नाम करुणा है। सर्व जीव। अनन्त-अनन्त निगोद के जीव। एक शरीर में अनन्त और अंगुल के असंख्यवें भाग में असंख्य शरीर। ऐसे पूरे लोक में जीव भरे हैं। परन्तु सब ज्ञान की मूर्ति हैं। ऐसा अन्तर में समभाव लाना, उसका नाम करुणा।

**मुमुक्षु :** यह बचाना, वह करुणा नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह यहाँ बात ही नहीं। परन्तु बचा कहाँ सकता है? और बचाने का भाव हो, वह राग है। वह कहीं करुणा नहीं। आहाहा! अपनी द्रव्यदृष्टि जैसे पर्यायदृष्टि छोड़कर हुई, मैं ज्ञायक और चिदानन्द हूँ, ऐसा दृष्टि में आत्मा आया, तो ऐसी दृष्टि से सब जीव को देखते हैं। भगवान ही है। पूर्ण ज्ञान का पिण्ड है। समझ में आया?

ऐसी **करुना समरस रीति। अपने ही समान सब जीवों को समझना करुणा रस है।** किसी को बचाना या मारना, यह प्रश्न है नहीं। कर सकते ही नहीं। कहो, यह करुणा की व्याख्या। आहाहा! सर्वज्ञ भगवान को भी करुणा है। आदिपुराण में है। यह करुणा है। समझ में आया? आदिपुराण है न आदिपुराण। कौन हैं इसके कर्ता? जिनसेन आचार्य। जिनसेन आचार्य ने कहा, भगवान को अनन्त करुणा है। करुणा का अर्थ, सब जीव को समान देखते हैं दृष्टि में और अनुभव में, उसका नाम करुणा है। समझ में आया? श्रीमद् भी कहते हैं। 'करुणा हम पावत है तुमकी।' हे नाथ! तेरी करुणा—तेरे ज्ञान में हमारा आत्मा समश्रुति शुद्ध है, ऐसा जाना और हमारी दशा जब प्रगट हुई तो तेरे जानने में आया, वही आपकी हमारे ऊपर करुणा है। समझ में आया?

**करुना समरस रीति....** समरस—वीतरागरस। सारे अनन्त आत्मा अनन्त-अनन्त जीव की राशि, सब ज्ञानमय, ऐसा भाव लाना, उसका नाम करुणा है। **हास हिरदै उछाह सुख। मन में आत्म अनुभव का उत्साह हास्यरस है।** मन में आत्मा आनन्द का उत्साह, अपने स्वरूप में उत्साह। विकल्प से नहीं, पर से नहीं, अपना आनन्दस्वरूप का अनुभव करने में उत्साह, उसका नाम हास्य। बनारसीदास ने बनाया। **और अष्ट करम दल मलन....** आठ कर्म के दल का नाश **रुद्र वरतै तिहि थानक....** रुद्ररस है। आठों कर्म का चूरा। व्यवहार का चूरा। भगवान पूर्णानन्द स्वरूप की ओर झुकने से आठों कर्म का नाश हो, उसका नाम रुद्ररस है। यह कर्म रुद्ररस है। आहाहा!

**तन विलेछ बीभच्छ.... शरीर की अशुचिता विचारना बीभत्स रस है।** ओहो! शरीर का एक-एक अंग दुर्गन्ध से भरा है। समझ में आया? नव छिद्र, सबमें अशुचि झरती है। अशुचि का स्थान है। और पकवान खाया हो तो विष्टा बनाने की मशीन है यह तो। दूसरे में विष्टा नहीं होगी। आठ घण्टे में विष्टा, ऐसा अशुचि यन्त्र है यह। आहाहा! हाँ। अपच तो सब अजीर्ण १०-१०, २०-२०, ५०-५० दस्त। वायु ऐसी गन्ध मारे। यह मनसुखभाई थे न। राजकोट नहीं? मनसुखभाई थे न, उन्हें अन्तिम दस्त ऐसी हुई थी। दर्शन करने पावागढ़ गये थे। परन्तु बेचारे बैठे और उठे, बैठे और उठे और गन्ध मारे गन्ध। उस मस्जिद के पास। वहाँ बहुत मस्जिद हैं।

**मुमुक्षु :** ....है न वहाँ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वहाँ गये थे वे वहाँ। ओहोहो! इतना बीता लोगों को। और इतनी बार दस्त हो इसलिए वह झूला रखा था झूला। वहाँ बैठे। अब यहाँ दस्त जाये। बैठे और दस्त। मिनिट-मिनिट में, दूसरे मिनिट में हो। इतनी गन्ध मारे। मर गये। यह शरीर। आहाहा! पोपलकर, सम्हालकर रखा, वह यह शरीर।

गये थे न एक बार वावडी गये थे वावडी। मोहनभाई का वावडी है न राणपर। मोहन त्रिकमजी। एक बनिया था जैन स्थानकवासी। ऐसा गन्ध मारे शरीर। खड़े थे उसकी खाट के पास। खाटला क्या कहते हैं।

**मुमुक्षु :** चारपाई।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चारपाई। खड़े थे हम। गन्ध। गधा मरने पर गन्ध आवे, वैसी गन्ध आती थी। स्त्री ने कहा, महाराज आये हैं। कल तो चले जायेंगे। अपने आज ब्रह्मचर्य ले लेवें। तो कहे, आज नहीं। और रात्रि में समाप्त... गन्ध मारे यह शरीर। इसमें कहाँ कस्तूरी थी? कस्तूरी हो तो भी जड़ है। आहाहा! पेशाब, विष्टा, वीर्य, कानमैल, आँखमैल, नाकमैल, थूकमैल। आहाहा! यह मुर्दा सब मैल का पुतला है, यह अलग-अलग प्रकार का। कान का मैल हो, वह अलग प्रकार की गन्ध मारे। **तन विलेच्छ बीभच्छ....** आहाहा! ऐसे शरीर की अशुचिता का विचार करना वीभत्स रस है।

**दुंद मुख दसा भयानक... जन्म-मरण आदि का दुःख चिन्तवन करना भयानक**

**रस है।** चार गति का दु:ख, आहाहा! स्वर्ग में दु:ख, नरक में दु:ख, सेठाई में दु:ख, राज में दु:ख, गरीबाई में दु:ख। आकुलता, राग और द्वेष, इसकी आकुलता चार गति की। कहीं सुख नहीं। सर्वार्थसिद्धि में भी सुख नहीं। वहाँ अवतार में राग-द्वेष है, दु:ख है। जितना अनुभव किया, इतना सुख है। समझ में आया? आहाहा! कहा था न एक बार... पाण्डव ध्यान में थे। यहाँ थे। शत्रुंजय-पालीताणा के पास। मासखमण के उपवास थे। भगवान मोक्ष पधारे, इतनी खबर पड़ी। चढ़ गये ऊपर। ध्यान में मस्त। दुर्योधन के भानजे ने आकर लोहे के आभूषण (पहनाये)। आनन्दरस में घुस गये। आहाहा!

शत्रुंजय—पालीताणा है न यहाँ ही। धर्मराजा, भीम, अर्जुन तीन तो मोक्ष गये। (बाकी) दो को जरा विकल्प आया कि भाई को कैसा होगा? क्योंकि वे मुनि हैं, धर्मात्मा हैं, ध्यान में हैं। आहाहा! ऐसा विकल्प आया, विकल्प है शुभ। दो भव हो गये। सर्वार्थसिद्धि का बन्ध हुआ। एक भव ३३ सागर। वहाँ से निकलकर मनुष्य होंगे। दो भव हो गये। मुनि धर्मात्मा अपने भाई और ऐसे साधर्मीभाई की वेदना में विकल्प गया। वेदना तो उनको भी थी। राजकुमार थे। अरे! भाई ने... बस। इतने विकल्प में (संसार की) स्थिति दो (भव) आगे हो गयी। भगवान आत्मा में से निकल गये न इतने। तो शरीर मिला। अशुचि... अशुचि... अशुचि। आहाहा!

**दुंद मुख दसा भयानक....** द्वंद्व इस संसार के। राग-द्वेष, जहाँ पहुँचे दु:ख... दु:ख और दु:ख। ऐसा विचारे भयानक। आचार्य कहते हैं न, 'चार गति दु:ख से डरी।' आता है न योगसार में। 'चार गति दु:ख से डरी।' चारों गति में दु:ख है। आहाहा! शान्ति आत्मा में है, कहीं और है नहीं। ऐसे विचारे भयानक। **अदभुत अनंत बल चिंतवन....** अहो! आत्मा का शरीरप्रमाण से क्षेत्र छोटा, फिर भी उसका ज्ञानबल, आनन्दबल, शान्तिबल, स्थिरता—चारित्र, यह तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त है। यह क्या! यह अद्भुत आनन्द है। यह अद्भुत रस है। समझ में आया? भगवान आत्मा इतने स्वक्षेत्र में इतने में है, फिर भी उसकी भावशक्ति, ज्ञान अनन्त, दर्शन अनन्त, आनन्द अनन्त, वीरता अनन्त, स्वच्छता अनन्त, प्रभुता अनन्त, आहाहा! सुख अनन्त। यह वस्तु है न वस्तु, यह स्वभाव का (बल) एक-एक अनन्त है, अपरिमित है, बेहद है। ऐसा अद्भुत चिन्तवन। यह अद्भुत बल है, यह अद्भुत रस है। समझ में आया?

परमात्मपुराण में ऐसा लिया है। परमात्मपुराण है। दीपचन्दजी का। अरे जीव! तू देख तो सही कि भगवान आत्मा में एक समय में दर्शनगुण सामान्य रीति से भेद किये बिना देखे। मैं जीव हूँ या अजीव—यह भी भेद उसमें नहीं। ऐसे दर्शनगुण की यह उपयोगरूपी पर्याय जिसमें तीन लोक-तीन काल महासत्ता 'है' इतना ही देखना। यह जीव है, यह जड़ है, यह गुण है, यह गुणी—ऐसा कुछ नहीं। ऐसी एक समय में शक्ति। और ज्ञान में एक समय की शक्ति उसी समय में, उसी क्षेत्र में और उस ही काल में। उस ही क्षेत्र में और उस ही काल में उसकी भावशक्ति ज्ञान की एक समय में अनन्त... अनन्त जीव भिन्न-भिन्न, परमाणु भिन्न-भिन्न, गुण भिन्न-भिन्न, पर्याय भिन्न-भिन्न और एक-एक पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद भिन्न—ऐसे ज्ञान की पर्याय जाने, उस ही समय में एक दर्शन की पर्याय उस ही क्षेत्र में और उस ही काल में भेद बिना देखे—जाने। यह अद्‌भुत बात है। समझ में आया? अद्‌भुत में डाला है। पद्मपुराण। पद्मपुराण क्या? परमात्मपुराण। अद्‌भुत! यह बात ही... यह कहीं शब्द से कुछ काम आवे, ऐसा नहीं। जिसे स्वभाव का सागर परमात्मा निजात्मा, उसके एक-एक गुण और उसकी अनन्त पर्याय अनन्त गुण की, उसकी अद्‌भुतता एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक देखने में आयी, यह क्या है! यह अद्‌भुत... अद्‌भुत है! आगे आयेगा। कलश में आयेगा। '**अद्‌भुताअद्‌भुतं**' आहाहा!

**अदभुत अनंत बल चिंतवन,...** लो। **आत्मा की अनंत शक्ति चिंतवन करना अदभुत रस है।** एक-एक गुण में अनन्त शक्ति और ऐसी-ऐसी अनन्त शक्ति, यह वह कुछ बात है! ऐसी जो अनन्त शक्ति का चिन्तवन करना, विचारधारा में लेना, उसका नाम अद्‌भुत रस है। यहाँ तो कुछ पाँच लाख हो न, पच्चीस लाख पैदा हों तो, आहाहा! आज तो अद्‌भुत काम हुआ। धूल भी हुआ नहीं, सुन न! पास हो जाये स्कूल में लो न, आहाहा! अभिनन्दन... अभिनन्दन... अभिनन्दन... लड़के देने आवें, मित्र देने आवें, उसका पिता कहे, वाह... वाह बेटा! सुमनभाई है या नहीं? इनके पुत्र को कुछ आया है न, नहीं? पास हुआ तब पास। इनका लड़का पास हुआ तब.... कुछ उसकी ऐसी पद्धति के... यह अद्‌भुत नहीं। कोई तो लाख-दो लाख दे देवे, पाँच लाख दे। आहाहा! परन्तु उसमें क्या है? धूल। लाख के ऊपर लक्ष्य जाता है तो आत्मा का लक्ष्य छूट जाता

है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, **अद्‌भुत अनंत बल चिंतवन।** विचारधारा अन्तर में अनन्त शक्ति की चलती है, उसका नाम अद्‌भुतरस कहने में आता है। उसमें एकाकार हुआ, रस में एकाकार हुआ। आहाहा! ज्ञायक में अनन्त शक्ति का एकरूप विचार, परन्तु वह अनन्त शक्तिरूप एक तत्त्व, ऐसी विचारधारा अन्तर में चले, उसका नाम अद्‌भुतरस कहा जाता है।

**सांत सहज वैराग ध्रुव....** यह नौवां रस। **सो जब हृदय में सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है, तब दृढ़ वैराग्य धारण करना शांतरस है।** शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के विकल्प से भी हटकर दृढ़ शान्ति प्रगट करना, वैराग्य धारण करना। है इस ओर। परम उदासीनता पर से, अपने में आरूढ़ होना, वह शान्तरस है। 'शान्त दशा तिनकी पहिचानी, करे कर जोरी बनारसी वंदन।' आता है या नहीं? आहाहा! कषाय से, राग-द्वेष से हटकर दृढ़ वैराग्य में परिणति करना, उसका नाम शान्तरस... शान्तरस... शान्तरस। यह धर्मरस, यह चारित्ररस। यह ज्ञायक में एकाकार हुआ, वह आत्मा का ज्ञायकरस। आहाहा! बनारसीदास ने भी यह नव रस मिलाकर कहा। एकाकार किसमें होना है, ऐसा कहते हैं। एकाकार तो होती है दुनिया नव रस में। अपने स्वरूप में एकाकार होना, वही रस में रस शान्तरस है। प्रकाशित होता है, लो।

★ ★ ★

## काव्य - १३६

(चौपाई)

**जब सुबोध घटमैं परगासै।**
**तब रस विरस विषमता नासै।**
**नव रस लखै एक रस मांही।**
**तातैं विरस भाव मिटि जांही।।१३६।।**

**शब्दार्थः-सुबोध=सम्यग्ज्ञान। विषमता=भेद।**

**अर्थ:-जब हृदय में सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है, तब रस-विरस का भेद मिट जाता है। एक ही रस में नव रस दिखाई देते हैं, इससे विरसभाव नष्ट होकर एक शान्त रस ही में आत्मा विश्राम लेता है।।१३६।।**

## काव्य-१३६ पर प्रवचन

**जब सुबोध घटमैं परगासै, तब रस विरस विषमता नासै।** संसार में रस है और कुछ में रस नहीं है, ऐसी विषमता सम्यग्ज्ञान प्रगट होने से नाश हो जाती है। यह चीज़ रसवाली है, यह चीज़ रसरहित है, ऐसी जो विषमता... समझ में आया? जब सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है, **तब रस विरस विषमता....** रस-विरस का भेद मिट जाता है। यह खराब रस है, यह विरस है। लौकिक सब। आत्मा का रस तो आत्मा में है। परन्तु यह नाटक में बड़ा रस आता है, परन्तु जब निन्दा होती है, तो रस नहीं आता है। ऐसी विषमता सम्यग्ज्ञान होते ही मिट जाती है। आहाहा! समझ में आया?

**नव रस लखै एक रस मांही....** शान्तरस में नव रस जाने। शब्द भी नयी चीज़ है। **एक ही रस में निवरस दिखाई देते हैं।** शान्त... शान्त... स्वभाव-सन्मुख, परमात्मा के सन्मुख, राग से विमुख—ऐसा जो आत्मा में शान्तरस, उसमें नव रस आते हैं। अद्‌भुतरस भी यह ही और वीररस भी यह ही और रुद्ररस भी यह ही। आहाहा! समझ में आया? दुनिया में विवाह—शादी होती है और दो लाख-पाँच लाख का खर्च करना हो, बहुत आनन्द मनाये। ऐ मलूकचन्दभाई! मलूकचन्दभाई याद आये। बाजा बजे, पाँच-सात-दस लाख खर्च करे और उसमें उसे आनन्द आवे। आहाहा! अकेले दुःख के समुद्र में डुबकी मारता है। धूल में भी कहीं वहाँ सुख था? आहाहा! एक शान्तरस में सब रस आते हैं। भगवान आनन्द का धाम शान्तरस का पिण्ड प्रभु... 'उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में', आता है न? भक्ति में आता है। ऐसे भगवान आत्मा अकषाय वीतरागरस की मूर्ति है। उसका अनुभव करने से और सन्मुखता करने से जो शान्त... शान्त... शान्त... अकषायभाव उत्पन्न होता है, उसमें नव रस समा जाते हैं। आहाहा! अद्‌भुतता उसमें, वीर भी उसमें, रुद्र भी उसमें, हास्य भी उसमें। आहाहा!

**तातैं विरस भाव मिटि जांही,....** लो। विषमता मिट जाये। भगवान (आत्मा), विरस और रस जगत का, हों! उससे हटकर अपना ज्ञाता-दृष्टा के रस में आ जाये, रस-विरस की विषमता मिट जाये। कहो, पोपटभाई! यह छह लड़के बैठे हों और यह पैसा पैदा होते हों न! अभी तो दस लाख पैदा किये (ऐसा) सुनने में आवे। वह कहे, पाँच लाख किये। वह कहे, इतने किये। सब अलग-अलग बोले। आहाहा! अभी तो कमायी बहुत हुई, हों!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसकी? पाप की। यह हर्ष आना, वह पाप का रस है। यहाँ तो आत्मा का हर्ष अन्दर। चिद् वीर्य द्वारा, चिद् वीर्य द्वारा भगवान आत्मा में झुक जाये, उसमें शान्तरस में नवरस आ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन अपना सच्चिदानन्द प्रभु के सन्मुख जाना, शान्तरस प्रगट होते ही नवरस उसमें आ जाते हैं। (जगत का) कोई रस रहता नहीं। आहाहा! जगत का कोई रस रहता नहीं और शान्तरस में नव रस नहीं आते, ऐसा नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

## काव्य - १३७

(दोहा)

**सबरसगर्भित मूल रस, नाटक नाम गरंथ।**
**जाके सुनत प्रवांन जिय, समुझै पंथ कुपंथ।।१३७।।**

**शब्दार्थ:-मूल रस=प्रधानरस। कुपंथ=मिथ्यामार्ग।**

**अर्थ:-यह नाटक समयसार ग्रन्थ सब रसों से गर्भित आत्मानुभवरूप मूलरसमय है, इसके सुनते ही जीव सन्मार्ग और उन्मार्ग को समझ जाता है।।१३७।।**

## काव्य-१३७ पर प्रवचन

**सबरसगर्भित मूल रस, नाटक नाम गरंथ।**
**जाके सुनत प्रवांन जिय, समुझै पंथ कुपंथ॥१३७॥**

प्रधान रस। कुपंथ—मिथ्यामार्ग। **यह नाटक समयसार ग्रन्थ सब रसों से गर्भित आत्मानुभवरूप मूल रसमय है।** आत्मा का अनुभव करना, वह रस है। यह समयसार का सार है। **इसके सुनते ही जीव सन्मार्ग और उन्मार्ग को समझ जाता है।** ओहो! अपने स्वद्रव्य का आश्रय लेकर जमना, यह सन्मार्ग है। परद्रव्य का आश्रय लेकर उसमें जमना, यह कुमार्ग है। आहाहा! **'सदव्वाओ सुगइ, परदव्वाओ दुग्गई।'** दुर्गति। गजब बात है। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव की भक्ति का भाव और नामस्मरण का भाव, कहते हैं कि वह राग परद्रव्य आश्रय है तो दुर्गति है। ...दासजी! भगवान पूर्णानन्द अपना निजस्वरूप वस्तु है और वस्तु है तो उसकी एक-एक शक्ति पूर्ण है। ऐसी अनन्त शक्ति का प्रभु भगवान, उसमें एकाकार होना, वह स्वद्रव्य के आश्रय से जो दशा हो, वह मुक्ति अथवा सुगति। इस परिणमन को सुगति कहते हैं और परद्रव्य आश्रय राग को दुर्गति कहते हैं। आहाहा! भारी काम, भाई! **जाके सुनत प्रवांन जिय, समुझै पंथ कुपंथ।**

★ ★ ★

## काव्य - १३८

(चौपाई)

**वरतैं ग्रंथ जगत हित काजा।**
**प्रगटे अमृतचंद्र मुनिराजा॥**
**तब तिन्हि ग्रंथ जानि अति नीका।**
**रची बनाई संसकृत टीका॥१३८॥**

**अर्थः–यह जगत् हितकारी ग्रन्थ प्राकृत भाषा में था सो अमृतचन्द्रस्वामी ने इसे अत्यन्त श्रेष्ठ जानकर इसकी संस्कृत टीका बनायी।।१३८।।**

काव्य-१३८ पर प्रवचन

**वरतै ग्रंथ जगत हिय काजा...** देखो! यह समयसार तो जगत के हित के कारण यह वर्तता है, कहा है। जगत का हित हो, मोक्ष का मार्ग और मोक्ष। **वरतै ग्रंथ जगत हिय काजा प्रगटे अमृतचंद्र मुनिराजा...** इस ग्रन्थ की टीका करनेवाले अमृतचन्द्र मुनि हुए ९०० वर्ष पहले। गजब टीका! अध्यात्म की गम्भीर टीका और ऐसी टीका न हो तो शास्त्र के मूल शब्दों में से (अर्थ) निकालने की शक्ति किसी ही जीव की होती है। समझ में आया? **वरतै ग्रंथ जगत हिय काजा...** अहो! यह समयसार, जगत के हित के काज जगत में समयसार वर्तता है। आहाहा!

**प्रगटे अमृतचंद्र मुनिराजा... यह जगतहितकारी ग्रंथ प्राकृतभाषा में था, सो अमृतचंद्रस्वामी ने इसे अत्यन्त श्रेष्ठ मानकर इसकी संस्कृत टीका बनाई।** मूल शब्द (गाथायें) संस्कृत नहीं यहाँ, मूल श्लोक। अमृतचन्द्राचार्य मुनि। आकाश के स्तम्भ, चलते सिद्ध। ९०० वर्ष पहले, हाथ में कमण्डल, मोरपिच्छी, चलते सिद्ध। क्रिया और राग सबको, अपने में जानते हैं तो जानने में आ जाता है, ऐसी विभूति थी। उन्होंने यह कुन्दकुन्दाचार्यदेव की टीका बनायी। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचम काल में तीर्थंकर जैसा काम किया, अमृतचन्द्राचार्य ने उनके गणधर जैसा काम किया है। आहाहा! समझ में आया?

**तब तिन्हि ग्रंथ जानि अति नीका....** अमृतचन्द्र आचार्य मुनि भावलिंगी सन्त अनुभवी स्वसंवेदी, रसास्वादी, आत्मा के रस के स्वादिया। ऐसे अमृतचन्द्राचार्य ने **तब तिन्हि ग्रंथ जानि अति नीका....** ओहो! उन्होंने जाना कि यह समयसार! समझ में आया? **अति नीका।** आचार्य स्वयं कहते हैं। यह ग्रन्थ अत्यन्त श्रेष्ठ जानकर... अत्यन्त श्रेष्ठ... आहाहा! संस्कृत टीका बनायी। उन्होंने संस्कृत टीका (बनायी)। कहा था न पहले जब यह शास्त्र समयसार हाथ आया, (संवत्) १९७८ में (तो) ऐसी आवाज

निकली। तब सेठ थे। ....सेठ! यह पुस्तक अशरीरी (होने का शास्त्र) है। इस पुस्तक का भाव बैठ जाये, उसे शरीर रहता नहीं। तब उसने तो हाँ किया उस समय। उस समय तो प्रतिकूल नहीं था न! उस समय कहा उसने, महाराज! ऐसी बात कौन मानेगा? कौन माने?

मार्ग तो एक यह है। समयसार अर्थात् अकेला आत्मा सिद्ध समान अशरीरी हो जाये, वह समयसार। शरीर रहे नहीं, राग रहे नहीं और अनन्त आनन्द प्रगट हुए बिना रहे नहीं, वह यह समयसार। ७८ के वर्ष में। २२ और २७ = ४९ वर्ष हुए, पचास में एक कम। आहाहा! कहते हैं, यहाँ तो कहना है कि **तब तिन्हि ग्रंथ जानि अति नीका...** अमृतचन्द्राचार्य को ऐसा लगा कि यह ग्रन्थ! आहाहा! अति शोभनीक, अति अलौकिक, अति अलौकिक! समझ में आया? **रची बनाई संसकृत टीका...** उसमें इसकी संस्कृत टीका बनायी। अलौकिक काम किया। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १४९, भाद्र शुक्ल ९, सोमवार, दिनांक ३०-०८-१९७१**
**सर्वविशुद्धि द्वार, पद १३९ तथा सार पर प्रवचन**

समयसार नाटक। मूल शास्त्र जो कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ है, उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य ने की। यह ग्रन्थ पूरा हुआ। है न १३९ ?

★ ★ ★

**काव्य - १३९**

(दोहा)

**सरब विसुद्धी द्वारलौं, आए करत बखान।**
**तब आचारज भगतिसौं, करै ग्रंथ गुन गान।।१३९।।**

**अर्थ:-स्वामी अमृतचन्द्र ने सर्वविशुद्धि द्वार पर्यन्त इस ग्रन्थ का संस्कृत भाषा में व्याख्यान किया है और भक्तिपूर्वक गुणानुवाद गाया है।।१३९।।**

**काव्य-१३९ पर प्रवचन**

**सरब विसुद्धी द्वारलौं, आए करत बखान।**
**तब आचारज भगतिसौं, करै ग्रंथ गुन गान॥१३९॥**

सर्वविशुद्धि अधिकार पर्यन्त... अमृतचन्द्राचार्य महा भावलिंगी सन्त दिगम्बर नग्न वनवासी, उन्होंने यह संस्कृत में टीका बनायी। ४१५ श्लोक (गाथायें) थीं। उसकी चार हजार... संस्कृत टीका बनी। वह सब परमागम (मन्दिर) में संगमरमर पर आयेगा। वह कब आवे, यह तो रामजीभाई के ऊपर है अब। ऐई! यह मेहनत तो बहुत करते हैं परन्तु अब... अभी तक वह नहीं लाये संगमरमर, वह तो उनकी भूल है या नहीं? संगमरमर आदि सब जो चाहिए वह... वस्तु बिना महीना रहा। वैशाख में तो

करने का है। फिर नहीं तो अब बारह महीने तो तुम्हारे अब आगे जायेगा। मैंने तो मावजीभाई को कहा था।

**मुमुक्षु :** सब अच्छे वानां होंगे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लो! आगामी वैशाख में न हो तो फिर बहुत मुश्किल... बहुत मुश्किल। और यह काल ऐसा का ऐसा चला जाता है। शरीर का भरोसा नहीं। अच्छा काम तो झट देखने में आवे....

**मुमुक्षु :** अच्छा काम झट....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** रामजीभाई कहे, अच्छा काम झट करना। ऐई पाटनीजी!

संस्कृत टीका और ४१५ श्लोक। अमृतचन्द्राचार्य के, जयसेनाचार्य के .... गाथा लिखी। तो यह अर्थपूर्वक यहाँ पूरा हुआ। भक्तिपूर्वक गुणानुवाद गाया है। संस्कृत टीका में समयसार का गुणानुवाद गाया। इतना स्पष्टीकरण किया कि जैसा स्पष्टीकरण संस्कृत में न हो तो मूल गाथा में निकालना बहुत (मुश्किल)। अमरचन्दभाई! बहुत गम्भीर। गजब बात। आहाहा! परमात्मा अखण्डानन्द प्रभु ऐसा खड़ा करके बताया। वह उसमें भी आता है, हों! बारह अनुप्रेक्षा में है कुछ। उसमें यह आता है। गृहस्थ और मुनि का धर्म वर्णन किया न, उसमें भी कहा है (कि) यह गृहस्थ और मुनि का धर्म निश्चय से तो आत्मा में है ही नहीं। ऐसा कहा परन्तु उन्हें अर्थ करना नहीं आया। निश्चय से धर्म नहीं, ऐसा कहकर.... गृहस्थ और मुनि सबका कहा। ऐसा अर्थ किया है। परन्तु वास्तव में तो मुनि का धर्म जो वीतराग पर्याय और विकल्प महाव्रत आदि के, वह भी कहीं निश्चय वस्तु में नहीं है। बहुत अच्छी बात कही है। अमरचन्दभाई!

भगवान यह अविनाशी तत्त्व जो सम्यग्दर्शन का ध्येय अर्थात् विषय है, उसमें वह मुनिपना का या श्रावक का वीतरागी पर्यायरूप धर्म या राग है नहीं अन्दर में।

**मुमुक्षु :** ऐसा दो-तीन जगह है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसमें दो-तीन जगह चिह्न किये हैं। आज ही देखा। आज देखा। दो-तीन जगह है। पहले पढ़ा था उसमें। दूसरी पुस्तक है न समाधि... उसमें है। परन्तु अब यह सब इकट्ठा है न, उसे एक बार पढ़ गये।

आत्मा अखण्ड प्रभु एक समय में—सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में... सुबह आया था। हमारे करसनभाई बहुत प्रसन्न हुए थे, सुबह में व्याख्यान सुनकर। सेठी! सही बात यह है। वस्तु भगवान... भाई! तेरी महिमा अपार है। ऐसी चीज़ आनन्द और ज्ञान का सागर प्रभु, ऐसी चीज़ परमस्वभाव, उसमें तो श्रावक और मुनि की, चौदह गुणस्थान की पर्याय भी उसमें नहीं है। आहाहा! गुणस्थान उसमें नहीं है। समझ में आया? अरे! सिद्धपर्याय भी द्रव्य में नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसे तत्त्व की दृष्टि करना, वह बात है। समझ में आया? अन्तर्मुख दृष्टि का विषय, उसमें तो सिद्ध और संसार दोनों पर्यायें और चार भाव है नहीं। ऐसी चीज़ है। लोगों को सुनने में आयी नहीं। सुनने में आयी नहीं क्या चीज है। ऐसा करो, भक्ति करो, व्रत पालो, तप करो। वह तो सब शुभभाव मिथ्यात्वसहित... मिथ्यात्वसहित है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णस्वरूप जिसका अधिकार सर्वविशुद्धि में कहा था, वह यहाँ पूरा हुआ और टीका करने में गुणानुवाद गाया, ऐसा कहते हैं। संस्कृत टीका—४१५ श्लोक (-गाथाओं) का स्पष्टीकरण पूरा हुआ। अब **दसवें अधिकार का सार।**

★ ★ ★

## दसवें अधिकार का सार

**अनन्त काल से जन्म-मरणरूप संसार में निवास करते हुए इस मोही जीव ने पुद्गलों के समागम से कभी अपने स्वरूप का आस्वादन नहीं किया, और राग-द्वेष आदि मिथ्याभावों में तत्पर रहा। अब सावधान होकर निजात्म-अभिरुचिरूप सुमति राधिका से नाता लगाना और परपदार्थों में अहंबुद्धिरूप कुमति कुब्जा से विरक्त होना उचित है। सुमति राधिका शतरंज के खिलाड़ी के समान पुरुषार्थ को प्रधान करती है और कुमति कुब्जा चौसर के खिलाड़ी के समान 'पाँसा परै सो दाव' की नीति से तकदीर का अवलम्बन लेती है। इस दृष्टान्त से स्पष्ट है कि नीति से अपने बुद्धिबल**

**और बाह्य साधनों को संग्रह करके उद्योग में तत्पर होने की शिक्षा दी गई है। नसीब की बात है, कर्म जैसा रस देगा सो होवेगा, तकदीर में नहीं है। इत्यादि किस्मत के रोने को अज्ञानभाव बतलाया है, क्योंकि तकदीर अन्धी है और तदवीर सूझती हुई है।**

**आत्मा पूर्वकर्मरूप विषवृक्षों का कर्ता-भोक्ता नहीं है, इस प्रकार का विचार दृढ़ रखने से और शुद्धात्म पद में मस्त रहने से वे कर्म-समूह अपने आप नष्ट हो जाते हैं। यदि अन्धा मनुष्य लँगड़े मनुष्य को अपने कन्धे पर रख ले, तो अन्धा लँगड़े के ज्ञान और लँगड़ा अन्धे के पैरों की सहायता से रास्ता पार कर सकता है, परन्तु अन्धा अकेला ही रहे और लँगड़ा भी उससे जुदा रहे तो वे दोनों इच्छित क्षेत्र को नहीं पहुँच सकते, और न विपत्ति पर विजय पा सकते हैं। यही हाल ज्ञान चारित्र का है। सच पूछो तो, ज्ञान के बिना चारित्र चारित्र ही नहीं है, और चारित्र के बिना ज्ञान ज्ञान ही नहीं है, क्योंकि ज्ञान के बिना पदार्थ के स्वरूप को कौन पहिचानेगा और चारित्र के बिना स्वरूप में विश्राम कैसे मिलेगा? इससे स्पष्ट है कि ज्ञान-वैराग्य का जोड़ा है। फल-क्रिया में लीन होने की जैनमत में कुछ महिमा नहीं है, उसे 'करनी हित हरनी सदा मुकति वितरनी नांहि' कहा है। इसलिए ज्ञानी लोग ज्ञानगोचर और ज्ञानस्वरूप आत्मा का ही अनुभव करते हैं।**

## दसवें अधिकार के सार पर प्रवचन

**अनन्त काल से जन्म-मरणरूप संसार में निवास करते हुए....** चौरासी के अवतार। एक-एक योनि में अनन्त बार जन्म और मरण अनन्त बार हुआ। भगवान आत्मा अविनाशी चीज़, उसका अन्तर स्वरूप का अपना निजबोध के सिवा संसार में जन्म और मरण (किये)। संसार में निवास करते हुए, संसार में भटकते हुए... मोही जीव ने अपना स्वरूप, राग और शरीररहित निर्मोह दृष्टि से जो प्रतीति में आता है, ऐसी जिसे खबर अनादि से नहीं है। **इस मोही जीव ने पुद्गलों के समागम से....** शरीर, कर्म और राग, यह सब पुद्गल जड़ हैं। उसका समागम किया। अपना समागम करना चाहिए, उसे छोड़कर अनादि (से पर का समागम किया)। दिगम्बर द्रव्यलिंगी साधु भी हुआ। उसमें भी आता है द्रव्यलिंगी। आता है। समझ में आया? **इस मोही जीव ने पुद्गलों के समागम से....** विकल्प जो राग है, वह भी एकान्त पुद्गल ही है, चैतन्य

नहीं। कर्म और शरीर, वह तो अजीवतत्त्व पृथक्-पृथक् है। उसका समागम किया। जो अपने में नहीं, उसका समागम (किया)। यह धन्धा किया है अनन्त काल। राग और द्वेष, हों! दूसरा कुछ बाहर का किया नहीं। आहाहा!

**...कभी अपने स्वरूप का आस्वादन नहीं किया।** उसने तो अनादि से पुण्य-पाप का, राग का स्वाद लिया। सेठ! यह पैसा-बैसा धन्धे में क्या किया? राग का स्वाद लिया। यह जाति चैतन्य से उल्टी, पुण्य-पाप की जाति अचेतन है। चैतन्य से भिन्न है, चैतन्य से अन्य है। अन्य का अनादि से स्वाद लिया। आहाहा! अपने स्वरूप का स्वाद नहीं किया। अपना ज्ञानानन्द शान्तरस का सागर प्रभु कल्पवृक्ष... अध्यात्म कल्पद्रुम। पहले यह पुस्तक हाथ में आयी थी। पालेज दुकान पर पहली पुस्तक। हमारी दुकान थी। उसका सेठ था। दुकान का मालिक चुनीलाल मोतीलाल। तो उसके पास था अध्यात्म कल्पद्रुम। कल्पद्रुम। द्रुम अर्थात् वृक्ष। अध्यात्म का कल्पवृक्ष। यह आत्मा अध्यात्म कल्पद्रुम है। उसमें साधारण वैराग्य की बात थी।

भगवान आत्मा... कहते हैं कि अपना—निज स्वाद न लेकर अध्यात्म अर्थात् अपना—निज आनन्द, उसका स्वाद न लेकर, अपनी प्रतीति न करके, राग और द्वेष मिथ्याभाव में तत्पर रहा। मिथ्यादृष्टि जैन का दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ। ऐसे तो अनन्तभव किये। छहढाला में तो आता है कि द्रव्यलिंग धारण कर, हे मुनि! चौदह ब्रह्माण्ड में ऐसी कोई जगह खाली नहीं कि जहाँ तूने द्रव्यलिंग धारण करके भी अनन्त जन्म-मरण न किये हों। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि वह क्रियाकाण्ड का राग उसका स्वाद था।

**मुमुक्षु :** वहाँ भी कोई उपदेश देनेवाले नहीं थे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उपदेश देनेवाला मिला, परन्तु माननेवाला नहीं मिला। समझ में आया? भव्य जीव समवसरण में भी जाते हैं और समवसरण में भगवान करें क्या? अपना निजस्वरूप का माहात्म्य आया नहीं और राग किया जो दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा आदि, उसका स्वाद आया, उसमें रुक गये। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **राग-द्वेष आदि मिथ्याभावों में तत्पर रहा...** अहो! भगवान अतीन्द्रिय

आनन्द का धाम, उसका स्वाद का अभाव अनादि से (रहा)। भोग और योग और रोग—सबमें राग का स्वाद था। योग अर्थात् क्रिया के अर्थ में। आहाहा! मिथ्याभाव में तत्पर, त्रिकाली ज्ञायकभाव में तत्परता छोड़कर... आहाहा! राग-द्वेष, पुण्य-पाप का भाव, वह मिथ्याभाव है, अपना स्वभाव नहीं। उसमें तत्पर रहा। **अब सावधान होकर...** अब तो खेद (कर), ऐसा कहते हैं। आहाहा! **अब सावधान होकर...** नींद में था न? पर में सावधान था। अब अपने में सावधान होकर... **निजात्म—अभिरुचिरूप सुमति राधिका से नाता लगाना....**

राधिका का दृष्टान्त आया था न! कुब्जा और राधिका। सुमतिरूपी राधिका। सम्यग्ज्ञानरूपी सुमति जिसने अपना घर निहारा (-देखा)। आहाहा! कुमति ने तो राग-द्वेष का घर निहारा था। समझ में आया? **निजात्म—अभिरुचिरूप,** देखो! भगवान तीर्थंकर की अभिरुचिरूप, ऐसा नहीं। समझ में आया? भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा वे तो परद्रव्य हैं। सिद्ध भी परद्रव्य है और अरिहन्त परद्रव्य है। उनकी रुचि, वह तो राग है। आहाहा! समझ में आया? जिनवाणी आगम की रुचि, वह भी राग है। समझ में आया? क्या करना अब?

कहते हैं, निजात्म—अपना भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान, दर्शन और आनन्द की सत्ता रखनेवाला, अपनी अस्ति—अपनी मौजूदगी में अनन्त आनन्द और ज्ञान रखनेवाली चीज़ आत्मा, आहाहा! ऐसा **निजात्म-अभिरुचिरूप...** उसकी रुचि। अभि कहा न? उसके सन्मुख की रुचि, ऐसा कहा। परसन्मुख की रुचि तो अनन्त बार की। भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान अकेला जिसका स्वभाव है, उसके अभि—सन्मुख। मतिज्ञान को अभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं न! आहाहा! आभि...

**मुमुक्षु :** कुन्दकुन्दाचार्य अभिनिबोधिक कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, अभिनिबोधिक कहते हैं। उसका अर्थ सन्मुखता। सन्मुखता। आहाहा!

जो राग की सन्मुखता अनादि की है, परद्रव्य की सन्मुखता स्व की विमुखता होकर है, अब स्वसन्मुख की अभिरुचि कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह शब्द

नहीं, भाव में अन्दर में आत्मा पूर्णानन्द ऐसा ख्याल आकर, आहाहा! उसके सन्मुख जाकर दृष्टि बनाना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सुमति राधिका है। समझ में आया? आहाहा! नाता लगाना। यह सम्यग्ज्ञान की पर्याय में द्रव्य का नाता लगाना। समझ में आया? राधिका से नाता लगाना। सुमति राधिका से नाता लगाना। देखो, पर्याय के साथ... पर्याय स्वसन्मुख हुई, उसके साथ में प्रेम लगाना।

**और परपदार्थों में अहंबुद्धिरूप कुमति....** आहाहा! यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, देह तो पर है। उसके साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। भटकते-भटकते स्त्री का आत्मा आया। तुम भी भटकते-भटकते आये। और लड़का भी भटकते-भटकते आया। कोई उसका लड़का है नहीं, स्त्री है नहीं। कोई है नहीं। परन्तु उसका है नहीं। आहाहा! उनके प्रति प्रेम हुआ, यह कुमति-कुब्जा है। आहाहा! और देव-गुरु और शास्त्र भी परद्रव्य हैं। यह इसे कठिन पड़ता है। आता है, उसकी रुचि है, परन्तु वह राग है। कहते हैं, **परपदार्थों में अहंबुद्धिरूप कुमति....** आहाहा!

पंचास्तिकाय १७० गाथा में तो कहा है। भगवान स्वयं कहते हैं कि तीर्थंकर मैं हूँ... तीर्थंकर की जिसे रुचि रहे, नौ पदार्थ की रुचि जब तक रहे और सूत्र—आगम की जब तक रुचि रहे, तब तक मुक्ति नहीं होगी। समझ में आया? आहा! भारी कठिन! विकल्प है, राग है, विभाव है, जहर है। प्रेमचन्दजी! ऐसा मार्ग है। दिल्ली में तो कुछ सुनने को मिले नहीं वहाँ। कभी और इसके पिता ने यहाँ मकान डाला है, वह आवे कभी। इतना टिका है, हों! यह मकान डाला है वह। पैसा हो, न हो, लड़के तो यहाँ आवे पीछे से। उसे कहाँ अधिक जीना है। दो लाख डाले यहाँ लड़के के लिये। सब बाद के यहाँ आवे। दो भाईयों के। दो भाईयों के साथ में। साथ में तो यह है न पहला। ....सेठ! आहाहा!

कुब्जा और अहंबुद्धि। अपनी शुद्ध चैतन्यवस्तु की अहंबुद्धि छोड़कर, राग और पुण्य-पाप के विकल्प मैं, परद्रव्य मेरा—ऐसी अहंबुद्धि, यह कुमति—कुब्जा है। आहाहा! **अज्ञानरूपी कुमति कुब्जा से विरक्त होना उचित है।** अज्ञान से विरक्त होना उचित है। अज्ञान में रत है, वह तो अनादि से है। आहाहा! समझ में आया?

**सुमति राधिका शतरंज के खिलाड़ी के समान पुरुषार्थ को प्रधान करती है।** अपने धर्म में... धर्म में, हों! **सुमति राधिका शतरंज के खिलाड़ी...** शतरंज होता है न? हाथी, घोड़ा, प्यादा। हाँ, परन्तु वह शतरंज नहीं। **....पुरुषार्थ को प्रधान करती है।** सम्यग्ज्ञान ऐसी सुमति राधिका, अपने स्वभाव-सन्मुख पुरुषार्थ कर तो तुझे धर्म होगा, ऐसा पुरुषार्थ प्रधान बताती है। ऐसे-वैसे मिल जाये, ऐसा नहीं। समझ में आया? भाई, कर्म में हो तो धर्म होगा। हमारे सेठ थे तो ऐसा बोलते थे। बहिन नहीं होगी? ...बहिन है? गोकुलभाई थे गोकुलभाई। .....बहिन है हमारे बोटाद की? वह चूड़ा के।

उन्होंने—बहिन ने कहा होगा कि अब तुम यह धर्म तो करो, महाराज कहते हैं। ऐसा कभी आवे सही। यहाँ प्रेम था। आवे सही, परन्तु समय न मिले। सब रुपये। धमाल... धमाल... धन्धा। बहुत पैसे हो गये बहुत लाखों। उसमें घुस गया है। तो बहिन ने कहा, परन्तु धर्म तो (करो)। पैसा लेने कहाँ गये थे? पुण्य-कर्म में था तो आये। धर्म भी कर्म में हो तो आ जायेगा। यह कुमति है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कर्म में धर्म नहीं रहा है। कर्म में तो बाहर की सामग्री मिले—नहीं मिले, उसका निमित्त कर्म है। धर्म में निमित्त कर्म हो तो धर्म होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! **खिलाड़ी के समान पुरुषार्थ को प्रधान करती है।**

**कुमति कुब्जा चौसर के खिलाड़ी के समान 'पाँसा परै सो दाव' की नीति से तकदीर का अवलम्बन लेती है।** डाले न ऐसे चौपाट। समझ में आया? दाव डाले तो आवे। उसमें इसके अधिकार की बात कहाँ आयी? पासा डाले और ऐसे आवे तो आ जाये। ऐई सेठी! ....नीति से तकदीर का आलम्बन लेती है। कुमति तो पुरुषार्थ छोड़कर कर्म में होगा तो धर्म होगा, भैया! हम क्या करें? समझ में आया? जैनधर्म में भी नामधारी ऐसा कहते हैं न कितने ही। समझ में आया? एक था, वह भी ऐसा कहता था और उसमें ऐसा लिखा है। वह है न जिन.... कैसा?

**मुमुक्षु :** जिनविजय।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जिनविजय। श्वेताम्बर साधु था न जिनविजय, नहीं? जामनगर के पास एक गाँव है। वह साधु था जिनविजय। फिर उसने छोड़ दिया, एक पुस्तक लिखी।

उसमें ऐसा लिखा था, वह पुस्तक थी वहाँ जामनगर। ऐसा लिखा था कि कर्म भी एक पदार्थ है। कर्मपदार्थ की पर्याय जब पलटेगी, तब जीव को धर्म होगा। पुस्तक बनायी थी। वहाँ बुद्धिबहिन है न, तब हमको देखने को दी थी। यह तो (संवत्) १९८३ की बात है ८३। संवत् १९८३। ४४ वर्ष हुए। चातुर्मास था वहाँ। .... दी थी। ऐसा कि, महाराज पुरुषार्थ... पुरुषार्थ करते हैं धर्म में। परन्तु यह कर्म के कारण सब होता है, ऐसा लिखा है। अरे! तेरी चीज़ तेरे सन्मुख पुरुषार्थ किये बिना प्राप्त होगी कहाँ से? कर्म में है कोई चीज़? कर्म तो जड़ है, धूल है। समझ में आया? आहाहा!

कुमति तकदीर का अवलम्बन लेती है। नसीब में हो वह आवे, ऐसा। करसनभाई! नसीब में हो तो पैसा आदि मिले। जवाहरात का धन्धा आदि। समझ में आया? और पुरुषार्थ करे नहीं। राग हो थोड़ा, परन्तु पूर्व का प्रारब्ध है तो अरबपति हो जाते हैं, लो, अरबोंपति। ओहोहो! सौ करोड़ का अरब। आहाहा! अरबपति हैं न लोग। गोवावाले। पोपटभाई है या नहीं? यह पोपटभाई बैठे। इनका साला, सगा साला। उसका सगा साला। दो अरब चालीस करोड़...

**मुमुक्षु :** बाद में और बढ़ गया होवे भाव....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं। अभी भाव बढ़ गये, नहीं तो चालीस करोड़ थे। ....७८ लाख की जमीन ली। उसमें एक अरब का ऐल्युमीनियम निकला। अभी भाव बढ़ गये तो दो अरब। गिनती करनी है न? दो अरब। इन पोपटभाई का साला है। पोपटभाई की एक लड़की है, वह ब्रह्मचारी है, निर्मलाबेन, ब्रह्मचारी है। अब यह तो पुण्य के कारण.... आहाहा!

और दूसरा वहाँ सुना अभी जयपुर में। दुर्लभजी। दुर्लभजी झबेरी है न? उसका लड़का ...और दूसरा बड़ा भाई.... वह गुजर गया। उसका लड़का था। .... कितना कुछ बहुत पैसा था। होगा ७०-८० करोड़ तो होगा। बहुत करोड़ हों, लाख नहीं। पहली बार सुना, हों। मैंने तो भाई को—गोदीका को पूछा था। हम उतरे थे न उनके मकान में। सामने एक मकान था, उसकी स्त्री के नाम का पैंतीस लाख का अस्पताल बनाया, पैंतीस लाख का। इतना सब बनाया स्त्री के नाम का तो पैसा कितना होगा? तो गोदीका

कहे, यह झबेरी के धन्धा हाथ में पाँच लाख.... उसके साथ गये थे। वह कहे, मुझे तो ऐसा लगता है, दो अरब हैं। चाहे वह थोड़ा हो तो भाई ऐसा... पैसा बहुत है। वह तो पुण्य के कारण है, तकदीर के कारण है। धर्म पुरुषार्थ से होता है या तकदीर से होता है? आहा! यह तो पूर्व का भाग्य पड़ा हो। उसमें आत्मा को क्या लाभ हुआ? अरब हो या दो अरब हो या सौ अरब हो। भिखारी है। ऐ सेठ! कर्म ने किया ऐसा हुआ, वह तो संयोग की चीज़ है। धर्म में ऐसा है नहीं। धर्म तो अपने पुरुषार्थ से होता है। समझ में आया? वह कहते हैं, देखो!

**इस दृष्टान्त से स्पष्ट है कि नीति से, अपने बुद्धिबल और बाह्य साधनों को संग्रह करके....** यह थोड़ा डाला है यहाँ। **उद्योग में तत्पर होने की शिक्षा दी है।** अपने स्वरूप का उद्योग हो, बाह्य का नहीं। आहाहा! बुद्धिबल और बाह्य साधनों को संग्रह करके अर्थात् सत् समागम, सुनना आदि। उद्योग में तत्पर होने की शिक्षा दी है। स्वरूप भगवान आत्मा, उस ओर का पुरुषार्थ का झुकाव कर ले। समझ में आया? यह करना वह है। बाकी तो सब खोखला है। हैरान होकर मर जायेगा कहीं। पोपटभाई! सत्समागम होना, बस वह उद्योग। वह करना स्वभाव की ओर। समझ में आया?

**नसीब की बात है, कर्म जैसा रस देगा सो होवेगा, तकदीर में नहीं है, इत्यादि किस्मत के रोने को अज्ञानभाव बतलाया है।** किस्मत में लिखा होगा (तो धर्म होगा, ऐसा माननेवाला) अज्ञानी मूढ़ जीव है। समझ में आया? आहाहा! आलसी आता है न। आ गया है अपने। आलसी निरुद्यमी भूमिका है। समकिती को नित्य उद्यमी भूमिका है। वह आ गया है। पहले आया है। परन्तु कहीं सब याद रहे? कहीं उसका विस्तार... कहाँ आया? ऐसा वहाँ है कि आलसी... नहीं? है लिखा है। आगे कहीं था। ऐसा **किस्मत के रोने को अज्ञानभाव बतलाया है।** किसमें? धर्म में, हों! बाहर की लक्ष्मी होना, पुत्र होना, वह तो पूर्व के कर्म में हो तो आता है, इतना। उसमें कोई प्रयास करे, बहुत प्रयास करे। किसी को मानना, हनुमान को और शिकोतर को और अम्बाजी को....

पुत्र न हो, पैसा अपने पास पाँच-पच्चीस लाख हो, अब एक पति-पत्नी हो। यह पैसा, मर जायेंगे तो देवर का पुत्र ले जायेगा। देवर... देवर... स्त्री हो न मूढ़। जहाँ-तहाँ

शिकोतर और अम्बाजी और भवानी को सिर फोड़े—नारियल चढ़ावे। और १००१ रुपया रखूँगी। यदि पुत्र होगा तो पचास हजार रखूँगी। मूकशुं को क्या कहते हैं? दूँगा। लड़का होगा तो चाँदी का रथ बनाऊँगा... धूल, मूर्ख है। समझ में आया? चाँदी को सोना का बना, तो पुत्र उससे होगा? तेरी—अज्ञानी की भ्रमणा है। समझ में आया? शिवलालभाई! यह पुत्र न हो न, फिर बहुत यह तो... और न हो तो बेचारे सिरफोड़ करे जहाँ-तहाँ पुत्र के लिये। कहो, समझ में आया इसमें?

यहाँ तो कहते हैं, **तकदीर अंधी है।** पुरुषार्थ करना स्वभाव, वह जागती ज्योति है। समझ में आया? **और तदबीर सूझती हुई है।** तदबीर, हों! वह तकदीर, यह तदबीर—पुरुषार्थ। भाषा लगायी न। **तकदीर अन्धी है और तदबीर सूझती हुई है।** अपने स्वभाव में, हों! यह तदबीर नहीं बाहर का करना न। हिम्मतभाई! बहुत ध्यान रखे तो लोहे का व्यापार अच्छा चले, ऐसा कहे। परन्तु सब लगाम हाथ में हो। लड़के को कहे कि भाई! इतना करना, इतना रखना, यह रखना। यह रखना। प्रवीणभाई को कहे। प्रवीणभाई ऐसा कहे, मोटाभाई! क्या करना है? ....उसके कारण होता होगा? धूल भी होती नहीं। आहाहा! बाहर में हो, उसमें तुझे क्या? ऐ पोपटभाई! वहाँ पोपटभाई के पिता के पास कहाँ थे इतने पैसे? यह पुरुषार्थ से हुए होंगे न?

एक व्यक्ति यहाँ आया था भावनगरवाला, भाषण करने गुरुकुल में (आया था)। हम पहले साधारण कुल में जन्मे थे। हम पुरुषार्थ करके परदेश में गये। ऐसा उद्यम-व्यवसाय किया तो अभी थोड़ा पैसा आया है। भावनगर का दीवान। अब यह सुननेवाले भी मूढ़। कहो, पाटनीजी! क्या? बहुत है डोबा जैसा। डोबा समझे? भैंस... भैंस। डोबा... डोबा... डोबी। हमारे भैंस को डोबा कहते हैं। हमारी काठियावाड़ी भाषा है। डोबा है। ...डोबो, ऐसा कहते हैं न!

**मुमुक्षु :** पागल।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पागल है बस वह।

**मुमुक्षु :** पागल न कहे, डोबो कहे वह।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पागल न कहे उसे सीधा भाषा में।

यहाँ तो तकदीर अन्धी है। धर्म में तकदीर अन्धी है। कर्म से कुछ होता नहीं। अपना स्वभाव समझना, पुरुषार्थ करना, वह सब उद्यम से होता है। आहा! और तदबीर—पुरुषार्थ सूझती हुई दशा है। समझ में आया? भगवान सर्वज्ञ ने तो ऐसा कहा है कि हम कहते हैं ऐसा पुरुषार्थ करो तो तुम्हें धर्म होगा ही होगा। उपदेश क्यों दिया भगवान ने पुरुषार्थ करने को? कि नहीं, तुझसे पुरुषार्थ नहीं होगा। हमने देखा है, तब होगा। तो वह देखा, तब होगा का अर्थ ही यह है।

एक था अपने जामनगर। ऐसा कहता था, सर्वज्ञ ने तो त्रिकाल देखा है। पुरुषार्थ कब... कहो, ठीक। कि भगवान तो तीन काल देखते हैं, फिर भी पुरुषार्थ कहते हैं? किन्तु भगवान ही पुरुषार्थ का उपदेश देते हैं। आहाहा! मैंने भी पुरुषार्थ से अपना केवलज्ञान प्राप्त किया है। मैंने पहले पुरुषार्थ से सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है और तुम भी पुरुषार्थ से सम्यग्दर्शन प्राप्त करो, ऐसा भगवान का उपदेश है। समझ में आया?

हमारी तो (संवत्) १९७२ के वर्ष में बड़ी चर्चा हुई थी न! ७२। ५५ वर्ष पहले। पुरुषार्थ से होता है। भगवान ने देखा ऐसा होगा, ऐसी जिसकी श्रद्धा हुई, यह पुरुषार्थ से हुई है। समझ में आया? भगवान ने देखा ऐसा होगा, ऐसी श्रद्धा पुरुषार्थ से होती है। समझ में आया? ५५ वर्ष पहले। ५५। बहुत चर्चा हुई थी। बड़ी चर्चा हुई थी। खलबलाहट मच गया सम्प्रदाय में। दो वर्ष में ही हमारा नाम तो बहुत (प्रसिद्ध) था। हमारे दो-तीन दोष निकाले... कि कुछ महाराज ने—कानजीस्वामी ने कुछ मूर्ति का फोटो देखा है। मेरी छाप तो बहुत वैसी—अनुकूल थी न, इसलिए कोई....

मुझे तो पुरुषार्थ का विवाद था। लोग ऐसा निकाले कि यह कानजीमुनि... सब बड़े-बड़े सेठिया आये। बड़े सेठिया रायचन्द गाँधी। क्या हुआ? क्या हुआ? चले गये सम्प्रदाय छोड़कर। कुछ फोटो देखा होगा मूर्ति का। हीराजी महाराज इनकार करें। एकदम खोटी बात। फोटो समझे यह? मूर्ति का। यह स्थानकवासी मूर्ति माने नहीं न, इसलिए ऐसा कि इनके गुरु का वाँचन करे उसे पूंठुं कहलाये। वाँचन पूंठुं। उसमें कोई मूर्ति का फोटो देखा होगा तो स्वामीजी चले गये, ऐसा कहा। ....ऐसा नहीं है। हमें तो पुरुषार्थ का विवाद था। हीराजी महाराज हमारे... साथ नहीं, गुरुभाई के साथ। हमारे गुरुभाई के साथ।

वह कहे, केवलज्ञान में देखा ऐसा होगा, हम पुरुषार्थ नहीं कर सकते। अपने भव कोई नहीं घटे। क्या बोलते हो? क्या कहते हो? ५५ वर्ष पहले की बात है। साठ वर्ष में पाँच कम। क्या बोलते हो? ऐसी चीज़? भगवान की वाणी में ऐसा आया है? यह वाणी भगवान की है? आगम की वाणी यह है? आगम की वाणी तो कहती है कि एक क्षण में तेरी चीज़ अन्दर में उतर जाये तो केवलज्ञान पा सकता है, ऐसा पुरुषार्थ भगवान बताते हैं। सेठी! आहाहा! फिर तो स्पष्टीकरण कर दिया था हीराजी महाराज ने। फोटो-बोटो नहीं, मूर्ति-बूर्ति नहीं। कुछ बात ऐसी आती है। यह पुरुषार्थ की बात।

सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, ऐसा होगा। बात सच्ची है, परन्तु देखा, ऐसा होगा (उस) की श्रद्धा किसको? उसमें ही पुरुषार्थ है। आहाहा! भगवान ने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखा, ऐसा ही होगा, परन्तु किसको? जिसे केवलज्ञान जगत में तीन काल-तीन लोक देखता है, ऐसी श्रद्धा हुई है और श्रद्धा हुई तो अपने द्रव्य सन्मुख हुआ तो ही श्रद्धा होती है। अमरचन्दभाई! भगवान ने हमारे भव देखे नहीं हैं, जाओ। उस समय कहा था, हों! हमारे भव भगवान ने नहीं देखे हैं। हम तो भवरहित अल्पकाल में हो जायेंगे। तुम्हारे भव भगवान ने देखे हैं तो ऐसी भाषा (निकलती है।) तब तो फिर कुछ.... राग-द्वेष आवे न। .... ऐसा कि ....ऐसे दबा देने का नहीं। दीक्षा ले ली है इसलिए.... धूमधाम से हाथी को हौदे.... उस समय सब... नहीं तो मैं इसमें से निकल जाऊँगा तो मेरा क्या होगा, यह दरकार नहीं करना था मुझे। एक क्षण में सब छोड़ दूँगा। सम्प्रदाय छोड़ूँ, मुँहपत्ती छोड़ूँ, सब छोड़ूँ। मैं तो मेरा करने को निकला हूँ। मैं सम्प्रदाय को रखने को और व्याख्यान देने को मैं नहीं निकला हूँ। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि तदबीर यह सूझती चीज़ है। जागती ज्योति है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा! अन्तर भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप की ओर का झुकना, वह पुरुषार्थ से होता है। समझ में आया? श्रीमद् ने कहा न, नहीं? 'भवस्थिति आदि नाम ले छेदो नहीं आत्मार्थ, जो इच्छो परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ।' उसमें लिखा है आत्मसिद्धि, श्रीमद् (राजचन्द्र कृत)।'जो इच्छो परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ। भवस्थिति आदि नाम ले छेदो नहीं आत्मार्थ।' भवस्थिति होगी ऐसा होगा। क्या बोलते हो? ज्ञान

है तुझे? भवस्थिति होगी, उसका ज्ञान तुझे है? और ज्ञान बिना ऐसे कैसे बोलते हो तुम? समझ में आया?

जिसे भवस्थिति का ज्ञान हुआ, उसकी तो द्रव्य के ऊपर दृष्टि है। उसको भवस्थिति लम्बी है ही नहीं। समझ में आया? भव कैसा? भगवान आत्मा... एक समय में सर्वज्ञ पर्याय की प्रतीति किसे कहे? भाई! आहाहा! यह कहीं बात नहीं। समझ में आया? अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ है। जो राग पर रुचि थी, वह स्वभाव पर रुचि हो गयी, यह तो महापुरुषार्थ है। दशा फेर है, दिशा फेर है, सब फेर है। समझ में आया? क्योंकि तकदीर अन्धी... तदबीर सूझती है। धर्म में, हों! कर्म में तो तकदीर से होता है, ऐसा ही होगा। आहाहा! उसमें जरा.....

**आत्मा पूर्वकर्मरूप विषवृक्षों का कर्ता-भोक्ता नहीं है।** भगवान आत्मा... देखो! पूर्वकर्मरूप जहर का वृक्ष, उसका कर्ता-भोक्ता नहीं। वह कर्मरूपी जहर जड़ है, उसका रचनेवाला भी नहीं और उसका फल भोगनेवाला भी नहीं। आहा! **इस प्रकार का विचार दृढ़ रखने से और शुद्धात्मपद में मस्त रहने से....** मैं तो आत्मा आनन्दधाम आनन्दराम आतमराम। इस आतमराम में जहाँ रुचि हुई तो **शुद्धात्मपद में मस्त रहने से वे कर्म-समूह अपने आप नष्ट हो जाते हैं।** अपने आप उसके कारण से। आत्मा को नाश करने की आवश्यकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात, भाई!

एक आदमी आया। बात न की। तो उपजाया कि हमारे साथ बात नहीं करते। दूसरे के साथ बात करेंगे। ....आया उसके साथ बात करते.... आया तो क्या.... ? चलो। ऐसे भगवान आत्मा के साथ बातचीत करने लगा तो कर्म का उदय चला जाता है। जाओ चले जाओ। हमारा-तुम्हारा कोई सम्बन्ध था नहीं। आहाहा!

**यदि अन्धा मनुष्य लंगड़े मनुष्य को अपने कन्धे पर रख ले....** अब ज्ञान और चारित्र की एकता बताते हैं। वहाँ साधक कहा न। **यदि अन्धा मनुष्य लंगड़े मनुष्य को अपने कन्धे पर रख ले तो अन्धा लंगड़े का ज्ञान और लंगड़ा अन्धे के पैरों की सहायता से रास्ता पार कर सकता है।**

फोटो में ऐसा है ....नहीं। वह आता है न.... खमाववा के। उन्होंने फोटो दिया

है वहाँ अभी। किसी का था। किसका था? है किसी का। उसमें एक साधु अपने आते हैं न यह श्वेताम्बर के साधु। उनके गुरु अन्धे थे। इसलिए उन्हें उठाया शिष्य ने। फोटो में... तब के निकाले हुए। खमावा के निकाले न! खमाववा के... क्षमापना होती है न, उसका त्योहार आता है न। हाँ, वह पंचम... एक में ऐसा आया था कि वह साधु गुरु अन्धा था और शिष्य देख सकता था। तो रात्रि को चलने का हुआ, रात्रि को। शिष्य चलते-चलते... तो वहाँ अन्धेरा था न, तो बराबर चल न सके। खड्डे। खड्डे थे न खड्डे। तो ऐसा-ऐसा हो गया।

तो गुरु (शिष्य के) ऊपर बैठे थे, वे दण्ड मारे, डण्डा मारे। (शिष्य) कहे, अरेरे! यह मेरे गुरु को बहुत दुःख है। ऐसा कहा। डण्डा मारे वह और यह गुरु को दुःख होता है। ऐसा करते-करते निन्दा करते केवलज्ञान हुआ। केवलज्ञान हो गया, चलते-चलते। गुरु था कन्धे पर। हाथ में रजोळो। रजोळो क्या कहलाता है वह?

**मुमुक्षु :** ओघो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ओघो... ओघो। बताया है न वह बताया है। शॉल.... ओघा। नहीं, नहीं। पोयणी... पोयणी। वह रुई की पोयणी ..... केवलज्ञान हो गया। और फिर गुरु को खबर हुई। अरे! यह तो केवलज्ञान। नीचे उतरकर क्षमा माँगी। उसको भी केवलज्ञान हो गया। जाओ।

और दूसरा ऐसा आया भाई, क्षमापना में। यहाँ हुआ है यहाँ। अपने आये न तब ..... एक अहीर था अहीर यहाँ। अहीर समझे? एक जाति है। तो उसने भंगिन से विवाह किया। भंगिन जाति है। जाति को कहा, हमें जाति में कब लोगे? हमें खीचड़ी भोजन देना है पूरी जाति को, तो हमारी जाति में लेंगे। और दूसरा, हमारी पूरी जाति इकट्ठी हो और तुम चारपाई के नीचे बैठ जाओ। पूरी जाति ऊपर पानी से नहावे, तुझ पर (पानी) गिरे तो शुद्ध हो तो हमारी जाति में लेंगे। उसे पूरी रात नींद नहीं आयी। यह क्या? वह तो भंगिन से विवाह किया था। आया है यह वहाँ। दो-चार (दृष्टान्त) आवे। क्षमापना। कितनी क्षमापना। वह नीचे बैठे। खाट के ऊपर चढ़कर नहाये—सब नहाये जाति आकर नहाये। पानी नीचे उसके ऊपर गिरे। बाद में भोजन दिया तो जाति ने

लिया। देखो, यह क्षमापना। ऐसे के ऐसे लोग .... कैसे हैं न! दो-चार अभी आये हैं, हों! क्षमापना के (दृष्टान्त)। अरे! यह क्षमापना नहीं, भाई!

यह तो अपना स्वरूप... आलोचना में आया था कि विकल्प तो असंख्य प्रकार के हैं, इतना प्रायश्चित्त है नहीं। अपने शुद्ध स्वरूप सन्मुख होने से सब विकल्प चूरा हो जाते हैं। यही क्षमापना है। आहा! समझ में आया? ऐसे जैन में भी ठिकाना नहीं होता। वाडा माँडकर बैठे, वस्तु की खबर नहीं होती। यह क्षमापना। कितनी क्षमा रखी होगी इसने? नीचे ऐसे बैठा ऐसे। ऊपर चारपाई—खाटला। ऊपर एक-एक नहाता था। एक बाई पानी डाले। ऐसी बात जैन सम्प्रदाय में.... और लोग प्रसन्न हो, वाह! पाटनीजी! ऐसी चलती है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा... कहते हैं कि पूर्व कर्म का कर्ता-भोक्ता नहीं। दृढ़ रहने से, **शुद्धात्मपद में मस्त रहने से वे कर्म-समूह अपने आप नष्ट हो जाते हैं।** यह अपना स्वभाव, शुद्ध ज्ञानघन आनन्द के रस से भरा लबालब भरा, उस पर दृष्टि और स्थिरता करने से कर्म उसके कारण से स्वयं चले जाये। समझ में आया? **परन्तु अन्धा अकेला ही रहे और लंगड़ा भी उससे जुदा रहे तो वे दोनों इच्छित क्षेत्र को नहीं पहुँच सकते, और न विपत्तिकर विजय पा सकते हैं। यही हाल ज्ञान-चारित्र का है। सच पूछो तो ज्ञान के बिना चारित्र, चारित्र ही नहीं है।** यह बात तो बराबर है। ज्ञान—सम्यग्ज्ञान बिना—अनुभव बिना चारित्र, चारित्र ही नहीं। समझ में आया?

**और चारित्र के बिना ज्ञान, ज्ञान ही नहीं है।** यह तो स्वरूप का आचरणरूप स्वरूपाचरण, उसके बिना ज्ञान नहीं। समझ में आया? यहाँ बहुत साधारण की है।

**मुमुक्षु :** ढीला किया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ढीला किया है। ऐसा नहीं। तब कहते हैं न कि चारित्र बाह्य ले, आस्रव टाले बाहर से तो उसे ज्ञान कहते हैं। यह रतनचन्दजी कहते हैं। ७२वीं गाथा का अर्थ ऐसा करते हैं। ऐसा है नहीं। कहते हैं, सम्यग्दृष्टि को अभिप्राय में से आस्रव की रुचि छूट जाये और स्वभाव की रुचि हो जाये, वह आस्रव से निवृत्त हुआ, ऐसा कहने में आता है। ऐसी बात है वहाँ। यह तो ऐसा कहे, कोई भी विकल्प न उठे... यह

चारित्र है नहीं। वही चारित्र है। बाह्य की गृहस्थक्रिया, यह चारित्र कहाँ से आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह चारित्र है।

**क्योंकि ज्ञान के बिना पदार्थ के स्वरूप को कौन पहिचानेगा?** सम्यग्ज्ञान बिना, आत्मा यह है, राग यह है—उसको कौन जानेगा? और सम्यग्ज्ञान स्वसन्मुख होना चाहिए। **और चारित्र के बिना स्वरूप में विश्राम कैसे मिलेगा?** स्वरूप में स्थिरता बिना विशेष आनन्द कैसे आयेगा? **इससे स्पष्ट है कि ज्ञान-वैराग्य का जोड़ा है।** साथ में है, हों! अपने स्वरूप का ज्ञान हुआ तो राग से विरक्त वैराग्य हुआ, वह चारित्र। निर्जरा अधिकार में आता है न, ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति है।

भगवान आत्मा अपने स्वरूप में सुखबुद्धि हुई, अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप में सुखबुद्धि हुई तो राग में से सुखबुद्धि उड़ जाती है। समझ में आया? क्या कहा? अपना स्वभाव आनन्द—अतीन्द्रिय आनन्द वह आत्मा, ऐसी जब रुचि हुई, तो राग में से सुखबुद्धि उठ गयी। तो राग से विरक्त हुआ, वह वैराग्य है। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात है महँगी। लोगों को ऐसा चढ़ा दिया कि पर्यूषण के दिन अपवास करो, दस-दस करो, आठ-आठ करो, ऐसा करो, वैसा करो। आहाहा! वह हो, राग की मन्दता का भाव हो, परन्तु वह निर्जरा है और धर्म है, ऐसा नहीं। समझ में आया? मन्दकषायरूप उसके करने का भाव हो, राग मन्द हो, परन्तु वह धर्म है, ऐसा नहीं।

कहते हैं, पदार्थ के स्वरूप को कौन जानेगा, कौन पहिचानेगा? **ज्ञान-वैराग्य का जोड़ा है।** यह वैराग्य, हों! वैराग्य अर्थात् स्त्री, परिवार छोड़ दे तो वैराग्य, वह वैराग्य नहीं। राग का रूप ही छोड़ देना, राग की एकताबुद्धि छोड़ देना, वह वैराग्य है। **फल क्रिया में लीन होने की जैनमत में कुछ महिमा नहीं है।** क्या कहते हैं? पुण्य का फल और पुण्य की क्रिया में लीन होने की जैनमत में कुछ महिमा नहीं। दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा शुभभाव, यह क्रिया और उसका फल स्वर्ग आदि—उसकी कोई कीमत है नहीं। मूलचन्दभाई!

**मुमुक्षु :** यह सोनगढ़ में प्रकाशित हुआ है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सोनगढ़ का कहाँ था यह ? ऐई ! प्रकाशित है यहाँ का, ऐसा कहते हैं। सोनगढ़ का कहाँ है यह ? भगवान की परम्परा से चला आता है। आहाहा ! **फल क्रिया में लीन होने की जैनमत में कुछ महिमा नहीं है।** पुण्य की क्रिया की महिमा नहीं और पुण्य के फल में स्वर्ग की धूल मिले, उसकी वीतरागमत में कोई महिमा नहीं। आहाहा !

**उसे 'करनी हित हरनी सदा मुकति वितरनी नांहि' कहा है।** यह विकल्प जो दया-दान-व्रत-पूजा-भक्ति के हैं, यह करनी हितहरनी... हितहरनी... आहाहा ! यह रागभाव विकल्प है, वह तो हित का हरनेवाला है। आहाहा ! सेठी ! अब तो सेठी शान्त हो गये हैं। प्रसन्नजी ! पहले तो भड़कते थे। महेन्द्रभाई कहे, पिताजी साहेब ! सुनो तो सही। वहाँ आओ तो सही। अब शान्त हो गये। ओय माँ ! दूसरी चीज़ निकली। समझ में आया ? आहाहा !

**'करनी हित हरनी सदा मुकति वितरनी नांहि।'** जितनी क्रिया व्रत-दान-दया-दान धर्म आदि की क्रिया मुक्ति का कारण बिल्कुल नहीं। मुक्ति विरतनी नांहि। मुक्ति की देनेवाली नहीं। आहाहा ! भगवान... ओम... ओम... ओम... ओम... ओम... ओमश्री... श्री... श्री। यह तो विकल्प है, राग है। समझ में आया ? इस क्रिया की कोई कीमत नहीं। वीतरागमार्ग में नहीं, वह तो हितहरनी है। आहाहा ! ऐसा कहा है। **इसलिए ज्ञानी लोग ज्ञानगोचर और ज्ञानस्वरूप आत्मा का ही अनुभव करते हैं।** लो ! आहाहा ! ज्ञानस्वरूप भगवान और ज्ञानस्वरूप आत्मा का ही अनुभव करते हैं। भगवान ज्ञानस्वभाव और उसका अनुभव करना, वही धर्म है। वही मुक्ति देने का धर्म है।

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. १५०, भाद्र शुक्ल १०, मंगलवार, दिनांक ३१-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार का सार तथा स्याद्वाद द्वार, पद १ से ४

## दसवें अधिकार का सार

**स्मरण रहे कि ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण है, जब वह ज्ञेय को ग्रहण करता अर्थात् जानता है, तब उसकी परिणति ज्ञेयाकार होती है, क्योंकि ज्ञान सविकल्प है, दर्शन के समान निर्विकल्प नहीं है, अर्थात् ज्ञान ज्ञेय के आकार आदि को विकल्प करता है, कि यह छोटा है, यह बड़ा है, टेढ़ा है, सीधा है, ऊँचा है, नीचा है, गोल है, त्रिकोण है, मीठा है, कडुवा है, साधक है, बाधक है, हेय है, उपादेय है इत्यादि। परन्तु ज्ञान ज्ञान ही रहता है, ज्ञेय का ज्ञायक होने से वा ज्ञेयाकार परिणमने से ज्ञेयरूप नहीं होता, परन्तु ज्ञान में ज्ञेय की आकृति प्रतिबिम्बित होने से वा उसमें आकार आदि का विकल्प होने से अज्ञानी लोग ज्ञान का दोष समझते हैं, और कहते हैं, कि जब यह ज्ञान की सविकल्पता मिट जावेगी-अर्थात् आत्मा शून्य जड़ सा हो जावेगा, तब ज्ञान निर्दोष होगा, परन्तु 'वस्तुस्वभाव मिटै नहि क्योंही' की नीति से उनका विचार मिथ्या है। बहुधा देखा गया है कि हम कुछ न कुछ चिन्तवन किया ही करते हैं, उससे खेद-खिन्न हुआ करते हैं और चाहते हैं कि यह चिन्तवन न हुआ करे। इसके लिये हमारा अनुभव यह है कि चेतयिता चेतन तो चेतता ही रहता है, चेतता था, और चेतता रहेगा, उसका चेतना स्वभाव मिट नहीं सकता। 'तातैं खेद करैं सठ योंही' की नीति से खिन्नता प्रतीति होती है, अत: चिन्तवन, धर्म-ध्यान और मन्दकषायरूप होना चाहिए, ऐसा करने से बड़ी शान्ति मिलती है तथा स्वभाव का स्वाद मिलने से सांसारिक सन्ताप नहीं सता सकते, इसलिए सदा सावधान रहकर इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग, परिग्रह-संग्रह आदि को अत्यन्त गौण करके निर्भय, निराकुल, निगम, निरभेद, आत्मा के अनुभव का अभ्यास करना चाहिए।**

### दसवें अधिकार के सार पर प्रवचन

सर्वविशुद्ध अधिकार का सार चलता है। संक्षेप में। यहाँ तो ऊपर कहा कि **'करनी हित हरनी सदा मुक्ति वितरनी नांहि'** भगवान आत्मा तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप

है। उसमें जो राग उत्पन्न हुआ; दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नाम-स्मरण के जो सब विकल्प हुए, वह राग को करनी है। वे आत्मा के हित को नाश करनेवाले हैं। है न? राग की क्रिया से रहित अपना आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। उसमें एकाग्र होना, वह स्वाभाविक क्रिया धर्म है। समझ में आया? चैतन्य वस्तु.. सर्वविशुद्ध है न? उसका सार है। शुद्ध चैतन्य, जिसमें बन्ध और मोक्ष की पर्याय भी नहीं। राग तो नहीं, परन्तु दो पर्याय हैं, वे भी नहीं। ऐसी चीज़ की दृष्टि करना और उसमें लीनता करना, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र मार्ग है। बीच में राग की क्रिया आती है, उसमें हित का नाश होता है। आहाहा!

**इसलिए ज्ञानी लोग...** जिन्हें सुख की प्राप्ति करनी है, ऐसे धर्मी जीव **ज्ञानगोचर और ज्ञानस्वरूप आत्मा का ही अनुभव करते हैं।** ज्ञान में गम्य ऐसा जो आत्मा, राग से-विकल्प से गम्य नहीं होता। समझ में आया? जन्म-मरण मिटाने का उपाय ज्ञानगम्य आत्मा है। अकेला चैतन्यस्वभाव, वह जाननस्वभाव है, उससे ज्ञात होता है; दूसरी कोई रीति नहीं है। **ज्ञानगोचर और ज्ञानस्वरूप...** दो। वस्तु आत्मा सम्यग्ज्ञान जो निर्मल पर्याय, उससे गम्य है और ज्ञानस्वरूप आत्मा है। ज्ञानस्वरूप है तो ज्ञानगम्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञानगम्य है, क्योंकि ज्ञानस्वरूप है, ऐसा। समझ में आया? वह कोई रागस्वरूप नहीं कि राग से गम्य हो। व्यवहार विकल्प शुभराग से गम्य नहीं होता, क्योंकि उसमें वह है नहीं, वह उसका स्वरूप नहीं। वह तो ज्ञानगम्य है। अपने ज्ञानस्वभाव से वह ज्ञात होता है, क्योंकि वह ज्ञानस्वरूप है। सेठ!

अब, इससे थोड़ी आगे बात लेते हैं। **स्मरण रहे कि ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण है,...** भगवान आत्मा प्रज्ञाब्रह्म ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। समझ में आया? **जब वह ज्ञेय को ग्रहण करता...** राग तो उसका नहीं और राग से गम्य नहीं; परन्तु ज्ञानस्वभाव आत्मा है, उसमें शरीर, वाणी, मन, परपदार्थ, राग ज्ञेय है, उसे आकार से ज्ञानपरिणति अपने में अपने से करती है। समझ में आया? **जब वह ज्ञेय को ग्रहण करता अर्थात् जानता है,...** अपने ज्ञानस्वभाव में शरीर, वाणी, मन, परपदार्थ और पुण्य-पाप के विकल्प को आत्मा जानता है, **तब उसकी परिणति ज्ञेयाकार होती है,...** उसकी परिणति

ज्ञेयाकार होती है, इसका अर्थ कि जैसा ज्ञेय है, वैसा अपने में अपने कारण से ज्ञानपरिणतिरूप ज्ञेयाकार होता है। समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** ज्ञानाकार...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्ञेयाकार परिणति, यह निमित्त से कथन किया। ज्ञेय को जानने पर ज्ञान की वर्तमान दशा, क्योंकि ज्ञानस्वरूप ज्ञानगम्य और ज्ञानगम्य की वर्तमान अवस्था में राग-द्वेष, विषय-वासना, शरीर की क्रिया ज्ञेय है, तो **ज्ञेय के आकार से अपनी ज्ञानपरिणति, ज्ञेय का आकार अर्थात् जैसा ज्ञेय का स्वरूप है, वैसा अपने ज्ञान में उस स्वरूप का ज्ञान स्वयं से आ जाता है। समझ में आया?** ...भाई! ऐसा मार्ग! आहाहा! वह पर्याय का स्वभाव है।

**क्योंकि ज्ञान सविकल्प है,...** अर्थात् ज्ञान में स्व-पर जानने का स्वभाव है। सविकल्प का अर्थ यह (है)। दो है न? स्व-पर जानना, वह सविकल्प है। सविकल्प का अर्थ यहाँ राग नहीं है। दो प्रकार से जानना, वही सविकल्प हुआ। समझ में आया? यह प्रवचनसार में लिया है। स्व-पर प्रकाशक जो ज्ञान की पर्याय है, उसे ही विकल्प कहते हैं। केवलज्ञान में भी विकल्प है। विकल्प का अर्थ—स्व-पर के ज्ञान का परिणमन। समझ में आया? सूक्ष्म है।

**मुमुक्षु :** विकल्प के दो अर्थ हुए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विकल्प के दो अर्थ। एक रागरूप विकल्प, यह तो पहले कहा। राग, आत्मा की शान्ति का घात करनेवाला है। वह तो नहीं। अब राग का ज्ञान। राग है, जैसा राग उत्पन्न होता है, उस प्रकार से उस ज्ञेय के आकार अर्थात् जैसा ज्ञेय का स्वरूप, वैसे स्वरूपरूप से अपनी ज्ञानपरिणति, अपने से, अपने में होती है। अगम्य को गम्य करना, वह चीज़ यहाँ है।

वस्तु ज्ञान भगवान प्रज्ञाब्रह्म, राग से गम्य नहीं होती; ज्ञान से गम्य होती है। तो ज्ञान में अपनी दशा में स्व-पर के जाननेरूप परिणमन हो, वह तो अपना स्वभाव है। तो कहते हैं, **ज्ञान सविकल्प है, दर्शन के समान निर्विकल्प नहीं है,...** दर्शन में तो भेद पड़ते ही नहीं कि मैं यह हूँ और मैं यह हूँ, ऐसे भेद नहीं है। दर्शन को भी ज्ञान जानता

है। समझ में आया ? ज्ञान सविकल्प है और दर्शन के समान अभेद नहीं है अर्थात् स्व-पर को जानना, ऐसा दर्शन में नहीं, ज्ञान में है।

**ज्ञान, ज्ञेय के आकार आदि को विकल्प करता है,...** विकल्प करता है, इसका अर्थ यह (कि) यह छोटा है, यह बड़ा है, इस छोटे-बड़े का विकल्प करता है, ऐसा इसका अर्थ नहीं है। यह छोटा है, यह बड़ा है-ऐसा ज्ञान अपने में स्व-पर प्रकाशक की परिणति होती है। विकल्प का अर्थ विकल्प करता है, ऐसा नहीं। ऐसा होता है, ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है। अपने को जानने से, रागादि परचीज़ है, वह परज्ञेय है, उसे जानता है। पर को जानना, ऐसा ज्ञान, वह कहीं दोष नहीं है, वह कुछ विरुद्धता नहीं है; वह तो अपना निज स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। यह सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया ?

**रागादि तो इसके नहीं, परन्तु राग का ज्ञान हुआ, वह राग का ज्ञान नहीं; वह ज्ञान का ज्ञान है। समझ में आया ?** दया, व्रत, भक्ति का जो राग आया, वह तो बन्ध का कारण है और दोषरूप है, एक बात। अब ज्ञान में उस राग का जानना हुआ कि यह राग है - वह जानना हुआ, वह भी राग के कारण से नहीं हुआ। अपना स्व-पर जानने का स्वभाव है, इसलिए राग को जानता है। गजब भाई! जैसा जिसका स्वभाव है, वैसा यथार्थ माने, जाने तो सम्यक् होवे न ? तो ज्ञान में राग से लाभ होता है - ऐसा मानना, वह तो मिथ्याज्ञान है, एक बात; और राग का ज्ञान हुआ तो आत्मा में दोष हुआ, यह दूसरा दोष है, पाप है-ऐसा नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय जाना हुआ प्रयोजनवान है, उसका स्पष्टीकरण करते हैं।

कहते हैं, **ज्ञान ज्ञेय के आकार...** आकार का अर्थ जैसे रागादि, शरीरादि हैं, ऐसे स्व और पर का स्वरूप है, वैसा यहाँ ज्ञान होता है। वह ज्ञान होता है, उसमें वह चीज़ निमित्त हो, परन्तु उस चीज़ का ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया ? क्योंकि वह भगवान तो ज्ञानस्वरूप है। अपना स्वरूप तो ज्ञानचक्षु है। ज्ञानचक्षु है। ज्ञानचक्षु प्रभु आत्मा उसे कहते हैं और ऐसा है कि पर को जानने के काल में पर का जैसा स्वरूप है, वैसा यहाँ ज्ञान होता है। परन्तु वह ज्ञान होता है, वह पर चीज़ है तो होता है, ऐसा नहीं है और पर सम्बन्धी अपने में ज्ञान हुआ है, वह दोष है, ऐसा नहीं है क्योंकि वह तो अपना स्वभाव है। समझ में आया ? आहा!

कहते हैं, **विकल्प करता है,...** विकल्प का अर्थ भेद से उसका अनुभव है, इतना। मैं ज्ञान हूँ, यह राग है, ऐसा अन्तर में स्व-पर प्रकाशकरूप भेदभाव का परिणमन है। उसे विकल्प कहते हैं। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात। यह मार्ग इस प्रकार से नहीं समझ में नहीं आता न, इसलिए लोग दूसरे रास्ते चढ़ गये हैं। मूलचन्दभाई! मूलचन्दभाई ऐसा कहते थे कि इन सबको क्रियाकाण्ड में चढ़ा दिया। सेठ! अरे भगवान! तेरी चीज़ क्या है? और उस चीज़ में जो स्वभाव का परिणमन होता है, वह तो तेरी पर्याय है। ऐसी पर्याय राग को जानने पर भी रागरूप नहीं होती, ज्ञेय को जानने पर भी ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं होता और ज्ञान, ज्ञानरूप रहकर ज्ञेय को जानता है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म! ...भाई! ऐसा सूक्ष्म मार्ग, भाई! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, तेरी चीज़ जो अन्दर है, तू जैसा है, वह तो ज्ञानस्वभावी भगवान है। उसमें शरीर नहीं, वाणी नहीं, कर्म नहीं, परपदार्थ का कोई सम्बन्ध नहीं और अन्दर रागादि होते हैं, वे भी इसके सम्बन्ध में नहीं, सम्बन्ध में नहीं। राग और पर को जानना, वह अपने स्वभाव के कारण ऐसा होता है। पर को जानना तो ज्ञान की दशा पररूप हो जाती है, ऐसा नहीं है। दर्पण होता है न? दर्पण, दर्पण। दर्पण में बाहर अग्नि और बर्फ है, तो यहाँ भी अग्नि और बर्फ दिखता है। वह अग्नि, बर्फ नहीं है, वह दर्पण की स्वच्छ अवस्था है। अग्नि और बर्फ वहाँ घुस नहीं गये हैं। अग्नि और बर्फ तो बाहर रह गये हैं। समझ में आया? दर्पण में ऐसे अग्नि दिखती है और बर्फ पिघलता दिखता है, पानीरूप होता दिखता है और अग्नि की ऐसी ज्वाला दिखती है तो क्या वहाँ अग्नि है? वहाँ बर्फ है कि पिघलता दिखे? वह तो दर्पण की अवस्था है।

इसी प्रकार भगवान चैतन्यरूपी दर्पण है। समझ में आया? आहाहा! अपना चैतन्यरूपी दर्पण, ज्ञानस्वभावरूपी दर्पण में शरीर, वाणी, मन, राग-द्वेष, विषय-वासना आदि हुए, उस सम्बन्धी के अपने ज्ञान में उसके (अपने) स्वभाव का परिणमन होता है। समझ में आया?

**यह छोटा है, बड़ा है,...** ऐसा ज्ञान में ज्ञानरूप परिणमन हुआ। छोटे-बड़े के कारण से नहीं। छोटी-बड़ी जो चीज़ है, उस सम्बन्धी ज्ञान के स्व-पर प्रकाशक

स्वभाव में छोटा होवे तो छोटेरूप जाने और बड़ा होवे तो बड़ेरूप जाने परन्तु जानता है, वह ज्ञान की पर्याय में जानता है। वह पर की पर्याय नहीं और पर के कारण से नहीं। सेठ! बहुत सूक्ष्म। वह तो ज्ञान की पर्याय है। है?

**छोटा है, बड़ा है, टेढ़ा है,...** टेढ़ा। **सीधा है,...** जैसा है, वैसा जाने। **ऊँचा है, नीचा है,...** ऐसा जाने, ज्ञान जाने। शरीर की अवस्था ऐसी होती है, ऐसी होती है। आहाहा! शरीर के माँस की अवस्था इस जगह गोल है, इस जगह कोमल है, ऐसा जाने। वास्तव में तो उसे नहीं जानता, जानता तो है अपने को। समझ में आया? यह स्वतः तत्त्व ज्ञानगुण से भरा हुआ, उस ज्ञान का जब परिणमन होता है, तब जैसी चीज़ है, वैसी जानता है।

**साधक है,...** लो! **गोल है, त्रिकोण है, मीठा है, कडुवा है,...** यह मीठा है, हों! 'यह' शब्द पहला है न? 'यह' शब्द है न? यह - यह। मैं नहीं, मैं मीठा नहीं कड़वा नहीं। **मीठा है, कडुवा है, साधक है, बाधक है,...** आहाहा! निर्मल पर्याय का साधकपना उत्पन्न हुआ, उसे ज्ञान जानता है। राग में इतनी बाधकता है, ऐसा जानता है। बहुत सूक्ष्म है। पण्डितजी! ऐसा आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वभाव जैसा है, वैसा अन्तर में मानना, जानना, अनुभव करना, इसका नाम दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। कोई क्रियाकाण्ड और व्रत तथा यह और वह कोई चारित्र-फारित्र नहीं है। आहाहा!

**हेय है, उपादेय है...** यह राग हेय है, मुझमें नहीं है; यह ज्ञान मुझमें है, यह आदरणीय है - ऐसा ज्ञान जानता है। **परन्तु ज्ञान, ज्ञान ही रहता है,...** आहाहा! पर को जानने के काल में भी पर की अवस्थारूप नहीं होकर, अपनी स्व-परप्रकाशक अवस्था में रहकर ज्ञान, ज्ञानरूप रहता है। **ज्ञान, ज्ञान ही रहता है, ज्ञेय का ज्ञायक होने से...** रागादि का जाननेवाला होने से **वा ज्ञेयाकार परिणमने से ज्ञेयरूप नहीं होता,...** ज्ञेय का ज्ञायक होने से ज्ञेयरूप नहीं होता और ज्ञेयाकार परिणतिरूप होवे तो भी ज्ञान, ज्ञेयरूप नहीं हुआ। आहाहा! जैसा तत्त्व है, वैसा दृष्टि में नहीं आवे, तब तक मिथ्यात्व का नाश नहीं होता। समझ में आया?

**परन्तु ज्ञान में ज्ञेय की आकृति प्रतिबिम्बित होने से...** यह तो ज्ञेय का प्रमेय होने का स्वभाव है और ज्ञान में प्रमाण करने का स्वभाव है। समझ में आया? स्त्री, कुटुम्ब-

परिवार, मकान, पैसा तो ज्ञेय है। वह ज्ञान में ज्ञात होता है। मेरा है, ऐसा नहीं। समझ में आया? मेरी स्त्री है, मेरा शरीर है, मेरा राग है, यह वस्तु में नहीं है। **ज्ञान में ज्ञेय की आकृति प्रतिबिम्बित होने से...** प्रतिबिम्ब का अर्थ ज्ञानरूप परिणमन होने से। वह चीज़ यहाँ... नहीं पड़ती। **वा उसमें आकार आदि का विकल्प होने से....** उसके स्वरूप का स्व-पर का भेदरूप ज्ञान होने से। **अज्ञानी लोग ज्ञान का दोष समझते हैं,...** अरे! यह राग, ज्ञान में कैसे ज्ञात हुआ? समझ में आया? यह कषाय कैसे ज्ञात हुआ? समझ में आया? ज्ञात हुआ इसका अर्थ क्या? तेरे ज्ञान का जानने का स्वभाव है तो ज्ञान जानता है। उसमें दोष क्या आया? समझ में आया?

आता है न? स्त्री को देखकर आँख फोड़ डाली। सूरदास का आता है न? ....अरे रे! यह आँख का दोष है कि यह स्त्री दिखायी दी। यह आँख का दोष है? आँख भी ज्ञेय है और परवस्तु भी ज्ञेय है। आँख फोड़ डालो। मिथ्याभाव है। मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बातचीत में लोग ऐसी बात सुनें तो लोग ऐसा करते हैं न? ऊं हूं..! क्या है परन्तु? .... ? इसे क्या है? वह तो जड़ है। समझ में आया? यह जानने में क्यों आया? जानने में क्या आया? तेरा स्वभाव ज्ञात हुआ है। आहाहा! यह स्वभाव जानने में आया तो कहता है कि नहीं, नहीं, नहीं। क्या है? तेरा जानने का स्वभाव नहीं? अज्ञान है, मूढ़ है। समझ में आया? पाटनीजी! ऐसा होता है न? बातचीत करे, उसमें ऐसा होता है। कहो, चन्द्रकान्तभाई! समझ में आया या नहीं? ऐई!

कहते हैं, **अज्ञानी लोग ज्ञान का दोष समझते हैं, और कहते हैं, कि जब यह ज्ञान की सविकल्पता मिट जावेगी...** अरे! ज्ञान में पर को जानने का नाश होगा, तब ज्ञान निर्मल होगा, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! राग से तो पृथक् है परन्तु ज्ञेय का ज्ञान करता है, उस ज्ञेय से पृथक् है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? राग से तो भगवान पृथक् है ही, परन्तु ज्ञेय का ज्ञान करने में ज्ञेय से पृथक् है। आहाहा! समझ में आया? यह तो धीरज की बातें हैं। जिसे ऐसी दशा प्रगट करनी हो, उसके लिए बात है। मात्र बातें करनी हो और यह समझे बिना धर्म हुआ, यह धर्म हुआ, (उसके लिए बात नहीं है)। करुणा करके, अभयदान दिया, हो गया धर्म।

**मुमुक्षु :** अभिमान किया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभिमान नहीं, अभयदान दे नहीं सकता। मैं पर को अभय करता हूँ तो वह जीता है, ऐसा है? वह तो शरीर और जीव पृथक् नहीं पड़े, उस ज्ञेय का आत्मा ज्ञान करता है और शरीर तथा आयुष्य पृथक् पड़ गये, वह आत्मा ने किया नहीं। आत्मा ने किया नहीं, परन्तु वह आत्मा का ज्ञेय भी पररूप है। उसके ज्ञान में आया तो ज्ञेय के कारण ज्ञान का परिणमन हुआ, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म भाव है, भाई!

भगवान कल्पद्रुम! यहाँ कहते हैं, ज्ञान में आनन्द आता है, उसमें ज्ञेय और राग कहाँ आये? ज्ञेय को तो स्पर्श ही नहीं करता। राग जो दया, दान का विकल्प आया, उसे ज्ञान स्पर्श ही नहीं करता, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? जैसा स्वभाव है, वैसा जाने नहीं तो मूढ़ता मिथ्यात्व है। फिर चाहे तो जैन नाम धरावे कि हम साधु और श्रावक हैं, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

**और कहते हैं, कि जब यह ज्ञान की सविकल्पता मिट जावेगी-अर्थात् आत्मा शून्य जड़ सा हो जावेगा,...** शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ तो ज्ञान निर्दोष होगा। शून्य कब होगा? स्व-पर का जानना तो सिद्ध में भी है। समझ में आया? स्व-पर जानने का स्वभाव तो सिद्ध में भी है, केवलज्ञान में है। जाये कहाँ? वह तो ज्ञान का स्वभाव है। वह परिपूर्ण हो गया। लोकालोक को जानता है। कसाई का घर है, वहाँ बकरे को काटता है, वहाँ व्यभिचार होता है, वह सब ज्ञान में नहीं आता? ज्ञान जानता है या नहीं? सब जानता है और केवलज्ञानी तो ऐसा भी जानते हैं कि ये लोग आत्मा को मानते नहीं, ज्ञान को मानते नहीं, विपरीत मानते हैं, यह भी ज्ञान जानता है। जानता है, उसमें क्या विपरीतता आ गयी? आहाहा! वह तो ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है, वह तो स्व-स्वभाव है। जानना-देखना तो अपना अपने से स्वभाव है।

**आत्मा शून्य जड़ सा हो जावेगा, तब ज्ञान निर्दोष होगा, परन्तु 'वस्तुस्वभाव मिटै नहि क्योंही'...** यह आ गया, **'वस्तुस्वभाव मिटै नहि क्योंही'... खेद करे सठ योंही...** वस्तु स्वभाव भगवान चैतन्य प्रभु अपने को जाने और परचीज़ को अपने में

रहकर, पर को स्पर्श किये बिना तथा पर की परिणति किये बिना, अपनी परिणति में ज्ञान की दशा में जानता है। समझ में आया ? (वस्तुस्वभाव मिटै नहिं क्योंही) **की नीति से उनका विचार मिथ्या है।** क्या ? अरे ! मेरे ज्ञान में यह राग ज्ञात हो गया, द्वेष ज्ञात हो गया। वहाँ क्या ख्याल में आ गया ? वह तो तेरी चीज़ ज्ञान की परिणति ज्ञात हुई है। समझ में आया ? **उनका विचार मिथ्या है।**

**बहुधा देखा गया है कि हम कुछ न कुछ चिन्तवन किया ही करते हैं, उससे खेद-खिन्न हुआ करते हैं...** विकल्प करे और खेदखिन्न हो। उं..हूं..हूं.. ! **और चाहते हैं कि यह चिन्तवन न हुआ करे।** ज्ञान की दशा में ऐसा न आवे, ऐसे खेदखिन्न होता है। **इसके लिये हमारा अनुभव यह है कि चेतयिता चेतन तो चेतता ही रहता है,...** लो ! जाननेवाला भगवान तो जानने का कार्य सदा करता है। आहाहा ! राग को भी नहीं करता, शरीर को भी नहीं करता, परचीज़ को नहीं करता और परचीज़ ज्ञेयरूप से जानने में आती है तो ज्ञेयरूप नहीं होता। जैसे रागरूप हुआ नहीं, वैसे सब ज्ञेयरूप भी ज्ञान नहीं होता। समझ में आया ? आहाहा ! **चाहते हैं कि यह चिन्तवन न हुआ करे। इसके लिये हमारा अनुभव यह है कि चेतयिता चेतन तो चेतता ही रहता है, चेतता था,...** पहले भी। **और चेतता रहेगा,...** इस चेतना ने तो जानने का कार्य किया, जानने का कार्य करती है, जानने का कार्य करेगी। बराबर है ? टाईल्स-बाईल्स का कोई काम किया नहीं, ऐसा कहते हैं। ....थाणा ...थाणा। पन्द्रह लाख की मशीन।

**मुमुक्षु :** बंगले की शोभा बढ़ाती है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बंगले की न ! आत्मा की नहीं ! विवाह में कहते हैं न ? विवाह में। मण्डप की शोभा बढ़ाओ। आओ पधारो, मण्डप की शोभा बढ़ाओ। धूल भी बढ़ती नहीं।... दामाद हो तो बहुत ठीक सा लिखा। तुम्हें आना पड़ेगा, तुम बहुत वर्ष से आये नहीं। हमारे मण्डप की शोभा बढ़ेगी। धूल भी नहीं बढ़ेगी, सुन न अब। ज्ञान में ज्ञात हुआ, उसमें शोभा क्या बढ़ी ? आहाहा !

भगवान का तो चैतन्य मण्डप, उसमें पर का ज्ञान हुआ, वह पर का नहीं, ऐसा कहते हैं। पर का नहीं, पर से नहीं और पररूप हुआ नहीं। आहाहा ! मूलजीभाई ने कहा

था न! मूलजीभाई लाखाणी राजकोट! उम्र बड़ी थी। अन्त में हार्टअटैक आया। लोग कहे, डॉक्टर को बुलाओ, घर के लोग कहे कि डॉक्टर को बुलाओ। वह कहे, लालूभाई को बुलाओ लालचन्दभाई को। लालचन्दभाई कहे, भाई! मूलजीभाई! देह का धर्म पर है, ऐसा आत्मा जानता है। यह देह का धर्म, वैसे जानना। यह धर्म आत्मा में नहीं आता। वे (मूलचन्दभाई) कहें कि देह के धर्म को जानना या मेरी पर्याय को जानना? ऐसे वीर्यवाले, अव्यक्तरूप से भी ऐसा श्रद्धा का जोर था। सेठ! गृहस्थ है, बड़े गृहस्थ है, पैसेवाले हैं। लालचन्दभाई ने कहा, शरीर में रोग है, वह शरीर का धर्म है। उसे आत्मा जानता है कि यह है। (तो मूलचन्दभाई यह कहे), क्या आत्मा उसे जानता है? ऐसा बोले। देह छूटने का काल (था)। आत्मा ऐसा जानता है कि इस देह का रोग, वह देह का धर्म है? या आत्मा अपनी पर्याय को जानता है? वहाँ जानने में रुके? ...भाई! समझ में आया?

यह तो अन्तर्मुख दृष्टि के विषय में पर का ज्ञान होता है, वह पर का नहीं परन्तु अपनी परिणति है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! उसका ज्ञान कब था? आहाहा! **उसका चेतना स्वभाव मिट नहीं सकता। 'तातैं खेद करैं सठ योंही'...** देखो! आया, **'तातैं खेद करैं सठ योंही'...** ज्ञान में यह क्या आया? यह कसाईखाना क्या ख्याल में आया? यह बकरा काटता है न? बोकड़ा समझे? क्या है? वह तो ज्ञान जानता है कि यह है। वह तो अपना जानने का स्वभाव है। काटता है, उसमें तुझे दुर्गंछा कैसे आयी? समझ में आया? ...भाई! आहाहा! अरे हमारी उपस्थिति में ऐसा काम? तेरी उपस्थिति में कहाँ होता है? वह तो उसकी उपस्थिति में होता है। तेरी उपस्थिति में तो उस सम्बन्धी का ज्ञान होता है। उस ज्ञान को मिटाना चाहता है, वह सठ है। समझ में आया?

**की नीति से खिन्नता प्रतीति होती है,...** इसे खेद-खेद हो जाता है। **अतः चिन्तवन, धर्मध्यान और मन्दकषायरूप होना चाहिए, ऐसा करने से बड़ी शान्ति मिलती है,...** धूल भी मिलती नहीं। राग की मन्दता से शान्ति मिलती है? ऐसा विकल्प आता है, ऐसा कहते हैं। मैं मुझे जानता हूँ, पर को नहीं और पररूप मैं हुआ नहीं - ऐसा

राग की मन्दता का विकल्प है, परन्तु अन्दर दृष्टि में उसका भी ज्ञान है। उस ज्ञान की परिणति में आत्मा है। समझ में आया? तब शान्ति मिलती है। **बड़ी शान्ति मिलती है, तथा स्वभाव का स्वाद मिलने से सांसारिक सन्ताप नहीं सता सकते,...** यह तो बराबर है। आत्मा, राग को और विषय-वासना को जानता होने पर भी पररूप नहीं होता। अपने रूप रहकर ऐसा जानता है तो शान्ति मिलती है। शान्ति मिलती है तो आत्मा का स्वाद भी आता है। वह राग को जानता है, उस पर लक्ष्य है तो राग का स्वाद आता है। समझ में आया? राग को पृथक् रखकर अपना ज्ञान, राग को जानता है, वह अपनी पर्याय है। ऐसी दृष्टि में आत्मा के आनन्द का स्वाद आता है। समझ में आया?

**स्वभाव का स्वाद मिलने से सांसारिक सन्ताप नहीं सता सकते,...** यह क्या हुआ? अरे! यह क्या हुआ? बीस वर्ष का लड़का दो वर्ष का विवाहित हो और गुजर जाये तो भी ज्ञानी तो ज्ञानस्वभाव में जानता है। लड़का मेरा है, ऐसा था नहीं और मुझसे पृथक् पड़ा, वह पृथक् ही था। मैं तो उसका जाननेवाला हूँ। आहाहा! समझ में आया? वह तो अपना ज्ञान है। उस सम्बन्धी का वही ज्ञान अपने में, अपने कारण से आने का था। यह हुआ तो ज्ञान आया है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

सेठियाजी को ऐसा हुआ था न, दीपचन्दजी सेठिया। यह आया न? क्या कहलाता है वह? हितपदसंग्रह, आया न? किसी का पुत्र मर जाये तो, मेरा पेट, ऐसा करते हैं। हमारे काठियावाड़ में बोलते हैं मारुं पेट। मेरे पेट में तू था। मेरा पेट मर गया। पेट कहाँ तेरा था? बालक भी कहाँ तेरा था। मेरा ज्ञान, ऐसा कहे। ...भाई! मेरा ज्ञान। मैं तो ज्ञान जाननेवाला हूँ। पुत्र भी मेरा नहीं और पुत्र सम्बन्धी आसक्ति की वृत्ति उठती है, वह भी मैं नहीं। समझ में आया? कसौटी के काल में ज्ञान को ज्ञानरूप रखना, वह वस्तु है। आहाहा! मूल बात यह है। उसकी हाजिरी रखना। मैं जाननेवाला हाजिर हूँ। आहाहा! चाहे जो प्रसंग हो, वह प्रसंग, प्रसंग में होता है, मुझमें कहाँ हाजिर है? आहाहा! गजब बातें, भाई!

**इसलिए सदा सावधान रहकर इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग,...** देखो! इष्ट का वियोग। प्रिय में प्रिय स्त्री और प्रिय में प्रिय पुत्र, ऐसा अज्ञानी गिनता है। उसके वियोग

में और प्रतिकूल संयोग में **परिग्रह-संग्रह आदि को अत्यन्त गौण करके...** परिग्रह-संग्रह आदि सबको गौण करके **निर्भय,...** मैं तो निर्भय भगवान आत्मा हूँ। तीनों काल निर्भय हूँ। आहाहा! ऐसी दृष्टि करके शान्ति का वेदन करना, इसका नाम धर्म है। **निराकुल,...** मैं तो निराकुल (अर्थात्) आकुलतारहित वस्तु हूँ। मेरी चीज़ में आकुलता कैसी? शुभराग भी भट्टी है। यह आता है न? 'राग आग दहै सदा तातैं समामृत सेईये' अन्दर समता का-आत्मा के आनन्द का अमृत पीयो।... उस काल में उसका ज्ञान होने का था तो वह चीज़ उसके कारण से आयी और मेरा ज्ञान भी मेरे कारण से हुआ। राग आया तो उसके कारण से हुआ, ऐसा भी नहीं है।

**निराकुल, निगम,...** अगम्य-गम्य। **निर्भेद...** भेद नहीं। **आत्मा के अनुभव का अभ्यास करना चाहिए।** आत्मा आनन्दमूर्ति का अभ्यास करना, वही धर्म है। शास्त्र पढ़ना और वाँचन, अभ्यास करना, वह भी धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। ...भाई! आहाहा! यह अधिकार पूरा हुआ, लो! अब अमृतचन्द्राचार्य स्याद्वाद अधिकार कहते हैं।

# ( ११ )
# स्याद्वाद द्वार

**स्वामी अमृतचन्द्र की प्रतिज्ञा...** प्रतिज्ञा करते हैं।

★ ★ ★

## काव्य - १-२

**स्वामी अमृतचंद्र मुनि की प्रतिज्ञा** (चौपाई)

**अदभुत ग्रंथ अध्यातम वानी।**
**समुझै कोऊ विरला ग्यानी।।**
**यामैं स्यादवाद अधिकारा।**
**ताकौ जो कीजै बिसतारा।।१।।**
**तो गरंथ अति सोभ पावै।**
**वह मंदिर यहु कलस कहावै।।**
**तब चित अमृत वचन गढ़ि खोले।**
**अमृतचंद्र आचारज बोले।।२।।**

**शब्दार्थ:-अदभुत=अथाह। विरला=कोई कोई। गढ़ि=रचकर।**

**अर्थ:-यह अध्यात्म-कथन का गहन ग्रन्थ है, इसे कोई विरला ही मनुष्य समझ सकता है। यदि इसमें स्याद्वाद अधिकार बढ़ाया जावे तो यह ग्रन्थ अत्यन्त सुन्दर हो जावे, अर्थात् यदि कुन्दकुन्दस्वामी रचित ग्रन्थ की रचना मन्दिरवत् है, तो उस पर स्याद्वाद का कथन कलश के समान सुशोभित होगा। ऐसा विचार कर अमृत-वचनों की रचना करके स्वामी अमृतचन्द्र कहते हैं।।१-२।।**

## काव्य-१-२ पर प्रवचन

**अद्भुत ग्रंथ अध्यातम वानी।**
**समुझै कोउ विरला ग्यानी॥**
**यामैं स्यादवाद अधिकारा।**
**ताकौ जो कीजै बिसतारा॥१॥**
**तो गरंथ अति सोभा पावै।**
**वह मंदिर यहु कलस कहावै॥**
**तब चित अमृत वचन गढ़ि खोले।**
**अमृतचन्द्र आचारज बोले॥२॥**

बोल सके नहीं और कहते हैं कि अमृतचन्द्र बोले। वापस अमृत वचन। अमृत वचन को रचते हैं, ऐसा कहा। अमृत वचन को रचे, खोले, ऐसे अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। क्या है परन्तु? समझ में आया? कथन में तो ऐसा ही आवे।

**अद्भुत ग्रंथ...** आहाहा! समयसार, अमृतचन्द्राचार्य महासन्त मुनि छठवें-सातवें (में) झूलनेवाले भावलिंगी मुनि (सन्त) समयसार को कहते हैं कि यह तो अद्भुत ग्रन्थ है। समझ में आया? मुनि, जिन्हें एकाध भव में केवलज्ञान की प्राप्ति होगी, ऐसे मुनि कहते हैं, पंचम काल के मुनि नग्न-दिगम्बर वन में रहनेवाले कहते हैं कि यह तो अद्भुत ग्रन्थ है। समयसार कोई आश्चर्यकारी ग्रन्थ है!! **अध्यातम वानी।** इसमें अध्यात्म-आत्मा को बलतानेवाली वाणी है। चिदानन्द भगवान अनाकुल आनन्द को बतलानेवाली वाणी है। समझ में आया? **यह अध्यात्म-कथन का गहन ग्रन्थ है,... समुझै कोउ विरला ग्यानी॥** कोई विरल प्राणी समयसार के रहस्य को समझते हैं। साधारण प्राणी नहीं जाने, कहते हैं।

**यामैं स्यादवाद अधिकारा।** उसमें स्याद्वाद (अधिकार है)। वस्तु वस्तु की है, परवस्तु की है नहीं, ऐसा स्याद्वाद (कहता है)। एक है, वह अनेक नहीं; अनेक है, वह एक नहीं-ऐसा कहता है। वही यहाँ कहते हैं-एक है, वही अनेक है। ऐसा अपेक्षा से जाननेवाला ज्ञान स्याद्वाद। **ताकौ जो कीजै बिसतारा॥ यदि इसमें स्याद्वाद अधिकार**

**बढ़ाया जावे तो यह ग्रन्थ अत्यन्त सुन्दर हो जावे,... तो गरंथ अति सोभा पावै।** ग्रन्थ अति शोभा पावे। लो! अर्थात् कि यह आत्मा का अधिकार कहा, बताया, इसकी विशेष स्पष्टता स्याद्वाद समझे तो विशेष स्पष्टता होती है।

**वह मन्दिर...** ग्रन्थ है, वह मन्दिर है और स्याद्वाद इसका कलश है। मन्दिर पर कलश चढ़ाते हैं न? **तब चित अमृत वचन...** अमृत वचनों की रचना। चित अर्थात्... अमृतचन्द्राचार्य विचार करके, चित्त विचार करे। **अमृत वचन गढ़ि खोले।** वचनों को अमृत कहा! 'वचनामृत वीतराग के' आता है न? अमृत वचनों की रचना करके। गढ़ि अर्थात् रचना करके खोलते हैं। उसका रहस्य बताते हैं। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य मुनि धर्म के स्तम्भ! वे इस समयसार की प्रशंसा करते हैं। एक-एक शब्द में, एक-एक गाथा में अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि यह ग्रन्थ बहुत गम्भीर है। ओहोहो! ग्रन्थ है, वह मन्दिर है और मैं यह कलश—स्याद्वाद अधिकार—बनाता हूँ। मन्दिर पर कलश शोभता है।

**अमृतचन्द्र आचारज बोले।** आगे कहेंगे, वाणी हमारी नहीं है, हम बोलते नहीं हैं। कथन क्या करे? भाषा व्यभिचारी। हम बोले। बोले कौन? बोले वह दूसरा-जड़ है। आहा! स्वरूपगुप्त मैं अमृतचन्द्राचार्य, ऐसा कहा है। मैं तो मेरे स्वरूप में-अस्तित्व में हूँ। इस वाणी के अस्तित्व में मैं आ गया? वह तो निमित्त से कथन किया जाता है।

★ ★ ★

## काव्य - ३-४

**पुनः** (दोहा)

**कुंदकुंद नाटक विषै, कह्यो दरब अधिकार।**
**स्यादवाद नै साधि मैं, कहौं अवस्था द्वार।।३।।**

**कहौं मुकति-पदकी कथा, कहौं मुकतिको पंथ।**
**जैसैं घृत कारज जहां, तहां कारन दधि मंथ।।४।।**

**अर्थः-स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य ने नाटक ग्रन्थ में जीव-अजीव द्रव्यों का स्वरूप**

**वर्णन किया है, अब मैं स्याद्वार, नय और साध्य-साधक अधिकार कहता हूँ।।३।। साध्यस्वरूप मोक्षपद और साधकस्वरूप मोक्षमार्ग का कथन करता हूँ, जिस प्रकार कि घृतरूप पदार्थ की प्राप्ति के हेतु दधि-मंथन कारण है।।४।।**

**भावार्थः-जिस प्रकार दधिमंथनरूप कारण मिलने से घृत पदार्थ की प्राप्तिरूप कार्य सिद्ध होता है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग ग्रहण करने से मोक्षपदार्थ की प्राप्ति होती है। मोक्षमार्ग कारण है और मोक्षपदार्थ कार्य है। कारण के बिना कार्य की सिद्धि नहीं होती, इससे कारणस्वरूप मोक्षमार्ग और कार्यस्वरूप मोक्ष दोनों का वर्णन किया जाता है।**

## काव्य-३-४ पर प्रवचन

**कुन्दकुन्द नाटक विषै, कह्यो दरब अधिकार।**
**स्यादवाद नै साधि मैं, कहौं अवस्था द्वार॥३॥**

**कहौं मुकति-पद की कथा, कहौं मुकति को पंथ।**
**जैसैं धृत कारज जहां, तहां कारन दधि मंथ॥४॥**

क्या कहते हैं ? **स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य ने नाटक ग्रन्थ में जीव-अजीव द्रव्यों का...** अधिकार किया। द्रव्य का अधिकार कहा न ? जीव का अधिकार कहा, वह तो अखण्ड आनन्दमय जीव है और विकल्प आदि सब अजीव है। ऐसे द्रव्य का अधिकार कहा।

**स्यादवाद नै साधि...** उसमें एक-अनेक, तत-अतत आदि जो धर्म हैं, उन्हें स्याद्वाद से कहूँगा, नय से कहूँगा और स्याद्वाद अधिकार कहूँगा। दो अधिकार हैं न! समझ में आया ? एक-अनेक आदि चौदह बोल है न ? उसमें स्याद्वाद आया और उपाय-उपेय में साध्य-साधक अधिकार कहता हूँ। **कहौं मुकति-पद की कथा,...** मुक्ति के पद की कथा कहूँगा। वे कहते हैं कि देखो! आचार्य कहते हैं कि मैं कहूँगा और तुम कहते हो... अरे भगवान! 'वोच्छामि समयपाहुड' ऐसा आया। आचार्य ने कुछ कहा (नहीं)। वह तो निमित्त का कथन है। अरे! झगड़ा समेट ले और जा अन्दर में। समझ में आया ?

**कहौं मुकति को पंथ।** मुक्ति पद की कथा कहूँगा, मोक्ष की कथा कहूँगा और मुक्ति के मार्ग की कथा कहूँगा। यह साध्य-साधक। साध्य, वह मुक्ति और साधक, वह मुक्ति का पंथ। **जैसैं धृत कारज जहां,...** जहाँ घी की आवश्यकता है। घी, घी। घी कहते हैं न? **तहां कारन दधि मंथ।** दही का मन्थन, वह कारण है। दही के मन्थन बिना घी नहीं निकलता। दही.. दही.. **धृत कारज जहां, तहां कारन दधि मंथ। जिस प्रकार कि घृतरूप पदार्थ की प्राप्ति के हेतु दधि-मन्थन कारण है।**

**भावार्थ - जिस प्रकार दधिमन्थनरूप कारण मिलने से घृत पदार्थ की प्राप्तिरूप कार्य सिद्ध होता है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग ग्रहण करने से मोक्षपदार्थ की प्राप्ति होती है।** भगवान आत्मा... ज्ञान के दो रूप बतायेंगे। एक साधकरूप ज्ञान की दशा और एक साध्यरूप पूर्ण दशा। समझ में आया? है न वहाँ? पूर्णता के लक्ष्य से शुरुआत। पूर्णता का लक्ष्य, वह साधक... समझ में आया? पूर्णता, वह साध्य और अवस्था शुरुआत होगी साधक। वह है न पूर्णता का लक्ष्य? वह पूर्णता का लक्ष्य अर्थात् द्रव्य नहीं... कहते समय यह कहा था। पूर्ण परात्मपद वह साध्य, उसका साधन पर्याय। पर्याय का साधन कौन, यह दूसरी बात है। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो! साध्य तो आत्मा है परन्तु मोक्ष कहाँ हुआ? यहाँ कहा जाता है, यहाँ पर्याय के दो भेद स्याद्वाद से बतलाना है। समझ में आया? अकेला द्रव्य... द्रव्य करे, परन्तु द्रव्य में जो पर्याय होती है, वह दो प्रकार की है। एक अपूर्ण निर्मल पर्याय, वह साधक और पूर्ण निर्मल पर्याय, वह साध्य। ऐसा बताना है। ऐसा वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी तो अकेला कूटस्थ द्रव्य ध्रुव है, ऐसा बताता है। वह भी अज्ञान है, सांख्य आदि। तथा बौद्ध आदि अकेली पर्याय को बताते हैं। पर्याय है, परन्तु पर्याय किसके आधार से होती है? दोनों को मिलाने के लिये मैं स्याद्वाद अधिकार कहूँगा। पर के कारण नहीं, वस्तु का स्वभाव ऐसा है। समझ में आया? लोग ऐसा कहते हैं कि अन्यमती में एकान्त है तो उन सबको मिलाकर महावीर भगवान ने अनेकान्त निकाला। अरे! ऐसी की ऐसी बातें पण्डित बाहर रखते हैं। भगवान महावीर ने सबका समन्वय किया। सबका एक-एक अंश लेकर पूरा स्याद्वाद अधिकार बनाया। ऐसा है ही नहीं। वह तो वस्तु ऐसी है। समझ में आया? द्रव्य त्रिकाल है, पर्याय क्षणिक है, वह वस्तु का

स्वभाव है। दो होकर पूरा द्रव्य सिद्ध होता है।

कहते हैं, **कारण के बिना कार्य की सिद्धि नहीं होती,...** मोक्षमार्ग ग्रहण करने से मोक्ष पदार्थ की प्राप्ति होती है। मोक्षमार्ग कारण है, मोक्षपदार्थ कार्य है – ऐसा यहाँ लेना है। वरना तो कारणपरमात्मा नियमसार में आता है। वह तो आश्रय में कारण, वह है। परन्तु कार्य की दशा में कारण मोक्ष का मार्ग है और मोक्ष है, वह उसका कार्य है। **कारण के बिना कार्य की सिद्धि नहीं होती, इससे कारणस्वरूप मोक्षमार्ग और कार्यस्वरूप मोक्ष दोनों का वर्णन किया जाता है।** यहाँ तो दो पर्याय का वर्णन (करते हैं)। समझ में आया? साधक होता है, उसी समय में पूर्ण दशा प्रगट होती है? ऐसा भेद बताना है। वस्तु भगवान आत्मा का आश्रय हुआ, और सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए तो चारित्र हुआ, उसी समय पूर्ण दशा हो जाती है? आहाहा! किसी को नहीं होती। असंख्य समय तो लगें.. और लगें ही। साधक को साध्य प्रगट करने में (इतना समय तो लगता ही है)। समझ में आया? पर्याय, पर्याय में निर्मलता की वृद्धि, पूर्णता कैसी है, यह बतायेंगे। इसका नाम यहाँ स्याद्वाद और साधक-साध्य कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १५१, भाद्र शुक्ल १२, गुरुवार, दिनांक ०२-०९-१९७१
स्याद्वाद द्वार, पद ९, १०

यह समयसार नाटक चलता है। उसका स्याद्वाद द्वार अधिकार है। पृष्ठ है न ३१५। नौवाँ है, पद नौवाँ है। फिर से लेते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ९

**नय समूह पर शिष्य की शंका और गुरु का समाधान** (सवैया इकतीसा)

**शिष्य कहै स्वामी जीव स्वाधीन कि पराधीन,**
**जीव एक है किधौं अनेक मानि लीजिए।**
**जीव है सदीव किधौं नांही है जगत मांहि,**
**जीव अविनश्वर कि नश्वर कहीजिए।।**
**सतगुरु कहै जीव है सदीव निजाधीन,**
**एक अविनश्वर दरव-द्रिष्टि दीजिए।**
**जीव पराधीन छिनभंगुर अनेक रूप,**
**नांही जहां तहां परजै प्रवांन कीजिए।।९।।**

**शब्दार्थ:-अविनश्वर=नित्य। नश्वर=अनित्य। निजाधीन=अपने आधीन। पराधीन=दूसरे के आधीन। नांही=नष्ट होनेवाला[१]।**

**अर्थ:-शिष्य पूछता है कि हे स्वामी! जगत में जीव स्वाधीन है कि पराधीन? जीव एक है अथवा अनेक? जीव सदाकाल है अथवा कभी जगत में नहीं रहता है? जीव अविनाशी है अथवा नाशवान है? श्रीगुरु कहते हैं कि द्रव्यदृष्टि से देखो तो जीव सदाकाल है, स्वाधीन है, एक है, और अविनाशी है। पर्यायदृष्टि से पराधीन,**

१. यहाँ 'नांही' से नाशवान का अभिप्राय है।

**क्षणभंगुर, अनेकरूप और नाशवान है, सो जहाँ जिस अपेक्षा से कहा गया है, उसे प्रमाण करना चाहिए।**

**विशेष:-जब जीव की कर्मरहित शुद्ध अवस्था पर दृष्टि डाली जाती है, तब वह स्वाधीन है, जब उसकी कर्माधीन दशा पर ध्यान दिया जाता है, तब वह पराधीन है। लक्षण की दृष्टि से सब जीवद्रव्य एक हैं, संख्या की दृष्टि से अनेक हैं। जीव था, जीव है, जीव रहेगा, इस दृष्टि से जीव सदाकाल है, जीव गति से गत्यान्तर में जाता है, इसलिए एक गति में सदाकाल नहीं है। जीव पदार्थ कभी नष्ट नहीं हो जाता, इसलिए वह अविनाशी है, क्षण-क्षण में परिणमन करता है, इसलिए वह अनित्य है।।९।।**

---

काव्य-९ पर प्रवचन

---

**शिष्य कहै स्वामी जीव स्वाधीन कि पराधीन,**
**जीव एक है किधौं अनेक मानि लीजिए।**
**जीव है सदीव किधौं नांही है जगत मांहि,**
**जीव अविनश्वर कि नश्वर कहीजिए॥**
**सतगुरु कहै जीव है सदीव निजाधीन,**
**एक अविनश्वर दरव-द्रिष्टि दीजिए।**
**जीव पराधीन छिनभंगुर अनेक रूप,**
**नांही जहां तहां परजै प्रवांन कीजिए॥९॥**

सूक्ष्म अधिकार है। सर्वज्ञ भगवान तीर्थंकरदेव, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे। परमेश्वर अरिहन्तपद में जब परमात्मा आये, तो उन्हें एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष देखने में आये। बाद में इच्छा बिना वाणी निकली। सर्वज्ञ परमेश्वर पूर्ण होते हैं, उन्हें कोई इच्छा नहीं होती। वे तो पूर्ण वीतरागदेव हुए, बाद में केवलज्ञान होता है। इच्छा बिना ओम ध्वनि निकली। भगवान ने छह द्रव्य देखे। भगवान ने—केवलज्ञानी परमात्मा ने जाति से छह द्रव्य, संख्या से अनन्त (द्रव्य देखे)। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु / रजकण—मिट्टी, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश। उसमें आत्मा कैसा है, यह बात

यहाँ चलती है। उसका अनेकान्त स्वरूप जैसा है, ऐसा समझे तो उसे स्वरूप का भान हो, शुद्ध परिणमन हो, तब धर्म हो। समझ में आया? एकान्त रूप समझे, जैसी चीज़ है ऐसी न समझकर अपनी कल्पना से समझे तो वस्तु की स्थिति समझ में नहीं आती, शुद्ध परिणमन होता नहीं, अमृत का स्वादरूपी आनन्द उसे आता नहीं, धर्म होता नहीं।

कहते हैं, **शिष्य कहै स्वामी...** जीव जो है, वह स्वाधीन है या पराधीन? **जीव एक है किधौं अनेक मानि लीजिए।** एक ही हों, सब जीव मिलाकर नहीं। यह जीव जो है, वह एक है या अनेक है? एक जीव हों, सब मिलकर नहीं। **जीव है सदीव किधौं नांही है जगत मांहि,...** त्रिकाल रहनेवाला है अस्ति या पर से नहीं है? स्व से है और पर से नहीं है, ऐसा है? ऐसा शिष्य पूछता है। सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान ने कहा हुआ आत्मा अनन्त काल में उसने समझ में लिया ही नहीं। समझ में आया? अन्तिम ग्रैवेयक तक क्रियाकाण्ड करके दया-दान-व्रत-भक्ति पूजा करते हैं, वह शुभभाव—पुण्य है; धर्म नहीं। ऐसी क्रिया करके कोई स्वर्ग आदि में जाये, परन्तु उसका जन्म-मरण मिटता नहीं। जन्म-मरण मिटने की चीज़ जो आत्मा, (वह) क्या वस्तु है और किस दृष्टि से वह नित्य है, किस दृष्टि से अनित्य है, ऐसा दोनों का ज्ञान करके स्वभाव-सन्मुख की एकाग्रता होना, पुण्य-पाप से रहित शुद्ध परिणति हो, तब उसे सम्यग्दर्शन और धर्म कहा जाता है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि **जीव है सदीव किधौं नांही है जगत मांहि,...** यह अस्ति-नास्ति की बात पहले आयी। अस्ति-नास्ति की। बस यह। **जीव अविनश्वर कि नश्वर कहीजिए...** प्रभु! यह जीव नाशवान है? नाशवान है या नाशवान नहीं है? यह नित्य-अनित्य, नित्य-अनित्य। आहाहा! **सतगुरु कहै जीव है सदीव निजाधीन,... दरव-द्रिष्टि दीजिए...** दूसरा पद है न! यदि द्रव्यार्थिकनय से—द्रव्य से देखो द्रव्यदृष्टि से (देखो), यहाँ द्रव्यदृष्टि का अर्थ सम्यग्दर्शन नहीं। द्रव्य, जो त्रिकाली द्रव्य है त्रिकाली ध्रुव आत्मा, उस दृष्टि से देखो तो निजाधीन है। वस्तु है, (वह) निजाधीन है। आहाहा! समझ में आया? एक है। वस्तु से देखो तो वह वस्तु एक है। अपना आत्मा एक, हों! सब मिलकर नहीं।

यह शरीर, वाणी तो जड़ है, यह तो मिट्टी-धूल है। यह तो पुद्गल है, यह कोई

आत्मा नहीं। और अन्दर में राग-द्वेष आदि होता है, वह भी वास्तव में आत्मा नहीं। वह तो विकार है, आस्रव है, बन्ध का कारण है। वह भी उसी पर्याय में है, यह तो यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? परन्तु स्वभाव की दृष्टि से देखो तो उसमें पुण्य-पाप का भाव है नहीं। जेठाभाई! भारी सूक्ष्म मार्ग भाई वीतराग का! ऐसा का ऐसा समझे बिना गोलेगोला... सब करे, आहाहा! अनादि के कूटे हैं परन्तु तत्त्व... परमेश्वर तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा ने जैसा एक-एक आत्मा देखा, ऐसा जब तक जानने में न आवे, तब तक उसे धर्म कभी तीन काल में होता नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं, **दरव-द्रिष्टि दीजिए....** अर्थात् द्रव्य की दृष्टि। भले द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टि.... उसमें शब्द में कोई अन्तर नहीं। भगवान आत्मा नित्य जो वस्तु है, शाश्वत चीज़, उस दृष्टि से देखो तो वह पर के आधीन है नहीं, स्वतन्त्र है, निजाधीन है, एक है। वस्तुरूप से ध्रुव चैतन्यद्रव्य वह तो एक ही है, अविनश्वर है, नित्य है।

**मुमुक्षु :** यह एक अपेक्षा से शुद्ध।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, इस अपेक्षा से। अविनश्वर है। वह कभी नाश होता नहीं। समझ में आया? पण्डितजी! ऐसे-ऐसे बिना भान के जैन में पड़ा, परन्तु परमेश्वर क्या कहते हैं, उसकी खबर बिना धर्म हो जायेगा, (ऐसा नहीं है)। करो यहाँ व्रत, नियम, तप, करो धर्म। धूल भी धर्म नहीं। सुन तो सही। वह तो विकल्प—राग है। आत्मा रागरहित चीज़ है, अविनाशी त्रिकाल। समझ में आया? उसकी दृष्टि किये बिना कभी सम्यग्दर्शन और धर्म की शुरुआत होती नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं। चार बोल लिये चार। चार है न भाई उसमें? निजाधीन, एक, अविनश्वर और सदीव, ऐसा। तीनों काल रहनेवाला है, निज आधीन है, एक है, नित्य है। **सदीव** का अर्थ सत् है। भाई! सत्। अपने से सत् है। द्रव्यदृष्टि से अपने से सत् है। निजाधीन है, अपने आधीन है द्रव्य। एक है। **है सदीव निजाधीन।** सदीव। है रूप से तो है। **कहै जीव है सदीव निजाधीन,...** आहाहा! कायम रहनेवाला आत्मा अस्ति... अस्ति... अस्ति, सत् अस्ति। द्रव्यदृष्टि से देखे तो, वस्तु की दृष्टि से देखें तो निजाधीन है, एक है, सदीव है, अविनश्वर है। **दरव-द्रिष्टि दीजिए...** द्रव्य की—त्रिकाली चीज़ की दृष्टि देने से यह चार बोल उसे स्वतन्त्ररूप से दिखते हैं। समझ में आया?

**जीव पराधीन...** दूसरा पद। **परजै प्रवांन कीजिए...** पर्याय से देखो... उसकी अवस्था—वर्तमान दशा है न, दशा। वह दशा क्या है ? आत्मा में दो अंश हैं—एक त्रिकाली ध्रुव अंश और एक उत्पाद-व्यय पर्यायरूपी अंश। पर के साथ सम्बन्ध नहीं। स्वतन्त्र है। परपदार्थ भिन्न है और अपना तत्त्व भिन्न है। समझ में आया ? तो कहते हैं कि **परजै प्रवांन कीजिए...** चौथा पद है। यदि पर्याय का प्रमाण करो तो पर्याय है। द्रव्य त्रिकाली है। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'। तो उत्पाद-व्यय पर्याय है और त्रिकाली ध्रुव है, वह द्रव्य है। सेठ! कभी समझ में लिया ही नहीं और ऐसे-ऐसे ... करो तो धर्म हो जायेगा। क्या धर्म, किसके आश्रय से होगा और धर्म क्या चीज़ है ?

**मुमुक्षु :** वस्तु को धर्म ही समझते नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** समझे बिना तो ऐसे अनादिकाल निकाला है। जैन में आया, जैन का साधु हुआ। वह भी आत्मज्ञान बिना, सम्यग्ज्ञान बिना अनन्त काल निकला है। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है और सम्यग्दर्शन किसके आश्रय से प्रगट होता है, ऐसा जाने बिना सब किया, चार गति में रुला।

यहाँ कहते हैं कि जीव पराधीन है। आहाहा! किस अपेक्षा से ? पर्याय, पर्याय अवस्था है न। अवस्था—परिणमन। परिणमन से देखो तो पर्याय कर्म आधीन है। द्रव्य से किसी के आधीन नहीं। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** कर्म के साथ सम्बन्ध स्थापित किया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सम्बन्ध है न। पर्याय का और उसका सम्बन्ध है न। द्रव्य को, गुण को सम्बन्ध कहाँ है ? समझ में आया ? कहते हैं कि त्रिकाली द्रव्य जो है ध्रुव, ध्रुव नित्य अविनाशी का जो अविनाशी तत्त्व है, वह तो एक है, अविनश्वर है, स्वाधीन है और त्रिकाल अपने से है। परन्तु पर्याय से देखो, उसकी अवस्था हालत... आहाहा! **परजै प्रवांन कीजिए।** पर्यायदृष्टि से देखें और उसे प्रमाण करें। 'है', ऐसा। पर्याय भी 'है'। पर्याय भी 'है'। यह तो कोई गुजराती शब्द आ जाता है। यह लोग हिन्दी आये न, इसलिए हिन्दी हुआ है। नहीं तो हिन्दी नहीं होता। अपने पास गुजराती होता है। परन्तु थोड़ा आ जाये अन्दर। छे, छे। (हिन्दी) भाषा में 'है'। क्या सेठ ? आहाहा!

**जीव पराधीन...** किस अपेक्षा से ? **परजै प्रवांन कीजिए।** साधक की बात है न यहाँ। यहाँ तो केवली परमात्मा की बात है न। यहाँ नय का ज्ञान है न। नय का ज्ञान। नय का है न। साधकदशा। श्रुतज्ञान में नय पड़ता है न, केवलज्ञान में नय नहीं होता, पूर्णज्ञान हो गया भगवान को। अरिहन्त परमात्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक पूर्ण देखते-जानते हैं। अपना त्रिकाली स्वरूप और पर का। वह तो वीतरागदशा केवलज्ञान हो गयी। यहाँ नीचे (के गुणस्थान में) शास्त्र ज्ञान बाह्य नहीं, परन्तु भाव श्रुतज्ञान। इस श्रुतज्ञान के भाग दो, एक निश्चय और व्यवहार, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। समझ में आया ? आहाहा ! द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। यह तो शब्द भी सुने न हो। जैन में जन्मे हों तो भी सुने न हों, जो जैन की मूल चीज़ वीतराग परमेश्वर की।

कहते हैं, **जीव परजै प्रवांन कीजिए।** भगवान आत्मा की पर्याय अर्थात् अवस्था अर्थात् परिणमन, बदलती अवस्था को यदि प्रमाण करें और वहाँ दृष्टि दें, (तो) पराधीन है। पर्याय में अपना ऐसा धर्म है कि निमित्त-आधीन होकर विकार होता है। आहाहा ! पर के कारण से नहीं।

**मुमुक्षु :** कर्म आधीन तो नहीं न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कर्म आधीन अर्थात् कर्म आधीन (करता है), ऐसा नहीं। कर्म के आधीन वह होता है। कर्म आधीन करता नहीं, ऐसा यहाँ अर्थ है। समझ में आया ? कर्म तो जड़ है, मिट्टी-धूल पुद्गल है सब। यह (शरीर) स्थूल है, वह सूक्ष्म है। रजकण है। समझ में आया ? '**विहुयरयमळा**' नहीं आता ? लोगस्स में आता है। पढ़ा है ? एक लोगस्स आता है अपने ....चक्र में, नहीं ? स्तुति आती है। उसमें आता है। 'लोगस्स उज्जोअगरेणं' सामायिक का पाठ। विहुयरयमळा। करो अर्थ, लो। उसकी कुछ खबर नहीं होती। पहाड़ा बोले जाये। उसमें भी आया, भाई ! उसमें कुछ जरा शब्द का अन्तर है। 'विहुयरसमळा' कहा है उसमें प्रतिक्रमण में। .... 'रयमळा'। अपने यह प्रतिक्रमण में है। दो जगह है।

'विहुयरयमळा।' हे नाथ ! हे परमात्मा ! तीर्थंकरदेव ! लोगस्स है न। 'लोगस्स उज्जोअगरे।' लोक में प्रकाश के करनेवाले, यह लोगस्स उज्जोअगरे का यह अर्थ है। ....बिना भान के पड़े हों। लोक के अन्दर, हे नाथ ! आप प्रकाश के करनेवाले ! चौबीस

तीर्थंकर हैं न! ऐसे तो अनन्त तीर्थंकर हो गये। ऐसा करते-करते शब्द-शब्द में नाम है उसमें। अन्दर प्रतिक्रमण में है न! 'विहुयरयमळा।' कुन्दकुन्दाचार्य में है, 'विहुयरयमळा' अर्थात् प्रभु! आपने विहुय... वि—विशेष, हुय अर्थात् टाले हैं, रय अर्थात् कर्मरूपी सूक्ष्म रज—धूल और मळ अर्थात् पुण्य-पाप का भाव-विकार। दोनों ही आपने नाश किये हैं। सेठी! सामायिक में यह तो लोगस्स में आता है। भगवान की स्तुति में आता है। परन्तु यह तो वर्तमान सब समझे बिना हांक रखे। रटनेवाला रट डाले। समझ में आया?

कहा था न एक बार? लींबड़ी में हुआ था न! दशाश्रीमाली और विसाश्रीमाली दो जाति हैं न अपने बनियों में। दशाश्रीमाली की जाति और विसाश्रीमाली की जाति। रामजीभाई दशाश्रीमाली है। दूसरे विसाश्रीमाली भाई, नहीं? खीमचन्दभाई। तुम भी विसाश्रीमाली। फिर विवाद हुआ लींबड़ी में। दशाश्रीमाली और विसाश्रीमाली का विवाद हुआ। दोनों स्थानकवासी, हों! एक वृद्धा थी। वह सामायिक करने बैठे न घड़ियाल ऐसा रखकर रेती का। भान नहीं होता कुछ। बैठे दो घड़ी मौन और ऐसा, हो गयी सामायिक। धूल भी नहीं, अब सुन न! अभी सामायिक किसे कहना? सम्यग्दर्शन किसे कहना? भान बिना सामायिक कहाँ से आयी तुझे? तो इस अवधि में दोनों को विवाद... 'विहुय'—विहा रोई मर्या ऐसा बोली। स्वयं दशाश्रीमाली की महिला थी। अब विसाश्रीमाली के साथ विवाद। विसा रोई मर्या। बुढ़िया को लगा, यह लोगस्स में कहाँ से आया? सेठी!

अब देखो तो सही पाठ में। यह विसा रोई मर्या, क्या कहते हैं? क्या कहती है बुढ़िया? उसमें तो था कि विहुयरयमळा। विहुय... देवीलालजी! लोगस्स आता है। देखा है या नहीं?

**मुमुक्षु :** यह तो देखे न। स्थानकवासी हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं। यह तो स्थानकवासी। हाँ, वह तो स्थानकवासी। उसमें आता है। 'एवं मये अभिथुआ विहुयरयमळा पहिणजरमरणा चउविंसति जिणवरा।' पहाड़े बोले जाये। भाई ने कहा न! हे प्रभु! आपने वि—विशेष, हुय—टाला है रयमळा। र-य। 'य' का 'ज' होता है। रज—सूक्ष्म आठ कर्म की धूल है अन्दर। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय को आपने नाश किया है। परमात्मा को कहते हैं, हों! और आपने...

मळ—यह पुण्य और पाप, शुभ और अशुभराग। दया-दान-व्रत-भक्ति का शुभराग, हिंसा-झूठ-चोरी का अशुभराग, वह मैल है। वह मैल और विहुयरयमळा। आपने दोनों नाश किये हैं। पाठ में आता है पाठ में। वह देखा है पाठ ? उसमें लोगस्स नहीं आता। लोगस्स बोला जाता है। यह तो अपने मिलाया है।

ऐसे परमात्मा ने कर्म और कर्म के निमित्त से अपने में हुआ विकार—दोनों ही का नाश किया। तो यहाँ कहते हैं, जब तक जीव साधक है, अपनी चीज़ को अनुभव में लिया कि मैं तो शुद्ध आनन्द ज्ञायक हूँ। ऐसी दृष्टि हुई, उसका नाम सम्यग्दर्शन। फिर भी ज्ञान में, अपनी पर्याय अभी पराधीन है, ऐसा भान में—ज्ञान में आता है। समझ में आया ? राग के आधीन है, वह पराधीनता है। वसन्तभाई ! वस्तु तो वस्तु है त्रिकाली नित्य-नित्य प्रभु अनादि-अनन्त। उसकी उत्पत्ति है द्रव्य-वस्तु की ? वस्तु की उत्पत्ति है ? तो वस्तु को उत्पन्न करनेवाला ईश्वर आदि है ? कोई है ही नहीं ?

**मुमुक्षु :** अनादि-अनन्त को कौन उत्पन्न करे ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन करे ? है। 'है' को कौन उत्पन्न करे ? और न हो, उसे कौन उत्पन्न करे ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा अनादि-अनन्त, द्रव्यदृष्टि से वस्तु को देखो तो स्वाधीन है। परन्तु पर्याय देखो अवस्था—हालत, राग के आधीन हुआ इसलिए पराधीन है। समझ में आया ? ऐसा ज्ञान में निर्णय करना चाहिए। और **छिनभंगुर...** यदि वस्तुदृष्टि से देखो तो नित्य-अविनाशी सत् है। ऐसे देखो तो पर से नास्ति है। समझ में आया ? पर्याय से देखो तो नास्ति है। पर्याय जितना नहीं। आहाहा ! वस्तुरूप से देखो तो सत् है और पर्याय से देखो तो नास्ति है, असत् है। एक समय की पर्याय जितना आत्मा नहीं। आहाहा ! भगवान जाने क्या हुआ ? **अनेक** है। वस्तु से देखो तो एक है द्रव्य—पदार्थ अविनाशी, परन्तु पर्याय से देखो तो पर्याय अनेक है। दशा—अवस्था। ज्ञान अवस्था, दर्शन अवस्था, शान्ति अवस्था, वीतराग, ये अवस्थायें तो अनेक हैं। पर्याय से देखो अवस्था—वर्तमान हालत तो अनेक है। वस्तु से देखो तो अपने-अपने आत्मा में वस्तु तो एक है। अरे ! आहा ! इसका नाम अनेकान्त भगवान का मार्ग है। जैनदर्शन का मूल। वह ऊपर लिया न !

**स्यादवाद अधिकार अब, कहौं जैनको मूल।**
**जाके जानत जगत्जन लहैं जगत-जल-कूल॥८॥**

संसार का किनारा आ जाये, यदि यह समझे तो। समझ में आया? वास्तविक समझ में आये तो। वास्तविक समझ में शुद्ध परिणमन होता है। समझ में आया? अवास्तविक समझ में कुछ अशुद्ध परिणमन होता है और अशुद्ध है, वह तो अनादिकाल से दशा है ही। समझ में आया? **अनेक** है। पर्याय से देखो... प्रमाण से पर्याय को प्रमाणरूप से मानो, ऐसा। है, ऐसा। प्रमाण का अर्थ '**है**'। है, है। पर्याय है। उत्पाद-व्यय पर्याय में होता है। तो उत्पाद पर्याय से देखो तो अनेक है। आहाहा!

**अनेकरूप नांही....** पर्याय से देखो तो अनित्य है। '**नांही**' अर्थात् नष्ट होनेवाला। समझ में आया? नाशवान का अभिप्राय ऐसा लिखा है न! '**नहीं**' यहाँ इसमें नहीं लेना। वह अस्ति-नास्ति का यहाँ नहीं लेना। वह पहले में आ गया। यहाँ तो नाशवान का अभिप्राय। पर्याय से देखो तो पर्याय नाशवान है, बदलती है। ध्रुव से देखो तो अविनश्वर है। ...भाई! क्या इसमें पानी-बानी में... समझे थे? नहीं? गर्म पानी पीओ, अपवास करके बैठो। परन्तु क्या चीज़ है? आहाहा!

वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव ने एक समय में त्रिकाल देखा। यह आत्मा भगवान ने ऐसा देखा है (और) ऐसा है। है, ऐसा देखा। अज्ञानी एकान्त मानते हैं। कितने ही कहते हैं, आत्मा नित्य ही है। झूठ है। नित्य हो तो पर्याय में अनित्यता है। पर्याय बदलती है, अवस्था बदलती है। अनित्य नहीं माना तो मिथ्यादृष्टि हुआ। और पर्याय अनित्य है, (ऐसा) एकान्त मानना तो द्रव्य नित्य है, उसका नाश होता है दृष्टि में। मूलचन्दभाई! दोनों हैं। वस्तुरूप से नित्य है, पर्यायरूप से अनित्य है। वस्तुरूप से एक है, वही... वही आत्मा पर्यायरूप से अनेक है। वस्तुरूप से सत् है, पर्यायरूप से नास्ति है। वस्तुरूप से एक है, पर्यायरूप से अनेक है। और वस्तुरूप से नित्य है, पर्यायरूप से अनित्य है। समझ में आया? अरे, ऐसा धर्म! अब धर्म करने लगो न! समझे बिना परन्तु क्या धूल करे? धर्म करनेवाला कौन है, यह समझे बिना धर्म कहाँ से होगा?

**मुमुक्षु :** एक रखो। या तो नित्य रखा, या अनित्य रखो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा नहीं होता। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। त्रिकाली वस्तु नित्य है और पर्याय से अनित्य है। विचार बदलते हैं, वह दशा आत्मा की है, जड़ की नहीं। समझ में आया? ऐई निरंजन! वहाँ कहाँ था अमेरिका में? दस हजार महीना, कहे। ओये... लोगों को तो ऐसा हो। आहाहा! महीने में दस हजार। ऐसा पूछा था इसको, परन्तु बचे कितना? उसे मैंने नहीं पूछा था। उसको पूछा था। एक है न काका का पुत्र। वहाँ रहा है न अभी। कहा, वेतन कितना? दस हजार का। अमेरिका। मासिक। कितना बचता है? कहे, ३-४ हजार बचते हैं। बाकी सब जाता है। खर्च भी बड़े हों न वहाँ। ....यह मकान के, खाने के बहुत पैसे खर्च होते हैं। छह हजार-सात हजार तो दूसरा खर्च हो सब करके। गजब है न! समझ में आया? और मुम्बई में आठ हजार मिलते हैं भाई को, रामजीभाई के पुत्र को। इनके पुत्र को मुम्बई में आठ हजार वेतन और बचे बहुत। वह ऐसा कहे, बहुत बचता नहीं। यह कहते हैं कि उसे दस हजार में दो हजार तो सरकार ले जाती है। तो भी यहाँ खर्च कम न खर्च। मुम्बई में खर्च कम। अमेरिका जितना नहीं न। इसलिए वहाँ तो यह दस हजार की गिनती कुछ नहीं, ऐसा कहते हैं। और यहाँ आठ हजार की गिनती बहुत कहलाये मासिक।... उसमें ऐसो में है न।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा, त्रिकाल अविनाशी दृष्टि से देखो तो नित्य है। पर्याय बदलती है अन्दर अवस्था (बदलती है)। मिथ्यात्वभाव है। राग मेरा है, पुण्य मेरा है, शरीर मेरा है, यह मिथ्यात्वभाव है। तो जब सम्यग्दर्शन होता है तो पर्याय बदल जाती है।

**मुमुक्षु :** यह तो दृष्टान्त है न, बीमार हो, वह निरोग होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निरोग होता है। डॉक्टर! यह बीमार निरोग होते हैं न! अवस्था बदलती है। यह परमाणु की अवस्था। परमाणु रजकण पॉईन्ट है यह। और अनन्त रजकण हैं। एक-एक रजकण कायम रहकर अवस्था बदलती है। अभी अवस्था ऐसी है। पहले दाल-चावल की थी। रजकण वही के वही। रजकण वही के वही। कभी दाल-चावल की थी। उसके पहले गेहूँ की थी। उसके पहले मिट्टी की थी। बदलती

आयी। यह भी राख हो जायेगी। अभी कोई कहता था, 'तो राख हो जाये?' राख होने की क्या? यह राख ही है। मिट्टी-धूल है यह तो। समझ में आया?

कोई कहता था, बाद में यह राख हो जायेगी? देह की स्थिति जड़ है। रजकण तो वही के वही हैं। रजकण की अवस्था बदलती है। रजकण कायम रहते हैं परन्तु रजकण की अवस्था बदलती है। रजकण को भी नित्य की दृष्टि से देखो तो द्रव्यदृष्टि से नित्य है। पर्याय से बदलती है, वह भी अनित्य है। ऐसे आत्मा में त्रिकाल की दृष्टि से देखो तो नित्य है। अवस्था से देखो तो अनित्य है। अवस्था बदल जाती है। आहाहा! समझ में आया? अवस्था एकरूप नहीं रहती। यह तो परिणमन है, पर्याय है। रूपान्तर होता है। कायम रहकर रूपान्तर होता है। रूपान्तर न हो तो कार्य न हो और धर्म न हो। अरे, अधर्म भी न हो। समझ में आया? धर्म और अधर्म पर्याय में होते हैं, द्रव्य में नहीं होते। द्रव्य तो त्रिकाली है। आहाहा! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ का पंथ। और कहीं ऐसी चीज़ है नहीं। इस पंथ में जन्मे, उन्हें भी खबर नहीं। दूसरे में क्या है? आहाहा!

कहते हैं, पर्याय से देखो तो वह **नांही... नांही** का अर्थ नष्ट। **नांही** का अर्थ नष्ट किया। उसमें देखो तो... लिखा है न, **नांही** है। **सदीव किधौं नांहि है। है नांहि...** वहाँ अस्ति-नास्ति। वहाँ अस्ति-नास्ति और यहाँ नित्य-अनित्य। अन्तिम बोल है न। आहाहा! कहते हैं, यह चीज़ ही भगवान आत्मा अनादि की ऐसी है। नाशवान अवस्था है, ऐसा एकान्त मानना और नित्य न मानना, वह भी मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है। जैन में हो तो भी अज्ञानी है। और त्रिकाल है, उसे मानना, पर्याय नहीं मानना, वह भी मिथ्यात्व अज्ञानी है। ऐसी मान्यता से शुद्ध का—पवित्रता का परिणमन होता नांही। एकान्त मान्यता से (माने) तो सत्य ऐसा है नहीं। तो शुद्ध की धर्मदशा उसको होती नही और अशुद्धदशा उसकी नाश होती नहीं। समझ में आया?

अर्थ में आता है देखो। **शिष्य पूछता है हे स्वामी! जगत में जीव स्वाधीन है कि पराधीन? जीव एक है कि अनेक? जीव सदाकाल है अथवा कभी जगत में नहीं रहता है?** अस्ति-नास्ति। **जीव अविनाशी है कि नाशवान है?** नित्य-अनित्य। नित्य-अनित्य। समझ में आया? चार-चार बोल कहे। पहले कहा शिष्य ने कि प्रभु! जगत में जीव स्वाधीन है या पराधीन? एक बोल। जीव एक है या अनेक? दो (बोल)। जीव

सदा काल है या कभी जगत में नहीं रहता? पर की अपेक्षा से, हों! सत्-असत् की बात। जीव अविनाशी है या नाशवान है? चार प्रश्न किये।

गुरु कहते हैं कि द्रव्यदृष्टि से देखो तो जीव सदाकाल है। वस्तु, वस्तुरूप से भगवान अनादि का है, तीनों काल है, स्वाधीन है। देखो! स्वाधीन है, अपने आधीन। द्रव्य—वस्तु क्या किसी के आधीन है? भगवान ने बनायी है? कोई ईश्वर बनानेवाला है द्रव्य का? अनादि का सत् है। समझ में आया? जैन में जन्मे हों या गृहीत में... ईश्वर ने बनाया है यह। कुछ खबर नहीं होती। वस्तु है, उसे बनाये कौन? और उसकी पर्याय की रचना हुई, वह तो द्रव्य रचता है। दूसरा कौन रचता है? आहाहा! कहते हैं, द्रव्यदृष्टि से देखो, द्रव्य से देखो, द्रव्यार्थिकनय से देखो, सामान्य को देखनेवाली दृष्टि से देखो तो सदाकाल है। यह अस्ति।

स्वाधीन है। यह दूसरा बोल है। द्रव्य स्वाधीन है। एक है। वस्तु तो एक ही है। और अविनाशी-नित्य है। पर्यायदृष्टि से—अवस्थादृष्टि से देखो तो पराधीन है। पर के आधीन, राग आधीन, अवस्था आधीन हो गयी न। पर्याय का धर्म है, ऐसा कहते हैं। पर्याय का धर्म—स्वभाव है कि पर के आधीन होती है। पर आधीन करता नहीं। कर्म आत्मा को पराधीन करे और कर्म का उदय आये तो विकार करना पड़े, ऐसा नहीं। समझ में आया? स्वाधीन है। एक है। वस्तुरूप से एक है। अविनाशी है। पर्यायदृष्टि से पराधीन है। क्षणभंगुर है अर्थात् कि पर का उसमें नाश है। पर से अस्तित्व नहीं। स्व से अस्तित्व और पर से नास्ति है। अनेकरूप है पर्याय। नाशवान है अर्थात् अनित्य है। **सो जहाँ जिस अपेक्षा से कहा गया है, उसे प्रमाण करना चाहिए।** आहाहा!

**मुमुक्षु :** भेदरूप पर्याय....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय अनेक हैं। द्रव्य एक है। पर्याय तो अनेक हैं या नहीं? ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द आदि अनेक पर्याय हैं। पर्याय की भी खबर नहीं। ऐई सेठ!

सवेरे सब आये थे न। कौन? भोपालवाले। भोपालवाले। जैन में जन्म और भाषण करे... यहाँ पर्याय की बात चली थी। पर्याय वहाँ भी है नहीं। सिद्ध में भी पर्याय? क्या भाषा कही? ....अभी परमात्मा सिद्ध हुए, उनकी भी पर्याय पीछा नहीं

छोड़ती ? कुछ खबर नहीं होती। सिद्ध तो पर्याय है। परमात्मा जो मोक्षदशा हुई, वह तो पर्याय है। द्रव्य तो त्रिकाली है। सिद्धपर्याय केवलज्ञान हुआ, वह भी पर्याय है। पर्याय पलटती हुई है। एक.... बोल बोलते हैं यहाँ। नित्य परमात्मा का... आता है न, उसमें भी आता है। 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु।' उसमें भी आता है। परन्तु अर्थ की खबर नहीं होती। पहाड़ा पूरा किया। भाषा बराबर है ? 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु।' 'बोहिलाभं ऐवमही अभिथुआ, चउविसंप्पो जिणवरा तिथ्यरा में पसियंतु। कित्तिय वंदियमहिआ, जे अे लोगस्स उत्तमा सिद्धा आरुग्ग बोहिलाभं।'

अपने 'आरुग्ग बोहिलाभं' आता है। उसमें 'आरुग्ग ज्ञानलाभं' इष्टोपदेश में ऐसा है। आरोग्य और ज्ञान का लाभ मिले। आरोग्य अर्थात् रागरहित निरोगात। यह राग भी रोग है। शरीर का रोग नहीं, वह तो जड़ की दशा है। वह तो मिट्टी है। आत्मा में जितना पुण्य-पाप का विकल्प होता है, वह राग रोग है। तो धर्मात्मा माँगते हैं कि हमें तो आरोग्यता चाहिए। यह राग रोग नहीं। हमारा आत्मा निर्मलानन्द है, उसका आश्रय करके हमें आरोग्यता प्रगट करनी है, वह आरोग्य है। यह दवा करते हैं, शरीर को रोग हो तो यह सब डॉक्टर इंजैक्शन... डॉक्टर ! उसमें तो क्या जीवे या मरे, वह तो आयुष्य के आधीन है। इंजैक्शन से जीवे ? यह तो निरोगता आत्मा की। आहाहा !

'समाहिवरमुत्तमंदिंतु।' हे भगवान ! परमात्मा ! मेरी वीतरागदशा होओ। समाहि—समाधि, वर—प्रधान। उत्तमंदिंतु। मुझे तो शान्ति चाहिए। भगवान ! मुझे तो वीतरागी परिणतिरूपी समाधि हो। यह बाबा लोग समाधि करे, वह नहीं, हों ! वह समाधि तो अज्ञान की है। यह तो आधि-व्याधि-उपाधिरहित समाधि। व्याधि अर्थात् शरीर के रोग, उपाधि अर्थात् यह बीड़ियाँ-बीड़ियों का व्यापार-धन्धा, डॉक्टर का धन्धा, यह सब उपाधि। डॉक्टर ! शरीर में व्याधि, बाहर की उपाधि और अन्तर की आधि। यह संकल्प और विकल्प करे मन में, वह आधि है। आहाहा ! आधि-व्याधि-उपाधि—तीन रहित समाधि। लोगस्स में ऐसा आता है।

'समाहिवरमुत्तमंदिंतु।' हे प्रभु ! हमारी शान्ति, हमारा आनन्द स्वभाव है, वह हमको पूर्ण प्रगट हो। हमें दूसरा कुछ चाहिए नहीं। भगवान क्या देते हैं ? भगवान तो वीतरागी हैं। अपने (भाव) में माँग ऐसी करते हैं। भाषा तो ऐसी हो न !

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्ञान शब्द पड़ा है। ज्ञान शब्द। कहा था, बताया था। अभी देखा था। बहुत शब्द.... अपने प्रतिक्रमण में बनाया है न। उन लोगों ने यहाँ से लिया है। थोड़े शब्द अधिक। बोले राग में.... आहाहा!

अरे! यहाँ कहते हैं, यह ज्ञान की निरोगता—वीतरागता अर्थात् ज्ञान की निरोगता कहने में आती है। यह पर्याय में होती है। वस्तु तो ध्रुव त्रिकाली है। वह चीज़ तो बदलती नहीं, अवस्था बदलती है, पर्याय बदलती है, दशा रूपान्तर होती है, ऐसा पर्याय का धर्म जीव का है। आहाहा! धर्म अर्थात् स्वभाव। तो कहते हैं, **जब जीव की कर्मरहित शुद्ध अवस्था पर दृष्टि डाली जाती है।** यह अवस्था भी ली है, ऐसा नहीं कहा। द्रव्यपर्याय। द्रव्यार्थिक लेना द्रव्य। द्रव्य पर दृष्टि है, **तब वह स्वाधीन है। जब उसकी कर्म आधीन दशा पर ध्यान दिया जाता है, तब वह पराधीन है।** पण्डितजी! त्रिकाल द्रव्य। यहाँ कहा, अवस्था बदलती है। त्रिकाल द्रव्य। द्रव्यदृष्टि तो वह द्रव्यदृष्टि—द्रव्यार्थिकनय। आहाहा!

**लक्षण की दृष्टि से सब जीव द्रव्य एक हैं।** ज्ञानलक्षण से लक्षित आत्मा तो एक द्रव्य है आत्मा। आत्मा अनेक हैं? नहीं। अनन्त आत्मा दूसरे हों, उनकी बात नहीं। वेदान्त कहता है कि एक ही आत्मा है सब मिलाकर। ऐसा नहीं है। आत्मा तो अनन्त हैं, परन्तु अपनी अपेक्षा से देखो तो यह आत्मा एक है। द्रव्य से—वस्तु से देखो तो एक है। संख्या की दृष्टि से अनेक हैं। आत्मा में गुण और पर्याय अनेक हैं। इस दृष्टि से देखें। पर्याय अनेक हैं संख्या की दृष्टि से। द्रव्यदृष्टि से तो एक है। अरे, कितना समझना इसमें? मूल बात ही समझ में आयी नहीं अन्दर। द्रव्य-गुण और पर्याय क्या हैं? वीतराग परमेश्वर ने कहा हुआ, हों! और यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं होती नहीं। **जीव था, जीव है, जीव रहेगा। इस दृष्टि से जीव सदाकाल है। जीव गति से गत्यन्तर में जाता है। इसलिए एक गति में सदाकाल नहीं है।** ऐसा कहा है। पर से नहीं, ऐसा बतलाया। **जीव पदार्थ कभी नष्ट नहीं हो जाता। इसलिए नित्य है, अविनाशी है। क्षण-क्षण में परिणमन करता है, इसलिए अनित्य है।** बराबर है। अब १०वाँ बोल।

**पदार्थ स्व-चतुष्टय की अपेक्षा से अस्तिरूप और परचतुष्टय की अपेक्षा से नास्तिरूप है।** लो। यह पद आया, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। सामान्य बात कही। और फिर अपेक्षा ली। **दर्व खेत काल भाव च्यारौं भेद वस्तुहीमैं....** एक-एक आत्मा की बात चलती है। प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु लो। एक-एक रजकण है, उसके अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव (उसमें) हैं।

★ ★ ★

## काव्य - १०

**पदार्थ स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्तिरूप और परचतुष्टय की अपेक्षा नास्तिरूप है**

(सवैया इकतीसा)

**दर्व खेत काल भाव च्यारौं भेद वस्तुहीमैं,**
**अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानियै।**
**परके चतुष्क वस्तु नासति नियत अंग,**
**ताकौ भेद दर्व-परजाइ मध्य जानियै।।**
**दरव तौ वस्तु खेत सत्ताभूमि काल चाल,**
**स्वभाव सहज मूल सकति बखानियै।**
**याही भांति पर विकलप बुद्धि कलपना,**
**विवहारद्रिष्टि अंस भेद परवांनियै।।१०।।**

**शब्दार्थः-चतुष्क=चार-द्रव्य क्षेत्र काल भाव। अस्ति=है। नासति=नहीं है। नियत=निश्चय। परजाइ=अवस्था। सत्ताभूमि=क्षेत्रावगाह।**

**अर्थः-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव ये चारों वस्तु ही में हैं, इसलिए अपने चतुष्क अर्थात् स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा से वस्तु अस्तिस्वरूप है, और परचतुष्क अर्थात् परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा वस्तु नास्तिरूप है। इस प्रकार निश्चय से द्रव्य अस्ति-नास्तिरूप है। उनका भेद द्रव्य और पर्याय में**

जाना जाता है। वस्तु को द्रव्य, सत्ताभूमि को क्षेत्र, वस्तु के परिणमन को काल और वस्तु के मूल स्वभाव को भाव कहते हैं। इस प्रकार बुद्धि से स्वचतुष्टय और परचतुष्टय की कल्पना करना सो व्यवहारनय का भेद है।

विशेष:-गुण-पर्यायों के समूह को वस्तु कहते हैं, इसी का नाम द्रव्य है। पदार्थ आकाश के जिन प्रदेशों को रोककर रहता है, अथवा जिन प्रदेशों में पदार्थ रहता है, उस सत्ताभूमि को क्षेत्र कहते हैं। पदार्थ के परिणमन अर्थात् पर्याय से पर्यायान्तररूप होने को काल कहते हैं। और पदार्थ के निजस्वभाव को भाव कहते हैं। यही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव पदार्थ का चतुष्क अथवा चतुष्टय कहलाता है, यह पदार्थ का चतुष्टय सदा पदार्थ ही में रहता है, उससे पृथक् नहीं होता। जैसे-घट में स्पर्श रस वा रुक्ष कठोर रक्त आदि गुण-पर्यायों का समुदाय द्रव्य है, जिन आकाश के प्रदेशों में घट स्थित है वा घट के प्रदेश उसका क्षेत्र हैं, घट के गुण-पर्यायों का परिवर्तन उसका काल है, घट की जलधारणा शक्ति उसका भाव है। इसी प्रकार पट भी एक पदार्थ है, घट के समान पट में भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव हैं। घट का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव घट में है, पट में नहीं, इसलिए घट अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अस्तिरूप है और पट के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नास्तिरूप है। इसी प्रकार पट का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पट में है, इसलिए पट अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्तिरूप है, पट का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव घट में नहीं है, इसलिए पट, घट के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नास्तिरूप है।।१०।।

---

काव्य-१० पर प्रवचन

---

दर्व खेत काल भाव च्यारौं भेद वस्तुहीमैं,
अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानियै।
परके चतुष्क वस्तु नासति नियत अंग,
ताकौ भेद दर्व-परजाइ मध्य जानियै॥
दरव तौ वस्तु खेत सत्ताभूमि काल चाल,
स्वभाव सहज मूल सकति बखानियै।

**याही भांति पर विकलप बुद्धि कलपना,**
**विवहारद्रिष्टि अंस भेद परवांनियै॥१०॥**

चार भेद करना, यह व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अपनी चीज़ में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, ऐसा भेद देखना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! क्या कहते हैं?

अर्थ : **द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव चारों भेद वस्तु ही में हैं।** क्या कहते हैं? यह आत्मा है न वस्तु—द्रव्य त्रिकाली गुण-पर्याय का पिण्ड। गुण—शक्तियाँ और अवस्था, उसका पिण्ड, वह द्रव्य। और क्षेत्र। यह नीचे लिया है। द्रव्य तो वस्तु... है न? द्रव्य तो वस्तु... द्रव्य तो वस्तु त्रिकाली भगवान आत्मा और क्षेत्र—सत्ताभूमि। असंख्य प्रदेशी अपना क्षेत्र, वह उसका क्षेत्र है। भगवान का क्षेत्र—यह आत्मा का अपना असंख्य प्रदेशी स्वक्षेत्र से अपनी सत्ता में है। यह अपना क्षेत्र है। यह मकान के क्षेत्र और फलाना के क्षेत्र-क्षेत्र, वह आत्मा के नहीं।

**मुमुक्षु :** बाजरा जहाँ बोबे वह क्षेत्र नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाजरा बोबे। कौन बोबे वहाँ? वह क्षेत्र तो पर है। परमाणु का और दूसरे आत्मा का क्षेत्र पर है। अपने आत्मा का क्षेत्र सत्ताभूमि... सत्ताभूमि, है न? नीचे है।

**निश्चय से द्रव्य अस्ति-नास्तिरूप है। उसका भेद द्रव्य और पर्याय में जाना जाता है। सत्ताभूमि को क्षेत्र, वस्तु को द्रव्य। सत्ताभूमि को क्षेत्र...** आहाहा! उसमें है। पहले अर्थ में है। अर्थ में है भाई। तीसरी लाईन।

**मुमुक्षु :** सत्ताभूमि—क्षेत्रावगाह।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, क्षेत्रावगाह नहीं। इस अर्थ के ठेठ नीचे से तीसरी लाईन। वस्तु को द्रव्य... पहले नहीं। पहले तो यह कहा। सत्ताभूमि को क्षेत्र। क्या कहा वह? जयपुर का क्षेत्र और यह क्षेत्र तुम्हारा नहीं, ऐसा कहते हैं। वह बाग बनाया है न जयपुर में। वह क्षेत्र पर है। अपना क्षेत्र... अपना क्षेत्र तो असंख्यप्रदेशी। आहाहा!

**मुमुक्षु :** उस बगीचा का क्षेत्र पर नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वे बोलते थे। कहा न, मैंने बनाया है यह सब.... स्वयं बनाया है।.... अब रात्रि की खबर नहीं तुमको। रात्रि से पहले.... हमने चार प्रकार का आहार (छोड़ रखा है) अजीवन।......

बाग है, बाग है भाई का, सेठी का। है न? कोई कहता था। हमें खबर नहीं। कोई कहता था तो कहे कि ८० हजार के ऊपर डाला है उसमें। बाग किया न। कोई कहता था। अब तुम्हारी तुमको खबर। हमको क्या?

**मुमुक्षु :** वह तो प्रसन्नभाई को खबर हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह उसे खबर हो या नहीं... परन्तु किसी ने कहा था। यहाँ कहते हैं, वह क्षेत्र अपना नहीं। प्रसन्नभाई! यह बँगला अपना नहीं। अपना क्षेत्र तो, भगवान कहते हैं कि तेरा असंख्य प्रदेश। आहाहा! वह तेरी सत्ताभूमि है। वह तेरी सत्ता का क्षेत्र है। वस्तु को द्रव्य और सत्ताभूमि को क्षेत्र... आहाहा! देखो, उसमें आया न! द्रव्य तो वस्तु और क्षेत्र सत्ताभूमि। पाँचवाँ। अपने से अपना द्रव्य है और अपना असंख्य प्रदेशी क्षेत्र अपने से है। **काल चाल....** काल चाल। भाषा तो देखो। अपना काल क्या? वस्तु के परिणमन को काल (कहते हैं)। आहाहा!

भगवान आत्मा वस्तु अपनी, वह वस्तु त्रिकाली अपना द्रव्य। उसका असंख्य प्रदेशी अपनी सत्ता क्षेत्र। अरे... अरे! यह सत्ता! सबको क्षेत्र। क्षेत्र बिना का कोई आत्मा होता ही नहीं। क्षेत्र बिना का कोई द्रव्य नहीं होता। परन्तु अपना क्षेत्र वह अन्दर असंख्य प्रदेशी आत्मा। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयंज्योति सुखधाम, दूसरा कितना कहें, कर विचार तो पाम।' आहाहा! यह अपनी वस्तु यह अपनी त्रिकाली चीज़, अपना क्षेत्र असंख्य प्रदेशी होनेरूप क्षेत्र। यह त्रिकाली है। क्षेत्र भी अपना त्रिकाली है न! असंख्य प्रदेश। भगवान ने देखा है कि असंख्य प्रदेश है। यहाँ आत्मा है अंश। यहाँ, यहाँ, यहाँ, यहाँ अंश हो आत्मा का। यह तो जड़ है। अन्दर में यहाँ... यहाँ... सब आत्मा है। वह उसके प्रदेश के अंश हैं। एक परमाणु पॉईन्ट। एक पॉईन्ट है रजकण, वह जितने में रहे, उतने भाग को प्रदेश कहते हैं। ऐसा आत्मा असंख्यप्रदेशी चौड़ा है। समझ में आया? यह उसका क्षेत्र है। दूसरे आत्मा को (अपना) क्षेत्र माने और दूसरे में हूँ, (ऐसा माने

वह) मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। जैन नहीं। वह जैन को समझता नहीं। समझ में आया?

और **वस्तु के परिणमन को काल....**

**मुमुक्षु :** अभी सोनगढ़ में हैं या नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सोनगढ़, सोनगढ़ में क्या है? सोनगढ़ का क्षेत्र सोनगढ़ में रहा। अपना क्षेत्र यहाँ रहा। इसलिए तो बताना है यहाँ। अपने द्रव्य में अपना आत्मा है। परद्रव्य रजकण और पर आत्मा से है नहीं। आहाहा! अपने असंख्य प्रदेश क्षेत्र से है, परक्षेत्र से नहीं। अपने परिणमन से है, देखो! **काल चाल...** काल का चाल अर्थात् परिणमना। वर्तमान अवस्था में परिणमन जो दशा होती है अनन्त गुण की, वह अपना काल।

**मुमुक्षु :** स्वभाव हो या विभाव....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** .....वह अपना काल। अभी पर से भिन्न बताना है इतना। विभाव हो या स्वभाव हो। अपना पर्यायरूप परिणमन अपने में स्वकाल में है, उसे ही काल कहने में आता है। समझ में आया? **काल चाल....**

**स्वभाव सहज मूल सकति बखानियै।** लो। **द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव ये चारों वस्तु ही में**—अपनी चीज़ में चार भाव। **अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानियै....** इस चार से अपनी वस्तु अपने से है, ऐसा जानिये। **परके चतुष्क वस्तु नासति नियत अंग....** पर की वस्तु से अपना (कुछ) नहीं है, ऐसी निश्चय बात है। पर से निश्चय ही है कि अपने में पर से (कुछ नहीं)। शरीर से नहीं, वाणी से नहीं, कर्म से नहीं। आहाहा! समझ में आया? **ताकौ भेद दर्व-परजाइ मध्य जानियै।** द्रव्य और पर्याय में चारों भाग समा जाते हैं। आहाहा! द्रव्य तो वस्तु अपनी चीज़ पर से भिन्न, शरीर-वाणी-कर्म-पुत्र-पैसा-लक्ष्मी से भिन्न। सत्ताभूमि अपनी सत्ता क्षेत्र असंख्य प्रदेशी अपना क्षेत्र है। अपना परिणमन, वह अपना काल है।

**स्वभाव सहज मूल सकति।** भाव क्या? आत्मा का त्रिकाली ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि गुण, यह अपना भाव। समझ में आया? रात्रि को पूछा था न यहाँ? सोने का भाव

क्या है ? स्वर्ण—सोने का भाव क्या है ? रात्रि को पूछा था। तो लोगों ने सोने का दाम बताया। सोने का भाव क्या है, मैं पूछता हूँ। सोना का भाव सौ-दो सौ (रुपये), यह सोने का भाव है ? यह तो तुम्हारी कल्पना का भाव है। सोने का भाव तो सोने में रहे हुए रंग-गन्ध-रस-स्पर्श, वह सोने के भाव है। पर्याय नहीं, भाव-गुण। त्रिकाल गुण, वह अपना भाव है। आहाहा! सोने का भाव क्या ? कि सोना चीज़ है वह द्रव्य, उसकी लम्बाई-चौड़ाई, वह उसका क्षेत्र, उसकी वर्तमान अवस्था, वह उसका काल और उसके रंग-गन्ध-रस-स्पर्श गुण, वह उसका भाव। तत्त्व की खबर नहीं होती। ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। वीतरागमार्ग क्या है, परमेश्वर क्या कहते हैं, उसकी खबर नहीं। बिना भान के करो प्रतिक्रमण और करो सामायिक और करो यात्रा। पर्याय भाव, यह क्या है, अन्दर त्रिकाली गुण क्या है और त्रिकाली द्रव्य क्या है, अपना क्षेत्र क्या है, (इसकी) अज्ञानी को खबर नहीं।

शक्ति, लो। **स्वभाव सहज मूल सकति....** भगवान आत्मा... ज्ञान—जानना-देखना। स्वभाव हों त्रिकाली, पर्याय नहीं। वस्तु, क्षेत्र, काल और भाव। अपनी त्रिकाली शक्ति को यहाँ भगवान भाव कहते हैं। वर्तमान पर्याय नहीं। पर्याय तो काल में गयी। समझ में आया ? **स्वभाव सहज मूल सकति....** भगवान आत्मा की त्रिकाल रहनेवाली ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि शक्ति, वह उसका भाव।

**मुमुक्षु :** द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तीन अविनाशी त्रिकाल। काल, वह वर्तमान परिणमन। द्रव्य अविनाशी त्रिकाल, क्षेत्र भी त्रिकाल अविनाशी, उसमें गुण है भाव, वह भी त्रिकाल अविनाशी। काल, वह परिणमन वर्तमान अवस्था है। चार में वस्तु समा जाती है। पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। हाँ, सम्बन्ध इतना कि पर से है नहीं। अपने से है और पर से नहीं है। वह तो यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा!

एक ही आत्मा हो और एक ही द्रव्य हो तो ऐसा हो नहीं सकता। समझ में आया ? श्रीमद् ने लिखा है न ? यह याद आया पहले उसमें। पहले याद आया। श्रीमद् ने एक पत्र लिखा था। वेदान्ती था वह त्रिपाठी। महिपतराम त्रिपाठी। श्रीमद् मिले थे

उनसे। वह वेदान्ती था। उसको लिखा था कि किसी भी चीज़ की सिद्धि, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव बिना वस्तु की सिद्धि नहीं होती। तो आत्मा का भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव क्या है, यह विचारना पड़ेगा। (वेदान्त) एक ही माने न आत्मा? आत्मा क्या हुआ उसमें? उसका काल क्या? उसका भाव क्या? उसका क्षेत्र क्या? यह चार भेद तो है नहीं उसमें। समझ में आया?

**याही भांति पर विकलप बुद्धि कलपना....** लो। क्या कहते हैं? कि अपना आत्मा वस्तु से एक, क्षेत्र से अपनी भूमिका असंख्य प्रदेश, भाव से त्रिकाली शक्ति, काल से (परिणमन)। यह अपने से है, **पर विकलप बुद्धि कलपना....** पर से नहीं, यह भी एक कल्पना। व्यवहार हुआ न! स्व से है, पर से नहीं। **विवहारद्रिष्टि अंस भेद परवांनियै....** वस्तु (चार) नहीं, चार से एकरूप चीज़ है। परन्तु पर से भिन्न दिखाने को (भेद किये)। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अपने में हैं, पर से नहीं। अपनी परिणति पर्याय है, वह कर्म से नहीं, ऐसा कहते हैं। विभावरूप अवस्था हो या स्वभावरूप हो, अपने से है। कर्म से नहीं। आहाहा! यहाँ समय भी पूरा हो गया। यह व्यवहार चार भेद समझना... यह अपने चार भेद व्यवहार हैं। पर से नहीं है, वह भी व्यवहार है। एकरूप त्रिकाली द्रव्य को देखना, वह निश्चय है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १५२, भाद्र शुक्ल १३, शुक्रवार, दिनांक ०३-०९-१९७१**
**स्याद्वाद द्वार, पद १० से १२**

विशेष है न विशेष। समयसार नाटक, स्याद्वाद द्वार। विशेष। प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है और पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में नहीं, यह सिद्ध करना है। चाहे तो आत्मा हो या परमाणु हो, अपनी सत्ता में वह है। पर की सत्ता से वह नहीं। ऐसा उसका अस्तित्व-नास्तित्व (धर्म है)। सप्तभंगी लेंगे बाद में। यह वस्तुदर्शन का सार है।

कहते हैं, **गुण-पर्यायों के समूह को वस्तु कहते हैं।** आत्मा या परमाणु, कोई भी चीज़ हो... यहाँ आत्मा की बात चलती है। आत्मा वस्तु है। कैसी? कि अनन्त भाव—शक्ति और पर्याय का पिण्ड यह वस्तु है। अपना गुण ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि अनन्त गुण और उसकी वर्तमान पर्याय-अवस्था—दो का पिण्ड वह द्रव्य है। समझ में आया? और पदार्थ आकाश या..... उसका कुछ नहीं। **जिन प्रदेशों में पदार्थ रहता है, उस सत्ताभूमि को क्षेत्र कहते हैं।** आकाश में रहे, यह उसका क्षेत्र है नहीं। यह उसका कुछ नहीं। आत्मा जिन प्रदेशों में.... असंख्य प्रदेश हैं। एक परमाणु जितनी जगह रोके, उसे प्रदेश कहते हैं। ऐसा आत्मा असंख्य प्रदेशी निजभूमि—निजक्षेत्र—अपना क्षेत्र—अपनी सत्ता इतने में है। निज प्रदेशों में पदार्थ रहता है। **जिन प्रदेशों में पदार्थ रहता है, उस सत्ताभूमि को क्षेत्र कहते हैं।** ....निज अर्थात् जिन (प्रदेशों में) अथवा निज अर्थात् अपने प्रदेशों में पदार्थ रहता है। परमाणु में या पर के आश्रय से रहता नहीं। क्षेत्र में रहता नहीं, बँगले में रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपने **जिन प्रदेशों में पदार्थ रहता है, उस सत्ताभूमि को क्षेत्र कहते हैं।** भेद से बात है, हों! वरना तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, यह भी भेद है, व्यवहार है परन्तु पर से भिन्न बताने को ऐसा व्यवहार आता है। क्या कहा? सेठी! द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अपने अपने में है, ऐसे चार भेद करना, यह भी व्यवहार है। समझ में आया? आहाहा!

**पदार्थ के परिणमन अर्थात् पर्याय से पर्यायांतर होने को काल कहते हैं।** आत्मा की एक अवस्था वर्तमान है, उससे दूसरी अवस्था होना अन्दर में, उसका नाम स्वकाल

कहा जाता है। **और पदार्थ के निज स्वभाव को भाव कहते हैं।** अपना निज भाव कायम असली स्वभाव—ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त शक्तियाँ, वह निजभाव, उस निजस्वभाव को भाव कहते हैं। **यही द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पदार्थ का चतुष्क अथवा चतुष्टय कहलाता है।** समझ में आया? **यह पदार्थ का चतुष्टय सदा पदार्थ में ही रहता है।** पर में रहता नहीं। चाहे तो नजदीक में कर्म हो, शरीर हो, तेजसशरीर हो, परन्तु आत्मा तो अपने क्षेत्र में, अपने काल और अपने भाव में रहता है, पर में रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? उससे विशेष बात तो उसमें आयी न, कलशटीका में। छठवें कलश में। इससे भी सूक्ष्म लिया है। देवीलालजी! क्या कहा? उसमें तो यह लिया है। है न! लो, छठवाँ श्लोक है। (धारावाही कलश २५२)।

स्वद्रव्य अर्थात्? भगवान आत्मा स्वद्रव्य किसे कहते हैं कि निर्विकल्पमात्र वस्तु और अभेद वस्तु एकरूप अभेद, वह 'स्वद्रव्य'। आहा! क्या गजब चीज़! 'स्वक्षेत्र' अर्थात् आधारक आधारमात्र वस्तु का प्रदेश। अपना आधार असंख्यप्रदेशी उसका क्षेत्र है। 'स्वकाल' अर्थात् वस्तुमात्र की मूल अवस्था—त्रिकाल। त्रिकाल वस्तु वह अपना स्वकाल है, वह मूलदशा और 'स्वभाव' वस्तु की मूल की स्वशक्ति। नहीं समझे? अच्छा। स्वभाव अर्थात् अपना ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि निजशक्ति, यह निजस्वभाव। कहो, समझ में आया? यह तो साधारण अर्थ हुआ। आगे आ गया, वही बात है। क्या कहा? देखो! निर्विकल्प वस्तुमात्र, वह वस्तु। अपनी चीज़ अभेद, पर की कोई अपेक्षा नहीं। ऐसे अपने में एक ही वस्तु, वह स्व निर्विकल्प, उसे स्वद्रव्य कहते हैं। अपना आधारमात्र वस्तु, उसे स्वक्षेत्र कहते हैं। अपनी त्रिकाली वस्तु, उसे स्वकाल कहते हैं। त्रिकाली को स्वकाल कहते हैं, पूर्ण चीज़ को। हाँ, यह नहीं समझ में आया। यह तो पता है न। आगे लेंगे अभी थोड़ा। त्रिकाली स्वकाल और उसकी स्व होनेरूप स्थिति त्रिकाल, वह उसका स्वकाल है। आहाहा! स्वभाव—वस्तु की मूल की स्वशक्ति। अब दूसरी।

परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेदकल्पना। अपनी एकरूप चीज़ है, उसमें भेदकल्पना करना कि यह गुण है और यह द्रव्य है—ऐसी भेदकल्पना, वह परद्रव्य है। देवीलालजी! आहाहा! समझ में आया? आदि चार भेद करना, यह व्यवहार है। द्रव्य एकरूप चीज़

है, उसमें भेद करके विचार करना कि यह गुण है, यह द्रव्य है, वही परद्रव्य है। जेठाभाई! आहाहा! और परक्षेत्र अर्थात् वस्तु का आधार प्रदेश निर्विकल्प वस्तु कही, वही (वस्तु में) प्रदेश सविकल्प भेदकल्पना परप्रदेश बुद्धिगोचर रूप से कहने में आता है। असंख्य प्रदेश—एकरूप त्रिकाल, वह स्वक्षेत्र और क्षेत्र का भेद विचारना कि असंख्य हैं और इतने हैं और यह है—वही स्वद्रव्य से भिन्न परद्रव्य का क्षेत्र कहने में आता है। सूक्ष्म है। यह कलशटीका है तुम्हारे वहाँ? देखी है न कलशटीका? यहाँ प्रकाशित हुई है। यह तो गुजराती है। परन्तु हिन्दी प्रकाशित हुई थी। तुम्हारे वहाँ प्रकाशित हुई है या नहीं हिन्दी में? समझ में आया?

भगवान आत्मा एकरूप चीज़ है, यह स्वद्रव्य और उसमें गुणभेद विचारना विकल्प, वह परद्रव्य। और अपना असंख्य प्रदेशरूप एकक्षेत्र, यह स्वक्षेत्र और प्रदेशभेद विचारना यह... यह... यह... उसका नाम परक्षेत्र। स्वद्रव्य में परद्रव्य की नास्ति। स्वक्षेत्र में इस परक्षेत्र की नास्ति। दूसरे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की तो नास्ति है ही। भेद की नास्ति (क्योंकि) वह परद्रव्य है। समझ में आया? मार्ग बापू! यह चार भेद करना कि परद्रव्य-परक्षेत्र उसमें नहीं और अपने स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अभेदरूप हैं, यह भेद भी व्यवहार है। चार हुए न! निश्चय से देखो तो, जो द्रव्य है, उसका त्रिकाल वही क्षेत्र है, वही काल है और वही भाव है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म भाव है। अभी तो यह चले या नहीं? बहुत वर्ष हो गये, ३७ वर्ष से चलता है। समझ में आया? आहा!

ऐसी अभेद चीज़ पर दृष्टि देना, तो उसमें तो चार भेद—मैं चाररूप हूँ—ऐसा है भी नहीं। पररूप तो नहीं है, परन्तु अपने में गुणभेद, क्षेत्रभेद विचारना, वही परद्रव्य, परक्षेत्र है। वही उसमें नहीं। और दो प्रकार विचारना कि मैं स्वद्रव्यरूप से ऐसा हूँ और स्वक्षेत्ररूप से ऐसा हूँ और स्व का भेद... यह भी भेद है। क्या कहा, समझ में आया?

**मुमुक्षु :** वेदान्त में तो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वेदान्त में तो है ही नहीं। वेदान्त में ऐसा पर और पर की नास्ति ऐसा है क्या? चार (भेद) हैं और अभेद में चार भेद नहीं, ऐसा है कहाँ? यह तो अपने एक-एक आत्मा की बात है, सबकी बात नहीं। आहाहा! क्या हो? ऐसा विचार भी नहीं उसे।

महाप्रभु एकस्वरूप भगवान यहाँ विराजता है स्वयं। द्रव्य अर्थात् अभेदरूप वस्तु, यह स्वद्रव्य और असंख्यप्रदेशी एकरूप क्षेत्र, यह स्वक्षेत्र और त्रिकाली वस्तु एकरूप वस्तु, यह स्वकाल। आहाहा! समझ में आया? परकाल अर्थात् द्रव्य की मूल की निर्विकल्प दशा अर्थात् वस्तु त्रिकाल, वही अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना से परकाल कहा जाता है। त्रिकाली वस्तु, यह स्वकाल है और एक समय की पर्याय का कालभेद करना, वही परकाल है। पण्डितजी! अपनी एक समय की पर्याय, वह स्वकाल स्थूलरूप और पर जो द्रव्य है, उसकी अवस्था का उसमें अभाव है। परन्तु यहाँ तो आगे जाकर त्रिकाली वस्तु का स्वरूप, यह स्वकाल और एक समय की पर्याय की कल्पना करना— भेद विचारना, यह परकाल। अरे, गजब बात भाई! वीतरागदर्शन सूक्ष्म है। और यह बात अन्यत्र कहीं है नहीं। है ही नहीं। वेदान्त क्या, किसी मत में कहीं है नहीं। समझ में आया? अद्वैत हो गया न! परन्तु अद्वैत कैसे हो गया? अपनी एकरूप चीज़ है, उस अपेक्षा से अद्वैत हुआ। सब मिलकर एक है, ऐसा अद्वैत है नहीं। समझ में आया? ऐ सेठ! सब अन्दर विचारना।

वहाँ कोई है न क्या? छिन्दवाड़ा... उसमें लिखा है न तुम्हारे बड़े चौदह पुस्तक में। चौदह पुस्तक में लिखा है कि दादू, नानक, कबीर और लौंकासा अध्यात्मवाणी कहनेवाले हो गये। ऐसे गप्प लगायी है। ऐ सेठ! समाजभूषण। तुम्हारा नाम है, तुम्हीं ने छपवाया है। क्या?

**मुमुक्षु :** हमने नहीं लिखा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु पैसा दिया है न! तुमने देखे बिना पैसा दिया? हुण्डी देते हैं तो देखे बिना देते हैं? ऐसे के ऐसे कितनी हुण्डी दे उसे? लौंकासा अध्यात्मवाणी का करनेवाला, उसने तारणस्वामी को मिलाया। आहाहा! पूछते थे तो यह देखा थोड़ा। तीन अभी चिह्न किया है। अध्यात्म की वाणी करनेवाले... लौंकासा को अध्यात्म क्या है, उस वस्तु का पता भी नहीं। समझ में आया? वह तो गृहीत मिथ्यादृष्टि था। उसके साथ तारणस्वामी को मिलाया। यह मूल ऐसे के ऐसे खबर बिना के हो न सेठिया, इसलिए जो हो वह लगाओ। सेठ!

**मुमुक्षु :** लिखनेवाले ने अपनी....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु तुमने क्यों विचार नहीं किया? ऐसा पास क्यों किया तुमने?

**मुमुक्षु :** अतिचार आने पर....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बहुत लिखा तो दादू का लिखा। दादू, नानक और कबीर। अरेरे! कहाँ तुम कहाँ... ? तुमने दी हैं, इनको चौदह पुस्तकें। ऐसा उसमें डाला है। आहाहा! तारणस्वामी तो पक्का जैन था। समझ में आया? बहुत लिखा है उसमें जैन... जैन... जैन... जैन... जैन... जैन। यहाँ तो कहते हैं कि यह चीज़ परमेश्वर के सिवाय किसी दूसरे में है नहीं। दूसरे कहे कहाँ से अध्यात्मवाणी? पाटनीजी! यहाँ तो ऐसा है, सेठ! यहाँ कोई मक्खन है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, ओहोहो! यह गृहस्थ लिखते हैं, हों! राजमलजी (लिखते हैं)। राजमलजी थे न, वे भी एक ही शैली—भाषा एक थी। गृहस्थ हो तो क्या है? आत्मा कहाँ गृहस्थ है और आत्मा कहाँ मुनि है? मुनि और गृहस्थ की पर्याय तो व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? भगवान अभेद चिदानन्द प्रभु दृष्टि का विषय तो अकेला अभेद है। उसमें स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव का भी भेद नहीं। आहाहा! यहाँ तो ज्ञान कराते हैं। प्रसन्नभाई! आहाहा! एक द्रव्य की मूल वस्तु त्रिकाल, यह स्वकाल और अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना, परकाल। त्रिकाल वस्तु में एकरूप वस्तु में एक समय की पर्याय का भेद विचारना, वही परकाल है। आहाहा! शोभालालजी! कठिन बात है। सूक्ष्म है यहाँ। आहाहा!

यह तो सर्वज्ञ का पंथ है। किसी की कल्पना है, ऐसा नहीं है। समझने में गम्भीरता, सूक्ष्म बुद्धि होनी चाहिए। है चीज़ ऐसी उसे प्रतीति आनी चाहिए। खबर नहीं क्या है, तो जाने बिना प्रतीति कैसे आये? लो, राजमलजी! अभी पूछते थे। श्रद्धा प्रधान... परन्तु श्रद्धा को जाने कौन? भारी किया! दर्शन प्रधान। खेवटिया समकित है। चारों ओर से लेना है। मुख्य धर्म से लेना है न। '**भेदविज्ञानतः सिद्धा**'... जितने अभी तक सिद्ध (हुए) हैं, वे पर से भेद करके—भेदज्ञान से सिद्ध (हुए) हैं। समझ में आया? परन्तु सम्यग्दर्शन है, उसका ख्याल किसे है? ज्ञान को ख्याल है। सम्यग्दर्शन निर्विकल्प चीज़ है, अस्ति है इतना। अपनी खबर नहीं और पर की खबर नहीं सम्यग्दर्शन को। मूलचन्दभाई! आहाहा! बापू! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई!

यहाँ कहते हैं, परकाल। आहाहा! वस्तु एकरूप त्रिकाल अर्थात् स्वकाल, अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना करना, वह परकाल। यह वस्तु त्रिकाल, वह स्वकाल और एक समय की पर्याय का विचार करना, वह परकाल। गजब बात है! परभाव अर्थात् द्रव्य की सहज शक्ति का पर्यायरूप अनेक अंश-भेद द्वारा भेदकल्पना। आहाहा! अपना स्वभाव तो एकरूप त्रिकालभाव वह है। परन्तु शक्ति की भेदरूप अंश द्वारा कल्पना कि यह ज्ञान है और यह दर्शन है, ऐसी भेदरूप कल्पना, वह परभाव है। ऐसा परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल-परभाव अपने स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभाव में है नहीं। आहाहा! एक समय की पर्याय त्रिकाली द्रव्य में है ही नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? यह लिखा है। आहाहा! पशु, ऐसा.... कहते हैं। 'नस्यति'। ऐसे चार अंश स्वरूप है और पररूप नहीं। उसकी खबर नहीं। पशु—पश्यति बध्यति इति पशु। आवरण से और विकार से बन्ध करता है, ऐसा पशु तिर्यंच जैसा, उसे यह उसका आत्मा है, ऐसी खबर है नहीं। यहाँ उसे पशु कहा है।

पशु समझते हैं? '**पश्यति बध्यति ( कर्मे ) इति पशुः**' ऐसा लिखा है संस्कृत टीका में। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** कलश टीका में किस जगह है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किस जगह है। अच्छा! हमारे सेठी ठीक निकले। यह अध्यात्म तरंगिणी है न, उसमें है। न्याय... पहले है न पहले। छह द्रव्य। पशु, वह अज्ञानी। '**पशोः**' अध्यात्म तरंगिणी, २०४ पृष्ठ। '**पशोः**' '**पश्यति बध्यति कर्मे इति पशुः**' २०४। अध्यात्म तरंगिणी नामक पुस्तक है। तुम्हारे पास है? अध्यात्म तरंगिणी। वह कलश की टीका है। अध्यात्म। एक कलश की टीका यह है और एक कलश की टीका वह है। '**पशोः पश्यति बध्यति कर्मे इति पशुः**' आहाहा! कर्म से बन्धन होता ही नहीं, ऐसा ज्ञानी कहते हैं। यह मिथ्यात्व और समकित दो की बात है। जिसे अपना चैतन्य अभेदरूप है, भेदरूप नहीं—ऐसी अनेकान्त दृष्टि के तत्त्व की खबर नहीं, एकान्त मानते हैं कि भेदरूप भी मैं हूँ और अभेदरूप भी मैं हूँ, अपने में हूँ और पर से भी मैं हूँ—ऐसा माननेवाला, आहाहा! पशु है। वह मिथ्यात्व से बँधता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह यहाँ अपने आया।

**यह पदार्थ का चतुष्टय सदा पदार्थ ही में रहता है, उससे पृथक् नहीं होता।** अपने चलता ( विषय )। समझ में आया? यह तो शान्ति का मार्ग, धीरज का मार्ग है। आहाहा! अपना भगवान... एक, हों! दूसरे आत्मा और दूसरे परमेश्वर, उनके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। अपने आत्मा की पर्याय में तो अनन्त सिद्ध और अरिहन्त भी अपने में नहीं। वे तो उनमें हैं। आहाहा! अपने में अपना स्वरूप है और पर के स्वरूप से आत्मा है ही नहीं। आहाहा! यह तो स्थूल अस्ति-नास्ति कहा। सूक्ष्म अस्ति-नास्ति का भेद तो कहा कलशटीका में। समझ में आया? अपनी वस्तु गुण-पर्याय का पिण्ड जो द्रव्य, वह अस्ति, स्वद्रव्य और गुण-पर्याय के भेद की कल्पना करना, वह परद्रव्य। उस परद्रव्य की स्वद्रव्य में नास्ति। भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी असंख्य एकरूप प्रदेश। पंचास्तिकाय में आता है न! एकरूप असंख्य प्रदेशी, यह स्वक्षेत्र और क्षेत्र का भेद विचारना कि यह क्षेत्र और यह क्षेत्र और यह क्षेत्र—भिन्न-भिन्न अन्दर, वह परक्षेत्र। परक्षेत्र की स्वक्षेत्र में नास्ति और स्व त्रिकाली वस्तु में एक समय की पर्याय के अवस्थान्तर की नास्ति। और त्रिकाली शक्तियाँ एकरूप भाव है, उसमें गुणभेद की कल्पना करना, वह परभाव। उसकी भी नास्ति। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या कहते हैं? समझ में नहीं आया।

**मुमुक्षु :** अभेद लक्ष्य में आया तो चारों की नास्ति।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चारों की नास्ति। कहा न! उन चारों की नास्ति तो है, परन्तु उसके अपने चार भेद की अभेद में नास्ति। क्या कहा? अपनी चीज़ में परद्रव्य की तो नास्ति, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की तो नास्ति। अपने स्वद्रव्य की अस्ति। उसमें आगे। स्वद्रव्य में विकल्प करना कि यह मैं गुणरूप और पर्यायरूप, वह परद्रव्य, उसकी भी नास्ति। परक्षेत्र की नास्ति। अपने में भेद करना। परकाल की नास्ति, परभाव की ( नास्ति )। अब यह चार प्रकार जो हैं अपने, वह भी एकरूप में चार की नास्ति। आहाहा! एक-एक में चार प्रकार की नास्ति। अपना स्वद्रव्य, अपना स्वक्षेत्र, अपना स्वकाल, अपना स्वभाव—ऐसे चार भेद। आहाहा! समझ में आया? यह तो अजर प्याला है। वीतरागमार्ग....

**मुमुक्षु :** यह समझकर क्या करना अन्दर ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह समझकर अन्तर में जाना, यह करना, ऐसा कहते हैं। जहाँ अभेदपना है, वहाँ दृष्टि लगाना, उसके लिये यह कहने में आता है। समझ में आया ? उससे पृथक् नहीं होता, लो।

दृष्टान्त दिया है। **जैसे घट में स्पर्श रस वा रुक्ष कठोर रक्त आदि गुणपर्यायों का समुदाय द्रव्य....** घड़े का दृष्टान्त दिया। घड़ा... घड़ा... घड़ा क्या ? घट... घट। वह क्या चीज़ है ? स्पर्श, रस, रुक्ष, कठोर, लाल आदि गुणपर्यायों का समुदाय वह घट, वह द्रव्य। **जिन आकाश के प्रदेशों में घट स्थित....** उसका कुछ नहीं। घट का प्रदेश उसका क्षेत्र। घट का प्रदेश, जितने में घट रहे वह प्रदेश, वह उसका स्वक्षेत्र। समझ में आया ? **घट के गुण, पर्यायों का परिवर्तन उसका काल है।** घट का बदलना—अवस्थारूप बदलना—पर्याय, वह उसका काल। उसके काल में वह बदलती है। अपनी पर्याय से बदलता है। अपनी पर्याय से बदलता है घट। समझ में आया ? आहाहा! महासूक्ष्म बात है। इसका काल जो पर्याय है एक समय की, उसके काल से बदलती है। काललब्धि। आहाहा! समझ में आया ? **घट की जलधारणा शक्ति उसका भाव....** घड़ा पानी धारण करे, वह स्वयं की शक्ति। जल धारण करे, उससे नहीं, शक्ति अपनी, वह भाव। यह तो समझना है न!

**इसी प्रकार पट भी एक पदार्थ है।** वस्त्र... वस्त्र लो। समझ में आया ? यह वस्त्र देखो, टुकड़ा है न! **घट के समान पट में भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव हैं।** यह वस्त्र है। अपने गुण जो हैं और उसकी अवस्था का पिण्ड, वह पट का द्रव्य। और पट जितने में रहा है, वह पट का क्षेत्र और पट की अवस्था है, उसकी वह पट का स्वकाल और पट में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है, वह पट का भाव। अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है पट। जहाँ रहा है, उस (आकाश के) क्षेत्र से उसका क्षेत्र नहीं। समझ में आया ? देखो! यह अँगुली में ऐस वस्त्र रहा, ऐसा देखने में आता है या नहीं ? कहे, नहीं। यह तो अपने क्षेत्र में वस्त्र रहा है। अँगुली के क्षेत्र में वस्त्र है ही नहीं। इसी प्रकार इस शरीर के क्षेत्र में आत्मा का क्षेत्र है ही नहीं। आहाहा! कठिन बात है। अपना क्षेत्र जो असंख्य प्रदेश है, उसमें शरीर के क्षेत्र के—अनन्त परमाणु के प्रदेश-क्षेत्र है ही नहीं। आहाहा! **इसलिए**

**घट अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्तिरूप है।** पट और घट। **पट के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नास्तिरूप है।** बराबर है ? **इसी प्रकार पट का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पट में है। इसलिए पट अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्तिरूप है। और पट का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव घट में नहीं। इसलिए पट घट के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नास्तिरूप है।** आहाहा! समझ में आया ?

निगोद में जो एक क्षेत्र में अनन्त आत्मा रहते हैं। यह क्षेत्र जो आकाश का है, वह क्षेत्र उसका नहीं। आहाहा! एक अंगुल के असंख्यवें भाग में एक असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त आत्मायें। तो एक-एक आत्मा अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है, दूसरे आत्मा के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है नहीं। अरे, भारी सूक्ष्म! इतने क्षेत्र में यहाँ अनन्त जीव हैं। तो एक-एक जीव अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में हैं। दूसरे जीव के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है नहीं। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भेद करना, वह भी व्यवहार है, वह तो कहा पहले। वह तो पहले कहा। समझ में आया ? यह तो यहाँ एक-एक आत्मा प्रत्येक आत्मा... वहाँ अनन्त सिद्ध हैं लो, अनन्त सिद्ध। कहते हैं या नहीं ? सिद्ध है, वह ज्योति में ज्योति मिलायी। कहते हैं या नहीं ? संसार में भिन्न रहना और मुक्ति में भी भिन्न रहना ? एकमेक न हो ? वहाँ चबूतरा अलग ? और रोटला भी अलग ?

**मुमुक्षु :** रोटला....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** रोटला अर्थात् अनुभव। उसकी अनुभव की पर्याय भी अलग। रोटला का अर्थ यह। वहाँ रोटी कहाँ है ? वहाँ भी (एक) सिद्ध की पर्याय का अनुभव दूसरे सिद्ध की पर्याय से भिन्न है। रोटला भिन्न है, क्षेत्र भिन्न है। ऐई! बहुत, जैन में निश्चय की बात आवे न बस, सिद्ध में सिद्ध मिल गये, लो। एक सिद्ध हुए, वहाँ अनन्त सिद्ध एक में अनेक मिल गये। कहाँ से हुआ ? सुन तो सही। आकाश के एक क्षेत्र में अनन्त सिद्ध होने पर भी एक-एक सिद्ध का क्षेत्र अपने में है। आकाश के क्षेत्र में सिद्ध है ही नहीं और दूसरे अनन्त सिद्ध के क्षेत्र हैं, उसमें वह एक सिद्ध है ही नहीं। समझ

में आया? तत्त्व का ज्ञान, द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है, उसकी खबर नहीं तो मैं क्या चीज़ हूँ, क्या चीज़ पर है और कहाँ से मुझे लक्ष्य हटाना और कहाँ मेरा लक्ष्य लगाना— इसकी तो कुछ खबर नहीं। समझ में आया? मुझमें नहीं है, उसका लक्ष्य छोड़ना है। मुझमें है, उसमें लक्ष्य लगाना है। आहाहा! समझ में आया? अब उसकी सप्तभंगी। **स्याद्वाद के सप्त भंग।** ज्यादा स्पष्ट करते हैं।

★ ★ ★

## काव्य - ११

**स्याद्वाद के सप्त भंग** (दोहा)

**है नांही नांही सु है, है है नांही नांहि।**
**यह सरवंगी नय धनी, सब मानै सबमांहि।।११।।**

**शब्दार्थ:-है=अस्ति। नांही=नास्ति। है नांही=अस्ति-नास्ति। नांही सु है=अवक्तव्य।**

**अर्थ:-अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति, अवक्तव्य, अस्ति-अवक्तव्य, नास्ति-अवक्तव्य और अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य। ऐसे सात भंग होते हैं, सो इन्हें सर्वांग नय का स्वामी स्याद्वाद सर्व वस्तु में मानता है।**

**विशेष:-स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव इस अपने चतुष्टय की अपेक्षा तो द्रव्य अस्तिस्वरूप है अर्थात् आपसा है। परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव, इस परचतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य नास्तिस्वरूप है, अर्थात् परसदृश नहीं है। उपर्युक्त स्वचतुष्टय परचतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य क्रम से तीन काल में अपने भावोंकर अस्ति-नास्तिस्वरूप है अर्थात् आपसा है-परसदृश नहीं है। और स्वचतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य एक ही काल वचनगोचर नहीं है, इस कारण अवक्तव्य है अर्थात् कहने में नहीं आता। और वही स्वचतुष्टय की अपेक्षा और एक ही काल स्व-पर चतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य अस्तिस्वरूप है तथापि अवक्तव्य है। और वही द्रव्य परचतुष्टय की अपेक्षा और एक ही काल स्व-पर चतुष्टय की अपेक्षा नास्ति स्वरूप है, तथापि कहा जाता नहीं। और वही**

**द्रव्य स्वचतुष्टय की अपेक्षा और परचतुष्टय की अपेक्षा और एक ही बार स्व-परचतुष्टय की अपेक्षा अस्ति-नास्तिस्वरूप है, तथापि अवक्तव्य है। जैसे कि-एक ही पुरुष पुत्र की अपेक्षा पिता कहलाता है और वही पुरुष अपने पिता की अपेक्षा पुत्र कहलाता है, और वही पुरुष मामा की अपेक्षा भानजा कहलाता है, और भानजे की अपेक्षा मामा कहलाता है, स्त्री की अपेक्षा पति कहलाता है, बहिन की अपेक्षा भाई भी कहलाता है, तथा यही पुरुष अपने बैरी की अपेक्षा शत्रु कहलाता है, और इष्ट की अपेक्षा मित्र भी कहलाता है। इत्यादि अनेक नातों से एक ही पुरुष कथंचित् अनेक प्रकार कहा जाता है, उसी प्रकार एक द्रव्य सप्त भंग के द्वारा साधा जाता है। इन सप्त भंगों का विशेष स्वरूप सप्तभंगीतरंगिणी आदि अन्यान्य जैनशास्त्रों से समझना चाहिए।।११।।**

## काव्य-११ पर प्रवचन

**है नांही नांही सु है, है है नांही नांहि।**
**यह सरवंगी नय धनी, सब मानै सबमांहि॥११॥**

सात भंग हुए। अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति, अवक्तव्य, अस्ति-अवक्तव्य, नास्ति-अवक्तव्य, अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य—यह सात भंग। **सो इन्हें सर्वांग नय का स्वामी स्याद्वाद सर्व वस्तु में मानता है।** ऐसी सप्तभंगी एक-एक द्रव्य में ज्ञानी मानते, जानते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। सादी भाषा में लिखी है, बहुत सादी। सादी क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** सरल।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सरल... सरल। विशेष:- **स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल और स्वभाव, इस अपने चतुष्टय की अपेक्षा से तो ( द्रव्य ) अस्तिरूप है।** सत्तारूप है। अपने से तो अस्तिरूप है। **आपसा है।** आपसा है—अपना है—अपने से है। परद्रव्य... आत्मा एक और दूसरे आत्मा, एक आत्मा और दूसरा परमाणु, एक परमाणु और दूसरा परमाणु, एक सिद्ध और दूसरे सिद्ध। **परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल-परभाव इस परचतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य नास्तिस्वरूप है।** स्व की अपेक्षा से अस्ति है और पर से नास्ति। लो, यह भेदज्ञान। **अर्थात् परसदृश नहीं है।** ठीक। एक चीज़ पर जैसी नहीं है। एक चीज़ अपने

जैसी है अपने में। आहाहा! ऐसी चीज़ पर दृष्टि देना है। दृष्टि लगाना, वही सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो उड़ गया वाापस सवेरे का वह। गुरु और गुरु की वाणी से आत्मा है नहीं। समझ में आया? सुनने में विकल्प आता है, उस विकल्प से भी आत्मा है नहीं। आपसा है, प्रत्येक। परसदृश नहीं है। पर जैसा वह है ही नहीं। अरे! केवलज्ञानी की केवलज्ञान पर्याय और दूसरे का केवलज्ञान अपने सदृशरूप है, परसदृशरूप है ही नहीं। पर के केवलज्ञानरूप यह केवलज्ञान है नहीं। समझ में आया? तत्त्वज्ञान का अभ्यास समाज में घट गया, क्रियाकाण्ड पर चढ़ गये। बस ऐसी प्रतिमा धारण करो और ऐसे महाव्रत धारण करो और ऐसा करो, फैसा करो। यह प्रवाह हमारा है, ऐसा कहते हैं। यह हमारा आचार का प्रवाह है, (उसे) सोनगढ़ तोड़ डालता है, ऐसा (वे) कहते हैं। अरे भगवान! कौन तोड़े? कौन करे? यह व्रत लेना, नियम लेना, तप करना, वह प्रवाह है तो जैनधर्म टिकेगा। परन्तु यह जैनधर्म है ही नहीं। व्रत और तप के विकल्प जैनधर्म है ही नहीं। यह तो राग है। राग जैनधर्म है? आहाहा! बन्ध-भावबन्ध है। भावबन्ध, वह जैनतत्त्व है? आहाहा! बन्ध से रहित, भावबन्ध से और द्रव्यबन्ध से रहित ऐसी अपनी अभेद चीज़ का अनुभव करना, वह जैनदर्शन है। समझ में आया? आहाहा!

**उपर्युक्त स्वचतुष्टय परचतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य-क्रम से तीन काल में अपने भावोंकर अस्ति-नास्तिरूप है अर्थात् आपसा है—परसदृश नहीं है।** तीसरा भंग। अपने से है और पर से नहीं एक साथ। और स्वचतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य एक ही काल वचनगोचर नहीं। आ जाये वह अलग बात है, यह तो एक साथ अस्ति-नास्ति है, ऐसा। और अवक्तव्य है, चौथा बोल। **स्वचतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य एक ही काल वचनगोचर नहीं है, इस कारण अवक्तव्य है अर्थात् कहने में नहीं आता, और वही स्वचतुष्टय की अपेक्षा और एक ही काल स्व-परचतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य अस्तिस्वरूप है तथापि अवक्तव्य है।** अब चौथा अवक्तव्य आया। यह तो साधारण है। समझाया है। उसका कुछ नहीं। **और वही द्रव्य परचतुष्टय की अपेक्षा एक ही काल स्व-पर चतुष्टय की अपेक्षा नास्तिरूप है, तथापि कहा जाता नहीं।** वह नास्ति-अवक्तव्य है। आहाहा! **और वही द्रव्य स्वचतुष्टय की अपेक्षा और परचतुष्टय की अपेक्षा और एक ही बार स्वपरचतुष्टय**

**की अपेक्षा अस्ति-नास्तिस्वरूप है, तथापि अवक्तव्य है।** क्या कहा?

देखो, संक्षिप्त में। एक भगवान आत्मा अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है। यह अस्ति। परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं, वह नास्ति। एक ही साथ स्व-रूप है और पर-रूप नहीं, वह अस्ति-नास्ति—तीसरा। और चौथा। एक साथ अस्ति-नास्ति है, परन्तु कहने में एक साथ आता नहीं, इसलिए अवक्तव्य। और स्व-रूप है और पर-रूप नहीं, समझ में आया? ऐसा कहने में नहीं आ सकता तो अस्ति और अवक्तव्य। स्वरूप और पररूप एक साथ है तो कह नहीं सकते और अपने में है, इस अपेक्षा से अस्ति। स्वरूप और पररूप एक साथ कहने में नहीं आता, इसलिए अवक्तव्य। यह पाँचवाँ बोल अस्ति-अवक्तव्य। अब छठवाँ। पर से नहीं, उसकी प्रधानता करके नास्ति। एक साथ अस्ति-नास्ति कहने में नहीं आता, इसलिए नास्ति-अवक्तव्य। और सप्तम। एक साथ स्व-रूप है, पर-रूप नहीं, यह अस्ति-नास्ति, परन्तु एक साथ कहने में नहीं आता, यह स्वरूप अस्ति-नास्ति अवक्तव्य। यह सात भंग हुए। अरे, अरे! बहुत सादी भाषा में तो आया है। थोड़ा ध्यान रखना चाहिए।

दृष्टान्त दिया है। यह रात्रि में पूछे तो, सेठ! आयेगा या नहीं यह? .... बड़े सेठ हो न। दो बार तो बात हो गयी। अपनेरूप है, एक बात। एक भंग हुआ। पररूप नहीं, वह दूसरा भंग हुआ। दोनों एक साथ हैं—अस्ति भी है और नास्ति भी है, तो अस्ति-नास्ति, वह तीसरा भंग हुआ। और एक साथ कहने में नहीं आता, इसलिए चौथा अवक्तव्य भंग हुआ। अब ५, ६ और ७। अपनेरूप है—अस्ति, परन्तु एक साथ अस्ति-नास्ति कहने में नहीं आता, वह अस्ति-अवक्तव्य। छठवाँ, पररूप नहीं, वह नास्ति। परन्तु अस्ति-नास्ति एक साथ कहने में नहीं आता, इसलिए नास्ति अवक्तव्य। और सप्तम—अपने रूप है, पररूप नहीं—अस्ति-नास्ति। एक साथ कहने में नहीं आता, इसलिए अस्ति-नास्ति अवक्तव्य। देवीलालजी! यह तो साधारण बात है। इसमें कहीं कोई....

**मुमुक्षु :** याद रहे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पैसा कैसे याद रहता है? कितना है, यह बराबर खबर है। इतना पैसा हमारे पास है। लड़का काम करता है तुम्हारा। चार और दो आना... वह सब ख्याल है न! जिसकी रुचि है, उसकी खबर हुए बिना नहीं रहती। जिसकी जहाँ रुचि

है, वहाँ वीर्य—पुरुषार्थ गति किये बिना नहीं रहता। समझ में आया?

दृष्टान्त देते हैं। **एक ही पुरुष, पुत्र की अपेक्षा से पिता कहलाता है।** बराबर है? **वही पुरुष अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र कहलाता है और वही पुरुष मामा की अपेक्षा से भांजा कहलाता है और भांजा की अपेक्षा से मामा कहलाता है और स्त्री की अपेक्षा से पति कहलाता है। बहन की अपेक्षा भाई भी कहलाता है और वही पुरुष अपने वैरी की अपेक्षा से शत्रु कहलाता है। इष्ट की अपेक्षा से मित्र भी कहलाता है। इत्यादि अनेक नातों से एक ही पुरुष कथंचित् अनेक प्रकार कहा जाता है।**

यह तो भिन्न-भिन्न की बात की। बाकी तो उसे उतारना हो तो ऐसे उतारे कि एक पुरुष है तो अपने से है। बराबर है? वही पुरुष स्त्री-कुटुम्ब परिवार से नहीं। यह बराबर है? दो भंग हुए। वह अपने से है, पर से नहीं। एक साथ है तो अस्ति-नास्ति हुआ। और अपने से है और पर से नहीं, एक साथ कहने में नहीं आता। अवक्तव्य हुआ। और अपने से है और दोनों एकसाथ कहने में नहीं आते, इसलिए अस्ति-अवक्तव्य हुआ। और स्त्री-कुटुम्ब-परिवार से नहीं है—नास्ति। परन्तु अस्ति-नास्ति एक साथ में कहने में नहीं आता, वह नास्ति-अवक्तव्य। और सप्तम भंग। वह पुरुष अपने से है, पर से नहीं अस्ति-नास्ति। एकसाथ कहने में नहीं आता, इसलिए अस्ति-नास्ति अवक्तव्य। भाई! यह तो दूसरे प्रकार से उतारा। वह मामा और भानेज... उतारना तो ऐसे चाहिए। उसको समझाने के लिये स्थूल... स्थूल दृष्टान्त। जैसे, द्रव्य है, वैसे एक पुरुष है, ऐसा। उसके विविध प्रकार के धर्म हैं, इस अपेक्षा से उसे बताया है। **इन सप्तभंगों का विशेष स्वरूप 'सप्तभंगी तरंगिणी' आदि अन्य-अन्य भिन्न शास्त्रों से समझना चाहिए,....** लो।

**एकांतवादियों के चौदह नय-भेद...** यह वह मूल है न। यह चौदह। कलश तो आ गया है पहला। दूसरा **बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झित....** इसका अर्थ अब आता है। श्लोक पहले आ गया। हाँ, यह सप्तम बोल है न! अज्ञानी वास्तविक तत्त्व की चीज़ समझे बिना एकपक्षी घोरण से मानते हैं, ऐसे एकान्तियों के चौदह नय—भेद कहते हैं और उसका उत्तर भी देंगे।

★ ★ ★

काव्य - १२

## एकान्तवादियों के चौदह नय-भेद

(सवैया इकतीसा)

**ग्यानकौ कारन ज्ञेय आतमा त्रिलोकमय,**
**ज्ञेयसौं अनेक ग्यान मेल ज्ञेय छांही है।**
**जौलौं ज्ञेय तौलौं ग्यान सर्व दर्वमैं विग्यान,**
**ज्ञेय क्षेत्र मान ग्यान जीव वस्तु नांही है।।**
**देह नसै जीव नसै देह उपजत लसै,**
**आतमा अचेतना है सत्ता अंस मांही है।**
**जीव छिनभंगुर अग्यायक सहजरूपी[१] ग्यान,**
**ऐसी ऐसी एकान्त अवस्था मूढ पांही है।।१२।।**

**अर्थः-(१) ज्ञेय, (२) त्रैलोक्यमय, (३) अनेकज्ञान, (४) ज्ञेय का प्रतिबिम्ब, (५) ज्ञेय काल, (६) द्रव्यमय ज्ञान, (७) क्षेत्रयुक्त ज्ञान, (८) जीव नास्ति, (९) जीव विनाश, (१०) जीव उत्पाद, (११) आत्मा अचेतन, (१२) सत्ता अंश (१३) क्षणभंगुर और (१४) अज्ञायक। ऐसे चौदह नय हैं। सो जो कोई एक नय को ग्रहण करे और शेष को छोड़े, वह एकान्ती मिथ्यादृष्टि है।**

**(१) ज्ञेय — एक पक्ष यह है कि ज्ञान के लिये ज्ञेय कारण है।**

**(२) त्रैलोक्य प्रमाण — एक पक्ष यह है कि आत्मा तीन लोक के बराबर है।**

**(३) अनेकज्ञान — एक पक्ष यह है कि ज्ञेय में अनेकता होने से ज्ञेय भी अनेक हैं।**

**(४) ज्ञेय का प्रतिबिम्ब — एक पक्ष यह है कि ज्ञान में ज्ञेय प्रतिबिम्बित होते हैं।**

**(५) ज्ञेय काल — एक पक्ष यह है कि जब तक ज्ञेय है, तब तक ज्ञान है, ज्ञेय का नाश होने से ज्ञान का भी नाश है।**

**(६) द्रव्यमय ज्ञान — एक पक्ष यह है कि सब द्रव्य ब्रह्म से अभिन्न हैं, इससे सब पदार्थ ज्ञानरूप हैं।**

---

१. 'सुरूपी ज्ञान' ऐसा भी पाठ है।

**(७) क्षेत्रयुक्त ज्ञान—एक पक्ष यह है कि ज्ञेय के बराबर ज्ञान है, इससे बाहर नहीं है।**

**(८) जीव नास्ति—एक पक्ष यह है कि जीवपदार्थ का अस्तित्व ही नहीं है।**

**(९) जीव विनाश—एक पक्ष यह है कि देह का नाश होते ही जीव का नाश हो जाता है।**

**(१०) जीव उत्पाद—एक पक्ष यह है कि शरीर की उत्पत्ति होने पर जीव की उत्पत्ति होती है।**

**(११) आत्मा अचेतन—एक पक्ष यह है कि आत्मा अचेतन है, क्योंकि ज्ञान अचेतन है।**

**(१२) सत्ता अंश—एक पक्ष यह है कि आत्मा सत्ता का अंश है।**

**(१३) क्षणभंगुर—एक पक्ष यह है कि जीव का सदा परिणमन होता है, इससे क्षणभंगुर है।**

**(१४) अज्ञायक—एक पक्ष यह है कि ज्ञान में जानने की शक्ति नहीं है, इससे अज्ञायक है।।१२।।**

---

काव्य-१२ पर प्रवचन

---

**ग्यानकौ कारन ज्ञेय आतमा त्रिलोकमय,**
**ज्ञेयसौं अनेक ग्यान मेल ज्ञेय छांही है।**
**जौलौं ज्ञेय तौलौं ग्यान सर्व दर्वमैं विग्यान,**
**ज्ञेय क्षेत्र मान ग्यान जीव वस्तु नांही है॥**
**देह नसै जीव नसै देह उपजत लसै,**
**आतमा अचेतना है सत्ता अंस मांही है।**
**जीव छिनभंगुर अग्यायक सहजरूपी ग्यान,**
**ऐसी ऐसी एकान्त अवस्था मूढ पांही है॥१२॥**

ऐसे तो चौदह बोल ले लिये, भाई इसमें। सत्-असत्, एक-अनेक, स्व से है और पर से नहीं, नित्य-अनित्य। चौदह इस अपेक्षा से ले लिये हैं। यह है तो इसी

प्रकार, परन्तु इस शैली में जरा काल में देह की उत्पत्ति से उपजा और देह के नाश से नाश हो, ऐसा कहकर स्वकाल, ऐसा ले लिया। बाकी तो सब....

( १ ) **ज्ञेय...** पर से आत्मा है। ज्ञेय से ज्ञान है। अतत् जो है, उससे (ज्ञान) आत्मा है, ऐसा माननेवाला। तत्-अतत् की व्याख्या है। थोड़ा सूक्ष्म है। ज्ञेय ही है, आत्मा ज्ञान नहीं। आत्मा पर से है। ज्ञेय से ज्ञान है, ज्ञान से ज्ञान है नहीं। समझ में आया? घट-पट आदि जानने में आते है या नहीं? जानने में आता है ज्ञान, तो ज्ञेय है तो ज्ञान है, ऐसा। वह है तो यहाँ ज्ञान है? ऐसे अतत् को तत् मानते हैं। समझ में आया?

( २ ) **त्रैलोक्यमय**—लो। तत् है, उसको अतत् मानता है। भाई! अपने से है, उसको त्रिलोकमय मानता है। तो तत् को अतत् माना। और ज्ञेय से ज्ञान हुआ तो अतत् को तत् माना। समझ में आया? आहाहा! पण्डितजी! यह चौदह बोल ऐसे घटित होते हैं। ऐसे ही... कहा ऐसी शैली में शब्द में अन्तर किया। उसकी शंका लेना है न! एकान्तपक्षवाले की बात लेना है। तो तत्-अतत्, एक-अनेक, स्वचतुष्टय-परचतुष्टय में अस्ति-नास्ति यह चौदह शामिल करते हैं। चौदह में एक-एक पक्षवाला कैसे मानता है, ऐसी दलील की बात की। है तो वह की वह बात। आहाहा! समझ में आया?

( ३ ) **अनेकज्ञान**—एक को अनेक मानता है। भाई! बोल है न! ज्ञान अनेक है। एकान्त मानता है। एक को मानता नहीं, ऐसा। एक—अनेक उसमें आ गये।

( ४ ) **ज्ञेय का प्रतिबिम्ब।** कहो, समझे? ज्ञान में ज्ञेय का प्रतिबिम्ब है। ज्ञान ज्ञानरूप है, एकरूप है, ऐसा मानता नहीं।

( ५ ) **ज्ञेयकाल**—पर के काल से अपनी पर्याय है। ज्ञेय जब है तो अपना ज्ञान है और ज्ञेय पलट जाता है तो अपना ज्ञान पलट जाता है। ऐसा बोल लेकर... देखो। पाँच आये न!

( ६ ) **द्रव्यमयज्ञान**—परद्रव्यरूप है, आत्मा परद्रव्यरूप है।

( ७ ) **क्षेत्रयुत ज्ञान...** वह आत्मा—परक्षेत्रसहित आत्मा, ऐसा।

( ८ ) **जीवनास्ति**—पर काल रूप है। शरीर है तो यह है। ऐसे जीव की नास्ति

मानता है। परदेह है तो यह है। देह की काल की स्थिति है तो अपनी स्थिति है। समझ में आया? अरे, अरे!

(९) **जीव विनाश**—देह का नाश होने से जीव का भी नाश मानता है। वह भी पर में गया।

(१०) **जीव उत्पाद**—नया उत्पन्न होता है। समझ में आया?

(११) **आत्मा अचेतन**—आत्मा में भाव जो है, वह नहीं। चैतन्यभाव है, वह नहीं। पर का भाव है। पर के भाव से अपना भाव है, वह अचेतन है।

(१२) **सत्ता अंश**—एक ही सत्ता का एक अंश, यह सत्ता आत्मा की है। सब गुण को सत्ता मानना। अपनी सत्ता से है, ऐसा नहीं मानता। अपनी सर्वसत्ता से आत्मा है। किसी सत्ता के अंश से आत्मा है, ऐसा नहीं।

(१३) **क्षणभंगुर**—अनित्य ही है आत्मा। अन्तिम बोल आये। १३, १४। अरे!

(१४) **अज्ञायक....** लो। अज्ञायक है। ज्ञायक नहीं। कायम ज्ञान नहीं। कायम ज्ञायक नहीं, ऐसा। वह नित्य नहीं, ऐसे।

**ऐसे चौदह नय हैं। सो जो कोई एक नय को ग्रहण करे और शेष को छोड़े, वह एकान्ती मिथ्यादृष्टि है।** सूक्ष्म मिथ्यात्व है, भाई! समझ में आया? कलश तो आगे आयेगा। कलश का अर्थ तो यहाँ खुलेगा। प्रथम पक्ष का स्पष्टीकरण है न! **कोऊ मूढ़ कहै जैसैं प्रथम सवांरी भींति।** इस ओर चलता है। आहा! समझ में—लक्ष्य में ले तो सब समझ में आये, ऐसी चीज़ है। यह कोई बहुत गूढ है और व्याकरण, संस्कृत से जाने तो जानने में आता है—ऐसी कोई चीज़ नहीं। यह तो चीज़ कैसी है.... **(१) ज्ञेय—एक पक्ष यह है कि ज्ञान के लिए ज्ञेय कारण है।** यह पहला पद आया। अतत् से ज्ञान है, पर से ज्ञान है।

**(२) त्रैलोक्यप्रमाण—एक पक्ष यह है कि आत्मा तीन लोक के बराबर है।** पर प्रमाण है अकेला। पर से ही है, अपने से नहीं।

**(३) अनेकज्ञान—एक पक्ष यह है कि ज्ञेय में अनेकता होने से ज्ञान भी अनेक हैं।** ऐसा जरा यहाँ। वह ज्ञेय की भूल है। एक पक्ष कहे कि ज्ञेय में अनेकता होने से ज्ञान

भी अनेक है। ऐसा नहीं। समझ में आया ? पुस्तक है न सामने। थोड़ा अर्थ क्या होता है, उसका ख्याल करो।

**( ४ ) ज्ञेय का प्रतिबिम्ब—एक पक्ष यह है कि ज्ञान में ज्ञेय प्रतिबिम्बित होते हैं।** सब ज्ञेय का प्रतिबिम्ब ज्ञान में है। अकेला ज्ञान है, ऐसा मानता नहीं।

**( ५ ) ज्ञेयकाल—एक पक्ष यह है कि जब तक ज्ञेय है, तब तक ज्ञान है।** जब तक शरीर है, तब तक आत्मा है। आगे आयेगा। समझ में आया ? शरीर का लिया है उसमें। देह की उत्पत्ति, वह आत्मा की उत्पत्ति, ऐसा लिया। आगे आयेगा। आहाहा ! ज्ञेय—जब तक शरीर है तो आत्मा है। शरीर का नाश हो गया, समाप्त हो गया तो आत्मा कहाँ रहा ? ऐसी अज्ञानी की मान्यता है। आहाहा ! उसमें भी आता है न ! 'तन उपजत अपनी उपज मान' छहढाला में आता है। छहढाला है न छहढाला। ......गोदीका ......कल आया था न। चिन्ता है। शरीर की अवस्था हो, उसमें आत्मा को क्या ? आहाहा ! शरीर की अवस्था निरोग तो मैं निरोगी हूँ, मूढ़ है। शरीर की सरोग अवस्था तो मैं रोगी हो गया। पर के कारण से अपनी (अवस्था) हैं ? आहाहा ! मूढ़ क्या कहते हैं ? शरीर जीर्ण हुआ तो हम अपना काम नहीं कर सकते। पर के कारण से काम करता था ? समझ में आया ? ज्ञेय का नाश होने से ज्ञान का भी नाश। देह का नाश होगा तो मैं भी नाश हो जाऊँगा। अरे ! क्या तेरा... तू तो अविनाशी त्रिकाली तत्त्व है। ऐसा तो अनन्त बार......

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

**प्रवचन नं. १५३, भाद्र शुक्ल १४, शनिवार, दिनांक ०४-०९-१९७१**
**स्याद्वाद द्वार, पद १३ से १५**

समयसार नाटक है। स्याद्वाद (द्वार)। १४ बोल हैं। १४ (पक्ष) आ गये न? १४ (श्लोक) में उनका उत्तर है। क्या कहा सेठी? १४ नाम हैं न। पहले कहे हैं। **प्रथम पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन**। उसमें आगे सब आयेगा।

★ ★ ★

## काव्य - १३

**प्रथम पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन**
(सवैया इकतीसा)

**कोऊ मूढ़ कहै जैसैं प्रथम सवांरी भींति,**
**पाछैं ताकै ऊपर सुचित्र आछ्यौ लेखिए।**
**तैसैं मूल कारन प्रगट घट पट जैसौ,**
**तैसौ तहां ग्यानरूप कारज विसेखिए।।**
**ग्यानी कहै जैसी वस्तु तैसौ ही सुभाव ताकौ,**
**तातैं ग्यान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखिए।**
**कारन कारज दोऊ एकहीमैं निहचै पै,**
**तेरौ मत साचौ विवहारदृष्टि देखिए।।१३।।**

**शब्दार्थः-भींति=दीवाल। आछ्यौ=उत्तम। मूल कारन=मुख्य कारण। कारज= कार्य। निहचै=निश्चयनय से।**

**अर्थः-कोई अज्ञानी (मीमांसक आदि) कहते हैं कि पहले दीवाल साफ करके पीछे उस पर चित्रकारी करने से चित्र अच्छा आता है, और यदि दीवाल खराब हो तो चित्र भी खराब उघड़ता है, उसी प्रकार ज्ञान के मूल कारण घट-पट आदि ज्ञेय जैसे होते**

**हैं, वैसा ही ज्ञानरूप कार्य होता है, इससे स्पष्ट है कि ज्ञान का कारण ज्ञेय है। इस पर स्याद्वादी ज्ञानी संबोधन करते हैं कि जो जैसा पदार्थ होता है, वैसा ही उसका स्वभाव होता है, इससे ज्ञान और ज्ञेय भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। निश्चयनय से कारण और कार्य दोनों एक ही पदार्थ में हैं, इससे तेरा जो मन्तव्य है, वह व्यवहारनय से सत्य है।।१३।।**

## काव्य-१३ पर प्रवचन

**कोऊ मूढ़ कहै जैसैं प्रथम सवांरी भींति,**
**पाछैं ताकै ऊपर सुचित्र आछ्यौ लेखिए।**
**तैसैं मूल कारन प्रगट घट पट जैसौ,**
**तैसौ तहां ग्यानरूप कारज विसेखिए॥**
**ग्यानी कहै जैसी वस्तु तैसौ ही सुभाव ताकौ,**
**तातैं ग्यान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखिए।**
**कारन कारज दोऊ एकहीमैं निहचै पै,**
**तेरौ मत साचौ विवहारदृष्टि देखिए॥१३॥**

**मुमुक्षु :** कौनसा पृष्ठ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पृष्ठ है ३१९। तीन, एक, नौ। नीचे। क्या कहते हैं? देखो! **कोऊ मूढ़ कहै जैसैं प्रथम सवांरी भींति... पहले दीवाल साफ करके पीछे उस पर चित्रकारी करने से चित्र अच्छा आता है।** अज्ञानी कहते हैं। **यदि दीवाल खराब हो तो चित्र भी खराब उघड़ता है...** ऐसा कहते हैं। ज्ञेय ऐसा ज्ञान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तत् का बोल लेना है न भाई! आहाहा! अज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान जो है, जैसे ज्ञेय हैं, ऐसा ज्ञान है। ज्ञेय के कारण से ज्ञान है। परज्ञेय को आत्मा जानता है तो ज्ञेय के कारण से आत्मा का—ज्ञान का अस्तित्व है। समझ में आया? घट के जानने के काल में घटज्ञान होता है। पट के जानने के काल में पटज्ञान होता है। तो पर से हुआ, ऐसा अज्ञानी कहते हैं। पशु कहा है सबको। यहाँ मूढ़ कहा है। समझ में आया?

**तैसैं मूल कारन प्रगट घट पट जैसौ...** मूल कारण तो घट, पट, शरीर आदि जो

देखने में आते हैं, उससे ही ज्ञान होता है। समझ में आया? श्रवण करने से, वाणी श्रवण में आयी तो उसका ज्ञान श्रवण से होता है, ऐसा अज्ञानी मानता है। अपना अस्तित्व ज्ञान का, पर से रहित और अपने से है। ज्ञान की बात यहाँ, हों! द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव दूसरा आयेगा। यहाँ तो ज्ञान और ज्ञेय। पहला यह बोल है। जैसा ज्ञेय ख्याल में आये... भगवान की प्रतिमा है, वैसा ज्ञान हुआ। तो उस समय दूसरे का ज्ञान क्यों नहीं होता? घट का ज्ञान और पट का ज्ञान क्यों नहीं होता? कहते हैं कि उससे ज्ञान हुआ। बराबर है?

**मुमुक्षु :** नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्यों?

**तैसैं मूल कारन प्रगट घट पट जैसौ, तैसौ तहां ग्यानरूप कारज विसेखिए।** जैसा निमित्त कारण है ज्ञेय, ऐसा ज्ञान होता है। देखो, यह 'समयसार नाटक' है। तो सामने ऐसा ज्ञान हुआ। पद्मपुराण का ज्ञान क्यों नहीं हुआ? समझ में आया? यह पढ़ते हैं, उसका ज्ञान होता है। ऐसा दिखावे कि देखो। **तैसैं मूल कारन प्रगट घट पट जैसौ,...** घट-पट का दृष्टान्त दिया है। ऐसे पृष्ठ लो। जैसा पृष्ठ है, अन्दर में ऐसा ज्ञान का कारण होता है। सेठी! **तैसौ तहां ग्यानरूप कारज विसेखिए।** जैसा ज्ञेय कारणरूप है, ऐसा यहाँ ज्ञान होता है। तो हम तो कहते हैं कि ज्ञेय से ज्ञान है। अपने से ज्ञान है, यह तो हम मानते नहीं। आहाहा!

**ग्यानी कहै जैसी वस्तु तैसौ ही सुभाव ताकौ,...** उत्तर देते हैं। तुम कहते हो, ऐसा है नहीं। अपना ज्ञानस्वभाव... अपना ज्ञानस्वभाव... वस्तु का। **जैसी वस्तु तैसौ ही सुभाव ताकौ, तातैं ग्यान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखिए।** ज्ञेय चीज़ भिन्न है, ज्ञान भिन्न है। ज्ञेय के कारण से ज्ञान होता है, यह तो व्यवहार से कहने में आता है। ऐसा है नहीं। समझ में आया? गुरु है तो गुरु ने ज्ञान बताया, वाणी सुनी तो ज्ञान ऐसा हुआ। पहले क्यों नहीं हुआ? घड़ी को देखने से कितना बजा है, देखो। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** तीन के ऊपर सात मिनिट हुए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इतना यहाँ ज्ञान होता है। जैसा ज्ञेय है, ऐसा ज्ञान होता है। तो

पर से हुआ, ऐसा अज्ञानी निमित्त की मुख्यता से, निमित्त में ज्ञान है, आत्मा में ज्ञान है नहीं, ऐसा मानता है। समझ में आया?

**तातैं ग्यान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखिए।** भाई! ऐसा नहीं है। क्यों? कि आत्मा का ज्ञान स्वभाव है, उससे ज्ञान होता है। ज्ञेय से होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञेय से हो तो घट-पट को स्तम्भ के पास रखो। स्तम्भ को ज्ञान होना चाहिए, यदि उनसे होता हो तो। यदि पुस्तक से ज्ञान हो तो लकड़ी रखो यहाँ, तो उसे ज्ञान होना चाहिए। परन्तु ऐसा है नहीं। जिसमें ज्ञानस्वभाव है, उसे ज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं, पर से ज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। उसमें ज्ञान है नहीं तो उससे ज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। शब्द से होता है, श्रवण से होता है, पुस्तक से होता है। वह कहते हैं कि इन सबसे होता है। मुम्बई थे तब इस शब्द का ज्ञान था? कंगन (की दुकान) में बैठे हों तब कंगन का ज्ञान हो, लो। हीराभाई कैसे करेंगे, कैसे नहीं... ज्ञान तो, जैसी चीज़ थी, ऐसा ज्ञान हुआ। यहाँ उत्तर देते हैं कि ऐसा है नहीं। जिसमें ज्ञानस्वभाव है (वह जानता है)। ज्ञेय में ज्ञानस्वभाव कहाँ है? आहाहा! समझ में आया? **तातैं ग्यान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखिए।** कहते हैं कि (ज्ञेय) है तो (ज्ञान) है। यह कहे, आत्मा का स्वभाव ज्ञान है तो ज्ञान होता है, ज्ञेय से नहीं। ज्ञेय भिन्न और ज्ञान-आत्मा भिन्न। आहाहा! समझ में आया?

**कारन कारज दोऊ एकहीमैं निहचै...** आहाहा! देखो! ज्ञान का कार्य जो होता है, उसका कारण ज्ञान का स्वभाव है, ज्ञेय नहीं। समझ में आया? जो आत्मा में ज्ञान होता है—यह कार्य। उसका कारण, ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है, उस कारण से कार्य (हुआ)। कारण-कार्य एक तत्त्व में होता है। दूसरा कारण और दूसरा कार्य तो व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! बहुत वर्ष पहले यह प्रश्न उठा था। १७ में आया था प्रश्न। तुम कहते हो कि निमित्त से होता नहीं। तो हम तुम्हें पूछते हैं कि समयसार क्यों लेकर बैठते हो तुम? समयसार लेकर बैठे तो समयसार का ज्ञान उससे हुआ। पद्मपुराण

लेकर क्यों नहीं बैठे ? पाटनीजी ! उसमें आया था। .... आया था। बड़े पण्डित का प्रश्न आया था। समझ में आया ?

तुम कहते हो कि निमित्त से कुछ होता नहीं, ज्ञेय से ज्ञान होता नहीं। समयसार पुस्तक सामने लेकर बैठते हो तो समयसार से ज्ञान यहाँ होता है। पद्मपुराण लिया तो पद्मपुराण से ऐसा ज्ञान होता है। ऐई सेठ ! सेठ को कुछ खबर नहीं होती। जय नारायण। ऐसा बड़ा प्रश्न आया था। ऐसा है नहीं, सुन तो सही ! आत्मा का ज्ञानस्वभाव अपने में है। क्या ज्ञेय में ज्ञान है ? ज्ञेयस्वभाव में ज्ञानस्वभाव है ? चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री-कुटुम्ब-परिवार (आदि) सब ज्ञेय लिये न ! सारे ज्ञेय। आकाश... अन्दर लिखा है, क्या ज्ञान आकाश से होता है ? परन्तु ऐसा नहीं है। अपना ज्ञानस्वभाव है, उस कारण से ज्ञान की पर्याय का कार्य होता है। ज्ञेय कारण और ज्ञान कार्य, यह तो व्यवहार का झूठा कथन है। अभूतार्थ कथन है तेरा। कहो, समझ में आया ? क्यों सेठी !

हीरा लेकर बैठे, (तो) हीरे का ज्ञान होता है। उस समय भगवान की मूर्ति है, ऐसा ज्ञान होता है ? उसकी दलील सत्य है या नहीं ? करशनभाई ! झूठ है। दृष्टान्त लिया है उसमें। कहा न ? स्तम्भ के पास घट रखो, यदि घट से ज्ञान हो तो स्तम्भ को ज्ञान होना चाहिए। समझ में आया ? आत्मा में ज्ञानस्वभाव, भगवान ज्ञानस्वभाव है तो घट-पट को देखने से घट-पट का ज्ञान होता है, यह तो अपने ज्ञानस्वभाव के कारण से होता है। आहाहा ! भारी सूक्ष्म ! समझ में आया ? जेठाभाई ! स्वभाव तो यहाँ है। ज्ञानस्वभाव तो यहाँ है। ज्ञानस्वभाव ज्ञेय में है ?

देखो, शीशपेन देखते हैं। यह ज्ञेय है, तो ऐसा ज्ञान हुआ कि यह शीशपेन है। लकड़ी है, लो। यह घड़ी है, ऐसा ख्याल आया। ऐसा क्यों ख्याल में नहीं आया कि यह लकड़ी है ? परन्तु ख्याल तो ज्ञानस्वभाव है, उसके कारणरूप ज्ञान होता है। समझ में आया ? पर से होता नहीं। बहुत अच्छा बोल लिया है, हमारे सेठ कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि भगवान की प्रतिमा और भगवान से ज्ञान नहीं होता। सुनने क्यों जाते हो यदि पर से ज्ञान न हो तो ? करशनभाई ! सोनगढ़ क्यों जाते हो ? सुने तो उससे ज्ञान होता है (यह तेरी बात झूठ है)। तेरी बात तो **तेरौ मत साचौ विवहारदृष्टि देखिए।** निमित्त से

कहने में आता है, ऐसी दृष्टि से देखे तो ऐसी बात है, परन्तु सत्य दृष्टि तो ऐसी है नहीं। आहाहा!

उपादान-निमित्त का बड़ा झगड़ा। आँख बराबर हो तो देखने की (शक्ति से) ज्ञान सब प्रगट होता है, आँख बराबर न हो तो ज्ञान में भान होता है? आँख लाल हो जाये और ज्ञान तो है। परन्तु वह ज्ञान, (आँख) लाल हुई है तो निमित्त से ज्ञान नहीं हुआ। यह कहते हैं कि हुआ। ऐसा कहते हैं। आता है न उसमें, नहीं तुम्हारे निमित्त-उपादान (संवाद) में? नयन ने.... सुन न। आत्मा न हो तो ज्ञान नहीं होता। तेरी आँखें कहाँ काम करती हैं? वह तो जड़ है, ज्ञेय है। आँख से ज्ञान होता है? आँख कहाँ ध्यान रखे? यह तो अपनी ज्ञानपर्याय जिसमें शक्तिरूप स्वभाव है तत्‌रूप, वही तत्‌रूप पर्याय के कार्य में कारण वह ज्ञान है। ज्ञेय कारण से ज्ञान है, यह बात व्यवहार से कहने में आती है। झूठी है। अभूतार्थ से कहने में आता है। तेरी बात सत्य है नहीं। आहाहा!

एक बोल का निर्णय करे तो सबका स्पष्टीकरण हो जाये। जैसे कि आत्मा में दया-दान-व्रत का विकल्प राग आया, तो उस समय राग का ज्ञान होता है। राग... ऐसा ही ज्ञान होता है, तो राग कारण है और ज्ञान कार्य है, ऐसा कहते हैं। ऐई! झूठ है तेरी बात। समझ में आया? जिसमें ज्ञान हुआ, वह अपना स्वभाव तत्‌रूप है। वह बोल है। ज्ञानस्वभावी भगवान है। समझ में आया? उसमें आया था पहले। सामान्य है, वह विशेषरूप परिणमता है। भाई! .....

प्रवचनसार की ४८-४९ गाथा चलती थी, प्रवचनसार की। बंशीधरजी और सेठ आये थे। बात चलती थी। पर से ज्ञान विशेष नहीं होता, इन्द्रिय से नहीं होता। अपना सामान्य स्वभाव जो त्रिकाल है, वह विशेषरूप वर्तमानदशा में परिणमता है तो सामान्य से ज्ञान होता है। सामान्य कारण है और ज्ञान की पर्याय कार्य है। इन्द्रिय कारण है और ज्ञान की पर्याय कार्य है, ऐसा है नहीं। तो गड़बड़ हो गयी। उन्होंने सेठ से कहा कि देखो, यह कहते हैं, ऐसी बात है नहीं। आहाहा! सामान्य ज्ञान तो सर्वत्र है। कौन सा सामान्य सर्वत्र आवे। हाँ, सामान्य तो सर्वत्र है। किसी जगह नहीं। आहाहा! ज्ञेय में सामान्य ज्ञानस्वभाव है? लकड़ी में सामान्य ज्ञानस्वभाव है? सामान्य अर्थात् एकरूप रहनेवाला ज्ञानस्वभाव तो यहाँ है। सामान्य, (वह) विशेष का कारण है। समझ में

आया? इन्द्रिय से ज्ञान होता है आत्मा में, यह बात झूठ है। आहाहा! यह तो जड़ है, यह तो ज्ञेय है। यह तो मिट्टी है, ज्ञेय है। कायिक ज्ञान बराबर होता है। इन्द्रिय बराबर हो तो ज्ञान बराबर होता है, उस कारण से अज्ञानी को भ्रम हो जाता है कि इन्द्रिय से ज्ञान हुआ। समझ में आया?

वस्तुदर्शन का स्याद्वाद अधिकार अनेकान्त सूक्ष्म है। समझ में आया? साधारण बात नहीं यह। अपना ज्ञानस्वभाव—धर्म त्रिकाल अपने में है, तो क्षण-क्षण में अपना ज्ञानस्वभाव एकरूप है, वह पर्याय का कार्यरूप परिणमन करता है। इन्द्रिय से ज्ञान होता है, मन से ज्ञान होता है, राग से ज्ञान होता है, भगवान की मूर्ति देखे तो ज्ञान होता है—ऐसी बात है नहीं। वस्तु बराबर है। सामने आत्मा हो दूसरा, लो न। वह भी दूसरा है। यहाँ तो अपना ज्ञानस्वभाव जो त्रिकाल जिसमें तत् स्वभाव है, उसमें ज्ञान की पर्याय होती है। वह कहे, अतत् से ज्ञान होता है यहाँ। दो भंग हैं न दो भंग? तत्-अतत्, एक-अनेक। १४ बोल में आया। समझ में आया?

एक बोल भी यथार्थ समझ जाये तो स्वतन्त्रता की दृष्टि हो जाये। यह बात है। समझ में आया? भगवान की मूर्ति है तो अपने में मूर्ति का ज्ञान हुआ, ऐसा है नहीं। समझ में आया? दिव्यध्वनि सुनी तो निमित्त हुआ तो ज्ञान यहाँ हुआ, ऐसा है नहीं। दिव्यध्वनि में अपना ज्ञानस्वभाव कहाँ है? समझ में आया? ज्ञानस्वभाव तो यहाँ है। वह ज्ञानस्वभाव, वाणी सुनने के काल में अपने ज्ञान की परिणति का कारण त्रिकाली तत् स्वभाव ज्ञान होता है। आहाहा! तो उसकी दृष्टि सामान्य ज्ञान के ऊपर जाती है। निमित्त की मित्रता में जाये,.... आहाहा! जैसा निमित्त हो, ऐसा ज्ञान होता है। तो निमित्त की मित्रता छोड़ता नहीं। देखो, कहाँ का कहाँ आया? प्रवचनसार के अन्त में आया है। आहाहा! समझ में आया?

**कारन कारज दोऊ एकहीमैं निहचै पै,...** अपनी ज्ञानदशा, आनन्ददशा.... यहाँ तो ज्ञान और ज्ञेय की बात है। एक ओर ज्ञान और एक ओर ज्ञेय। तो कहते हैं कि अतत्—पर से ज्ञान होता है। तो यहाँ कहते हैं, तत्—अपने से ज्ञान होता है। बस यह बात। समझ में आया? वज्रवृषभनाराचसंहनन मजबूत हो तो केवलज्ञान होता है, मनुष्यपना हो तो केवलज्ञान होता है, ऐसी अज्ञानी की दलील है। बात झूठ है, यह तो व्यवहार से

कथन किया जाता है। आहाहा! एक व्यक्ति ऐसा कहता था कि तुम ऐसा अन्तर में मानो कि अपने से ज्ञान होता है और गुरु के पास ऐसे कहे कि, प्रभु! आपसे मुझे ज्ञान हुआ है। यह तो माया हुई। यह बड़ा बोल है, हों! साधारण बात नहीं स्याद्वाद की। आहाहा!

**मुमुक्षु :** जोरदार मामला।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जोरदार मामला है उसमें। आहाहा। गुरु के पास ऐसा कहो, 'प्रभु! वह तो प्रभु ने दिया, वर्तूं चरणाधीन।' आता है न। अन्दर में ऐसा मानो कि ज्ञान मुझसे होता है, पर से नहीं। तेरा कपट हुआ। अरे, वह कपट नहीं। सुन तो सही। यह तो विनय का विकल्प है, ऐसे वाक्य निकलते हैं। समझ में आया? आहाहा!

पूरी दुनिया ज्ञेय और एक ओर भगवान ज्ञानस्वभाव। ज्ञेय से ज्ञान होता है, किसी भी काल में, किसी भी क्षेत्र में, किसी भी प्रसंग में पर से ज्ञान होता है, यह बात तीन काल में झूठी है। आहाहा! समझ में आया? तब ऐसा कहे कि ऐसा ही ज्ञान क्यों होता है? जो वाणी में कहा, ऐसा ज्ञान वहाँ क्यों होता है? ज्ञान यथार्थ जाने या ज्ञान अयथार्थ जाने? आहाहा! समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात, हों! अपना स्वभाव सत्त्व पूर्ण, ज्ञानस्वभाव से पूर्ण सत्त्व, सत् का सत्त्व... सत् द्रव्य, उसका सत्त्व स्वभाव, उसका परिणमन-पर्याय, तीनों समा गये। समझ में आया?

ज्ञान-ज्ञेय भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। **निश्चयनय से कारण और कार्य दोनों एक ही पदार्थ में हैं।** निश्चयनय से कहा तो व्यवहार भी मानना पड़ेगा न अनेकान्त में? मानने का अर्थ कि ऐसा निमित्त है तो ज्ञान अपने से हुआ, ऐसा जानना, उसका नाम व्यवहार है। ज्ञेय का ज्ञान होता है। ज्ञेय से नहीं। निमित्त का ज्ञान अपने से होता है। निमित्त का ज्ञान भी और अपना ज्ञान भी अपने से होता है। आहाहा! ऐसा (विचारने के लिये) कौन अन्दर निवृत्त है? मूलचन्दभाई! भगवान! तेरे स्वभाव की महिमा बताते हैं। तेरा स्वभाव ही ऐसा है कि निमित्त का प्रयोजन उसे है नहीं। उसे प्रयोजन ही नहीं। हो, विकल्प उठते हैं प्रयोजन... वस्तु में नहीं। इसके लिये स्याद्वाद अटपटी चीज़ लगती है न!

कितने कहें कि जैनदर्शन ने स्याद्वाद उड़ा दिया। अनिर्धारित, अनिश्चित है तुम्हारा। किसने कहा है, नहीं? कहा है या नहीं यहाँ? ....जैनदर्शन अनिश्चित है। कि

ऐसा भी है, ऐसा भी है। कोई निश्चित है ही नहीं। ऐसा नहीं है। ऐसा (कुछ लोग) कहते हैं। कहते हैं, खबर है हमें। कि तुम्हारा स्याद्वाद तो अनिश्चित है। स्याद्वाद निश्चित है कि अपने से होता है, वही निश्चित है। पर से होता नहीं, वही निर्धार है। आहाहा! समझ में आया?

एक बोल हुआ। कहते हैं कि ज्ञेय से ज्ञान होता है। पूरे तीन लोक-तीन काल में जहाँ-जहाँ क्षेत्र, संयोग में जैसे ज्ञेय हैं, ऐसा ज्ञान (होता है)। सम्मेदशिखर जाओ तो सम्मेदशिखर का ज्ञान होता है। उस समय शत्रुंजय का ज्ञान क्यों नहीं हुआ? आहा! उस समय अपने ज्ञान की पर्याय का कार्य अपने ज्ञानस्वभाव से हुआ है। ऐसा ही उस समय में पर्याय होने का काल था। समझ में आया? सम्मेदशिखर से होता नहीं। वाणी से नहीं होता, जिनवाणी कहती है न, जिनवाणी में ज्ञान भरा है। जिनवाणी में ज्ञानस्वभाव है? चैत्यालय में पुस्तक है या नहीं तुम्हारे सब? पुस्तक है, उसमें ज्ञान है? उसके अक्षर में ज्ञान है? उसके अक्षर का ज्ञानस्वभाव है? उसका तो जड़स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? सेठ! तुम्हारे कितने पण्डित ऐसा कहते हैं, जिनवाणी में ज्ञान भरा है। पुस्तक में आया है। यहाँ तो सब पुस्तकें हैं या नहीं? ....देखा है। भगवान की मूर्ति में कहाँ ज्ञान है? जिनवाणी में ज्ञान है। दोनों में नहीं है। सेठ! यह अन्दर सूक्ष्म शल्य है। आहाहा!

कहते हैं, ओहो! **निश्चयनय से कारण और कार्य दोनों एक ही पदार्थ में हैं।** कारण दूसरा और कार्य दूसरा, ऐसा निश्चय यथार्थ में है नहीं। आहाहा! वहाँ आया है न! मोक्षमार्गप्रकाशक में, नहीं? व्यवहार, किसी का कारण और किसी का कार्य मिला देता है। कारण दूसरा और कार्य दूसरे में लगावे। ऐसा माने तो मिथ्यात्व है। ऐसा लिखा है। ऐसा है नहीं। अपना भगवान जिसमें त्रिकाली ज्ञानस्वभाव है, वह द्रवता है, परिणमता है, उसी समय में सामान्य का विशेष ऐसे ही होने की योग्यता थी, तो अपने कारण से ज्ञान की पर्याय कार्यरूप हुई। ज्ञेय के कारण से बिल्कुल हुई नहीं। आहाहा! एक पक्ष हुआ।

**द्वितीय पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन। विश्वं ज्ञानं इति प्रतर्क्य...** पहले जो कहा न, उसका कलश पहले लिया है। पहले लिया। **बाह्यार्थैं परिमीतमुज्झित...** ३१४ पृष्ठ। दूसरा कलश है न, उसका अर्थ वह हुआ। समझ में आया? ३१४। है? दूसरा कलश।

**बाह्यार्थैः परिमीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवद्,**
**विश्रान्तं पररूप एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति।**
**यत्तत्तत्तदिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुन-**
**र्दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्णं समुन्मज्जति ।।२।।**

उसका अर्थ हुआ। श्लोक वहाँ और अर्थ यहाँ है। समझ में आया ? अब तीसरा कलश। कलश तीसरा है। बोल दूसरा है।

★ ★ ★

## काव्य - १४

**द्वितीय पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन**

(सवैया इकतीसा)

**कोऊ मिथ्यामती लोकालोक व्यापि ग्यान मानि,**
**समुझै त्रिलोक पिंड आतम दरब है।**
**याहीतें सुछंद भयौ डोलै मुखहू न बोलै,**
**कहै या जगतमैं हमारोई परब है।।**
**तासौं ग्याता कहै जीव जगतसौं भिन्न पै,**
**जगतकौ विकासी तौही याहीतें गरब है।**
**जो वस्तु सो वस्तु पररूपसौं निराली सदा,**
**निहचै प्रमान स्यादवादमैं सरब है।।१४।।**

**शब्दार्थः-लोक=जहाँ छह द्रव्य पाये जाँय। अलोक=लोक से बाहर का क्षेत्र। सुछंद=स्वतंत्र। गरब=अभिमान।**

**अर्थः-कोई अज्ञानी (नैयायिक आदि) ज्ञान को लोकालोक व्यापी जानकर आत्मपदार्थ को त्रैलोक्य-प्रमाण समझ बैठे हैं, इसलिए अपने को सर्वव्यापी समझकर स्वतन्त्र वर्तते हैं, और अभिमान में मस्त होकर दूसरों को मूर्ख समझते हैं, किसी से बात**

**भी नहीं करते और कहते हैं कि संसार में हमारा ही सिद्धान्त सच्चा है। उनसे स्याद्वादी ज्ञानी कहते हैं कि जीव जगत से जुदा है, परन्तु उसका ज्ञान त्रैलोक्य में प्रसारित होता है, इससे तुझे ईश्वरपने का अभिमान है, परन्तु पदार्थ अपने सिवाय अन्य पदार्थों से सदा निराला रहता है, सो निश्चयनय से स्याद्वाद में सब गर्भित है।।१४।।**

काव्य-१४ पर प्रवचन

**कोऊ मिथ्यामती लोकालोक व्यापि ग्यान मानि, समुझै त्रिलोक पिंड आतम दरब है।** द्वैत—पर में ही ज्ञान है। परस्वरूप सब आत्मा है, पूरे त्रिलोक में आत्मा है, आत्मा से दूसरी चीज़ कोई है नहीं, ऐसा अज्ञानी मानते हैं। समझ में आया? उसमें आया था न पहले! त्रिलोकप्रमाण एक पक्ष है। त्रिलोकप्रमाण। सर्व वस्तु के प्रमाण से आत्मा है। कोई आत्मा भिन्न है और जड़ भिन्न है, दूसरा द्रव्य भिन्न है, ऐसा है नहीं। **याहीतें सुछंद भयौ डोलै मुखहू न बोलै, कहै या जगतमैं हमारोई परब है।**

**हमारोई परब...** ऐसा कि मारो, ऐसा। हमारा सिद्धान्त। यह अन्दर में लिखा है। **संसार में हमारा ही सिद्धान्त सच्चा है....** ऐसा अज्ञानी कहता है। अद्वैत पूरे लोकप्रमाण से आत्मा एक ही है। समझ में आया? **कहै या जगतमैं हमारोई परब है, तासौं ग्याता कहै जीव जगतसौं भिन्न पै,...** तीन काल—तीन लोक की चीज़ से भगवान भिन्न है। समझ में आया? पूरे लोक में व्यापे, ऐसा आत्मा है नहीं। **जगतकौ विकासी तौही याहीतें गरब है।** अन्दर लिखा है न? त्रिलोक में प्रसारित होता है। ज्ञान का स्वभाव तीन काल—तीन लोक को जानना है। ऐसा हो गया कि मैं त्रिलोकप्रमाण हूँ। परन्तु वह तो जानने का उसका स्वभाव है। तीन काल—तीन लोक को जानने का भगवान आत्मा का स्वभाव है। उससे त्रिलोकमय हो गया, ऐसा है नहीं।

**जो वस्तु सो वस्तु पररूपसौं निराली सदा....** वस्तु तो, वस्तु भगवान आत्मा लोकालोक से बिल्कुल भिन्न है। तीन काल—तीन लोक की चीज़ उससे दूसरी चीज़ है आत्मा तो। आहाहा! पर में व्यापक है, ऐसा नहीं। समझ में आया? **जो वस्तु सो वस्तु पररूपसौं निराली सदा, निहचै प्रमान स्यादवादमैं सरब है।** स्याद्वाद में तो वह अपने से

ही पूर्ण अपने में है। पर से पूर्ण है, ऐसा है नहीं। लिखा है उसमें... **सदा निराला रहता है, सो निश्चयनय से स्याद्वाद में सब गर्भित है।** दूसरा बोल आया। पहले तत्। दूसरा अतत् (अर्थात्) पर से नहीं। पहला था ज्ञेय से ज्ञान। यह कहे कि मैं पर ही वस्तु हूँ, ऐसा। दूसरा बोल है कि पर ही मैं वस्तु हूँ। ज्ञेय से ज्ञान कहता था। यह कहे, पर ही मैं हूँ। परवस्तु में मैं हूँ। अतत् में मैं हूँ। समझ में आया? आहाहा!

**निहचै प्रमान....** भगवान आत्मा तीन लोक—तीन काल से बिल्कुल निराला भगवान है। ऐसी स्याद्वाद की दृष्टि, अनेकान्त का ऐसा स्वरूप है। समझ में आया? स्व से अतत् है अर्थात् पर से तत् है। पर ही मैं हूँ। वेदान्त आदि कहते हैं न, सारा एक। क्यों? कि ज्ञान में ऐसा ही ज्ञान पर से क्यों होता है? ज्ञान और ज्ञेय एक ही चीज़ है। वह तो ज्ञेय से ज्ञान होता है, इतना कहता था। अपने स्वभाव में... यह है तो ज्ञान होता है, उसका अर्थ क्या? यह सब ज्ञान (रूप) चीज़ है। ज्ञान ही एक चीज़ है, दूसरी कोई चीज़ है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

दृष्टान्त दिया था। भाई रेशमवाला, नहीं?

**मुमुक्षु :** मशरूवाला।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मशरूवाला। मशरूवाला था न, राजकोट में मुझे मिला था। ....मशरूवाला क्या नाम था?

**मुमुक्षु :** किशोरीलाल।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किशोरीलाल। बहुत वेदान्ती था। बहुत पुस्तकें लिखी थीं। चातुर्मास था न (संवत्) १९९५ के वर्ष में। गाँधीजी भी आये थे। (संवत्) १९९५ की बात है। ३२ वर्ष पहले। तो उसने एक पुस्तक लिखी थी जीवन शोधन। जीवन शोधन नामक पुस्तक हमने देखी है। सब देखा है। पढ़ने में क्या है? उसमें ऐसा लिखा था कि अलमारी देखने से अलमारी का ज्ञान होता है। उसका अर्थ यही है कि सब ज्ञानमय है। पण्डितजी! यह लकड़ी से ज्ञान (हुआ)। ज्ञान होता है या नहीं, यह लकड़ी का ज्ञान? तो लकड़ी और ज्ञान सब एक हैं। समझ में आया? जीवन शोधन में लिखा है। जीवन शोधन। कुछ खबर नहीं होती। बाहर के पण्डिताई की और बातें मोटी बड़ी-बड़ी।

वह चीज़ है तो चीज़ का चीज़ के प्रमाण में ज्ञान होता है, इसलिए ज्ञान एक ही चीज़ है। सब एक ही है, ऐसा। उसमें पहले में तो ज्ञेय कारण और ज्ञान कार्य। यहाँ तो सब सब वस्तु ही एक है। कोई भी चीज़ देखने से ज्ञान होता है, उसका अर्थ क्या हुआ? ज्ञान है तो ज्ञान हुआ। कारण-फारण यहाँ प्रश्न नहीं। यह ज्ञान है तो ज्ञान हुआ। पूरा ज्ञान व्यापक है लोकालोक में। समझ में आया? स्याद्वाद में थोड़ा जरा सूक्ष्म है। स्याद्वाद क्या, वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहा! ज्ञेय कारण और ज्ञान कार्य, यह तो दूसरी चीज़ हुई। दो चीज़ मानकर कारण से कार्य होता है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो अकेला ज्ञान...

**मुमुक्षु :** थोड़ा अन्तर है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अन्तर थोड़ा नहीं, बड़ा अन्तर है। समझ में आया?

आत्मा में राग का ज्ञान हुआ, शरीर का हुआ, आम का हुआ—आम का हुआ। तो ज्ञान ऐसा ही हुआ। उसका कारण क्या? यह सब ज्ञानमय चीज़ है। सेठ! इसमें जरा मस्तिष्क को गूँथना पड़ेगा।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्ञान एक ही माने, उसमें भेदज्ञान कहाँ रहा? एक ही चीज़ है। ज्ञानस्वरूप ही सर्व व्यापक है। बौद्ध भी ऐसा कहते हैं। सब विज्ञानघन है। इतना बौद्ध कहे। आहाहा!

जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने ज्ञान में सब देखा, परन्तु जो देखा, वह ज्ञान नहीं थी परचीज़। पर देखा, इसलिए यहाँ ज्ञान और वहाँ ज्ञान, (ऐसा नहीं है)। उसका ज्ञान होता है, उस प्रकार का ज्ञान होता है तो उसका अर्थ क्या हुआ? कि सब ज्ञानमय है तो ज्ञान हुआ?

**मुमुक्षु :** नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सूक्ष्म भाई यह! समझ में आया? कहा, यह समझ में आता है? पहले में और दूसरे में अन्तर है। उसमें दो चीज़ मानी है, परन्तु ज्ञानस्वभाव होने पर भी ज्ञेय से ज्ञान होता है, इतना कहा। यह झूठ है। यहाँ तो कहे, सब ज्ञान ही है। सारी दुनिया ज्ञानमय है।

**मुमुक्षु :** उसने दो माने....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसने तो एक ही माना। आहाहा! पर से अतत् है, ऐसा नहीं माना। समझ में आया? आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें ऐसी।

अपनी पृथक्ता सिद्ध करते हैं। अपना स्वभाव... जिस क्षण में जिस प्रकार का ज्ञान होता है, उसी चीज़ का वैसा ही ज्ञान हुआ। तो कहते हैं कि यह ज्ञानस्वभावी चीज़ है तो ऐसा ज्ञान हुआ। ऐसा नहीं है। ऐसे लॉजिक और निर्णय करने को फुरसत कहाँ? विपिनभाई! धर्म करो न! क्या धर्म करे? तेरा स्वभाव कितने क्षेत्र में है, कैसे होता है, इसकी खबर नहीं और धर्म करो। धर्म का करनेवाला कैसी चीज़ है, कितने में है—कितने क्षेत्र में? समझ में आय? इसकी खबर बिना धर्म करो। क्या धर्म करे? धर्म करना क्या चीज़ है? धर्म करो। क्या चीज़ है वह? पर्याय है या गुण है या द्रव्य है? हमको कुछ खबर नहीं। आहाहा! धर्म करना है, वह कार्य है, तो कार्य कहाँ से आयेगा? धर्म स्वभाव है, उसमें से कार्य आयेगा।

**मुमुक्षु :** काँटा लगा हो तो काँटा निकाल डालना चाहिए या किसका काँटा है और इसका है और इसका नहीं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु काँटा निकालने के लिये दूसरा काँटा तो चाहिए या नहीं? कुछ तो चाहिए या नहीं? कि काँटे से काँटा निकलेगा? घुस गया काँटा तो उसी से निकलेगा? दूसरा काँटा चाहिए। समझ में आया? इसी प्रकार जाननेवाला सबमें एक ही हो तो दूसरा तो आया नहीं पर से भिन्न, सब एक ही हुआ। सब एक ही हुआ तो पहले क्या था? कहे, सबमें व्यापक था, परन्तु हमें खबर नहीं थी। सर्व व्यापक था, खबर नहीं—दो बातें कहाँ से आयीं? लोक में व्यापक हो तुम तो? समझ में आया? हमें खबर नहीं। खबर नहीं थी तो दूसरा हो गया। ज्ञेय को अपना माना और अपने ज्ञान को अपना माना नहीं। वह तेरी भूल थी। आहाहा! कठिन बातें, भाई! यह जैनदर्शन की चीज़, तेरी वस्तु की चीज़ ऐसी है। आहाहा! **सो निश्चयनय से स्याद्वाद में सब गर्भित है,...** लो। एक-अनेक। तत्-अतत् के बोल हुए, अब एक-अनेक। अन्तर थोड़ा नहीं, अन्तर बहुत है उसमें। अन्दर में भगवान में सूक्ष्मता न दिखाई दे। समझ में आया?

**तृतीय पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन। कोऊ पसु ग्यानकी अनंत विचित्राई देखै,...** एकरूप ज्ञान नहीं मानता और ज्ञान को अनेकरूप ही मानता है, यह बात है। समझ में आया? भगवान आत्मा अपने स्वभाव से तो एकरूप ही है। परन्तु ज्ञान अपनी पर्याय में अनेक प्रकार का ज्ञेय का विचित्र ज्ञान करता है। अनेकपना जो है, वही ज्ञान है, ऐसा अज्ञानी मानता है। एकरूप मेरा ज्ञानस्वभाव है, ऐसा मानता नहीं। एकान्त अनेक है, ऐसा मानता है। आहाहा! ऐसी बात है।

★ ★ ★

## काव्य - १५

**तृतीय पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन**

(सवैया इकतीसा)

**कोऊ पसु ग्यानकी अनंत विचित्राई देखै,**
**ज्ञेयके अकार नानारूप विसतर्‌यौ है।**
**ताहीको विचारि कहै ग्यानकी अनेक सत्ता,**
**गहिकै एकंत पच्छ लोकनिसौं लर्‌यौ है।।**
**ताकौ भ्रम भंजिवेकौ ग्यानवंत कहै ग्यान,**
**अगम अगाध निराबाध रस भर्‌यौ है।**
**ज्ञायक सुभाइ परजायसौं अनेक भयौ,**
**जद्यपि तथापि एकतासौं नहिं टर्‌यौ है।।१५।।**

**शब्दार्थः-पसु=मूर्ख। विसतर्‌यौ=फैला। लर्‌यौ=झगड़ता है। भंजिवेकौ=नष्ट करने के लिये।**

**अर्थः-अनन्त ज्ञेय के आकाररूप परिणमन करने से ज्ञान में अनेक विचित्रताएँ दिखती हैं, उन्हें विचारकर कोई कोई पशुवत् अज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान अनेक हैं, और इसका एकान्त पक्ष ग्रहण करके लोगों से झगड़ते हैं। उनके अज्ञान हटाने के लिये**

**स्यादृादी ज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान अगम्य, गंभीर और निराबाध रस से परिपूर्ण है। उसका ज्ञायकस्वभाव है, सो वह यद्यपि पर्यायदृष्टि से अनेक है, तो भी द्रव्यदृष्टि से एक ही है।।१५।।**

काव्य-१५ पर प्रवचन

**कोऊ पसु ग्यानकी अनंत विचित्राई देखै,**
**ज्ञेयके अकार नानारूप विसतर्‌यौ है।**
**ताहीको विचारि कहै ग्यानकी अनेक सत्ता,**
**गहिकै एकंत पच्छ लोकनिसौं लर्‌यौ है॥**
**ताकौ भ्रम भंजिवेकौ ग्यानवंत कहै ग्यान,**
**अगम अगाध निराबाध रस भर्‌यौ है।**
**ज्ञायक सुभाइ परजायसौं अनेक भयौ,**
**जद्यपि तथापि एकतासौं नहिं टर्‌यौ है॥१५॥**

**कोऊ पसु....** यहाँ तो पशु जैसा माना है (क्योंकि) उसे भान नहीं है। अज्ञानी मरकर पशु में जाते हैं। पशु अर्थात् निगोद। तत्त्व की जैसी चीज़ है, ऐसा यथार्थ भान बिना विरुद्ध श्रद्धा और ज्ञान से निगोद का आराधन है। समझ में आया? **कोऊ पसु ग्यानकी... ग्यान** अर्थात् अपने ज्ञानस्वभाव को। **अनंत विचित्राई देखै,**—भिन्न-भिन्न परिणमन में ज्ञान में अनेकता देखी। **ज्ञेयके अकार नानारूप विसतर्‌यौ है।** ज्ञेय के प्रमाण में अपने ज्ञान की अनेकतारूप परिणमन है। **ताहीको विचारि कहै ग्यानकी अनेक सत्ता,....** ज्ञान एकरूप सत्ता नहीं, यह तो अनेक सत्ता है। यह तो पर्याय से अनेक है, द्रव्य से तो एक ही है। आहाहा! समझ में आया? भगवान ज्ञान... आया न! ज्ञेय को भिन्न-भिन्न देखकर ज्ञान का खण्ड-खण्ड हो गया, ऐसा भासता है, वह अनन्तानुबन्धी का विकल्प है। और ज्ञेय को अपना मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। ज्ञेय के भेद से ज्ञान में भेद हो गया, उस कारण से ज्ञान में भेद हो गया, ऐसा मानना, वह मिथ्यात्वभाव—अनन्तानुबन्धी का विशेष है। आहाहा!

**ताहीको विचारि कहै ग्यानकी अनेक सत्ता,...** एकान्त अनेक ही है ज्ञान, ऐसा मानता है। परन्तु ज्ञानरूप स्वभाव एकाकार रहता है, अनेक पर्याय में परिणमन होने पर भी ज्ञानगुण और द्रव्यस्वभाव एक है, ऐसा मानता नहीं। सब सूक्ष्म आ गया है। आहाहा! **गहिकै एकंत पच्छ....** कोई ऐसा कहे कि ज्ञान एकरूप है। कहे, नहीं। अनेकरूप ही है। ऐसा जानकर लोग लड़ते हैं, झगड़ा करते हैं। समझ में आया? अनेक कहा है तो पर्याय से अनेक होता है, परन्तु वस्तु से तो एक है। एक छोड़कर अनेक होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समयसार नाटक में बनारसीदास ने श्लोक बनाये। तत्त्वज्ञान का विषय... सूक्ष्म है। परमेश्वर गणधरों ने सुना और गणधरों ने कहा। शास्त्र गृहस्थ भी रचते हैं, देखो! उसका तो यहाँ पद रचा है, कहो। आहाहा!

**ताकौ भ्रम भंजिवेकौ ग्यानवंत कहै ग्यान,...** अज्ञानी ज्ञान की अनेक अवस्था देखकर, ज्ञान की सत्ता ही अनेक है—ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि को, **ग्यानवंत कहै ग्यान, अगम अगाध....** भाई! उसका स्वभाव एकरूप अगम्य है, अगाध है, निराबाध है, रस से भरा है। एकरूप ज्ञान अगाध भरा है। एकान्त से अनेक ही है, ऐसा नहीं है। भारी कठिन ऐसा, भाई! **ज्ञायक सुभाइ परजायसौं अनेक भयौ,...** देखो! वस्तु तो एकरूप अगम्य अगाध निराबाध रसभरा आत्मा है। परन्तु ज्ञायकस्वभाव त्रिकाली भगवान वर्तमान पर्याय में—अवस्था में—हालत में अनेकरूप दिखता है। पर्याय से तो अनेक है, परन्तु (सर्वथा) अनेक ही है, ऐसा नहीं। द्रव्य स्वभाव से एक है। यह लॉजिक से बात चलती है। ....यह तो वीतराग का मार्ग है।

**जद्यपि...** क्या कहते हैं? भगवान ज्ञानपर्याय में अनेकरूप होने पर भी **जद्यपि तथापि एकतासौं नहिं टर्‌यौ है।** ज्ञानसत्ता एकरूप है तो अनेक सत्ता हो गयी, ऐसा है नहीं। आहाहा! यह बात बैठे.... कहो, हीराभाई! आहाहा! महाप्रभु का स्वभाव कैसा है, यह सिद्ध करते हैं। पर्याय में... पररूप की तो बात यहाँ है नहीं। अपनी ज्ञानपर्याय अनेकरूप परिणमती है, ऐसा होने पर भी अपना ज्ञानस्वभाव एकरूप से तो कभी नाश हुआ नहीं। **एकतासौं नहिं टर्‌यौ है।** एक सत्ता रखकर पर्यायरूप अनेकरूप परिणमन हुआ है। समझ में आया? अपनी एक सत्ता छोड़कर अनेकरूप सत्ता हुआ है, (ऐसा नहीं)। आहाहा! ऐसा गजब!

द्रव्य से तो एकरूप ही है। एक का बोल है न यहाँ? तत्-अतत् आ गया। एक-अनेक—दो बोल की बात चलती है। वस्तु से एक है। स्वभाव ज्ञान का एक सत्ता है। एक होने पर भी, दृष्टि में एकरूप ज्ञान का लक्ष्य और ध्येय होने पर भी, दृष्टि में ऐसा आया तो परिणमन में अनेक प्रकार का ज्ञान का परिणमन हुआ। ऐसे अनेकतासों परिणमन हुआ परन्तु एकरूप से नाश हुआ नहीं। एक से नाश नहीं हुआ। आहाहा! दो सत्ता हो जाये? .... अनेक पर्यायरूप तो पर्याय अनेकरूप हुई, परन्तु सत्ता दो हो जाये?

**मुमुक्षु :** नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक पर्याय एक ज्ञान की सत्ता, दूसरी पर्याय दूसरे ज्ञान की सत्ता—ऐसी अनन्त सत्ता है नहीं। सूक्ष्म बात! भीखाभाई! आहाहा! .... अनेकपने का परिणमन ज्ञान को हो, उसका स्वभाव है। परन्तु अनेकरूप हुआ तो ज्ञानगुण अनेक अनन्त सत्ता हो गयी, ऐसा नहीं।

भगवान आत्मा ज्ञानसत्ता तो एक है। एक से कभी छूटा नहीं। भाव भी गजब, भाई! यह तो व्रत पालना और दया पालना, अपवास करना, लो, ऐ सेठ! रस नहीं खाना, दूध नहीं पीना, दही नहीं खाना। धर्म हो गया। यह तो सब बाह्य की बात है, सुन न। तत्त्व की जब तक खबर नहीं, वहाँ अज्ञानी की यह क्रिया सब खोखली है। आहाहा! तत्त्व की मर्यादा क्या है? द्रव्यरूप मर्यादा क्या और पर्यायरूप मर्यादा क्या? दो की मर्यादा के ख्याल बिना, समझ बिना, श्रद्धा बिना, अकेला क्रियाकाण्ड करे, उसमें तो चार गति है। समझ में आया? समझने का काम तो तुम्हारा यह। .... अर्थ है न अर्थ। **अनन्त ज्ञेय के आकाररूप परिणमन करने से ज्ञान में अनेक विचित्रताएँ दिखती हैं, उन्हें विचारकर कोई कोई पशुवत् अज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान अनेक है।** समझ में आया? ज्ञान की सत्ता अनेकरूप ही है, ऐसा मानते हैं।

**और उसका एकान्त पक्ष ग्रहण करके लोगों से झगड़ते हैं, उनके अज्ञान हटाने के लिये स्याद्वादी ज्ञानी कहते हैं।** भैया! तुम अपेक्षा से समझो। पर्याय में अनेक होने पर भी, गुण सत्ता तो एक ही है। गुण और पर्याय दो मान। एकरूप रहने पर भी पर्याय अनेक होती है और अनेक होने पर भी ज्ञानसत्ता तो एक ही है। आहाहा! गजब बात!

मूलचन्दभाई! ऐसा सुना था वहाँ? लो। यह तो एक-एक शब्द में न्याय है। एक भी न्याय टूटा तो कुछ हाथ नहीं आयेगा। आहाहा!

ज्ञानी कहते हैं, ज्ञान अगम्य है। महा गम्भीर ज्ञानसत्ता अनादि-अनन्तनिधन, जिसमें अनन्त-अनन्त केवलज्ञान पर्याय पड़ी हैं, ऐसा गम्भीर ज्ञान है। वहाँ दृष्टि देने से ही सम्यग्दर्शन होता है। पर्याय की अनेकता पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता नहीं। गम्भीर है। ज्ञान का स्वभाव गम्भीर है। गहरी-गहरी उसकी सत्ता अनन्त, अनन्तपने की शक्तिरूप पड़ा है। अपने में ज्ञानसत्ता महागम्भीर है और **निराबाध रस से परिपूर्ण है।** भगवान परिपूर्णम् इदम्—आत्मा ज्ञानस्वभाव रस से भरा है। समझ में आया? उसका ज्ञायक स्वभाव है। द्रव्यदृष्टि से तो जानना... जानना... एकरूप त्रिकाल उसका स्वभाव है। **सो वह यद्यपि पर्यायदृष्टि से अनेक है, तो भी द्रव्यदृष्टि से एक ही है।** द्रव्यदृष्टि से एक का अर्थ सत्तारूप एक है। (सत्तारूप एक और) पर्याय में अनेक—दोनों को बराबर जानना, उसका नाम स्याद्वाद है। उसका नाम अनेकान्त सम्यग्दृष्टि का धर्म है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १५४, भाद्र कृष्ण २, सोमवार, दिनांक ०६-०९-१९७१**
**स्याद्वाद द्वार, पद १६ से १८**

स्याद्वाद अधिकार। चौथा पक्ष है। चौथा पक्ष है न? नीचे पाँचवाँ कलश है। अनेक। चौथे पक्ष में अनेकपना सिद्ध करना है। पर्याय में आत्मा का स्वभाव, पर्याय में अनेकपने ज्ञान हो ऐसा उसका स्वरूप है। अज्ञानी अनेक को मानता नहीं।

**ज्ञेयाकारकलङ्कमेचकचिति प्रक्षालनं कल्पय-**
**न्नेकाकारचिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति।**
**वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानं स्वतःक्षालितं,**
**पर्यायैस्तदनेकतां परिमृशन्पश्यत्यनेकान्तवित्।।५।।**

★ ★ ★

**काव्य - १६**

**चतुर्थ पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन** (सवैया इकतीसा)

**कोऊ कुधी कहै ग्यान मांहि ज्ञेयकौ अकार,**
**प्रतिभासि रह्यौ है कलंक ताहि धोइये।**
**जब ध्यान जलसौं पखारिकै धवल कीजै,**
**तब निराकार सुद्ध ग्यानमय होइयै।।**
**तासौं स्यादवादी कहै ग्यानकौ सुभाउ यहै,**
**ज्ञेयकौ अकार वस्तु मांहि कहां खोइयै।**
**जैसे नानारूप प्रतिबिंबकी झलक दीखै,**
**जद्यपि तथापि आरसी विमल जोइयै।।१६।।**

**शब्दार्थः-कुधी=मूर्ख। प्रतिभासि=झलकना। कलंक=दोष। पखारिकै=धो करके। धवल=उज्ज्वल। आरसी=दर्पण। जोइयै=देखिये।**

**अर्थः-कोई अज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान में ज्ञेय का आकार झलकता है, यह ज्ञान का दोष है, जब ध्यानरूप जल से ज्ञान का यह दोष धोकर साफ किया जाये तब शुद्ध ज्ञान निराकार होता है। उससे स्याद्वादी ज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान का ऐसा ही स्वभाव है, ज्ञेय का आकार जो ज्ञान में झलकता है, वह कहाँ भगा दिया जावे? जिस प्रकार दर्पण में यद्यपि अनेक पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं, तो भी दर्पण ज्यों का त्यों स्वच्छ ही बना रहता है, उसमें कुछ भी विकार नहीं होता।।१६।।**

काव्य-१६ पर प्रवचन

**कोऊ कुधी कहै ग्यान मांहि ज्ञेयकौ अकार,**
**प्रतिभासि रह्यौ है कलंक ताहि धोइयै।**
**जब ध्यान जलसौं पखारिकै धवल कीजै,**
**तब निराकार सुद्ध ग्यानमय होइयै॥**
**तासौं स्यादवादी कहै ग्यानकौ सुभाउ यहै,**
**ज्ञेयकौ अकार वस्तु मांहि कहां खोइयै।**
**जैसे नानारूप प्रतिबिंबकी झलक दीखै,**
**जद्यपि तथापि आरसी विमल जोइयै॥१६॥**

पहला तत्-अतत् का भंग आ गया। दूसरा 'एक' का आया। यह 'अनेक' का है। यह स्याद्वाद अधिकार बारीक-सूक्ष्म है। **कोऊ कुधी....** कुबुद्धि ऐसा कहे कि **ग्यान मांहि ज्ञेयकौ अकार,...** इस ज्ञान की पर्याय में अनेक ज्ञेय ज्ञात हों, तो अनेकपना है, वह दोष है, ऐसा कहता है। समझ में आया? **प्रतिभासि रह्यौ है कलंक ताहि धोइयै।** यह क्या? ज्ञान तो एकरूप होना चाहिए। उसमें इस ज्ञान की पर्याय में अनेकपने चीज़ें भासित होती हैं, वह पर्याय में अनेकपना भासन, वह कलंक है, ऐसा अज्ञानी मानता है। सर्वथा एक ही माननेवाला, उसे अनेकपना मानना विपरीत लगता है। समझ में आया? पर के कारण अनेक, ऐसा नहीं। परन्तु अपने में अनेकपना भासित होता है, वह दोष उसे लगता है। ज्ञानपर्याय का तो स्वभाव है कि अनेक को जाने। जानने पर भी कहीं

ज्ञानस्वभाव एकरूप है, वह खण्ड-खण्ड नहीं हो गया। वह तो ज्ञान पर्याय का स्वभाव है, जानना। अनेक को जाने, अनेकरूप जाननेरूप परिणमे। उस चीज़ का पर्यायस्वभाव धर्म है। वह कहीं कलंक और दोष (नहीं है)। जीव का पर्यायस्वभाव धर्म है। सूक्ष्म बात ली है न स्याद्वाद से।

**जब ध्यान जलसौं पखारिकै धवल कीजै,...** अज्ञानी कहता है। इस ज्ञान में अनेकपना भासित होता है, वह अनेकपना ध्यान करके धो डालें। अनेकपना चला जाये तो ही आत्मा शुद्ध होगा। **तब निराकार सुद्ध ग्यानमय होइयै।** अनेकपने का भाग नाश हो तो ज्ञान शुद्ध होगा, ऐसा अज्ञानी कहता है। निराकार शुद्ध ज्ञान। अकेला निर्विकल्प अकेली चीज़ एकरूप भासित हो, तब उस ज्ञान की शुद्धता कही जाये। प्रश्न समझ में आता है? अज्ञानी के प्रश्न का रूप कि यह भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप है, वह सर्वथा एक ही है, ऐसा माननेवाले को पर्याय में, पर के कारण अनेक ऐसा नहीं, परन्तु पर्याय में अनेकपना भासित होता है, वह उसे कलंक लगता है।

**मुमुक्षु :** दोष लगता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दोष लगता है। पर्याय का तो स्वभाव है। अनेक को जानने पर भी वह पर्याय अपने स्वभावरूप है। वह कहीं विभावरूप-पररूप नहीं। अरे!

**तासौं स्यादवादी कहै...** भगवान ज्ञानस्वरूप तेरा है, वह वस्तु से एक है। **ग्यानकौ सुभाउ यहै, ज्ञेयकौ अकार वस्तु मांहि कहां खोइयै।** कहते हैं कि भाई! तेरे ज्ञान का पर्यायस्वभाव—अवस्था का स्वभाव अनेक को जानना, वह तो स्वभाव है। उसे कैसे खो डाला जाये? उसका कैसे अभाव हो? आहाहा! **ज्ञेयकौ अकार वस्तु मांहि कहां खोइयै।** पर्याय में ज्ञान की दशा तो अनेक को जाने, लोकालोक को जाने। अनेक को जानने से अनेकपना खो बैठे, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। समझ में आया? अरे, ऐसी बात! अब इसमें धर्म करनेवाले को करना क्या?

**मुमुक्षु :** ज्ञान करना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु धर्म करनेवाला ज्ञानस्वभाव से एक है और पर्यायस्वभाव से अनेक है। अनुभव में अनेक गुण के परिणमन का अनुभव होता है। अनुभव में एक

द्रव्य का ही अनुभव होता है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पर्याय में ज्ञान, आनन्द, शान्ति, सत्ता, प्रभुता इत्यादि का परिणमन अनेकरूप है, वह तो उसका स्वभाव है। अनुभूति की पर्याय का ही ऐसा स्वभाव है। वह मैल नहीं। वह पर के कारण से अनेकपना हुआ है, ऐसा नहीं।

**ज्ञेयकौ अकार वस्तु मांहि कहां खोइयै। जैसे नानारूप प्रतिबिंबकी झलक दीखै,...** दर्पण का दृष्टान्त देते हैं। दर्पण में अनेकपने की चीज़ का प्रतिबिम्ब ज्ञात होता है। वह प्रतिबिम्ब **जद्यपि तथापि आरसी विमल जोइयै।** वह दर्पण तो विमल ही है। लाल-काला रंगरूप दिखता है, इससे वहाँ मैल है—ऐसा नहीं। वह तो दर्पण की निर्मल स्वच्छ अवस्था है। यदि उस अवस्था का निषेध करे तो पूरे दर्पण का नाश हो जायेगा। समझ में आया? अनेक माननेवाले को अनेक चीज़ है, उसका यहाँ ज्ञान होता है, वह अनेकरूप होता है और अनेकरूप ज्ञान का होना, वह तो पर्याय का स्वभाव है। वह स्वभाव कहाँ खोईये? ऐसा कहते हैं। उस स्वभाव का कहाँ नाश करिये? यह कहे कि यह अनेकपना ज्ञात होता है, वह दोष है। इसलिए ध्यान करके अनेकपना निकाल डालो, मैं अकेला रहूँ तो वह ज्ञान की शुद्धता कहलाये। अरे, ऐसी बातें! समझ में आया?

यह राग आदि होते हैं न? दया-दान-व्रत-भक्ति आदि का राग। कहते हैं कि विचित्र राग का ज्ञान तो ज्ञान में होता है। राग आदि, द्वेष आदि, वासना का ज्ञान होता है तो ज्ञानरूप पर्याय का अनेकपना होना, वह उसका स्वभाव है। रागरूप होना, उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! विचित्र प्रकार के राग हों, उसे ज्ञान की पर्याय अनेकरूप—विचित्ररूप जाने। समझ में आया? **'वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं'** ऐसा है न! तीसरे पद में है। **'वैचित्र्ये पि अविचित्रता उपगतं'।** ज्ञान की पर्याय में राग आदि, मैल आदि, पुण्य आदि ज्ञात हो, ऐसा विचित्रपना होने पर भी वस्तु तो एकरूप है। कहीं ज्ञान पलटकर जड़ हो गया है? पर्याय में, हों! और ज्ञान का परिणमन अनेकरूप हुआ, वह पररूप हुआ है, ऐसा नहीं। अरे, ऐसी बातें करना। सेठ! यह सब समझना पड़ेगा। आहाहा! अज्ञानी की दलील है, उसके सामने यह उत्तर है। अज्ञानी की दलील है कि यह भगवान....

**मुमुक्षु : कोऊ कुधी कहै** ऐसा अज्ञानी कहता है।

**कोऊ कुधी कहै...** यह भगवान ज्ञानस्वरूप, उसका तो एकरूप, एकरूप होना चाहिए। यह अनेकपना ज्ञात हो—राग ज्ञात हो, कुछ ज्ञात हो, परिवार ज्ञात हो, यह सब कसाई के घर ज्ञात हो, बकरे काटे ऐसा ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो... समझ में आया? जहाँ खड़ा हो वहाँ ऐसे ज्ञात हो। ज्ञान की पर्याय परिणमे कि यह बकरे काटता है यह..... ऐसा ज्ञान में उस प्रकार का अपने में अपने कारण से अनेकरूप से परिणमना, ऐसा विचित्रपना होने पर भी यह ज्ञान कहीं पररूप हुआ नहीं। अविचित्र रहा है। पाटनीजी! ऐसा स्वभाव और धर्म है, भाई! आहाहा!

**मुमुक्षु :** खट्टे-मीठे का स्वाद नहीं आवे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खट्टे-मीठे का स्वाद आता ही नहीं उसे। खट्टे-मीठे का ज्ञान अपना अपने कारण से परिणमता है कि यह खट्टा है, यह मीठा है। वह ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है कि अनेकरूप जो वस्तु है, उसे अनेकरूप जाननेरूप परिणमना। वह अनेकपने जाननेरूप परिणमने पर भी खट्टा हुआ है वह? ज्ञान खट्टा हुआ है। यह यहाँ तो कहते हैं।

कहो, यह ढोकला खट्टा हो। यह नींबू, नींबू कहते हैं न? चूसते हैं न नींबू? ज्ञान खट्टा होता है न? खट्टे का ज्ञान होता नहीं अनेकपने का?

**मुमुक्षु :** खट्टे का ज्ञान होता है, ऐसा कहाँ इनकार किया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उस ज्ञान में खट्टे का ज्ञान, मीठे का ज्ञान, चरपरे का ज्ञान, चौकोर का ज्ञान, त्रिकोण का ज्ञान, जो चीज़ होती है, ऐसा यहाँ ज्ञान होता है। परन्तु वह तो ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है। वह कहीं दोष है, ऐसा नहीं। ज्ञान की पर्याय में विचित्रपने का परिणमन होने पर भी अविचित्र अर्थात् रही है ज्ञान की पर्यायरूप। वह कहीं पर की पर्यायरूप हो गया है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! समझ में आया? ऐसा ही उसका स्वभाव आत्मा का है, ऐसा कहते हैं।

भगवान आत्मा वस्तुरूप से तो एकरूप होने पर भी उसकी पर्याय में अनेकपने जाननेरूप परिणमना, वह उसका स्वभाव है। अनेकरूप पर में होना, ऐसा स्वभाव नहीं। अनेक चीज़ोंरूप होना, ऐसा स्वभाव नहीं। परन्तु अनेक चीज़ को जानने पर ज्ञान में

अनेकपने का ज्ञान परिणमे, वह तो उसका स्वभाव है। आहाहा! समेटकर बुद्धि अन्तर में लाना, तब ज्ञान में अनेकपना ज्ञात हुआ, वह तो उसका धर्म है, कहते हैं। समझ में आया? यद्यपि दर्पण अनेकपने के रंग आदि से दिखता है। झलक अग्नि की, बर्फ की दर्पण में दिखाई दे। दर्पण बड़ा हो यहाँ सामने। कसाई बकरे को कटता हो। ऐसा ज्ञात होता है, वह तो दर्पण की अवस्था है। वह दर्पण की अवस्था बकरा काटे, उसरूप हुई नहीं। वह तो दर्पण स्वयं की अवस्थारूप हुआ है। आहाहा! समझ में आया? एक और अनेकपना तेरी चीज़ में ही है। वस्तुरूप से एक, पर्यायरूप से अनेक, तेरी सत्ता के यह दो अंश हैं। उसमें तू द्रव्य आ जाता है। पर के कारण से वह अनेकपने परिणमता नहीं। ... भाषा... भाषा। समझ में आया?

**तथापि आरसी विमल जोइयै,...** लो। **ज्ञेय का आकार जो ज्ञान में झलकता है, वह कहाँ भगा दिया जावे?** दर्पण में से कैसे निकाला जाये? अब यह अग्नि सामने है। उसमें दर्पण में दिखाई दे जलहल... जलहल... यह अब निकाल डालो तो दर्पण स्वच्छ रहे। कहाँ से निकाल डालेगा? वह तो उसकी पर्याय का धर्म है। पर्याय निकाल डालने पर द्रव्य भी रहेगा नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! **जिस प्रकार दर्पण में यद्यपि अनेक पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं, तो भी दर्पण तो ज्यों का त्यों स्वच्छ ही बना रहता है।** विचित्र होने पर भी वह दर्पण की अवस्थारूप ही अविचित्ररूप रहा हुआ है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** तो फिर भगवान को काला-पीला क्यों कहा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसी ने कहा नहीं? वह तो शरीर के कारण कहा है। भगवान काले-पीले हैं ही कहाँ? इसलिए कहा जाता है न कि शरीर की स्तुति, वह भगवान की स्तुति नहीं है। भगवान काले-पीले हैं? भगवान मरुदेवी के पुत्र हैं? नाभिराजा के पुत्र हैं ऋषभदेव? कौन किसके पिता और कौन किसका पुत्र? द्रव्य स्वतन्त्र परिणमता है वहाँ। ज्ञान में जानने में आया कि यह एक पिता रूप से शरीर के निमित्त में थे, शरीर में। मुझे तो कुछ है ही नहीं ज्ञान में। आहाहा! ज्ञान तो शरीर को जाने और निमित्त पिता को जाने, ऐसा अनेकरूप ज्ञान परिणमे। आहाहा!

ऐसा आता है यह श्वेताम्बर में। वह देवानन्दा के गर्भ से जन्मे थे न! पिछली रात्रि में हुए थे न! ऐसा है न उनमें? बात खोटी है। देवानन्दा ब्राह्मणी, उसके गर्भ में

महावीर पहले रहे थे। फिर पिछली रात्रि में देव को खबर पड़ी कि अरे! ब्राह्मण के कुल में तीर्थंकर नहीं होते। यह तो कल्पित जोड़ा है। परन्तु यह जानना चाहिए न उसे। उससे इन्द्र ने बदल दिया त्रिशला के गर्भ में। जन्म यहाँ हुआ त्रिशला के यहाँ। अब जब भगवान को केवलज्ञान हुआ, तब देवानन्दा दर्शन करने आयी, पूर्व की माता। वह बड़ी उम्र में हो बच्चा, हो जाये वह। उसे ऐसे देखते-देखते उसके स्तन में से दूध निकला। क्योंकि .....

**मुमुक्षु :** मेरा पुत्र।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहा! फिर भगवान कहते हैं, हे गौतम! यह मेरी अम्मा, यह मेरी माता थीं। ऐई! गजब बात ऐसी... भगवान को दो पिता और दो माता कहना, वह तो कलंक है। सेठ!

**मुमुक्षु :** किसमें लिखा है श्वेताम्बर में?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** श्वेताम्बर में लिखा है। श्वेताम्बर में बड़ा पाठ, बड़ी पुस्तक है। भगवान की वाणी है, ऐसा लिखा है।

**मुमुक्षु :** कल्पना की वाणी....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कल्पना की वाणी है। परन्तु कैसा... ले गये? केवली ऐसा बोले कि 'यह मेरी अम्मा है', ऐसा। कहाँ तक? ऐ चेतनजी! आता है या नहीं तुम्हारे कल्पसूत्र में न? आचारांग, भगवती (सूत्र) में आता है। किसकी माँ और किसके बापू?

आत्मा ज्ञान की पर्याय में द्रव्यदृष्टि से ज्ञान जहाँ परिणमने लगा, वह ज्ञान, दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि अनेक पर्यायें परिणमे। और ज्ञान की पर्याय में भी अनेक प्रकार के ज्ञेयरूप अपने को जानने के स्वभावरूप परिणमे। ज्ञान स्वयं ज्ञेय के जाननेरूप परिणमा, इसलिए ज्ञेयरूप हुआ और ज्ञान की अवस्था की अनेकता चली गयी, ऐसा नहीं। समझ में आया? ऐसा सर्वज्ञ का मार्ग, ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? यह पाँचवाँ कलश हुआ। छठवाँ। इस ओर है न! यह द्रव्य का आया अब। परद्रव्यरूप मैं हूँ, परन्तु स्वद्रव्यरूप नहीं, उसका—अज्ञानी का यह बोल है। इन्द्रिय से ज्ञात होते

परद्रव्य प्रगट हैं, वह मैं हूँ। यह तो अप्रगट है पूरा चैतन्यतत्त्व, इसलिए उसे न भासकर, यह सब भासित होता है... 'घट-पट आदि जानता, जिससे उसको मान।' आता है न! 'किन्तु जाननेवाले को मान नहीं.....' यह इन्द्रिय से प्रत्यक्ष दिखाई दे, उस चीज़ की अस्ति से मेरी अस्ति है, ऐसा माननेवाले परद्रव्य से मेरा अस्तित्व है, ऐसा मानते हैं। उस अज्ञानी की यहाँ दलील है। समझ में आया? यह तत्-अतत्, एक-अनेक चार बोल गये। अब स्वद्रव्यरूप से, स्वक्षेत्ररूप से, स्वकालरूप से और स्वभावरूप से है। उसमें स्वद्रव्यरूप से है, यह वह पहला बोल है।

**प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चित:,**
**स्वद्रव्यानवलोकनेन परित: शून्य: पशुर्नश्यति।**
**स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्य: समुन्मज्जता,**
**स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन् जीवति।।६।।**

ओहोहो! कैसी भाषा की!! अकेले न्याय के बोल हैं।

★ ★ ★

## काव्य - १७

**पंचम पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन** (सवैया इकतीसा)

**कोऊ अज्ञ कहै ज्ञेयाकार ग्यान परिनाम,**
**जौलौं विद्यमान तौलौं ग्यान परगट है।**
**ज्ञेयके विनास होत ग्यानकौ विनास होइ,**
**ऐसी वाकै हिरदै मिथ्यातकी अलट है।।**
**तासौं समकितवंत कहै अनुभौ कहानि,**
**पर्जय प्रवांन ग्यान नानाकार नट है।**
**निरविकलप अविनस्वर दरबरूप,**
**ग्यान ज्ञेय वस्तुसौं अव्यापक अघट है।।१७।।**

**शब्दार्थ:-अज्ञ=अज्ञानी। विद्यमान=मौजूद। कहानि=कथा। पर्जय प्रवांन=पर्याय के बराबर। नानाकार=अनेक आकृति। अव्यापक=एकमेक नहीं होनेवाला। अघट=नहीं घटती अर्थात् नहीं बैठती।**

**अर्थ:-कोई कोई अज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान का परिणमन ज्ञेय के आकार होता है, सो जब तक ज्ञेय विद्यमान रहता है, तब तक ज्ञान प्रगट रहता है, और ज्ञेय के विनाश होते ही ज्ञान नष्ट हो जाता है, इस प्रकार उसके हृदय में मिथ्यात्व का दुराग्रह है। उससे भेदविज्ञानी अनुभव की बात करते हैं कि जिस प्रकार एक ही नट अनेक स्वांग बनाता है, उसी प्रकार एक ही ज्ञान पर्यायों के अनुसार अनेक रूप धारण करता है। वास्तव में ज्ञान निर्विकल्प और नित्य पदार्थ है, वह ज्ञेय में प्रवेश नहीं करता, इसलिए ज्ञान और ज्ञेय की एकता नहीं घटती।।१७।।**

---

**काव्य-१७ पर प्रवचन**

---

पंचम पक्ष का स्पष्टीकरण। स्पष्टीकरण और उसका खण्डन। समझ में आया? ऐसा पंचम पक्ष क्या कहता है, उसका कथन और उसका खण्डन। दोनों इसमें अन्दर हैं। उसमें भी ऐसा था न? चतुर्थ पक्ष का स्पष्टीकरण। चौथे पक्षवाला एकान्ती क्या कहता है, उसका स्पष्टीकरण और उसका खण्डन।

**कोऊ अज्ञ कहै ज्ञेयाकार ग्यान परिनाम,**
**जौलौं विद्यमान तौलौं ग्यान परगट है।**
**ज्ञेयके विनास होत ग्यानकौ विनास होइ,**
**ऐसी वाकै हिरदै मिथ्यातकी अलट है॥**
**तासौं समकितवंत कहै अनुभौ कहानि,**
**पर्जय प्रवांन ग्यान नानाकार नट है।**
**निरविकलप अविनस्वर दरबरूप,**
**ग्यान ज्ञेय वस्तुसौं अव्यापक अघट है॥१७॥**

नहीं घटती, नहीं बढ़ती, (ऐसा) **अघट** का अर्थ किया है न! **कोऊ अज्ञ कहै...**

अज्ञानी ऐसा कहता है कि **ज्ञेयाकार ग्यान परिनाम,...** परद्रव्य के आश्रय से परिणाम जो होते हैं, वे **जौलौं विद्यमान...** जब तक परद्रव्य विद्यमान, तब तक यहाँ ज्ञानाकार विद्यमान है। **तौलौं ग्यान परगट...** समझ में आया? यह तो अकेला न्याय का विषय है न! प्रगट यह चीज़ है, वहाँ तक यहाँ ज्ञान दिखता है। वह चीज नहीं तो ज्ञान दिखता (नहीं)। इसलिए आत्मा परद्रव्यरूप ही है। कहो, समझ में आया? ज्ञान में महल, हाथी, हवेली, इज्जत, कीर्ति, पैसा, पुत्र ऐसे दिखें और वे जहाँ जाये, वहाँ ज्ञान का बदलना हो जाये। इसलिए मेरा ज्ञान ही पररूप था, वह पूरा बदल गया। समझ में आया? परद्रव्यरूप 'मैं' हूँ, ऐसा सिद्ध करना है।

**ज्ञेयके विनास होत ग्यानकौ विनास होइ,...** उस द्रव्य का नाश हो तो यह जानने का ज्ञान भी वहाँ रहता (नहीं)। इसलिए पर के कारण ज्ञान था, वह नाश हो जाता है। कहो, समझ में आया? यह सब सूक्ष्म शल्य होते हैं, उसकी बात है। **ऐसी वाकै हिरदै मिथ्यातकी अलट है।** लो। **अलट** का अर्थ किया नहीं कुछ। **मिथ्यातकी अलट है।**

**मुमुक्षु :** दुराग्रह।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दुराग्रह है। अन्दर है। आहाहा! मिथ्यात्व का दुराग्रह है, लो। अन्दर है। **कोई कोई अज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान का परिणमन ज्ञेय के आकार होता है।** जब तक परद्रव्य दिखते हैं, वह प्रगट है, इन्द्रिय प्रत्यक्ष है। और वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष दिखता है, वहाँ तक मैं हूँ। वे जहाँ पलटे तो मैं भी हूँ नहीं, ऐसा कहता है। इन्द्रिय ज्ञानवाला है न यह। इन्द्रियज्ञानवाला तो परद्रव्य को जानते ही (मानता है कि) मानो परद्रव्य ज्ञात होते हैं, तो परद्रव्य के कारण। वह परद्रव्य.... अर्थ है न! **सो जब तक ज्ञेय विद्यमान रहता है, तब तक ज्ञान प्रगट रहता है।** ज्ञेय के बिना सत्पना.... वस्तु में ऐसा है? **ऐसी वाकै हिरदै मिथ्यातकी अलट है।**

यहाँ तो उसे '**प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावंचितः**' पहला पद है। लम्बा है इसका अर्थ। बहुत आया नहीं उसमें। वास्तव में तो इन्द्रियप्रत्यक्ष जो पदार्थ दिखते हैं घट, पट, स्त्री, पुत्र इत्यादि, आलिखित—ज्ञान में ज्ञात हों। स्फुट है, क्योंकि ऐसे बाहर प्रगट है। स्थिर (अर्थात्) कायम रहनेवाले हैं ऐसे। यही रहनेवाले हैं, ऐसा

दिखता है। वह रहनेवाला उसे दिखता नहीं। परद्रव्य अस्तित्वात्। परद्रव्य की अस्ति से ठगा गया है अज्ञानी। समझ में आया? आहाहा! स्त्री-पुत्र को कहे न कि भाई, यह तुम हो, वहाँ तक हम हैं। बाकी हो गया हमारा तो। स्त्री को मरते या जीतेजी कहे, यह तू है, तब तक यह मुझे व्यवस्थित है। बाकी तो फिर कुछ मेरा कोई पूछेगा नहीं। अरे! समझ में आया? मूढ़ है, कहते हैं। यह तू है, तब तक यह मेरी सम्हाल रखेगी और तब तक मैं टिकूँगा, हों! वरना तो फिर मर जाऊँगा। आहाहा!

श्रीमद् में आता है कि जिसका विरह एक क्षण भी सहन न हो, ऐसे स्त्री आदि के विरह अनन्त काल हुए परन्तु कुछ आत्मा का नाश हुआ (नहीं)। समझ में आया? ऐसा एक लेख पत्र (पत्रांक १२८) में आता है, हों! कि जिनका विरह एक क्षण भी सहन नहीं कर सकूँ, व्यय-विरह-अभाव। उनका अभाव हुए अनन्त काल गया, परन्तु कुछ आत्मा का अभाव हुआ (नहीं)। लड़का अच्छा हुआ हो तो उसे कहे, हे बेटा! यह तू है न तो मैं हूँ, हों! तू न हो तो मेरा कुछ पूछ नहीं, हों! तेरी इज्जत से मेरी इज्जत और तेरी अस्ति से मेरी अस्ति। यह स्नान करने भेजे न, वहाँ ऐसा कहे... स्नान समझ में आया? कोई मर गया हो न, बेटा! तू जा। तू है, वह मैं हूँ न! कोई मर गया हो न, मर गया। उसका स्नान करने को जाते हैं न? श्मशान में जाते हो अथवा पत्र आया कि भाई मर गया और सब जाये न! तुम्हारे नहीं जाते हैं?

**मुमुक्षु :** जाते हैं। बाहर से आके स्नान करते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, स्नान करते हैं वह। क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** मरघट जाने के बाद आकर नहावे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बहाँ, वह। यहाँ तो बात लगावे इतनी कि मर जाये उसका.... तो उस समय फिर ओ... ओ... कर जाये बाहर नहाने। अब स्वयं निवृत्त न हो तो पुत्र को कहे, तू जा। तू है, वह मैं हूँ। जा न तू। मूलचन्दभाई! ऐसा है या नहीं? ऐसा कहते हैं। हमने तो दुनिया सब देखी है न!

अरे! तू है तो मैं हूँ, यह कहाँ से आया? मूढ़! मैं हूँ तो मैं हूँ। तेरे कारण मैं हूँ, ऐसा है नहीं। आहाहा! लोग यों ही नहीं कहते कि समय बदलता है तब, तब सब बदल

जाता है। आता है न यह। यह गायन आता है। 'समय बदलता है तब सब पलट जाता है तब।' पुत्र मर जाये, पुत्री जाये, पैसा जाये, पुत्री विधवा। पुत्री विधवा हो। वह मर जाये तब तो दिक्कत नहीं। पुत्री विधवा, पुत्र मरे। शरीर में क्षय हो, दुकान टूटे, बीमावाला तब टूटे। दुकान जलती हो और जल जाये। पाँच लाख और तब बीमावाला टूट जाये। बीमावाली कम्पनी। कम्पनी वहाँ नाश हो गयी। अब चारों ओर की सुलगी। यह सब था न, तब हम यह जीते थे, हों! वरना अब तो मर ही गये। हाय... हाय! मूढ़ है.... ! उसके कारण से तू है ? आहाहा! ऐसा बहुत से कहते हैं, हों, यह सब। आहाहा! कहते हैं, **सो जब तक ज्ञेय विद्यमान रहता है, तब तक ज्ञान प्रगट रहता है, और ज्ञेय के विनाश होते ही ज्ञान नष्ट हो जाता है, इस प्रकार इसके हृदय में मिथ्यात्व का दुराग्रह है। अलट-अलट**—दुराग्रह।

**तासौं समकितवंत कहै अनुभौ कहानि,...** आहाहा! धर्मी जीव अनुभव की कथा कहे। **पर्जय प्रवांन ग्यान नानाकार नट है।** सुन न, भाई! यह तो पर्याय में ज्ञान का स्वभाव है कि अनेक प्रकार से परिणमना। इससे परिणमते वह पररूप हो गया है और पर है तो यह परिणमता है, ऐसा नहीं है। अरे! **पर्जय प्रवांन ग्यान नानाकार नट है।** परन्तु सिद्ध तो यह करना है अब, हों! ऐसा पर्याय में अनेकरूप परिणमन होने पर भी, निर्विकल्प और नित्य पदार्थ... सिद्ध यह करना है। परन्तु मेरा द्रव्य तो मेरे कारण से मुझमें अस्तित्व है। आहाहा! परद्रव्य के कारण से (नहीं)। आहाहा! आता है न मोक्षमार्गप्रकाशक में। घड़ीक में ... पागल ऐसा बोले कि शरीर मर जायेगा तो मैं ही मर जाऊँगा। घड़ीक में ऐसा कहे, शरीर जायेगा। और ऐसा भी बोले। आता है मोक्षमार्गप्रकाशक में कहीं (आता है)। शरीर गिरेगा या तो मैं गिरूँगा साथ में—मर जायेगा, ऐसा कहे। घड़ीक में (कहे) शरीर मरेगा और घड़ीक में कहे, मैं मरूँगा। पागल है, कहते हैं। उसे कहते हैं कि भाई! पर्याय में जानने के लिये (ज्ञान) अनेकरूप परिणमा, तथापि वस्तुरूप से तो एक निर्विकल्प एकरूप है। अनेक ही है, ऐसा है नहीं। आहाहा! परद्रव्य के कारण से है, ऐसा नहीं। आहाहा!

**निरविकलप अविनस्वर दरबरूप,...** भगवान! आहा! सवेरे आया था न भाई वह। 'सतत् सुलभ'। उसका एक विचार ऐसा आया। 'सतत् सुलभ।' वस्तु एक है,

उसका जहाँ स्वीकार हुआ, तो 'है' उसका स्वीकार तो सुलभ ही है, ऐसा कहते हैं। 'है' उसका अस्वीकार, वह दुर्लभ है। समझ में आया? 'सतत् सुलभम्' सवेरे आया था। निरन्तर सुलभ अर्थात् 'है' ऐसा भगवान पूर्ण स्वद्रव्यरूप से है, ऐसा भगवान। 'है' उसका जहाँ स्वीकार आया तो वह सुलभ ही हुआ है। 'है' उसका स्वीकार था न? समझ में आया? पूरी चीज़ ऐसी की ऐसी है पूर्ण प्रभु परमात्मा। वह निरन्तर सुलभ है, उसका अर्थ कि इतना और ऐसा है, ऐसा जहाँ स्वीकार हुआ, सुलभ है। ऐसा था, वहाँ उसे ज्ञात हो गया। समझ में आया? आहाहा! वस्तु है, वस्तु सुलभ है। सुलभ का अर्थ 'है' उसका स्वीकार करना है। नहीं, उसका स्वीकार करना नहीं यहाँ। अमरचन्दभाई! आहाहा!

यहाँ वह तो कहते हैं कि ऐसे इन्द्रियप्रत्यक्ष यह दिखता है न! यह सब दिखता है न, यह सब और स्थिर दिखता है ऐसे। टिकता दिखता है। शरीर टिकता दिखता है, यह सब स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान, महल, पैसा घर में हो, हजीरा—मकान टिकते दिखाई दें तो उसके कारण टिकता 'मैं' हूँ, ऐसा। अरे सुन न भाई! इन्द्रिय के विषय में टिकता दिखता है तो उसके कारण से टिकता है। उसके कारण से तू टिकता है, ऐसा कहाँ आया? टिकता समझते हैं? नित्य रहना। **निरविकलप अविनस्वर दरबरूप,...** वह तो अविनाशी, अभेद द्रव्यरूप वस्तु है। **ग्यान ज्ञेय वस्तुसौं अव्यापक...** तथापि वह द्रव्यस्वरूप ज्ञेय से अव्यापक है। ज्ञेय से व्यापक नहीं। ज्ञेयरूप परिणमी नहीं और ज्ञान, ज्ञान में अघट है—घट-बढ़ कुछ है नहीं। आहाहा! अरे गजब! समझ में आया?

इसने निजस्वभाव की त्रिकाल अस्ति और पर्याय में अनेकपना—यह वास्तविक क्या है, उसे अन्दर देखने नजर की ही नहीं। यह पर को देखने, यह है और वह है। आहाहा! यह सब चीज़ें थीं, वहाँ तक मुझे मजा था। यह चीज़ें गईं तो मेरा मजा उड़ गया। आहाहा! यह सब था, तब हमारी हूंफ अलग थी, उस समय। हमको हमारी अस्ति बाहर में इतनी स्पष्ट और व्यक्त थी कि हमारा जगत स्वीकार करे। और यह सब जाने पर, आहाहा! मानो हम नहीं। परन्तु तू कहाँ नहीं? वह था तो भी तू तुझसे है और न हो तो, गया तो भी तू तुझसे है। कुछ अन्तर पड़ता होगा या नहीं? चन्दुभाई! परन्तु लड़के अच्छे हों, पैसा अच्छा हो। बापूजी! आप कहो, ऐसा मुझे खर्च करने का भाव है, हों! आपकी अन्तिम स्थिति है। और इस प्रकार ऐसा लगे, मजा आ जाये। मैं पाँच

लाख पैदा करके आया हूँ। आप कहो, तत्प्रमाण... अब आपकी अन्तिम स्थिति है। आहाहा! काल का मजा आवे, लो। ऐई मलूकचन्दभाई! गजब यह तो!

यह ऐसा मजा आया, वह पर के कारण था? वह तो तूने हर्ष में माना और उसका यहाँ ज्ञान हुआ। वह ज्ञान हर्ष के कारण हुआ नहीं। वह तो ज्ञान, ज्ञान के कारण से हुआ है। वह ज्ञान का होना, ऐसा होने पर भी उसका एकपना टला नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। स्वद्रव्यपना टला नहीं। आहाहा! भारी जवाबदारी, कहते हैं। जवाबदारी का अर्थ, तेरी चीज़ ही ऐसी है कि तू पररूप हुआ नहीं और पर का ज्ञान हुआ, वह तो तेरी पर्याय का धर्म है। वह अनेकपने होने पर भी एकपना टला नहीं। स्वद्रव्यपने का नाश कभी हुआ नहीं। समझ में आया? आहाहा! **निर्विकल्प और नित्य पदार्थ है, वह ज्ञेय में प्रवेश नहीं करता,...** (ऐसा) व्यापक का अर्थ किया। **इसलिए ज्ञान और ज्ञेय की एकता नहीं घटती।** भगवान आत्मा अनन्त स्वरूप ज्ञानस्वरूप और शरीर, वाणी, मन सब ज्ञेय—इन दोनों की एकता कभी घटित नहीं होती। दोनों की एकता घटित नहीं होती और अपने में घट-बढ़ नहीं होती। समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** गुरु के अतिरिक्त ज्ञान किस प्रकार आ जाये?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु वह ज्ञानस्वभाव न हो तो बैठे किस प्रकार? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**ग्यान ज्ञेय वस्तुसौं...** अर्थात् स्वद्रव्य, ज्ञान शब्द से। ज्ञान शब्द से स्वद्रव्य, ज्ञायकवस्तु। **ज्ञेय वस्तुसौं अव्यापक....** ज्ञेय में प्रवेश किया नहीं और ज्ञेय के कारण वह है नहीं। अघट है। वह तो भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी अर्थात् द्रव्य... ज्ञान शब्द से आत्मा लेना है। वह तो आत्मा द्रव्य है, वह है। उसमें कहीं घट-बढ़ हुई नहीं। आहाहा! प्रगट है। छठवाँ (बोल) हुआ कलश। सातवाँ (कलश)।

अब यह है वह परद्रव्य से नास्ति का भंग है। छठवाँ था वह परद्रव्य से मैं हूँ, ऐसा माननेवाला (अज्ञानी का) ऐसा अस्ति का भंग था। स्वद्रव्य से हूँ ऐसा (ज्ञानी का) अस्ति का भंग था वह। यहाँ अब परद्रव्य से नहीं, ऐसा नास्ति का भंग है। **छट्ठे पक्ष का स्पष्टीकरण और उसका खंडन।** छठवें पक्षकार को क्या कहना है, उसका स्पष्टीकरण और पश्चात् उसका खण्डन। सातवाँ श्लोक है नीचे।

**सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः,**
**स्वद्रव्यभ्रमतः पशुः किल परद्रव्येषु विश्राम्यति।**
**स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां,**
**जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत्।।७।।**

गजब धर्मकथा भाई ऐसी! अब तो सर्दी का मौसम हुआ है न, इसलिए अधिक (लोग) नहीं रहे। अब वे अधिक हों, वहाँ और ऐसा क्या लगाया? कहे। छठवाँ भंग।

★ ★ ★

## काव्य - १८

**छट्ठे पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन** (सवैया इकतीसा)

**कोऊ मंद कहै धर्म अधर्म आकास काल,**
**पुदगल जीव सब मेरो रूप जगमैं।**
**जानै न मरम निज मानै आपा पर वस्तु,**
**बांधै द्रिढ़ करम धरम खोवै डगमैं।।**
**समकिती जीव सुद्ध अनुभौ अभ्यासै तातैं,**
**परकौ ममत्व त्याग करै पग पगमैं।**
**अपने सुभावमैं मगन रहै आठौं जाम,**
**धारावाही पंथक कहावै मोख मगमैं।।१८।।**

**शब्दार्थः-द्रिढ़=पक्के। धरम=पदार्थ का निजस्वभाव। ढग=कदम। जाम=पहर। आठौं जाम=हमेशा। पंथक=मुसाफिर।**

**अर्थः-कोई ब्रह्म अद्वैतवादी मूर्ख कहते हैं कि धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गल और जीव यह सर्व जगत ही मेरा स्वरूप है, अर्थात् सब द्रव्यमय ब्रह्म है, वे अपना निजस्वरूप नहीं जानते और पर-पदार्थों को निज आत्मा मानते हैं, इससे वे समय समय पर कर्मों का दृढ़ बन्ध करके अपने स्वरूप को मलिन करते हैं। पर**

**सम्यग्ज्ञानी जीव शुद्ध आत्म-अनुभव करते हैं, इससे क्षण-क्षण में पर पदार्थों से ममत्वभाव हटाते हैं, और मोक्षमार्ग के धाराप्रवाही पथिक कहाते हैं।।१८।।**

## काव्य-१८ पर प्रवचन

**कोऊ मंद कहै धर्म अधर्म आकास काल, पुदगल जीव सब मेरो रूप जगमैं।** यह सब द्रव्य है, वह मैं हूँ। वेदान्त मानता है न यह सब। सब होकर मैं हूँ। एक हूँ... एक हूँ... एक हूँ... भगत कहते थे। अरे भगवान! सुन। एक हूँ—ऐसा तूने निर्णय किया, इसका अर्थ ही हुआ कि निर्णय और निर्णयवाली वस्तु दो हो गयी। एक हूँ, ऐसा निर्णय किया। एक हूँ, ऐसा निर्णय (पहले) नहीं था। एक हूँ, ऐसा निर्णय हुआ तो पर्याय और द्रव्य दो हो गये। बराबर है? आहाहा! निर्णय करनेवाली पर्याय दूसरी और निर्णय करना है, जिस लक्ष्य में, वह चीज़ दूसरी। यह निर्णय की पर्याय में वह चीज़ आयी नहीं और निर्णय की पर्याय द्रव्य में प्रवेश की नहीं। द्वैत हो गया। समझ में आया?

**कोऊ मंद कहै धर्म अधर्म आकास काल, पुदगल जीव...** यह सब दूसरे जीव—सिद्ध और निगोद और सब अनेक हैं। (अज्ञानी मानता है), एक ही है। **सब मेरो रूप जगमैं।** सब एक हैं, सब एक हैं। समन्वय करते हैं न अभी। सर्व धर्म समन्वय। सर्व धर्म समान है। सर्व को एक मानते हैं। मूढ़ है, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** मानवधर्म।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मानवधर्म। मानव का धर्म कहाँ से आया? मानव / मनुष्य तो यह जड़ मिट्टी है। आतमधर्म। आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु का धर्म जानना, देखना और आनन्द और वीर्य, ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसा स्वभाव प्रगट हो पर्याय में, उसका नाम धर्म। आहाहा! **'वत्थुसहावोधम्मो'**। भगवान आत्मा वस्तु, उसमें बेहद—अपरिमित अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन—ऐसा जो स्वरूप उसका, वह स्वरूप (वह) 'मैं', दूसरे स्वरूप से मैं (नहीं), ऐसा अन्दर निर्णय होकर पर्याय में जागृति हो, उसका नाम धर्म। जहाँ ऐसी चीज़ का भान हो, उसकी पर्याय में उसका नाम धर्म। वह पर्याय कहीं पर के कारण से हुई है, ऐसा है (नहीं)। आहाहा!

**सब मेरो रूप जगमैं।** सब आत्मा हम हैं। यह तो धर्म-अधर्म कहाँ.... ? पर्याय का स्वभाव है कि छह द्रव्य को जाने। जानते हुए उसे ऐसा हो जाये कि यह सब हम हैं। हम न हों तो यह उसका ज्ञान कैसे हो ? इसलिए सब चीज़ें ही ज्ञानस्वरूप हैं। समझ में आया ? यह तो स्याद्वाद अधिकार है। **जानै न मरम निज मानै आपा पर वस्तु,...** देखो ! **जानै न मरम...** कि परद्रव्य भिन्न है और तेरा द्रव्य (भिन्न है)। परद्रव्य से नास्ति है। पर के कारण तेरी अस्ति है, ऐसा नहीं। यह द्रव्य की व्याख्या है न ! **जानै न मरम निज मानै आपा पर वस्तु,...** अपने को परवस्तु माने, द्रव्यरूप से। परद्रव्यरूप से अपने को माने।

**बांधै द्रिढ़ करम...** कठोर कर्म बाँधे मिथ्यात्व के, कहते हैं। आहाहा ! दूसरे प्रकार से कहें तो परद्रव्य की सहायता मिले तो मुझे कुछ हो, वह परद्रव्य को ही अपना स्वरूप मानता है, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य की सहायता मिले तो कुछ मेरे आत्मा का आश्रय हो और धर्म हो। कहते हैं, मर्म नहीं जानता। **निज मानै आपा पर वस्तु,...** परवस्तु से अपनेरूप मानता है। आहाहा ! यह देखने से, व्यवहार है, वह भी परद्रव्य है निश्चय से। आहाहा ! परद्रव्य से मेरा स्वरूप स्व का आश्रय टिकता है और होता है, वह परद्रव्य के अस्तित्व से मैं हूँ—ऐसा माननेवाला, परद्रव्य की नास्ति से मैं हूँ—ऐसा वह मानता नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात न ले बेचारे, जोड़ दिया व्रत करो और अपवास करो और कायक्लेश। शुभ उपयोग की मिथ्या दृष्टि। भाई में आता है उसमें।

अभी मुझे शुभ उपयोगी मिथ्यादृष्टि का परिचय है। भाई में—निहालभाई में है। वहाँ वे दो-चार इकट्ठे होकर बैठे हों न चर्चा करने। ऐसा आता है। एक जगह है। 'किसी किसी समय तत्त्व की बात निकलती है' ऐसा कहते हैं। 'ऐसा है परन्तु लम्बा चलता नहीं वापस।' ऐसा एक जगह कहीं है। हरिभाई ! है उसमें ? उसमें है। 'जहाँ बैठते हैं, वहाँ शुभ उपयोगी मिथ्यादृष्टि का संसर्ग है' ऐसा कहे। मन्द कषाय की बातें करे। ऐसे अपवास और ऐसे व्रत, ऐसे तप और यह करूँ.... अरे ! तू कौन है ? उसके कारण तुझे लाभ है, वह वस्तु में है नहीं। आहाहा ! हीरालालजी ! भारी कठिन, भाई ! और आगे जाने पर तो वहाँ भी लिया न कि पर्याय है, वह परद्रव्य है। इसलिए पर्याय है तो मेरा स्वद्रव्य है, ऐसा (माना तो) उसने पर्याय से नास्ति हूँ तो मैं हूँ, ऐसा नहीं

माना। आहाहा! हीराभाई! यह तो जैनदर्शन है। आहाहा! महा गम्भीर और सन्तों की वाणी बहुत गहरी!

कहते हैं, **जानै न मरम...** पर्याय के कारण और राग के कारण 'मैं', परद्रव्य के कारण 'मैं' ऐसा माननेवाला **जानै न मरम...** यह द्रव्य की अपेक्षा से बात की है। काल में ऐसा आवे। **निज मानै आपा पर वस्तु, बांधै द्रिढ़ करम धरम खोवै डगमैं।** पर्याय पर्याय में धर्म को खोता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अपनी त्रिकाली अस्ति का सत्त्व, उसका अनुभव और स्वीकार नहीं, इससे मेरा अस्तित्व पर के कारण से है, ऐसा इसने माना है। वह **धरम खोवै डगमैं।** डग-डग में, पर्याय-पर्याय में धर्म को खोता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न उसमें।

**मुमुक्षु :** कदम-कदम पर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। **बन्ध करके अपने स्वरूप को मलिन करते हैं।** इतना लिया। **खोवै डगमैं....** कदम लिखा है अर्थ में। डग अर्थात् कदम। कदम-कदम पर ठगाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? परद्रव्य का अस्तित्व, उसके कारण से मैं हूँ; राग के अस्तित्व के कारण से मैं हूँ, ऐसा माननेवाला कदम-कदम पर धर्म को खोता है। कदम-कदम पर ठगाता है। आहाहा! गजब बात है। **सब द्रव्यमय ब्रह्म है,...** ऐसा है न! सब जगत मेरा स्वरूप। सब द्रव्यमय ब्रह्म। सब होकर ब्रह्म है। यह तुझे भ्रम है। सब होकर ब्रह्म हैं, यह तुझे भ्रम है। समझ में आया? **खोवै डगमैं।**

**समकिती जीव सुद्ध अनुभौ अभ्यासै तातैं,...** लो। **सम्यग्ज्ञानी जीव शुद्ध आत्म-अनुभव करते हैं।** अर्थात् कि पर से नास्तिरूप होकर, मेरेरूप रहकर, पररूप नहीं होकर मैं अनुभव करता हूँ। आहाहा! पर का लक्ष्य छोड़कर और यह स्व के लक्ष्य से जो अनुभव होता है, वह पर से 'मैं' नहीं, ऐसा उसमें है। समझ में आया? पर के लक्ष्य से मुझमें कुछ हो तो पर के कारण से मैं हूँ—ऐसा मानता है। पर का लक्ष्य छोड़कर, भगवान अखण्डानन्द प्रभु के लक्ष्य से **सुद्ध अनुभौ अभ्यासै। परकौ ममत्व त्याग करै पग पगमैं।** लो। वह डग में आया था न! इस ओर आया था। पर्याय-पर्याय में। आहाहा! पर नहीं, ऐसा नास्तिरूप परिणमन पर्याय-पर्याय में होता है। समय-समय की पर्याय में

रागरूप नहीं, ऐसा परिणमन होता है। आहाहा! अरे! मूल चीज़ हाथ आयी नहीं, इसलिए फिर धर्म के नाम से गड़बड़ की। ठगाये बेचारे मिथ्यात्व में। आहाहा!

कहते हैं न, कदम-कदम पर। आहाहा! **इससे क्षण-क्षण में पर पदार्थों से ममत्वभाव हटाते हैं।** पररूप नहीं, ऐसी परपने की नास्तिरूप मानते, क्षण-क्षण में अपने अस्तित्व के धर्म का परिणमन परिणमन होता है। पररूप नहीं अर्थात् स्वपने का परिणमन होता है। आहाहा! **अपने सुभावमैं मगन रहै आठौं जाम,...** पररूप नहीं अर्थात् अपना ज्ञानानन्दस्वभाव, उसकी अनुभव दृष्टि, उसमें **मगन रहै आठौं जाम,...** आठों पहर। आहाहा! निरन्तर कहने से **आठौं जाम** लिया है यहाँ। दिन के चार पहर और रात्रि के चार। आठों पहर निरन्तर भगवान आत्मा राग से नास्तिरूप है, पर से नास्तिरूप है, शरीर और वाणी, मन आदि से नास्तिरूप है। ऐसा मानने से क्षण-क्षण में धर्म की पर्यायरूप परिणमने से आठों पहर यह आत्मा के स्वभाव में ही है। किसी क्षण भी वह राग में और पर में नहीं।

**अपने सुभावमैं मगन रहै आठौं जाम, धारावाही पंथक कहावै मोख मगमैं। मोक्षमार्ग के धाराप्रवाही पथिक कहाते हैं।** परपने के नास्तिपने के परिणमन में, स्वपने के अस्ति का जो परिणमन धारावाही चलता है, वह धारावाही मोक्षमार्ग का पथिक है। पंथ में चलनेवाला है। पर से नास्तिरूप होकर चलनेवाला है, ऐसा। पर को नास्तिरूप होकर चलनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी तो एक यह बनारसीदास ने डाली है। **धारावाही पंथक कहावै मोख मगमैं।** अपने ध्रुवस्वरूप के अस्तित्व से, पर के नास्तित्व से, परद्रव्यरूप नहीं परिणमने के नास्तित्व से, क्षण-क्षण में शान्ति के पंथ में परिणमता हुआ मोक्षमार्ग में धारावाही पथिक कहा जाता है। उसे धर्म होता है। पर से मैं हूँ, (ऐसा माननेवाले) को धर्म नहीं होता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १५५, भाद्र कृष्ण ३, मंगलवार, दिनांक ०७-०९-१९७१**
**स्याद्वाद द्वार, पद १९ से २१**

स्याद्वाद अधिकार। **सप्तम पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन।** यह क्या अधिकार है? छह बोल तो हो गये। आत्मा तत्स्वरूप से है और अतत् परस्वरूप से नहीं है। उसमें ज्ञान और ज्ञेय लेना, आत्मा पूरा नहीं लेना। पहले में ऐसा कहा कि... कहाँ गये तुम्हारे? देरी क्यों लगी? आते हैं?

ज्ञानस्वरूप आत्मा, वह स्वयं से है और ज्ञेय जो रागादि, शरीरादि वस्तु है, वह ज्ञेय है। वह ज्ञेय स्वभाव से ज्ञेय अस्ति है परन्तु ज्ञेयस्वभाव के अस्तित्व से ज्ञान का अस्तित्व नहीं है। समझ में आया? भगवान चैतन्यस्वभाव, वह अपने ज्ञान में ज्ञेय का ज्ञान (होता है), वह अपना ज्ञान है। वह अपने ज्ञान से स्वयं अस्ति है। अस्ति अर्थात् है, परन्तु पर से है नहीं। वह तत् है और अतत् से नहीं। यह दो भंग हो गये।

आत्मा ज्ञानस्वभाव से पर्याय में अनेकपने का ज्ञान होने पर भी वस्तुरूप से एक है। ज्ञान में रागादि और शरीरादि अनेकपना ज्ञात होने पर भी, अनेकरूप से जानने पर भी वस्तुरूप से एक है। यह जैनदर्शन का स्याद्वाद। वस्तु का स्वरूप यह है। और एक होने पर भी पर्यायरूप से अनेक है। यह चौथा भंग है। समझ में आया? यह चार हुए।

पाँचवें में स्वद्रव्य से अस्ति है। उसमें ज्ञान और ज्ञेय के अस्ति-नास्ति की बात थी। यह तो चीज़ भगवान आत्मा द्रव्यस्वरूप से स्वयं से अस्ति है और परद्रव्य से वह नास्ति है। आत्मा का अस्तित्व परद्रव्य के कारण अस्तिपना है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वह स्वद्रव्य से है और परद्रव्य से नहीं। ऐसे छह बोल हुए। अब सातवाँ।

आत्मा असंख्य प्रदेशी स्वक्षेत्र। भारी सूक्ष्म, भाई! अपने असंख्य प्रदेशी स्वक्षेत्र से है परन्तु परक्षेत्र से वह नहीं है। अस्ति का ऐसा तो पहला भंग है। **सप्तम पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन।**

★ ★ ★

## काव्य - १९

### सप्तम पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन

(सवैया इकतीसा)

कोऊ सठ कहै जेतौ ज्ञेयरूप परवांन,
तेतौ ग्यान तातैं कहूं अधिक न और है।
तिहूं काल परक्षेत्रव्यापी परनयौ मानै,
आपा न पिछानै ऐसी मिथ्यादृग दौर है।।
जैनमती कहै जीव सत्ता परवांन ग्यान,
ज्ञेयसौं अव्यापक जगत सिरमौर है।
ग्यानकी प्रभामैं प्रतिबिंबित विविध ज्ञेय,
जदपि तथापि थिति न्यारी न्यारी ठौर है।।१९।।

शब्दार्थ:-दौर=भटकना। सिरमौर=प्रधान। थिति=स्थिति।

अर्थ:-कोई मूर्ख कहते हैं कि जितना छोटा या बड़ा ज्ञेय का स्वरूप होता है, उतना ही ज्ञान होता है, उससे अधिक-कम नहीं होता, इस प्रकार वे सदैव ज्ञान को परक्षेत्रव्यापी और ज्ञेय से तन्मय मानते हैं, इससे कहना चाहिए कि वे आत्मा का स्वरूप नहीं समझ सके, सो मिथ्यात्व की ऐसी ही गति है। उनसे स्याद्वादी जैनी कहते हैं कि ज्ञान आत्म-सत्ता के बराबर है, वह घट-पटादि ज्ञेय से तन्मय नहीं होता, ज्ञान जगत का चूढ़ामणि है, उसकी प्रभा में यद्यपि अनेक ज्ञेय प्रतिबिम्बित होते हैं तो भी दोनों की सत्ताभूमि जुदी-जुदी है।।१९।।

---

### काव्य-१९ पर प्रवचन

---

कोऊ सठ कहै जेतौ ज्ञेयरूप परवांन,
तेतौ ग्यान तातैं कहूं अधिक न और है।
तिहूं काल परक्षेत्रव्यापी परनयौ मानै,
आपा न पिछानै ऐसी मिथ्यादृग दौर है॥

**जैनमती कहै जीव सत्ता परवांन ग्यान,**
**ज्ञेयसौं अव्यापक जगत सिरमौर है।**
**ग्यानकी प्रभामैं प्रतिबिंबित विविध ज्ञेय,**
**जदपि तथापि थिति न्यारी न्यारी ठौर है॥१९॥**

क्या कहते हैं? **कोऊ सठ.... कोई मूर्ख ऐसा कहता है कि ....** जितना शरीर का आकार, मकान का आकार, परवस्तु का जो आकार है, उसी प्रमाण आत्मा का ज्ञान है। पर के आकार, पर के क्षेत्र से ज्ञान का क्षेत्र है। समझ में आया? परक्षेत्र, इसका ज्ञान परक्षेत्र को जाने। जानने से अज्ञानी को ऐसा हो जाता है कि परक्षेत्र का ज्ञान है, इसलिए मैं हूँ। मेरे स्वक्षेत्र में, ज्ञान में मैं हूँ—ऐसी उसकी श्रद्धा का भान नहीं है। मकान-बकान अच्छा होवे न, उस क्षेत्र के आकार ज्ञान हो तो लगता है कि... आहाहा! हम अपने माँ-बाप के, कुटुम्ब के क्षेत्र में मकान में हैं तो हमारे ठीक है, तो उसके कारण हम निभते हैं। समझ में आया? अपना ऐसा दस पीढ़ी का मकान बाप-दादा का, यह अपने जाए (तो) अपना जीवन अच्छा नहीं कहलाये।

यह दृष्टान्त हमारे उमराला का है। उमराला का दृष्टान्त है। साधारण ब्राह्मण हो गये। मकान बिक गया। मकान समझे? बिक गया। बाद में हो गये पैसेवाले। तो उसकी माँ कहे, अरे..! बेटा! यह अपना सात पीढी का मकान.. ... वह मकान जब तक वापस न ले, तब तक मेरे जीव को कहीं ठीक नहीं पड़ता। कहाँ वह तेरा क्षेत्र है? वह तो परक्षेत्र है और ज्ञान में ज्ञात हुआ। एक बात वहाँ है, वह परक्षेत्र ज्ञान में ज्ञात होता है न? परक्षेत्र, इतनी जो पर्याय, वह स्वक्षेत्र से भिन्न है अथवा परक्षेत्र की पर्याय, उससे स्वक्षेत्र भिन्न है। उसमें है कहीं। कलश टीका में है। समझ में आया? क्षेत्र है न? क्या है वह? क्षेत्र का? कितना है वह? देखो! २५३ है। उसमें है। स्वद्रव्यमयी।

**'परद्रव्येषु' ज्ञेय को जानते हुए ज्ञेय की आकृतिरूप परिणमता है ज्ञान, ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, उसमें निर्विकल्प सत्तामात्र ज्ञानवस्तु होने की होती है भ्रान्ति....** समझ में आया? परद्रव्य में होने की अज्ञानी को भ्रान्ति होती है। सब शैली ऐसी ली है। यह तो हो गया है। ... है, वह सूक्ष्म बात है। जो यह ज्ञान है न? वह परक्षेत्र को जानने की जो पर्याय है, उतना मैं हूँ अर्थात् पर्याय जितना मैं हूँ। असंख्य प्रदेशी वस्तु भगवान

असंख्य प्रदेश आत्मा है। असंख्य प्रदेश में ज्ञान पूरा व्यापक है। अब उसमें एक समय की अवस्था में यह जो परक्षेत्र आकारवाला है, उसका पर्याय में जानना होता है। इसलिए उस परक्षेत्र का ज्ञान मानकर, उसे निकालना चाहता है। स्वक्षेत्र में रहने के लिये। इसलिए उस परक्षेत्र की पर्याय, ज्ञान की पर्याय, इसकी वास्तव में स्वक्षेत्र में तो नास्ति है। वजुभाई!

एक समय की जो ज्ञान की पर्याय, उसमें परक्षेत्र का ज्ञान हो, वह तो अपना ज्ञान है। तथापि वह परक्षेत्र का ज्ञान पर्याय में होता है, उसे वह अशुद्ध मानकर, परक्षेत्र से भिन्न मेरा स्वक्षेत्र है, ऐसा करके उस परक्षेत्र की पर्याय अज्ञानी नाश करना चाहता है। समझ में आया? और स्वक्षेत्र अकेला, पर से भिन्न है, वह उसे मानता नहीं। स्वक्षेत्र में रहने के लिये, स्वक्षेत्र में रहने के लिये पर्याय में जो परक्षेत्र का ख्याल है, उसका अभाव करूँ तो स्वक्षेत्र में रहूँ। ऐसा नहीं है। पर्याय में परक्षेत्र का ज्ञान एक अंश में—क्षेत्र में होने पर भी, उसरूप त्रिकाल क्षेत्र नहीं है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म।

परक्षेत्र तो आत्मा में है ही नहीं। यह बड़े बगीचे और बाग होते हैं न? इसलिए वहाँ इसे नजर स्थिर होती है। बड़े-बड़े बाग-बगीचे नहीं होते? वह 'सुन्दर टोलिया' का है न? वह अभी इन लोगों ने ले लिया है न, वहाँ दो बार गये थे न? पहले गये थे वहाँ ... वहाँ बड़े-बड़े लम्बे वृक्ष नहीं? बगीचा। उसमें से निकलना इसका ठीक नहीं पड़ता। क्योंकि परक्षेत्राकारवृत्ति हो गयी है न! क्षेत्राकारवृत्ति है। परन्तु वह तो परक्षेत्राकारवृत्ति इतना आत्मा है ही नहीं। उस परक्षेत्ररूप तो नहीं परन्तु परक्षेत्र का एक समय की पर्याय में ज्ञान हो, उतना आत्मा नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अज्ञानी... **कोऊ सठ कहै जेतौ ज्ञेयरूप परवांन,** जितना परज्ञेय है अथवा परज्ञेय का यहाँ ज्ञान है, उतने प्रमाण **तेतौ ग्यान तातैं कहूं अधिक न और है।** उतने प्रमाण आत्मा है। उससे अधिक और कम है नहीं। जैनदर्शन का सूक्ष्म विषय है। **तिहूं काल परक्षेत्रव्यापी परनयौ मानै...** अज्ञानी अपने ज्ञान में परक्षेत्र सम्बन्धी अपना ज्ञान (होता है तो) परक्षेत्र में ही मानो स्वयं गया हो, ऐसा मानता है अथवा एक समय की पर्याय में पूरा गया हूँ, (ऐसा मानता है)। **तिहूं काल परक्षेत्रव्यापी परनयौ मानै...**

**आपा न पिछानै ऐसी मिथ्यादृग दौर है।** परन्तु भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश, अनन्त गुण का चीर जिसमें भरा है, ऐसा असंख्य प्रदेशी वह स्वक्षेत्र है। गजब धर्म! ऐसी बात? इसकी अपेक्षा तो व्रत पालना और अपवास करना और भक्ति करना, यात्रा करना, हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं, सुन न अब। वह तो सब विकल्प है, वह तो सब राग है। आहाहा! उस राग का क्षेत्र वास्तव में भिन्न है। वह तो... उपयोग अधिकार। संवर (अधिकार में) आता है। भाई! राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, वह विकल्प है, उसका क्षेत्र अलग है। सेठ! कठिन काम, भाई! यह तुम्हारे बँगले का क्षेत्र तो अलग, परन्तु यह बँगला मेरा—ऐसा राग, उस राग का क्षेत्र अलग। आहाहा! एक समय की पर्यायबुद्धि है। परज्ञेयबुद्धि होने पर इसकी एक समय की पर्यायबुद्धि हो गयी। **आपा न पिछानै...** स्वयं भगवान असंख्य प्रदेशी अनन्त गुणस्वरूप, ज्ञानस्वरूप ऐसे स्वक्षेत्र पर इसकी नजर नहीं जाती। क्योंकि वह सब क्षेत्र अव्यक्त है और एक समय की पर्याय में ज्ञेय की आकृति का ज्ञान, वह व्यक्त प्रगट है। इसलिए प्रगट पर्याय को वह मानता है। समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म है, ऐई! निरंजन! वहाँ अमेरिका में हैरान हुए, पाँच वर्ष हैरान हुए। रामजीभाई ने सुमनभाई का ऐसा किया था, हों! वह अमेरिका गया था न? हैरान करने जाए। क्या कहलाये दूसरा? कष्ट में मरने। कष्ट में मरने जाता है। आहाहा! भगवान का स्वक्षेत्र तो अपने में है। वह अमेरिका के क्षेत्र का ज्ञान में ख्याल आया, उस पर्याय में, उतनी पर्याय जितना आत्मा नहीं है। पर जितना तो नहीं, परक्षेत्र तो इसमें नहीं, परन्तु परसम्बन्धी की ज्ञान की एक समय की पर्याय आकृतिरूप परिणमी, उतना भी आत्मा नहीं। आहाहा! कहो, हीराभाई! ऐसी बात है। **आपा न पिछानै....** कहीं आया था न? भजन में आया था। आपा। शिखरचन्दजी, शिखरचन्दजी पण्डित भजन करते थे न? **आपा न पिछानै...** वे मोटे शिखरचन्दजी नहीं आते?

**मुमुक्षु :** आपा नहीं जाना तूने, कैसा ज्ञानधारी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह 'आपा न पिछानै तो कैसा ज्ञानधारी?..

भगवान! तेरा क्षेत्र.. द्रव्य तो आ गया। तेरा क्षेत्र असंख्यप्रदेशी। वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं होता। असंख्य प्रदेशी स्वक्षेत्र, उसमें जो द्रव्यरूप भाव, वह

स्वक्षेत्र और पर्यायरूप का क्षेत्र, वह परक्षेत्र। **आपा न पिछानै ऐसी मिथ्याद्दग दौर है।** अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जैन में जन्मा होने पर भी, जैन सम्प्रदाय में रहा होने पर भी, उसे भान नहीं कि व्यवहार के दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का राग का क्षेत्र ही भिन्न है। उसमें स्व असंख्य प्रदेशी निर्मल क्षेत्र उसमें नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? **मिथ्याद्दग दौर है।** मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। इसमें है न? **इस प्रकार वे सदैव ज्ञान को परक्षेत्र व्यापी और ज्ञेय के साथ तन्मय मानते हैं, इसलिए कहना चाहिए कि वे आत्मा का स्वरूप समझ नहीं सके हैं। 'आपा न पिछानै' सो मिथ्यात्व की ऐसी ही गति है।** वास्तविक तो यह यहाँ सिद्ध करना है। वस्तु द्रव्य क्षेत्र, अपना क्षेत्र असंख्यप्रदेशी एकरूप, उसकी दृष्टि नहीं और अकेली पर्याय में दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

पर्याय है... पर्याय, पर्यायरूप से उस क्षेत्र में जाने, मेरा स्वभाव है, ऐसा जाने। परन्तु इससे मैं पररूप हो गया हूँ, ऐसा नहीं है। आकारवाली चीज़ होती है न? देखो न! त्रिकोणी, चौकोणी, गोल, लम्बगोल ऐसे अनेक प्रकार देखकर... वह आकार तो पर है, परन्तु उस आकार का यहाँ ज्ञान होता है स्वयं से, तथापि उतनी ही पर्यायरूप मैं ज्ञेयरूप हूँ, परक्षेत्ररूप हूँ और परक्षेत्र से अपनी पर्याय में होता स्वयं से ज्ञान एक समय की पर्याय उतना ही हूँ, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

**जैनमती कहै जीव सत्ता परवांन ग्यान....** जीव तो अपने ज्ञान की सत्ता प्रमाण ही है। पर की सत्ता प्रमाण नहीं। आहाहा! **'जैनमती कहै जीव सत्ता परवांन ग्यान....** जीव की सत्ता प्रमाण ज्ञान है। **ज्ञेयसौं अव्यापक...** वास्तव में परक्षेत्र से वह अव्यापक है। उसमें परक्षेत्र में उसने प्रवेश नहीं किया। यह तो ठीक, परन्तु उसकी जो एक समय की पर्याय है, परक्षेत्र को जानने की स्वतः (जो होती है), उसमें भी द्रव्य ने प्रवेश नहीं किया। हीरालालजी! लो, यह तुम्हारे छह लाख के मकान में प्रवेश नहीं किया, ऐसा कहते हैं। सेठ! और उस क्षेत्र का यहाँ ज्ञान होता है, वह ज्ञान की पर्याय भी परक्षेत्र के कारण (नहीं हुई है) और परक्षेत्र में नहीं गयी है तथा परक्षेत्र की जो ज्ञान पर्याय हुई, उतने में पूरा स्वक्षेत्र नहीं आता। आहाहा!

आत्मा स्वक्षेत्ररूप अस्तिरूप है। उसमें दो प्रकार। एक तो पर्याय में परक्षेत्र का ज्ञान होने पर भी परक्षेत्ररूप हुआ नहीं, स्वक्षेत्ररूप रहा है; और पर्याय में स्वक्षेत्र का जो

ज्ञान स्वयं से हुआ, उसे भी परक्षेत्र गिनकर, उसमें स्वक्षेत्र आता नहीं। आहाहा! **ज्ञेयसौं अव्यापक जगत सिरमौर है।** आहाहा! घट पट आदि ज्ञेय से तन्मय नहीं होता। वह तो **ज्ञान आत्मसत्ता के बराबर है, ज्ञान जगत का चूड़ामणि है,....** भगवान आत्मा चूड़ामणि मुकुट है। तीन काल, तीन लोक के पदार्थ के क्षेत्र को पर्याय में जानने पर भी पररूप हुआ नहीं और पर के क्षेत्र का ज्ञान एक समय में आया, उसरूप भी द्रव्य हुआ नहीं।

**ज्ञान की प्रभा में यद्यपि अनेक ज्ञेय प्रतिबिम्बित होते हैं....** इस ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयाकार क्षेत्र जो है, उसका प्रतिबिम्ब अर्थात् उसकी पर्याय में उस सम्बन्धी का ज्ञान होता है। समझ में आया? **तथापि दोनों की सत्ताभूमि भिन्न-भिन्न है।** परक्षेत्र भिन्न और भगवान आत्मा की पर्याय का क्षेत्र भिन्न है पर्याय का क्षेत्र भिन्न और द्रव्य का क्षेत्र भिन्न है। आहाहा! देखो, यह स्याद्वाद! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। यह सातवाँ भंग हुआ। आठवाँ।

**अष्टम पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन।** उसमें स्वक्षेत्र से है, इतना सिद्ध किया। अब इसमें परक्षेत्र से नहीं, यह भंग सिद्ध करते हैं। यह सामनेवाले ने परक्षेत्र से है, ऐसा सिद्ध किया, उसका खण्डन किया। अर्थात् स्वक्षेत्र में है, ऐसा सिद्ध किया। अब इसमें अज्ञानी कहता है कि परक्षेत्र से है। तब ज्ञानी कहते हैं, परक्षेत्र से नहीं। यह नास्तिभंग सिद्ध करना है, परन्तु सामनेवाले का तर्क लेकर। ऐसी धर्म की बातें। अब इसमें कहाँ... ऐ... मूलचन्दभाई!

**मुमुक्षु :** मस्तिष्क को फैलाना पड़े।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मस्तिष्क को अन्दर फैलाना पड़े।

चैतन्यसत्ता की अस्तित्व की स्थिति कितने क्षेत्र में है? वह परक्षेत्र में नहीं और परक्षेत्र से नहीं।

★ ★ ★

## काव्य - २०

### अष्टम पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन

(सवैया इकतीसा)

**कोऊ सुंनवादी कहै ज्ञेयके विनास होत,**
**ग्यानकौ विनास होइ कहौ कैसे जीजिये।**
**तातैं जीवतव्यताकी थिरता निमित्त सब,**
**ज्ञेयाकार परिनामनिकौ नास कीजिये।।**
**सत्यवादी कहै भैया हूजे नांहि खेद खिन्न,**
**ज्ञेयसौ विरचि ग्यान भिन्न मानि लीजिये।**
**ग्यानकी सकति साधि अनुभौ दसा अराधि,**
**करमकौं त्यागिकै परम रस पीजिये।।२०।।**

**शब्दार्थः-जीजिये=जीना होगा। खेद खिन्न=दुखी। विरचि=विरक्त होकर। अराधि=आराधना करके। सत्यवादी=पदार्थ का यथार्थ स्वरूप कथन करनेवाला।**

**अर्थः-कोई कोई शून्यवादी अर्थात् नास्तिक कहते हैं, ज्ञेय का नाश होने से ज्ञान का नाश होना सम्भव है, और ज्ञान जीव का स्वरूप है, इसलिए ज्ञान का नाश होने से जीव का नाश होना स्पष्ट है, तो फिर ऐसी दशा में क्योंकर जीवन रह सकता है। अतः जीव की नित्यता के लिये ज्ञान में ज्ञेयाकार परिणमन का अभाव मानना चाहिए। इस पर सत्यवादी ज्ञानी कहते हैं कि हे भाई! तुम व्याकुल मत होओ, ज्ञेय से उदासीन होकर ज्ञान को उससे पृथक् मानो, तथा ज्ञान की ज्ञायक शक्ति सिद्ध करके अनुभव का अभ्यास करो और कर्मबन्धन से मुक्त होकर परमानन्दमय अमृतरस का पान करो।।२०।।**

### काव्य-२० पर प्रवचन

**कोऊ सुंनवादी कहै ज्ञेयके विनास होत,** कहते हैं कि जो आकार क्षेत्र है न? उस क्षेत्र के बदलने से उस क्षेत्र सम्बन्धी का जो यह ज्ञान है, वह भी नाश हो जाता है। इसलिए परक्षेत्र के कारण यहाँ ज्ञेयाकार का ज्ञान था। स्थूल बुद्धि हो... ऐसा धर्म... ऐ...

जुगराजजी! कैसा मार्ग है यह? इसमें तो कुछ सुना न हो, उसे तो ऐसा (लगे कि) यह क्या कहते हैं? आहाहा!

कोई शून्यवादी कहता है, मैं परक्षेत्र से हूँ, ऐसा माननेवाला शून्यवादी है। समझ में आया? **कोऊ सुंनवादी कहै ज्ञेयके विनास होत,** आकार ज्ञान में दिखते हैं, वे आकार जहाँ पलटते हैं, उन आकार सम्बन्धी का अपना ज्ञान भी उस समय पलट जाता है। अर्थात् ज्ञेय परक्षेत्र के आकार हुआ ज्ञान, परक्षेत्र के कारण था, ऐसा वह कहता है। ऐसा नहीं है। वे कहे, सार... सार... दया पालना, वह धर्म है न! अरे! सुन न अब! तेरी दया किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। पर की दया पालने का भाव तो शुभराग है। समझ में आया? वह कहीं धर्म-बर्म नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा अखण्डानन्द कन्द जो स्वक्षेत्र में है, उसकी दया पालना अर्थात् जैसा है, वैसा मानना। समझ में आया? परन्तु है, वैसा न मानकर, परक्षेत्र के कारण हूँ, ऐसा माननेवाले, वे अपने स्वक्षेत्र की अस्ति का नाश करते हैं, वे हिंसा करते हैं। अमरचन्दभाई! जो स्वयं भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश के स्वक्षेत्र में है, ऐसा न मानकर परक्षेत्र के कारण मैं हूँ, (वह) शून्यवादी है, कहते हैं। नास्तिक है। आहाहा! समझ में आया? **ग्यानकौ विनास होइ कहौ कैसे जीजिये।** जो परक्षेत्र है, उस आकार ज्ञान अपनी पर्याय में परिणमता है। जहाँ वह क्षेत्र बदला तो यह भी बदल जाता है। इसलिए उसमें मेरा जीवत्व रहना किस प्रकार? पर के कारण जीवत्व है, मेरे कारण से नहीं। कहो, इसमें पर को जिला सकता है? जीवो और जीने दो। आता है न? महावीर का सन्देश—जीवो और जीने दो। भगवान का यह सन्देश है ही नहीं। जहाँ-तहाँ की विपरीतता करते हैं। अधिक लोग इकट्ठे होकर बोले, महावीर का सन्देश—जीवो और जीने दो। जीवो अर्थात् आत्मा को शरीर के आयुष्य से जिलाया जा सकता है? यह जिलाया जा सकता है।

परक्षेत्र से नहीं और स्वक्षेत्र से हूँ, ऐसा जो स्वक्षेत्र का जीवन, उससे जी सकता है। यह '**जीजिये**' कहा न? '**कैसे जीजिये**' कैसे जीवत्व रखना, ऐसा है न? '**जीजिये**' है न अर्थ में? है। जीना का अर्थ यह किया है न? **किस प्रकार जीवन रह सकता है?**

**ऐसी दशा में किस प्रकार जीवन रह सकता है ?** बहुत सूक्ष्म बात है। कहते हैं, भगवान आत्मा का अस्तित्व असंख्य प्रदेश की स्वसत्ता में है और उसे ऐसा न मानकर परक्षेत्र की अस्ति के कारण मेरी अस्ति है, तो परक्षेत्र जहाँ बदले, वहाँ मैं भी बदल जाऊँ, अब मुझे जीना किस प्रकार ? आहाहा ! इसलिए परक्षेत्र से भिन्न पड़कर, पर्याय से भिन्न पड़कर, पर्याय का क्षेत्र निकाल डालूँ। पर्याय का क्षेत्र निकाल डालने से पर्याय चली जाएगी। समझ में आया ?

ऐसे बोल लोगों को बैठते नहीं और महिलाएँ, आदमी बेचारे गाड़ियाँ हाँक रखते हैं।—सामायिक करो, और प्रौषध करो और... यह ! फिर यह सब चढ़ा दे। प्रौषध और प्रतिक्रमण... एक बार कहता था, वह 'चूडा' का था न ? भाई ! कौन ? पण्डित कौन ? वकील नहीं। दूसरा एक कोई नहीं था ? होशियार था। चूड़ा वाला नहीं दूसरा एक ? जानपनेवाला है। रतिलाल मास्टर। (संवत्) १९९९ में सुना। कहे, महाराज का सुनकर माने तो उपाश्रय बन्द करना पड़े। तब पहले (संवत्) १९९९ में आता था। अपने वहाँ दरबार गढ़ में उतरे थे न ? तब आता था। यह बात कहाँ बेचारे ने सुनी नहीं हो जिन्दगी में। वीतराग परमात्मा ने क्या कहा और कैसी अस्तिरूप इसकी-जीव की सत्ता है, ऐसी सत्ता का उसने सुना नहीं। आहाहा ! यह तो पर की दया पाल सकता हूँ अर्थात् परक्षेत्र में जा सकता हूँ, परद्रव्य में जा सकता हूँ। मूढ़ है ? मूलचन्दभाई ! भारी कठिन ऐसा।

**मुमुक्षु :** अहिंसा परमो धर्म।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अहिंसा परमो धर्म... यह तो हिंसा धर्म है। पर को बचा सकता हूँ, पर को बचाने का राग, वह (राग) मेरा है, यह तो आत्मा की हिंसा है। उसका जीवन ज्ञानज्योतिरूप है। उसके बदले राग के कारण जीव बचेगा, मेरा या उसका, (यह मान्यता मूढ़ है)। समझ में आया ? मार्ग तो ऐसा कठिन है कि अभी सबको मक्खन लगाकर खड़े रहना, ऐसा यह मार्ग नहीं है। सबको प्रसन्न रखना। जिसके पास जाए, उसे जय नारायण ! चावल चढ़ाकर (कहे) तुम भी अच्छे और तुम भी अच्छे। जाओ।

**मुमुक्षु :** अपने को दुनिया में किसी को खराब किसलिए कहना ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खराब तो पर्याय में, वस्तु में खराब नहीं। परन्तु पर्याय में

खराब न हो तो यह दु:ख और संसार किसका? समझ में आया? संसार कोई पर का नहीं है। इसकी मान्यता में पड़ा है, वह संसार है। आहाहा! बहुत काम... वीतराग परमेश्वर ने कहा हुआ तत्त्व अभी पूरा सब मानो ऐसे डूब गया। देवीलालजी!

यहाँ तो कहते हैं '**कैसे जीजिये। तातैं जीवतव्यता की थिरता निमित्त सब, ज्ञेयाकार परिनामनिकौ नास कीजिये।**' ठीक! ज्ञान में परक्षेत्र का जो ख्याल आता है, उसका अभाव करें। अभाव करें तो हम स्वक्षेत्र में रहें। वह तो पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? दर्पण में... दर्पण... दर्पण... परक्षेत्र ज्ञात हो, वह परक्षेत्र नहीं। वास्तव में अपनी पर्याय में परक्षेत्र का ज्ञान है। अब ऐसा कहते हैं कि अरर! यह तो परक्षेत्र का ज्ञान हुआ, परन्तु वह तेरी पर्याय का भाव है। अब हमें जीना किस प्रकार? पर्याय में परक्षेत्र का ज्ञान निकाल डालें तो हम जियेगा। मर जाएगा, जियेगा कहाँ से? समझ में आया?

'**तातैं जीवतव्यता की थिरता निमित्त सब**' यदि अपने को अपने क्षेत्र से जीना हो तो '**ज्ञेयाकार परिनामनिकौ नास कीजिये।**' परज्ञेयाकार जो ज्ञान परिणमता है, उसे निकाल डालें। क्या निकाल डालें? वह तो ज्ञान की पर्याय है। पर्याय को निकाल डालें तो द्रव्य भी रहेगा नहीं। कहो, समझ में आया? सूक्ष्म बात है न! स्याद्वाद का अधिकार।

'**सत्यवादी कहै भैया हूजे नांहि खेद खिन्न**' धर्मी समकिती जैन ऐसा कहता है कि हे भैया! '**हूजे नांहि खेद खिन्न, ज्ञेयसौं विरचि ग्यान भिन्नमानि लीजिये।**' आहा! इस ज्ञेय के आकार ज्ञान होता है तो ज्ञेय से भी भिन्न है और वास्तव में तो ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, उससे भी त्रिकाली ज्ञान भिन्न है। समझ में आया? आहाहा! कहो, वजुभाई! यह ऐसा सूक्ष्म है। नये लोगों को तो ऐसा लगे, ऐसा जैनधर्म होगा? जैनधर्म तो व्रत पालना, अपवास करना, सम्मेदशिखर की यात्रा जाना, शत्रुंजय की। अरे! भाई! यह तो सब विकल्प की वृत्तियाँ हों, परन्तु वह कहीं वस्तु नहीं है। आहाहा! समझ में आया? बहुत से ऐसा कहते हैं न, ऐसे क्षेत्र में जाएँ तो वातावरण ऐसा दिखता है, शान्ति उत्पन्न हो जाए। धूल भी नहीं, सुन न! यहाँ क्षेत्र से होती है? सोनगढ़ का क्षेत्र अलग, आत्मा का क्षेत्र अलग। अरे! सोनगढ़ का क्षेत्र तो ठीक, परन्तु उस सम्बन्धी ज्ञान में आया कि

सोनगढ़ ऐसा है और प्रतिमा ऐसी है और सीमन्धर भगवान ऐसे हैं—ऐसा जो ज्ञानरूप परिणमन हुआ, वह भी एक समय का क्षेत्र है, वह त्रिकाली क्षेत्र नहीं। एक पर्याय का क्षेत्र, वह कहीं वस्तु है ? समझ में आया ?

**'सत्यवादी कहै भैया हूजे नांहि खेद खिन्न'** तेरी पर्याय में परक्षेत्र सम्बन्धी ज्ञान होता है, खेद न कर, खेद न कर। वह तो ज्ञानस्वभाव में रहा हुआ आत्मा है, उसमें इस क्षेत्र का ज्ञान होता है। आहाहा! **'ज्ञेयसौं विरचि ग्यान भिन्न मानि लीजिये।'** उस ज्ञेय आकार को भिन्न करके, **'विरचि'** अर्थात् पृथक् करके, **'ग्यान भिन्न मानि लीजिये'** भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति तो उस क्षेत्र से भिन्न है। आहाहा! इन्होंने तो बहुत लिया है, पर्याय का क्षेत्र ही भिन्न है। समझ में आया ? इस पर्याय का क्षेत्र, वही परक्षेत्र है। समझ में आया ? आहाहा! ज्ञेयाकार अपनी पर्याय में होता आकार, वह ज्ञान, इतना ही कहाँ तत्त्व है ? वह तो पर्यायबुद्धिवाला मानता है, मिथ्यादृष्टि है। एकान्त माने तो, हों! त्रिकाली द्रव्यसहित पर्याय को माने तो पर्याय में है, वह बराबर है। वह तो इसका ज्ञान है। **'ज्ञेयसौं विरचि ग्यान भिन्न मानि लीजिये।' तुम व्याकुल न होओ, ज्ञेय से उदासीन होकर ज्ञान को उससे भिन्न मानो....**

**'ग्यान की सकती साधि अनुभौ दसा अराधि'** भाई! देखो! यहाँ क्या कहते हैं ? ज्ञान की शक्ति जो परक्षेत्र से भिन्न है, स्वक्षेत्र की शक्ति है, उसका आराधन कर। आहाहा! समझ में आया ? ज्ञान का स्वक्षेत्र जो है, उसे **'ग्यान की सकती साधि अनुभौ दसा अराधि'** भगवान आत्मा ज्ञानसत्ता में पूर्ण है, ऐसी दृष्टि करके, उसे अनुसरकर अनुभव कर। आनन्द का अनुभव करना, वही धर्म है। आहाहा! और कहते हैं कि अनुभूति से भिन्न। देवीलालजी! तुमने प्रश्न किया था न ? अनुभूति से भिन्न, अनुभूति से भिन्न, सुन न! यह तो पर्याय है। त्रिकाल सत् का पूरा पोटला, अकेला त्रिकाल एकरूप सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... वह वस्तु तो परिणमन की पर्याय से भिन्न है। आहाहा! एक समय की पर्याय की सत्ता से त्रिकाल की सत्ता भिन्न है ? यह तो भाई! जिसे आत्मा का आराधना करना हो, उसकी बात है। यह तो वीतरागमार्ग ऐसा है।

भगवान आत्मा ज्ञानभाव... यहाँ क्षेत्र की बात है। **'ग्यान की सकती साधि'**

अपनी शक्ति क्षेत्र में है उतनी। '**अनुभौ दसा अराधि**' जब वस्तु क्षेत्र में असंख्य प्रदेश में आत्मा एकरूप है, उसकी दृष्टि करने से ज्ञान का और शान्ति का अनुभव हो, उसका नाम अनुभवदशा आराधी—ऐसा कहा जाता है। '**करमकौं त्यागिकैं**' उस परज्ञेयाकार भाव को छोड़कर अथवा परक्षेत्र के कार्य को छोड़कर। **कर्मबन्धन से मुक्त होकर परमानन्दमय अमृतरस का पान करो।** '**परम रस पीजिये**' आहाहा! आत्मा निर्विकल्प रस से स्वक्षेत्र से भरपूर है, उसके स्वक्षेत्र में तो आनन्द का पाक है। समझ में आया? आहाहा! उसके असंख्य प्रदेश में स्वक्षेत्र में अस्तिपने का स्वीकार होने पर उसे अनुभव का आनन्द का रस आता है। परक्षेत्र तो निकाल दे, परन्तु परक्षेत्र सम्बन्धी अपनी पर्याय, वह दृष्टि छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतराग... समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा अपने स्व अवगाहन में व्याप्त तत्त्व, पर को अवगाहाता नहीं। पर में क्षेत्र से प्रवेश नहीं करता। द्रव्य से नहीं करता, इस क्षेत्र से नहीं करता। ऐसी दृष्टि करके अपने स्वक्षेत्र की त्रिकाल शक्ति का आराधन कर तो अनुभव का आराधन (होगा)। आहाहा! तब इसे सम्यग्दर्शन होने पर आनन्द का स्वाद आता है, तब इसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय भिन्न है न, इसलिए कहा न कि द्रव्य, पर्याय को स्पर्श नहीं करता। अलिंगग्रहण का बीसवाँ बोल। पर्याय का अनुभव, वह द्रव्य को स्पर्श करे तो द्रव्य और पर्याय एक हो जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो अर्थावबोध सामान्य को नहीं स्पर्शता ऐसा जो आत्मपर्याय, वह आत्मा है। ऐसा है बीसवाँ बोल। अलिंगग्रहण। वीतरागमार्ग अलौकिक अचिन्त्य है। उसके ज्ञान में भी यह चीज़ कैसे है, ऐसा न आवे तो अन्दर रुचि कहाँ से होगी? और रुचि बिना स्थिरता तो होती ही नहीं। आहा!

'**करमकौं त्यागिकैं परम रस पीजिये**' अर्थात् वह परक्षेत्ररूपी कार्य, उसे छोड़कर स्वक्षेत्र के अन्दर में – अनुभव में आ जा। वह (कर्म) छूटकर तुझे आनन्द होगा, ऐसा कहते हैं। दो भंग हुए।

**नववें पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन।** अब यह तीसरा बोल क्या है ? आत्मा स्वकाल में अपने से है, पर के काल से नहीं। यहाँ तो स्वकाल एक समय की पर्याय है न, और पर की पर्याय एक समय की है—राग की या शरीर की, वह परकाल है और आत्मा की सम्यग्ज्ञान आदि की वर्तमान अवस्था, वह स्वकाल है। अतः स्वकाल से आत्मा अस्ति है और परकाल से नास्ति है। समझ में आया ? इससे आगे जाने पर स्वकाल की एक समय की पर्याय से जीव नास्ति है और त्रिकाल की अस्तिरूप से स्वकाल से अस्ति है। इसमें याद रहना कठिन पड़े। अब ऐसा धर्म। धर्म तो ऐसा है।

अपूर्व किसे कहें ? एक समय भी कभी, अनन्त काल में पंच महाव्रत पालन किये, दिगम्बर मुनि हुआ, परन्तु एक समय भी इसने धर्म नहीं किया। आहाहा! एक समय भी धर्म हो (तो) संसार का नाश हुए बिना रहे नहीं। वह धर्म कैसा होगा ? भाई! यह कहीं दया, दान के विकल्प, वह धर्म ? एक समय की पर्याय में, एक समय की पर्याय को मानना, वह धर्म ? नहीं। आहाहा! वह निश्चय से अनात्मा है। एक समय की पर्याय है, वह व्यवहार आत्मा है और व्यवहार आत्मा अर्थात् निश्चय से अनात्मा है। यह गजब की बातें हैं। यह तो परमेश्वर को पहुँचने की बातें हैं।

**नववें पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन।** नौवाँ कलश बोला गया था ? नहीं बोला गया ?

**स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात**
**तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकारान् सहार्थैर्वमन्।**
**स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां**
**त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामभुवत्याकारकर्षी परान्॥९॥**

पर के आकार छोड़ने पर भी ज्ञान की पर्याय में जो आकार है, उसे वह छोड़ता नहीं। समझ में आया ? यह दसवाँ।

**स्पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्**
**सीदत्येव न किञ्चनापि कलयन्नत्यन्ततुच्छः पशुः।**
**अस्तित्वं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः**
**पूर्णस्तिष्ठति बाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि॥१०॥**

नाश होने पर भी, परवस्तु के स्वकाल को अवलम्बन कहा, परवस्तु का। परवस्तु का स्वकाल है न? उसका यहाँ अवलम्बन ज्ञान में जाना। तथापि उस परवस्तु के नाश होने पर भी मेरी पर्याय मुझसे है, ऐसा माननेवाला नाश नहीं होता। पर का काल बदलने से मैं भी साथ में उसके कारण बदल गया, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! समय बदलता है, तब सब बदल जाता है तब, ऐसा आता है न? सब बदलता है तब। सब बदल जाए। यह मनुष्य नहीं मानो। पैसा जाए, इज्जत जाए, शरीर में रोग हो, स्त्री मर जाए, पुत्री विधवा हो, पुत्र मरे, मकान जले, बीमावाला भाग जाए...

**मुमुक्षु :** ऐसा रचा है...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** रचा है अनादि से। पुत्र की बहू मरे, तब तक दिक्कत नहीं, दूसरी लावे परन्तु पुत्र मरे और पुत्री विधवा हो, पुत्री मरे तो दिक्कत नहीं, यह तो विधवा, उसे रोकना। आहाहा!

कहीं नहीं... सुन न! पर से, उसमें तुझे क्या है? उस पर के अवलम्बन काल में सुखी मानता और वह जहाँ गया वहाँ... हाय... हाय...! हम बदल गये, दु:खी हो गये। मूढ़ है। आहाहा! तेरे स्वकाल की पर्याय में जो जानने की अवस्था थी, पर के काल को जाना। उसे बदलने पर तेरी अवस्था बदली, वह तो तेरे अपने परिणमने के कारण से बदली है। वह क्षेत्र बदले, इसलिए तेरी अवस्था बदल गयी, (ऐसा नहीं है)। आहाहा!

★ ★ ★

## काव्य - २१

**नववें पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन** (सवैया इकतीसा)

**कोऊ क्रूर कहै काया जीव दोऊ एक पिंड,**
**जब देह नसैगी तबही जीव मरैगौ।**
**छायाकौसौ छल किधौं मायाकौसौ परपंच,**
**कायामैं समाइ फिरि कायाकौ न धरैगौ।।**

**सुधी कहै देहसौं अव्यापक सदीव जीव,**
**समै पाइ परकौ ममत्व परिहरैगौ।**
**अपने सुभाई आइ धारना धरामैं धाइ,**
**आपमैं मगन ह्वैकै आप सुद्ध करैगौ।।२१।।**

**शब्दार्थ:-क्रूर=मूर्ख। परपंच=ठगाई। सुधी=सम्यग्ज्ञानी। परिहरैगौ=छोड़ेगा। धरा=धरती।**

**अर्थ:-कोई कोई मूर्ख चार्वाक कहते हैं कि शरीर और जीव दोनों का एक पिण्ड है, सो जब शरीर नष्ट होगा तब जीव भी नष्ट हो जायेगा; जिस प्रकार वृक्ष के नष्ट होने से छाया नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार शरीर के नाश होने से जीव भी नाश हो जायेगा। यह इन्द्रजालिया की माया के समान कौतुक बन रहा है, सो जीवात्मा दीपक की लौ (ज्योत) के प्रकाश के समान शरीर में समा जायेगा, फिर शरीर धारण नहीं करेगा। इस पर सम्यग्ज्ञानी कहते हैं कि जीव पदार्थ शरीर से सदैव भिन्न है, सो काललब्धि पाकर परपदार्थों से ममत्व छोड़ेगा, और अपने स्वरूप को प्राप्त होकर निजात्मभूमि में विश्राम करके उसी में लीन होकर अपने को आप ही शुद्ध करेगा।।२१।।**

---

काव्य-२१ पर प्रवचन

---

‘**कोऊ क्रूर कहै काया जीव दोऊ एक पिंड**’ मूल यह काल में लिया है। वस्तु तो चौदह सिद्ध की है। है न, वह आ गया। क्षेत्र में गया। यह परालम्बन काल में इसमें अन्दर आ गया।

**कोऊ क्रूर कहै काया जीव दोऊ एक पिंड,**
**जब देह नसैगी तबही जीव मरैगौ।**
**छायाकौसौ छल किधौं मायाकौसौ परपंच,**
**कायामैं समाइ फिरि कायाकौ न धरैगौ॥**

यह वृक्ष हो, तब तक छाया। वृक्ष जाए तो छाया भी (चली जाती है)। इसी प्रकार देह हो, तब तक आत्मा। देह का काल हो, तब तक आत्मा, ऐसा। इसका अर्थ ही यह हुआ काल का।

**'धरामैं धाई, आपमैं मगन ह्वैकै आप सुद्ध करैगौ।'** मूल तो यही वस्तु है।?

**'कोऊ क्रूर कहै काया जीव दोऊ एक पिंड'** शरीर की अवस्था, वही जीव की अवस्था। अरे! मैं वृद्ध हो गया, मैं जवान हो गया, मैं बालक हूँ। यह तो शरीर की अवस्था है, यह तेरी अवस्था कहाँ आयी? मैं रोग अवस्थावाला हूँ, निरोग अवस्थावाला हूँ, यह सब अवस्था काल को सूचित करती है। परकाल के कारण मैं हूँ। शरीर मजबूत काल में हो, तब मुझे पुरुषार्थ की उग्रता होती है। शरीर निर्बल पड़े तो हो गया। यह दृष्टान्त आया है। ...परदेशी राजा का दृष्टान्त दिया है। महाराज! शरीर और आत्मा एक है। क्यों?—कि शरीर जीर्ण हो तो आत्मा कुछ काम नहीं कर सकता।

शरीर था तो आत्मा का काम चलता था। शरीर, वही आत्मा है। ऐसा प्रश्न चला है। परदेशी राजा। वहाँ चला था न? (संवत्) १९८९। उसका उत्तर दिया है। भाई! शरीर बीस वर्ष का निरोगी हो। परन्तु काँवड़ यदि कच्ची हो, काँवड़ समझे? उठाने की। यह पानी... बाँस, बाँस में एक ओर पानी के हण्डा रखे और उठाकर चले। काँवड़। श्रवण ने उसके माता-पिता को यात्रा करायी न। अन्धे थे। एक में नहीं बैठाया। काँवड़ कच्ची हो तो उसका काँवड़ से काम नहीं होता। इससे आत्मा अन्दर कच्चा है, ऐसा है नहीं। जीर्ण हो गया। हाथ में ऐसे पकड़ सके कि और ऐसे हो जाए। वह एक बड़ा अलमस्त नहीं था? क्या कहलाता है? झेण्डो। दो मोटर ऐसे चलती हो तो हाथ रखकर खड़ी रखे। हाथ टूटे नहीं और मोटर खड़ी रहे। गामा... गामा.. आया है, समाचारपत्र में आया है। अन्त में ऐसा रोग हुआ.. ऐसे बैठा है। ऐसे मक्खी (बैठी हो)। आहाहा! यह तो जड़ की अवस्था है। इससे आत्मा की अवस्था को क्या बाधा आयी? समझ में आया? परन्तु अज्ञानी ऐसा माने... आहाहा! शरीर की अवस्था बदली, इसलिए मैं भी बदल गया। यह ऐसा मानता है, शरीर अच्छा हो तो धर्म अच्छा होगा। ऐसा माननेवाला शरीर को ही आत्मा मानता है।

**मुमुक्षु :** कान ठीक न हो तो...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** न सुनाई दे, उसमें क्या हुआ? उसे उसके धर्म में कौन रोकता है? 'शरीर आद्यं खलु धर्म साधनम्।' आता है, पुरुषार्थसिद्धियुपाय में। धर्म का साधन

है। धूल भी नहीं, सुन न! शरीर वृद्ध हो या युवा हो, या बालक हो, उसके साथ आत्मा को क्या सम्बन्ध है परन्तु उसमें जोर हो तो मुझे जोर रहे, ऐसा माननेवाला शरीर को ही आत्मा मानता है। इन्द्रियाँ अच्छी हो तो दया पले, आँख अच्छी हो तो दया पले, दिखाई दे कि यह जीव है या नहीं। नाक अच्छा हो तो गन्ध मारता है या नहीं, ऐसा ज्ञात हो। सड़ गया है या नहीं, रस के स्वाद में अन्तर पड़ा है या नहीं, यह जीभ से चखा जाए। पाँच इन्द्रियाँ ठीक न हो तो आत्मा किस प्रकार दया पाल सके? यह अभी ही आया है, हों! कोठाई में डाला है। कोठारी क्या, दरबारीलाल कोठिया। शरीर अच्छा होवे तो उसके साथ धर्म का सम्बन्ध है। आज ही अभी आया है। 'जैनसन्देश' में... कर्म का खिलौना जीव है, ऐसा कहते थे। फिर यहाँ आया। कर्म का खिलौना है? कर्म तो जड़ है। जड़ आत्मा को विकार करावे? इसी प्रकार शरीर अच्छा हो तो शरीर के साथ धर्म का सम्बन्ध है। धूल भी नहीं, सुन न! सम्बन्ध माननेवाला शरीर को ही आत्मा मानता है। आहाहा! विशेष कहेंगे...

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १५६, भाद्र कृष्ण ७, बुधवार, दिनांक ०८-०९-१९७१**
**स्याद्वाद द्वार, पद २१ से २३**

समयसार नाटक। आज तो हिन्दी है न? हिन्दी सुनो आज अभी। थोड़े वे भाई आये हैं न! नौवें पक्ष का स्पष्टीकरण। क्या कहते हैं? कि यह जो आत्मा है आत्मा, देह से भिन्न। देह की क्रिया समय-समय में जड़ से... जड़ से होती है। उसका अवलम्बन पाकर अज्ञानी मानते हैं कि देह की क्रिया से ही मैं टिकता हूँ। यह देह है तो मैं हूँ। समझ में आया? और देह की क्रिया से जो कुछ धर्म आदि देखने में आता है, दया का पालन किया, वह क्रिया मेरी है। यह देह की क्रिया मेरी है, ऐसा मानते हैं। समझ में आया? और उससे मुझे धर्म होता है। मैं आत्मा, तो देह ही मैं हूँ। देह की क्रिया... वह प्रश्न है न पहला तुम्हारा? आहाहा! यह जीव शरीर है।

पण्डितजी! तुम्हारे गाँव में वह प्रश्न था न पण्डित का, नहीं?

**मुमुक्षु :** खानिया चर्चा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खानिया चर्चा। जीवित शरीर की क्रिया से धर्म होता है या नहीं? ऐसा प्रश्न था। जयपुर में पण्डित लोगों की ओर से (प्रश्न था)। आहाहा! ऐ राजमलजी! राजमलजी अफसोस करते थे कि यह क्या? यह देह तो जड़ है, परन्तु ऐसे-ऐसे पर्याय हो, वह तो जड़ की है। आत्मा की नहीं और उससे आत्मा को कुछ लाभ-नुकसान है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? देह की क्रिया से मुझे लाभ होगा, ऐसा माननेवाला देह को ही आत्मा मानता है। और देह की क्रिया से हिंसा आदि होती है तो मुझे पाप लगता है, ऐसा माननेवाला देह को ही आत्मा मानता है। ऐसी बात है पण्डितजी! आहाहा! **कोऊ क्रूर कहै काया जीव दोऊ एक पिंड...** है? पण्डितजी! है उसमें? यह हिन्दी तुम्हारे अनजान है न। यह भी पण्डित हैं। नरम हैं नरम। सुने तो सही, क्या है?

कहते हैं, **कोऊ क्रूर कहै... क्रूर** अर्थात् मूर्ख। ऐसा कहे कि **काया जीव दोऊ एक पिंड...** आत्मा और शरीर दोनों एक हैं, एक पिण्ड हैं। कि जैसी शरीर की क्रिया

होती है, ऐसा आत्मा के प्रदेश में भी कम्पन होता है और आत्मा के प्रदेश में कम्पन होता है, ऐसी शरीर की क्रिया होती है तो ये दोनों एक हैं। ऐसे मूढ़ अज्ञानी देह की क्रिया को अथवा देह के काल की—समय की जो पर्याय, देह की—शरीर की वर्तमान अवस्था—पर्याय, वही मैं हूँ। मुझे देह से धर्म होता है, मुझसे अहिंसा पलती है, देह से मैं सच बोलता हूँ, देह हो तो मैं ब्रह्मचर्य पाल सकता हूँ। आहाहा! भगवान! ऐसे मूर्ख, जीव और काया दोनों को एक मानते हैं। ऐसा ऐसे नहीं, अन्दर में अभिप्राय में। शरीर की क्रिया से निमित्तपना है। तो अपने में धर्म जो शान्ति आदि हो, वह तो अपने आश्रय से होता है। धर्म तो अपने द्रव्य के आश्रय से होता है। धर्म में शरीर की क्रिया निमित्त है या नहीं? तो निमित्त है तो उससे भी मुझे कोई लाभ हुआ है। आहाहा! शरीर निमित्त है या नहीं? तो निमित्त से कुछ होता है या नहीं आत्मा में? यह मान्यता अज्ञानी की झूठी है। देह की क्रिया का परिणमन स्वकाल का भिन्न है और अपना आत्मा उससे बिल्कुल भिन्न है। आहाहा!

**जब देह नसैगी तबही जीव मरैगौ...** देह की स्थिति पूरी होगी तो मेरा भी नाश हो जायेगा। समझ में आया? जैसे दीपक है न दीपक। क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** दीया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तो दीये में से जो काली झांईं निकलती है न धुँआ—धुँआ। धुँए का नाश होगा तो दीपक का भी नाश होगा। वृक्ष और छाया। तो वृक्ष है तो छाया है। वृक्ष का नाश होगा तो छाया भी नाश हो जायेगी। इसी प्रकार देह है तो हमारा आत्मा है। हमारी पर्याय में शान्ति, धर्म, अहिंसा (जो) कुछ होता है, यह देह है तो होता है। देह के बिना होता नहीं। अभी भी आया है। वह दरबारीलाल कोठिया ने डाला है। देह के साथ कुछ सम्बन्ध है। क्या सम्बन्ध है? वह तो भिन्न चीज़ है। देह का एक-एक परमाणु का वर्तमान परिणमन स्वकाल का उसमें—परमाणु में होता है। उसके स्वकाल के परिणमन में अपना परिणमन का अधिकार बिल्कुल नहीं। समझ में आया? ऐसा तो कहते हैं कि शरीर (भिन्न है), परन्तु अन्दर में अभिप्राय में शरीर की क्रिया अनुकूल है तो कुछ मुझे लाभ होता है। शरीर से जीव बचा, मरा नहीं तो मुझे कुछ लाभ हुआ। यह देह और आत्मा एक (है, ऐसी) मान्यता की चीज़ है। समझ में आया?

और देह के कोई अपवास आदि से शरीर कमजोर जीर्ण हो तो मुझे लाभ होगा, शरीर कृश हो तो मुझे लाभ होगा—यह मान्यता शरीर और आत्मा एक माननेवाले की है। समझ में आया? जीव भगवान आत्मा बिल्कुल भिन्न है। शरीर की कोई भी अवस्था होती है, उससे तो आत्मा बिल्कुल भिन्न है। अरे! अन्दर दया-दान-राग आदि विकल्प होते हैं, उससे भी भगवान आत्मा तो भिन्न है, पृथक् है। उसे पृथक् न मानकर, राग से और देह की क्रिया से हमें धर्म होगा, यह माननेवाला शरीर और आत्मा एक मानता है। वह जड़ मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **जब देह नसैगी तबही जीव मरैगौ...** देह का नाश (होगा तो) जीव भी साथ में मरेगा, ऐसा अज्ञानी कहते हैं।

**छायाकौसौ छल किधौं मायाकौसौ परपंच...** लो, है न? **जिस प्रकार वृक्ष के नष्ट होने से छाया नष्ट हो जाती है।** वृक्ष है, नाश हो जाये तो छाया भी नाश हो गयी। इसी प्रकार शरीर वृक्ष है, वह नाश हो जाये तो आत्मा छाया है, वह नाश हो जायेगी। आहाहा! धर्म के नाम पर भी ऐसी प्रतीति चलती है। समझ में आया? **मायाकौसौ परपंच...** लो! ऐसा कहते हैं। है न? इन्द्रजालिया जैसी माया के समान कौतुक बना है यह तो, अज्ञानी कहता है। आहाहा! शरीर की अनुकूलता से आत्मा में अनुकूलता रहती है। शरीर में रोग हो तो आत्मा में प्रतिकूलता हो जाती है और निरोगता हो तो आत्मा में ठीक होता है। यह बात ही झूठी है। आहाहा! शरीर की अवस्था में सरोग—निरोग अवस्था, वह तो जड़ की अवस्था है। वह तो परमाणु की पर्याय है। उससे आत्मा में कुछ लाभ है, ऐसी बात है नहीं। माननेवाला ऐसा (मानता है कि) शरीर की अच्छी क्रिया (हुई), शरीर का सदुपयोग किया। समझ में आया? आहाहा! अपवास किये, लक्ष्मी देने की (क्रिया की, तो) शरीर का हमने सदुपयोग किया। ऐसा माननेवाला शरीर और आत्मा एक मानता है।

कहते हैं, **मायाकौसौ परपंच....** यह तो माया प्रपंच इन्द्रजाल है। अज्ञानी कहते हैं, हों! देखो, इन्द्रजाल है। शरीर ऐसे नाश हो तो आत्मा का नाश होता है। **कायामैं समाइ फिरि कायाकौ न धरैगौ....** यह शरीर नाश होता है, आत्मा भी नाश हो जायेगा। फिर से शरीर धारण करेगा नहीं। ऐसी अज्ञानी की दलील है। आहाहा!

**सुधी कहै...** अब ज्ञानी जवाब देते हैं। सम्यग्ज्ञानी धर्मी उसे जवाब देते हैं। आहाहा! **सुधी कहै देहसौं अव्यापक....** भाई! शरीर के अनन्त रजकण, यह मिट्टी जड़ है, उसमें आत्मा तो अव्यापक है। आत्मा ने शरीर के रजकण में प्रवेश कभी नहीं किया। समझ में आया? पानी के तरंग में जैसे जल—पानी व्यापक है, (परन्तु) लकड़ी नजदीक हो तो उसमें वह व्यापक नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा शरीररूपी लकड़ी में व्यापक नहीं। शरीररूपी पर्याय में उसका प्रवेश नहीं। आहाहा! समझ में आया? **सुधी कहै...** बुद्धिवन्त सम्यग्ज्ञानी धर्मात्मा, ऐसी मान्यतावाले को जवाब देते हैं। **देहसौं अव्यापक...** भगवान! तेरी चीज़ तो आनन्दस्वरूप ज्ञान की मूर्ति अरूपी है, यह शरीर के रजकण की पर्याय में कैसे व्यापे? कैसे प्रवेश करे? कैसे उसकी पर्याय में (इसकी) पर्याय एक हो जाये? आहाहा! स्वकाल है न! समझ में आया?

**देहसौं अव्यापक सदीव जीव....** तीनों काल भगवान आत्मा तो देह के रजकण से भिन्न है। जैसे जल लोटा में भरा है तो लोटा और जल दोनों चीज़ ही भिन्न हैं। समझ में आया? वह दृष्टान्त आया न सर्वविशुद्ध (अधिकार) में। घट होता है न घट। वह नवरात्रि आती है न, नवरात्रि।

**मुमुक्षु :** गरबा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गरबा। गरबा होता है न? गरबा समझते हैं? छेद और अन्दर एक बत्ती रखते हैं। उसे हमारे यहाँ गरबा कहते हैं। क्या कहते हैं तुम्हारे?

**मुमुक्षु :** हमारे यहाँ नोरता बोलते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु मिट्टी को क्या बोलते हैं? मिट्टी का वह घड़ा होता है न?

**मुमुक्षु :** घट।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** घट। छिद्र... छिद्र... छेद करते हैं। छेदवाला और अन्दर दीपक। तो घट फूटने से क्या दीपक का नाश होता है? दीपक भिन्न है और घट भिन्न है।

**मुमुक्षु :** दीपक बुझ जाये तो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दीपक बुझ जाये तो कहीं घट का नाश होता है ? दीपक बुझ जाये तो कहीं घट का नाश होता है ? दोनों चीज़ें भिन्न-भिन्न हैं।

यहाँ तो इतना सिद्धान्त, उस घट के साथ सिद्धान्त करना है अभी। घट फूटा, किसी ने फोड़ा घट, तो अन्दर जो दीपक है, वह कहीं उससे बुझ जाता है ? इसी प्रकार देह फूटने से, देह का नाश होने से, चैतन्यदीपक आनन्दकन्द प्रभु आनन्द और ज्ञान का समुद्र भगवान आत्मा है, उसका बुझना कभी होता नहीं। आहाहा! शरीर और आत्मा एक-दूसरे (के साथ) निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। (शरीर) घट है न! विकल्प आया और शरीर चले तो उसे लगे कि देखो, यह शरीर हमसे चला। विकल्प आया और चला तो हमसे चला। परन्तु यह तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। तुझसे चला नहीं। शरीर की क्रिया उससे हुई है। शरीर से शरीर की पर्याय हुई है, तुझसे बिल्कुल नहीं। आहाहा! नीचे चींटी है और अपना पैर (उसे बचाने के लिये) ऊँचा करते हैं। तो कहे, मैंने ऊँचा किया। वह शरीर और आत्मा एक माननेवाला है। पण्डितजी! ऐसा है। शरीर की पर्याय—पैर ऐसा ऊपर हुआ तो शरीर के कारण से हुआ है, आत्मा के कारण से नहीं। आत्मा भिन्न और वह चीज़ भिन्न है। आहाहा! भीखाभाई! परन्तु कान-बान अच्छे हों तो सुनने का मिले, तो इतना तो शरीर के कारण से लाभ होगा या नहीं ?

यहाँ तो शरीर से तो ठीक, परन्तु सुनने से भी आत्मा में ज्ञान का लाभ होता है, ऐसी बात है ही नहीं। ऐई! क्योंकि भगवान आत्मा ज्ञान से परिपूर्ण भरा है। यह अपने स्वरूप की ओर का आश्रय करता है तो ज्ञान की पर्याय अन्तर में से आती है। कोई वाणी से और सुनने से आती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! शरीर की कोई भी पर्याय से मुझे लाभ होता है, ऐसा माननेवाला शरीर और आत्मा एक मानता है, यह यहाँ बताना है। आहाहा! पूर्व आलम्बित बोध नाश समय, ऐसा है न! ज्ञेय के नाश के समय... ज्ञेय यह शरीर, उसके नाश के समय... ज्ञान में यह बोध—ज्ञात होनेयोग्य चीज़ के नाश के समय। बोध अर्थात् ज्ञेय। उसके नाश के समय मेरा भी नाश हो गया। यह तो अरूपी भगवान विज्ञानघन है। तू अविनाशी है। अविनाशी का कभी नाश होता नहीं, परन्तु दृष्टि की खबर नहीं। शरीर नाश हुआ तो मेरा नाश हो गया। मेरा पुत्र मर गया तो (मैं) मर

गया। क्या मरे ? कौन मरे ? सुन तो सही। लड़का मर गया, ओहोहो! कौन मरे ? देह मरे ? आत्मा मरे ? देह की पर्याय बदल गयी। आत्मा की पर्याय बदल गयी। आत्मा और परमाणु तो कायम रहते हैं, परन्तु अज्ञानी को वस्तु की खबर ही नहीं। क्या मैं हूँ और क्या देह है और दोनों में कैसी भिन्नता है ? परमात्मा क्या कहते हैं, उसकी खबर नहीं।

**सुधी कहै देहसौं अव्यापक सदीव जीव, समै पाइ परकौ ममत्व परिहरैगौ....** उसे शरीर से ममत्व है, फिर भी शरीर उसका है, ऐसा नहीं। आहाहा! कहते हैं कि **समै पाइ...** काललब्धि पाकर (अर्थात्) अपनी पर्याय में स्वसन्मुख होकर... जो परसन्मुख में शरीर मेरा है, ऐसी ममत्वबुद्धि है, उसे स्व-स्वभाव आनन्दकन्द परमात्मा अपना निजस्वरूप, उस ओर का आश्रय करके पर की ममता का नाश करेगा और अपने मुक्ततत्त्व को मुक्त करेगा। समझ में आया ? कहाँ लोगों को अभी कुछ धर्म की खबर नहीं होती। जीव-अजीव दो भिन्न चीज़ है। दो तत्त्व भिन्न। जीवतत्त्व भिन्न, अजीवतत्त्व भिन्न। अजीवतत्त्व की क्रिया मुझसे होती है और उस अजीव की क्रिया से मुझमें लाभ-नुकसान होता है। वे अजीव को ही जीव मानते हैं। समझ में आया ? आहाहा!

**समै पाइ परकौ ममत्व परिहरैगौ....** अपने पुरुषार्थ से... मैं तो चिदानन्द आत्मा हूँ। अनादि-अनन्त अविनाशी हूँ। आहाहा! शान्ताबेन गये लगते हैं, नहीं ? प्रभुदासभाई के घर से। शान्ताबेन ने कहा भाई अन्तिम प्रभुदासभाई को। देह का छूटने का अवसर आया न! घीया प्रभुदासभाई करोड़पति व्यक्ति हैं। अब वह छह दिन तक असाध्य रहे प्रभुदासभाई। रतिभाई के बड़े भाई। छह दिन। सेठ थे ? थे। हाँ, हाँ। साथ में आये थे। अपने गये थे सवेरे वहाँ साथ में ... छह दिन तक। तुम थे वहाँ भाई ? ऐसा ? फिर अन्त में देह छूटने का प्रसंग आया छह दिन के बाद। उनके घर से स्त्री (कहे), जा सिद्ध। मोह छूट जा तेरा। आत्मा का नाश नहीं है, नित्य है—ऐसा बोली थी। अन्तिम समय में उनकी पत्नी ऐसा बोली। रतिभाई के पुत्र का पुत्र एक गूँगा-बहरा मर गया। छह दिन तक। पिताजी बैठे हैं, भाई है। पैसा करोड़ों, बड़ी दुकान। क्या करे पैसे का वहाँ ?

देह की स्थिति जहाँ पूरी होने की हुई, तो पत्नी कहती है, चला जा यहाँ से। तू देह से भिन्न है। चला जा। तू कहाँ नाश होता है ? तू तो नित्य है। अमरचन्दभाई! वह शान्ताबेन कल गयी। प्रभुदासभाई की बहू है न। वहाँ गये। लोगों को .... बहुत है,

रतिभाई के न! आहाहा! ऐसा हो जाये, फू... कौन फू होता है? वह तो पवन निकल गयी। आत्मा नाश होता है? आत्मा तो अविनाशी अनादि-अनन्त है। देह समाप्त हो गयी, इसलिए आत्मा साथ में नाश हो गया? आहाहा! लोगों को भान नहीं होता। मैं आत्मा अखण्डानन्द सच्चिदानन्दमूर्ति, मैं अनादि-अनन्त—ऐसी मेरी चीज़ में कोई खण्ड-फण्ड होता नहीं। नाश तो क्या हो परन्तु खण्ड नहीं होता। आहाहा!

**काल पाइ परकौ ममत्व परिहरैगौ, अपने सुभाई आइ....** देखो भाषा। अपने स्वरूप को प्राप्त होकर... अरे! मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, चैतन्य भाव का धरनेवाला मैं हूँ। मैं शरीर नहीं, मैं पुण्य-पाप की क्रिया का राग भी धरनेवाला नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को ऐसी प्रतीति अनुभव में आती है। तब धर्मी कहने में आता है। उसके बिना धर्म है नहीं। समझ में आया? **समै पाइ अपने सुभाई आइ....** आहाहा! **अपने स्वरूप को प्राप्त होकर निजात्मभूमि में विश्राम करके,...** ऐसा है न? **धारना धरामैं धाइ...** धरा अर्थात् जमीन। निजभूमिका भगवान आत्मा, असंख्य प्रदेशी आनन्दकन्द, आहाहा! उसमें दृष्टि करके वहाँ विश्राम लेगा। देह में जो विश्राम लेता है कि मुझे ठीक है, वह विश्राम गुलांट खायेगा। मैं तो आत्मा हूँ, शुद्ध चैतन्यघन हूँ। मैं पुण्य-पाप का राग भी नहीं तो शरीर तो मैं हूँ ही नहीं... नहीं... ऐसा अपना स्वरूप निज भूमिका अपना क्षेत्र आनन्दकन्द प्रभु में अपने स्वरूप को एकाकार करके, विश्राम करके, स्वकाल में अपने स्वरूप में एकाग्र होना, वही धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

अपने स्वरूप में प्राप्त करके, **धारना धरामैं...** अन्तर में स्वरूप की धारणा करके, विश्राम करके, अपनी **धरामैं धाइ...** स्थिर होता है। उसी में लीन होकर, **आपमैं मगन ह्वैकै आप सुद्ध करैगौ....** आहाहा! देखो! कर्म के कारण से शुद्ध होगा और पहले यह होगा, ऐसा कुछ है नहीं। **आपमैं मगन ह्वैकै...** ओहो! मैं तो सच्चिदानन्द निर्मल सिद्ध समान स्वरूप मेरा है। ऐसा अन्तर में भान करके **आप सुद्ध करैगौ**—अपनी चीज़ को निर्मल करेगा पर्याय में। ऐसी आत्मा की चीज़ है। दो बात ली। अपने स्वभाव में आकर अपने में विश्राम करता है। **आपमैं मगन...** शरीर, वाणी, मन पर है, वह हो या न हो, वह उसके कारण से है। पुण्य-पाप का विकल्प होता है, वह भी विकार और आस्रव है। वह मैं नहीं।

धर्मी की—प्रथम श्रेणी की सम्यग्दृष्टि की दशा में उसको ऐसी दशा अन्तर में होती है। **आपमैं मगन...** अनादि से शरीर और राग में मगन था। समझ में आया? आहाहा! **आप सुद्ध करैगौ**—अपने को पर्याय में शुद्ध करेगा। जो पर मेरा है, (ऐसी) ममता थी, उसको नाश करके, अपनी चीज़ की सम्हाल करके अपनी वर्तमान पर्याय—दशा में अपने को पवित्र करेगा। ऐसा उसका स्वभाव है। आहा! समझ में आया? लो। २१वाँ हुआ। लो, यह २२।

★ ★ ★

## काव्य - २२

**पुनः** (दोहा)

**ज्यौं तन कंचुक त्यागसौं, विनसै नांहि भुजंग।**
**त्यौं सरीरके नासतैं, अलख अखंडित अंग।।२२।।**

**शब्दार्थः-कंचुक=काँचली। भुजंग=साँप। अखंडित=अविनाशी।**

**अर्थः-जिस प्रकार काँचली के छोड़ने से सर्प नष्ट नहीं हो जाता, उसी प्रकार शरीर का नाश होने से जीव पदार्थ नष्ट नहीं होता।।२२।।**

### काव्य-२२ पर प्रवचन

**ज्यौं तन कंचुक त्यागसौं, विनसै नांहि भुजंग।**
**त्यौं सरीरके नासतैं, अलख अखंडित अंग॥२२॥**

**ज्यौं तन कंचुक त्यागसौं, विनसै नांहि भुजंग।** काँचली के त्याग से साँप का नाश नहीं होता। दृष्टान्त भी.... काँचली होती है न? काँचली छोड़े और सर्प तो चला जाता है। **जिस प्रकार काँचली के छोड़ने से सर्प नष्ट नहीं हो जाता....** इसी प्रकार शरीर के नाश से अलख, भगवान अलख जो राग से और इन्द्रियों से न जानने में आये ऐसा...

समझ में आया? यह इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, मिट्टी हैं। राग-द्वेष तो विकार है। आत्मा विकार रहित निर्मलानन्द है। तो विकार पुण्य विकल्प से दया-दान के विकल्प से भी जानने में नहीं आता, ऐसा अलख है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! कहो, जुगराजजी! यह तुम्हारे गाँव के लिये यह सब हुआ थोड़ा। गाँववाले सुने न हिन्दी। यह हमारे एक मास्टर आये थे। थोड़ा-थोड़ा समझे यह हिन्दी। आहाहा!

अरे भगवान! तू तो अलख! 'अलख नाम धुनि लगी गगन में मगन भया मन मेरा, आसन मारी सुदृढ़ धारी, दिया अगम घर डेरा।' मैं भगवान आत्मा अगम्य आनन्दकन्द, राग और मन से जान न सकूँ, ऐसी मेरी चीज़ है। समझ में आया? अलख कहकर, व्यवहार से भी मैं जान न सकूँ, ऐसी चीज़ है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! देहदेवल मिट्टी का पिण्ड है यह तो। धूल... धूल... धूली। उसमें भगवान आत्मा अलख भिन्न है। सम्यक् दृष्टि में ऐसा होता है कि विकल्प से भी मैं जानने में न आऊँ। व्यवहाररत्नत्रय का राग है, उससे भी मैं जानने में न आऊँ, ऐसी मैं चीज़ हूँ। आहाहा! व्यवहार से जानने में आऊँ तो इसका अर्थ हुआ कि शरीर ही आत्मा है, ऐसा हुआ। राग ही आत्मा है, ऐसा कहते हैं। भाई! इसमें दर्शन आदि में कहते हैं न! आहाहा! शरीर की क्रिया से और राग से मैं जानने में आऊँ, तब तो दोनों एक हो गये। समझ में आया?

मैं तो मेरा ज्ञानस्वभाव, जाननस्वभाव, आनन्दस्वभाव से मैं जानने में आता हूँ। धर्मी समकिती ऐसा मानते हैं और ऐसा होता है। अज्ञानी को कुछ खबर नहीं। कैसे आत्मा प्राप्त हो? और आत्मा का क्या स्वभाव है? **अलख अखंडित...** आहाहा! **उसी प्रकार शरीर का नाश होने से जीव पदार्थ नष्ट नहीं होता।** खण्डित नहीं होता, ऐसा। काँचली के त्याग से सर्प का (नाश) होता है? इसी प्रकार शरीर के नाश से भगवान आत्मा का नाश होता है? वह तो सच्चिदानन्द प्रभु—सत् अर्थात् शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द का भण्डार, वह अपने ज्ञान से ही जानने में आता है। आहाहा! कहो, सेठ! दया-दान के भाव से जानने में नहीं आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! तेरी चीज़, सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं कि तेरी चीज़, व्यवहार के विकल्प से भी जानने में न आवे, ऐसी तेरी चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? यदि व्यवहार से जानने में आ जाये, तो व्यवहार और स्वभाव दोनों एक हो जायें। आहाहा! समझ में आया?

शरीर के लिये न्याय रखा जरा। यह तो काँचली है। राग और शरीर तो काँचली, पर है। भगवान तो अन्दर भिन्न है। वह सर्प जहरवाला, यह अमृतवाला है। अमृत का प्रभु है। आहाहा! अतीन्द्रिय स्वाद का रसिया है। राग का रसिया आत्मा नहीं। आहाहा! जिसे राग का रस होता है, वह अनात्मा मिथ्यादृष्टि है, जीव को मानता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का यह फरमान है। आहा! कि शरीर की क्रिया से आत्मा जानने में (आता है) और धर्म लाभ होता है, ऐसा माननेवाला मूढ़ है। शरीर और आत्मा एक माननेवाला है। और राग जो विकल्प है शुभ, उससे आत्मा को लाभ होता है, ऐसा माननेवाला राग और आत्मा को एक मानता है। आस्रव और आत्मा को एक मानता है, अजीव और आत्मा एक मानता है। अलख—लखा न जाये। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा... देह के परमाणु, परमाणु तो मिट्टी है। श्मशान की राख है वह तो। समझ में आया? श्मशान की राख हो जायेगी यह मिट्टी। यह तो धूल है। यह आत्मा है? अजीव को ही अपना मानते हैं, वे तो मूढ़ हैं, ऐसा कहते हैं। आहा! और शरीर की क्रिया से मुझे लाभ होता है, (ऐसा) माननेवाला भी मूढ़—अज्ञानी है। लो, यह तो तुम्हारा प्रश्न पहला आया। तुम थे वहाँ उपस्थित? उपस्थित थे। हाँ। यह मेहनत करे। अठाई की। ठीक लो। लो, हमारे पण्डितजी, इन्होंने मेहनत की थी फूलचन्दजी के सहायक रूप से, नहीं? आहाहा! प्रश्न : जीवित शरीर से कुछ आत्मा को धर्म होता है या नहीं? अरे, भगवान! क्या कहते हो तुम! जीवित शरीर अर्थात् उसकी पर्याय में आत्मा है यहाँ, वहाँ तक जीवित शरीर कहे। उससे आत्मा में धर्म होता है या नहीं? सेठ! ऐसा प्रश्न हुआ है। पहला प्रश्न था। तुमको तो खबर भी नहीं। पढ़ा है कभी? हाँ। सेठ कहते हैं कि पहला प्रश्न था, इतनी खबर है तुमको? यह नहीं, भाई ने तो यह कहा कि यह पहला प्रश्न है उसमें। दूसरा प्रश्न उसमें है न। दूसरा प्रश्न है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जीवित शरीर वह तो मुर्दा है। मुर्दा है मुर्दा। यह तो रजकण हैं उसमें आत्मा कहाँ आया? समझ में आया? अरे, मुर्दा है। समयसार में आया है। ९६ गाथा। ९६ गाथा में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। उनके बाद में अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि ९०० वर्ष पहले हुए, उन्होंने उसमें कहा। समयसार में है। ९६ गाथा में है।

छियानवे... छियानवे। छियानवे कहते हैं न? 'मृतक कलेवर द्वारा परम अमृतरूपी विज्ञानघन...' ऐसा पाठ है। मृतक कलेवर द्वारा... यह मृतक कलेवर है। आहाहा! मुर्दा है, यह अचेतन है। भगवान अन्दर चैतन्यमूर्ति अरूपी ज्ञानघन है। आहाहा! यह ज्ञानघन भगवान आत्मा, कहते हैं कि अमृतरूप, परम अमृतरूप विज्ञानघन है यह तो। आहाहा! परम अमृतरूप विज्ञानघन भगवान आत्मा अपना है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, मृतक कलेवर के द्वारा परम अमृत विज्ञानघन मूर्च्छित हुआ। आहाहा! मुर्दा। जीवित मुर्दा कहा। यह तो मिट्टी—जड़ है, लकड़ी है। उसकी सब पर्याय होती है, वह जड़ से होती है। आत्मा से नहीं, आत्मा भिन्न है। मृतक कलेवर के द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन भगवान मूर्च्छित हुआ होने से उस प्रकार का कर्ता प्रतिभासित होता है। अज्ञानी को राग का कर्ता और शरीर का कर्ता भासित होता है। आहाहा! क्या कहते हैं, देखो!

शरीर की पर्याय मुझसे होती है, मैं शरीर को हिलाता हूँ, मैं बोल सकता हूँ—ऐसी मान्यतावाला अज्ञानी पर में मूर्च्छित होकर पर में एकत्व मानकर राग और शरीर की क्रिया का कर्ता मिथ्यादृष्टि होता है।

**मुमुक्षु :** ऐसे तो बोलता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन बोले? बोले वह दूसरा, आत्मा नहीं। आहाहा! अरे! बोले, वह आत्मा तो नहीं, परन्तु बोले वह शरीर नहीं। वाणी की आवाज वह दूसरी शब्दवर्गणा है और यह शरीर आहारवर्गणा मिट्टी है। तो इस आहारवर्गणा से भी भाषा नहीं होती। आहाहा! यह शरीर तो आहारवर्गणा है। भाषावर्गणा भिन्न है। आवाज उठती है, वह तो भाषावर्गणा में से आवाज उठती है। यह इसमें से उठती है? आहाहा! खबर नहीं, जीव-अजीव क्या है? भिन्न चीज़ क्या है? भान नहीं और हमें हो गया (धर्म), हम करते हैं धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। समझ में आया? आहाहा! देखो, मृतक कलेवर, पाठ में है, हों! पण्डितजी! पाठ में देखो।

**'तथेन्द्रियविषयीकृतरूपीपदार्थ तिरोहितकेवलबोधतया मृतककलेवरमूर्च्छित परमामृतविज्ञानघनतया च तथाविधस्य भावस्य कर्ता प्रतिभाति।'** संस्कृत है। आहाहा! आचार्यों ने—दिगम्बर सन्तों ने गजब काम किया है! आहाहा! अन्तर में आत्मा को ऊर्ध्व किया है अन्दर। मार भरती—ज्वार लाये पर्याय में। आहाहा! मूलचन्दभाई! आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! तू तो परम अमृत विज्ञानघन है न, नाथ! आहाहा! तू रागरूप तो नहीं, शरीररूप तो नहीं, नहीं, नहीं और एक समय की पर्याय जितना भी नहीं, ऐसा कहते हैं। भाई! तेरा स्वरूप तो परम अमृत विज्ञानघन वह आत्मा। यह आत्मा अपने को भूलकर इस मुर्दे शरीर में मूर्च्छित होकर (मानता है कि) मेरा है और उससे मुझे लाभ होता है, विषय लेने से मुझे मजा आता है। मूढ़ है। समझ में आया? तुझे धर्म और धर्म के धरनेवाले आत्मा की खबर नहीं। आहाहा! देखो, ऐसी सब बात है।

**अलख अखंडित अंग....** आहाहा! भगवान आत्मा तो अनन्त गुण का पिण्ड, ज्ञान-दर्शन-आनन्द—ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्ड, एकरूप चीज़ अखण्डित भगवान है। शरीर के नाश से, राग के नाश से अपना नाश नहीं होता। आहाहा! ऐसी चीज़ की ऐसी अन्तर अनुभव दृष्टि करना, उसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? **दसवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन।** नीचे ११ कलश है।

**अर्थालम्बनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहि-**
**र्ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा भ्राम्यन् पशुर्नश्यति।**
**नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुन-**
**स्तिष्ठत्यात्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुञ्जीभवन्।।११।।**

★ ★ ★

## काव्य - २३

### दसवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन

(सवैया इकतीसा)

**कोऊ दुरबुद्धी कहै पहले न हुतौ जीव,**
**देह उपजत अब उपज्यौ है आइकै।**
**जौलौं देह तौलौं देहधारी फिर देह नसै,**
**रहैगौ अलख जोति जोतिमैं समाइकै।।**

**सदबुद्धी कहै जीव अनादिकौ देहधारी,**
**जब ग्यानी होइगौ कबहूँ काल पाइकै।**
**तबहीसौं पर तजि अपनौ सरूप भजि,**
**पावैगौ परमपद करम नसाइकै।।२३।।**

**अर्थ:-कोई कोई मूख कहते हैं कि पहले जीव नहीं था, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच तत्त्वमय शरीर के उत्पन्न होने पर ज्ञानशक्तिरूप जीव उपजता है, जबतक शरीर रहता है, तबतक जीव रहता है, और शरीर के नाश होने पर जीवात्मा की ज्योति में ज्योति समा जाती है। इस पर सम्यग्ज्ञानी कहते हैं कि जीव पदार्थ अनादि काल से देह धारण किये हुए हैं, नवीन नहीं उपजता, और न देह के नष्ट होने से वह नष्ट हेता है, कभी अवसर पाकर जब शुद्ध ज्ञान प्राप्त करेगा, तब परपदार्थों से अहंबुद्धि छोड़कर आत्मस्वरूप को ग्रहण करेगा और अष्ट कर्मों का विध्वंस करके निर्वाणपद पावेगा।।२३।।**

## काव्य-२३ पर प्रवचन

आहाहा! **कोऊ दुरबुद्धी कहै पहले न हुतौ जीव,...** यह शरीर आदि पाँच महाभूत के पुतले हुए, उसमें जीव उत्पन्न हुआ—जीव उत्पन्न हुआ। मूढ़ है। जीव तो अनादि का है। इस शरीर से पहले, इस शरीर से पहले, इस शरीर से पहले। समझ में आया? मैंने राजुल के सामने देखा था। राजुल नहीं आयी। एक लड़की है यहाँ भैया! एक लड़की है यहाँ। पूर्व का जातिस्मरण हुआ है। समझ में आया? जूनागढ़ है न जूनागढ़ यहाँ। जूनागढ़ में लुहार की लड़की ढाई वर्ष में गुजर गयी तो यहाँ आयी है। अभी विद्यालय गयी है। पढ़ने को गयी है। ढाई वर्ष की उम्र में हुआ है पूर्व का ज्ञान जातिस्मरण। जातिस्मरण समझते हैं? पूर्व भव का ज्ञान, पूर्व भव का। वह लड़की है यहाँ। अभी पढ़ने को गयी है। सामने रहती है। वह मकान है न! सामने मकान है न! उसके पिता के पिता यहाँ रहते हैं। वजुभाई के लड़के की लड़की वह ढाई वर्ष में बोली। ढाई वर्ष में। मैं जूनागढ़ से आयी हूँ। मेरा नाम गीता है। मेरे पिता हैं, चाचा हैं,

माता है। सब बात की। सुबह में आती है। अभी तो पढ़ने को गयी है न! रोज नहीं आती। कभी आती है। सामने मकान में रहती है। सामने मकान है न। जो पूर्वभव में आत्मा था, वही यहाँ है। वह तो अनादि का है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** गीता के शरीर का क्या हुआ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गीता के शरीर का पूछा था उसके पिता के काका ने। यह हमारे पण्डितजी है हिम्मतभाई। यह शास्त्र है न सब, इन सब शास्त्रों का हरिगीत (इन्होंने) बनाया। संस्कृत से (गुजराती) बनाया। बहुत होशियार पण्डित हैं। उनके बड़े भाई हैं। उनके लड़के की लड़की है। यहाँ सब पूछा। राजुल तुझे वहाँ ले जाये जूनागढ़, तो तेरे पिताजी को पहिचानेगी? हाँ। माता को पहिचानेगी? हाँ। चाचा को पहिचानेगी? हाँ। गीता को पहिचानेगी? ऐसा पूछा। राजुल! गीता को पहिचानेगी क्या? यह क्या पूछते हो? गीता वहाँ कहाँ है? गीता तो यहाँ है। समझ में आया? ऐसा जवाब दिया। गीता को पहिचानेगी? हमारे पण्डितजी ने प्रश्न किया था न! पूर्व (भव) में तुम गीता थी न, तो पहिचानोगी या नहीं गीता को वहाँ? गीता वहाँ कहाँ है? गीता तो यह रही। मैं हूँ। गीता का जीव तो मैं यहाँ हूँ।

फिर ले गये। जूनागढ़ ले गये। उसके माता-पिता सबको पहिचाना। वे भी यहाँ आये थे। राजकोट उसके माता-पिता मिलने को आये थे। हम राजकोट थे न, तब आये थे। लुहार है। लुहाणा समझते हो? एक जाति है। आरी की जाति है। लुहाणा। आरी। शरीर नाश होता है। आत्मा तो अनादि का अनन्त (काल से) है। आहाहा! ऐसे तो अनन्त भव किये। एक भव (नहीं) है अनन्त अनादिकाल से भव... भव... भव करते-करते चले आये। परन्तु भव से और शरीर से तो आत्मा भिन्न है। आहाहा! भव का अर्थ गति और राग से भी आत्मा भिन्न है, ऐसा कहते हैं। शरीर से तो भिन्न है, परन्तु भव का भाव और भव (से भी भिन्न है)। आहाहा!

**कोऊ दुरबुद्धी कहै पहले न हुतौ जीव, देह उपजत अब उपज्यौ है आइकै।** देह उपजा तो आत्मा उपजा, ऐसा कहते हैं न! पंचभूत से उत्पन्न होता है। लिखा है इसमें। **पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच तत्त्वमय शरीर के उत्पन्न होने पर**

**ज्ञानशक्तिरूप जीव उपजता है।** लो। ऐसा कहते हैं। दृष्टान्त देते हैं न। शराब-मदिरा बनने की चीज़ होती है न, वह चीज़ इकट्ठी हो तो फिर शराब का मद उसमें उत्पन्न होता है। इसी प्रकार पाँच तत्त्व इकट्ठे हों तो उसमें आत्मा की शक्ति उत्पन्न होती है। मूढ़ अज्ञानी, शरीर उपजा तो आत्मा उपजा—ऐसा मानते हैं। शरीर उपजत, छहढाला में आता है न! हाँ, छहढाला में आता है। **तन उपजत अपनी उपज जान...** यह भी हाँक रखे, फिर इसकी समझण की खबर नहीं होती। बोले बाकी... हमको आती है यह छहढाला। **तन उपजत अपनी उपज जान... उपज जान...** अर्थात् मानता है न! मानो यह जाने। जानता है, ऐसा। मैं उपजा। आत्मा तो अनादि का है। पूर्वभव में था। उस भव में था। उस भव में था। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त अनादिकाल का है यह। तो अज्ञानी ऐसे मानते हैं। समझ में आया? ११वाँ है न? १०वाँ।

**उपजत अब उपज्यौ है आइकै। जौलौं देह तौलौं देहधारी फिर देह नसै,...** जब तक देह रहेगी, तब तक मैं देहधारी हूँ। **फिर देह नसै। रहैगौ अलख जोति जोतिमैं समाइकै...** वह जड़ में समा जायेगा। यह भव देखा, परभव किसने देखा? ऐसा कहते हैं न? हाँ, अरे! तेरी चीज़ भगवान! जीवतत्त्व अनादि-अनन्त अविनाशी भिन्न है। शरीर के कारण से उत्पन्न हुआ और शरीर नाश से नाश है, ऐसा है नहीं। वह बोले कि शरीर और आत्मा भिन्न है। परन्तु शरीर भिन्न है तो शरीर की क्रिया भी मुझसे भिन्न है। समझ में आया? और मेरी उपज भी भिन्न है। **जौलौं देह तौलौं देहधारी फिर देह नसै, रहैगौ अलख जोति जोतिमैं समाइकै।** जीवात्मा की ज्योति में ज्योति समा जाती है। जीवात्मा क्या शरीर। शरीर का नाश होने पर सब समा जायेगा उसमें। आहाहा!

अरे भाई! अनादि-अनन्त आत्मा, वह उपजे कैसे? नाश कैसे हो? अनादि-अनन्त है। नित्यानन्द भगवान अनादि से चला आया है। चौरासी के अवतार में भटकता है। मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान। समझ में आया? शरीर उसका नहीं, उसे अपना माना है। राग उसका नहीं और अपना माना है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि अपने आत्मा की नित्यता होने पर भी मिथ्यादृष्टि के कारण चौरासी में उपजते हैं। समझ में आया? **सदबुद्धी कहै जीव अनादिकौ देहधारी,** लो। ज्ञानी कहते हैं सम्यग्ज्ञानी, यह तो अनादि

काल से देह धारण किये हुए हैं। देह धारण किये हुए हैं। देह उत्पन्न हुआ तो आत्मा उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा! शरीर के रजकण-रजकण अजीवतत्त्व हैं, वे परमाणु हैं। परमाणु की पर्याय से भगवान आत्मा तो अनादि-अनन्त भिन्न है, ऐसा कहते हैं। परकाल से नास्ति है न! परकाल से नास्ति।

**सदबुद्धी कहै जीव अनादिकौ देहधारी, जब ग्यानी होइगौ कबहूँ काल पाइकै।** अपने पुरुषार्थ से, राग और शरीर मैं नहीं, मैं तो आनन्द ज्ञानस्वरूप हूँ—ऐसा पुरुषार्थ करके अपनी चीज़ को प्राप्त करेगा। समझ में आया? अपने ज्ञानस्वभाव से जानकर प्रत्यक्ष ज्ञाता होगा, ऐसा कहते हैं। तब धर्म होगा। आहाहा! यहाँ तो यह दया पाले, व्रत पाले, अपवास करो, तप करो, (यह) धर्म। यह तो सब विकल्प की क्रिया—राग की क्रिया है, विभावभाव की क्रिया है। उससे धर्म माननेवाला पर को ही अपना स्वरूप मानता है, ऐसा कहते हैं। पर से मैं नास्ति हूँ। राग की क्रिया और शरीर की क्रिया से मैं नास्ति हूँ। मेरे स्वरूप से अस्ति हूँ, पर से मैं नास्ति हूँ। ऐसी दृष्टि हो, तब जीव का जीवपना उसके अनुभव में आता है। आहाहा! भारी कठिन।

**तबहीसौं पर तजि अपनौ सरूप भजि,..** जब यह आत्मा धर्म पाता है, तब **पर तजि...** राग और शरीर, वह भिन्न परचीज़ है, मेरी नहीं। आहाहा! **तबहीसौं पर तजि अपनौ सरूप भजि,... पर तजि, सरूप भजि।** कवि है न कवि। आहाहा! राग, विकल्प, पुण्य, आस्रव और अजीव को छोड़कर अपने को भजे। **अपनौ सरूप भजि,...** मैं तो ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप हूँ। उसकी एकाग्रता करना, उसका नाम स्वरूप का भजन है। उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! **अपनौ सरूप भजि,...** भगवान को भजना, यह भी नहीं। भगवान को भजना, वह तो राग है। **अपनौ सरूप भजि,...** सच्चिदानन्द निर्मलानन्द आत्मा, ऐसी अन्तर्दृष्टि करके एकाग्रता होना, यह **अपनौ सरूप भजि,...** भजन कहा जाता है। यह भजन है। यह भजन बोलते हैं न बाहर से, वह सब वाणी का विलास है, विकल्प है। आहाहा! अपना स्वरूप चैतन्य भगवान अपना स्वरूप भजकर **पावैगौ परमपद।** आहाहा!

अभी तो विवाद, सर्वज्ञ का विवाद। आहाहा! कल प्रश्न आया था न कि सर्वज्ञ

जो हैं तो अपने पुरुषार्थ करने का अवसर रहता नहीं। आहाहा! इसलिए सर्वज्ञ हैं, यह मान्यता छोड़ दो। आहा! गजब करते हैं। सर्वज्ञ हैं एक समय में तीन काल-तीन लोक देखनेवाले जो भगवान हैं, तो भगवान ने देखा, ऐसा होगा। हमारे पुरुषार्थ की तो गति रहेगी नहीं। अरे! ऐसा नहीं, सुन तो सही! जगत में सर्वज्ञ भगवान—जीव की पूर्ण पर्याय प्राप्तिवाले परमात्मा हैं, ऐसी जिसे श्रद्धा है, तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय जाने, वह अपना स्वरूप जाने, जाने और जाने। देवीलालजी! पर को जानने से अपने को जाने? इनका प्रश्न था। वह तो एक ऐसा ज्ञान वहाँ होता है। पश्चात् उसे छोड़कर अपने ज्ञान में आवे तो 'जाने' ऐसा कहा जाता है। प्रश्न तो हो न! पाठ तो ऐसा है।

**'जो जाणदि अरहंतं'** कुन्दकुन्दाचार्य भगवान कहते हैं कि जो अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, **'सो जाणदि अप्पाणं।'** उसे आत्मा का ज्ञान होता ही है, उसका नाम पुरुषार्थ है। आहाहा! ऐसी गड़बड़ उठी सर्वज्ञ के नाम से। आहाहा! मगनभाई! यह प्रश्न आया था स्थानकवासी में। और दिगम्बर में तो आया ही था पहले से। पहले आया था। ...भाई! तेरा ज्ञानस्वभाव और उसकी परिणति—पर्याय जिसे पूर्ण हुई, उन्होंने देखा, ऐसा होगा। परन्तु वह देखा, इसलिए होगा—ऐसा नहीं। वह तो होनेवाला है, उसे जानते हैं। परन्तु ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर... ऐसी एक समय की पर्याय में इतनी सामर्थ्य अरिहन्त की, वह जिसे श्रद्धा में आती है, उसकी स्वसन्मुख दृष्टि पुरुषार्थ करती है। अपने को जानते हैं कि मैं भी ऐसा हूँ। समझ में आया? उन्हें सर्वज्ञ (स्वभाव) पर्याय में प्रगट हुआ। मेरा स्वभाव सर्वज्ञ है, ऐसा प्रतीति में आया और आगे बढ़कर सर्वज्ञ की पर्याय प्रगट होगी। समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर जिसे अन्तर श्रद्धा में... विकल्प से नहीं, धारणा से नहीं, अन्तर की श्रद्धा में है। आहाहा! सर्वज्ञ भगवान ने देखा, ऐसा होगा—ऐसी श्रद्धा जिसे अन्तर में हो, उसे तो स्व की ओर का पुरुषार्थ है। समझ में आया? आहाहा! पश्चात् उसके भव हैं ही नहीं। भव कैसे? सर्वज्ञ ज्ञानस्वभाव में भव कैसे? ज्ञानस्वभाव का भान हुआ, उसमें भव कैसे और भव का भाव कैसा? भव और भव के भाव रहित आत्मा ज्ञानस्वभाव

है। समझ में आया? ऐसी सर्वज्ञस्वभाव की बात ही थी नहीं। आहाहा! गजब बात है! यह सर्वज्ञ ऐसे हैं, ऐसी श्रद्धा होने से अपना स्वभाव सर्वज्ञ है, ऐसा पुरुषार्थ हो, तब उसे सर्वज्ञ की प्रतीति होती है। आहाहा! और सर्वज्ञ की प्रतीति और भान हुआ, उसे तो स्वभाव में भव और भव का भाव है नहीं। ऐसा भान हुआ तो उसे भव है नहीं। राग आदि थोड़ा हो तो एक-दो भव हों, वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! आहाहा!

तुम्हारे रतनचन्द लिखते हैं। भविष्यज्ञ, भगवान भविष्यज्ञ? भविष्य को जाननेवाले भगवान? तीनों काल का भविष्य सब जाने भगवान? सब जाने तो जिस समय में जो होगा, वह होगा, हमें करना रहा नहीं। अरे! सुन तो सही। भविष्यज्ञ परमात्मा हैं, ऐसी जिसकी मान्यता हो, उसका स्वभाव की ओर पुरुषार्थ हुए बिना रहता नहीं। आहाहा! क्या करे? फेरफार... फेरफार... **पावैगौ परमपद...** सर्वज्ञ होगा ही। समझ में आया? अपना स्वरूप तो ज्ञान है, तो ज्ञान का भान हुआ, वह सम्यग्दृष्टि हुआ और भान हुआ तो अल्प काल में परमात्मपद पायेगा। शरीर की अवस्था से आत्मा की अवस्था होगी, ऐसा नहीं। अपनी अवस्था से अपनी अवस्था होगी, उसका नाम धर्म और पर से नास्ति कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १५७, भाद्र कृष्ण ५, गुरुवार, दिनांक ०९-०९-१९७१
स्याद्वाद द्वार, पद २४, २५

नाटक समयसार, स्याद्वाद अधिकार। ११वाँ (पक्ष) है न? **ग्यारहवें पक्ष का स्पष्टीकरण ( और खण्डन )**। क्या कहते हैं?

★ ★ ★

काव्य - २४

**ग्यारहवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन**

(सवैया इकतीसा)

**कोऊ पक्षपाती जीव कहै ज्ञेयकै अकार,**
**परिनयौ ग्यान तातैं चेतना असत है।**
**ज्ञेयके नसत चेतनाकौ नास ता कारन,**
**आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है।।**
**पंडित कहत ग्यान सहज अखंडित है,**
**ज्ञेयकौ आकार धरै ज्ञेयसौं विरत है।**
**चेतनाकौ नास होत सत्ताकौ विनास होइ,**
**यातैं ग्यान चेतना प्रवांन जीव तत है।।२४।।**

**शब्दार्थः-पक्षपाती=हठग्राही। असत=सत्ता रहित। सहज=स्वाभाविक। विरत=विरक्त। तत=तत्त्व।**

**अर्थः-कोई कोई हठग्राही कहते हैं कि ज्ञेय के आकार ज्ञान का परिणमन होता है, और आकार परिणमन असत् है, इससे चेतना का अभाव हुआ, ज्ञेय के नाश होने से चेतना का नाश है, इसलिए मेरे सिद्धान्त में आत्मा सदा अचेतन है। इस पर स्याद्वादी ज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान स्वभाव से ही अविनाशी है, वह ज्ञेयाकार परिणमन करता है,**

**परन्तु ज्ञेय से भिन्न है, यदि ज्ञान-चेतना का नाश मानोगे तो आत्मसत्ता का नाश हो जायेगा, इससे जीव तत्त्व को ज्ञानचेतनायुक्त मानना सम्यग्ज्ञान है।।२४।।**

## काव्य-२४ पर प्रवचन

**कोऊ पक्षपाती जीव कहै ज्ञेयकै अकार,**
**परिनयौ ग्यान तातैं चेतना असत है।**
**ज्ञेयके नसत चेतनाकौ नास ता कारन,**
**आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है॥**
**पंडित कहत ग्यान सहज अखंडित है,**
**ज्ञेयकौ आकार धरै ज्ञेयसौं विरत है।**
**चेतनाकौ नास होत सत्ताकौ विनास होइ,**
**यातैं ग्यान चेतना प्रवांन जीव तत है॥२४॥**

भाव की व्याख्या है न? क्या कहते हैं? कोई हठग्राही जीव ऐसा मानता है। आत्मा में ज्ञानभाव त्रिकाल है, वह मानता नहीं। समझ में आया? आत्मा वस्तु है। उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि भाव त्रिकाल है। ऐसा न मानकर निमित्त के अवलम्बन से अन्दर ज्ञान आदि की दशा हो, इससे उस ज्ञानभाव को (पराधीन) मानता है। परन्तु ज्ञानभाव अपना अनादि-अनन्त है, उसमें से उसका परिणमन होता है, ऐसा नहीं मानता, इन्द्रिय के कारण, निमित्तों के अवलम्बन के कारण, जैसे ज्ञेय हों, वैसा यहाँ ज्ञान होता है, इसलिए ज्ञेय के कारण से यहाँ भाव है, (ऐसा मानता है)। समझ में आया? यह देखो न, शब्द सुनाई देता है, तब अन्दर ज्ञान होता है। वह ऐसा मानता है कि यह ज्ञान की पर्याय जो उत्पन्न होती है, वह अन्दर भाव—त्रिकालभाव है, उसमें से नहीं। समझ में आया?

आत्मा त्रिकाल ज्ञान और आनन्द का धाम प्रभु है। उसमें ज्ञानभाव, आनन्दभाव, श्रद्धाभाव, शान्तभाव, स्वच्छताभाव, प्रभुताभाव—ऐसे भाव का वह एकरूप स्वरूप है। उस भाव की पर्याय में हीनाधिक और विशेषता जहाँ दिखाई दे, वे सब विशेषतायें

निमित्त के अवलम्बन से और पर के कारण से उस भाव का परिणमन है—ऐसा मानता है। आहाहा! मगनभाई! निजशक्ति भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान के स्वभाव से भरपूर पदार्थ है। यह शक्ति द्रवती है, परिणमती है। वह निमित्त के कारण से यहाँ परिणमन होता है, इसलिए परभाव के कारण आत्मा का भाव है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

**कोऊ पक्षपाती जीव कहै ज्ञेयकै....** जैसा ज्ञेय है—ज्ञान में वर्तमान में जो ज्ञात होनेयोग्य वस्तु—वह ज्ञात होती है, उसके कारण से ज्ञान की पर्याय का भाव आता है। परन्तु अन्तर में मेरा ज्ञानभाव स्वभाव है, उसमें से ज्ञानपरिणमन भाव की शक्ति से होता है, ऐसा वह अज्ञानी मानता नहीं। आहाहा! ऐसा तो ऐसे सभी वाडा में ऐसा कहते हैं कि हमको यह अज्ञान है, हमको यह... उसकी श्रद्धा में जैसे ज्ञेय निमित्त मिलें, उसी प्रकार से वहाँ ज्ञान की दशा होती है। इसलिए वह पर के कारण से मेरी शक्ति और भाव है। सेठ! समझ में आता है या नहीं? भीखाभाई! झूठी है? तो यह तुम्हारी बात सब रहती नहीं, कहते हैं।

ऐसा कहते हैं कि आत्मा वस्तु है। सत्ता है न? अनादि-अनन्त और उसमें ज्ञान, आनन्द आदि अनादि-अनन्त स्वभाव है। उसका भाव है, उसका वह सामर्थ्य है, उसकी वह शक्ति है, वह सत् का सत्त्व है। सत् का सत्त्व है, ऐसा न मानकर, जैसे ज्ञेय मिलें, उस प्रकार के ज्ञेय के आकार ज्ञान परिणमता है। इसलिए पर के भाव के कारण अपना भाव है, ऐसा मानता है। पण्डितजी! ऐसा नहीं है? क्यों? यह पुस्तक दिखती है, ऐसा ज्ञान होता है या नहीं? दूसरा होता है? पुस्तक देखने से सेठ हैं, ऐसा ज्ञान होता है? सेठ को देखने से सेठ हैं, ऐसा ज्ञान होता है या पुस्तक है, ऐसा ज्ञान होता है? बात ऐसी नहीं, ऐसा कहते हैं।

आत्मा ज्ञान और आनन्द से भरपूर पदार्थ है। परिपूर्ण भरपूर पदार्थ है। भाव उसका स्वभाव, उसका सत् का सत्त्व, तत् का तत्त्व ज्ञान, आनन्द, शान्ति ऐसी अनन्त शक्तियाँ, अनन्त गुण और अनन्त भावरूप से अस्ति है। अपने भाव से है। ऐसे भाव में से अन्तर की दृष्टि करने से ज्ञान की पर्याय सामान्य में से आकर विशेष होता है। तो निमित्त में से आकर होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? निमित्त तो निमित्तस्थान में

रहे, परन्तु निमित्त के कारण से यहाँ ज्ञान हुआ, ऐसी उसकी भूल पड़ती है। समझ में आया? जैसे शब्द ज्ञान में आये, तो शब्द ज्ञेय हैं। वे शब्द आये, ऐसा यहाँ ज्ञान हो। वीतराग की वाणी सुने समवसरण में, तो वीतराग की वाणी सुनने से वह वाणी ऐसा कहती है, ऐसा ज्ञान उसे होता है। तो वह ऐसा मानता है कि यह वाणी है तो ज्ञान का भाव हुआ। परन्तु मेरा ज्ञान का भाव त्रिकाल है, उसमें से ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा वह मानता नहीं। आहाहा!

कहा न, **परिनयौ ग्यान तातैं चेतना...** ज्ञेय के आकार ज्ञान परिणमा है। अपना ज्ञानभाव त्रिकाली है, उसके आकार परिणमा नहीं। सूक्ष्म विषय है यह। स्याद्वाद का अधिकार है। समझ में आया? जैसे घट... घट है न घड़ा। कच्ची मिट्टी का घड़ा तैयार। तो उसमें सीधी गन्ध नहीं। पानी डाले तब गन्ध दिखती है। यह मिट्टी... घड़ा... घड़ा। नया घड़ा होता है न, उसमें गन्ध नहीं दिखती। पानी पड़े, तब गन्ध दिखती है। तो पानी के कारण गन्ध बाहर आयी। परन्तु उसमें गन्धभाव था तो गन्धभाव बाहर आया, ऐसा वह मानता नहीं। भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान और आनन्द का वह समुद्र प्रभु है। उसमें से उसकी तरंगें किनारे ज्वार आती है। समुद्र में जो ज्वार आता है न। अज्ञानी ऐसा कहता है कि नदी के पानी और पूर बहें, इससे ज्वार आता है। समझ में आया? भरती को क्या कहते हैं? बाढ़... बाढ़। बाढ़ कहते हैं न?

समुद्र की बाढ़—ज्वार। नदी का और बरसात का पानी आता है तो ज्वार आता है। वह भाव बाहर से उसमें प्रगट होता है, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि नहीं, ऐसा नहीं है। समुद्र में वह भाव था, उस क्षण में भाव का परिणमन ज्वार—बाढ़ में आता है। वह पर के कारण से नहीं आता। देखो, उसके कारण से आवे तो ११८ डिग्री धूप हो तो भी अन्दर ज्वार आने की शक्ति है अन्दर में—समुद्र में, उसके कारण से ज्वार आता है। भले ११८ डिग्री धूप हो। वह अन्दर से आता है। और पचास इंच वर्षा और नदियों का प्रपात पड़ता हो, परन्तु समुद्र में भाटा का काल हो, ओट समझते हैं?

**मुमुक्षु :** पीछे जाने का।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पीछे जाने का। तुम्हारी भाषा क्या है हिन्दी में?

**मुमुक्षु :** ज्वारभाटा, पीछे जाने का।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पीछे जाने का। यह जब भाटा, भाटा कहते हैं ? तो भरती को क्या कहते हैं ?

**मुमुक्षु :** ज्वार।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लो। अच्छा। ऐसा वापस पानी फिरता हो, उस समय पचास इंच की बरसात हो और नदी के प्रपात गिरते हों तो भी भाटा में ज्वार लाने की सामर्थ्य (बाहर के पानी से) नहीं है। आहाहा! गजब बात है, हों!

यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं कि जैसा यह शास्त्र सुने, पढ़े और जो ज्ञान की पर्याय अन्दर हो, वह बाहर से आती है, वह भाव। वह परलक्ष्यी ज्ञान हुआ तो इसे ऐसा हुआ कि यह बाहर से आया। ऐसा अज्ञानी मानते हैं। परन्तु ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि मुझमें ज्ञानभाव भरपूर है शक्तिरूप, मैंने उसमें दृष्टि दी, उसका स्वीकार किया तो ज्ञान की पर्याय परिणमन भाव में से आयी है, मेरी सत्ता के सत्त्व में से आयी है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा! यह परिणाम, वर्तमान में ज्ञान के-श्रद्धा के इत्यादि जो परिणाम होते हैं, वह ज्ञेय को अवलम्बकर ज्ञेय से होते हैं, ऐसा माननेवाले, अपने में भावस्वभाव भरपूर है, ऐसे भाव को पर से मानता है, स्व से मानता नहीं। समझ में आया ? आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो भले ज्ञान... ज्ञेय के अवलम्ब से परिणमन ज्ञान में हुआ, परन्तु वह कहीं वास्तव में ज्ञान नहीं है। समझ में आया ? मगनभाई! ऐसा मार्ग है, भगवान! आहाहा!

जो ज्ञेय सुनकर, पढ़कर, पाँच इन्द्रिय के निमित्त से अन्दर जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान निमित्त के अवलम्बन का परलक्ष्यी भाव है, वह आत्मा का भाव नहीं। आहाहा! ऐसे ज्ञान को आत्मा का भाव मानना, वह अपने भाव में उसका भाव मानता है। अपने भाव में उसका भाव नहीं है। मेरे भाव से भाव आता है, ऐसा वह मानता नहीं। सूक्ष्म है, सेठ! यह बात। ऐसा उसमें रुपये आ गये यहाँ झट। वह स्थूल बुद्धि में आवे। उसमें कुछ बुद्धि बहुत काम करती नहीं। सेठ!

**मुमुक्षु :** स्थूल बुद्धि काम करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्थूल बुद्धि भी काम करती नहीं। ऐसा कि वहाँ कुछ बुद्धि-बुद्धि काम नहीं करती। मूलचन्दभाई! आहाहा! (मार्ग) अब किस प्रकार से कहा है न!

भगवान आत्मा... यह ११वाँ बोल है, वह अपने ज्ञान-दर्शन के भाव से अस्ति है, ऐसा बतलाना है। अपने त्रिकाली ज्ञान-आनन्द आदि भाव ध्रुवभाव, गुणभाव—स्वभावभाव उससे है, पर के कारण से वह नहीं। निमित्त ऐसे आये... मिट्टी के घड़े में ऐसे सीधी गन्ध नहीं। अन्यमति ऐसा कहते हैं, घड़ा होता है न कच्चा, पानी पड़े तब गन्ध अन्दर पानी के कारण गन्ध बाहर आती है। तब घड़े में गन्ध का भाव है, वह व्यक्त आता है, उसकी उसे खबर नहीं। घड़ा में गन्ध की शक्ति थी, वह व्यक्तरूप होती है। नहीं कि पानी के कारण वह गन्ध की अवस्था हुई है। ऐसा है नहीं। आहाहा! तत्त्व को अतत्त्व और अतत्त्व को तत्त्व किस प्रकार मानता है, उसकी यहाँ बात है। आहाहा! समझ में आया? जैसा राग हो, जैसा राग को ज्ञेय बनाकर ज्ञान करे, उससे वह ज्ञान, राग है इसलिए हुआ....

**मुमुक्षु :** बिल्कुल नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** समझ में आया? यह दया-दान-व्रत-भक्ति का राग हुआ, उस राग का यहाँ ज्ञान हुआ तो वह राग के कारण ज्ञान हुआ है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! वह राग का ज्ञान, वास्तविक रीति से अन्तर के ज्ञानभाव में से आयी हुई पर्याय में वह ज्ञान हुआ है। आहाहा! ऐसा तो कहते हैं, देखो!

व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। उसके अर्थ में अब जरा उतरे तो आया। वह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा अपना शुद्ध स्वभाव का स्वीकार जहाँ हुआ भाव का अर्थात् स्वीकार में परिणमन ज्ञान की दशा वर्तमान हुई। वह ज्ञानदशा, राग जो होता है, जिस प्रकार का, उसे राग के कारण से जानता है, ऐसा नहीं। परन्तु अपनी स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय ज्ञानभाव को अवलम्बकर जो हुई, वह उसका अपना भाव का अस्तित्व है। अज्ञानी कहे, राग ऐसा आया और ऐसा ही राग का कैसे ज्ञान हुआ? द्वेष आया, दया का भाव आया और वैसा ही ज्ञान क्यों हुआ? जैसे द्वेष का भाव, विषयवासना अशुभराग, उस समय उस अशुभराग का ही ज्ञान ऐसा ही क्यों हुआ? इसलिए उसके कारण से

ज्ञान होता है, (ऐसा मानता है)। ज्ञेय कहा है न। ज्ञेय के आकार। तो राग भी ज्ञेय है। पण्डितजी! आहाहा!

**मुमुक्षु :** ज्ञानी उस राग को जाने, ऐसा ही अर्थ हुआ न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जानता नहीं उसे। वास्तव में अपने को जानता है। आहाहा! वह उसका भाव है त्रिकाली, उसका अवलम्बन लेने से जो पर्याय हुई, वह अपने भाव में से हुई है। राग के कारण से हुई है और निमित्त के कारण से हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा! भीखाभाई! गजब यह तो। ओहोहो! यह सुनते हैं, सुने और विकल्प से विचारे, इसलिए भावज्ञान होता है, ऐसी झूठी बात है, कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा ज्ञानभाव वस्तु स्वयं ध्रुव नित्यभाव है। उस नित्यभाव का स्वीकार, आश्रय करने से जो पर्याय होती है, वह भाव में से हुई, भावशक्ति में से हुई है। आहाहा! समझ में आया? वह पर्याय हुई है, वह राग और निमित्त का जैसा स्वरूप है, हुआ वैसा ही ज्ञान, परन्तु उसके कारण और उससे नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** आगमज्ञान का फल आत्मज्ञान है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या? आगमज्ञान अर्थात् भावज्ञान। आगम—शास्त्र पर है। शास्त्र कुछ जाने नहीं। यह पृष्ठ जड़ है। यह कहीं जानता नहीं कि यह ज्ञान क्या है? वस्तु यह है। यह वाणी—जिनवाणी कहो, परन्तु वह तो जड़ है। वह कहाँ आत्मा है? यह ज्ञान कहाँ उसमें है? उसमें ज्ञान कहाँ है? आहाहा! समझ में आया?

भगवान की प्रतिमा देखी। अरे, भगवान को साक्षात् देखा समवसरण में, उसमें से जो ज्ञान हुआ, वह उसके आकार ज्ञान हुआ, इसलिए उसे ऐसा है कि उससे मुझे ज्ञान हुआ। उसकी दृष्टि बहिर्मुख है। परन्तु जो ज्ञान होता है यथार्थरूप से सम्यग्ज्ञान, वह तो भाव का स्वीकार होने पर, भाव परिणमने पर भाव की पर्यायरूप परिणमन है। भाव तो सदृश ध्रुव है। आहाहा! परन्तु कठिन बात है, भाई! इसके अन्दर भाव में पड़ी है, उस शक्ति की व्यक्तता होती है। निमित्त और राग के कारण वहाँ ज्ञान की पर्याय का व्यक्त—प्रगटपना होता है, ऐसा नहीं है। तत्त्व ही ऐसा है, ऐसा वह मानता नहीं और दूसरे प्रकार से मानता है तो वह मिथ्यात्व का महा दोष है। आहाहा! मिथ्यात्व क्या है? मिथ्यात्व

किसे कहना ? उसकी खबर नहीं। मिथ्यात्व के शल्य में कितनी भूल और कितना पाप, खबर नहीं। आहाहा! कोई हिंसा करे या भोग ले या पैसा रखे तो वह उसे पाप मानता है। अब वह तो एक साधारण आसक्ति के राग का पाप, साधारण पाप, अल्प अनन्तवें भाग का पाप है। अनन्त-अनन्त पाप अपने अन्तरभाव का स्वीकार किये बिना, उसे पर के कारण से मेरी वह व्यक्ति—व्यक्तता प्रगट हुई ज्ञान की, वह महामिथ्यात्व है। सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा!

**परिनयौ ग्यान तातैं चेतना असत है...** क्या कहा ? आत्मा में चेतना का भाव है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। चेतना असत् है। पर के कारण से है। अपने में चेतना है, ऐसा नहीं है। आहाहा! प्रवचनसार में कहा है न कि भाई! वह तो सूत्र की उपाधि है। श्रुतज्ञान... श्रुतज्ञान... श्रुतज्ञान। तो श्रुतज्ञान अर्थात् यह श्रुत सुना, उससे है वह ज्ञान ? श्रुत तो जड़ है, शब्द श्रुत के वाणी के भगवान की वाणी जड़ है। वह ज्ञान है ? उसे सुनने से ज्ञान होता है ? वह निमित्त है, पर है, अचेतन है। उससे ज्ञान होता है परन्तु ज्ञान का भाव चेतन का मेरा है, उसमें से होता है, ऐसा अज्ञानी मानता नहीं। आहाहा!

उस समय ऐसे समवसरण में सुनता हो न ऐसा, आहाहा! वाह रे वाह! परन्तु वह तो बहिर्लक्षी ज्ञान और पर के कारण से हुआ, वह तेरा स्वरूप ही नहीं। तेरे भाव के कारण से होता है, आहाहा! ऐसे अस्तित्व को न मानकर, संयोगी जैसी चीज़ मिली, उस प्रकार से उस प्रकार का ज्ञान होने से वह चैतन्यसत्ता मुझमें असत् है, पर के कारण से वह चैतन्य की सत्ता का परिणमन होता है, ऐसा मानता है। आहाहा! समझ में आया ? **परिनयौ ग्यान तातैं चेतना असत है...** यहाँ चेतन असत् नहीं, चेतना असत्। भाव लेना है न! चेतना जो भाव। अन्दर चेतना जो भाव है, वह असत् है। उस भाव के कारण यहाँ ज्ञान आया है, ऐसा नहीं। वह चेतना शक्ति ही नहीं मेरी। पर की शक्ति के कारण ज्ञान होता है। आहाहा!

**ज्ञेयके नसत चेतनाकौ नास...** देखो! जैसा निमित्त का संयोग और आदि—अन्त हुआ, ऐसा यहाँ ज्ञान होता है। इसलिए ज्ञान की चेतना में असत्पना है। मेरे ज्ञान में सत्पना मुझसे है, ऐसा है नहीं। वह ज्ञेय बदला तो ज्ञान भी बदल जाता है, इसलिए

उसके अवलम्बन से हुआ ज्ञान, उसे वह ज्ञान मानता है। परन्तु चैतन्य के भाव में शक्ति पड़ी है, उसे वह मानता नहीं। आहाहा! सत् चैतन्य की खान। स्याद्वाद अधिकार में पूरा जैनदर्शन का सार रच दिया है। आहाहा! शरीर अच्छा हो, निरोगता हो और आसपास के देश और कोई अनुकूलता सब हो तो यहाँ ज्ञान हो। जहाँ व्यक्ति को बैठना हो, वहाँ भी जगह अच्छी हो तो बैठ सके न? और वातावरण (खारा) हो, दुश्मन बैठे हों, वहाँ बैठ सके? वह कहते हैं कि दुश्मन हो, शत्रु हो, शरीर में रोग आदि हो तो उसके कारण यह ज्ञान होता नहीं। वह अनुकूलता हो तो उसके कारण ज्ञान होता है। परन्तु मेरा ज्ञानभाव है, ऐसी अनन्त प्रतिकूलता होने पर भी और अनुकूलता होने पर भी मेरा ज्ञानभाव ही स्वयं शक्तिरूप से वह व्यक्त होता है। समझ में आया?

**ज्ञेयके नसत...** कैसे? कि जानने की चीज़ जो है, वह जहाँ पलट जाती है, तो **चैतनाकौ नास...** यह जानने की दशा अभाव हो जाती है, अभाव हो जाती है। **ता कारन, आतमा अचेतन...** इस कारण से आत्मा में ज्ञानभाव त्रिकाली है नहीं, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! **आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है...** भगवान आत्मा में त्रिकाल ज्ञानभाव है, ऐसा मानता नहीं। **आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है...** चेतन नहीं, चेतनभाव नहीं, वह तो अचेतन है। निमित्त के अवलम्बन से चैतन्य की पर्याय होती है, इसलिए चेतनभाव का जीव में अभाव है, ऐसा अज्ञानी मानता है।

**पंडित कहत ग्यान सहज अखंडित....** सम्यग्दृष्टि धर्मी ऐसा कहते है कि ज्ञान सहज। भाई! यह निमित्त के अवलम्बन से हो, ऐसी उसमें शक्ति नहीं। सहज शक्ति पड़ी है आत्मा में... यह वह कहीं बात समझने की... वह कभी समझा नहीं और वह समझे बिना यह लगाया कि इससे धर्म और इससे धर्म। दया पालकर धर्म हो गया। यहाँ तो कहते हैं कि दया तो पर की पाल सकता नहीं। परन्तु दया का भाव आया, उसका जो ज्ञान होता है, वह दया के भाव के कारण यहाँ समझण की पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं है। उसके कारण से हुई अर्थात् उस निमित्त का जैसा यहाँ ज्ञान हुआ, इसलिए उसके कारण से ज्ञान की दशा हुई है, ऐसा नहीं है।

अन्तर भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त ज्ञानचेतना के स्वभाव की खान है। उसमें

से शक्ति की व्यक्तता पर्याय में होती है। उसे शक्ति को मानना कहा जाता है। समझ में आया? जयधवल में आता है न कि इन्द्रिय से ज्ञान होता हो, इन्द्रियों से ज्ञान पर्याय में, तो सामान्य ने क्या किया? क्या कहा, समझ में आया? यह बड़ी चर्चा चलती थी न तब, वे आये थे न सब बंशीधर और... इन्दौर... इन्दौर। पण्डित आये थे न सेठ के साथ। क्या कहते हैं? बंशीधरजी की बात है, पण्डित। आये थे न! बाद में आये थे। दो बार तीन-तीन महीने रहे। सामान्य जो ज्ञान त्रिकाल वस्तु शक्तिरूप है, वही विशेषरूप... सामान्य की दृष्टि करने से, सामान्य का स्वीकार होने से सामान्य स्वयं सम्यग्ज्ञानरूप से—विशेषरूप से परिणमता है। यदि इन्द्रियाँ और मन से और सुनने से ज्ञान हुआ तो सामान्य का परिणमन क्या उस काल में? उसकी शक्ति ने क्या किया? समझ में आया? उसमें कुछ विधि... सामान्य-विशेष, सामान्य-विशेष तो सब जाने, ऐसा कहा।

अरे भगवान! भाई! उसमें तो पूरा माल पड़ा है। इन्द्रियों के निमित्त से अवलम्बन से सुनने से ज्ञान होता है। समझ में आया? तो ज्ञान सामान्य ने क्या किया? पर्याय उससे हुई और सामान्य रह गया ऐसा का ऐसा? तो सामान्य का कार्य क्या उस समय में? सामान्य अर्थात् ध्रुव त्रिकाल। उसका यह विशेषपना इन्द्रियों से, मन से, राग से यदि यहाँ ज्ञानपर्याय विशेष हो, तो सामान्य का विशेष क्या? वह तो पर का विशेष हो गया। ले, कहाँ का कहाँ गया, देखो! जयधवल में ऐसा लिया है। आहाहा!

भगवान सर्वज्ञ ने कहा हुआ तत्त्व जैसा है, ऐसा विपरीत श्रद्धा रहित बैठना, वह तो सम्यग्दर्शन निहाल का पंथ है। क्रिया भले अन्दर अव्रत की हो राग की। समझ में आया? परन्तु उस राग में ज्ञानी है नहीं। ज्ञानी तो अपने ज्ञानभाव के अवलम्बन से ज्ञान का परिणमन हुआ है, उसमें है। समझ में आया? आहाहा! तो धर्मी जीव परिवार में और राजगद्दी में और व्यापार-धन्धे में है? तीन काल में नहीं। समझ में आया? तब उसने आत्मा को स्वीकार किया कहलाये। क्षण में और पल में जहाँ-जहाँ वह है, वहाँ-वहाँ वह अपने सामान्यज्ञान के विशेष परिणमन में ही वह है। सामान्यज्ञान परिणमकर राग होगा? सामान्यज्ञान परिणमकर द्वेष होगा? सामान्यज्ञान परिणमकर दया के भाव होंगे? आहाहा! अशक्य है, भाई! तुझे खबर नहीं। भगवान आत्मा क्षण में और पल में वस्तु का शक्ति स्वरूप जो है धर्म का, धर्म अर्थात् स्वभाव।

सवेरे आया था न। प्रायश्चित्त नहीं आया था? बोध, ज्ञान और चित्त—तीनों आत्मा के धर्म हैं। धर्म शब्द से भाव, लो। उसका त्रिकाली भाव है। ऐसा स्वरूप का स्वीकार होना, वही पर्याय में निश्चय प्रायश्चित्त है। समझ में आया? कहो, देवीलालजी! धर्म हुआ न, धर्म। ज्ञान, बोध और चित्त—धर्म, जीव का धर्म। धर्म अर्थात् भाव, धर्म अर्थात् स्वभाव। त्रिकालीस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, अविनाशीस्वभाव, वह स्वयं चारित्रस्वरूप है। प्रायश्चित्तस्वरूप अर्थात् चारित्रस्वरूप ही आत्मा है। वह उसका धर्म है। ऐसे आत्मा के अवलम्बन से जो शक्ति में से व्यक्तता प्रगट हो, उसे वर्तमान परिणतिरूप धर्म कहा जाता है। आहाहा! कठिन काम लोगों को। बाहर का हो हा करने लग गया।

२५०० वर्ष में चारों ओर धमाल चलती है। वह कहे, मैं सामने पड़कर काम करूँ, वह कहे मैं। बाहर में ऐसा हो रहा है। यह तो बाहर की परिणति तो उसके काल में जो होनेवाली हो वह होती है। भाई! तू क्या करेगा? वह होती है, उसे जाननेवाला तू है—ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। उसका कर्ता है नहीं, उसमें विकल्प उठा, उसका भी कर्ता नहीं, परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान हुआ, उस पर्याय सम्बन्धी का, उसका कर्ता भी नहीं। आहाहा! वह तो भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु ज्ञान के अन्तर के वेदन में से आता परिणमन ज्ञान का, वह उसका ज्ञानभाव का स्वीकार हुआ कहा जाता है।

उसमें सवेरे कहा था न कि बोध, चित्त और ज्ञान का स्वीकार, वह पर्याय में निश्चय चारित्र, वह पर्याय का निश्चय प्रायश्चित्त। त्रिकाल चारित्र का स्वीकार, त्रिकाल चारित्रधर्म, वह मेरा चारित्रधर्म। ज्ञान, बोध और धर्म शब्द से उसका गुण अर्थात् मेरा गुण, मेरा चारित्र, मेरा आनन्द ऐसा जो धर्म; धर्म अर्थात् त्रिकालीभाव, उसका स्वीकार। राग का, निमित्त का और अंश का स्वीकार नहीं। आहाहा! गजब किया है। दिगम्बर आचार्यों ने तो वस्तु को, ओहोहो! चारों ओर के पहलुओं से देखो अकेला सत् ही खड़ा होता है। परन्तु लोगों को उस ओर समझण का घर क्या है, उस ओर का झुकाव नहीं। क्रियाकाण्ड में फँस गये बेचारे। आहाहा! कि जो क्रियाकाण्ड... 'करनी हित हरनी सदा' आ गया या नहीं? राग आदि की क्रिया, वह तो हित हरनी। 'करनी की धरनी में महा मोह राजा बसे।' पहले आ गया है। क्योंकि ऐसे करूँ, ऐसा करूँ, वह तो विकल्प और राग है। करनी की धरनी में—भूमिका में महा मोह राजा बसे। वहाँ तो मिथ्यात्व

बसता है। आहाहा! कैसे बैठे? तब वह कहते थे, नहीं करना न अब? ऐसा पूछते थे एक पण्डित कल, नहीं? वे आये थे न दूसरे। किस गाँव के थे, नहीं? गिरनार जाकर आये होंगे। दिगम्बर थे न? कल थे।

**पंडित कहत ग्यान सहज अखंडित....** मेरा भाव तो मुझमें स्वाभाविक अखण्ड है और पर्यायरूप से होता है, वह भाव का विशेषपना है। निमित्त के कारण विशेषपना है, यह वस्तु के स्वरूप में है नहीं। तो अपने भाव का असत्पना करता है। पर के कारण से हो तो अपने भाव का असत्पना सिद्ध हो। अपना भाव अपने से है, ऐसा अस्तिरूप से जहाँ ऐसा निश्चय करे, तब उसे अस्तिपने की सत्ता में से सम्यग्ज्ञान का विशेषरूप व्यक्तपने परिणमन होता है, उसे धर्म कहा जाता है। भाई! गजब धर्म ऐसा। **ज्ञेयकौ आकार धरै ज्ञेयसौं विरत है...** देखो, भाषा क्या है! भगवान के ज्ञान में वह राग आदि का ज्ञान हो, शरीर आदि का ज्ञान हो, परन्तु वह ज्ञेय से ज्ञान भिन्न है। ज्ञेय और ज्ञान एक नहीं। आहाहा! यह दया-दान, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह ज्ञेय है। ज्ञान उससे भिन्न है। आहाहा! आया न तुम्हारे, नहीं?

**मुमुक्षु :** राग और ज्ञान....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भिन्न है। भाई में, निहालचन्दभाई में। निहालचन्दभाई आये न, इतना कहा... दूसरे वर्ष। भाई! ज्ञान और राग भिन्न है। इतना जहाँ कहा। बहुत सुना हुआ, बहुत पढ़ा हुआ। बहुत शास्त्र जैन के, अन्य के, वेदान्त के बहुत पढ़े हुए। ओहो!

स्वभावभाव अस्तिरूप से... यहाँ भाव की बात चलती है न! और राग भिन्न अर्थात् राग की उसमें नास्ति है। ज्ञेय से ज्ञायकभाव अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया? भले उस प्रकार से राग हो और द्वेष हो, परन्तु तो भी उसे जाननेवाला ज्ञान... जाननेवाला ज्ञान ज्ञेयरूप हुआ नहीं। वह तो ज्ञानरूप होकर ज्ञेय को जानता है, ज्ञेय से भिन्न रहकर। आहाहा! देखो न, कहाँ बात डाली। व्यवहार से सम्यग्दृष्टि मुक्त है। आहाहा! गजब, कहा, बात। चारों पहलुओं से भी एक बात खड़ी होती है, लो। पूर्वापर विरोधरहित सन्तों की वाणी... सम्यक् धर्मी व्यवहार से मुक्त है। ज्ञेय से भिन्न है, ऐसा कहा न। **ज्ञेयसौं विरत है।** आहाहा! भाई! यह तो अन्तर का मार्ग है। यह कहीं बाहर से आवे, ऐसा नहीं। हाँ, **ज्ञेयकौ आकार धरै...** भगवान आत्मा... ज्ञान में, जैसा राग है, व्यवहार

है, निमित्त है, शरीर है, उस आकार अर्थात् अपने ज्ञान आकार ज्ञेय आकार हुआ, ऐसा कहने में आता है, परन्तु ज्ञेय से तो भिन्न ज्ञान है। आहाहा! **ज्ञेयकौ आकार धरै ज्ञेयसौं विरत है।** बनारसीदास जैसे ने भी पद्य में कैसी रचना की, लो!

**चेतनाकौ नास होत...** कहते हैं, यदि तू ऐसा कहे कि आत्मा में चेतना का भाव नहीं। वह पर के कारण से सब ज्ञान की पर्याय खड़ी होती है। यदि ऐसा तू कहे, **चेतनाकौ नास होत सत्ताकौ विनास होइ,...** तब तो चेतना सत्ता का नाश हो जाये। और तब तो **ग्यान चेतना प्रवांन जीव तत है।** ज्ञान प्रमाण जीव है, उसका भी नाश हो जाये। (परन्तु) ऐसा हो नहीं सकता। अरे, ऐसा समझना! यह तो जिसे धर्म करना हो और भव का अभाव करना हो, उसकी यह पद्धति है। जुगराजजी कहते हैं न कि यहाँ तो भव का अभाव करने का कारखाना है। सेठ कहते हैं। जिसे भव का अभाव करना हो, उसका यह कारखाना है। आहाहा! कहते हैं, मूल तो दृष्टि कराते हैं, और उसका त्रिकालीभाव का स्वीकार कराते हैं और उस पर्याय पर लक्ष्य है, उसे छुड़ाते हैं। समझ में आया? आहाहा!

**यातैं ग्यान चेतना प्रवांन जीव तत है।** यदि तू ज्ञानचेतना के भावरहित जीव कहे तो चेतना सत्ता है, उसका नाश हो जाता है। और उसके बदले यह चेतना प्रमाण तो जीव है। तो जीव का भी नाश हो गया। इसलिए ऐसा नहीं है। चेतना प्रमाण जीवतत्त्व है। राग प्रमाण और निमित्त ज्ञेय प्रमाण आत्मा-जीव नहीं। आहाहा! **जीव तत्त्व को ज्ञान चेतनायुक्त मानना....** यह सम्यग्ज्ञान है। ऐसी सूक्ष्म बात। उसमें लाखों लोग इकट्ठे हों? यह क्या कहते हैं? यह क्या लगायी है यह? यह तो आत्मा, आत्मा, आत्मा का भाव और अनन्त-अनन्त भाव। यह उसका आश्रय और आदर करना, स्वीकार करना, उसका नाम धर्म। क्या इसमें कुछ करना? भाई! यही करने का है। वह तो सब धूल मिट्टी, वह तो पर है। भाई! और वासना खड़ी हो पुण्य-पाप की, उस विभावस्वभाव से तो भगवान पृथक् / विभक्त है। अपने ज्ञानभाव से एकत्व है। यह तीसरी गाथा में आया न! अपना ज्ञान और आनन्दभाव से एकत्व है, परन्तु पुण्य-पाप के विकल्प से तो पृथक् है। इससे ज्ञानभाव ज्ञेय को जानने पर भी ज्ञेय से भिन्न रहता है। समझ में आया? आहाहा! समयसार, प्रवचनसार, नियमसार। यह सब अमरचन्दजी.....

यह डाला है आज। नियमसार नाम कहा है..... और डाले और फिर ऐसा कहे। जब भगवान को केवलज्ञान हुआ.... 'अरे! मेरा ऋषभ कहाँ होगा?' उसे नहीं, उनकी माँ को... उनकी माँ को। मरुदेवी माता को विकल्प हुआ। हाथी के हौदे बैठकर गये। भगवान को ऐसा देखती है वहाँ, आहाहा! इतने-इतने देव इतने-इतने सेवा करते हैं यह तो। विचार हुआ और हाथी के हौदे केवलज्ञान। उसमें है, हों, उसमें है। आज आया है आज। आगरा... आगरा....

**मुमुक्षु :** भगवान ऋषभदेव को?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उनकी माता को.....

**मुमुक्षु :** माता को केवलज्ञान हुआ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा है कहीं कुछ। नहीं समझते।

**मुमुक्षु :** हाथी के हौदे हो न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाथी के हौदे... परन्तु किसे कुछ... ? यह कुछ है उसमें। यह .... बात है न। आज आया था, पढ़ा था। हाथी के हौदे मरुदेवी माता ऋषभदेव को देखने जाती हैं कि मेरा पुत्र दु:खी है या कैसे है? देखने गये। प्रेम है न पुत्र के प्रति। माता है। हाथी के हौदे ऐसे जाये और जहाँ समवसरण देखती हैं, आहाहा! यह तो देव और विभूति.... आहाहा! एकदम विचार पलटने से केवलज्ञान। परन्तु हाथी के हौदे, स्त्री के वस्त्र में। .....

**मुमुक्षु :** महाराज! बाहर के संयोग को क्या सम्बन्ध है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वहाँ केवल (ज्ञान) हुआ उनको। कहो।

यह उसमें भी है उसमें। मरुदेवी है हाथी के हौदे, देखा है न। गये थे या नहीं देखने? यह बताया या नहीं? नहीं। ख्याल नहीं? एक मन्दिर में है। हाथी के ऊपर मरुदेवी माता बैठी हैं। है न? ऐ चेतनजी! हाँ। उनका गाँव था वहाँ। है या नहीं वह वहाँ? ऊपर देखा था हमने एक बार। हाथी के ऊपर बैठी हैं। भगवान के दर्शन करने जाती हैं वहाँ, आहाहा! मेरा पुत्र तो देव से पुजता है, मनुष्य से पुजता है, लो। अब इतनी

खबर नहीं कि.... तीन ज्ञान तो लेकर आये थे और इन्द्र जिनकी सेवा करते थे और इन्द्र ने जिनके जन्मोत्सव आदि मनाये हैं। यह और बात.... विचार बदल जाये, ऐसा कहे, विचार बदलने से केवलज्ञान हो गया। परन्तु ऐ, यह वस्त्र पड़े हैं, हाथी के हौदे बैठी हैं, अभी साधुपना (आया नहीं) और स्त्री के देह की पर्याय, उसमें केवलज्ञान नहीं होता। सब सिद्ध कर डाला। उसमें है वहाँ युग... युग में है कुछ। .... युग का है वह। युग का होगा? ..... ऐसा पढ़ा था। है, उन लोगों के पाठ में है। ठाणांग पाठ में है, ठाणांगसूत्र में। ठाणांगसूत्र है न! मरुदेवी हाथी के हौदे अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष पधारे।

फिर मैंने तो एक प्रश्न किया था कि ऐई.... मरुदेवी की भाँति मोक्ष हो अच्छा या लाख वर्ष और करोड़ वर्ष तक मुनिपने में रहकर केवलज्ञान हो वह अच्छा? यह पोरबन्दर में। बेचारे कुछ समझे नहीं। पोरबन्दर में (संवत्) १९८७ के वर्ष में। कहा, इसमें कौन सा अच्छा? वह कहे, ....ऐसा अच्छा। एक ही बात कुछ खबर नहीं होती। भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसका जहाँ आश्रय लिया, तब तो सम्यग्दर्शन हो और उग्र आश्रय ले, तब तो चारित्र की पर्याय हो। तब तो वस्त्र, पात्र और हाथी के हौदे बैठना रहे (नहीं)। आहाहा! और स्त्री का जहाँ देह हो, वहाँ मुनिपने की दशा तो प्रगट ही नहीं होती। खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** आपके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिला?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिला। मरुदेवी को जो मोक्ष हुआ, वह ठीक। सिद्ध हुआ। उसमें मुझे मोक्ष अच्छा और इसमें नहीं अच्छा तो तुमने तो द्वेष किया केवल (ज्ञान) के ऊपर। .....में रहना। क्या किया था वहाँ? कुछ भी खबर नहीं मिले वस्तु की लोगों को। यह अपवास करना और यह करना और यह करना। और शास्त्र में ऐसा आवे कि शास्त्र का स्वाध्याय करे, वह तप अर्थात् शास्त्र का पठन करना, वह तप, लो। अब वह तो विकल्प है। स्वाध्याय तप कहा है न। वह तो विकल्प की दूसरे नम्बर की बात है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा चेतनाभावस्वरूप है। चेतनाभावस्वरूप शक्तिरूप है उसका। शक्ति में से व्यक्तता होती है। शक्ति है, उसमें से प्रगट होता है। (प्रगट)

सत्तारूप से ऐसे केवलज्ञान अन्दर स्पष्ट पड़ा है, ऐसा नहीं। शक्तिरूप से ज्ञान है कि जिस ज्ञान की शक्ति का एकाग्र होने से विकास होता है। समझ में आया? चारित्र का शक्तिरूप भाव त्रिकाल है आत्मा में। उसका वह धर्म अर्थात् स्वभाव है। उस चारित्रधर्म की व्यक्तता, शक्ति की व्यक्तता... स्वरूप तो त्रिकाल चारित्रस्वरूप ही है, वीतरागस्वरूप है, परन्तु उसका स्वीकार होने से शक्ति में से व्यक्तता पर्याय में प्रगट होती है, उस शक्ति में से पर्याय आती है। या व्यवहाररत्नत्रय का राग था और शरीर अनुकूल था और संहनन अनुकूल था, इसलिए केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! एक बात में कितनी समाहित की है, देखो! समझ में आया? इसमें वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! वस्तु का स्वरूप ही जहाँ ऐसा है। यह ११वाँ बोल हुआ।

१२वाँ पक्ष। पर की सत्ता से, आत्मा की सत्ता नास्ति है। उसमें अपनी सत्ता के भाव से अस्ति है, ऐसा कहा था। अब पर की सत्ता के भाव से इसकी नास्ति है, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! गजब बात करते हैं न! समझ में आया? राग की अस्ति या सर्वज्ञ परमात्मा के केवलज्ञान की अस्ति, उसके कारण से अपनी सत्ता है, ऐसा नहीं है। तथा परलक्षी जो ज्ञान का भाव हुआ, इससे यह ज्ञान का भाव होता है, ऐसा नहीं। परलक्षी ज्ञान के भाव के स्वभाव में—सत्ता में नास्ति है। समझ में आया? अटपटा खेल है यह तो सब। ऐसा तू है, इसकी इसे खबर नहीं। दीपचन्दजी तो कहते हैं कि तू परमेश्वरपना हो, (ऐसा है)। मैं परमेश्वर हूँ, मैं भगवान हूँ। आहाहा! भगवान हूँ, भाव से भगवान हूँ, ऐसा स्वीकार होगा तो पर्याय में भगवानपना आयेगा। मैं पामर हूँ, ऐसा स्वीकार होने से पामर की पर्याय प्रगट होकर अज्ञान होगा। आहाहा! भाव की बात है न यह तो। आहाहा! त्रिकालभाव से भगवान मैं हूँ। उस भगवान में से भगवान की पर्याय प्रगट होती है। पामरता, राग और निमित्त और संहनन में से पर्याय प्रगट होती है, उनसे नास्ति है। देवीलालजी! आहाहा! बाहर का पक्ष है पहला कि पर के कारण से है, ऐसा कहता है परवाला। उसका उत्तर देंगे कि पर के कारण से नहीं।

★ ★ ★

## काव्य - २५

### बारहवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन

(सवैया इकतीसा)

**कोऊ महामूरख कहत एक पिंड मांहि,**
**जहांलौं अचित चित अंग लहलहै है।**
**जोगरूप भोगरूप नानाकार ज्ञेयरूप,**
**जेते भेद करमके ते ते जीव कहै है।।**
**मतिमान कहै एक पिंड मांहि एक जीव,**
**ताहीके अनंत भाव अंस फैलि रहै है।**
**पुग्गलसौं भिन्न कर्म जोगसौं अखिन्न सदा,**
**उपजै विनसै थिरता सुभाव गहै है।।२५।।**

**शब्दार्थ:-अचित=अचेतन=जड़। चित=चेतन। मतिमान=बुद्धिमान-सम्यग्ज्ञानी।**

**अर्थ:-कोई कोई मूर्ख कहते हैं कि एक शरीर में जबतक चेतन अचेतन पदार्थों के तरंगे उठते हैं, तबतक जो जोगरूप परिणमे वह जोगी जीव और जो भोगरूप परिणमे वह भोगी जीव है, ऐसे ज्ञेयरूप क्रिया के जितने भेद होते हैं, जीव के उतने भेद एक देह में उपजते हैं, इसलिए आत्मसत्ता के अनन्त अंश होते हैं। उनसे सम्यग्ज्ञानी कहते हैं कि एक शरीर में एक ही जीव है, उसके ज्ञानगुण के परिणमन से अनन्त भावरूप अंश प्रगट होते हैं। यह जीव शरीर से पृथक् है, कर्म-संयोग से रहित है और सदा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यगुणसम्पन्न है।।२५।।**

---

### काव्य-२५ पर प्रवचन

---

**कोऊ महामूरख कहत एक पिंड मांहि, जहांलौं अचित चित अंग लहलहै है।** दोनों, हों! ज्ञान की पर्याय हो और अचितपना हो विकल्प आदि में। **जोगरूप भोगरूप नानाकार ज्ञेयरूप, जेते भेद करमके ते ते जीव कहै है।** यह वस्तु उसमें नहीं, ऐसा नहीं। यही वस्तु है, ऐसा कहते हैं। भेद ज्ञान की पर्याय के, राग के आदि भेद उसरूप

से... जितने जोगरूप, भेदरूप, अनेकरूप, ज्ञेयरूप। **जेते भेद करमके...** राग आदि के ज्ञान कार्य के, **ते ते जीव कहै है...** इतने जीव हैं। **मतिमान कहै एक पिंड मांहि एक जीव,...** महासत्तास्वरूप है। ऐसे भेद का उसमें अभाव है। जोगरूप और ज्ञान की पर्यायरूप और... आहाहा! समझ में आया? उस ज्ञान की पर्याय का भी अन्दर में अभाव है। भाव सिद्ध करना है न! पर के अभाव स्वभावरूप। समझ में आया?

**मतिमान कहै एक पिंड मांहि एक जीव,...** महासत्ता भगवान आत्मा स्वयं अपने भाव से है और ऐसे भेद और निमित्त के भाव से नास्ति है। समझ में आया? **ताहीके अनंत भाव अंस फैलि रहै है।** वह तो त्रिकालीभाव जो अपने से है, उसके पर्यायरूप अंश हैं, परन्तु भाव में उसका अभाव है। आहाहा! भारी गजब बात है न! **पुग्गलसौं भिन्न कर्म जोगसौं अखिन्न सदा,...** वह तो कर्म से भिन्न, वह रागादि कार्य से भिन्न, वह ज्ञान का योग राग में जुड़े, ऐसी ज्ञान की पर्याय से भिन्न। **अखिन्न सदा...** वह तो एकरूप त्रिकालीभाव है। आहाहा! **उपजै विनसै...** ज्ञान की पर्याय में उपजे और विनसे, तो भी त्रिकाल **थिरता सुभाव गहै है।** तथापि त्रिकाल स्थिरता स्वभाव ग्रहता है। पर्याय में उत्पाद-व्यय होने पर भी ध्रुवपने उसका भाव त्रिकाल है। वह उत्पाद-व्ययसहित है, परन्तु उत्पाद-व्यय का भी ध्रुव में अभाव है। ऐसे आत्मा में पर की नास्ति है, ऐसा बताते हैं। विशेष कहेंगे।

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १५८, भाद्र कृष्ण ६, शुक्रवार, दिनांक १०-०९-१९७१**
**स्याद्वाद द्वार, पद २६ से २९**

यह समयसार नाटक, स्याद्वाद अधिकार। तेरहवाँ पक्ष है। उसका स्पष्टीकरण और खण्डन। क्या कहते हैं ? क्या कहते हैं ? देखो ! आज हिन्दी है, वह हिन्दी चलेगा। यह हिन्दी है न अन्दर। उन्होंने और माँग की है। कोई ऐसा कहता है कि आत्मा अनित्य ही है। क्षण-क्षण में आत्मा में पर्याय बदलती है, उस कारण से अनित्य ही है, अनेक है—ऐसा मानते हैं, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया ? अध्यात्म बात तो सूक्ष्म है भाई ! चाहे जो भाषा करे, कुछ अभी बात चलती नहीं। शरीर अनित्य है,.... अनित्य है, उसकी यहाँ बात नहीं। आत्मा की पर्याय में अपनी पर्याय में अवस्था बदलती है क्षण-क्षण में (बदलती है)। अनित्य ही आत्मा है, ऐसा माननेवाला नित्य को चूक जाता है। समझ में आया ?

त्रिकाली ज्ञायक नित्यभाव जो ध्रुवस्वभाव... सुबह चला था। नित्यानन्द प्रभु जिसमें अविनाशी शक्तियाँ ध्रुव अनन्त पड़ी हैं, ऐसा नित्य द्रव्य, वही सम्यग्दर्शन करने में आश्रयभूत है। नित्य यदि न माने, अनित्य ही माने, उसे स्थिर दृष्टि करने का प्रसंग नहीं रहता। समझ में आया ? अनित्य तो पलटती चीज़ है, तो उस पर दृष्टि रखने से दृष्टि भी पलटे, वह स्थिर तो रह सके नहीं। तो कहते हैं, **कोऊ एक छिनवादी...** बौद्धमत आदि अथवा जैन में रहते हुए भी अपनी पर्याय को ही आत्मा माननेवाला। शरीर को (अपना) माने, वह तो महा मिथ्यामूढ़ है। समझ में आया ? शरीर को अपना माने, वह तो मिथ्यात्वभाव—अधर्मभाव है। परन्तु अपने स्वभाव से चूककर त्रिकाली ज्ञायकभाव नित्य ध्रुवस्वभाव को चूककर अकेले परिणाम को ही माने, वह भी मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। आहाहा !

★ ★ ★

काव्य - २६

**तेरहवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन** (सवैया इकतीसा)

**कोऊ एक छिनवादी कहै एक पिंड मांहि,**
**एक जीव उपजत एक विनसत है।**
**जाही समै अंतर नवीन उतपति होइ,**
**ताही समै प्रथम पुरातन बसत है।।**
**सरवांगवादी कहै जैसै जल वस्तु एक,**
**सोई जल विविध तरंगनि लसत है।**
**तैसै एक आतम दरब गुन परजैसौं,**
**अनेक भयौ पै एकरूप दरसत है।।२६।।**

**शब्दार्थः-सरवांगवादी=अनेकांतवादी। तरंगनि=लहरों।**

**अर्थः-कोई कोई क्षणिकवादी-बौद्ध कहते हैं कि एक शरीर में एक जीव उपजता है और एक नष्ट होता है, जिस क्षण में नवीन जीव उत्पन्न होता है, उसके पूर्व समय में प्राचीन जीव था। उनसे स्याद्वादी कहते हैं कि जिस प्रकार पानी एक पदार्थ है, वही अनेक लहरोंरूप होता है, उसी प्रकार आत्मद्रव्य अपने गुण-पर्यायों से अनेकरूप होता है, पर निश्चयनय से एकरूप दिखता है।।२६।।**

---

काव्य-२६ पर प्रवचन

---

**कोऊ एक छिनवादी कहै एक पिंड मांहि, एक जीव उपजत एक विनसत है।** क्षण-क्षण में नयी-नयी अवस्था होती है। विचार की, श्रद्धा की, ज्ञान की यह अवस्था—पर्याय, तो उसे ही जीव मानते हैं। **जाही समै अंतर नवीन उतपति होइ,...** जिस समय में नया परिणाम उत्पन्न हुआ, उसी समय में पुराने परिणामवाला आत्मा नाश होता है। **ताही समै प्रथम पुरातन बसत है।** नाश होता है। समझ में आया? प्राचीन जीव था, उसका नाश होता है। क्या कहा? जो परिणाम—पर्याय है एक समय की, पूर्व की थी वह नाश

होती है, नयी पर्याय उत्पन्न होती है। तो अज्ञानी मानते हैं कि मैं नया उत्पन्न हुआ, पुराने आत्मा का नाश हुआ। ऐसे पर्याय को ही आत्मा माननेवाला त्रिकाली ध्रुव नित्यानन्द प्रभु से च्युत होकर अपनी एक समय की पर्याय पर दृष्टि है, तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो जैन हो, जैन सम्प्रदाय में जन्म हुआ हो। समझ में आया?

**सरवांगवादी कहै जैसै जल वस्तु एक,...** नित्य त्रिकाल भी है और वर्तमान पर्याय में परिणमन अनित्यता भी है। ऐसे दोनों ही पक्ष को माननेवाला... जैसे जल वस्तु एक है, परन्तु तरंगें भिन्न-भिन्न उठती हैं—उत्पन्न होती हैं। जल एक और पर्याय में तरंगें भिन्न-भिन्न उठती हैं। है न? **पानी एक पदार्थ है, वही अनेक लहरोंरूप होता है।** लहर—तरंग उठती है न उसमें? **तैसै एक आतम...** वस्तु तो भगवान द्रव्यरूप से एक है। आहाहा! नित्यानन्द शुद्ध द्रव्यस्वभाव, वह तो नित्य... नित्य एकरूप है। **एक आतम दरब गुन परजैसौं, अनेक भयौ पै एकरूप दरसत है।** पर्याय में और गुणभेद से अनेक दिखता है, फिर भी वस्तुरूप से एक है। समझ में आता है?

**एक आतम दरब गुन परजैसौं, अनेक भयौ...** अपनी गुण की वर्तमान अवस्था से अनेकरूप दिखता है, **पै एकरूप दरसत है।** वस्तुरूप से एक है। समझ में आया? शरीर, वाणी की बात नहीं, वह तो परद्रव्य है, उसके साथ तो कुछ सम्बन्ध है ही नहीं। अपना तो द्रव्य और पर्याय में सम्बन्ध है। बराबर है? यह स्त्री-कुटुम्ब-परिवार के साथ सम्बन्ध नहीं? अर्धांगना कहते हैं न? कहने में आता है? ऐई सेठ! आधा अंग कहते हैं पत्नी को। धूल भी नहीं। आधा अंग तो अनित्य और नित्य, वह दो अर्धांग है। समझ में आया? भगवान आत्मा नित्य द्रव्य है, उसकी पर्याय अनित्य, वह उसका आधा अंग है। आहाहा! अमरचन्दभाई! यह शरीर, स्त्री वह तो परवस्तु है। परवस्तु के साथ सम्बन्ध क्या? क्या है? अपनी पर्याय और द्रव्य की सत्ता में अपनी पूर्ण सत्ता समा जाती है। यह पुत्र के साथ कुछ सम्बन्ध है या नहीं, डालचन्दजी और यह सब?

**अनेक भयौ,...** ऐसा कहते हैं। गुण जो शक्ति अनन्त है, उसकी पर्याय परिणमनरूप आत्मा अनेक होता है। जिसका एक अंग अनेकरूप भी है और एक अंग नित्यरूप भी है। समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा में दो अंग—दो प्रकार। उसकी वर्तमान पर्याय में अनेकता पर्यायरूप, परिणमनरूप, परिणामरूप भासती है और वस्तुरूप से द्रव्यरूप

से एक है। यह एक नित्य है। नित्य सिद्ध करना है। पहले बोल में नित्य सिद्ध करना है। समझ में आया? अनित्य ही है, ऐसे एक-एक समय के परिणाम को ही आत्मा मानना, आहाहा! (वह) मिथ्यादृष्टि अजैन है, उसे जैन की खबर नहीं। जैन का नाम धराये और क्षणिक मानता है, भान नहीं। जैन में जन्म हुआ, उसमें क्या हुआ? थैली में चिरायता भरा हो और ऊपर लिखे शक्कर, तो क्या चिरायता मीठा हो जाता है? थैली... थैली क्या कहते हैं? कोथली। थैली में चिरायता भरा हो और ऊपर लिखा हो शक्कर, तो क्या चिरायता मीठा हो जायेगा?

इसी प्रकार हम जैन हैं। जैन हुआ वह तो थैली के ऊपर नाम लिखा। अन्दर में तो एक परिणाम को ही आत्मा मानता है तो जहर भरा है उसमें। समझ में आया? वह तो अभी पर को अपना मानता था। स्त्री मेरी, पैसा मेरा, इज्जत मेरी। जो चीज़ पृथक् और बिल्कुल भिन्न है। जिसके प्रदेश, जिसका भाव और जिसकी पर्याय बिल्कुल भिन्न है, उसे अपना मानता है। यह शरीर हमारा है, बच्चा हमारा है, इज्जत हमारी है, लक्ष्मी हमारी, यह मकान... मकान हमारे हैं। मूढ़ है। मिथ्यादृष्टि अज्ञान है। समझ में आया? जो तेरा है, उसे तो तू (अपना) मानता नहीं और तेरा नहीं है, उसे तू (अपना) मानता है। वह जैन नहीं है। मलूकचन्दभाई! वह जैन नहीं है। जैन तो उसे कहते हैं कि जो परचीज़ तो मेरी (मानता) नहीं, परन्तु एक समय का राग भी मेरा (मानता) नहीं। इतना तो नहीं परन्तु एक समय का परिणाम जितना भी मैं नहीं। समझ में आया? आहाहा! बापू! जैन अर्थात्? यह तो वस्तु का स्वरूप है। 'जिन सो ही है आत्मा अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।'

भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर ने इन्द्रों की हाजिरी में—उपस्थिति में समवसरण में दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा कहा। अरे आत्मा! तेरी चीज़ से दूसरी चीज़ बिल्कुल पृथक् प्रदेश और भाव से अलग, उसे तेरी मानता है, वह हमारा भक्त (नहीं)—जैन नहीं है।

**मुमुक्षु :** जैन के वाड़े से निकाल दिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अजैन है। यह मलूकचन्दभाई ने जरा कहा न! भ्रम अर्थात्

भाई... रामजीभाई कहे, भ्रम है परन्तु अभी हमारे हैं, ऐसा नहीं। परन्तु वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? दो पुत्र अमेरिका में गये हैं और हमारे हैं। .... डालना। मूढ़ है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो।

**मुमुक्षु :** मूढ़ कौन कह रहा है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भगवान कहते हैं कि वह मूढ़ है। भगवान मूढ़ कहते हैं। तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा गणधरों और सन्तों और इन्द्रों की उपस्थिति में प्रसिद्ध दिव्यध्वनि द्वारा कहते थे—कहते हैं, वह यहाँ कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि रजकण से लेकर सारी चीज़ दूसरी, वह तो अपने में है नहीं, अपनी है नहीं, अपने से वह रही नहीं और उस चीज़ को अपनी मानना अधर्म है। आहाहा! अब वह जैन नहीं, इसका अर्थ ही अजैन है। जैन नहीं, ऐसा न कहना, ऐसा कहे। जैन नहीं।

जैन तो भगवान उसे कहते हैं कि परचीज़ मेरी नहीं, ऐसा तो मानता नहीं, परन्तु दया-दान-व्रत का परिणाम भी मेरा नहीं, ऐसा माने और इसके उपरान्त एक समय का परिणाम जो दया-दान को जाननेवाली एक समय की पर्याय, इतना भी मैं नहीं। मैं तो नित्य ध्रुव हूँ, ऐसा माननेवाले को जैन कहते हैं। आहाहा! जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, वह वस्तु की मर्यादा है। समझ में आया? कुछ खबर नहीं होती, भान नहीं होता। मूढ़ की भाँति हम जैन हैं, हम श्रावक हैं और हम साधु हैं। भान कुछ नहीं। थैली में अफीम भरा हो और ऊपर लिखे शक्कर, तो अफीम क्या शक्कर हो जाती है? आहाहा!

**मुमुक्षु :** छूमन्तर कदाचित हो जाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** छूमन्तर तो परिणमन बदल जाये तो हो जाये। परन्तु वह तो परिणमन बदल जाये तो हो जाये। परन्तु जब तक अफीम है, तब तक शक्कर है? अफीम के परमाणु शक्कररूप हो जाये, परिणम जाये। उसमें क्या है? समझ में आया? दृष्टान्त नहीं दिया था अमेरिका का एक बार? सुना था? लो, सेठ को खबर है। तुमने सुना है? तुम कहाँ गये थे तब?

अमेरिका में गये थे। एक हमारे दादभा, उसका लड़का बढवाण का। चम्पकभाई न? चम्पकभाई, चम्पकभाई। फिर वहाँ एक वैज्ञानिक व्यक्ति होगा। औषध... रस।

औषधि बहुत कीमती बनाने की शक्तिवाला। पायखाने में से एक विष्टा का टोकरा लाया। क्या ? विष्टा पायखाने में से।

**मुमुक्षु :** कितना ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** टोकरा समझते हैं ? इतना टोकरा ( भरकर )। मगनभाई ! सुना है ? नहीं। कहा था, चम्पकभाई ने कहा था। लाये और वह व्यक्ति तो बहुत होशियार था। उसके पास औषधि। एक औषध जहाँ डाला अन्दर वहाँ सुगन्ध बदल गयी। विष्टा की जो गन्ध थी, वह गन्ध, सुगन्ध हो गयी। और दूसरी औषधि डाली, वहाँ हलुवा हो गया।

**मुमुक्षु :** हलुवा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हलुवा हो गया। पैसे देने पड़े उसे कुछ, हों ! २५-३०-५० रुपये। इतनी औषधि के रुपये देने पड़े। हम बनावे परन्तु पैसा देना पड़ेंगे। पचास नहीं, कुछ दिये थे रुपये उसके औषधि के। एक औषधि से सुगन्ध और दूसरी औषधि से शीरा—हलुवा। लो खाओ, कहे। अररर ! अभी एक घड़ी पहले विष्टा थी... वह तो रजकण की पर्याय बदल जाती है। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** पर्याय बदल गयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बदल जाती है। अफीम के रजकण, वे शक्कररूप हो जाते हैं। यह रजकण देखो, यह शरीर। पहले यह बिच्छू का डंक जहर का परमाणु था, वही परमाणु यहाँ शरीररूप हो गया। हाँ, मकोड़ा हो जाये। दबाये हुए पैसे मकोड़ारूप बदल जाये। पैसा होता है न ? लक्ष्मी दबायी हो। दाटी समझते हैं ? जमीन में। पाँच-दस वर्ष, पन्द्रह वर्ष निकले, देखे तो कुछ नहीं मकोड़ा और कोयला। यह खबर है न ! रजकण तो पलट जाते हैं, उसमें क्या ? वह चीज़ क्या है ? यहाँ तो कहते हैं, यह रजकण पलटा, वह तो अपनी पर्याय से पलटता है। वह हलुवा हो गया तो क्या हुआ ? साहेब थोड़ा लो, लो चलो। गरीब को दे दूँगा। पैसा .... फिर गरीब को दे दिया, वह खा गया। हलुवा जैसा लगे। इसी प्रकार यह शरीर, देखो ! जहर के परमाणु सर्प के, बिच्छू के, उसरूप वह रजकण पहले था। वह रजकण अभी इस (शरीर) रूप हुआ है। परिणमन हुआ जहररूप से। जहर से (शरीर) हुआ। परन्तु यह मेरा है और जहर मेरा नहीं, (ऐसा

मानता है, वह) मूढ है। समझ में आया? और उसकी क्रिया मैं कर सकता हूँ तो उसे अपना माना, वह जैन नहीं।

यहाँ तो दूसरी बात कहते हैं। नित्य भंग सिद्ध करना है न? कि एक समय में अन्दर दया-दान-व्रत-भक्ति, काम-क्रोध का भाव हो, वह भी मेरे हैं, ऐसा माननेवाला अजैन मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। उससे आगे जाकर... नित्य सिद्ध करना है न? समय-समय में, क्षण-क्षण में पर्याय—परिणाम बदलता है। वह परिणाम जितना मैं हूँ, ऐसी परिणाम के ऊपर जिसकी दृष्टि है, वह भी मिथ्यादृष्टि अजैन है। आहाहा! समझ में आया? बात ऐसी है। परन्तु मैं त्रिकाल... देखो। **एक आतम दरब गुन परजैसौं, अनेक भयौ...** एकसा दरसत है... पर्याय में अनेकरूप हुआ, परन्तु मैं तो वस्तुरूप से तो एक ही हूँ। मेरी चीज़ में तो पर्याय भी नहीं, राग नहीं और पर चीज़ तो नहीं, नहीं, नहीं। ऐसे अन्तर में आत्मद्रव्य पर—वस्तु पर दृष्टि लगाना और श्रद्धा करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन की—धर्म की पहली पर्याय है। आहाहा! धर्म कोई बाहर से मिल जाये, ऐसी चीज़ नहीं। समझ में आया? आहाहा!

**अनेक भयौ पै एकरूप दरसत है।** देखो! निश्चयनय से एकरूप दिखता है। आत्मद्रव्य अपने गुण-पर्याय से अनेकरूप होता है। परन्तु निश्चय से एक वस्तु है, तो एकरूप ही है। आहाहा! नित्यानन्द ध्रुव जो अंश है, वह सम्यग्दर्शन का ध्येय है और वह सम्यग्दर्शन (के लिये) आश्रय करनेयोग्य है। सम्यग्दर्शन (करने) में राग, निमित्त और पर्याय आश्रय करनेयोग्य है नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में यह आश्रय करनेयोग्य है और नित्य है, इसकी तो खबर नहीं। और दया-दान-व्रत आदि क्रिया, वह धर्म हो गया। मूढ़ है। अधर्म का सेवन करता है और मानता है कि धर्म है। ऐसी चीज़ है। आहाहा! १४वाँ पक्ष। अकेला नित्य ही माने और अनित्य न माने, वह बात है। समझ में आया? **चौदहवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन।**

★ ★ ★

## काव्य - २७

**चौदहवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन** (सवैया इकतीसा)

**कोऊ बालबुद्धी कहै ग्यायक सकति जौलौं,**
**तौलौं ग्यान असुद्ध जगत मध्य जानियै।**
**ज्ञायक सकति काल पाइ मिटि जाइ जब,**
**तब अविरोध बोध विमल बखानियै।।**
**परम प्रवीन कहै ऐसी तौ न बनै बात,**
**जैसैं बिन परगास सूरज न मानिये।**
**तैसैं बिन ग्यायक सकति न कहावै ग्यान,**
**यह तौ न परोच्छ परतच्छ परवांनियै।।२७।।**

**शब्दार्थ:-बालबुद्धी=अज्ञानी। परम प्रवीन=सम्यग्ज्ञानी। परगास (प्रकाश)= उजेला। परतच्छ=साक्षात्।**

**अर्थ:-कोई कोई अज्ञानी कहते हैं कि जबतक ज्ञान में ज्ञायकशक्ति है, तबतक वह ज्ञान संसार में अशुद्ध कहलाता है, भाव यह है कि ज्ञायकशक्ति ज्ञान का दोष है, और जब समय पाकर ज्ञायकशक्ति नष्ट हो जाती है, तब ज्ञान निर्विकल्प और निर्मल हो जाता है। इस पर सम्यग्ज्ञानी कहते हैं कि यह बात अभ्भव में नहीं आती, क्योंकि जिस प्रकार बिना प्रकाश के सूर्य नहीं हो सकता, उसी प्रकार बिना ज्ञायकशक्ति के ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए तुम्हारा पक्ष प्रत्यक्षप्रमाण से बाधित है।।२७।।**

---

### काव्य-२७ पर प्रवचन

---

**कोऊ बालबुद्धी कहै ग्यायक सकति जौलौं, तौलौं ग्यान असुद्ध जगत मध्य जानियै।** क्या कहते हैं ? आहाहा! भगवान आत्मा त्रिकाली आनन्दरूप ज्ञानरूप होने पर भी पर्याय में पर का जानना—ज्ञेय का जानना अनित्य में आता है, वह अशुद्ध है। अशुद्ध है तो अशुद्ध को निकाल दो तो मैं शुद्ध होऊँ। वह भी मिथ्यादृष्टि है। पर्याय में ज्ञेय का

जानना हुआ, वह तो अपनी पर्याय का स्वरूप है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात। जैनदर्शन का स्याद्वाद वस्तु की सिद्धि करनेवाला है। आहाहा! **ज्ञायक सकति काल पाइ मिटि जाइ जब,...** अज्ञानी कहता है। आत्मा ज्ञान की मूर्ति है तो उसकी ज्ञानपर्याय में अनेकता भासती है, अनित्यता भासती है, वह निकल जाये तो मैं अकेला नित्य रहूँ, ऐसा अज्ञानी मानते हैं। समझ में आया?

जैसे दर्पण है न, दर्पण। दर्पण। दर्पण में अग्नि और बर्फ की झलक दिखती है। दिखती है न? तो अज्ञानी ऐसा मानता है कि यह झलक निकल जाये तो दर्पण स्वच्छ रहे। परन्तु वह झलक तो दर्पण की अवस्था है। क्या निकाल देगा? समझ में आया? यह दर्पण में—शीशा में अग्नि, बर्फ सामने हो, आम—जामुन जैसा है ऐसा अन्दर दिखे। तो यह (वस्तु) दिखे तो यह अशुद्धता है। यह अशुद्धता निकाल दो तो दर्पण शुद्ध रहे। क्या निकाल देगा? वह स्वच्छता तो पर्याय का धर्म है। समझ में आया? यह अनित्यता को मानता नहीं और एकान्त नित्य को मानता है, वह भी मिथ्यादृष्टि—मूढ़ है। समझ में आया?

**ज्ञायक सकति काल पाइ मिटि जाइ जब,** लो। **ज्ञायकशक्ति ज्ञान का दोष है।** जानना—पर का जानना, यह ज्ञान का दोष है, ऐसा अज्ञानी मानते हैं। परन्तु पर का जानना, वह पर्याय का धर्म है। अपनी पर्याय—परिणाम का स्वभाव है, ऐसा जानता नहीं। समझ में आया? **तब अविरोध बोध विमल बखानियै...** तब विरोधरहित आत्मा ज्ञानस्वरूप अकेला पर्याय से रहित, अशुद्धता से रहित, परिणमन से रहित अकेला रहे, तब अविरोध तत्त्व सिद्ध होता है—ऐसा अज्ञानी कहते हैं। समझ में आया? अरे!

**परम प्रवीन कहै ऐसी तौ न बनै बात,....** कहो, मगनभाई! ऐसा कहे, यह मेरा परिणमन है। परिणमते हुए वह दूसरा ज्ञात हो जाता है। उसमें शरीर ज्ञात हो जाये, राग ज्ञात हो जाये, वह तो सब ज्ञान का दोष है। दोष है, ऐसा अज्ञानी मानते हैं। समझ में आया? ज्ञान में पर्याय ज्ञात हो। कसाईखाने में बकरा काटते हों तो ज्ञान की पर्याय में जानने में आये। ज्ञात होता है तो अशुद्धता है? समझ में आया? केवलज्ञान में लोकालोक जानने में आये। क्या यह पर्याय की अशुद्धता है? यह तो पर्याय का स्वभाव है। आहाहा! गजब भाई!

**परम प्रवीन कहै ऐसी तौ न बनै बात, जैसैं बिन परगास सूरज न मानियै।** प्रकाशरहित सूर्य हो सकता नहीं। इसी प्रकार जानने की पर्याय बिना ज्ञायक आत्मा हो नहीं सकता। समझ में आया? जानन... जानन पर्याय, जानन दशा। जैसे सूर्य प्रकाश बिना होता नहीं, वैसे जानन पर्याय बिना द्रव्य होता नहीं। लो, प्रमाण का विषय बताया न पूरा। द्रव्य और पर्याय दो होकर प्रमाण का विषय है। समझ में आया? पर्याय द्रव्य बिना होती नहीं। किस अपेक्षा से? कि पर्याय अन्दर एक अंशरूप है। भले द्रव्य में नहीं, वह कुछ प्रश्न नहीं अभी। द्रव्यार्थिक के द्रव्य में नहीं, वह प्रश्न अभी नहीं। प्रमाण के द्रव्य में वह पर्याय द्रव्य की है। अरे, गजब बातें भाई यह!

**जैसैं बिन परगास सूरज न मानियै, तैसैं बिन ग्यायक सकति न कहावै ग्यान, यह तौ न परोच्छ परतच्छ प्रमाण परवांनियै।** आहाहा! **बिना ज्ञायक शक्ति के ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए तुम्हारा पक्ष प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है।** सम्यग्ज्ञानी कहते हैं कि जानन पर्याय बिना ज्ञायक द्रव्य अकेला हो सकता नहीं। समझ में आया? तो तुम्हारे पक्ष में विरोध है। जानन... जानन... जानन... जानना, जानना भिन्न-भिन्न प्रकार से, वह तो दोष है।

**मुमुक्षु :** बहुत कहते हैं कूटस्थ वह पदार्थ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। अकेला नित्य है, यह मानता है। समझ में आया? ऐसा है नहीं। प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित... प्रत्यक्ष प्रमाण क्या? यदि नित्य द्रव्य है, उसका परिणमन कार्य भिन्न-भिन्न होता है। भिन्न-भिन्न होता है, वह प्रत्यक्ष है। विचारधारा एकरूप है? भिन्न-भिन्न विचार आते हैं तो विचारधारा उसकी पर्याय का धर्म है। यह तो स्याद्वाद है न! अनेकान्त सिद्ध करते हैं।

पर्याय में अनेकपने का ज्ञान होने पर भी यह पर्याय का स्वभाव है कि अनेक को जाने और अनेक को जानते होने पर भी नित्य तो ज्ञायक एकरूप है। आहाहा! पूरा द्रव्य अनित्य परिणमनरूप हो गया, ऐसा नहीं और परिणमन में अनेकता आयी तो अशुद्धता है, वह भी नहीं। आहाहा! यह तो सत्य का विषय है। जैसा आत्मा है, ऐसा भगवान तीर्थंकरदेव ने कहा, ऐसे आत्मा की यथार्थ समझण न हो और धर्म हो जाये, तीन काल

में नहीं बनता। आहाहा! **यह तौ न परोच्छ, परतच्छ परवांनियै।** लो। **यह तौ न परोच्छ, परतच्छ परवांनियै।** ऐसा कहते हैं। परोक्ष नहीं यह। खबर पड़ती नहीं तुझे? वर्तमान ज्ञान में भिन्न-भिन्न जानना होता है तो प्रत्यक्ष है। अनेकपना जानना, वह कुछ मलिनता है, अशुद्धता है—ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

आता है न, 'कबीर का घर गौकटो के पास।' वह आता है। कबीर की बात में आता है। कबीर के दोहे हैं न दोहे, उसमें आता है। हमारे वहाँ दुकान पर आता था, जैन समाचार मँगवाते थे न। जैन समाचार, हों! (संवत्) १९६४-६५-६६। जैन समाचार। वाडीलाल मोतीलाल एक थे न। मैं तो दुकान पर मँगवाता था न। दूसरे सब भले धन्धा करे। मैं तो यह भी करता था साथ में। वह जैन समाचार पत्र था वाडीलाल मोतीलाल का। उसमें भेंट आये थे एक बार कबीर के दोहे। भेंट आया था। उसमें यह सब था। सब पढ़ा था वहाँ दुकान पर पढ़ा था। 'कबीर का घर गौकटो के पास।' रामजीभाई का घर पावैया के पास था। पावैया की गली में था। पावैया अर्थात् हींजड़ा। हींजड़ा नहीं समझते? नपुंसक। पहले बहुत थे इस ओर। रामजीभाई की गली पावैया की गली थी। पावैया बहुत थे। हाँ, यह तो नाम उनका। होवे तो उसमें क्या हुआ? उसमें क्या दोष लग गया? और पावैया को जाने कि यह हीजड़ा है। ज्ञान में आया तो क्या ज्ञान दोषित हो गया? बहुत हींजड़े थे। हींजड़े—मुसलमान, हिन्दी लोग। बहुत हींजड़े। हमारी दुकान पर आते थे न! पालेज दुकान पर हींजड़े आवे। सब पैसे लेने—माँगने आवे। ढोल बजावे और तुच्छ मनुष्य बहुत हल्के।

यहाँ कहना क्या है कि गौकटो के पास अपना घर हो और अपनी ज्ञानपर्याय में वह जानने में आवे, तो क्या दोष है? समझ में आया? दोष नहीं, ज्ञान की पर्याय का जानना, वह स्वभाव है। वह तो स्वभाव है। फिर भी त्रिकाल तो नित्य रहता ही है। त्रिकाल नित्य की दृष्टि होने पर भी दृष्टि स्वयं पर्याय है। आहाहा! ठीक! मगनभाई! त्रिकाल ध्रुवस्वरूप भगवान की दृष्टि करना—सम्यग्दर्शन, वह स्वयं पर्याय है। आहाहा! ध्रुव में तो परिणमन होता ही नहीं, ध्रुव तो एकरूप सदृश है। आहाहा! पर्याय दुःखरूप है। यह... यह... यह... जाने।

समकित की पर्याय—परिणाम दुःखरूप हो गयी उसे! भान ही नहीं उसे। चारित्र

की पर्याय दु:खरूप होगी। वह पर्याय है, अपनी अवस्था है, वह सत् है। वास्तव में तो परिणाम सत्, ऐसा कहता है कि मेरे सत् के लिये तेरा आलम्बन भी मुझे नहीं। मैं ऐसा सत् परिणाम हूँ। मगनभाई! मैं भी एक उत्पाद-व्ययवाला सत् हूँ। अपने से सत् हूँ। तुम ध्रुव हो तो मैं सत् हूँ, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात जैनदर्शन की। अलौकिक बात है। कुछ खबर नहीं। लोग जैन में जन्मे 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो....' रट डाले, हो गये जैन। सामायिक की और प्रौषध किये।

**मुमुक्षु :** पहले तो इतने में धर्म था।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पहले... माना था। था कहाँ?

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा ध्रुव नित्य वस्तु, उसका एक अंग, सर्वांग में एक उसका अंग है। उसकी परिणति में वर्तमान दशा—पर्याय है। तो पर्याय में अनेकपना जानने में आया, ध्रुव में तो कुछ जानना होता नहीं, वह तो त्रिकाल शक्तिरूप है। समझ में आया? अपनी पर्याय—अवस्था... परन्तु यह जैन में तो द्रव्य-गुण-पर्याय शब्द भी कोई सुना नहीं कि क्या है? कि जो जैनदर्शन का मूल एकड़ा है। पर्याय कौन? पर्याय तो होगी कोई। सेठ! हमारे सेठ के एक मित्र भी ऐसे थे। यह पर्याय ने तो सिद्ध में भी पीछा किया है। पीछा छोड़ती नहीं, लो। इनके मित्र थे। ऐई सेठ! खबर है या नहीं? यहाँ बैठते थे, नहीं? यह जैन में जन्मे हुए दिगम्बर जैन। और बड़ा गृहस्थ व्यक्ति है। पर्याय क्या बला है कि जो सिद्ध में भी... क्या कहलाती है तुम्हारी? पीछा नहीं छोड़ती? कहो, यह जैन। भोपाल में है न, बँगला है उसका। भोपाल में बँगला है। गृहस्थ है। देरीयाजी। देरीयाजी भोपाल में है। कुछ खबर नहीं होती और ऐसे देखो तो भाषण करे गाँधी की लाईन के। ऐसे... मारे भभका। भान नहीं होता सुननेवाले को और कहनेवाले को। सेठ! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान तेरी चीज तो नित्यानन्द ध्रुव, वह तो है ही। परन्तु उसकी वर्तमान पर्याय—अवस्था है। अवस्था, वह तो सिद्ध में भी है। केवलज्ञान भी पर्याय है। आहाहा! सिद्धपद, वह भी पर्याय है। सिद्ध कोई गुण नहीं, सिद्ध कोई द्रव्य नहीं। आहाहा! सिद्ध की अवस्था जो परमात्मा 'णमो सिद्धाणं' यह सिद्ध की पर्याय—

अवस्था है। द्रव्य-गुण तो त्रिकाली हैं। त्रिकाली द्रव्य-गुण में बन्ध-मोक्ष की पर्याय है नहीं। समझ में आया? परन्तु बन्ध-मोक्ष की पर्याय, पर्याय में है। आहाहा! उसमें है नहीं, इसमें है। यह अनेकान्त भारी सूक्ष्म जगत को। अभ्यास नहीं और ऐसी की ऐसी जिन्दगी (चली जाये)। कितने ही तो बेचारे कमावे मजदूर की भाँति पूरे दिन। सवेरे से शाम तक बड़े मजदूर। भले फिर २५-५० लाख इकट्ठे हुए हों। वह तो पूर्व के पुण्य के कारण (होते हैं)। वह कहीं इसकी होशियारी के कारण है? धूल भी नहीं होशियारी। होशियारी कैसी तेरी?

बुद्धि के बारदान दस-दस लाख की आमदनी महीने में करते हैं, ऐसे बहुत देखे हैं बुद्धि के बारदान। बारदान अर्थात् खोखा। बुद्धि से खाली। दस-दस लाख की आमदनी महीने में। उसमें है क्या उसमें? और वह मूढ़ ऐसा माने कि हमारी होशियारी से ऐसा करते हैं... ऐसा करते हैं... ऐसा करते हैं। तब हमारे २५-५० लाख इकट्ठे हुए हैं। बात बहुत सच्ची। यह जेठालाल कहते थे कुछ, नहीं? कि यह सब पैसा हमको सम्हालना आता होगा, वह कुछ बुद्धि होगी या नहीं कुछ? जेठालाल संघवी। बोले थे न भाई एक बार बोले थे। कि यह साठ लाख सम्हालते होंगे। कहते थे साठ लाख उस समय। अब निकले तो पन्द्रह भी सही। परन्तु ऐसा कहे, इतने लाख सम्हालते होंगे, वह कहीं व्यवस्था करना आता होगा या नहीं? व्यवस्था करनी आती है या नहीं? मूलचन्दभाई! धूल भी नहीं। आहाहा!

मूढ़ है। जड़ की अवस्था और तूने प्राप्त की। मूढ़ है तू? जड़ की अवस्था उसके कारण से आती है। वह भी तेरे में आयी है? तुझमें आयी है? लक्ष्मी आयी है? अन्दर आयी है? घुस गयी है? अपना द्रव्य त्रिकाली शक्तिवान, गुणशक्ति और पर्याय परिणमन। उसमें लक्ष्मी आयी है? पर्याय के अस्तित्व में लक्ष्मी है?

**मुमुक्षु :** तिजोरी में है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तिजोरी में भी नहीं। लक्ष्मी, लक्ष्मी में है। जादवजीभाई! कहाँ होगी लक्ष्मी? अजीव है तो अजीव में है। धूल भी सम्हालने नहीं मूढ़....। ममता कर करके मर गया है। आहाहा! ऐई भीखाभाई! यह तो सब मजदूर ठहराते हैं यहाँ तो।

आहाहा! घानी के वे बैल होते हैं न घानी के, आँख में पाटा बाँधकर फिरा ही करते हैं। अन्ध। ऐई सेठ! यहाँ तो यह बात है। यहाँ कुछ मक्खन-मक्खन नहीं है। भाई! तू कौन है? कहाँ है? किस प्रकार से है? इसकी तुझे खबर नहीं। और परचीज़ कैसे है? कहाँ है? इसकी तुझे खबर नहीं और तू कहे कि हम धर्मी हैं। समझ में आया?

यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि भगवान! तेरी चीज़ तो त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु नित्यानन्द है। उसका स्वीकार करने से जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह तो भिन्न-भिन्न प्रकार की पर्याय है। समझ में आया? स्वीकार करनेवाली पर्याय है, वह तो अनेक प्रकार की भिन्न-भिन्न है। श्रद्धा की पर्याय, ज्ञान की पर्याय, आनन्द की पर्याय, चारित्र की पर्याय। समझ में आया? स्वच्छता की पर्याय, परमेश्वर-प्रभुता शक्ति की पर्याय—यह पर्याय एकरूप नहीं। और अनेकरूप रहना और उसमें अनेकपना जानने में आना, यह तो पर्याय का धर्म है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञात होना, वह धर्म है। पर को मेरा मानना, ऐसा उसका धर्म है नहीं। समझ में आया? परचीज़ अपनी पर्याय में जानने में आये, यह तो उसका धर्म है। परन्तु परचीज़ अपनी है, ऐसी मान्यता, वह तो अधर्म है। यह धर्म है? पर्याय का यह धर्म है? आहाहा! यह प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है। ऐसा कहा, देखो! श्लोक नहीं बोला गया? श्लोक बोला गया? नहीं बोला गया। १५। नहीं। १४ बोला गया, नहीं? नहीं। १४ आज बोला गया?

**प्रादुर्भावविराममुद्रितवहज्ज्ञानांशनानात्मना निर्ज्ञानात्क्षणभंगपतितः प्रायः पशुर्नश्यति...** यहाँ तो पशु ही कहा है। ढ़ोर है....! आहाहा! जिसे आत्मा अकेला नित्य भासित नहीं होता और अकेला अनित्य भासित होता है, वह पशु—ढोर जैसा है। और जिसे अकेला नित्य भासित होता है और अनित्य भासित नहीं होता, वह भी ढोर—पशु है। आहाहा! और अकेला आत्मा अनित्य भासित हो परिणाम, नित्य न भासित हो, पशु है। '**पश्यते बध्यते इति पशुः**' वह आया था पहले। ऐई पण्डितजी! आया था? संस्कृत में बताया था। '**पश्यते बध्यते इति पशुः**' '*अध्यात्म तरंगिणी*' में। आहाहा! पशु—तेरी पशु जैसी विकलबुद्धि है। और पशु में जानेवाला है। निगोद में जायेगा। आहाहा! ऐसी बात है। १४वें में नित्य को सिद्ध किया। १५वें में अनित्य को सिद्ध किया है।

**टङ्कोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया,**
**वाञ्छत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नं पशुः किञ्चन्।**
**ज्ञानं नित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्ज्वलं,**
**स्याद्वादी तदनित्यतां परिमृन्शश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात्।।१५।।**

भगवान आत्मा में नित्यता क्रमरूप ध्रुव है, वह अक्रम है और पर्याय परिणमती है, वह क्रम है। एक के बाद एक पर्याय परिणमती है। तो वह पर्याय को नहीं मानता है, वह भी पशु है। आहाहा! समझ में आया? पर को अपना माने, वह पशु। समझ में आया? और पर्याय जितना ही आत्मा माने, वह भी पशु। और तीसरा, अकेला नित्य को माने, पर्याय को बिल्कुल माने ही नहीं, वह भी पशु। आहाहा! कहो, हिम्मतभाई! क्या होगा ऐसा यह? यह सब चतुर कहलाये न होशियार... होशियार।

**मुमुक्षु :** रटकर यहाँ कुछ नहीं चलता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कुछ नहीं चलता? ऐई कान्तिभाई! यह होशियार थे वहाँ। क्या कहलाये उसका? प्लेन में। नौकरी थी न इन्हें प्लेन में। पन्द्रह सौ वेतन मासिक—महीने में। छोड़ दी, नौकरी छोड़ दी। स्वयं होशियार थे या नहीं वहाँ? तार किया और दिल्ली से बड़ा (प्लेन) आया, लो। क्या कहलाये तुम्हारा? प्लेन। छोटा था, बड़ा आया। धूल में भी नहीं।

कहते हैं, पर की पर्याय लाये, रखे और छोड़े, यह आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! अपने ज्ञान की पर्याय में वह जानने में आया। तो वह जानने की पर्याय तो अपनी है। परवस्तु अपनी नहीं। आहाहा! अन्ध अन्ध खाता अनादि से अज्ञानी को। धर्म को माने, साधु परोपकार की वृत्तिवाला हो। वह माने कि मैंने पर का परोपकार किया। मूढ़ है। क्या परद्रव्य का अस्तित्व नहीं है? और परद्रव्य के अस्तित्व में उसके परिणमन—कार्य बिना की चीज़ है कि तूने परोपकार पर का कर दिया? समझ में आया? कठिन काम, भाई! यहाँ तो कहते हैं, '**अनित्यतां परिभृशंश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात्।**' धर्मी तो नित्य को जानते होने पर भी, अनित्य को—क्रम-क्रम से पर्याय होती है, उसको भी जानते हैं। आहाहा! यहाँ नीचे है १६-१७।

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसाधयन्।
आत्मतत्त्वमनेकान्तः स्वयमेवानुभूयते ।।१६।।
एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन् स्वयम्।
अलङ्घ्यं शासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थितः ।।१७।।

★ ★ ★

## काव्य - २८-२९

**स्याद्वाद की प्रशंसा** (दोहा)

**इहि विधि आतम ग्यान हित, स्यादवाद परवांन।**
**जाके वचन विचारसौं, मूरख होइ सुजान।।२८।।**
**स्यादवाद आतम दशा, ता कारन बलवान।**
**सिवसाधक बाधा रहित, अखै अखंडित आन।।२९।।**

**अर्थः-इस प्रकार आत्मज्ञान के लिये स्याद्वाद ही समर्थ है, इसके वचन सुनने व अध्ययन करने से अज्ञानी लोग पण्डित हो जाते हैं।।२८।। स्याद्वाद से आत्मा का स्वरूप पहिचाना जाता है, इसलिए यह ज्ञान बहुत बलवान है, मोक्ष का साधक है, अनुमान-प्रमाण की बाधा से रहित है, अक्षय है, इसको आज्ञावादी प्रतिवादी खंडन नहीं कर सकते।।२९।।**

### काव्य-२८-२९ पर प्रवचन

स्याद्वाद की प्रशंसा —

**इहि विधि आतम ग्यान हित, स्यादवाद परवांन।**
**जाके वचन विचारसौं, मूरख होइ सुजान॥२८॥**
**स्यादवाद आतम दशा, ता कारन बलवान।**
**सिवसाधक बाधा रहित, अखै अखंडित आन॥२९॥**

स्यात् अर्थात् अपेक्षा से, वाद अर्थात् कहना। कि आत्मा नित्य ही है, यह द्रव्यदृष्टि से; अनित्य ही है, यह पर्यायदृष्टि से। पूरा आत्मा नित्य और अनित्य है, यह प्रमाण है। समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा अनादि-अनन्त अविनाशी है, यह दृष्टि का द्रव्य अर्थात् द्रव्यार्थिकनय के विषय की अपेक्षा से। और पर्याय से परिणमता है, बदलता है, यह पर्यायनय के विषय की अपेक्षा से। और प्रमाण के विषय से द्रव्यरूप त्रिकाल है, वही पर्याय से परिणमता है, यह दो ज्ञान की एकतारूप प्रमाण का विषय है। अरे, अरे! समझ में आया? यह जैनशासन की पद्धति है। जैनशासन परमात्मा त्रिलोकनाथ... कहा न नीचे? '**अलंघ्यं शासनं जैनमनेकान्तो।**' जैन का अनेकान्त धर्म अलंघ्य है, कोई तोड़ नहीं सकता। समझ में आया?

ऐसा कहे, ज्ञान एक बार हो। ९९ के वर्ष में एक बाबा आया था बाबा। अन्यमति वेदान्त राजकोट। तो कहा, एक जैन के साधु हैं, वे ऐसी आत्मा की बात करते हैं। तो चलो हम भी देखें। आत्मा की बात करते हैं? यानि जैन में तो आत्मा की बात है ही नहीं। जैन में तो यह व्रत पालना और दया पालना, यह क्रिया करना, यह बात।

**मुमुक्षु :** आत्मा की बात जानते नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं। आत्मा की बात कहते हैं, तो चलो देखें। वेदान्ती बाबा ऐसा कहता था। तो यह वेदान्ती ऐसा कहते हैं न कि जैन अर्थात्? यह क्रिया करो और व्रत पालन करो, वह जैन। आत्मा क्या चीज़ है, वह तो जैन में है नहीं।

**मुमुक्षु :** यह हरितकाय नहीं खाये और यात्रा करे....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अपवास करना, आठ अपवास और सोलह अपवास और लंघन करना, वह जैन। वह बेचारा सुनकर आया कि एक महाराज अध्यात्म की— आत्मा की बात करते हैं। रात्रि में आये रात्रि में, ऐसा करते अनित्य की बात निकली। भाई! आत्मा अनित्य भी है? हाँ। भगो यहाँ से, कहे।

यह वेदान्त तो एकान्त नित्य में माननेवाला। अकेला ध्रुव सर्वव्यापक।

**मुमुक्षु :** एक ही परमप्रभु...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। एक ही परमप्रभु, एक ही बस। परिणमन भी नहीं, पर्याय

नहीं, गुणभेद नहीं। ऐसा माननेवाला था। यहाँ बात आयी अध्यात्म में कि त्रिकाल वस्तु ज्ञायक अभेद चिदानन्द मूर्ति है, उसकी दृष्टि करना, उसका नाम धर्म है। परन्तु वह दृष्टि और पर्याय स्वयं अवस्था—परिणमन है। वर्तमान परिणमन है। परिणमन द्वारा ध्रुव का निर्णय होता है। क्या ध्रुव का निर्णय ध्रुव से होता है? यह पर्याय? पलटना? कहा, पलटना लाख बार, अनन्त बार पलटती चीज़ है। भागो भैया। हम तो भाई सुनकर आये थे कि एक जैन के महाराज आत्मा की बात करते हैं अध्यात्म की (बात करते हैं)। बहुत—हजारों लोग जाते हैं। चलो भाई। परन्तु भाई इस प्रकार से बात है। जैन सम्प्रदाय नहीं, जैन तो वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया?

त्रिकाल नित्यानन्द भगवान... बस, यही सुहावे उसे। नित्य आनन्द एकरूप अविनाशी... अविनाशी सच्चिदानन्द प्रभु। परन्तु सच्चिदानन्द प्रभु एकरूप है, उसका निर्णय किसमें हुआ? यह पर्याय है। समझ में आया? परन्तु वह कहीं यह जैन के वाडा को भी खबर नहीं होती कि पर्याय क्या। ५०-५० वर्ष से स्थानकवासी में पड़े हों, मन्दिरमार्गी में पड़े हों, लो। ऐ... पर्याय, एक साधु को पूछा, कहा, यह तुम्हारी यह सामायिक कहलाती है, वह पर्याय होगी या क्या होगी? यह हमको कुछ खबर नहीं पड़ती।

**मुमुक्षु :** त्रस या स्थावर....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह फिर त्रस और स्थावर कहा उसे। कहा, यह सामायिक है, वह त्रस होगी या स्थावर? वहाँ बढवाण में उपाश्रय में उतारा हुआ। एक साधु था साथ में। कहा, यह तुम्हारा यह साधुपना है, वह त्रस है या स्थावर? मेरे गुरु ने कुछ सिखाया नहीं। अरे, अरे! गजब करते हैं न! मुँडा कर बैठे... उसे पूछे जिसे यह सामायिक करके बैठा हो उसे। ऐ... तेरी सामायिक कहाँ रहती होगी? उसका काल कितना? वह पर्याय होगी या गुण होगा या द्रव्य होगा? हमको कुछ खबर नहीं, कहे। मूढ़ है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** यही स्थिति है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यही स्थिति है।

भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वभाव वीतरागमूर्ति आत्मा है। उसका आश्रय करके समता, वीतरागता, स्वच्छता, निर्मलता प्रगट हो, वह सामायिक है, वह पर्याय है। उसे तो कुछ खबर नहीं होती पर्याय क्या? द्रव्य क्या? समझ में आया? सामायिक—समता। समता किसे होती है? जिसे पुण्य और पाप का विकल्प भी बन्ध का कारण एकरूप है, शरीर की क्रिया मुझसे भिन्न है, मेरी चीज़ तो वीतरागमूर्ति आत्मा है।—ऐसी दृष्टि और स्थिरता में जब पर्याय प्रगट हो, उसे सामायिक कहते हैं और उसे पर्याय कहते हैं। सामायिक, वह पर्याय है। सामायिक कोई गुण और द्रव्य नहीं है। कुछ भान नहीं होता। सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो। सब अज्ञान के भाव है। समझ में आया?

**इहि विधि आतम ग्यान हित,....** आचार्य महाराज कहते हैं कि यह स्याद्वाद किस कारण से कहा? स्याद्वाद ही समर्थ है। **आत्मज्ञान के लिये स्याद्वाद ही समर्थ है।** समझ में आया? आत्मा त्रिकाली अनन्त अनन्त आनन्द आदि गुण का ध्रुवस्वरूप है और उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करना, वह पर्याय है।—यह स्याद्वाद है। आत्मज्ञान के लिये स्याद्वाद समर्थ है। आत्मा को सम्यग्दर्शन होने में स्याद्वाद समर्थ है। एकान्त नित्य माने और एकान्त अनित्य माने, पर्याय नहीं माने और द्रव्य माने, द्रव्य नहीं माने और पर्याय माने तो यह आत्मज्ञान होने में योग्य है नहीं। आत्मज्ञान शब्द है, देखो। आत्मा तो त्रिकाली हुआ और उसका ज्ञान—आत्मज्ञान हुआ, वह तो पर्याय हुई। पर्याय क्या होगी?

एक व्यक्ति ने पर्याय का ऐसा अर्थ किया। परि—समस्त प्रकार से.... क्या कहा? उसमें कुछ नहीं कहा था उस पण्डित ने? परि-आय। उसने दूसरा अर्थ किया था। परेण जाये वह पर्याय। ऐसा अर्थ किया था। एक पण्डित ने ऐसा किया। पर्याय—परेण जाये वह पर्याय। ... यह पण्डित तुम्हारे जैन के। संस्कृत और व्याकरण पढ़े हुए। परेण जाये वह पर्याय। कहाँ से निकाला ऐसा यह? यह तो भगवान आत्मा अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और आचरण आदि अन्दर हो, वह पर्याय है। वह पर्याय, अपना पर्याय अंश अपना स्वभाव है। परेण जाये, वह नहीं, परिणमे वह पर्याय है। समझ में आया? '**परिसमंतात गच्छति इति पर्यायः**' आता है न नियमसार १४वीं गाथा में। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, आत्मज्ञान के लिये... जिसे सम्यग्दर्शन करना हो और जिसे आत्मा का ज्ञान करना हो तो उसके लिये स्याद्वाद ही समर्थ है। (द्रव्य) नित्य है, पर्याय अनित्य है। पर्याय से अनित्य है, वही द्रव्य से नित्य है, ऐसा स्याद्वाद भगवान का कथन समर्थ है। आहाहा! **जाके वचन विचारसौं,...** भगवान की वाणी स्याद्वाद—अनेकान्त पदार्थ को सिद्ध करनेवाली। **जाके वचन विचारसौं, मूरख होइ सुजान**—अज्ञानी लोग पण्डित हो जाते हैं। आहाहा! लो। **जाके वचन विचारसौं,...** भाषा तो क्या कहे? समझ में आया? लो, भगवान की वाणी का विचार करना, वह तो परलक्षी है। ऐई! परन्तु कथन सब क्या हो? शैली के कथन ही ऐसे व्यवहार के आवे। समझ में आया? **जाके वचन विचारसौं,... वचन विचारसौं,...** उसका अर्थ, जो उसमें कहने का भाव है, वह अपने में जब विचारते हैं द्रव्य और पर्याय के समीप होकर **मूरख होइ सुजान**—अज्ञानी भी सम्यग्ज्ञानी हो जाती है।

**स्यादवाद आतम दशा,...** यह तो आतम की दशा है। त्रिकाली आनन्दमूर्ति प्रभु और उसकी श्रद्धा-ज्ञान, वह पर्याय है। वह तो स्याद्वाद आतमदशा है। **ता कारन बलवान, सिवसाधक बाधा रहित,....** यही अनेकान्त धर्म मोक्ष का साधक है, बाधारहित है। **अखै अखंडित....** अक्षय और अखण्डित उसकी आज्ञा है। अथवा अक्षय-अखण्डित, अन्य से अक्षय और अखण्डित है। पर से भिन्न अक्षय और अखण्डित है। ऐसा आत्मा नित्य—अनित्य, एक—अनेक, तत्—अतत् (आदि) चौदह बोल कहे चौदह। अपने से है, पर से नहीं। ऐसे आठ कहे (अस्ति-नास्ति), तत्-अतत् और एक-अनेक के चार (मिलाकर) बारह, नित्य-अनित्य के दो (मिलाकर) चौदह। यह चौदह बोल का यहाँ योगफल किया है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १५९, भाद्र कृष्ण ७, शनिवार, दिनांक ११-०९-१९७१
स्याद्वाद द्वार का सार

## ग्यारहवें अधिकार का सार

जैनधर्म के महत्त्वपूर्ण अनेक सिद्धांतों में स्याद्वाद प्रधान है, जैनधर्म को जो कुछ गौरव है, वह स्याद्वाद का है। यह स्याद्वाद अन्य धर्मों को निर्मूल करने के लिये सुदर्शन-चक्र के समान है, इस स्याद्वाद का रहस्य समझना कठिन नहीं है परन्तु गूढ़ अवश्य है, और इतना गूढ़ है कि इसे स्वामी शंकराचार्य वा स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे अजैन विद्वान नहीं समझ सके, और स्याद्वाद का उलटा खण्डन करके जैनधर्म को बढ़ा धक्का दे गये। इतना ही नहीं आधुनिक कई विद्वान इस धर्म पर नास्तिकपने का लांछन लगाते हैं।

पदार्थ में जो अनेक धर्म होते हैं, वे सब एक साथ नहीं कहे जा सकते, क्योंकि शब्द में इतनी शक्ति नहीं जो कि अनेक धर्मों को एक साथ कह सके, इसलिए किसी एक धर्म को मुख्य और शेष को गौण करके कथन किया जाता है। स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है :-

णाणाधम्मजुदं पि य एयं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं।
तस्सेयविवक्खादो णत्थि विवक्खाहु सेसाणं।।२६४।।

अर्थ:-इसलिए जिस धर्म का जिसकी अपेक्षा कथन किया गया है वह धर्म, जिस शब्द से कथन किया गया है वह शब्द, और उसको जाननेवाला ज्ञान ये तीनों नय हैं। कहा भी है कि :-

सो चिय एक्को धम्मो वाचयसद्दो वि तस्स धमस्स।
तं जाणदि तं णाणं ते तिण्णि विणय विसेसा य।।२६४।।

अर्थ:-हमारे नित्य के बोलचाल भी नय-गर्भित हुआ करते हैं, जैसे जब कोई मरणोन्मुख होता है, तब उसे साहस देते हैं कि जीव नित्य है, जीव तो मरता नहीं है, शरीररूप वस्त्र का उससे सम्बन्ध है,....

## ग्यारहवें अधिकार के सार पर प्रवचन

समयसार नाटक है। आज हिन्दी है हिन्दी। अब हिन्दी चलेगा। हिन्दी है न यहाँ। सुबह में गुजराती हुआ, अब हिन्दी। स्याद्वाद अधिकार। ११वें अधिकार का सार। स्याद्वाद का सार। सूक्ष्म है थोड़ा। **जैनधर्म के महत्त्वपूर्ण अनेक सिद्धान्तों में....** परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो वस्तु का स्वरूप कहा, उसमें स्याद्वाद सिद्धान्त तो सब सिद्धान्त में मुख्य है। समझ में आया? स्याद्वाद-अनेकान्त, वह तो मुख्य है। **जैनधर्म को जो कुछ गर्व है....** वीतरागधर्म की महत्ता और गौरव है, वह स्याद्वाद का है। अर्थात् वीतरागधर्म ऐसा कहता है कि अपना आत्मा द्रव्यरूप वस्तु जो त्रिकाल है, वही वस्तु एक समय की पर्यायरूप नहीं। समझ में आया? यह स्याद्वाद जैनदर्शन का मुख्य सिद्धान्त है। अनेकान्त। स्याद्वाद तो कथनशैली है, परन्तु स्वभाव अनेकान्त है।

भगवान आत्मा... कर्म का उदय है, वह जड़ में है। अपने में राग है। तो राग अपने से है, कर्म से नहीं—यह अनेकान्त स्याद्वाद है। समझ में आया? राग, रागरूप है, अपने निश्चय स्वभाव की दृष्टि से सम्यग्ज्ञान-दर्शन हुआ तो दर्शन-ज्ञान निर्मलपर्यायरूप है, वह रागरूप नहीं। पण्डितजी! आहाहा! जैन वीतराग परमात्मा... सम्प्रदाय में तो स्याद्वाद क्या और अनेकान्त क्या? यह तो करो... यह करो....

कहते हैं कि तेरी चीज़-वस्तु है, उसमें तीन प्रकार। आत्मा है न आत्मा, उसमें तीन प्रकार। एक—राग है। राग रागरूप है, निर्मलपर्यायरूप नहीं। और राग रागरूप है, कर्म के उदयरूप नहीं। समझ में आया? दया-दान-व्रत-भक्ति का जो विकल्प-राग है, वह राग रागरूप है, परन्तु वह कर्म के उदयरूप नहीं। यह अनेकान्त है। और राग, रागरूप है, वह अपनी धर्म की शुद्ध पर्याय उसरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

**मुमुक्षु :** कर्म है रागरूप। अपना स्वभाव है रागरहित।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्वभाव नहीं। पहले स्वभाव नहीं कहा। बराबर समझे तो... सेठ! यह बीड़ियों का धन्धा नहीं यहाँ।

ऐसा कहा कि जो यह आत्मा है आत्मवस्तु। वह तो अनन्त गुण का पिण्डरूपी

अस्ति... अस्ति सत्ता है। एक बात। उसकी दृष्टि करने से—वस्तु की दृष्टि करने से जो सम्यग्दर्शन आदि पर्याय होती है, वह पर्याय द्रव्यरूप नहीं और वह द्रव्य है, वह पर्यायरूप नहीं। एक बात। अब धर्म की पर्याय जो उत्पन्न हुई,... दया-दान-व्रत-भक्ति का जो राग है, वह धर्म की पर्याय रागरूप नहीं और राग धर्म की पर्यायरूप नहीं। यह स्याद्वाद है। समझ में आया? राग है, वह रागरूप है, परन्तु कर्म के उदय की जड़ पर्याय से नहीं। कर्म से विकार होता है, कर्म से विकार होता है। (यह) बड़ी गड़बड़ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तत्त्व की खबर नहीं और धर्म करनेवाला कौन, (इसकी) खबर नहीं और धर्म होता है। ऐसी बात चली। व्रत करो, तप करो, ऐसा... धूल भी नहीं। अब सुन तो सही। व्रत-तप सब तो क्रियाकाण्ड राग है। समझ में आया?

वह राग रागरूप है, परन्तु देह की क्रिया और कर्म के उदयरूप नहीं। जयन्तीभाई! और यह राग रागरूप है, रागरूप है, वह धर्म की पर्यायरूप नहीं। आहाहा! धर्म की पर्याय तो अपने द्रव्यस्वभाव ज्ञायकप्रभु चैतन्य आनन्द का नाथ कन्द प्रभु के अवलम्बन से, उसके आश्रय से, उसे ध्येय बनाकर वर्तमान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि धर्मपर्याय होती है, वह धर्मपर्याय, व्यवहार जो राग है दया-दान उसरूप है नहीं। अर्थात् उससे वह निश्चय पर्याय उत्पन्न होती नहीं। वह राग है तो धर्म की पर्याय है, ऐसा नहीं। भीखाभाई! गजब ऐसा यह तो। आहाहा! धर्म की पर्याय—अवस्था जो आत्मा त्रिकाली ज्ञानानन्द प्रभु, उसकी एकाग्रता से जो पर्याय हुई, वह पर्याय रागरूप नहीं, व्यवहाररूप नहीं, निमित्तरूप नहीं। आहाहा! वह धर्म की पर्याय है, वह द्रव्यरूप नहीं। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ऐसा अनेकान्त जानने मिलेगा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनेकान्त किसे कहते हैं? वस्तु का अस्तित्व स्व से है और पर से नहीं, इसका नाम अनेकान्त अस्ति-नास्ति का। पहला सिद्धान्त है। आहाहा! चीज़ क्या है और कैसे है, उसकी खबर नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि परलक्ष्यी जितने सामायिक, प्रौषध, अपवास, त्याग, रात्रिभोजन नहीं, आदि के विकल्प उठते हैं, जो परलक्ष्यी विकल्प हैं, वह पर से नहीं और विकल्प उठते हैं, उसमें धर्म नहीं। आहाहा! धर्म की पर्याय तो अपना त्रिकाली चिदानन्द प्रभु में

एकाग्र होने से वीतरागस्वरूप आत्मा होने से वीतरागी पर्याय उत्पन्न हो, वह धर्म। वीतरागी पर्याय है, वह रागरूप नहीं और राग है, वह वीतरागी पर्यायरूप नहीं और वीतरागी पर्याय है, वह त्रिकाली द्रव्यरूप नहीं। आहाहा! अस्ति-अस्ति, स्व से अस्ति और पर से नास्ति। उसका नाम स्याद्वाद अनेकान्त है। सेठ! यह जानना पड़ेगा, हों! यह सब बाहर में... अनुकूल लेते हो न कि अवश्य जानेंगे। जरूरत यह है। सब बीड़ी-बीड़ी का थोथा हुआ। समझ में आया? आहाहा! सुबह कहा था न कि चक्रवर्ती का राज हो और राग की शुभता भी उसके पास हो और सम्पदा का इतना तो ( भण्डार कि) १६ हजार देव तो जिसकी सेवा करे। परन्तु वह प्राणी, रागरूप मैं हूँ, मैं आत्मारूप नहीं, मैं तो रागरूप हूँ, ऐसी मान्यतावाला प्राणी अधर्मी और दुःखी है। आहाहा! समझ में आया? और किसी के पास राज क्या, रोटी न हो एक दिन की। सेठ! तुम्हारे पास रोटियों के ढेर पड़े हों, उसे एक रोटी न मिले। आहाहा!

देखो न, सयाजीराव की बात नहीं आती? सयाजी नहीं, शिवाजी। शिवाजी थे न, जंगल में बसना पड़ा था। कोई साधन नहीं। बड़ा राजा। दरबार राज। उसकी पुत्री-लड़की। वह जंगल में रोटी कुछ मिली थोड़ी। थोड़ी खायी और थोड़ी दबायी रेत में। क्योंकि राज पर बहुत आक्रमण हो गया और साधन कुछ नहीं। आहाहा! उसकी लड़की—राजा की पुत्री को रोटी कुछ मिली। कल मिलेगी या नहीं। गाँव में जा सकते नहीं। आहाहा! उसने थोड़ी रोटी रेत—बालू में दबायी। आहाहा! राजा को—उसके पिता को खबर पड़ी। आहाहा! कहाँ हमारे यहाँ आटा और अंगूर का ढ़ेर आता था। समझ में आया? उसके बदले पुत्री को यह रोटी का (संकट)। समझ में आया? ऐसे प्रतिकूल संयोग हों, फिर भी अन्तर में आत्मा राग से—विकल्प से भिन्न, ऐसा जो भान है, तो बड़ा सुखी बादशाह वह है। समझ में आया? आहाहा! एकबार कोई कहता था। आते हैं न दृष्टान्त तो... राजा से माँगा कि महाराज! हमारे (पास) रोटी नहीं है। अरे, खाजा खाओ। खाजा समझे? साटा, साटा होता है न वह। घी में तलकर (बनता है) खाजा... खाजा। साटा। खाओ खाजा। अरे, खाजा... अन्नदाता! यहाँ रोटी नहीं वहाँ? तेरे घर में खाजा। हमारे यहाँ क्या है?

और उसकी भी बात सुनी थी वह इन्दिरा। इन्दिरा के घर में... वह क्या कहलाता

है ? अंगूर... अंगूर। किसने कहा ? हाँ, यह (बात) आयी थी बात। अंगूर के टोकरे पड़े हुए। कोई बेचारा गरीब व्यक्ति साधारण। अरे ! हमको साधन नहीं, क्या खाना ? अरे ! अंगूर खाओ। अरे ! अंगूर क्या रोटी नहीं मिलती, अंगूर कहाँ से लाना ? तुझे अंगूर के टोकरे पड़े तेरे घर में।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या कहा ?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बड़े गृहस्थ को तो बहुत आवे।

तुम्हारे यह गंगवाल के यहाँ उतरे थे न भोपाल। गंगवाल। क्या नाम उसका ? वींछीलाल। वींछीलालजी गंगवाल। पूरे भोपाल में... उसके घर में टोकरे के टोकरे कुछ ऐसी चीज़ आवे। क्या कहलाती है ? हाँ, लीचीफल। लीचीफल आवे न। ऊपर काँटे और अन्दर तोड़े तो मीठी। और तब यहाँ बुखार आया हुआ बुखार। वैद्य ने कहा। चन्दुभाई वहाँ थे, अपने डॉक्टर चन्दुभाई। बहुत सख्त बुखारी आयी और व्याख्यान बन्द रहा। भाई ! इसमें कुछ लीची या ऐसा हो तो खुराक दी जाये, बाकी दूसरा कुछ दिया नहीं जाये। उसके घर में टोकरे के टोकरे भरे हुए। यह वींछीलालजी गंगवाल। अब गरीब व्यक्ति को कहाँ से मिले ? लीचा कहाँ से मिले ? ज्वार की रोटियाँ नहीं मिले, वहाँ लीची कहाँ से लाता था ?

यहाँ तो कहते हैं, आहाहा ! भगवान ! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु जिसने दृष्टि में स्वीकार करके आत्मप्राप्ति की, आत्मा जिसने श्रद्धा में प्राप्त किया, समझ में आया ? वह बादशाह है, वह सिद्ध सुखी है और वह अल्प काल में सिद्ध होनेवाला है। आहाहा ! और बाहर की सामग्री का पार नहीं होता। धूल और धाणी। अरबों रुपये और कीर्ति बड़ी और शरीर सुन्दर मक्खन के पिण्ड जैसा। अरे ! सब कीड़े पड़ेंगे। यह धूल है, यह तो अन्दर। उसमें आत्मा नहीं। पर में आत्मा नहीं। राग में आत्मा नहीं है। आहाहा ! आत्मा तो एक समय की पर्याय में भी त्रिकाली आत्मा वास्तव में नहीं है। ऐसी जिसकी मान्यता है नहीं और मैं पर्याय—अवस्था में हूँ, मैं राग में हूँ, मैं सामग्री में हूँ। मूढ़ है, दुःखी है, अधर्मी है, मिथ्यादृष्टि पापी है।

**मुमुक्षु :** पदवी मिली....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पदवी मिली। ऐसा कहा ? आहाहा!

इसका नाम अनेकान्त। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें एक समय की पर्याय—अवस्था नहीं, धर्म की पर्याय उसमें नहीं। धर्म की पर्याय में द्रव्य नहीं, धर्म की पर्याय में राग नहीं। राग में धर्म की पर्याय नहीं। इसका नाम स्याद्वाद और अनेकान्त है। समझ में आया ? जो अनित्य है, वह नित्य नहीं। यह कहना है न ? पहला बोल लिया न! नित्य और अनित्य। नित्य है भगवान आत्मा त्रिकाली ध्रुव नित्य। जो नित्य है, वह अनित्य नहीं। उसकी पर्याय में पलटना होता है, यह तो अनित्य है। नित्य है, वह अनित्य नहीं और जो अनित्य है, वह नित्य नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी अनेकान्तदृष्टि स्याद्वाद जैनदर्शन का मूल सिद्धान्त वह है, वीतराग ने कहा हुआ। खबर नहीं होती। वीतराग क्या है और उन्होंने क्या कहा ? भगवान ने कहा है कि ऐसा करो। क्या किया है तूने ? आहाहा! समझ में आया ?

तो कहते हैं, **जैनधर्म को जो कुछ गर्व है....** जैनधर्म की महत्ता और जगत के दूसरे धर्म से उसकी विशेषता है, वह स्याद्वाद से है। समझ में आया ? क्योंकि बाहर की सामग्री अपने राग में नहीं। रागभाव अपनी धर्म की पर्याय में नहीं। धर्म की पर्याय द्रव्य में नहीं। आहाहा! ऐसी जिसकी दृष्टि हुई स्याद्वाद—अनेकान्त... अनेकान्त को तो परमात्मा ने अमृत कहा। प्रवचनसार। अमृत है। क्योंकि अनेकान्त में अमृत का अनुभव होता है। आहाहा! समझ में आया ? अर्थात् त्रिकाली परमात्मा अपना निजस्वरूप, उसमें एक समय की अवस्था का अभाव है तो दृष्टि कहाँ करना ? कि जिसमें पर्याय नहीं, ऐसी द्रव्यदृष्टि करना। और द्रव्यदृष्टि हुई, वह पर्याय हुई। (पर्याय) हो, फिर भी पर्याय द्रव्य में नहीं है। गजब बात है। अमरचन्दभाई! वस्तु का सत्त्व, अस्ति... अस्ति—सत्ता—होनापने रहा हुआ तत्त्व। द्रव्य वस्तु अस्तिरूप रही है पर्याय के अभाव में। पर्यायरूप पर्याय रही है, वह राग और द्रव्य के अभाव में। और रागरूप राग रहा है, वह धर्म की पर्याय और कर्म के उदय के अभाव में।

**यह स्याद्वाद अन्य धर्मों को निर्मूल करने के लिये...** देखो! ऐसी चीज़ की दशा अनेकान्त है। अन्य धर्मों को अज्ञानियों को पता नहीं कि द्रव्य क्या ? पर्याय क्या ? राग

क्या ? पर क्या ? आहाहा ! समझ में आया ? **स्याद्वाद अन्य धर्मों को निर्मूल करने के लिये...** अज्ञान को नाश करने के लिये **सुदर्शन चक्र के समान है।** सुदर्शन चक्र चक्रवर्ती का होता है न ? काट डाले। एकान्त माननेवाला... राग करते-करते राग से धर्म होता है और धर्म में भी बन्ध का भाव होता है। समझ में आया ? उसमें सुदर्शनचक्र अनेकान्त है। काट डाले ऐसा का ऐसा। तेरी बात झूठ है। समझ में आया ?

**स्याद्वाद का रहस्य समझना कठिन नहीं।** स्याद्वाद का रहस्य—मर्म समझना कठिन नहीं है, **परन्तु गूढ़ अवश्य है।** गम्भीर चीज़ है, गम्भीर चीज़। आहाहा ! समझ में आया ? एक समय की वर्तमान दशा प्रगट—व्यक्त, उस पर्याय में पूरा द्रव्य नहीं। पूरा द्रव्य तो पर्याय से भिन्न है, ऐसी बात समझना कठिन नहीं, परन्तु गूढ़ तो है। गम्भीर बात है। समझ में आया ? दया-दान-व्रत-भक्ति का करना, वह कोई कठिन नहीं, ऐसे वह अपूर्व नहीं। समझ में आया ? राग का अस्तित्व जो है, उससे यहाँ धर्म की पर्याय नहीं और धर्म की पर्याय में त्रिकाली नहीं—ऐसी बात कठिन तो नहीं, परन्तु गूढ़ तो है। कठिन अर्थात् न हो सके, ऐसा नहीं है, ऐसा। अशक्य नहीं। अशक्य नहीं, परन्तु गूढ़ गम्भीर है। आहाहा ! समझ में आया ?

पीछे के कलश में कहा है, वहाँ नहीं, स्याद्वाद ? अज्ञानियों को यह बात तो ऐसी लगे कि असम्भवित जैसी लगे। अनेकान्त धर्म... पीछे आता है न कलश में। ज्ञानी को तो ऐसा लगे, ओहोहो ! यह वह मार्ग प्रभु का ! 'अद्भुताद्‌द्भुतं'। आश्चर्य लगे और आनन्द आवे। समझ में आया ? यह बात नहीं। यह वस्तु का स्वरूप अस्ति है। है, ऐसा सिद्ध करने जाओ तो अनेकान्त हो तो सिद्ध होगा। समझ में आया ? समझ में आया ? **इतना गूढ़ है कि इसे स्वामी शंकराचार्य...** शंकराचार्य ने जैनधर्म को उड़ा दिया। जैनधर्म ? अरे ! कौन अभी कहता था, वह तो संशयवाद है, अनिर्धारित है। कोई कहता था अपने में से। भाई ने कहा था। मूलचन्दभाई ने कहा था। वे लोग ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** अन्य दर्शन ऐसा कहता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सच्ची बात है। बात सच्ची। यह जैनदर्शन अनिश्चितवाद है। अरे, निश्चितवाद है। एक ही निश्चितवाद जैनदर्शन है और दूसरी कोई चीज़ है ही नहीं जगत में। समझ में आया ?

जिसे परमात्मा द्रव्यरूप वस्तु कहते हैं, वह पर्यायरूप नहीं है, ऐसा निर्धार है, संशय नहीं। समझ में आया? और जो पर्यायरूप है, वह द्रव्यरूप नहीं, ऐसा निर्धार-निश्चित है, अनिश्चित नहीं। समझ में आया? मैं, मैं-रूप हूँ, पररूप नहीं (ऐसा) निश्चित नहीं है? अपने से है, पर से नहीं।

**मुमुक्षु :** अद्वैतपना होगा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अद्वैत होती ही नहीं चीज़। आत्मा अद्वैत भी है और द्वैत भी है अपने में, ऐसी चीज़ है, लो। जिस दृष्टि से अभेद है, उस दृष्टि से अभेद ही है। जिस दृष्टि से भेद है, उस दृष्टि से भेद ही है। अभेद में भेद नहीं, भेद में अभेद नहीं। वह बोल लिये। चौदह बोल आते हैं न। नित्य-अनित्य में आ गया है। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात! पूरा स्याद्वाद का सार लिखा है। ऐसा जब हो तो अपनी दृष्टि राग और पर्याय को छोड़कर अपने में लाना, वह क्या हुआ? अनेकान्त हुआ। राग से पर्याय से छोड़कर द्रव्य में लाना है। (पर्याय में) मैं पूर्ण नहीं। मेरा निर्विकार (स्वरूप) राग में नहीं और एक समय की पर्याय में मैं पूर्ण नहीं। समझ में आया? शक्य नहीं है? समझने की चीज़ ही ऐसी है। आहाहा!

**शंकराचार्य या स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे....** यह गुरुकुल साधु। **अजैन विद्वान नहीं समझ सके।** कहा था न एक बार। चन्द्रकान्त थे न, (संवत्) १९९२ के वर्ष। ३५ वर्ष हुए। वहाँ गये थे। चैत्र शुक्ल त्रयोदश। तो रास्ते में वहाँ से दो मुसाफिर निकले। हमें जाना था हीराभाई के मकान में, उनको जाना था वहाँ। रास्ते में मिल गये। यह हैडमास्टर वापस मुड़े। मैंने कहा, जड़ है या नहीं भैया? जड़ है भी और जड़ नहीं भी है। कैसे? यह तो निर्णय नहीं हुआ। मानो तो है। क्या मानो तो है? कि जैनदर्शन तो ऐसा कहता है कि मानो तो है और न मानो तो (नहीं)। ऐसा नहीं है। जैनदर्शन ऐसा नहीं कहता है। जड़ जड़रूप है, वह पररूप नहीं, ऐसा कहते हैं। परन्तु, अपनेरूप है और अपनेरूप नहीं है, ऐसा जैन कहते नहीं। समझ में आया? मानो तो है। वह वेदान्त तो नहीं माने न, ऐसा।

बड़ा आचार्य था वहाँ। रतिभाई के ठिकाने थे न पहले। वे रास्ते में कहते थे। वहाँ एक मकान है हीराभाई का। वह कौना है न ऐसा। यह दरवाजे का कौना। यह

दरवाजा पूरा ऐसा मुड़कर, वहाँ उस जगह बात हुई (संवत्) १९९२ में। संवत् १९९२। ८ और २७ = ३५ वर्ष हुए। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी। ९२ की। उस मकान में रहते थे न। ऐसे जाते-जाते। हमारे ऐसे जाना और उसे ऐसे आना, वहाँ बीच में बात हुई थी रास्ते में। कहा, जड़ है या नहीं जगत में? जैनदर्शन ऐसा कहता है कि है भी और नहीं भी है। परन्तु यह है, नहीं है किस अपेक्षा से? मानो तो है और न मानो तो नहीं, ऐसा नहीं। जड़ जड़रूप है, पररूप नहीं। आत्मा आत्मारूप है, वह पररूप नहीं। आत्मा है और नहीं है, उसका अर्थ क्या? समझ में आया? अब जैनमत में रहे हुए को भान नहीं होता तो अब उस बेचारे अन्य को तो....

कोई ऐसा कहे कि द्रव्य वस्तु है, उसमें पर्याय सर्वथा नहीं। हाय... हाय! एकान्त होता है न! भाई! सर्वथा नहीं। जो द्रव्य है वस्तु भगवान पूर्णानन्द सदृश शक्ति का सागर परमात्मा निजस्वरूप, उसमें एक अंश का तो अभाव है, सर्वथा अभाव है। वह तो पर से भिन्न करने को पर्याय उसकी है, ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं कि शंकराचार्य अजैन विद्वान नहीं समझ सके। **स्याद्वाद का उलटा खंडन करके जैनधर्म को बड़ा धक्का दे गये।** नहीं, जैनधर्म में किसी बात का निर्धार नहीं। है भी और नहीं भी है। ऐसा नहीं। अपने से है और यह नहीं है—पर से नहीं है। समझ में आया? आहाहा! बड़ा धक्का दे गये। **इतने ही नहीं, आधुनिक कई विद्वान इस धर्म पर नास्तिकपने का लांछन लगाते हैं।**

परमेश्वर को तो जैन मानते नहीं, ऐसा कहते हैं। नहीं मानते, (ऐसा) किसने कहा? परमेश्वर जगत के कर्ता नहीं हैं। वे कहते हैं ऐसा नहीं। परमेश्वर परमेश्वररूप हैं। सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर परमेश्वररूप हैं, परन्तु पर के कर्ता नहीं। समझ में आया? यह सब गड़बड़ होती है। वस्तु किये बिना होती है? कुम्हार हो तो घट होता है, स्त्री हो तो रोटी होती है, व्यापार करनेवाला हो तो बीड़ी बिकती है। ऐसे ही बीड़ी बिकती है? यह सारा जगत किये बिना होता है? परन्तु जगत अर्थात् क्या? जड़ और चेतन की अस्ति, उसका नाम जगत है। तो जड़, जड़रूप है और आत्मा आत्मारूप है, पर से है नहीं—उसका नाम अनेकान्त है। परमेश्वर हैं, परन्तु सर्वज्ञ परमेश्वर हैं। एक समय में तीन काल-तीन लोक देखने का सामर्थ्य जिन्हें प्रगट हुआ, ऐसे अर्हंत परमात्मा हैं,

परन्तु वे हैं, वे जगत की रचना करनेवाले हैं, ऐसा नहीं। क्या सत् की रचना करे? जो सत् है, अस्ति है उसकी रचना करे ईश्वर? समझ में आया? ....विद्वान धर्म पर नास्तिकपने का लांछन लगाते हैं। बड़ा आस्तिक है, उसे नास्तिक कहते हैं। खबर नहीं न!

यहाँ भी कहते हैं न, व्यवहार से धर्म न हो, निश्चय से हो। अरे! एकान्त है। ऐसा कहते हैं या नहीं? लांछन लगाते हैं धर्म पर। ऐई पण्डितजी! यह जैन में नास्तिक। व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, व्यवहार से निश्चय नहीं मानते, वे एकान्त मानते हैं। परन्तु ऐसा एकान्त ही है, सुन न! समझ में आया? है व्यवहार सही। व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं है। व्यवहार रागरूप है, परन्तु उससे आत्मा का धर्म (होता) है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? किसे पड़ी है इतनी अब यह? यह स्थानकवासी में हो तो करो सामायिक, करो प्रौषध और करो प्रतिक्रमण, रात्रिभोजन त्याग। मन्दिरमार्गी हो तो करो यात्रा और चलो मूर्ति और पूजा और मन्दिर। दिगम्बर हो तो ऐसा खाना और ऐसा नहीं खाना। ऐई! तेरापंथी होवे तो और कहे, पर को बचाने का नाम पाप। वह सामने रखे। अरे भगवान! सुन न, भाई! यह वस्तु तो सर्वज्ञ से सिद्ध और न्याय और अनुभव से सिद्ध हो सके, ऐसी यह चीज़ है। समझ में आया?

**पदार्थ में जो अनेक धर्म होते हैं....** देखो! भगवान आत्मा में अनेक स्वभाव हैं। परमाणु में भी अनेक स्वभाव हैं। **वे सब एक साथ नहीं कहे जा सकते।** एक साथ कहे जाते हैं? आत्मा नित्य है, उसी समय पर्याय से अनित्य है, यह एकसाथ कहने में आता है? नित्य कहने में आता है, तब अनित्य नहीं कहने में आता है। अनित्य कहने में आता है, तब नित्य नहीं कहने में आता है। त्रिकाल की अपेक्षा से नित्य है। त्रिकाल की अपेक्षा से नित्य ही है। त्रिकाल की अपेक्षा से अनित्य भी है, ऐसा नहीं। पर्याय बदलती है। पर्याय की अपेक्षा से अनित्य ही है। पर्याय की अपेक्षा से अनित्य और पर्याय की अपेक्षा से नित्य है, ऐसा है नहीं। आहाहा! **क्योंकि शब्द में इतनी शक्ति नहीं जो कि अनेक धर्मों को एक साथ कह सके, इसलिए किसी एक धर्म को मुख्य और शेष को गौण करके कथन किया जाता है।** भगवान आत्मा त्रिकाल सच्चिदानन्द नित्य ध्रुव की मुख्यता से जब कहते हैं तो पर्याय—अवस्था को गौण कर देते हैं। समझ में आया?

स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है, लो। २६४ गाथा है। स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा।

**णाणाधम्मजुदं पि य एयं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं।**
**तस्सेयविवक्खादो णत्थि विवक्खाहु सेसाणं॥२६४॥**

**इसलिए जिस धर्म का जिसकी अपेक्षा कथन किया गया है वह धर्म....** क्या कहते हैं, सुनो। आत्मा में नित्यता है त्रिकाल, तो नित्य एक धर्म है। धर्म अर्थात् स्वभाव। जब नित्य कहने में आता है। है न? नित्यधर्म। एक धर्म है, उसे भी यहाँ नय कहने में आता है। अर्थनय। एक भाग है न! आत्मा में नित्य-अनित्य, एक-अनेक ऐसे अनन्त—अनेक धर्म में एक धर्म को नय कहने में आता है। क्योंकि पूरी चीज़ का एक भाग है। उसे अर्थनय कहते हैं। (वस्तु के) धर्म को भी नय कहते हैं। नित्य, वह भी एक नय है। एक भाग है न वस्तुरूप। आहाहा! **जिस शब्द से कथन किया गया है, वह शब्दनय।** नित्य आत्मा त्रिकाली भगवान, ऐसी वाणी वह शब्दनय। वह अर्थनय और अर्थ को जाननेवाला, वह ज्ञाननय। अरे! ऐसी बात कहाँ?

पंचास्तिकाय में है न! शब्द आगम, ज्ञान आगम, अर्थ आगम। यह आगम के तीन प्रकार कहे हैं। यहाँ नय के तीन प्रकार कहे हैं। वस्तु अनन्त गुणवाली, अनन्त धर्मवाली है स्वभाववाली। उसमें एक धर्म को ही एक नय कहा जाता है। समझ में आया? उसमें वस्तु जो आत्मा नित्य है तो नित्य उसे भी नय कहा जाता है। यह कहे नय और अर्थनय... अब अपने दया पालो, व्रत पालो। मर जाओ फिर व्रत पालकर। क्या है, वस्तु की तो खबर नहीं। व्रत का विकल्प क्या चीज़ है और उसका फल क्या आता है, उसकी तो खबर नहीं। समझ में आया? उसका तो फल बन्धन है और बन्धन का फल संयोग मिले। आहाहा! ऐसे तो नरक में अनन्त बार मिथ्याभाव मिथ्या दृष्टि से गया। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि तो नरक में जाते हैं तो भी उनके कर्म का क्षय हो जाता है, ऐसा कहते हैं। वह आता है न योगीन्द्रदेव में, योगसार (में)। आहाहा! मैं आत्मा शुद्ध चैतन्य हूँ, ज्ञायक हूँ, मेरी वस्तु में राग व्यवहार है नहीं, निमित्त है नहीं—ऐसा दृष्टिवन्त कदाचित् कोई अशुभभाव हो गया और नरक का बन्ध हो गया पहले। अब तो कहाँ उसके साथ बँधता है? तो यह अशुभभाव से बँधा...

जैसे श्रेणिक राजा। भगवान के समवसरण में क्षायिक समकित पाया। श्रेणिक

राजा। हजारों रानियाँ। आहाहा! हजारों राजा-महाराजा जिसे चँवर ढोलते थे। उस श्रेणिक ने सम्यक्त्व पाया मुनि के निकट। मैं आत्मा अखण्ड शुद्ध चैतन्यद्रव्य हूँ, ऐसी अनुभव में प्रतीति हुई, सम्यक्त्व हुआ। परन्तु पहले नरक की आयु बँध गयी थी। साधु की असातना। सत् सन्त वीतराग मूर्ति के गले में एक मरा हुआ सर्प डाल दिया। उनकी स्त्री चेलना समकिती थी, ज्ञानी थी। यह (श्रेणिक) तो अज्ञानी बौद्ध मिथ्यात्व माननेवाला। चेलना रानी को कहते हैं कि आज तो एक जैन मुनि के गले में सर्प डाला। अरे महाराज! क्या किया तुमने? क्या किया? (श्रेणिक कहता है) वे तो निकाल देंगे। हमने डाला है तो वे निकाल देंगे। (चेतना कहती है) अरे महाराज! ऐसे नहीं होते हमारे सन्त। सर्प गले में डाला हो, उसे निकाल दे, ऐसे सन्त नहीं होते। सन्त की दशा दूसरी होती है। उपसर्ग आया है, उसे निवारते नहीं। अपने वीतरागभाव में रमते होंगे।

चलो, चलो, रानी को कहा। अपने था न यहाँ, क्या कहलाता है? .... रानी और राजा जाते हैं। हजारों चींटियाँ। (सर्प को उठा लेते हैं।) शरीर पर हजारों चींटियाँ। ध्यान में मस्त थे। अपने अतीन्द्रिय आनन्द के घोलन में मस्त थे। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन था। आहाहा! देखो, महाराज! यह क्या है मुनि? देखो! ओहो! ऐसे तेरे साधु! तेरे गुरु ऐसे हैं! हाँ, देखो क्या है! समझ में आया? मुनि ने उपदेश दिया। समकित (हुआ)। एक क्षण में सम्यग्दर्शन। ओहो! ऐसा मार्ग! सन्त अन्तर में आननद में घोलन करते-करते उपदेश (देते) हैं। ओहोहो! यह मेरी चीज़! सम्यक्त्व पाया। परन्तु नरकायु बँध गया था। भगवान के पास तीर्थंकरगोत्र समवसरण में बाँधा। परन्तु पूर्व में नरक का आयुष्य (बँध गया) था (तो) ८४ हजार वर्ष की स्थिति में पहले नरक में जाना पड़ा। अभी पहले नरक में हैं। परन्तु नरक का आयुष्य खिरते-खिरते क्षय होता है और असाता का भी नाश होता है। वहाँ से तीन लोक के नाथ रानी के गर्भ में तीर्थंकर होकर अवतरित होंगे। आहाहा! समझ में आया?

और जो माता के गर्भ में तीर्थंकर का जीव आयेगा, इन्द्र ऐसा कहते हैं, हे माता! पुत्र को तो नमस्कार बाद में, परन्तु जननी! तुझको नमस्कार करता हूँ। समझ में आया? देखो, यह नरक में से निकले। आत्मभान था न! राग नहीं, देह नहीं, वाणी नहीं। अल्पज्ञ पर्याय जितना भी मैं नहीं। ऐसी सम्यक्दृष्टि की भूमिका... पहले नरक का आयु बँध

गया था, नाश हो जायेगा। नरक का आयुष्य नाश हो जायेगा। क्रम-क्रम से निर्जरा हो जायेगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अज्ञानी को कोई शुभभाव में स्वर्ग की आयु बँधी हो। आत्मा क्या चीज़ है, सम्यग्दर्शन का भान नहीं और व्रत आदि करता हो, स्वर्ग में जाओ। स्वर्ग की आयु क्षय होकर वहाँ से निकलकर मनुष्य या पशु होगा। आहाहा! समझ में आया? जिसे अपनी चीज का भान नहीं, वह चाहे तो स्वर्ग में जाओ, तो भी दुःखी है। अपनी चीज़ का भान है, वह नरक में जाये तो भी सुखी है। आया न वह, नहीं? बाहर नरक वेदन...

**मुमुक्षु :** बाहिर नारकीकृत दुःख भोगे, अंतर सुख रस गटागटी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गटागटी। आहाहा!

यहाँ तो मैसूर खाता हो, दूधपाक खाता हो और मौसम्बी का पानी और घी में (तला हुआ) मीठा साटा खाता हो, मूढ़ दुःखी है। जहाँ राग के साथ एकता है, महा दुःखी है। वहाँ नरक में श्रेणिक राजा अभी बाहर नारकीकृत दुःख भोगते हैं, ख्याल है, (परन्तु) अन्तर सुख की गटागटी। समझ में आया? क्योंकि आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, ऐसी अन्तर्दृष्टि अनुभव में आयी है, वे नरक में भी सुखी हैं। आहा! बात ऐसी। जगत में कैसे बैठे? खम्मा अन्नदाता। ऊपर छत्र। क्या कहलाये जरी? जरी और छत्र में आये थे न सेठ हुकमीचन्दजी। जरी के छत्र, जरी के जूता, जरी के कपड़े। सत्रह लाख का हार, १७ लाख का। पत्थर थे नीले। पन्ना का था। है यहाँ फोटो में है।

**मुमुक्षु :** हाथ में अँगूठी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अँगूठी तो नहीं देखी। नहीं देखी थी। दो हार देखे। १७ लाख के। ७१ के वर्ष में देखे हुए। १७ लाख का हार। हमने पूछा था भाई को। नानालालभाई अपने झबेरी। कहे, अभी इसके सत्रह लाख मिलें। सत्रह लाख। ऐसा हार है। १७ लाख। १७ समझे? दस और सात। सत्रह। धूल है, उसमें क्या है? आहाहा!

कहते हैं, जहाँ राग और विकल्प की एकत्वबुद्धि है, वह एकान्त दुःखी है। यह दुःखी है ऐसा ज्ञानी कहते हैं। यह सुखी नहीं, उसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया? और सम्यक्‌दृष्टि नरक में होने पर भी... यह देखो, मुनि। उसकी माता है इस

भव की। समझ में आया? माया होगी तो मरकर शेरनी हुई। आज्ञा बिना साधु हो गये तो क्रोध आ गया। (सिंहनी खाती थी, तब मुनिराज शान्त...) यह क्रिया जड़ की है, मुझमें नहीं। आहाहा! अपने आनन्द में झूलते अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादिया। शेरनी खाते-खाते जब अँगुली पर नजर गयी। यह अँगुली तो मैंने कहीं देखी है। जातिस्मरण हो गया। यह तो पूर्व भव में मेरा पुत्र था। जातिस्मरण। जातिस्मरण होता है न! दुनिया उसे दुःखी माने। धर्मी जाने कि वे तो आनन्द की लहर में है। दुःख का उन्हें स्पर्श भी नहीं। राग आदि जो अन्दर थोड़ा भाव है, उसका तो अपनी पर्याय में अभाव है। यह अपना परिणमन है, ऐसा मानते नहीं। आहाहा! समझ में आया? दुनिया तो ऐसा देखे, अरेरे! आहा! अरे! साधु हुए पश्चात् यह तैयार आहार मिले, (न मिले), पानी न मिले, ठण्डा चाहिए हो तो गर्म मिले, गर्म चाहिए हो तो ठण्डा मिले।

हमारे पिता की माँ थी पुरानी वृद्ध। दीक्षा के समय ऐसे बोले, हों! अरे! आहाहा! गर्म-गर्म रोटी तैयार पड़े बर्तन में, वह अब साधु होने के बाद क्या होगा इसे? शरीर रूपवान है, उम्र छोटी है। २३ वर्ष की उम्र। वृद्ध कहती थी, भाई! पश्चात् मोहनथाल करके रखे। सवेरे दे। फिर मिले, न मिले, यहाँ खा ले। हमारे पिता की नयी माँ थी। मोहनथाल समझते हैं? मोहनथाल नहीं समझते हैं? यह मोहनथाल। मोहनथाल। वह मोहनथाल बनाकर रखा था बुढ़िया ने। वह ऐसी बात तब थी। यह तो साठ वर्ष पहले की बात है, हों! (संवत्) १९६९। अरेरे! अब यहाँ अभी तो साधन देखे तो सब तैयार। दाल, भात, रोटी, सब्जी, कपड़े कोमल सब। अरेरे! फिर खुशालभाई को पूछकर। भाई! जब तक यहाँ रहे, तब तक पाक करके रखो मोहनथाल का। प्रतिदिन पाक खाये। अब वहाँ धूल में क्या है, कहा यह। आहाहा! दुनिया की दृष्टि अलग है।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा में आनन्द नाम का एक गुण है तो गुण को नय कहते हैं। आहाहा! गजब बात है। नय उसके पास है। और उसे कहने का शब्द है, वह शब्दनय है। यह वाचक है। और उसका ज्ञान करे—यह आनन्द है, उसका ज्ञान करे, वह ज्ञाननय है। आहाहा! समझ में आया? यह स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ऐसा कहा है। परमागम है। अरे, भगवान! तेरा आनन्द तो तेरे पास है। यह भी एक नय है, ऐसा कहते हैं। और उसका कहनेवाला शब्द, वह शब्दनय भिन्न जड़ है। उस आनन्द को

जाननेवाला ज्ञान और शब्दों को भी जाननेवाला ज्ञाननय है। ऐसी चीज़ जैनदर्शन में होती है, दूसरे में होती नहीं। अनन्त धर्म की एक चीज़, उसमें एक-एक धर्म नय। एक-एक को कहनेवाला शब्द और वह एक-एक जाननेवाला ज्ञान। चन्दुभाई! आहाहा! वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने वस्तु का स्वभाव स्याद्वाद अनेकान्त है, (ऐसा कहा है)। ऐई, वजुभाई! तीन हो गये न। यह भी स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा का है। २६५। यह २६४ है। स्वामी कार्तिकेय। स्वामी कार्तिकेय बालब्रह्मचारी मुनि थे। बारह भावना का ग्रन्थ बनाया है। जंगल में वनवास। श्रीमद् राजचन्द्र को (ग्रन्थ) मिला। ऐसा अन्दर में आनन्द आया। ओहोहो! यह स्वामी कार्तिकेय! .....

**सो चिय एक्को धम्मो वाचयसद्दो वि तस्स धमस्स।**
**तं जाणदि तं णाणं ते तिण्णि विणय विसेसा य॥**

लो। आहाहा! तीनों को नय कहा जाता है। २६४ के पश्चात् यह २६५। **सो चिय एक्को धम्मो...** आत्मा में एक धर्म को नय कहना, परमाणु में एक अस्तित्व गुण को एक अस्तित्व को नय कहना... एक-एक गुण को नय कहना... समझ में आया? नय एक अंश को विषय करता है और नय स्वयं एक अंश है। प्रमाण तो पूरे द्रव्य को विषय करता है। नय एक को विषय (करे)। द्रव्य को करे तो पर्याय को नहीं और पर्याय को विषय करे तो द्रव्य को नहीं। द्रव्य क्या होगा? द्रव्य अर्थात् यह पैसा होगा? यह लेख है न 'द्रव्यदृष्टि, वह सम्यक्दृष्टि।' देखो, एक आया था। कहे, महाराज! यह द्रव्यदृष्टि, वह सम्यक्दृष्टि? यहाँ लोग बहुत पैसेवाले हों। नानालाल कालीदास सब करोड़पति। यह द्रव्यदृष्टि, वह सम्यक्दृष्टि कहाँ से आया? ऐसा प्रश्न किया। वहाँ यहाँ थे तब। ...बाहर बैठे थे। कहे, यह द्रव्यदृष्टि....? द्रव्य अर्थात् पैसा। पैसे की दृष्टि अर्थात् सम्यक्दृष्टि। अरे, यहाँ तेरे पैसे का क्या काम? कहा यह। अरे, जैन में जन्मे हुए को खबर नहीं होती।

द्रव्य अर्थात् वस्तु आत्मा। त्रिकाली चीज़ को द्रव्य कहते हैं। **द्रवति इति द्रव्यं**— पर्याय परिणमती है, उसे पर्याय कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं, **तं जाणदि तं णाणं....** एक धर्म, वह नय, वाचक शब्द, वह भी नय और **तं जाणदि तं णाणं।** वह भी नय। **तिण्णि वि णयविसेसा।** है न। यह दो इकट्ठा कर डाला है। **तिण्णि वि णयविसेसा** ऐसा

चाहिए। तीन होकर नय विशेष, नय का प्रकार है। यह जरा ऐसा कर डालना चाहिए। **वि णय** चाहिए। उसको खबर नहीं हो तो डाल दिया वह अक्षर-अक्षर। परन्तु **तिण्णि वि णयविसेसा।** यह जरा सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग का मार्ग तीर्थंकर का मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, गूढ़ है, गम्भीर है।

**हमारे नित्य के बोलचाल भी नय गर्भित हुआ करते हैं, जैसे जब कोई मरणोन्मुख होता है....** दृष्टान्त कहते हैं। जैसे कोई मरणोन्मुख होता है, मरण के सन्मुख, **तब उसे साहस देते हैं कि जीव नित्य है।** वह शान्ताबेन थीं ....अभागी। प्रभुदासभाई जब गुजर गये। अन्त में ऐसा बोले थे। 'चला जा। आत्मा तू तो नित्य है।' खबर है? उनके बड़े भाई—मोटाभाई थे न। प्रभुदासभाई। अन्तिम देह छूटने के समय। बहिन—उनके घर से स्त्री ऐसा (कहा), 'तू नित्य है। चले जाओ। तुम तो नित्य हो।' मरे कौन? ऐई! रतिभाई की भौजाई। प्रभुदासभाई के देह छूटने के समय। हम गये थे, तब ऐसा बोले थे। अपने आये थे न...., देह छूटने के समय ऐसा बोले थे कि 'यह रोग मिटे या न मिटे, उसे हमारे महाराज के साथ सम्बन्ध नहीं।' परन्तु महाराज आये और जो असाध्य थे ३६ घण्टे से, जागृत हो गये। पन्द्रह मिनिट जागृत हो गये। बस हमारे धर्म का सम्बन्ध है, ऐसा बोले थे भाई। ऐसा रोग है तो देह न छूटे और मृत्यु न हो, हमें इससे कुछ सम्बन्ध नहीं। ऐसा बोले थे। समझ में आया?

३६ घण्टे से असाध्य थे। यह भाई थे, पिता थे, पैसा करोड़ों रुपये थे। क्या करे? धूल करे वहाँ? ऐसा तो हुआ सहज। सहज जहाँ एक बार ऐसा कहा, मांगलिक सुनाया न (साध्य) नहीं हुआ, लो। जरा दस मिनिट हुए। चन्दुभाई डॉक्टर (बोले), प्रभुभाई! यह ३६ घण्टे असाध्य। मुम्बई से बड़ा डॉक्टर आया था। पन्द्रह सौ फीस। उसमें दूसरा कुछ हो, ऐसा नहीं, ऐसा कहा। चन्दुभाई ने कहा, अरे प्रभुभाई! गुरुदेव सोनगढ़ से आये हैं। ऐसा कहा और एकदम जागृत। यह करवट हिलती नहीं थी। तीन बार कहा भाई ने। वह तो अन्दर वैसी निमित्त-नैमित्तिक की योग्यता है न! इससे कुछ उससे हुआ है, ऐसा नहीं। ऐसा धर्म के साथ आत्मा को सम्बन्ध होना चाहिए। पर के साथ कुछ सम्बन्ध... उससे मेरा रोग मिट जाये और मृत्यु से बच जाऊँ, ऐसा धर्म के साथ आत्मा को सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? विशेष दृष्टान्त देंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १६०, भाद्र कृष्ण ८, रविवार, दिनांक १२-०९-१९७१
स्याद्वाद द्वार का सार

## ग्यारहवें अधिकार का सार

हमारे नित्य के बोलचाल भी नय-गर्भित हुआ करते हैं, जैसे जब कोई मरणोन्मुख होता है, तब उसे साहस देते हैं कि जीव नित्य है, जीव तो मरता नहीं है, शरीररूप वस्त्र का उससे सम्बन्ध है, सो वस्त्र के समान शरीर बदलना पड़ता है। न तो जीव जन्मता है, न मरता है, और न धन, सन्तान, कुटुम्ब आदि से उसका नाता है, यह जो कुछ कहा गया है वह जीव पदार्थ के नित्यधर्म की ओर दृष्टि देकर कहा गया है। पश्चात् जब वह मर जाता है, और उसके सम्बन्धियों को सम्बोधन करते हैं, तब कहते हैं कि संसार अनित्य है, जो जन्मता है, वह मरता ही है, पर्यायों का पलटना जीव का स्वभाव ही है, यह कथन पदार्थ के अनित्य धर्म की ओर दृष्टि रखकर कहा है। कुन्दकुन्दस्वामी ने पंचास्तिकाय में इस विषय को खूब स्पष्ट किया है, स्वामीजी ने कहा है कि जीव के चेतना उपयोग आदि गुण हैं, नर नारक आदि पर्यायें हैं। जब कोई जीव मनुष्य पर्याय से देव पर्याय में जाता है, तब मनुष्य पर्याय का अभाव (व्यय) और देव पर्याय का सद्भाव (उत्पाद) होता है, परन्तु जीव न उपजा है न मरा है, यह उसका ध्रुव धर्म है, बस! इसी का नाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पणो य विणट्ठो देवो मणुसुत्ति पज्जाओ।।१८।।

(पंचास्तिकाय, पृ. ३८)

अर्थ:-वह ही जीव उपजता है, जो कि मरणभाव को प्राप्त होता है, स्वभाव से वह जीव न विनशा है और न निश्चय से उपजा है, सदा एकरूप है, तब कौन उपजा और विनशा है? पर्याय ही उपजी और पर्याय ही विनशी है, जैसे कि देव पर्याय उत्पन्न हुई है, मनुष्य पर्याय नष्ट हुई है, यह पर्याय का उत्पाद-व्यय है। जीव को ध्रौव्य जानना।

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।
गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो।।२१।।

(पंचास्तिकाय, पृ. ४५)

**अर्थ:-पर्यायार्थिक नय की विवक्षा से पंचपरावर्तनरूप संसार में भ्रमण करता हुआ, यह आत्मा देवादिक पर्यायों को उत्पन्न करता है, मनुष्यादि पर्यायों को नाश करता है, तथा विद्यमान देवादिक पर्यायों के नाश का आरम्भ करता है, और जो विद्यमान नहीं है मनुष्यादि पर्याय उनके उत्पाद का आरम्भ करता है।**

**खूब स्मरण रहे नय का कथन अपेक्षित होता है, और तभी वह सुनय कहलाता है, यदि अपेक्षा रहित कथन किया जावे तो वह नय नहीं कुनय है।**

**ते साविक्खा सुणया णिरविक्खा ते वि दुण्णया होंति।**
**सयलववहारसिद्धी सुणयादो होदि णियमेण।।**

**अर्थ:-ये नय परस्पर अपेक्षा सहित हों तब तो सुनय हैं, और वे ही जब अपेक्षा रहित ग्रहण किये जाये तब दुर्नय हैं; सुनय से सर्व व्यवहार की सिद्धि होती है।**

**अन्य मतावलम्बी भी जीव पदार्थ के एक ही धर्म पर दृष्टि देकर मस्त हो गये हैं, इसलिये जैनमत में उन्हें 'मतवारे' कहा है। इस अधिकार में चौदह मतवालों को सम्बोधन किया है, और उनके माने हुए प्रत्येक धर्म का समर्थन करते हुए स्याद्वाद को पुष्ट किया है।**

## ग्यारहवें अधिकार के सार पर प्रवचन

यह समयसार नाटक। स्याद्वाद अधिकार चलता है। श्लोक चला न २६५। स्याद्वाद अधिकार है। स्याद्वाद अर्थात् प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक पदार्थ में नित्य-अनित्य आदि धर्म हैं। धर्म अर्थात् स्वभाव। तो जो नित्य है, वह नित्य ही है और पर्याय अनित्य है, वह अनित्य ही है। ऐसे दोनों ही स्वभाव आत्मा में हैं, उसका नाम अनेकान्त और स्याद्वाद कहा जाता है। अनेकान्त को कहने की पद्धति को स्याद्वाद कहते हैं। अनेकान्त उसका स्वभाव है। प्रत्येक पदार्थ अपने से है, पर से नहीं। ऐसे प्रत्येक गुण अपने से है और पर से नहीं। ऐसे एक-एक पर्याय... गूढ़ है जैनदर्शन का स्याद्वाद। एक-एक समय की पर्याय अपने से है, दूसरी पर्याय से, द्रव्य-गुण से नहीं। अनेकान्त वस्तु का स्वभाव है, उसको कथंचित्—स्यात् अपेक्षा से कहना, उसका नाम स्याद्वाद

है। अब इसके स्पष्टीकरण के लिये लौकिक दृष्टान्त दिया है।

**हमारे नित्य बोलचाल भी....** नित्य कायम संसार के बोलचाल में भी **नयगर्भित हुआ करते हैं।** अपेक्षित बात उसमें भी चलती है। **जैसे जब कोई मरणोन्मुख होता है, तब साहस देते हैं कि जीव नित्य है।** कहते हैं न! दृष्टान्त दिया था शान्ताबेन का। यह घीया। कल रात्रि को आये थे न रतिभाई घीया। उनके बड़े भाई गुजर गये। छह दिन तो असाध्य रहे। करोड़ोपति है। बहुत पैसा है। करोड़ से भी अधिक है, लोग कहते हैं और वे भी अन्दर मानते हैं। बड़े भाई असाध्य हो गये। हम तो गये थे एक दिन। परन्तु बाद में अन्तिम दिन था मृत्यु का, तो उनकी पत्नी ने कहा। रतिभाई नहीं आये थे?

उस समय तो इतना कहा था उनकी पत्नी ने कि हमारा महाराज के साथ धर्म (समझने) का सम्बन्ध है। महाराज आये तो हमारे पति बच जायें, ऐसी बात है नहीं। ३६ घण्टे से असाध्य थे। उनके पिता बैठे थे, भाई थे। पैसा बहुत है, करोड़ोंपति हैं। असाध्य। उसमें पन्द्रह मिनिट साधारण देखा। पीछे मृत्यु की स्थिति में उनकी पत्नी कहती है, 'चले जाओ। तू नित्य है।' मूलचन्दभाई! वह बहिन है शान्ताबेन। रतिभाई की भौजाई। यहाँ मकान है न, बहुत आते थे। ऐसा बोले। उस समय ऐसा आया कि चले जाओ, तुम्हारा नाश है नहीं। देह छूटने से कोई आत्मा का नाश होता है? समझ में आया? कहो, सेठ! तो उस समय ऐसा कहा, तुम नित्य हो। आत्मा नित्य है। चले जाओ। जहाँ जाओ वहाँ तुम नित्य ही हो।

तो यह कहा न? **जीव मरणोन्मुख होता है, तब साहस देते हैं कि जीव नित्य है।** तो एकान्त नित्य है, ऐसा है? पर्याय में अनित्य है। पर्याय गति पलटती है, अवस्था पलटती है, परन्तु उसे गौण करके मरणोन्मुख में नित्यता का साहस देकर नित्यता का आश्रय देकर, उसे ध्रुवता बतानी है। नित्य है। जहाँ जाओ वहाँ आत्मा तो है ही। कोई भी गति पलटे, परन्तु आत्मा तो वही का वही है। **जीव तो मरता नहीं। शरीररूप वस्त्र का उससे सम्बन्ध है सो वस्त्र के समान शरीर बदलना पड़ता है।** बदल जाये। समझ में आया?

यहाँ भी ऐसा हुआ था। खीमचन्दभाई का चन्दुभाई का मकान है न वहाँ। एक वैष्णव था। यहाँ गाँव में उसकी शादी हुई थी। दो पत्नियाँ दोनों बहनें थी। तो अन्तिम

अवस्था थी। पचास वर्ष उम्र होगी। हमें तो लोग बहुत जानते हैं न वैष्णव सब। तो अन्तिम (स्थिति में) बुलाये, महाराज के दर्शन करने हैं। हम तो वहाँ थे हीराभाई के मकान में। तो आये थे। डॉक्टर आये। गृहस्थ थे। दो-तीन डॉक्टर आये थे। इंजेक्शन दिया। दो पत्नियाँ दोनों बहनें थीं। सन्तान कोई नहीं। व्यक्ति इतना होशियार। ऐसे मरने की स्थिति तैयारी हो गयी। इजेक्शन (देने के बाद श्वास लेकर) ऐसा बोला, महाराज, यह शरीर जीर्ण हो गया है। अब तो दूसरा वस्त्र आने की चीज़ है। यहाँ यह खीमचन्दभाई का मकान था। चन्दुभाई का पहला इस ओर, उस मकान में। तब कुछ नहीं दिया था। वह खाली था। यह वस्त्र जीर्ण हो गया है। नया वस्त्र लेना है अब। दूसरा वस्त्र आयेगा। उस समय क्या... ? समझ में आया ? क्या कहते हैं ?

वस्त्र के समान शरीर बदलना पड़ता है। यह शरीर छोड़कर दूसरा शरीर (मिलेगा), आत्मा तो वही का वही रहता है। **न तो जीव जन्मता है, न मरता है।** जीव जन्मे ? वस्तु—पदार्थ जन्मे ? तत्त्व जो जीव है, परमाणु है, कोई तत्त्व नया उत्पन्न होता है ? जीव जन्मे ? जीव तो नित्य है। अनादि-अनन्त नित्यानन्द। **न मरता है और न धन सन्तान, कुटुम्ब आदि से उसका नाता है।** बराबर है ? भगवान आत्मा जन्मे नहीं, मरे नहीं और न धन.... सेठ! धन के साथ आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं। वह तो जड़ है। परन्तु सम्बन्ध है ही नहीं।

**मुमुक्षु :** कभी ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभी। आहाहा! अपना द्रव्य तो भिन्न है। वह चीज़ तो बिल्कुल भिन्न है। शरीर भी भिन्न है, पलटता है। यह चीज़ लक्ष्मी, धूल, बाग-बँगला वह तो पर है। छोड़कर जाओ। उसके साथ सम्बन्ध क्या है ?

**धन सन्तान....** लो। पुत्र-पुत्री हो तो क्या सम्बन्ध है उसके साथ ? उसका आत्मा भिन्न, उसका शरीर भिन्न, वह चीज़ ही भिन्न है। किसके साथ सम्बन्ध है ? भीखाभाई ! हीराभाई के साथ तो सम्बन्ध है न! इकलौता पुत्र, फिर उसके साथ सम्बन्ध नहीं होगा ? आहाहा! कहते हैं कि **सन्तान कुटुम्ब...** कहो, भाईयों-बहिनों के साथ कुछ सम्बन्ध है आत्मा का ? वह तो अत्यन्त भिन्न चीज़ है। अनादि-अनन्त शाश्वत् नित्य वस्तु है। समझ में आया ? उसका नाता नहीं। **यह जो कुछ कहा गया है, वह जीव पदार्थ के**

**नित्य धर्म की ओर दृष्टि देकर कहा गया है।** त्रिकाली है भगवान तू तो। तुम्हारा पर के साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं।

**पश्चात् जब वह मर जाता है....** अब आया। देह छूट गया। **और उसके सम्बन्धियों को सम्बोधन करते हैं....** कुटुम्बियों को सम्बोधन करे तो ऐसा कहे कि वह नित्य था? तब कहते हैं कि संसार अनित्य है, भाई! संसार अनित्य है तो पलटना होना तो उसका स्वभाव है। पण्डितजी!

**मुमुक्षु :** श्मशान वैराग्य।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** श्मशान वैराग्य नहीं। यह तो बोलने की ऐसी पद्धति है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार में भी ऐसी नयगर्भित कथन की शैली है, ऐसा कहते हैं। लौकिक में भी। समझ में आया? यह बताना है यहाँ।

संसार अनित्य है। जो जन्मता है, वह मरता है। जन्मे, वह मरे। पर्याय जो जन्म—उत्पन्न होती है, वह पर्याय छूट जाती है। **पर्यायों का पलटना जीव का स्वभाव ही है,...** देखो! वहाँ ऐसा कहना पड़े। बदलती है जीव की पर्याय, अवस्था बदल जाये, शरीर बदल जाये, गति बदल जाये। समझ में आया? एक क्षण में, राजा महाराजा यहाँ हो, दूसरे समय में सातवें नरक का नारकी हो जाये। आहाहा! यहाँ तो अभी डॉक्टर निर्णय करे कि पल्स हाथ आती है या नहीं। पल्स हाथ नहीं आती। गया—पोढ गया राजा।

राजा, बड़े राजा हो न, उन्हें 'मर गये' नहीं कहा जाता। उन्हें मर गया नहीं कहते। महाराज पोढ़ गये हैं, ऐसा कहते हैं। बाहर जब बोले तब ऐसा बोले, महाराज पोढ गये। समझते हैं या नहीं? लेट गये, ऐसा कहे। मर गये, ऐसा नहीं कहा जाता। ऐई सेठ! यह लखतर दरबार गुजर गये तब बाहर ऐसा कहा। यह लखतर है न। वह दरबार जब गुजर गये, तब बाहर ऐसा कहा, दरबारसाहेब पोढ गये। मर गये, ऐसा नहीं कहा जाता। पोढ गये। आहा! यह दूसरी बात नहीं अपने भाई रतलाम की? रतलाम है न रतलाम, नहीं?

**मुमुक्षु :** वे फिर जीवित राजा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, जीवित राजा। दस लाख की आमदनी। रतलाम का राजा। उसका डॉक्टर आया था।

तो डॉक्टर कहता था कि हमारे राजा को ताव—बुखार आया था। शरीर को बुखार। ऐसा नहीं कहा जाये कि साहेब! आपको बुखार आया है तो वैद्य को बुलाऊँ? ऐसा नहीं कहे। उसे ऐसा कहे, साहेब! आपके दुश्मन को बुखार आया है। पागल कहलाये। एक न्याय से बराबर है कि आत्मा से शरीर भिन्न है। परन्तु यह भान कहाँ? उस दृष्टि से कहाँ कहना था? मानी, बड़ा मानी। मान... मान... मान... पैसा तो दस लाख की आमदनी। दस लाख की आमदनी में क्या? साधारण है। तो भी राजा को ऐसा नहीं कहा जाये कि आपको बुखार है, वैद्य को बुलावें? आपके दुश्मन को बुखार है तो वैद्य को बुलावे? अच्छा, दुश्मन को। पागल वह पागल। कहो, पण्डितजी! उस समय ऐसा बोले। क्या करे? तुमको बुखार है, ऐसा (सुनना) उसे ठीक नहीं पड़ता। मानी (घमण्डी) मनुष्य है। मानी—अभिमानी होता है न।

यहाँ कहते हैं, **पर्यायों का पलटना जीव का स्वभाव है।** यह कथन पदार्थ के अनित्य धर्म की ओर दृष्टि रखकर कहा है। **कुन्दकुन्दस्वामी ने पंचास्तिकाय में इस विषय को खूब स्पष्ट किया है। स्वामीजी ने कहा है कि जीव के चेतना उपयोग आदि गुण हैं।** देखो, भगवान आत्मा के चेतना और उपयोग गुण हैं। उपयोग तो पर्याय भी है। परन्तु उसे यहाँ गुण कहा गया है। और नर-नारक आदि व्यंजनपर्याय को यहाँ पर्याय कहा गया है। क्या कहा? पंचास्तिकाय में है। नीचे दिया है। १८ गाथा है न। तो कहते हैं कि मनुष्यपर्याय से देवपर्याय में जाता है... **जीव के चेतना उपयोग आदि गुण हैं।** जानना, देखना चेतना, यह आत्मा के गुण हैं और नरक से पशु में जाना, पशु से देव में जाना, देव से मनुष्य में आना, वह पर्याय है। पलटना, वह पर्याय है। कायम रहते हैं, वे गुण हैं। आहाहा!

देवपर्याय में जाता है और मनुष्यपर्याय का अभाव करके देवपर्याय का सद्भाव उत्पन्न होता है। **परन्तु जीव न उपजा है न मरा है।** जीव उपजता नहीं है कि जीव उपजा (ऐसा कहे)। भाषा तो ऐसा बोले कि जीव मर गया। जीव मरता है? वह तो पर्याय बदल गयी। मरे कौन? **परन्तु जीव न उपजा है न मरा है, यह उसका ध्रुवधर्म है। बस इसी का नाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।** नित्य रहता है, उसका नाम ध्रुव है और गति पलटती है, उसका नाम अनित्य है। अपने से है, वह कोई पर के कारण से है नहीं। यह

१८वीं गाथा का दृष्टान्त (उद्धरण) दिया है, देखो!

**सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।**
**उप्पणो य विणट्ठो देवो मणुसुत्ति पज्जाओ॥१८॥**

**वह ही जीव उपजता है जो कि मरणभाव को प्राप्त होता है। स्वभाव से वह जीव न विनशा है और न निश्चय से उपजा है।** गति की अपेक्षा से उपजा। मनुष्यपने का व्यय हुआ और देवपने उपजा। समझ में आया? धर्मी जीव तो मनुष्यपने का व्यय करके स्वर्ग में ही जाते हैं। समझ में आया? उनकी दूसरी कोई गति होती नहीं। तो कहते हैं कि मनुष्यरूप मरणभाव को प्राप्त होता है और स्वभाव से जीव... यहाँ व्यय हुआ मनुष्यपने का, देव का उत्पाद हुआ। स्वभाव से जीव न विनशा, न उपजा। एकरूप भगवान आत्मा नित्य है। आहाहा! समझ में आया? **तब कौन उपजा और कौन विनशा है?** जीव तो वही का वही है। मनुष्यरूप भी वह है, स्वर्ग में भी वह है। तो कौन उपजा, कौन मरा? उसकी पर्यायपने उपजा और पर्यायपने व्यय-मरण हुआ। वह तो पर्याय की अपेक्षा से है, वस्तु की अपेक्षा से ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

एक डॉक्टर था, डॉक्टर अहमदाबाद में। उसका लड़का छोटी उम्र में मर गया। जवान... जवान लड़का। और स्त्री इतना रोवे—रुदन करे। उसकी अर्थी बाँधते हैं न? ननामी। ननामी कहते हैं न? लड़के की अर्थी। उसकी माता बाँधने न दे। लड़के की माता। नहीं, नहीं। तो उसका पति कहता है, अपने यहाँ तुम्हारे बाँधने नहीं देनी न अर्थी, तो अपने सन्दूक में इसे रखते हैं। बराबर है? कहे, नहीं। यह नहीं। तब क्या है यह नहीं तो? सन्दूक में नहीं, ऐसे यहाँ अर्थी बाँधने नहीं देना, तो करना क्या है तुझे? उसका पति कहे। वह आत्मा तो बदल गया। उसमें कहते हैं कि वह मरकर (देव हुआ)। लड़का था लड़का। जवान अवस्था। जरा वैराग्य हो गया तो व्यन्तरदेव हुआ। व्यन्तर—भूतड़ा। तो वह आया। अभी यहाँ बाँधने नहीं देते थे। आया।

'माता! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। यहाँ था वह। कहो तो यहाँ शरीर में आऊँ और २५-५० वर्ष रहूँ। परन्तु मैं तो व्यन्तर हुआ हूँ। अररर! यह नहीं, नहीं। और तब अब यहाँ आऊँ तो भी नहीं, जाये तो भी नहीं, बाँधने देना नहीं, तो तब करना क्या है? यह हमको वहम पड़े, कहे। तुझे भूतड़ा होकर—भूत व्यन्तर होकर घर में रखूँ। लो, ठीक। वह

कहे, परन्तु मैं यह हूँ। कहो तो बताऊँ कि देखो अपने फलाना में इतने पैसे पड़े हैं आगमन में। हमारी माँ ने इतने रखे हैं। देखो चूल्हा। चूल्हा होता है न चूल्हा। आगमन हो न नजदीक। उसमें नीचे देखो। इतना पैसा है। मुझे खबर है। मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। तो तुम्हें बाँधने न देना हो तो तुम रखो शरीर और मैं आऊँ और तुम्हारे साथ २५-५० वर्ष रहूँ। नहीं, ऐसा नहीं। ले! हमको डर लगता है। .... पागल, कहे। आहाहा!

चीज़ बदल गयी, वह भी रुचती नहीं। वही का वही आत्मा है, वह भी रुचता नहीं। नित्य-अनित्य कोई बात बैठती नहीं। समझ में आया? कहते हैं, पर्याय उपजी और पर्याय विनशी। मनुष्य की पर्याय का नाश हुआ और स्वर्ग की पर्याय में उत्पाद हुआ। वह तो पर्याय उपजी और विनशी। आत्मा उपजता-विनशता है? आत्मा है, वह अनादि से है। उसकी अवस्था उपजी और मर गयी। **जैसे कि देवपर्याय उत्पन्न हुई है, मनुष्यपर्याय नष्ट हुई है। देखो! यह पर्याय का उत्पाद-व्यय है, जीव को ध्रौव्य जानना।**

आता है न श्रीमद् में भी? बालादि वय तीन का। 'आत्मा द्रव्य से नित्य है, पर्याय से पलटाय, बालादि वय तीन का, ज्ञान एक को होय।' आत्मसिद्धि (में आता है)। आत्मा द्रव्य से नित्य है। वस्तु तो नित्य अनादि-अनन्त है। चाहे तो स्वर्ग में हो, चाहे तो नरक में हो, चाहे तो मनुष्यपने में हो, रंक में हो या राजा में हो। आत्मा तो वह का वह अनादि है। पर्याय—अवस्था बदलती है। गति बदल जाये, भाव बदल जाये। यहाँ से देव में जाये, सब बदल जाये। शरीर बदल जाये, स्थान बदल जाये, भाव बदल जाये। यह तो पर्याय—अवस्था बदली। वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? दुश्मन का जीव हो, वह घर में लड़के में आये। अपना लड़का हो जाये। और लड़का हो, वह दुश्मन का जीव हो जाये। दुश्मन दूसरे भव में। वह पर्याय बदली है। वस्तु तो वस्तु वही का वही आत्मा है। ऐसी वस्तु की स्थिति, नित्य और अनित्य—ऐसा वस्तु का स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। अज्ञानी एकान्त मानते हैं कि आत्मा नित्य ही है या पलटने की चीज़ जितना ही आत्मा है। वह सब तत्त्व को समझते नहीं। समझ में आया? और पंचास्तिकाय की २१ गाथा। कुन्दकुन्दाचार्य का पंचास्तिकाय—

**एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।**
**गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो॥२१॥**

**पर्यायार्थिक नय की विवक्षा से....** क्या कहते हैं? आत्मा तो अनादि-अनन्त ध्रुव नित्य है द्रव्य से—वस्तु से। यदि पर्याय, देखो अवस्था तो **पंच परावर्तनरूप संसार में भ्रमण करता हुआ....** चार गति में भटकता है, भिन्न-भिन्न भव धारण करता है। **यह आत्मा देवादिक पर्यायों को उत्पन्न करता है।** स्वर्ग में जाता है। **मनुष्यादि पर्यायों का नाश करता है।** मनुष्यगति हो, यहाँ शरीर की बात नहीं। मनुष्यगति का नाश होता है और स्वर्गगति उत्पन्न होती है। एक क्षण में ऐसा हो। ओहोहो! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ७०० वर्ष का आयुष्य था। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती अन्तिम बारहवाँ चक्रवर्ती। यहाँ बहुत पाप किये थे तो सातवें नरक की आयु बँधी थी। यहाँ तो हीरा के, क्या कहलाता है? ढोलिया। ढोलिया अर्थात् पलंग। हीरा-माणेक के पलंग में सोता था। सोलह हजार देव सेवा करते थे। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। अन्तिम समय में स्त्री... इसकी एक स्त्री होती है रानी। उस रानी की एक हजार देव सेवा करते हैं। पट्टरानी। इतने भोग की वासना हुई। स्त्री कुरुमति... कुरुमति... बोलते हुए देह छूट गयी। सातवें नरक (महातमप्रभा) नरक में गया।

सातवाँ—सप्तम नरक है न महातमप्रभा। अभी वहाँ है। अभी तो थोड़े वर्ष हुए हैं न! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती अभी सातवें नरक में है। ७०० वर्ष रहा और एक-एक मिनिट का असंख्य अरब वर्ष का नरक में दुःख हुआ। आयुष्य कितना? ७०० वर्ष। उसमें भोग कितना? रानी, १६ हजार देव, ९६ हजार स्त्रियाँ, ७२ हजार पाटनगर, ४८ हजार नगर, ९६ करोड़ सैनिक, ९६ करोड़ गाँव। ७०० वर्ष रहा। तो ७०० वर्ष के जितने मिनिट हों मिनिट, (ऐसे) एक मिनिट में असंख्य अरब वर्ष का दुःख। सप्तम नरक। परमात्मा तीर्थंकर ने कहा कि ब्रह्मदत्त मरकर सप्तम नरक में गया। अहाहा! ७०० वर्ष तो बहुत थोड़ा है न। परन्तु पाप की तीव्रता इतनी होती है कि उसके एक-एक मिनिट के फल में असंख्य अरब वर्ष, असंख्य अरब वर्ष (का दुःख)। तैंतीस सागर किसे कहें? आहाहा! भगवान कहते हैं, सप्तम नरक का आयुष्य तैंतीस सागर है। वहाँ सब अनन्त बार गये हैं। भान नहीं। समझ में आया?

यहाँ लड़की को बतायी थी न? राजुल... राजुल... अभी तो विद्यालय गयी है। वहाँ ढाई वर्ष में बोली, लो। ढाई वर्ष में। जूनागढ़ से आयी है। लुहार... लुहार की

लड़की। ढाई वर्ष में वहाँ मर गयी। उसकी माता की गोद में। श्रीकृष्ण शरणं, क्या कहते हैं ? शरणं। श्रीकृष्ण शरणं... श्रीकृष्ण शरणं... ढाई वर्ष की लड़की थी वहाँ राजुल। वहाँ गीता थी। वहाँ जूनागढ़ में। माँ-बाप हैं, सब है। मिलने को आये थे। वहाँ गये थे। सबको पहिचान गयी। वह अवस्था बदल गयी, आत्मा तो वही का वही है या नहीं ? मनुष्य मरकर मनुष्य हुआ। वह गति पलटी। परन्तु आत्मा तो वही का वही है या नहीं ? आहाहा! मैं नित्य हूँ, उसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं। समझ में आया ?

नित्यानन्द प्रभु मैं ध्रुव अनादि-अनन्त एकरूप मेरी चीज़ है, ऐसी दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? जानने में दोनों है कि नित्य भी हूँ, अनित्य भी हूँ। परन्तु आश्रय करने में तो एक नित्य की दृष्टि करना। समझ में आया ? आहाहा! क्या भव कहाँ... ? कहाँ से कहाँ जाये ? यह अवस्था—हालत—पर्याय बदलती है। वस्तु तो वही की वही है। सुवर्ण है सुवर्ण—सोना। वह सुवर्ण तो वही का वही है। उसके कुण्डल, कड़ा, अँगूठी बनती है। कुण्डल, कड़ा, अँगूठी भिन्न-भिन्न अवस्था है। सोनेरूप से तो कायम रहता है। इसी प्रकार आत्मा तो ध्रुवरूप कायम रहता है, उसकी अवस्था बदलती है। कहाँ संसार अवस्था और कहाँ मोक्ष अवस्था! आहाहा! संसार अवस्था का व्यय करके, त्रिकाल भगवान आत्मा का आश्रय लेकर संसार अवस्था का नाश करके मोक्ष की अवस्था में उत्पन्न होता है। आहाहा! परन्तु आत्मा तो वही का वही है। संसार अवस्था में था वही, मोक्ष अवस्था में वही। आहाहा! समझ में आया ?

देवादि पर्याय को उत्पन्न करता है, मनुष्यादि पर्याय को नाश करता है। **विद्यमान देवादि पर्यायों के नाश का आरम्भ करता है।** यह जरा सूक्ष्म बात है। क्या कहते हैं ? जब देव में वह हुआ न, तब देव में जो पर्याय वर्तमान है, उसका तो अभाव करता जाता है। क्षण-क्षण में अभाव होता है। पहले भाव, अभाव कहा। बाद में भाव-अभाव। वर्तमान भाव का अभाव होता है और भविष्य की पर्याय का अभाव है, उसके सन्मुख जाता है। आहाहा! क्या कहा ? देखो! यह आत्मा देवादि पर्याय को उत्पन्न करता है, मनुष्यादि पर्याय को नाश करता है। यह दो बातें आयीं। भाव, अभाव की आयी।

भाव, अभाव पहला बोल है न। अब भाव-अभाव यह दूसरा बोल। विद्यमान देवादि पर्याय को नाश का प्रारम्भ करता है। आहाहा! जैसे कि यहाँ मनुष्यभव है यहाँ।

तो मनुष्यभव की जो पर्याय है वर्तमान, उसका अभाव होता है। समय-समय में अभाव होता है। समझ में आया? **और जो विद्यमान नहीं मनुष्यादि पर्याय उसके उत्पाद का आरम्भ करता है।** वर्तमान में स्वर्ग-देव नहीं, स्वर्ग की अवस्था नहीं। अभाव है। परन्तु उसके सन्मुख होकर अभाव का भाव करता है (और) भाव का अभाव करता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** कर्म तो नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्वयं। कर्म की बात भी कहाँ है यहाँ? कर्म तो दूसरी चीज़ है। कर्म के साथ सम्बन्ध क्या? वह तो इनकार किया न! सम्बन्ध है नहीं। समझ में आया?

चार बातें की। कि एक तो यह वर्तमान पर्याय है मनुष्यगति की। शरीर नहीं, यह तो जड़ मिट्टी है, यह गति नहीं है। यह तो मिट्टी है, जड़ है। यह कुछ मनुष्यपना नहीं। यह मनुष्य है? यह तो जड़-मिट्टी-धूल है। मनुष्यगति का जो उदय है, मनुष्यपने की प्राप्ति अन्दर भाव में है। यह मनुष्यपने की पर्याय का (व्यय), देव की पर्याय का उत्पाद करता है और इस पर्याय का व्यय होता है। इस उत्पाद का व्यय और उसमें उत्पन्न हुआ देव में, वह भाव—उत्पाद। अभाव—उसका अभाव करके उत्पन्न हुआ स्वर्ग। दो बात। तीसरा—वर्तमान मनुष्यभव है, वह समय-समय की पर्याय भावरूप है, उसका अभाव करता है। बराबर है या नहीं? मृत्यु के सन्मुख जाता है, समय-समय के अभाव....

दुनिया में नहीं कहते हैं? माँ कहे कि मेरा लड़का बड़ा हुआ। भगवान कहते हैं कि तेरा लड़का मरण के समीप हुआ। जितनी आयुष्य की स्थिति लेकर आया है, उसमें एक समय पलटे नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसकी माता कहे, मेरा लड़का बीस वर्ष का बड़ा हुआ। भगवान कहते हैं कि जो ५० या ६० वर्ष की उम्र लेकर आया है तो बीस वर्ष गये, इतना मरण के सन्मुख हो गया। .... हो गया। मरण के सन्मुख गया। ६० वर्ष की उम्र लाया हो, ४० वर्ष रहे। यह कहे कि बड़ा हुआ। भगवान कहे कि मरण के सन्मुख हुआ। यहाँ वह कहते हैं कि भाव (है), उसका अभाव करता जाता है। और अभाव—स्वर्ग में जानेवाला है तो स्वर्ग की पर्याय का (वर्तमान में) अभाव है, उसको सन्मुख करता है, नजदीक में लाता है। आहाहा! पहले भाव कहा—उत्पाद। पश्चात्

अभाव कहा—व्यय। तीसरा भाव(-अभाव) कहा, अपनी वर्तमान पर्याय भाव है, उसका अभाव करता जाता है और चौथा अभाव-भाव। देव की पर्याय अभी नहीं—अभाव है, उसके भाव—सन्मुख होता है। आहाहा! समझ में आया?

**मनुष्य आदि पर्याय उनके उत्पाद का आरम्भ करता है।** देव से लिया है। देवपने में है स्वर्ग में जीव, तो स्वर्ग की पर्याय में क्षण-क्षण में वह पर्याय भावरूप है, उसका अभाव करता जाता है। सागरोपम का आयुष्य हो, दो सागर का आयुष्य हो। समझ में आया? सौधर्म देवलोक में दो सागर का आयुष्य है। सौधर्म देवलोक। तीन देवलोक है न! भगवान ने सौधर्म देवलोक वैमानिक में दो सागर (आयु देखी है)। एक सागर में दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम और एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष। वहाँ भी अनन्त बार उपजा है। यहाँ तो कहना है कि जो दो सागर की स्थिति उत्पन्न हुई, तो समय-समय में जो एक समय का भाव है, उसका अभाव करता जाता है और वहाँ से वापिस मनुष्य में आना है। तो मनुष्य की पर्याय वर्तमान में तो वहाँ है नहीं तो अभाव का भाव करता जाता है। आहाहा! गजब बात है। भाई! इसमें क्रमबद्ध आया या नहीं कुछ इसमें? आहाहा! ऐई! यह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बहुत बात है!

प्रत्येक गुण की वर्तमान पर्याय अभाव होती है और नहीं है, वह भाव होती है। आहाहा! धर्मीजीव को आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, तो कहते हैं कि जो संसार की पर्याय और शुद्धता की अल्प पर्याय भावरूप है, उसका तो अभाव करता जाता है। और केवलज्ञान की पर्याय वर्तमान में तो नहीं है, तो केवलज्ञान का अभाव है, उस भाव के सन्मुख जाता है और अल्प काल में भाव प्रगट करेगा। आहाहा! कथनशैली कुन्दकुन्दाचार्य की! भाव, अभाव, भाव-अभाव, अभाव-भाव। '**गुणपज्जयेहिं सहिदो।**' आहाहा!

वर्तमान में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की पर्याय हो, परन्तु उस भाव का अभाव करता जाता है क्षण-क्षण में, क्षण-क्षण में। और केवलज्ञान की पर्याय नहीं है तो अभाव को भाव करता है, सन्मुख होता है। केवलज्ञान का काल नजदीक आता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** भाव और अभाव दोनों एक ही समय में?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक ही समय में वर्तमान भाव है, उसका तो अभाव करता

जाता है और अभाव जो है—वस्तु नहीं, उसके तो नजदीक जाता है तो अभाव का भाव करता है। आहाहा! समझ में आता है? अज्ञानी की तो दृष्टि मिथ्यात्व है। पुण्य में धर्म और पाप में मजा, ऐसी दृष्टि है, उसे भी वर्तमान पर्याय भावरूप है, उसका क्षण-क्षण में अभाव करता जाता है और देव की पर्याय में उसको उत्पन्न होना हो, तो वर्तमान यह है नहीं तो अभाव का भाव करता जाता है। समझ में आया?

वस्तु तो त्रिकाल ध्रुव है, यह पर्याय की बात चलती है। समझ में आया? पर्याय में जो मिथ्यात्वभाव हे और उस मिथ्यात्वभाव का समय-समय में अभाव करके नयी-नयी मिथ्यात्व पर्याय उत्पन्न करता है। समझ में आया? भाव का अभाव करता है और भविष्य की मिथ्यात्व पर्याय वर्तमान में नहीं है, उसे नजदीक करता है। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया? ऐसा आत्मा अपना नित्यानन्द भगवान शुद्ध चैतन्य का जिसे स्वीकार अनुभव से हुआ, तो कहते हैं कि वर्तमान में अपूर्ण शुद्धता है, उसका भाव है, उसका क्षण-क्षण में अभाव करता जाता है। और केवलज्ञान की पर्याय वर्तमान में अभाव है तो अभाव के सन्मुख करके भाव प्रगट करता है। उसके सन्मुख जाकर भाव करता है। अभाव का भाव करता है। आहाहा! केवलज्ञान नजदीक लाने का भाव। आहाहा! कैसी शैली से बात की है न! सन्तों—कुन्दकुन्दाचार्य आदि की शैली गजब है! यह गाथा आयी, ऐसी कहीं श्वेताम्बर में नहीं आयी। आहाहा! पर्याय को सिद्ध करते हुए किस प्रकार पर्याय को सिद्ध करते हैं! कहो, भीखाभाई!

भगवान आत्मा तो तू ही है ध्रुव नित्य। यह जीव का अजीव हो गया? जीव तो जीव ही है नित्य त्रिकाल। उसकी जो अवस्था—पर्याय बदलती है, उसमें यह भाव डाला है। आहाहा! मनुष्य की पर्याय तो वर्तमान में है, अन्दर मनुष्यगति है न! अवधि है इतनी अवधि यहाँ है। तो एक-एक समय का का भाव, अभाव करता जाता है। आहाहा! भाव का अभाव। बराबर है शोभालालजी? और अभाव का भाव। स्वर्ग में जाना है तो उसकी पर्याय वर्तमान में तो है नहीं। आहाहा! यह अभाव का भाव करता जाता है। समझ में आया? उसमें ऐसा ही पर्याय का क्रम है। क्रमबद्ध आया या नहीं? और अल्पकाल में जिसे केवलज्ञान लेना है, उसमें बैठाओ यह (भाव) तो भी बैठेगा।

वर्तमान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय अपूर्ण शुद्ध है, यह भाव है। उसका

समय समय में अभाव करता जाता है। केवलज्ञान और सिद्धपर्याय का भाव वर्तमान में नहीं है तो समकिती का ध्येय और साध्य तो सिद्ध है। आयेगा साध्य अधिकार में। साध्य-साधक द्वार। समझ में आया? समकिती का साध्य तो सिद्ध है। आश्रय द्रव्य का है, यह दूसरी बात है। समझ में आया? साध्य तो सिद्ध है। तो सिद्ध की (पर्याय आने में) जो काल बाकी है तो वर्तमान पर्याय का अभाव करते-करते, भाव नहीं उस भाव-सन्मुख होते हैं तो नजदीक आ गया वह भाव। आहाहा! समझ में आया? कहो, चन्दुभाई! गजब मार्ग, भाई! आहाहा! यह स्याद्वाद, देखो।

नरक में जाना है या तत्त्व विराधक होकर निगोद में जाना है। आहाहा! तो उसकी वर्तमान पर्याय है भाव, उसका तो अभाव करता जाता है और निगोद की पर्याय वर्तमान में नहीं, उसके सन्मुख होकर अभाव का भाव करता जाता है। आहाहा! समझ में आया? आहा! किस ढंग से बात करते हैं! किस प्रकार से! श्लोक तो देखो। ओहोहो! '**भावमभावं भावाभावं**' वापस दूसरा बोल। तीसरा '**अभावाभावं**' बस। '**गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो।**' उसकी क्रीड़ा ध्रुव और पर्याय—दो में है। पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! यदि उसकी दृष्टि राग और एक अंश पर है तो मिथ्यात्वभाव का भाव वर्तमान समय-समय में व्यय होता है, नया-नया उत्पन्न होता है। आहाहा! वर्तमान भाव का अभाव करता है और भाव नहीं है, उसका सद्भाव नजदीक करता है। ओहो! चार गति और मोक्ष गति इस पद्धति से भाव-अभावरूप वर्तती है, कहते हैं।

**खूब स्मरण रहे नय का कथन अपेक्षित होता है।** जैसे नित्य कहे तो लक्ष्य में अनित्य है, ऐसा लक्ष्य अपेक्षित है। समझ में आया? नित्य है तो उसकी अपेक्षा अनित्य है, ऐसा लक्ष्य में है। तो उसे नय कहा जाता है। वरना तो कुनय है। आश्रय करनेयोग्य का प्रश्न यहाँ है नहीं। नित्य आश्रय करनेयोग्य है तो लक्ष्य में रखना और पर्याय भी आश्रय करनेयोग्य है, ऐसी बात यहाँ है नहीं। समझ में आया? नित्य भगवान आत्मा है, इसे सुनय कब कहने में आवे कि अनित्य को स्वीकार करे कि पर्याय में अनित्यता—पलटना है। और पर्याय में अनित्यता का स्वीकार कब सुनय है कि द्रव्य से ध्रुव है, नित्य है तो वह नय सुनय कहने में आता है। परन्तु एकान्त नित्य है अर्थात् अनित्य है ही नहीं

पर्याय में, वह कुनय है। पर्याय पलटती है अनित्य, तो त्रिकाली ध्रुव नहीं, वह कुनय है। अरे! समझ में आया? वीतरागमार्ग ऐसा मार्ग परमात्मा का।

अनन्त गुण हैं न गुण अनन्त, वे तो ध्रुव हैं। उसकी पर्याय जो वर्तमान है, वह पर्याय भी क्षण-क्षण में अभाव होती है। और एक-एक गुण की पूर्ण पर्याय नहीं, उसके समीप जाती है। समझ में आया? सब गुण समकिती को। समकिती को, भव्य को कहाँ? समकिती को कितने ही... नहीं, सब भव्यों को ऐसा कहते हैं। भव्यों को नहीं। भव्य तो कितने ही पड़े हैं ऐसे, कभी धर्म नहीं (समझे)। इसलिए समकिती लिया है पहला शब्द।

**मुमुक्षु :** स्पष्टता की।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। कहा न परन्तु यह! स्पष्टता में समकिती पहले लिया। कितने ही भव्य तो अनादि से पड़े हैं निगोद में, अनन्त (काल तक) निगोद से निकलेंगे नहीं। आहाहा! लीलफूग / काई, काई में अनादि से पड़े हैं जीव। काई है न जल के ऊपर। काई—शैवाल। काई का एक राई जितना टुकड़ा है, उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर हैं और एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुने जीव हैं एक शरीर में। आहाहा! ऐसा वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा ने कहा है। काई होती है न। काई कहलाती है न! काई। जल में होती है न!

अरे आलू, लो। आलू—बटाटा—आलू। एक टुकड़ा—राई जितना टुकड़ा। तो इतने टुकड़े में असंख्य तो सूक्ष्म औदारिकशरीर हैं और उस एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए... छह महीने आठ समय में ६०८ सिद्ध होते हैं। मनुष्यपने में से ६०८ जीव छह महीने आठ समय में सिद्ध होते हैं। उस दिन गिनती की एक सेठ ने, जुगराजजी ने कि छह महीने आठ समय में ६०८ तो एक दिन में तीन हुए। कल कहते थे। तो अपनी तीन में गिनती ले लेना, ऐसा कहते थे। तीन में, तीन में। एक दिन में तीन मुक्ति को पाते हैं। यह तो एक दृष्टान्त है। नहीं तो आठ समय में ६०८ चले जायें। छह महीने तक कोई मुक्ति पावे ही नहीं। अन्तिम आठ समय हों आठ समय, तो उन आठ समय में ६०८ मुक्ति में जायें। और किसी में एक समय में तो १०८ जायें। और खाली रहे, और वापस... परन्तु यह तो एक सेठ ने ऐसा एक तर्क लगाया।

**मुमुक्षु :** उसमें नम्बर लगाना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अपना नम्बर लगाना है। आहाहा! बात सच्ची है।

ऐसा कि मुक्ति जाने में, भगवान परमात्मा तीर्थंकरदेव ऐसा कहते हैं कि छह महीने आठ समय में ६०८ मुक्ति पाते हैं... पाते हैं और पाते हैं। तो उसके भाग करो तो एक दिन में तीन आये। तो तीन में मिल जाना अपने को। समझ में आया? ऐई सेठ! जुगराजजी सेठ ने ऐसा....

**मुमुक्षु :** मुम्बईवाले।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुम्बईवाले बैठे हैं न! कल लगाया था ऐसा। ऐई सेठ! तुमको ऐसा कहते हैं कि उसे लाईन में लगने की चटापटी है, मुक्ति की लाईन में। रुचती है न। दृष्टि रुचती है। सूक्ष्म भाव हो सूक्ष्म अध्यात्म, परन्तु (बात) रुचती है। समझ में आया? आहाहा! बापू! बात—मार्ग तो.... अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द का भण्डार प्रभु तो ध्रुव नित्य है। उसकी वर्तमान पर्याय पलटती है, वह अनित्य है। परन्तु अनित्य में भी, वर्तमान पर्याय है, उसमें भविष्य की नहीं और वर्तमान का अभाव होकर भविष्य की पर्याय के सन्मुख होता है, ऐसा उसका क्रम है। शुद्ध में भी ऐसा और अशुद्ध में भी ऐसा। आहा!

यहाँ ऐसा हुआ कि ६० वर्ष तो हुए शरीर को या ८० हुए। तो शास्त्र तो कहते हैं कि ८० वर्ष की उम्र में मनुष्य की पर्याय का व्यय हुआ और आगे जाना है। इतनी नजदीक आयी वह पर्याय। अभाव है, उसके नजदीक पर्याय होती है। आहाहा! समझ में आया? जिसकी दृष्टि राग और एक अंश के ऊपर है, उसकी भी ऐसी ही पर्याय उत्पन्न होती है। मिथ्यापर्याय उत्पन्न हुई और नयी मिथ्यापर्याय है, उसके सन्मुख होता है। और जिसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर है, उसको भी पर्याय में वर्तमान (पूर्णता) नहीं और अपूर्ण शुद्धता है, उसका भी क्रमसर अभाव होता है। भाव का अभाव। पूर्ण (पर्याय के) अभाव का भाव होता है। आहाहा! नजदीक केवलज्ञान है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा पर्याय का स्वभाव है, यह सिद्ध करते हैं, हों! लो, क्रमबद्ध सिद्ध किया। समझ में आया?

**यदि अपेक्षा रहित कथन किया जावे तो यह नय नहीं कुनय है।** २६६। वह की वह नीचे, भाई! स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, २६६। अंक नहीं लिखा, परन्तु है। स्वामी कार्तिकेय।

**ते साविक्खा सुणया णिरविक्खा ते वि दुण्णया होंति।**
**सयलववहारसिद्धी सुणयादो होदि णियमेण॥**

जो नय अर्थात् ज्ञान का अंश परस्पर अपेक्षासहित हो, नय तो अंश को स्वीकार करता है न! एक धर्म को एक भाग को स्वीकार करता है। तो नय परस्पर अपेक्षासहित हो तो दूसरा नय है, दूसरा धर्म है, उसकी एक नय अपेक्षा रखता है। आहाहा! तो सुनय है। **और वे ही जब अपेक्षारहित ग्रहण किये जाये, वह दुर्नय हैं।** आत्मा नित्य ही है। अनित्य की अपेक्षा नहीं तो यह कुनय है, मिथ्याभाव है। आत्मा अनित्य ही है, वह कुनय है। नित्य त्रिकाल ध्रुव को तो लक्ष्य करता नहीं। **सुनय से सर्व व्यवहार की सिद्धि होती है....** लो। पर्याय की। पर्याय की ही बात है न यह तो! **अन्य मतावलम्बी भी जीव पदार्थ के एक धर्म पर दृष्टि देकर मस्त हो गये हैं।**

एक साधु ने एक दरबार को कहा, अरे दरबार! बहुत पाप नहीं करना। ऐसे पाप करेगा तो नरक में जाना पड़ेगा। तो जवाब में कहते हैं, हम क्षत्रिय हैं। इस हाथ से किया तो इसी हाथ से भोगते हैं, उसमें क्या है? ऐसा जवाब दिया। इस हाथ से किया तो इसी हाथ से भोगना। उसमें क्या? अरे! मर जायेगा, वहाँ भोगने के समय तो चिल्लाहट मचायेगा वहाँ। हाय... हाय!

यहाँ बड़ा राज था करोड़ रुपये का। एक व्यक्ति ने कहा। बहुत वहाँ वे कुंजरा... कुंजरा है न। कुंजरा नहीं होता? कुंजरा होता है न। कुंजरा नहीं ऊपर? दाना खाते हैं न! बड़ा पक्षी होता है। उसे राजा मार डालता था। एक ब्राह्मण था। ब्राह्मण की मढ़ी (झोंपड़ी) थी निकट में। तो उसने राजा से कहा कि महाराज! मेरी मढ़ी के पास... मढ़ी समझे?

**मुमुक्षु :** झोंपड़ी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** झोंपड़ी। मेरी झोंपड़ी के पास मारते हो तुम तो थोड़ा दूर... बस ऐसा कहा।

मारा पक्षी को। बुलाओ ब्राह्मण को, उठाओ। उठाओ डालो मोटर में। आहाहा! मुर्दे को उठा कुंजर को। मुर्दा समझे ? मरे हुए पक्षी को। (ब्राह्मण) ने ऐसा कहा, उसने कि मेरी (झोंपड़ी) नजदीक में ऐसा नहीं करो। तो उसे बुलाकर कहा कि उठा मुर्दे को, चलो। गजब है न! समझ में आया ? वह गुजर गया। हम राजा, हमको कौन कहे ? अरे! मर जायेगा अब राजा। रंक होकर रोयेगा तो भी पार नहीं आये कुछ। भिखारी की भाँति। ....राजा है। पर्याय पलट गयी और नरक में चिल्लाहट मचाता होगा अभी। हाय... हाय! अभिमान चढ़ जाता है न! पर्याय पलटेगी, जायेगा नरक में। चिल्लाहट। एक अन्तर्मुहूर्त के दु:ख की व्याख्या भगवान करते हैं। आहाहा! पहले नरक की वेदना। ऐसी-ऐसी अनन्तगुनी वेदना सातवें नरक की।

भगवान! तेरी चीज़ आनन्दकन्द प्रभु है, ऐसी दृष्टि किये बिना, सत्य को स्वीकार किये बिना, असत्य में चौरासी लाख में तुझे फिरना पड़ता है। समझ में आया ? **इसलिए जैनमत में उन्हें 'मतवारे' कहा है।** पागल। नित्य आत्मा है ? कहे, नहीं... नहीं, नित्य कैसा, वह तो एक समय में बदल जाता है, नाश हो जाता है। **इस अधिकार में चौदह मतवालों को सम्बोधन किया है...** चौदह आये न, चौदह ? **और उनके माने हुए प्रत्येक धर्म का समर्थन करते हुए स्याद्वाद को पुष्ट किया है।** लो! अपेक्षा एक जो उसमें धर्म है, उसे सिद्ध किया है। अब साध्य—साधक अधिकार।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

# ( १२ )
# साध्य-साधक द्वार

**प्रवचन नं. १६१, भाद्र कृष्ण १०, मंगलवार, दिनांक १४-०९-१९७१**
**साध्य-साधक द्वार, पद १-२**

यह समयसार नाटक, साध्य-साधक द्वार। नाम यह दिया है साध्य-साधक। पहला थोड़ा स्याद्वाद का कहकर फिर साध्य-साधक कहेंगे, उसका अधिकार है।

★ ★ ★

## काव्य - १

**प्रतिज्ञा** (दोहा)

**स्यादवाद अधिकार यह, कह्यौ अलप विसतार।**
**अमृतचंद्र मुनिवर कहै, साधक साध्य दुवार।।१।।**

**शब्दार्थः-साध्य=जो सिद्ध करने योग्य है-इष्ट। साधक=जो साध्य को सिद्ध करे।**

**अर्थः-यह स्याद्वार अधिकार का संक्षिप्त वर्णन किया, अब श्री अमृतचंद्र मुनिराज साध्य-साधक द्वार का वर्णन करते हैं।।१।।**

### काव्य-१ पर प्रवचन

**स्यादवाद अधिकार यह, कह्यौ अलप विसतार।**
**अमृतचंद्र मुनिवर कहै, साधक साध्य दुवार॥१॥**

**यह स्याद्वाद अधिकार का संक्षिप्त वर्णन किया।** क्या कहा? आत्मा अनन्त धर्मस्वरूप, अनन्त शक्तिस्वरूप और उसके परिणमनसहित, उसे यहाँ स्याद्वाद अधिकार कहा जाता है। समझ में आया? यह शक्तियों के वर्णन के बाद के ये कलश हैं। यह साध्य अर्थात् वस्तु। जो आत्मा है अनन्त शक्ति; गुण कहो, शक्ति कहो, स्वभाव कहो। अनन्त शक्ति का एकरूप, वह द्रव्य और उसकी परिणति निर्मल क्रम-क्रम से होती है, क्रम-क्रम से होती है, वह पर्याय। समझ में आया? इसमें विकारी पर्याय की यहाँ अभी बात नहीं शक्तियों के वर्णन में। स्याद्वाद का जो अधिकार है न, उसमें विकार की कोई बात नहीं।

आत्मा परिपूर्ण एक समय में अनन्त शक्ति अक्रम... आत्मा में एक साथ रहनेवाली शक्ति; गुण कहो, शक्ति कहो, सत् तत्त्व, ऐसा उसका सत्त्व, भाव कहो। अनन्त शक्ति, जीवत्वशक्ति, चितिशक्ति, दृशिशक्ति, ज्ञानशक्ति इत्यादि ४७ शक्तियाँ हैं। यह ४७ शक्तियाँ अक्रम से हैं। आत्मा में (शक्ति) अक्रम अर्थात् एकसाथ हैं और उसका परिणमन, द्रव्यदृष्टि हुई कि आत्मा ऐसा है तो उसकी पर्याय में निर्मलता—वीतरागी पर्याय उत्पन्न हो, वह क्रम से होती है। गुण अक्रम होते हैं, पर्याय क्रम से होती है। कहो, मूलचन्दभाई! एक के बाद एक ही जो होनेवाली हो वह। आहाहा! सम्प्रदाय में मूल तत्त्व पूरा अभी ऐसी गड़बड़ में चढ़ गया है, अन्य में तो कहीं है ही नहीं। लेख आज आया है, उस रजनीश का सब। ऐसा कि अभी मुम्बई में उसका बहुत वातावरण है, लोग माननेवाले बहुत हो गये हैं। यह बाहर की बातें सब....

**मुमुक्षु :** उसमें क्या दिक्कत है? अधिक हों उसमें क्या दिक्कत है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह अंक नहीं लिखा कि क्या है। सौ रुपये में एक था न। वह कहीं लिखा नहीं। वातावरण भी पूरा भगवान... भगवान हो गये तीन।

अभी तीन भगवान अवतार में वर्तते हैं। ऐसा जैनप्रकाश में लिखा है। एक भगवान सांईबाबा। वह मुसलमान है न मुसलमान। वह सांईबाबा, वह भगवान। वैसे तो आलोचना की है, वह लिखा है कुछ। और एक भगवान यह रजनीश और एक कोई बाई है नीलकंठमाता दक्षिण की।

**मुमुक्षु :** आप तो अनन्त भगवान कहते हो। सब ही भगवान....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु यह तो भगवान के अवतार हैं, ऐसा (लोग) कहते हैं।

**मुमुक्षु :** रजनीश में भगवान बसता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भगवान बसता है परन्तु धूल भी भगवान नहीं। भान नहीं। गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

अरे! आत्मा स्वतन्त्र एक चीज़ क्या है? और एक में अनन्त-अनन्त ज्ञान आदि सर्वज्ञ ने कही, ऐसी अनन्त शक्ति-गुण अक्रम एकसाथ में हैं। ऐसी वस्तु की बात है कहाँ? समझ में आया? वेदान्त में नहीं, अन्य वैशेषिक, सांख्य आदि किसी जगह नहीं, गीता-बीता में यह बात है ही नहीं। समझ में आया? यह आज आया है, उस जैनप्रकाश में। तीन अवतारी भगवान अभी वर्तते हैं। उसमें एक कोई बाई होगी नीलकंठ माता, ऐसा कुछ लिखा है। बड़ा महोत्सव हुआ है न, वह जन्म हुआ है। अरे, भगवान!

**मुमुक्षु :** संसारी भगवान है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो सब भगवान ही हैं आत्मा तो सभी। स्वभाव की अपेक्षा से तो सब आत्मा भगवान ही हैं। यह तो पर्याय की अपेक्षा से बात चलती है। आहाहा!

बापू! भगवान अर्थात्? वस्तु आत्मा तो त्रिकाल भगवान ही है। परमात्मा ही हैं अनन्त आत्मायें। अनन्त-अनन्त शक्ति के सत्त्व से तो सब परमात्मा ही हैं। निगोद के जीव हों या अभव्य के हों, शक्ति से—उसकी शक्ति, उसका गुण, उसका सत्त्व, भाव, वह तो भगवान (स्वरूप) ही है। भगवान है तो उसमें से भगवान की पर्याय प्रगट होती है, ऐसी बात है। यह तो भान नहीं होता और भगवान नाम धरावे। आहाहा! वह मुसलमान, यह रजनीश तुम्हारा। ऐई सेठ! तुमने उसे बहुत मदद की है। इनके पुत्र ने बहुत मदद की है। यह भी सब बिना भान के थे न वहाँ। वह इनका पुत्र कैसा... डालचन्दजी ने पैसा बहुत दिया था उसे पुस्तक बनाने को। अज्ञान पुस्तक। ऐई सेठ! किया है न पहले डालचन्दजी ने पुस्तक। अब बदल गये हैं सब। प्रेमचन्दजी! बड़े भाई ने पैसा बहुत दिया था उसे। वह रजनीश है न! तुम्हारी बहिन है न... तो पैसा दिया था। बड़ी विपरीत दृष्टि। परन्तु लोगों को बाहर की भाषा और ठाठ देखे, लम्बी दाढ़ी, बड़ा दिखाव, आँखें बड़ी और ऐसा.... बहुत लिखा है आज। जैनप्रकाश में आया है।

स्थानकवासी का आता है न जैनप्रकाश। ऐसा कहे, यह तीन अवतारी अभी कहलाते हैं और इस दुनिया के हिसाब से तो कितनी असंगति लगती है सबमें, ऐसा कहे। असंगति कुछ मेल ? आहाहा!

यह वस्तु सर्वज्ञ ने कही तो है, परन्तु वस्तु ऐसी है। एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में यह आत्मा एक वस्तु अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त जीवत्वशक्ति, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शित्व, सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व, प्रभुत्व, प्रकाशत्व आदि अनन्त... अनन्त... वस्तु एक और शक्तियाँ—गुण स्वभाव अनन्त, ऐसा आत्मा है। ऐसा आत्मा। ऐसे आत्मा की दृष्टि होने से अन्तर स्वभाव पर दृष्टि पड़ने से पर्याय में—अवस्था में जो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-आनन्द की पर्याय प्रगट हो, वह पर्याय क्रम-क्रम से होती है। एक समय में एक पर्याय, दूसरे समय में वह पर्याय नहीं, ऐसा शक्ति का वर्णन (यहाँ आया है।) समझ में आया ?

यह प्रमाण का विषय—निर्मल पर्याय और निर्मल त्रिकाली वस्तु—दो होकर प्रमाण का विषय है। विकार-फिकार यहाँ नहीं। चन्दुभाई! ऐसा आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु, जिसमें एक समय में अनन्त आनन्द, आहाहा! जहाँ आनन्द है, वहाँ शोधता नहीं, जहाँ आनन्द नहीं, वहाँ शोधता है। आहाहा! पैसे में आनन्द, शरीर-माँस-हड्डी में आनन्द। धूल में भी नहीं, दुःख है। आहाहा! पर की ओर का झुकाववाला भाव दुःख है, वह तो उसकी पर्याय में यहाँ गिनने में ही नहीं आया। समझ में आया ?

भगवान आत्मा अपनी अनन्त शक्ति अर्थात् गुणस्वभाव जो शाश्वत् एकसाथ रहनेवाले भाव और उसकी दृष्टि होने से (हुआ), यह धर्म। आहाहा! वस्तु अन्दर अनन्त आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने देखा-देखा और प्रगट किया। समझ में आया ? ऐसा अनन्त आनन्दमय प्रभु का अन्तर स्वीकार हुआ। अतीन्द्रिय आनन्द सम्पन्न है, ऐसा सन्मुख होकर स्वीकार (किया), तो पर्याय में वर्तमान में आनन्द आदि की अवस्था उत्पन्न हो। वह अवस्था और त्रिकाली अवस्थायी पदार्थ—दोनों प्रमाण का विषय है। चन्दुभाई! समझ में आया ? पूर्ण वस्तु ही उसी को कहा है। विकार उसकी चीज़ भी नहीं। पर्याय में है अस्तित्वरूप, परन्तु उसकी वस्तुरूप से—स्वभावरूप से देखो तो उसमें है ही नहीं, ऐसी बात ली है। समझ में आया ?

तो कहते हैं, **स्याद्वाद अधिकार यह....** अनन्त शक्तियाँ गुणरूप हैं, वह पर्यायरूप नहीं। पर्यायरूप है, वह गुणरूप नहीं। ऐसा अधिकार जो कहा। मूल समयसार में जो विस्तार है न ४७ शक्ति आदि। आहाहा! **कह्यौ अलप विसतार....** थोड़ा विस्तार किया, ऐसा कहते हैं। **अमृतचन्द मुनिवर....** दिगम्बर सन्त थे, ९०० वर्ष पहले जंगलवासी—वनवासी। जिनको आत्मा स्वसंवेदन में बहुत प्रगट हुआ था। चारित्रवन्त थे, मुक्ति के समीप—नजदीक थे। आहाहा! ऐसे मुनिवर अमृतचन्द्र मुनिवर कहे, मैं साध्य-साधक द्वार कहता हूँ। वस्तु बतायी। अब, साधक अर्थात् धर्म का साधक जीव और साध्य अर्थात् सिद्ध अवस्था। परमात्म सिद्धदशा कैसी है, वह बात मैं कहूँगा, ऐसा कहते हैं। **अब श्री अमृतचंद मुनिवर साध्यसाधक द्वार का वर्णन करते हैं।** अभी है तो यहीं। '**इत्याद्यनेक-निजशक्तिसुनिर्भरोऽपि।**' नीचे कलश। है तो यह सब स्याद्वाद की बात, परन्तु ऐसा लिखा।

**इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि,**
**यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः।**
**एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं,**
**तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ।।१।।**

देखो! द्रव्य और पर्याय दोनों (मिलकर प्रमाण) गिनने में आया है। यह सेठिया जैसों को उस पर्याय की खबर नहीं हो, जो जैनदर्शन का मूल, एकड़ा का यह शून्य। परन्तु यह दरकार ही नहीं की। मुकुन्दभाई! क्या कहते हैं? ऐई! सुनानेवाला नहीं मिला इसलिए, ऐसा कहते हैं। यह वस्तु की स्थिति की दरकार नहीं की। आहाहा! देखो!

कहते हैं, '**इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरो।**' भगवान आत्मा... आहाहा! अन्तर विराजमान तत्त्व सत्त्व जीव, अनेक शक्ति से भरा **सुनिर्भरो...** भरपूर भरमार भगवान आत्मा विराजता है अन्दर। समझ में आया? '**ज्ञानमात्रमयतां न जहाति।**' ऐसा होने पर भी ज्ञानभाव छोड़ता नहीं। अनन्त शक्तियाँ हैं, तो भी ज्ञानमात्र ही सब आत्मा है। पहले ज्ञानमात्र कहा था न? ज्ञान, वह आत्मा। चैतन्यपुंज, वह आत्मा। आहाहा! तो कहते हैं कि अनन्त शक्ति संख्या से अनन्त गुण होने पर भी ज्ञानमात्र नहीं छोड़ता। ज्ञान में अविनाभावी अनन्त शक्तियाँ साथ में रहती हैं।

**'एवं क्रम अक्रम विवर्ति'** देखो! अक्रम से रहे हुए शक्ति-गुण, क्रम से विवर्तित-प्रवर्तन-परिणमन **'विवर्तचित्रं विचित्रं...'** विविध प्रकार की पर्याय उत्पन्न होती हैं। निर्मल। मलिन की यहाँ बात है नहीं। मलिन पर्याय परद्रव्य में जाती है। समझ में आया? अपने अस्तित्व में है ही नहीं। यहाँ तो यह सिद्ध करना है। आहाहा!

**'तद्द्रव्यपर्ययमयं'** है? द्रव्य अर्थात् वस्तु और **'पर्ययमयं'**—अवस्थासहित, अवस्था—पर्यायसहित। आहाहा! यह करने की चीज़ है, बाकी थोथा-थोथा। लक्ष्मी हो, यह हो, यह हो। ऐई भीखाभाई!

**मुमुक्षु :** क्या करें लक्ष्मी को और.....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु ऐसा होता है? वहाँ अन्दर मजा आता है।

**मुमुक्षु :** किसका मजा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह हीराभाई जैसा लड़का किसी को अभाव न करे और पैसा पैदा हो अच्छे प्रकार से। चूड़ियाँ। घर में मकान हो। महल-मकान थे तुम्हारे? तीस रुपये के वेतन में कब थे घर में भी? आहाहा! अरे! किसका बँगला और किसका स्वजन? एक आया था न कल, नहीं? धन सम्पत्ति आदि इससे अपना कुछ नाता है नहीं। आया था? नाता (सम्बन्ध)। उसमें आया था? उसमें आया न? उसमें था न? देखो न!

**और न धन, सन्तान, कुटुम्ब आदि से उसका नाता है।** ३३३ पृष्ठ। आहाहा! कुछ नाता नहीं। सम्बन्ध क्या? वह चीज़ भिन्न, यह चीज़ भिन्न। क्या सम्बन्ध? किसका लड़का? किसका बाप? किसका पति और किसकी पत्नी? अरे! सुन तो! किसी का किसी के साथ कोई सम्बन्ध भी नहीं। सब भिन्न-भिन्न काम करते हैं। आहाहा! जो उसकी चीज़ नहीं और चीज़ में नहीं। वास्तव में तो उसकी चीज़ में विकार भी नहीं। तो उसमें नहीं, उसे अपना (मानना कि), मेरा है, मेरा है। दुःखी प्राणी है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! और जिसे अपने में अनन्त गुण और निर्मल पर्याय है—ऐसा अन्तर में स्वीकार होकर सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान आदि परिणमन हुआ, वह जी सुखी है। चाहे तो निर्धन हो या चाहे कोई नारकी हो। आहाहा!

धर्म का गज ही अलग प्रकार का है। उसको खम्मा... खम्मा... ५०-५० लाख,

करोड़-दो करोड़, पाँच करोड़ पैसा। निवृत्त न हो पाप के कारण। पूरे दिन धन्धा... धन्धा पाप का। उसे दुनिया सुखी कहती है। सेठ! यह तुमको सुखी कहे। दो भाई बड़े बादशाह हैं, कहें, लो।

**मुमुक्षु :** दुनिया तो पागल है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दुनिया पागल है ? ऐई सेठ! यह कहे, गवर्मेन्ट सब समान कर डालती है। यह ऐसा कहते हैं। यह सब बनिया ऐसे हों, व्यवस्थित होने न दे। आहाहा! यह तो कुछ के नाम में चढ़ाकर कुछ करेंगे, यह तो काला बाजार। समझ में आया ? ऊँट पर जब व्यवस्थित बैठने का न हो न ऊपर ऊँट के ऊपर, तो फिर काठलुं डाले, परन्तु बैठने का साधन कर लिया। बैठने का ऐसा किया। ऊँट होता है न ऊँटिया। तो उसमें लकड़े का... ऐसा किया।

बनिया, जहाँ दुनिया—सरकार दूसरा करे तो यह दूसरा कुछ करेगा अन्दर से। किसी के नाम से, किसी के नाम से यश चढ़ा देगा। लेगा क्या वह ? एक लाख में लाओ ६३ हजार। देते होंगे ? लाख में कम रहे न। कितने ही नाम में चढ़ा देंगे। छोटा लड़का और बड़ा लड़का...

**मुमुक्षु :** खर्च निकालना पड़े न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, ऐसा है। खर्च निकालना पड़े न। बनिया सही न! आहाहा! यहाँ फिर निकाले। फिर जवान लड़का होता है जवान, तो उसका.... ? हमारे नाम के हैं पाँच लाख।

**मुमुक्षु :** हमारे-तुम्हारे.... नाम ऊपर हो ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अलग करो, अलग कर दो। मुझे किसी की दरकार नहीं, लो। ऐसा बना है अभी। बनता है। हुआ है। हमको खबर है न! समझ में आया ? हमारा पैसा है। हमारे नाम का है और हमारा ही है। तुम्हारा उसमें हक नहीं। जाओ, अलग हो जाओ। भाई अलग पड़ जाते हैं सब। आहाहा! भिन्न ही है। किसी भिन्न करे... ?

यहाँ तो कहते हैं कि '**तद्द्रव्यपर्ययमयं चिद् इह अस्ति।**' आहाहा! तेरे अस्तित्व में तो द्रव्य, गुण और निर्मल पर्याय तेरे में है। दूसरा कोई है नहीं। आहाहा! है न! '**चिद्**

**इह अस्ति वस्तु।**' तेरी चीज़ जो है, तुम जो हो, उसमें तो द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्ति और पर्याय अर्थात् निर्मलदशा। '**चिद् इह अस्ति वस्तु।**' वह वस्तु अस्ति है। पर्याय उसकी निर्मल जो है, निर्मल पर्याय, वह उसमें अस्ति है। विकार की अस्ति-फस्ति नहीं। विकार का ज्ञान हुआ, यह ज्ञान की पर्याय की अस्ति तुझमें है। आहाहा! और ज्ञानगुण की अस्ति है त्रिकाल। '**द्रव्यपर्यायमयं**' लिया है यह। द्रव्य है वस्तु, उसमें अनन्त गुण हैं। अनन्त गुण साथ मिलाकर द्रव्य लिया। और उसकी दृष्टि हुई, ऐसा द्रव्य का स्वीकार हुआ... 'लाख बात की बात निश्चय उर आनो' आता है या नहीं? 'छोड़ी जगत द्वंद्व फंद आतम उर आनो।' ऐसा जो भगवान आत्मा द्रव्य और पर्यायमय... देखो! अपनी पर्याय—अवस्था, यह अपनी प्रजा, भगवान त्रिकाली द्रव्य उसका पिता, यह तेरा अस्तित्व है। कुछ समझ में आया? ओहोहो! तेरे अस्तित्व में दो चीज़ है—सामान्य त्रिकाली द्रव्य—गुण का पिण्ड एक चीज़ और उसका निर्मल परिणमन हुआ, बस वह तेरी चीज़ में है।

'**तद्द्रव्यपर्ययमयं अभेद चिद् इह अस्ति।**' ज्ञानस्वरूप है वस्तु, ऐसा। ज्ञान के साथ अविनाभाव अनन्त गुण और पर्याय आ गये। आहाहा! गजब बात की है न! समझ में आया? तेरी चीज में... जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव तेरी पर्याय में नहीं। आहाहा! द्रव्य अर्थात् त्रिकाली शक्ति का पिण्ड, उसमें तो है नहीं, परन्तु तेरी अवस्था—वर्तमान दशा—पर्याय में वह भाव है ही नहीं। आहाहा! उस भाव सम्बन्धी अपना ज्ञान स्व-परप्रकाशक पर्याय, वह अपनी पर्याय में है। आहाहा! ऐसा द्रव्य का स्वीकार होते ही पर्याय में निर्मलता आती है। यह प्रमाण पूरा ज्ञान का अखण्ड विषय है। आहाहा! समझ में आया? उसे आत्मा कहते हैं। रागादि आत्मा नहीं, शरीर आदि (आत्मा) नहीं, वह अपने में है ही नहीं तो पुत्र-पुत्री, मकान, बँगला और यह पैसा धूल में भी तेरा है ही नहीं। तेरे हों तो तुझसे भिन्न रहे नहीं और भिन्न रहे, वह तेरी चीज़ ही नहीं। आहाहा!

**तद्**—वह। '**द्रव्यपर्ययमयं चिद् इह अस्ति।**' ज्ञानरूप वस्तु, यह वस्तु है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञान और ज्ञान की पर्याय निर्मल और ज्ञान के साथ अविनाभावी अनन्त शक्तियाँ, उसकी निर्मल पर्याय—यह अस्ति वस्तु। इतनी तेरी चीज़ है। दृष्टि का विषय

क्या है, वह अभी नहीं बताना है। यहाँ तो तेरी चीज़ पूर्ण पर से भिन्न कैसी है, यह बताना है। समझ में आया? गुण जो हैं ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि, तो गुण का तो परिणमन निर्मल ही होता है। समझ में आया? तो गुण उसने माने, स्वीकार में आये। गुण स्वीकार में तब आते हैं कि गुण के परिणमन में (शुद्ध) पर्याय हुई तो गुण का स्वीकार हुआ। समझ में आया? शुद्धता द्वारा यह शुद्ध है, यह स्वीकार में आया। आहाहा! गजब! जो बात छठवीं (गाथा) में कही है, वह बात ली है। वह बात दूसरे प्रकार से ली है। आहाहा!

वस्तु परमात्मा निजस्वरूप त्रिकाल शुद्ध पवित्र का धाम का स्वीकार जहाँ हुआ, तो द्रव्य पर दृष्टि पड़े तो स्वीकार होता है। क्योंकि दृष्टि ने स्वीकार तब किया, जब है ऐसा (माना)। तब पर्याय में भी पवित्रता की पर्याय उत्पन्न होती है, यह पर्याय में तेरी दशा है। तेरी दशा और तू वहाँ है। द्रव्य में, गुण में और तेरी निर्मल पर्याय में तुम—वस्तु तेरी है। उससे आगे जाकर, राग में और पर में तेरी चीज़ है नहीं। आहाहा! गजब बात! दिगम्बर सन्तों के कथन! अनुभव तो ठीक, परन्तु उनकी कथनी की शैली बहुत संक्षिप्त करके (समझाया है)। समझ में आया? अब, इसका सवैया कहते हैं।

★ ★ ★

## काव्य - २

(सवैया इकतीसा)

**जोई जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरुलघु,**
**अभोगी अमूरतीक परदेसवंत है।**
**उतपतिरूप नासरूप अविचलरूप,**
**रतनत्रयादि गुनभेदसौं अनंत है।।**
**सोई जीव दरब प्रमान सदा एकरूप,**
**ऐसौ सुद्ध निहचै सुभाऊ निरतंत है।**

**स्यादवाद मांहि साध्य पद अधिकार कह्यौ,**
**अब आगै कहिवैकौं साधक सिद्धंत है।।२।।**

**शब्दार्थ:-अस्ति=था, है और रहेगा। प्रमेय=[१]प्रमाण में आनेयोग्य। अगुरुलघु=न भारी न हलका। उत्पति=नवीन पर्याय का प्रगट होना। नास=पूर्व पर्याय का अभाव। अविचल=ध्रौव्य।**

**अर्थ:-यह जीव पदार्थ अस्तित्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, अभोक्तृत्व, अमूर्तिकत्व, प्रदेशत्व सहित है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वा दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि गुणों से अनन्तरूप है। निश्चयनय में उस जीव पदार्थ का स्वाभाविक धर्म सदा सत्य और एकरूप है। उसे स्याद्वाद अधिकार में साध्यस्वरूप कहा, अब आगे उसे साधकरूप कहते हैं।।२।।**

काव्य-२ पर प्रवचन

**जोई जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरुलघु,**
**अभोगी अमूरतीक परदेसवंत है।**
**उतपतिरूप नासरूप अविचलरूप,**

सब कहना है न यहाँ तो? उत्पत्ति और नाशसहित लेना है यहाँ तो। पर्यायसहित लेना है न यहाँ तो?

**रतनत्रयादि गुनभेदसौं अनंत है॥**
**सोई जीव दरब प्रमान सदा एकरूप,**
**ऐसौ सुद्ध निहचै सुभाऊ निरतंत है।**
**स्यादवाद मांहि साध्य पद अधिकार कह्यौ,**
**अब आगै कहिवैकौं साधक सिद्धंत है॥२॥**

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा जीव, यह वस्तु। कैसी है वस्तु? उसमें अस्ति नाम का गुण है। अस्ति 'है'। 'है', सत् है तो अपने से है त्रिकाल। समझ में आया? कोई उसका कर्ता है या ईश्वर (कर्ता) है, ऐसी चीज़ है नहीं। 'है' उसका कर्ता कौन?

---
**१. सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं।**

और न हो, उसे बनाये कौन? समझ में आया? पहले अस्ति गुण लिया। सत् पद प्ररूपणा। **जोई जीव...** अस्तिरूप, प्रमेयरूप। इस जगत में जब से जीव है, तब से उसे प्रमेय करनेवाला ज्ञाताजीव भी (जगत) में है। उसमें प्रमेय होता है आत्मा। पर के ज्ञान में ज्ञेय होता है। आहाहा! दो बातें सिद्ध कीं। दोनों सिद्ध कर दिया। प्रमेयकाल में प्रमेय है, वह आत्मा। ज्ञान का विषय होनेयोग्य उसमें शक्ति है। तो ज्ञानरूप सर्वज्ञ परमात्मा की भी उस समय में अस्ति है। आहाहा! समझ में आया?

जैसे आत्मा अस्ति है त्रिकाल, वैसे प्रमेयगुण उसमें त्रिकाल है। गुण है न? तो प्रमेय का अर्थ—किसी के ज्ञान में प्रमाणरूप होना—ज्ञेयरूप होना। प्रमेयगुण अपने में है तो कोई सर्वज्ञ परमेश्वर है। जब से वस्तु है, तब से सर्वज्ञ—वह ज्ञेय को प्रमेय करनेयोग्य जीव है, उनको ज्ञान में प्रमेय आया है। अमरचन्दभाई! आहाहा! अरे! ऐसी आस्था तो लाये कि (ऐसी) सर्वज्ञता....

**जोई जीव वस्तु अस्ति प्रमेय...** प्र+मेय—विशेषरूप माप में आनेयोग्य। तो माप करनेवाले दूसरे सर्वज्ञ भी उस समय में है। है न? कौन से समय में सर्वज्ञ इस जगत में न हों?

**मुमुक्षु :** सब समय।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब समय? अनन्त काल में? अनन्त काल पहले सर्वज्ञ थे?

**मुमुक्षु :** सर्वज्ञ में अन्तर नहीं होता?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसे अन्तर का कहाँ भान है? अन्तर कैसा? यहाँ प्रमेयत्व नाम का गुण अपने में है तो उसे जाननेयोग्य—प्रमाण करनेयोग्य केवली भी साथ में ही हैं। पहले—बाद में क्या? वह तो सब अनादि ऐसा है। प्रमेयगुण अनादि का है। बराबर है पण्डितजी? आहाहा! तो प्रमेयगुण को जाननेवाला ज्ञानप्रमाणरूप जीव, वह भी अनादि का है। तो सर्वज्ञ भी अनादि के हैं। सर्वज्ञ हैं तो प्रमेय को प्रमेय जानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह तो बात भाई ऐसी है बात। मुम्बई में हलाहल हो गया, इतना लिखा है। यह एक ओर रजनीश जगा, एक ओर यह हुआ, एक ओर वह। लोग कुछ के कुछ चढ़

जायें बेचारे उल्टे रास्ते, ऐसा करके... आहाहा! अरे, भगवान! तेरा एक-एक गुण भगवानस्वरूप है। प्रमेयगुण भगवान को सिद्ध करता है कि तुम भी प्रमेय पूर्ण हो और तेरे प्रमेय को जाननेयोग्य दूसरा आत्मा भी सामने पूर्ण है। समझ में आया? प्रमेयगुण त्रिकाली है। त्रिकाली है या नहीं?

**मुमुक्षु :** गुण तो त्रिकाली है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तो समाप्त हो गया (बात पूरी)। प्रमेय को जाननेवाले— त्रिकाल को जाननेवाले परमात्मा भी (त्रिकाल) हैं। आहाहा!

**अगुरुलघु...** तेरा गुण अगुरुलघु है। कम न हो—बढ़े नहीं, ऐसा द्रव्य-गुण-पर्याय में तेरा स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपनी पर्याय में षट्गुण वृद्धि-हानि हो, फिर भी न्यूनाधिकता नहीं है, ऐसी तेरी चीज़ है। आहाहा! अगुरुलघु, अस्ति, प्रमेयत्व एक साथ तीनों हैं। प्रमेय को जाननेवाले भगवान हैं तो साथ में अगुरुलघु आदि सब गुण को प्रमेय करके जानते हैं।

**अभोगी...** भगवान (आत्मा) तो राग और पर का भोक्ता है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहार, पानी, मकान, पैसे का तो भोक्ता आत्मा है ही नहीं, वह तो परचीज़ है। पर को क्या भोगे? परन्तु जो राग और विकल्प में भोग का अनुभव होता है, यह वस्तु का भोग नहीं। आत्मा तो अभोगी है। आहाहा! कहो, राग का भोक्ता आत्मा नहीं। राग का भोक्ता यह आत्मा नहीं। यह शक्ति के वर्णन के साथ न्याय लिया है। समझ में आया? उसका वर्णन किया। यह थोड़े नाम दूसरे लिये। आहाहा!

कहते हैं कि तेरी चीज़ भगवान आत्मा और उसकी शक्ति—गुण और उसका परिणमन निर्मल। राग का भोक्ता भी आत्मा नहीं, ऐसा अभोक्ता नाम का गुण है। आहाहा! समझ में आया? राग तो विकार है। उसे अनुभवे तो अजीव का अनुभव हुआ, उसे आस्रव का अनुभव हुआ। अजीव का अनुभव जीव को? आहाहा! सूक्ष्म बात है। गजब बात! संक्षिप्त में भी बहुत यह बात! आत्मा इसे कहे और ऐसा है कि वह राग का विकल्प दया-दान-भोग का विकल्प, उसे भोगता नहीं। उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव, जब वस्तु अभोक्ता है तो सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव भी

राग का भोक्ता नहीं। समझ में आया? आहाहा! वस्तु जब राग की भोक्ता नहीं, ऐसी चीज़ है तो ऐसी चीज़ की दृष्टि करनेवाला भी राग को भोगता नहीं। व्यवहार का कर्ता नहीं और व्यवहार का भोक्ता नहीं। आहाहा! किस प्रकार? समझ में आया? भारी सूक्ष्म भाई ऐसा! ऐसा धर्म का रूप सूक्ष्म होगा?

**अभोगी...** भगवान आत्मा का स्वभाव, राग को भोगे ऐसा स्वभाव है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! राग को भोगता हूँ, ऐसा माने, मैं बड़ा भोगी हूँ। धर्मी को तो यहाँ ठीक है, ऐसा नहीं लगता। मुझे राग नहीं, संयोग नहीं। उसे (अधर्मी को) राग है और संयोग का भोक्ता है। धर्मात्मा जो (स्वयं को स्वयं का) भोक्ता मानते हैं, तो वह मुझसे अधिक सामग्रीवाला है, ऐसा नहीं मानते। समझ में आया? आहाहा! जिसे आत्मा का स्वीकार है, आत्मा की श्रद्धा है... जिसे आत्मा की श्रद्धा है, वह श्रद्धावान अपने में व्यवहार राग, पुण्य-पाप का विकल्प का भोक्ता अपने को मानता नहीं और दूसरा कोई विकल्प को भोगता है तो उसे यह आत्मा मानता नहीं।

यह बड़ा राजा है, बड़ी सम्पत्तिवाला है, ऐसा ज्ञानी पर को भी मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? बड़ी पदवी हो, लो। दस-दस हजार वेतन, आठ-आठ हजार वेतन। रामजीभाई तब हजार-हजार रुपये का तब, हों! अब तो बीस गुने होते हैं। तब उस दिन महीने के हजार रुपये लाते थे। अभी बीस हजार कहलाये। इनके पुत्र को बीस हजार कहाँ है? आठ हजार हैं। ऐई! आहाहा! कठिन बात परन्तु, हों! क्या वह ठण्डी... ठण्डी...

**मुमुक्षु :** एयरकण्डीशनर कार गाड़ी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, गाड़ी। यहाँ तो कहते हैं कि उसका भोक्ता आत्मा है नहीं। उसकी पर्याय में उसकी अस्ति है नहीं। पर्याय में उसकी अस्ति मानना, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि अनात्मा है। आहाहा! ऐई भीखाभाई!

एक गाँव में ऐसा हुआ था। सेठ था नगरसेठ। तो उसका छोटा लड़का गुजर गया। बड़ा लड़का था। (उसकी) स्त्री भी थी और लड़का भी था। स्त्री विधवा हुई तो ऐसे प्रसंग में रोये बहुत। अरे! मुझे नहीं... मुझे नहीं। ऐसा कहे। समझ में आया? सेठ के छोटे पुत्र की बहू थी विधवा। कुछ नहीं था पुत्र और उसके ज्येष्ठ को पुत्र-पुत्री थे।

पति-पत्नी थे। छोटी उम्र के थे। और फिर पुत्र हो और पुत्र का विवाह हो। उस समय रोवे। मुझे कुछ नहीं। और इसे। परन्तु इसे कहाँ था? सुन न अब! आहाहा! नगरसेठ। अब... निकले। छोटी उम्र की बहू, फिर ज्येष्ठ के घर में जेठानी को पुत्र हो और पुत्र का विवाह हो, उस समय बहुत रोवे... रोवे। ऐसा कि अरेरे! यह मुझे नहीं, यह मेरे नहीं, पति नहीं और यह.... परन्तु पति था कब तुझे? सुन न! और इसे भी कब था। सुन न! यह राग का भोक्ता मानते हैं, वह आत्मा नहीं, वह तो मूढ़ है। तुझे क्या करना है? समझ में आया? बराबर है सेठ?

छोटा भाई हो, बहुत पैसा बढ़ जाये बहुत पैसा। बड़े भाई को पैसे थोड़े हों तो उसने कहा, अरे! एक ही माता के गर्भ से जन्मे। एक को ऐसा और एक को ऐसा, कौन माने ऐसा। मिथ्यादृष्टि मूढ़ मानता है ऐसा। समझ में आया? क्योंकि आत्मा में तो ऐसी शक्ति-गुण है और गुण का गुण ऐसा है कि विकार को न भोगे, ऐसा गुण का गुण है। समझ में आया? आहाहा! कहो, पण्डितजी! समझ में आया या नहीं? अब एक ओर पुत्र हो आठ-आठ बड़े और एक को पचास वर्ष में पुत्र भी न हो। धर्मी हो, उसे ऐसे अरमान नहीं होते। क्योंकि मेरे आत्मा में राग भी नहीं और उसके आत्मा में भी राग नहीं। तो पुत्र कहाँ से आया? आहाहा! गजब!

**मुमुक्षु :** ऐसा भेदज्ञान होता नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करता नहीं। उसे दरकार (नहीं)। सुना नहीं न भाई! पहले सुना नहीं। एक तो सोने में जाये। थोड़ा समय जाये वहाँ वे कुगुरु लूट लें इसका काल। लूटनेयोग्य हो। ऐसा करो, वैसा करो, यह करो। परन्तु क्या करे, बापू?

तू तो ज्ञानस्वरूपी है प्रभु! यहाँ ज्ञानमय कहा '**चिद्इह अस्ति वस्तु।**' ज्ञानमय वस्तु। उसके साथ अनन्त गुण भले हों। पूरा आत्मा ज्ञानमय है। क्योंकि ज्ञान प्रत्येक गुण को जानता है। तो एक ज्ञान में सब गुण का ज्ञान आ गया। सब गुण का ज्ञान, ऐसी पूरी चीज़ ही एक आत्मा हो गयी। और जो ज्ञान का परिणमन निर्मल है, वही उसकी पर्याय है। उसके अस्तित्व में इतना ही है। राग का परिणमन भोगना या राग का करना, वह उसके गुण में नहीं तो पर्याय में भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब बात परन्तु, हों! आचार्य की कथन की पद्धति देखो न कितनी है यह! यह माणिकलाल बहुत बढ़

जाये और क्या कुछ... नहीं, ऐसा कहते हैं। माणिक कहाँ नहीं अभी?

**मुमुक्षु :** मुम्बई गये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुम्बई, ठीक। कहो, समझ में आया? इनको वह लड़का अमेरिका में गया है। दो व्यक्ति। तो उसको ऐसा हो, मेरा लड़का अमेरिका जाये, ऐसा न हुआ, हों! ऐई!

**मुमुक्षु :** अमेरिका में क्या है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह अमेरिका में जाकर आये हमारे, देखो भाई रसिकभाई के पुत्र। पहली यात्रा में साथ में थे। क्या (संवत्) २०१३ वर्ष न? २०१३ वर्ष। चौदह वर्ष हुए। तब सोलह वर्ष का था। सब ऐसे साथ के साथ घूमते हों वहाँ यात्रा में फिर अमेरिका गये। वहाँ का वह मजा मान आवे, उसे अब यहाँ ठीक नहीं पड़े, ऐसा कहे। ऐई! परन्तु इनका लड़का जाकर आया अभी। पाँच वर्ष रह आया अमेरिका। अब कहे, अब अपने जाना नहीं, वहाँ अब। अपने यहाँ....

**मुमुक्षु :** ठीक है, इसलिए वहाँ जाना नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खबर नहीं। अमेरिका में ठीक है या आत्मा में ठीक है? आत्मा में ठीक है, ऐसा गुण है। समझ में आया? जहाँ-जहाँ आत्मा है, वहाँ-वहाँ उसका गुण है और वहाँ-वहाँ उसकी परिणति है। उसकी परिणति में ठीक है, सुख है, ऐसा कहते हैं। ठीक अर्थात् सुख। समझ में आया? कहीं परक्षेत्र में से और पर में से सुख है? आहाहा!

उसने लिखा था। सांईंबाबा की लाईन में। सांईंबाबा ऐसा... बहुत इज्जत बढ़ गयी है उसकी। बाहर में ऐसा कुछ जादू होगा। उसका मकान किया बनाया है न। मंजिल सोने का घर, वहाँ तक मोटर जाये, ऐसा मकान बनाया है। उसमें लिखा है यह जैनप्रकाश में। आज आया था न। है किसमें?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, ऐसा। होगा कोई।

**मुमुक्षु :** वहाँ खड़ी रहे, जहाँ उसकी कुर्सी है और वह...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो मोटर जहाँ सोने का मकान हो न दूसरी या तीसरी मंजिल, वहाँ तक जाये, मंजिल पर, उसे ऐसा चलना भी न पड़े। मंजिल। वह तो चल सकता नहीं था। दरबार चल नहीं सकता था, इसलिए उसमें बैठाकर रखते थे।

**मुमुक्षु :** यह तो उनके पुत्र...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा होगा कुछ। परन्तु ऐसा शौक मानो, आहाहा! कुछ नीचे से ऊपर चढ़ने की मेहनत ही नहीं न! कितने सुखी? धूल भी नहीं, सुन न...! तू उसे सुखी माने तो तू आत्मा को मानता नहीं। जाधवजीभाई! बराबर होगा यह? कैसे? कि जो राग को अनुभव करनेवाले और भोगनेवाले हैं, भगवान उसे आत्मा नहीं कहते। अब तू उसे अच्छा कहे तो तू भी आत्मा नहीं और वह भी नहीं।

**मुमुक्षु :** अनुमोदन में खोटा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनुमोदन में आया न खोटा—झूठा। ऐई सेठ! अभोक्ता में ऐसी चीज़ पड़ी है।

भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वभावी प्रभु का गुण अभोक्ता है। गुण अभोक्ता है तो गुण का गुण—पर्याय, गुण का कार्य—पर्याय, तो पर्याय अभोक्ता है। राग और विकार की और परचीज़ की अभोक्ता चीज़ है। उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! ऐई! देखो, वह तुम्हारेवाले के वहाँ गये थे न, बहुत सुखी। बहुत सुखी, लो। न्यालचन्द। इनके पुत्र के वहाँ गये थे। यह धोती पहनकर नहीं जाया जाता वहाँ। पैन्ट पहनी थी वहाँ।

**मुमुक्षु :** परन्तु न्याल कुछ इनकार न करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इनकार नहीं करे, परन्तु इन्हें ऐसा कि अच्छा लगाऊँ सबको व्यवस्थित, पैन्ट पहनकर। उस देश में पैन्ट कब था? वह दो करोड़ रुपये का आसामी (इनका पुत्र) दो करोड़, बँगला। राग... राग... उसके घर में राजवैभव है। हों, लड़के के वहाँ। बड़ा राजवैभव। राजा को हो ऐसा वैभव। उसे पूछा। परन्तु हमारे तत्प्रमाण वहाँ रहना पड़े। उस रैयत का स्वभाव ही ऐसा मानो। धूल भी नहीं अब। आहाहा! गजब बात है।

**मुमुक्षु :** उसे वैभव नहीं कहा जाता उसकी आवश्यकता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बस, बस, ऐसा। वह रैयत की, वहाँ की रैयत की वह आवश्यकता की चीज़ इतनी हो, वह तो साधारण बात हुई। उसे इतना जरा सा हो। क्योंकि एक लड़की थी। लड़का एक भी है नहीं। दो करोड़ रुपये। दो सौ लाख। दु:खी... दु:खी... दु:खी... उसे कोई सुखी माने, वह आत्मा को मानता नहीं, मूल तो ऐसा कहा।

**मुमुक्षु :** मूल सिद्धान्त यह।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सिद्धान्त हो गया उसमें। ऐ चिमनभाई! तुम्हारे लागू पड़ता है या नहीं? लड़का अमेरिका में जा आया है, लड़के का लड़का। आहाहा!

भाई! जिसे आत्मा कहते हैं, भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने जिसे आत्मा कहा, ऐसे आत्मा का जिसे अन्दर श्रद्धा और स्वीकार हो, उसे तो उसकी पर्याय में (आनन्द आवे)। उस आनन्द का भोक्ता वह जीव है, राग का भोक्ता नहीं। आहाहा! उसका जीवन सुखी है। समझ में आया? और राग के भोगनेवाले जीव दु:खी... दु:खी... दु:ख में सिंक रहे हैं। वह आत्मा नहीं, उसे आत्मा नहीं कहते परमात्मा। आहाहा!

**मुमुक्षु :** दु:ख का कारण?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दु:ख का कारण... वह स्वयं ही दु:ख है। आकुलता में सुलग रहे हैं। आहाहा!

ऐसा उसका गुण है? ऐसा गुण हो तो कभी गुण की निर्मल पर्याय प्रगट हो ही नहीं। समझ में आता है या नहीं भाई? अब लॉजिक से तो यह चलता है, न्याय से। वहाँ अमेरिका में कहाँ था वहाँ ऐसा? वहाँ तो गप्प-गप्प होती है सब। आहाहा! भगवान! एकबार बात तो सुन, कहते हैं, तेरी महत्ता की (बात तो सुन)। आहाहा! कहते हैं कि राग से अधिक होकर आत्मा में रहा हुआ है—भिन्न होकर रहा हुआ, उसे आत्मा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! 'अधिक' आता है न! '**णाणसहावं**' अधिक का अर्थ भिन्न होता है। ३१वीं गाथा (समयसार)। '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं।**' अधिक अर्थात् भिन्न। अधिक का अर्थ ही, यह नहीं, यह नहीं। नीचे रह गया, ऐसे रह गया। आहाहा! राग आदि विकल्प जो है, वह नीचे रह गये बाह्य, उनसे भिन्न पड़ा हुआ आत्मा, उसे

आत्मा कहते हैं। आहाहा! ऐसी शैली! और वह उसमें कितना समाहित किया!

मूलचन्दभाई! लड़के लिखते हैं कि बापू उतावल करना नहीं आने की। परन्तु यह ... को सुख न आवे यहाँ। लिखा है न। वह ऐसी ही बात है। वह कोई कहता था। कोई कहता था तुम्हारी बात। तुम्हारी यहाँ रिपोर्ट बहुत आती है। कौन कहता था यहाँ? लड़के का यह लेखन आया है। कौन कहता था नहीं यहाँ अपने को?

**मुमुक्षु :** वेदराज।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वेद... वेद। हाँ, वेद कहते थे। वह सच्ची बात। यह कहे, मैं मूलचन्दभाई को मिला। उसने कहा लो अन्दर। लड़के का लेखन आया है। बापू उतावल करना नहीं यहाँ आने की। ऐई!

**मुमुक्षु :** बाधा पहुँचाते होंगे उनको?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाधा कौन पहुँचावे? आत्मा में दूसरे को बाधा पहुँचाये, ऐसी शक्ति नहीं। आत्मा पर को बाधा पहुँचाये, ऐसी आत्मा में शक्ति नहीं। आत्मा में ऐसी पर्याय नहीं कि दूसरे को दुःख उपजावे। आहाहा! चन्दुभाई! पूरा संसार उड़ गया, पूरा।

यहाँ तो कहते हैं, जिसे भगवान आत्मा वस्तु अनन्त गुण के पिण्ड का स्वीकार हुआ, वहाँ उसे निर्मल परिणमन रहा। भले चौथे गुणस्थान में हो। क्या सेठ, है या नहीं? ऐ जुगराजजी! देखो यह बात! अब यह सेठियों के आगे... परन्तु न्याय से समझना पड़ेगा या नहीं उसको? न्याय से नहीं समझता? आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा शुद्ध है। आत्मा का स्वीकार, आहाहा! तीन लोक का नाथ, उसका स्वीकार, उसे अभोगगुण का स्वीकार है, उसे राग का भोग आत्मा में कहाँ से हो? आहाहा! गजब बात है! व्यवहाररत्नत्रय को करे और व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय हो, ऐसा उसमें गुण नहीं, ऐसा कहते हैं। गजब! बराबर है? आहाहा!

कहते हैं, अभोक्ता। ओहोहो! भगवान! तेरी चीज़ में ऐसी शक्ति है, गुण है कि यह गुण का गुण, राग को भोगे—ऐसा गुण का गुण नहीं। गुण का गुण तो आनन्द को भोगे, ऐसा गुण का गुण है। ऐसा गुण का कार्य... आहाहा! यह गुण का कार्य कहा जाता है। आहाहा! राग का करना, भोगना—यह गुण का कार्य? ज्ञान, वह आत्मा। ऐसे

व्यवहार से नीचे उतारा। प्रभु! तुझे खबर नहीं भाई! आत्मा में ऐसा कोई गुण नहीं कि राग से आत्मा में लाभ हो और राग का भोक्ता हो। यह आत्मा ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु अनन्त-अनन्त गुणसम्पन्न प्रभु... उस गुणसम्पन्न प्रभु का जहाँ स्वीकार हुआ, सम्यग्दर्शन में उसका अनुभव हुआ और दृष्टि ने पूरे द्रव्य में पसार किया तो परिणति निर्मल हुई। निर्मल पर्याय राग को भोगे, ऐसी कोई पर्याय में शक्ति नहीं। गुण में नहीं तो पर्याय में नहीं। क्योंकि वह अभोक्ता नाम का गुण द्रव्य में—गुण में तो व्यापक था, यह पर्याय में व्यापक हो गया। आहाहा! समझ में आया? यह तो अलग प्रकार की कथा है! आहाहा! देखो, यह आत्मा सर्वज्ञ के अतिरिक्त, तीन काल-तीन लोक में आत्मा आत्मा की बातें करे, परन्तु हो सकता नहीं कहीं। ऐसी बात है। राग की पर्याय को भोगे नहीं, तब इसका अर्थ ही कि निर्मल पर्याय को ही भोगता है। यह निषेध से बात ली है। उसके अनुभव में आनन्द का वेदन हो, उसे आत्मा कहते हैं। कहो, समझ में आया या नहीं? कहो, यह न्याय से समझ में आता है या नहीं? ऐ जवानो! ऐ जवाहरलालजी! आहाहा!

कहते हैं, यह स्याद्वाद। द्रव्य है, उसमें गुण पूरे हैं। उसमें एक गुण में पूरा द्रव्य नहीं। द्रव्य में एक गुण नहीं। क्योंकि द्रव्य में तो अनन्त गुण हैं। और एक गुण में एक समय की पर्याय नहीं और एक समय की पर्याय में गुण नहीं और एक समय की पर्याय में विकार नहीं। आहाहा! गजब बात! यह अनेकान्त। समझ में आया? आत्मा... आत्मा कहे, परन्तु आत्मा कैसा है? यह कहा था न, आत्मा कैसा है? प्रवचनसार। आहाहा! आत्मा ऐसा है। वहाँ तो अभी अशुद्धता ली है। यहाँ तो पूरी दृष्टि की प्रधानता में द्रव्य की बात में अशुद्धता नहीं। प्रवचनसार में तो अशुद्धता ली है (क्योंकि) वह ज्ञानप्रधान कथन है न! वह जानने की बात ली है। दृष्टि प्रधान के कथन में अकेला द्रव्य ही जहाँ तैरता है, आहाहा! उसकी तो पर्याय भी (वीतरागी)। वीतरागी पर्याय का भोक्ता आत्मा है, उसे आत्मा कहते हैं। राग को भोगे, वह आत्मा नहीं, वह अनात्मा मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १६२, भाद्र कृष्ण ११, बुधवार, दिनांक १५-०९-१९७१**
**साध्य-साधक द्वार, पद २ से ४**

साध्य-साधक द्वार, समयसार नाटक। सवैया इकतीसा चलता है न। जीव... जीव... यह आत्मा है, वह कैसा है, ऐसा चलता है। यह आत्मा वस्तु है, उसमें क्या-क्या गुण है और उसकी कौन-कौनसी पर्याय है, उसका वर्णन है। **जोई जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरुलघु, अभोगी अमूरतीक परदेसवंत है।** क्या कहते हैं? जिसे—आत्मा को धर्म करना है। तो आत्मा है कौन? कितना है कि वह धर्म करे? किसमें करे? समझ में आया? आत्मा को धर्म करना है न? कुछ ठीक करना है न ठीक? ठीक कहो, हित कहो, धर्म कहो, श्रेय कहो, सुख के पंथ में जाना, ऐसा कहो। वह पंथ तो पर्याय है, परन्तु वस्तु कैसी है वह? समझ में आया? तो कहते हैं कि वह वस्तु अस्ति है। सत्तावाली स्वयं से अस्ति है। पर से अस्ति नहीं। उसका कोई ईश्वर कर्ता नहीं। स्वतन्त्र वह अस्ति, पदार्थ में ऐसा उसका गुण है। प्रमेय है। उसमें, किसी भी ज्ञान में विषय हो—ज्ञात हो, ऐसा उसमें स्वभाव है। किसी भी ज्ञानी के ज्ञान में स्वयं प्रमेय हो, अपने ज्ञान में भी प्रमेय हो, ऐसा उसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपना ज्ञान भी प्रमेय करे अपने को जाने, ऐसा उसमें गुण है। समझ में आया?

**प्रमेय अगुरुलघु...** उसमें एक स्वभाव है अनादि-अनन्त, अगुरुलघुगुण जिसकी वर्तमान दशा हीन-अधिक षट्गुणीरूप से परिणमे, तथापि वस्तु वस्तुरूप से रहे, उसकी पर्याय पर में न जाये, गुण बदलकर दूसरा गुण न हो, द्रव्य बदलकर दूसरा द्रव्य न हो—ऐसा उसका स्वभाव है। **अभोगी**—राग और विकार को न भोगे, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? वस्तु लेनी है न यहाँ? तत्त्व... तत्त्व... द्रव्यस्वभाव। आहाहा! जो चीज़ है, उसके सामने कभी देखा नहीं। पर के ऊपर नजर लगाकर राग और द्वेष, पुण्य और पाप विकल्प करे भ्रमणा से, भ्रमे चार गति में। भगवान (आत्मा) में एक अभोगी नाम की शक्ति है—गुण है कि जो संसार को भोगता नहीं, संसार को करता नहीं, ऐसा उसमें गुण है। समझ में आया?

**अमूरतीक** है। उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं। इन्द्रियों से ज्ञात हो, ऐसा वह

नहीं। यह (इन्द्रियाँ) तो मिट्टी-जड़ है। अमूर्तिक है प्रदेश बाद में लेंगे। असंख्य प्रदेशी रंग, गन्ध, रस, स्पर्शरहित वह चीज़ है। अमूर्तिक अर्थात् अरूपी है, ऐसा। अरूपी, अरूपी से ज्ञात हो। अपना स्वभाव अरूपी है तो अरूपी स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? उसमें पुण्य-पाप के विकल्प भी नहीं, ऐसी चीज़ यहाँ वर्णन की है। वस्तु का वर्णन है न। **परदेसवंत** है। देखो, एक यह। यह प्रदेश असंख्यप्रदेशी आत्मा है। पूरे शरीर प्रमाण व्यापक है तो जिसका एक भाग यहाँ है, वह यहाँ नहीं। यहाँ है, वह यहाँ नहीं। ऐसे असंख्यप्रदेशी पूरे शरीर में व्यापक भिन्न तत्त्व है। यह शरीर अनन्त परमाणुओं का पिण्ड है। परन्तु वे तो द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं और इकट्ठे होकर गिने जायें अनन्त। आत्मा असंख्यप्रदेशी में अलग-अलग प्रदेश थे और इकट्ठे हुए हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

सोने की चैन होती है न, साँकली। यह क्या कहलाती है तुम्हारे चैन या क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** गुजराती में नहीं समझते।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गुजराती चलेगा। अभी गुजराती चलेगा। वे चले गये न सब। सब चूड़ीवाले गये, एक ही है। एक ही है। खबर है। अधिक गये, इसलिए गुजराती हो गया। भैया! गुजराती का अभ्यास करना पड़ेगा यहाँ तुम्हारे।

**मुमुक्षु :** अब नयी नयी....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नये-नये को यहाँ अधिक आना। बारम्बार आना। यहाँ सदा हिन्दी हो तो सदा हिन्दी ही चले, फिर कभी गुजराती चले नहीं। हिन्दी तो होते ही हैं वे, कोई दो-चार-पाँच होते ही हैं सदा। अब हिन्दी जब चलता हो, तब ध्यान रखना। ऐसा है। यह तो सब धन्धा-बन्धा हो जाये, फिर निवृत्ति हो, इसलिए पुत्र-स्त्री लेकर आवे फिर... आहाहा!

**परदेसवंत** है। इसमें 'है' शब्द के बदले 'छे'। उसमें क्या है? असंख्यप्रदेशी वस्तु है। प्रदेश अर्थात् अंश है। जैसे सोने की चैन होती है न? चैन कहते हैं, क्या कहते हैं? वह जैसे पूरी चैन, वैसे आत्मा। और उसमें वह मकोड़ा... मकोड़ा कहते हैं न, क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** कड़ी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह कड़ी, यह प्रदेश और सोना, वह उसका गुण। सोना पीला, चिकना, वह उसका गुण। इसी प्रकार आत्मा असंख्यप्रदेशी पूरी चैन है पूरी। एक-एक कड़ी-मकोड़ा वह प्रदेश है और प्रदेश में ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि गुण हैं। तम्बाकू की बहुत कीमत करे। तम्बाकू ऐसी होती है और फलाना होता है और ढींकणा होता है। और पीने के समय अच्छी में अच्छी तम्बाकू पीवे। घर में अब साधारण पीवे नहीं बीड़ियों जैसी। पीकर आये तब खबर पड़े गन्ध मारे बीड़ी कितनी। समझ में आया? यह तम्बाकू भी अलग प्रकार की गन्ध मारे यहाँ। यहाँ तो तुरन्त गन्ध मारे, दिखती है। यह वहाँ कीमत करे, परन्तु कीमत तो उसमें अच्छी है और यह है और वह है। परन्तु तू कितना है? कहाँ है? और कितना चौड़ा है? पहोळा समझते हैं न?

**मुमुक्षु :** चौड़ा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चौड़ा। **परदेसवंत** है। भाषा देखो न! कितना है! वह प्रदेश एक ही प्रदेश नहीं। परमाणु है, यह पॉईन्ट, वह तो एकप्रदेशी है, यह अन्तिम टुकड़ा। इसी प्रकार आत्मा एकप्रदेशी नहीं, असंख्यप्रदेशी पिण्ड है। चैतन्यघन है वह। समझ में आया?

**उतपतिरूप** है। समय-समय में नयी अवस्था उत्पन्न होती है। यहाँ सब निर्मल उत्पन्न होती है, यह लेना है, हों! मलिनता नहीं लेना यहाँ। समझ में आया? भगवान आत्मा असंख्यप्रदेशी अनन्त गुण को पुंज ध्रुव, उसका परिणमन भी निर्मल ही है। उसे आत्मा कहते हैं, ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा! ऐसा उत्पत्ति—पर्याय में नयी-नयी दशा उत्पन्न हो, पुरानी अवस्था व्यय हो, **अविचलरूप**—गुण की शक्तिरूप से ध्रुव रहे। आहाहा! एक समय में उत्पाद-व्यय और ध्रुव ऐसी-ऐसी शक्तिवाला आत्मा है। उसके गुण की उत्पत्ति के लिये दूसरी चीज़ की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। वह स्वयं ही उत्पाद स्वभाववाला है। आहाहा! समझ में आया?

उत्पाद अर्थात् क्या होगा? यह उत्पात् करे लोग बहुत आकुलता, ऐसा होगा? यह उत्पातिया व्यक्ति है। हमारे काठियावाड़ में बहुत कहा जाता है।

**मुमुक्षु :** ऐसा नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा नहीं। उत्पातिया समझे? बहुत ऐसा...

**मुमुक्षु :** झगड़ा करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उत्पतिया अर्थात् झगड़ा करे, ऐसा नहीं। वह हमारी काठियावाड़ी भाषा प्रमाण भाषा अलग है। उत्पातिया अर्थात् कि ऐसा और ऐसा आकुलता कि ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, ऐसा करूँ किया ही करता है।

**मुमुक्षु :** शान्त न बैठे। तीव्र आकुलतावाला।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तीव्र आकुलतावाला, उसे उत्पातिया कहते हैं हमारे काठियावाड़ में। ऐसा यह उत्पातिया नहीं। यह तो गुण जो अनन्त है, उसकी समय-समय में क्रम-क्रम से पर्याय उत्पन्न हो, ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा! और क्रम-क्रम से वह उत्पन्न हुई अवस्था दूसरे क्षण में व्यय पावे। समझ में आया? और उत्पन्न काल में पूर्व की पर्याय का व्यय हो, और ध्रुव गुणरूप से अविचलरूप से अविचल ऐसा का ऐसा रहे।

**रतनत्रयादि गुनभेदसौं अनंत है....** ऐसे अन्तर में ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि गुण और उनकी वर्तमान पर्याय—ऐसे अनन्त गुण और अनन्त पर्यायवाला वह तत्त्व है। समझ में आया? **रतनत्रयादि गुनभेदसौं अनंत है....** गुण भी अनन्त और उस गुण की पर्याय भी अनन्त है। आहाहा! क्योंकि उत्पत्ति-विनाश डाला है न अन्दर? पर्याय तो डाली है। यह क्रम-अक्रमवाला पूरा तत्त्व, उसे लेना है, कहना है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वह वर्तमान पर्याय और गुण में भी श्रद्धा, ज्ञान और वीतरागता, वह उसका त्रिकाली गुण। ऐसे गुणभेद से अनन्त हैं वे। गुण अनन्त हैं, ऐसा कहते है।

**सोई जीव दरब प्रमान सदा एकरूप,....** लो। यह जीव द्रव्य से देखें तो सदा एकरूप है। वह गुणभेद उत्पाद आदि से अनन्तरूप कहा। **ऐसौ सुद्ध निहचै सुभाउ निरतंत है....** आहाहा! है न? **निरतंत...** सत्य ऐसा कहा है नहीं अर्थ में? सत्य कहा। निरतंत—सत्य। **ऐसौ जीव दरब प्रमान सदा एकरूप, ऐसौ सुद्ध निहचै सुभाउ निरतंत...** सत्य है। आहाहा! **स्यादवाद मांहि साध्य पद अधिकार कह्यौ,...** अपेक्षा से कहने के

कथन में आत्मा के अनन्त गुणरूप वस्तु, वह अधिकार कहा। **अब आगै कहिवैकौं साधक सिद्धंत है।** उसे साध्य कह दिया हो, ऐसा कहते हैं। परन्तु वह साध्य तो वस्तु है। अब यह कहते हैं अवस्था का कहते हैं। **अब आगै कहिवैकौं साधक सिद्धंत है।** साधकपना कहेंगे, ऐसा। देखो अब तीसरा (पद)।

**जीव की साध्य-साधक अवस्थाओं का वर्णन।** अब आया। यह तो अब अवस्था है, यह दोनों। वह तो गुण, द्रव्य और पर्याय की व्याख्या होकर वस्तु की बात की। अब अकेली अवस्था की बात चलती है। क्या कहा? भगवान आत्मा यह रजकण नहीं। अन्दर राग नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं। भगवान अनादि-अनन्त द्रव्य, वह द्रव्यदृष्टि हुई, उसकी परिणति निर्मल ही होती है। ऐसी अनन्त गुण की शक्तिवाला तत्त्व, उसे जहाँ अन्तर्दृष्टि से पकड़ा अर्थात् उसकी परिणति अर्थात् अवस्था—जीव की अवस्था स्वाभाविक शुद्ध होती है। ऐसे जीव को यहाँ जीव लिया है। आहाहा! मेरे घर को जानने के लिये सिरपच्ची। वे कहते हैं न, 'घर के लड़के चक्की चाटे, पड़ोसी को आटा।' यह सुना है? सुनी नहीं कहावत? क्या है?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भले दूसरे ढंग, परन्तु भाषा नहीं है? घर के लड़के चक्की चाटें अर्थात् घर के लड़के हों, आटा-बाटा घर में आटा नहीं, खाली चक्की चाटे। पड़ोसी को आटा अर्थात् साथ में पड़ोसी रहे, उसे आटा दे आटा। उसे आटा दे और घर में नहीं हो, ऐसा कहते हैं। कोई कहावत होगी तुम्हारे में भी।

**मुमुक्षु :** घर का छोरा भूखा मरे और पड़ोसी को जलेबी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह। यह तो होता है। सर्वत्र चूल्हे में राख होती है, इसी प्रकार कहावत सबमें समान ही होती है। घर के छोकरा भूखे रहे और पड़ोसी को जलेबी, ऐसा कहते हैं। वहाँ ऐसा यह कहा। यह आता है? इसकी खबर नहीं होगी। कहाँ धन्धे के कारण फुरसत। क्या है? तुम्हारे हिन्दुस्तान में सीखा कि अपने घर का लड़का भूखा रहे और पड़ोसी को जलेबी मिले—दे। इसी प्रकार यहाँ काठियावाड़ में (कहावत है) घर के लड़के चक्की चाटे अर्थात् कि घंटी-चक्की। चक्की चाटे, आटा-बाटा न हो। चक्की चाटे और पड़ोसी को आटा दे।

**मुमुक्षु :** पड़ोसी के प्रति प्रेम हो, लड़के के प्रति न हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा यहाँ यह कहते हैं। उसे आत्मा के प्रति प्रेम नहीं और विकार के प्रति प्रेम है। इसलिए आत्मा कैसा है, उसे जानता नहीं। आहाहा!

अरे! यह नरक के दु:ख, यह पराधीनता के आकुलता के दु:ख इसने भोगे हैं, उसकी इसे खबर नहीं। भूल गया ....। माता के गर्भ में सवा नौ महीने तक उल्टे सिर लटके, आहाहा! और जिसका शरीर विष्टा और चारों ओर बलगम उस कफ से लिप्त शरीर। ऐसे अवतार। बाहर जहाँ आया, वहाँ फिर भूल गया यह। भाई! तू ऐसा नहीं। शरीर जैसा तेरा नहीं न स्वरूप। राग और द्वेष के विकारभाव, भगवान! वह तेरा स्वरूप नहीं। वह तो कुरूप है। कुरूप, वह कहीं तेरी चीज़ कहलाये? आहाहा! भाई! तेरे स्वरूप में तो अतीन्द्रिय आनन्द, प्रदेश-प्रदेश में अनन्त आनन्द पड़ा है। असंख्य प्रदेश में आनन्द बिछा हुआ है ऐसे। समझ में आया?

विस्तार। असंख्य प्रदेश में एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण हैं। ऐसे एक गुण की असंख्यप्रदेशी चौड़ाई है। आहाहा! एक गुण की एक प्रदेशी चौड़ाई नहीं। प्रदेश की एक प्रदेश जितनी चौड़ाई है, परन्तु अन्दर जो गुण है, उसकी एक प्रदेश जितनी चौड़ाई नहीं। असंख्य प्रदेश जितनी चौड़ाई है। आहाहा! और उस चौड़ाई में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त स्वच्छता, वीतरागता पड़ी है। उसका परिणमन होना, वह पर्याय, वह तेरी पर्याय है। रागादि तेरी पर्याय नहीं। शरीर, वाणी तो कहीं रहे और स्त्री-पुत्र तो कहीं रह गये, अब वे तो उनके घर में। तेरे थे कब? .... लगा परन्तु बच्चे-बच्चे से। आहाहा! समझ में आया? थोड़े वर्ष जहाँ इसके घर में आया, लगा कि यह मेरे हैं। अब मुझे इनके लिये व्यवस्थित करना। पाँच लड़के हों, छह हों, उनके लिए सबको व्यवस्थित दुकान-बुकान में हो। आहाहा! अरे! कहाँ का कहाँ तू कहाँ रुका? किसका करने? सेठ! बराबर है?

कहते हैं कि भाई! तू किसी का नहीं, वे तेरे नहीं। परन्तु तू है, वह तो निर्मल पर्याय और निर्मल गुण का तू है। तू अवगुण का और कर्म का और शरीर का और स्त्री-पुत्र का किसी का तू नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी चीज़ तेरी चीज़ है। उस

चीज़ के ऊपर तूने दृष्टि अनन्त काल में नहीं दी। इससे विकार और यह मेरे... मेरे... मेरे करके, आहाहा! यह कहते हैं, साध्य वस्तु द्रव्य कहा। वस्तु वास्तविक तत्त्व। अब साध्य-साधकदशा का वर्णन है, अवस्था। साध्य मुक्ति। वह मुक्ति भी अवस्था है। मोक्ष भी एक अवस्था है। मोक्ष, वह कहीं आत्मा का गुण नहीं। समझ में आया? आहाहा! जैसे यह बाल, युवक और वृद्ध, यह देह की अवस्था है। समझ में आया? यह कहीं परमाणु नहीं पूरी चीज़। वह तो अवस्था है इसकी। बालपना, युवकपना, वृद्धपना। इसी प्रकार मुक्ति-सिद्धदशा आत्मा की एक अवस्था है। वह त्रिकाली द्रव्य-गुण नहीं। अरे, अरे! केवलज्ञान इसका पर्यायधर्म है, ऐसा कहते हैं। इसका पर्यायस्वभाव है। वह जीव का साध्य है। वह जीव को प्रगट करनेयोग्य साध्य है। आहाहा! समझ में आया? **जीव की साध्य-साधक अवस्था का वर्णन।**

★ ★ ★

## काव्य - ३

### जीव की साध्य-साधक अवस्थाओं का वर्णन

(दोहा)

**साध्य सुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महंत।**
**साधक अविरत आदि बुध, छीन मोह परजंत।।३।।**

**शब्दार्थः-सुद्ध केवल दशा=तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती अरहन्त। सिद्ध महंत=जीव की अष्टकर्म रहित शुद्ध अवस्था। अविरत बुध=चौथे गुणस्थानवर्ती अव्रतसम्यग्दृष्टि। छीन मोह (क्षीणमोह)=बारहवें गुणस्थानवर्ती सर्वथा निर्मोही।**

**अर्थः-केवलज्ञानी अरहन्त वा सिद्ध परमात्मपद साध्य है और अव्रत सम्यग्दृष्टि अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान से लगाकर क्षीणमोह अर्थात् बारहवें गुणस्थानपर्यन्त नव गुणस्थानों में से किसी भी गुणस्थान का धारक ज्ञानी जीव साधक है।।३।।**

## काव्य-३ पर प्रवचन

**साध्य सुद्ध केवल दशा....** तीसरा पद है। यह तो हिन्दी में है अन्दर। उसके अर्थ भी कहाँ पढ़े हैं किसी दिन। क्या कहा? देखो! है तीसरा। समयसार नाटक तो बहुत दिन पहले ले गये हैं यहाँ से। नया छपाओ, नया छपाओ, ऐसा कहते आये थे यह दोनों व्यक्ति। कहा, हम कुछ जानते नहीं। हिन्दी बहुत थोड़े होंगे। अब तुम हो इतने तो पढ़ो। परन्तु यह सब उदार बहुत न, इसलिए सबको पढ़ने को मिले तो ठीक, ऐसा। यह घर में एक है, उसे कब पढ़ा है? रखा है उसे पढ़ा है घर में?

**साध्य सुद्ध केवल दशा....** आहाहा! आत्मा को साधन से सिद्ध करनेयोग्य हो तो यह साध्य। आहाहा! कोई साधन द्वारा सिद्ध करनेयोग्य हो तो सिद्धपद। दूसरा कोई साधन से सिद्ध करनेयोग्य आत्मा को है नहीं। आहाहा! **साध्य सुद्ध केवल दशा....** देखो, शुद्ध कहना है, मुक्ति।

**अथवा सिद्ध महंत।** उसकी एक दशा। मुक्ति पर्याय से लिया। **सिद्ध महंत,** यह पर्यायवाला द्रव्य पूरा लिया, ऐसा। **सिद्ध महंत,... शुद्ध केवलदशा—तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती अरहंत....** ऐसा। **अथवा सिद्ध महंत....** ऐसे दो लिये। जीव की अष्ट कर्मरहित शुद्ध अवस्था, वह साध्य है। साध्य अर्थात् प्रगट करनेयोग्य मोक्ष की दशा या अरिहन्त की दशा। **साधक अविरत आदि बुध,....** लो। साधक, वह साध्य को सिद्ध करनेवाला—साबित करनेवाला—प्रगट करनेवाला—प्राप्ति प्राप्त करनेवाला कौन? **अविरत आदि बुध,....** सम्यग्ज्ञानी चौथे गुणस्थान से। अविरत... भले अन्दर विरति राग की नहीं, अस्थिरता की अपेक्षा से। सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से राग से विरक्त है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव चौथे गुणस्थान, अविरति सम्यग्दृष्टि, वह साधक, सिद्ध को प्रगट करने का साधन। आहाहा! यहाँ पर्याय को साधन कहना है। त्रिकाली साधक गुण है, वह साधता है, तब उसे पर्याय का साधकपना इस प्रकार प्रगट होता है, ऐसा। **साधक अविरत आदि बुध...** चौथे अव्रत सम्यग्दृष्टि... बुध—अविरत ज्ञानी, ऐसा। अविरति सम्यग्दृष्टि, ऐसा लेना। **साधक अविरत आदि बुध...**—ज्ञानी चौथे गुणस्थान से आदि से लेकर साधक तो ज्ञानी है। समझ में आया? अरे!

**छीन मोह परजंत....** यहाँ से साधक से लेकर बारहवें गुणस्थान तक साधक है। तेरहवें-चौदहवें में वह साध्य हो गया और सिद्ध भी साध्य। आहाहा! समझ में आया? बारहवें गुणस्थान सर्वथा निर्मोही, लो। **नव गुणस्थानों में से किसी भी गुणस्थान का धारक ज्ञानी जीव साधक है।** नौ। नीचे तीन नहीं, ऊपर दो नहीं। बीच के नौ अन्तर आत्मा साधक। उसका साध्य तेरह और चौदहवाँ गुणस्थान। मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र, यह नहीं। चौथे गुणस्थान से। आहाहा! स्वरूप अखण्ड आनन्दमूर्ति, ऐसी जहाँ दृष्टि अन्दर में हुई, तब से साधक।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बारहवें, बारहवें तक। यह खबर भी नहीं हो सेठ को। गुणस्थान कितने हैं? यह भी खबर नहीं। पूछो सौभागभाई को।

**मुमुक्षु :** १४।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तुमने कहाँ कहा? इन्हें कहाँ आता है चौदह। सुना नहीं, बस। गुणस्थान कितने हैं संख्या से?

**मुमुक्षु :** चौदह।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चौदह। चौदह गुणस्थान। जैसे मंजिल पर चढ़ना हो, मंजिल। क्या कहते हैं? मंजिल... मंजिल। मंजिल पर चढ़ना हो तो उसे सीढ़ी (चाहिए)। इसी प्रकार सिद्धपद में जाना हो तो चौदह गुणस्थान की सीढ़ियाँ हैं उसमें। उसमें चौथे से सिद्धपद जाने की सीढ़ी। तीन तो साधारण है। आहाहा! चौथे से ठेठ चौदह अथवा बारह। यहाँ साधक के गिनना है न साधक के। और अरिहन्त और सिद्ध तो साध्य कहने में आये। उन्हें तो प्राप्त करनेयोग्य कहा।

श्रीमद् ने कहा, तेरहवें तक कहा। 'इच्छत हैं जो योगीजन, सयोगी निजस्वरूप।' तेरहवें में लिया वहाँ। सयोगी है न? 'इच्छत हैं जो योगीजन, सयोगी निजस्वरूप।' अन्तिम। अन्तिम में अन्तिम लाईन। जब देह छूटने का था तब। चैत्र शुक्ल नवमी की है यह। वैशाख कृष्ण पंचमी को देह छूट गया। श्रीमद्। १९५७। चैत्र कृष्ण पंचमी अर्थात् तुम्हारी (हिन्दी में) वैशाख कृष्ण पंचमी को देह छूट गयी। चैत्र शुक्ल नवमी

का अन्तिम का अन्तिम सन्देश। 'इच्छत हैं जो योगीजन, सयोगी निजस्वरूप। अनन्त सुखस्वरूप, मूल शुद्ध वह आत्मपद सयोगी जिनस्वरूप।' इच्छत हैं जो योगीजन मूल शुद्ध स्वरूप। मूल शुद्ध है न? क्या शब्द है दूसरा पद? दूसरा पद। अनन्त सुख स्वरूप। 'इच्छत हैं जो योगीजन, अनन्त सुखस्वरूप'। यह सयोगी जिनस्वरूप। यह ऐसा शब्द सयोगी जिनस्वरूप, साथ में ऐसा कहा वहाँ। समझ में आया?

यह यहाँ साध्यरूप से कहा और चौथे गुणस्थान से साधक है। आहाहा! देखो न, वहाँ शुद्ध परिणति, वह साधक है। तो चौथे गुणस्थान से शुद्ध परिणति शुरु होती है। वे कहते हैं कि शुभभाव हो अभी चौथे में। शुभभाव में समकित आदि हो। कहो! तुम्हारे रतनचन्दजी पण्डित है न! ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि साधक—शुद्ध परिणति जब प्रगट हुई, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का नाश करके, तब से वह साधक है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** आठवें से साधक है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चौथे से हुए बिना साधक आगे बढ़ा कहाँ से? वह तो चारित्र के भेद की पूरी व्याख्या है। परन्तु सम्यग्दर्शन हुए बिना साधक हुआ कहाँ से? आहाहा!

**मुमुक्षु :** वह तो अधिक आठवें से।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो अधिक आठवें से। हो गया। अभी आठवाँ है नहीं इसलिए शुद्ध उपयोग नहीं, ऐसा। अरे! कुकर्म कर डाले हैं न! आत्मा का ही निषेध किया है। शुद्ध परिणतिवाला आत्मा, उसे ही आत्मा कहा है यहाँ तो। रागवाला और पुण्य को आत्मा कहा ही नहीं। तब यहाँ शुद्ध परिणतिवाला आत्मा चौथे से है, उसे ही आत्मा कहा है। आहाहा! समझ में आया? यह तीसरा हुआ। **साधक अवस्था का स्वरूप।**

★ ★ ★

## काव्य - ४

### साधक अवस्था का स्वरूप

(सवैया इकतीसा)

**जाकौ अधो अपूरब अनिवृति करनकौ,**
**भयौ लाभ भई गुरुवचनकी बोहनी।**
**जाकै अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ,**
**अनादि मिथ्यात मिश्र समकित मोहनी।।**
**सातौं परकिति खपीं किंवा उपसमी जाके,**
**जगी उर मांहि समकित कला सोहनी।**
**सोई मोख साधक कहायौ ताकै सरवंग,**
**प्रगटी सकति गुन थानक अरोहनी।।४।।**

शब्दार्थ:-अध:करण[१]=जिस करण में (परिणाम-समूह में) उपरितनसमयवर्ती तथा अधस्तनसमयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश तथा विसदृश हों। अपूर्वकरण[२]=जिस करण में उत्तरोत्तर अपूर्व ही अपूर्व परिणाम होने जायें, इस करण में भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम सदा विसदृश ही रहते हैं, और एकसमयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश भी और विसदृश भी रहते हैं। अनिवृत्तिकरण[३]=जिस करण में भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम विसदृश ही हों और एकसमयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश ही हों। बोहनी (बोधनी)=उपदेश। खपीं=समूल नष्ट हुई। किंवा=अथवा। सोहनी=सुहावनी। अरोहनी= चढ़ने की।

अर्थ:-जिस जीव को अध:, अपूर्व, अनिवृत्तिरूप[४] करणलब्धि की प्राप्ति हुई है और श्रीगुरु का सत्य उपदेश मिला है, जिसकी अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्व, मोहनीय ऐसी सात प्रकृतियाँ सर्वथा क्षय व उपशम हुई हैं, वा अन्तरंग में सम्यग्दर्शन की सुन्दर किरण जागृत हुई है, वही जीव सम्यग्दृष्टि

१-२-३. इन्हें विशेष समझने के लिये गोम्मटसार जीवकांड का अध्ययन करना चाहिए और सुशीला उपन्यास के पृष्ठ २४७ से २६३ तक के पृष्ठों में इसका विस्तार से वर्णन है।

४. इन तीनों करणों के परिणाम प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धता लिये होते हैं।

**मुक्ति का साधक कहलाता है। उसके अन्तरंग और बाह्य सर्व अंग में गुणस्थान चढ़ने की शक्ति प्रगट होती है।।४।।**

काव्य-४ पर प्रवचन

**जाकौ अधो अपूरब अनिवृति करनकौ,**
**भयौ लाभ भई गुरुवचनकी बोहनी।**
**जाकै अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ,**
**अनादि मिथ्यात मिश्र समकित मोहनी॥**
**सातौं परकिति खपीं किंवा उपसमी जाके,**
**जगी उर मांहि समकित कला सोहनी।**
**सोई मोख साधक कहायौ ताकै सरवंग,**
**प्रगटी सकति गुन थानक अरोहनी॥४॥**

क्या कहते हैं? **अधो अपूरब अनिवृति....** यह करण-परिणाम है। तीन प्रकार के परिणाम हैं। आत्मा शुद्ध ध्रुव, उस पर लक्ष्य जाने से यह परिणाम उत्पन्न होते हैं। वह **अधो अपूरब अनिवृति....** की व्याख्या है थोड़ी। अन्दर है। ऐसा कि जानने की बात है। **भयौ लाभ भई गुरुवचनकी बोहनी....** आहाहा! **बोहनी**—उपदेश। ऐसा कि उपदेश लाभ मिला, ऐसा। बोहनी—उपदेश का बोध मिला, ऐसा। गुरुवचन को बोध मिला। गुरु ने कहा कि तेरा आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है। यह उपदेश। आहाहा! प्रभु! तू परमात्मा है। वस्तु से परमात्मा है, ऐसा गुरु ने उपदेश किया। आहाहा! उपदेश तो ऐसा दे रहे हैं, ऐसा कहते हैं। यह करो और फलाना करो और यह करो, ऐसा उपदेश वीतरागमार्ग का नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह उपदेश मिला और यहाँ स्वरूप के लक्ष्य से दृष्टि हुई, इसलिए वे परिणाम हुए। अभी पूर्ण हुआ नहीं, उसके पहले की बात है।

**जाकै अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ,...** अनन्त संसार का कारण, ऐसा क्रोध, मान, माया, लोभ नाश हुआ। स्वरूप के लक्ष्य से अभेददृष्टि होने से, ज्ञेय भेद से ज्ञान में भेद मालूम पड़ते थे, वह नाश हो गया। संकल्प-विकल्प की व्याख्या की है न!

द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म—इन तीन को अपना मानना, उसका नाम मिथ्यात्वरूपी संकल्प अर्थात् अकेले भेद को ही मानना। भेद अर्थात् अकेली पर्याय राग आदि सब भेद को मानना, वह मिथ्यात्व। अभेददृष्टि होने पर भेद की मान्यता नाश हो जाती है। और जानने की चीज़ें ज्ञेय के भेद से ज्ञान में भिन्न-भिन्न, उनके भेद से भिन्न-भिन्न भासता था, वह नाश हो जाता है। क्योंकि ज्ञेयभेद से भी ज्ञान की एकता ही अन्दर में प्रगट होती है। क्या कहा? चार (अनन्तानुबन्धी कषाय) गये, कहते हैं। गये तब हुआ क्या? अभेददृष्टि हुई और ज्ञान में, ज्ञेयभेद से ज्ञान में ऐसे दो की एकता का भास था, वह भास छूट गया। उस अन्तरज्ञान की एकता दृष्टि अभेद पर और पर्याय में ज्ञान की एकता होती है। ज्ञान की एकता बढ़ती है। भेद नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? अनन्तानुबन्धी की व्याख्या पूछते थे भाई सवेरे। यहाँ आ गयी। यह व्याख्या है सही। ज्ञेयभेद से ज्ञान का भेद मालूम पड़ता है, उसका नाम अनन्तानुबन्धी का विकल्प। मूल चीज़। अभेद पर दृष्टि होने से ज्ञान में भी भेदपना जो भासता था ज्ञेय के कारण, वह गया और ज्ञान में एकता भासे। समझ में आया? अरे, भारी कठिन व्याख्या।

साधारण व्याख्या ऐसी है कि देव-गुरु-शास्त्र के प्रेम की अपेक्षा परिवार का प्रेम बढ़ जाये तो अनन्तानुबन्धी। ऐसी भाषा साधारण श्रीमद् की व्याख्या थी। वह भाई ने सवेरे प्रश्न किया। ....ऐसी बहुत व्याख्यायें आवे। यहाँ तो आत्मा अखण्ड आनन्दमूर्ति का जिसे प्रेम नहीं और जिसे राग का प्रेम है, उसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ है। समझ में आया? उसकी पर्याय में त्रिकाली भगवान आनन्द का जिसे प्रेम नहीं, रुचि नहीं, विश्वास नहीं, अभेद की महत्ता नहीं और राग के-पुण्य के विकल्प में जिसे महत्ता-अधिकता-प्रेम और विशेषता भासित होती है, वह अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लाभ है। समझ में आया? **जाकै अनंतानुबंधी...** अनन्त संसार का कारण मिथ्यात्व, उससे सम्बन्ध करानेवाली प्रकृति, (निमित्त) यह लिया। **अनादि मिथ्यात मिश्र समकित मोहनी...** और मिथ्यात्व के तीन प्रकार—एक मिथ्यात्व, एक मिश्र और समकितमोहनीय। **सातौं परकिति खपीं...** स्वरूप के दृष्टि के जोर द्वारा सातों प्रकृतियों का नाश हो गया या उपशम हुआ। उपशमसमकित।

**जगी उर मांहि....** क्षयोपशम उसमें आ गया साधारण रीति से। समकितमोहनीय

का उदय हो और छह खपे, उसका नाम क्षयोपशम। **सातौं परकिति खपीं किंवा उपसमी जाके,...** यह तो ऐसा कहा, प्रकृति खपी, उसे ऐसे लाभ होता है। परन्तु पहले यह कहा था कि जिसे **जाकौ अधो अपूरब अनिवृति करनकौ, भयौ लाभ भई गुरुवचनकी बोहनी।** गुरु का उपदेश मिला और स्वसन्मुख होकर ऐसे परिणाम जिसने किये हैं, उसे प्रकृति का नाश होता है। यह बाद में लिया। समझ में आया? आहाहा! **जगी उर मांहि...** लो। **सात प्रकृतियाँ सर्वथा क्षय वा उपशम हुई है।** दो ही बात ली है।

**अन्तरंग में सम्यग्दर्शन की सुन्दर किरणें जागृत हुई हैं।** जैसे सूर्य की किरण श्वेत—सफेद, उसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध अभेद अखण्ड की अन्तर में दृष्टि और अभेद में ले जाने से सम्यग्दर्शन की किरण प्रगट हुई, उजाला प्रगट हुआ। राग में एकताबुद्धि थी, वह अन्धकार था। आहाहा! अन्धेरे में भटकता था। 'अटवातो हतो' समझ में आया? अन्धेरे में भटकता था। आहाहा! उसी और उसी में यह मैं राग, आहाहा! राग के रंग में रंग गया, अन्धेरे में था। भगवान के रंग में रंगा निर्मलानन्द के रंग में, उसे समकित की किरण उगी। वह सूर्य खिला। वह प्रथम में प्रथम कर्तव्य हो तो यह है। समझ में आया?

अन्तर के वेदन में शान्ति और आनन्द का वेदन समकित की किरण के साथ होना, उसे साधकदशा कहते हैं। समझ में आया? वहाँ पहली दशा में इतने व्रत पाले और इतने अपवास करे तो साधक, ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? जो यह राग, पुण्यभाव, उसे साधता था, उसमें एकत्वबुद्धि थी, उस बुद्धि का पलटा खाया। ज्ञान-आनन्दस्वभाव भगवान की ओर पर्याय झुकी और वह पर्याय अभेद हुई। राग में भंग पड़ती, यहाँ अभेद हुई। उसे यहाँ समकित की किरण कहा जाता है। आहाहा! देखो, यह तो मुद्दे की रकम की बात है यह। देव-गुरु-धर्म को माने तो समकित और नौ तत्त्व की श्रद्धा करे तो समकित, यह यहाँ नहीं। वह समकित की व्याख्या ही नहीं। समझ में आया?

देव का देव, गुरु का गुरु आत्मा—ऐसा अखण्ड पूर्णानन्द प्रभु, उसका जहाँ स्वीकार दृष्टि से, ज्ञान की पर्याय से हुआ। ज्ञानकिरण जगी, उसे समकित हुआ। उसकी शुद्धदशारूपी परिणमन हुआ। शुद्धदशा का परिणमन हुआ। अनादि से पुण्य और पाप

का विकारी परिणमन था, वह एकान्त मिथ्या विकारी परिणमन था। उसका परिणमन का व्यय होकर शुद्ध परिणमन दशा हुई, आहाहा! तब से वह साधक कहा जाता है। वह सिद्धपद को साधनेवाला जीव उसे कहा जाता है। कहो, पण्डितजी! ऐसी बात तो सीधी है। लोगों ने ऐसी गड़बड़ की है न! आहाहा! भगवान सच्चिदानन्द प्रभु स्वयं सत् शाश्वत्, वह तो पहले बात ले गये हैं। अनन्त गुण का और अनन्त गुण की पर्याय का रूप, वह आत्मा, ऐसा तो पहले कह गये हैं। समझ में आया? **अन्तरंग में सम्यग्दर्शन की सुन्दर किरण जागृत हुई है, वही जीव सम्यग्दृष्टि मुक्ति का साधक कहलाता है...** लो। है?

**समकित कला सोहनी**—सुन्दर, **सोई मोख साधक कहायौ....** उसे सर्वांग, **उसके अन्तरंग और बाह्य सर्व अंग में गुणस्थान चढ़ने की शक्ति प्रगट होती है....** लो। ऐसे जीव को पाँचवें, छठवें, सातवें, आठवें, तेरहवें (गुणस्थान में) जाने की शक्ति है। अज्ञानी की गुण में आगे बढ़ने की शक्ति नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु पहले चौथे का ठिकाना न हो और सीधा मुनिपना करे, ऐसा नहीं, कहते हैं। जिसे ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वह अब ऊँचे गुणस्थान में चढ़ने के योग्य है। समझ में आया? आहाहा! यह तो हित की बात है, परन्तु लोगों को बैठती (नहीं)।

वे तो ऐसा माने, अरे! मुनिपना उड़ा दिया। हम मुनि नहीं। भाई! सुन बापू! मुनिपने की दशा को आरोहण करने की शक्ति किसे होती है? समझ में आया? अभी चौथी सीढ़ी में पैर रखा नहीं, वहाँ छठवें में पैर रखने की शक्ति बढ़ गयी? आहाहा! धर्म का पहला सोपान चौथा गुणस्थान है। परन्तु मूल छोड़ दिया मूल। श्रीमद् ने तो एक जगह कहा कि तप में ज्ञान बतावे और ज्ञान के बदले तप बतावे। है न एक जगह। यह अनशन, ऊनोदर तप में समकित बतावे तथा समकित और ज्ञान के बदले तप बतावे। ऐसा आया है। आहाहा! ऐई भीखाभाई! आहाहा! भाई! तेरा स्वभाव कहाँ है? कैसा है? उसमें गये बिना आगे बढ़ने की शक्ति की व्यक्तता किस प्रकार होगी तुझे? समझ में आया? आहाहा!

स्वद्रव्य—वस्तु को पकड़कर प्रगट हुई पर्याय निर्मल, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र के अंश की किरण कहा जाता है। स्वरूपाचरण भी चौथे से प्रगट हो गया

अथवा त्रिकाली भगवान में जितने अनन्त गुण हैं, उन सब गुणों का धारक द्रव्य—वस्तु अखण्ड अभेद, उसका आश्रय लेने से, उसे ध्येय बनाकर जो पर्याय प्रगट हो, वह अनन्त गुण की व्यक्त—प्रगट दशा है। समकित में अनन्तगुण की प्रगट दशा है। आहाहा! श्रद्धा, ज्ञान, आनन्द, शान्ति; शान्ति अर्थात् चारित्र का अंश, ऐसा। आनन्द का अंश, वीर्य का अंश, स्वच्छता का, प्रभुता का, परमेश्वरता का अंश चौथे (गुणस्थान में) प्रगट हो गया। आहाहा! समझ में आया?

**सोई मोख साधक कहायौ ताकै सरवंग,....** आहाहा! इसलिए अर्थ में तो ऐसा लिया **सरवंग** अर्थात् बाह्य और अन्तरंग। अभ्यन्तर भी स्वरूप की शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान की किरण प्रगट हुई, तब आगे बढ़ने की शक्ति और निमित्त में भी फेरफार होने की योग्यता तब उसमें है—अन्तर-बाह्य। चौथा गुणस्थान प्रगट हुआ, उसे अन्तर में आगे बढ़ने की शक्ति पाँचवें की और निमित्त में फेरफार हो गया। अव्रती था, उसे व्रत के विकल्प हों, उसके प्रमाण में अव्रत का त्याग हो गया, इसलिए तीव्र राग का त्याग हुआ। संयोग में भी देव-गुरु-शास्त्र का ही निमित्तपना होता है। कुगुरु और उनका निमित्तपना नहीं होता। और आगे बढ़ने पर सम्यग्दर्शन की किरणवाला, आगे बढ़ने की शक्तिवाला आगे जाकर सातवाँ (गुणस्थान) प्रगट हुआ तब उसे बाह्य में भी नग्नदशा—वस्त्ररहित दशा आदि संयोग ऐसे बन जाते हैं। इन दो का आगे बढ़ना उसे होता है। समझ में आया? आहाहा! मूल की खबर नहीं होती, यह नग्न होकर वस्त्र छोड़कर बैठे। कहे, यह सब खोट। ऐई सेठ! सेठ ने क्या वहाँ भी किया है सब बहुत। जय नारायण। आहार-पानी दिये होंगे न? दोनों भाई हैं न। क्या हो तब? आहारदान... आहारदान... सेठ!

**मुमुक्षु :** भान बिना सब किया हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सूक्ष्म बात है।

देखो न, एक शैली कैसी ली। **कहायौ ताकै सरवंग। प्रगटी सकति गुन थानक अरोहनी।** आगे बढ़ने की। भाव में और निमित्तों का अभाव। संयोग का—निमित्त का आंशिक अभाव तो .... और यहाँ भाव हुआ। उसकी शक्ति अब आगे बढ़ने की हुई। समझ में आया? **प्रगटी सकति गुन थानक अरोहनी।** लो। **अरोहनी—चढ़ने की।** है न अन्दर? शब्दार्थ है। अन्तिम शब्द। **अरोहनी** अर्थात् चढ़ने की। अर्थ में भी है। चढ़ने की

शक्ति प्रगट हुई। आहाहा! **अरोहनी** है। **अरोहनी** अर्थात् मूल तो आरोहण। शब्द के मिलान के लिये **अरोहनी** (लिखा है)। सीढ़ियाँ चढ़नी हों, दादर समझे? सीढ़ी। सीढ़ी चढ़ना हो तो चौथे में जहाँ आया चौथे में, तो उसे आगे बढ़ने की शक्ति की योग्यता है पाँचवें, सातवें में, आठवें में, दसवें में। समझ में आया? और वह जितना ऊँचा भाव से चढ़ा, उतने द्रव्य का संयोग भी उतना घटने लगा।

चौथे गुणस्थान में अविरति सम्यग्दृष्टि अर्थात् राग तीन कषाय (चौकड़ी) का भाव पड़ा है। उससे अस्थिरता टालकर स्थिरता हुई नहीं, परन्तु दृष्टि में उस कषाय से विरक्त है। परन्तु विरति नहीं, इसलिए अविरति है। दृष्टि की अपेक्षा से तो सम्यग्दृष्टि राग के विकल्प के व्यवहार से मुक्त है। विरक्त है। परन्तु अस्थिरता की अपेक्षा से अभी विरति नहीं, यह आगे अस्थिरता को टालने की योग्यतावाला हो गया, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? तब कितने ही तो कहे, परन्तु वह मुनिपना ले, द्रव्यलिंग ऐसा हो, उसे फिर निश्चय समकित आवे। अरे भगवान! कहाँ का कहाँ करता है भाई तू? क्या करता है? तेरा भगवान मिले बिना... ऐसा कि जब द्रव्यलिंग धारण करे और नग्न हो, तब उसे निश्चय समकित होता है। ऐसी व्याख्या अब!

वह भी कहता था। ... नेमिसागर के पास है न चन्द्रसागर। मुम्बई। एक साधु है न, उसके पास। वह भी कहता था। हम गये थे। मैं तो कुछ बोला नहीं। मैंने कहा, भाई! ऐसा नहीं है। वह और महेन्द्रभाई बैठे थे। वह और उससे ऐसा बोला गया, तुमको खबर नहीं। ऐ... झगड़ा उठा। अपने कहा, उठो भाई। अपना काम नहीं। हाँ-ना में अपने सामने हुए। महेन्द्रभाई थे। यह दो वर्ष पहले। वह प्रतिमा खड़ी की न, इसलिए देखने गये। पहले बीस में खड़े नहीं थे। बीस में आड़े थे। पच्चीस में खड़े किये दो। बहुत हजार का खर्चा। ....वह यहाँ आये थे। ....उसको प्रश्न चला समकित का। निर्विकल्प निश्चय समकित तो साधुपद हो, तब होता है। और यह महेन्द्रभाई फिर बोले, तुमको खबर नहीं। ऐई खबर नहीं। यह खबर नहीं, ऐसा कहते हैं तो स्वामीजी भी इनकार नहीं करते। अब क्या परन्तु उसमें मुझे विवाद करना? अरेरे! क्या हो?

कहते हैं कि जब तक भगवान हाथ आया नहीं, तब तक आगे बढ़ने की दशा की आरोहण की उसमें सामर्थ्य कहाँ से आवे? लोग ऐसा कहते हैं न, धन कमावे तो ढेर

हो। परन्तु पहले धन चाहिए न! ऐई सेठ! यह सब तुम्हारे सेठिया के लिये लोग ऐसा कहते है। धन कमाये तो ढ़ेर हो। पहले धन थोड़ा हो और फिर अधिक धन होने के लिये लक्ष्मी मिली दो-पाँच-पचास लाख तो धन को धन ढ़ेर बनावे, ऐसा कहते हैं। लोक में ऐसा है। हमारे काठियावाड़ में कहावत है। तुम्हारे होगा?

**मुमुक्षु :** धन से धन बढ़ता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यह। धन से धन बढ़ता है। हमारे यह कहते हैं, धन कमाये तो ढ़ेर हो। पंड (शरीर) कमाये तो पेट भरे। हाँ, स्वयं कमावे तो मात्र पेट भरे। परन्तु लक्ष्मी हो पाँच-पचास लाख-करोड़, कमाऊ। लड़ने लगे फिर। ऐई मलूकचन्दभाई!

यह कहावत है। पंड कमाये तो पेट भरे। पंड समझे? शरीर। शरीर से मजदूरी करे तो कितना हो? रोटियाँ मिले। २००-५०० मिले। परन्तु जब पैसे हुए हों, पैसा पैसे को बढ़ावे। भाई ने कहा न!

**मुमुक्षु :** पैसे से पैसा बढ़ता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बढ़ता है। ऐई सेठ! मानते हैं। धूल में कहाँ से? मानता है, मूढ़ है वह। बाकी वहाँ उससे होता है? वह तो पुण्य का योग हो और पैसा हो। होवे और चले जायें। कितने ही करोड़पति टूट गये, टूट गये। नहीं सुना? करोड़पति टूट गये और नीचे उतर गये। आहाहा!

जेठालाल संघवी कहते थे। जेठालाल संघवी थे न मुम्बई, नहीं? सोना के व्यापारी, अपने बोटादवाले। वे कहते कि एक व्यक्ति था। बड़ा गृहस्थ था उसके (पुत्र के) विवाह में उसकी जाति में कलश बाँटे। बेडा। बेडा समझे? पाटिया नहीं, बेडा। बेडा समझे? यह पानी भरने का हांडा (कलश, चरु)। क्या कहते हैं? चरा होता है न ऊपर घड़ा, उसे बेडुं कहते हैं। दोनों होकर। बेडुं अर्थात् दो हुए न, इसलिए बेडुं। यह दो। एक इतना बड़ा हो और दूसरा छोटा हो। दो होते हैं न दो। तुम्हारे क्या कहते हैं? हमारे बेडुं कहते हैं। तुम्हारे क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** घड़े का कलश बोलते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। घड़े का कलश। पहली चीज़ है ऊपर कलश। उसे बेडुं

कहते हैं। बेडुं अर्थात् दो। जाति में बेडुं बाँटे थे, उस लड़के के विवाह में। इतना खर्च। वह उसकी बहू को जब प्रसूति का प्रसंग आया। जेठालाल संघवी कहे, मेरे पास आया था। कहे, भाई! कुछ पैसा दो तो अस्पताल में... पुण्य समाप्त हो गया, कहे।

विवाह में देखो तो उसके पिता ने ऐसे पूरी जाति में एक-एक बेडुं। बेडां का कैसा खर्चा... बड़ा हंडा नहीं, एक घड़ा। घड़ा... घड़ा। छोटा घड़ा और बड़ा हांडा। वह नाम तो अब तुम्हारे होंगे। परन्तु समझते नहीं। वह बेड़ां भरकर आवे। पानी भरने जाते होंगे गरीब लोग। वह बेड़ा बाँटे जाति में। सेठ! उस लड़के की बहू को प्रसूति का प्रसंग आया, जन्म का। लड़के की बहू। लड़के के विवाह में ऐसा किया जाति में। फिर जहाँ प्रसंग आया, वहाँ पैसा-बैसा समाप्त। यह जेठालाल कहते थे, मेरे पास आये थे। अरे भाई! बाई को यह प्रसव का प्रसंग है। हॉस्पीटल में रखना है। थोड़े पैसे दो। यह प्रसंग देख लो। चढ़ती-पड़ती छाया है। यहाँ कहते हैं कि आत्मा अपने साधक की लक्ष्मी में चढ़ा, उसे तो साधकपने चढ़ने की ही शक्ति है। समझ में आया? वह पड़े नहीं। अपनी लक्ष्मी के जोर से आगे बढ़ जाये। सम्यग्दर्शन साथ में हो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १६३, भाद्र कृष्ण १२, गुरुवार, दिनांक १६-०९-१९७१**
**साध्य-साधक द्वार, पद ५ से ९**

सोरठा। यह पाँचवाँ (पद) है न? साधकपना किसे प्रगट हो, उसकी बात चलती है। उसके श्लोक स्वयं अपने से बहुत लेंगे। साधक। मोक्ष का साधक। आत्मा शुद्ध परिपूर्ण अखण्ड आनन्द, उसका अनुभव होकर सम्यग्दर्शन की प्रगटता, उसे साधक कहते हैं। वह धर्म का—मोक्ष का साधक। समझ में आया?

★ ★ ★

**काव्य - ५**

(सोरठा)

**जाके मुकति समीप, भई भवस्थिति घट गई।**
**ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुकता वचन।।५।।**

**शब्दार्थ:-भवस्थिति=भव-भ्रमण का काल। मुकता=मोती।**

**अर्थ:-जिसकी भवस्थिति घट जाने से अर्थात् किंचित् न्यून अर्धपुद्गलपरावर्तन कालमात्र शेष रहने से मुक्ति-अवस्था समीप आ गई है, उसके मनरूप सीप में सद्गुरु मेघरूप और उनके वचन मोतीरूप परिणमन करते हैं। भाव यह कि-ऐसे जीवों को ही श्रीगुरु के वचन रुचिकर होते हैं।।५।।**

**काव्य-५ पर प्रवचन**

**जाके मुकति समीप, भई भवस्थिति घट गई।**
**ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुकता वचन॥५॥**

बनारसीदास साधक का स्वरूप (समझाते हैं)। **जाके मुकति समीप,...** जिसे भव्य परिपाक के कारण से... भव्यजीव को होता है न यह? भव्य के परिपाक के कारण

से और भवस्थिति घट जाने से। **जिसकी भवस्थिति घट जाने से अर्थात् किंचित् न्यून अर्धपुद्गल परावर्तन कालमात्र शेष रहने से मुक्ति अवस्था समीप आ गई है।** समझ में आया? जिसे अल्पकाल में मुक्ति होनी है। यह तो उत्कृष्ट काल लिया है अर्धपुद्गलपरावर्तन। उसे भवस्थिति घट गयी है। **ताकी मनसा सीप,...** मनरूपी मछली का सीप... सीप... वह मोती पकते हैं न सीप में? **सुगुरु मेघ मुकता वचन।** गुरु की बरसात का मेघ, उसमें मुक्ताफल पके उसे। उसे मुक्ताफल पके... ऐसा वह जीव, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** योग्यता....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, योग्यता बतलानी है। यह सेठ कहते हैं कि उन गुरु के वचन के कारण यह हुआ, ऐसा बताते हैं। परन्तु वह उतना निमित्त का सम्बन्ध है।

उसकी भवस्थिति अल्प रही, अल्प काल में मुक्ति की तैयारी हुई। भव्यजीव का भव्यपने का परिपाक है। उसे वाणी ऐसी मिले तब उसे मुक्ताफल—मोती पके अन्दर। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के मुक्ताफल पके, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परन्तु पके उसे निमित्त कहलाये न? ऐसा यहाँ कहते हैं। वह जीव ऐसा है, ऐसा कहते हैं। पाटनीजी!

**मुमुक्षु :** गुरु कैसे हैं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उन्होंने वचन कहे हैं इतना। परन्तु वह जीव ऐसा है कि उसके कारण मुक्ताफल वहाँ पके, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु उसे होवे ही यह वाणी। यह प्रश्न ही नहीं। वाणी तो पड़े बहुतों को, परन्तु मछली चाहिए न, वह मोती पके ऐसी। समझ में आया? ऐसा कहते हैं यह।

**ताकी मनसा सीप,...** उसका मनरूपी सीप। **उनके मनरूप सीप में सद्गुरु मेघरूप और उनके वचन मोतीरूप परिणमन करते हैं।** उसे आत्मा (में) वाणी पड़ी और योग्यता तो थी, उसे एकदम अन्दर स्वरूप का आश्रय होकर सम्यग्दर्शन की

साधकदशा प्रगट होती है, ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया? यह साधक की व्याख्या है। **ऐसे जीवों को ही श्रीगुरु के वचन रुचिकर होते हैं...** ऐसा लिखा न! परन्तु रुचिकर ही न हो। वीतरागभाव... सर्वज्ञ, गुरु और तीर्थंकर इत्यादि गुरु के वचन में तो वीतरागता बतलाते हों। पर की उपेक्षा, वीतराग का अर्थ यह। पर्याय, विकल्प और निमित्त की उपेक्षा—उदासीनता और स्व-त्रिकाली आत्मा की अपेक्षा—यह बात वीतराग के मुख में आवे। कहो, भीखाभाई! ऐसी उनकी वाणी होती है। उनकी वाणी में ही वीतरागता का (पोषण होता है) और वह पात्र है। उसे वहाँ आगे सम्यग्दर्शनरूपी वीतरागी पर्याय मोती—मुक्ताफल पके, यह बतलाना है।

**मुमुक्षु :** अपेक्षा तो गुरु की....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो यहाँ करे, तब उसे कहा जाये न? स्थिति से कहा न। पके ऐसा वह जीव है।

यहाँ तो कहा न, **जाके भवस्थिति मुकति समीप...** जिसे अल्पकाल में मुक्ति (हो), ऐसा वह जीव है।

**मुमुक्षु :** उपादान की प्रधानता से।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। **भई भवस्थिति घट गयी...** भव की स्थिति ही घट गयी है। भव हों तो एकाध-दो-चार हों। विशेष होते नहीं। बहुत तो पन्द्रह हों। समझ में आया? **ताके मनसा सीप....** उसका मन ही सीप है। मछली है न मछली। .... उसे वाणी पड़ने पर वीतरागता का भाव उसे प्रगट होता है। स्वभाव परिपूर्ण प्रभु परमात्मा अपना स्वरूप, उसकी दृष्टि अन्दर में... क्योंकि कहा है वह। गुरु ने वह कहा था कि तू तेरे द्रव्यस्वभाव में जा, पर्याय—निमित्त आदि की उपेक्षा कर, तो तुझे मोती पकेगा सम्यग्दर्शन का। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। अब इसकी विशेष कहते हैं।

★ ★ ★

## काव्य - ६

**सद्गुरु को मेघ की उपमा** (दोहा)

**ज्यौं वरषै वरषा समै, मेघ अखंडित धार।**
**त्यौं सद्गुरु वानी खिरै, जगत जीव हितकार।।६।।**

**शब्दार्थ:-अखंडित धार=लगातार। वानी (वाणी)=वचन।**

**अर्थ:-जिस प्रकार बरसात में मेघ की धाराप्रवाह वृष्टि होती है, उसी प्रकार श्रीगुरु का उपदेश संसारी जीवों के लिये हितकारी होता है।**

**भावार्थ:-जिस प्रकार जलवृष्टि जगत को हितकारी है, उसी प्रकार सद्गुरु की वाणी सब जीवों को हितकारी है।।६।।**

---

### काव्य-६ पर प्रवचन

---

**सद्गुरु को मेघ की उपमा।**

**ज्यौं वरषै वरषा समै, मेघ अखंडित धार।**
**त्यौं सद्गुरु वानी खिरै, जगत जीव हितकार॥६ ॥**

**ज्यौं वरषै वरषा समै,....** वर्षा के समय वर्षा की धारा पड़े। **मेघ की धाराप्रवाह वृष्टि होती है, उसी प्रकार गुरु का उपदेश संसारी जीवों के लिये हितकारी होता है।** उसका हित हो। हित का अर्थ मोक्षमार्ग हो। मोक्षमार्ग ही एक हितकारी है। समझ में आया? **जगत जीव हितकार।** जगत के प्राणी जिसे हितकर वाणी है। उसमें हितकर की वाणी की व्याख्या में आ गया कि तेरा हित कैसे हो। समझ में आया? आत्मा आनन्द और ज्ञान का अथवा श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, ऐसे स्वभाव से भरपूर तत्त्व है। वह स्वभावरूप ध्रुवता तो भरी ही है उसमें। उसके समीप जाने से... वह समीप में जाना और पर की उपेक्षा करना, ऐसा ही वीतराग का वचन होता है। मुनियों के, वीतराग के, साधक जीवों के वचन ऐसे होते हैं। क्या कहते हैं? होंवे ऐसे हों, परन्तु उसको परिणमे, तब ऐसे वचन को निमित्त कहा जाता है। यहाँ तो यह बात ही ऐसी ली है। अब वाणी सुने

(और) एक ओर कहना कि वाणी से ज्ञान होता नहीं। ऐई! त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि हो, तो भी आत्मा का ज्ञान उससे नहीं होता। इसका अर्थ यह कि उस वाणी में जो आया, ऐसा भाव जिसने अन्तर में प्रगट किया, उसे यह जिन वीतराग की वाणी, गुरु की वाणी निमित्त कही जाती है। ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया?

अब साधक जीव की तैयारी के लिये पर का सम्बन्ध तुड़ाते हैं। **धन सम्पत्ति से मोह हटाने का उपाय।** देखो, यह पहला लक्ष्मी का आया सब यह। बाहर की धूल-धमाल, पैसा, इज्जत, कीर्ति, मकान, स्त्री-पुत्र—इनमें जो रुचिवाला हुआ, उसे आत्मा की रुचि नहीं होती, ऐसा कहते हैं। उनके साथ सम्बन्ध है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। पर के साथ सम्बन्ध ही कुछ नहीं। तू स्वतन्त्र है। यह कहते हैं, देखो। **धन सम्पत्ति से मोह हटाने का उपाय।** साधकपना सिद्ध करना है न?

★ ★ ★

## काव्य - ७

**धन-सम्पत्ति से मोह हटाने का उपाय** (सवैया इकतीसा)

**चेतनजी तुम जागि विलोकहु,**
**लागि रहे कहा मायाके तांई।**
**आए कहींसौं कहीं तुम जाहुगे,**
**माया रमेगी जहांकी तहांई।।**
**माया तुम्हारी न जाति न पांति न,**
**वंसकी वेलि न अंसकी झांई।**
**दासी कियै विन लातनि मारत,**
**ऐसी अनीति न कीजै गुसांई।।७।।**

**शब्दार्थ:-विलोकहु=देखो। माया=धन-सम्पदा। झांई=परछाँई-प्रतिबिंब। दासी=नौकरानी। गुंसाई=महंत।**

**अर्थः-हे आत्मन्! तुम मोहनिद्रा को छोड़कर सावधान होओ और देखो, तुम धन-सम्पत्तिरूप माया में क्यों भूल रहे हो? तुम कहाँ से आये हो और कहाँ चले जाओगे और दौलत जहाँ की तहाँ पड़ी रहेगी। लक्ष्मी न तुम्हारी जाति की है, न पाँति की है, न वंश-परंपरा की है, और तो क्या तुम्हारे एक प्रदेश का भी प्रतिरूप नहीं है। यदि इसे तुमने नौकरानी बनाकर न रखा तो यह तुम्हें लातें मारेगी, सो बड़े होकर तुम्हें ऐसा अन्याय करना उचित नहीं है।।७।।**

---

काव्य-७ पर प्रवचन

---

**चेतनजी तुम जागि विलोकहु,**
**लागि रहे कहा मायाके तांई।**
**आए कहींसौं कहीं तुम जाहुगे,**
**माया रहेगी जहांकी तहांई॥**

रमेगी नहीं, रहेगी (चाहिए)।

**माया तुम्हारी न जाति न पांति न,**
**वंसकी वेलि न अंसकी झांई।**
**दासी कियै विन लातनि मारत,**
**ऐसी अनीति न कीजै गुसांई॥७॥**

गुंसाई शब्द प्रयोग किया है। उन वैष्णव में होता है न गुंसाई। धर्मगुरु, महन्त। हे महन्त आत्मा! ऐसा कहते हैं। गुंसाई! भगवान! तू तो महन्त है। परमात्मा के स्वभाव से तू भरपूर है, भाई! तेरी सब महन्तता तुझमें भरी है। हे महन्त! **चेतनजी तुम जागि विलोकहु,... हे आत्मन्! तुम मोहनिद्रा छोड़कर सावधान होओ। विलोकहु....** भगवान! तू विलोक, देख, जान। **लागि रहे कहा मायाके तांई...** माया के पीछे क्यों पड़ा है? **तुम धन-सम्पत्तिरूप माया में क्यों भूल रहे हो?** यह मुख्य वस्तु बतायी है यह। समझ में आया? साधक हो, उसे धन की, सम्पदा की रुचि नहीं होती। यदि उसकी रुचि हो तो आत्मा की रुचि हो सकती नहीं। आहाहा! समझ में आया? सेठ! परवस्तु—लक्ष्मी,

स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सब लेंगे। बाद में लेंगे दूसरे भाग में। समझ में आया? आहाहा! साधकपना प्रगट करने की पद्धति कहते हैं। यह साध्य-साधक द्वार है न? बनारसीदास स्वयं वर्णन करते हैं।

**लागि रहे कहा मायाके तांई...** अरे! संसार का धन और सम्पत्ति में कहाँ भूल रहा है? वह चीज़ ही तेरी नहीं। शरीर तेरा नहीं, वह तो मिट्टी-धूल है। ऐसे पैसे, इज्जत, कीर्ति, बँगला-मकान सब तो पर जड़, मिट्टी—धूल है। **लागि रहे कहा मायाके तांई...** वहाँ का वहाँ ... चिपटा है क्यों? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सेठ! यह बीड़ी का धन्धा और बीड़ी ऐसे भेजना, मोटर भेजना और आकर सम्हालना कि कैसे हुआ। क्या हुआ तुझे यह? ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** पागलपन।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पागल। उसकी रुचि है, वहाँ आत्मा की रुचि नहीं होती, ऐसा कहते हैं। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। धनसम्पत्ति का प्रेम (हो) और तुझे आत्मा का प्रेम हो, बनता नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह पैसा, इज्जत, घर ऐसे धूम चलती हो, आहाहा! प्रसन्न... प्रसन्न होता हो। क्या है परन्तु? क्या है तुझे यह? यह तो महामिथ्यात्व का दोष है। वह चीज़ मेरी, यह मान्यता मिथ्यात्व है। समझ में आया?

उसमें से प्रसन्न हो, हम सुखी हैं। दुःखी हो। तुझे सुखी कौन कहे? करोड़ों, अरबों रुपये हों, इसलिए हम सुखी हैं। मूढ़ है। पैसे में सुख कैसा? वह तो धूल है। उसे देखकर प्रसन्न होता है। प्रसन्न होता है; तू साधक नहीं है, ऐसा कहते हैं। सेठ! आहाहा! साध्य-साधक में यह डाला पहला। तेरा आत्मा साधना है या यह लक्ष्मी साधनी है तुझे? आहाहा! स्वलक्ष्मी आनन्दकन्द प्रभु का साधन करना है या इस धूल को प्राप्त करने का साधन? क्या करना है? तू क्या करता है यह? आहाहा! वह उठाया। **आए कहींसौं कहीं तुम जाहुगे,...** भाई! तू कहाँ से आया? 'मैं कौन हूँ? आया कहाँ से?...' आता है न श्रीमद् में। 'और मेरा रूप क्या? सम्बन्ध दुःखमय कौन है स्वीकृत करूँ परिहार क्या?' एक रजकण और राग का कण भी तेरा नहीं। आहाहा! और वहाँ तुझे प्रेम है, वहाँ तुझे प्रसन्नता होती है, उस भाव में, यह देखकर तुझे प्रसन्नता आती है। साधक (दशा) नहीं प्रगट हो सकती, ऐसा कहते हैं। पाटनीजी! आहाहा! गजब बात

की है बनारसीदास ने! समझ में आया? यह चूड़ियों का पैसा देखकर, हीराभाई को देखकर प्रसन्न हो, वह साधक (दशा) नहीं प्रगटेगी, ऐसा कहते हैं। सेठ!

**लागि रहे कहा मायाके तांई, आए कहींसौं...** कहाँ से तू आया? भाई! तू अनादि का आत्मा किसी गति में से आया है। समझ में आया? **कहीं तुम जाहुगे,...** यहाँ से कहाँ जाना है तुझे? यहाँ से निकलकर कहाँ निवास करना है तुझे? आहाहा! शरीर में तो ५-२५-५०-६०-१०० वर्ष। बाद में? तुझे कहाँ निवास करना है? यह सब बिखर जायेंगे। तेरे स्त्री-पुत्र और लक्ष्मी। उसे ऐसा कि ऐसे रहते हैं न। रहे वहाँ तक... रहे ही नहीं। सुन न! उसके कारण से रहे हैं। वे तेरे कारण से आये नहीं। तेरी पर्याय में वह ऐसी चीज़? द्रव्य-गुण में तो आयी नहीं, परन्तु वह लक्ष्मी तेरी पर्याय में आयी है? तो कैसे मानता है तेरी? ऐसा कहते हैं। आहाहा! बनारसीदास न यह गजब बनाया!

**आए कहींसौं कहीं तुम जाहुगे, माया रहेगी जहांकी तहांई।** यह सब पैसा और सब बँगले—मकान सब बनाये, ये यहीं के यहीं रहेंगे। तेरे साथ एक कदम नहीं आवे। सेठ! छह लाख का यह बँगला बनाया है और कितने ही मकान बनाते हैं। वह ४० लाख का बनाया है गोवा में। शान्तिलाल खुशाल। ४० लाख। धूल भी नहीं रहे। किसके लाख के? वह तो जड़ के हैं। तेरे साथ आनेवाले हैं? तेरे हैं? देखो! वहाँ से बात शुरु की पहले। लक्ष्मी जड़ है, उसका जिसे प्रेम है, वह साधक नहीं हो सकता। जादवजीभाई! आहाहा! वजुभाई! देखो! यह ऐसी बात है। भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव कहते हैं कि तू जो आत्मा है, उसमें यह चीज़ लक्ष्मी आदि नहीं। उसमें नहीं और तुझे उसके प्रति प्रेम वर्तता है, उसे (तुझे) आत्मा का प्रेम नहीं होगा। आहाहा! जो रागरहित चीज़, लक्ष्मी-शरीररहित चीज़ है, उस चीज़ पर तुझे रुचि नहीं आती। यहाँ तेरी रुचि ढल गयी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पहले चोट में यह बात ली है। समझ में आया?

**माया तुम्हारी न जाति न पांति न, माया रहेगी जहांकी तहांई।** आहाहा! सिकन्दर ने बहुत पाप किये न। सिकन्दर बादशाह। बहुत अरबों रुपये इकट्ठे किये। मरते हुए... अरेरे! इस लक्ष्मी के ढ़ेर करना मेरे मुर्दे के समीप, जनाजा जब निकले,...

**मुमुक्षु :** वैद्य से उठवाना....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह फिर बाद में, यह तो पहले ढेर करना, लक्ष्मी के ढ़ेर करना

कि यह लक्ष्मी इतने-इतने पाप करके प्राप्त की परन्तु यह साथ में नहीं आती। और मेरा जनाजा उन्हीं वैद्यों के कन्धे पर उठवाना, जिन्हें मैंने फीस में लाखों रुपये दिये, हकीमों को, उन सबको बुलाना (मृत्यु) के समय, मेरे जनाजा उन्हीं वैद्यों के कन्धे पर उठावाना। लोगों को ख्याल आवे कि यह वैद्य भी रख नहीं सके। लक्ष्मी साथ में जाती नहीं। आहाहा! यह रुचि की अपेक्षा से बात है, हों! उसकी रुचि है, वहाँ उसे आत्मा की रुचि नहीं होती, ऐसा कहना चाहते हैं। ऐसे स्त्री, पुत्र और पैसा छोड़कर बाबा हो, परन्तु अन्दर रुचि है, पर के प्रति, तो वह (रुचि) छोड़ी नहीं, तब तक कुछ छोड़ा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए उसको बाहर... लक्ष्मी छोड़ो और हो जाओ साधु। परन्तु वह साधु कहाँ से आया तुझे? सुन न अब! अभी साधन शरीर और राग का प्रेम है और यह सब चीज़ का राग के निमित्तों के प्रति तुझे प्रेम है, तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होगा। आहाहा! गजब बात है। मूलचन्दभाई! आहाहा! मखमल के कपड़े पहने हों शरीर में। वह क्या कहलाता है? बोस्की... बोस्की आती है न। अब टेरेलीन... टेरेलीन या अपने कुछ... बोस्की आते थे। ऐसे मुलायम कपड़े, टोपी ऐसे व्यवस्थित बाँधे न। क्या है परन्तु यह? यह मूर्खाई—गहलता क्या हो गयी तुझे? ऐसा कहते हैं। भगवान तीन लोक का नाथ तू, उसकी दृष्टि करता नहीं, उसकी रुचि करता नहीं, साधक होता नहीं और यह साधने लगा? ऐसा कहते हैं। ऐई मूलचन्दभाई! परन्तु सुनने में आवे, तब सुने न यह। उसके पिता ने दाँत निकाले। यहाँ आवे तो सुने न! इसके बिना सुने वहाँ? सेठ साहेब... सेठ साहेब करे सब रुपये-पैसेवाले। आहाहा!

फिर कहते हैं, **माया रहेगी जहांकी तहांई।** आहाहा! जहाँ होगी, वहाँ पड़ी रहेगी। रोता-बिलखता, हाय, हाय रे! मुझे छोड़ना (पड़ेगा)। जायेगा कहीं। बापू! वह चीज़ तेरी नहीं। जड़ का प्रेम अन्दर पड़ा है जब तक, तब तक उसे भगवान आत्मा निर्विकल्प वीतरागी चीज़ का प्रेम नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? **माया तुम्हारी न जाति...** भगवान! यह माया तेरी जाति की है? तू चेतन है, वह जड़ है। बराबर है? विजातीय—परवस्तु ही है। उसमें तुझे और उसे लेना-देना क्या? तू चेतन, लक्ष्मी जड़। **जाति न पांति न,...** तेरी पंक्ति में बैठनेवाली चीज़ ही नहीं। आत्मा की पंक्ति में आत्मा

बैठे। जड़ बैठे तेरी पंक्ति में ? क्या हो गया तुझे यह ? आहाहा! ऐई सेठ! यह कभी व्यवस्थित पढ़ा भी नहीं होगा। यह पुकारते हैं... परन्तु तुम्हारे पास है या नहीं एक यहाँ ? कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा!

अरे प्रभु! तुझे साधक होना है ? तो बाधक की चीज़ का इसे रुचि और प्रेम छोड़ना पड़ेगा। आहाहा! ऐसा कहते हैं। सेठ! सम्यग्दर्शन आत्मा का अनुभव और श्रद्धा, वह तुझे यदि साधकरूप से प्रगट करनी हो तो उस चीज़ की रुचि अन्तर से टालनी पड़ेगी। आहाहा! समझ में आया ? रुचि, हों! यह स्त्री, पुत्र छोड़कर बाबा हो, इससे वह रुचि छूट गयी है, ऐसा नहीं है। जिसे अन्दर में शुभराग का भी प्रेम और रुचि है, उसे पूरी दुनिया की रुचि है। समझ में आया ?

**माया तुम्हारी न जाति न पांति न, वंसकी वेलि...** आहाहा! तेरे वंश का अंश भी नहीं, कहते हैं। लक्ष्मी तेरी परम्परा की है ? वह लक्ष्मी तेरे वंश परम्परा की है ? तेरे पिता के पास नहीं थी और तेरे पास आयी। और आवे तो भी वह दूसरी चीज़ है। बराबर है सेठ ? कहाँ तुम्हारे पिता के पास थी यह सब ? ऐई जुगराजजी! कहते हैं कि तुम्हारे पिता के पास थी यह लक्ष्मी ? इनके पिता के पास थी ? यह तेरे वंश परम्परा की चीज़ नहीं है। आहाहा! वह तो जड़ की वंश परम्परा की चीज़ है। आहाहा! **माया तुम्हारी न जाति न पांति न, वंसकी वेलि न अंसकी झांई।** आहाहा! एक प्रदेश प्रति भी वह तेरी चीज़ नहीं। एक अंश—प्रदेश है न आत्मा का।

**और तो क्या तुम्हारे एक प्रदेश का भी प्रतिरूप नहीं है।** तेरा आत्मा असंख्यप्रदेशी, एक प्रदेश में अनन्त ज्ञान आदि गुण भरे हैं। उस एक प्रदेश के साथ लक्ष्मी का ढ़ेर मिलान करे (-हो) एक समय, (ऐसी) वह चीज़ है ही नहीं। आहाहा! तेरे प्रदेश का प्रतिरूप नहीं, वह तो जड़ का रूप है। आहाहा! भगवान! तू तो असंख्यप्रदेशी अनन्तगुण का धनी, अब वह तेरे एक प्रदेश से प्रतिरूप—उल्टा रूप है उसका। तेरे प्रदेश से उस लक्ष्मी का उल्टा रूप है। आहाहा! यह आत्मा चैतन्य से भरपूर, वह जड़ से भरपूर परमाणु धूल है। हम लक्ष्मीवाले हैं। आत्मावाले नहीं न ? ऐसा कहा है। आहाहा! हम चक्रवर्ती हैं, हम सेठ हैं। सेठ न ? जड़ का न ? तुझे समकित नहीं। तुझे साधकपना प्रगटना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई मूलचन्दभाई!

**वंसकी वेलि न अंसकी झांई।** आत्मा के एक प्रदेश का अंश उसकी झांईं उसमें (लक्ष्मी में) नहीं, कहते हैं। समझ में आया? तेरे प्रदेश में तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण व्याप्त हैं। भाई! उस प्रदेश के अंश की झांईं लक्ष्मी में नहीं। भाई! आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहकर उसे साधक होने के लिये... पर की, लक्ष्मी की रुचि मूल में से छोड़े, तब उसे आत्मा की अन्दर रुचि हो, वरना रुचि होगी नहीं। अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द का नाथ प्रभु, ऐसी लक्ष्मीवाला, इस लक्ष्मी की जिसे रुचि है अन्दर प्रसन्नता और उससे प्रसन्न और उससे कुछ ठीक हूँ, ऐसा जो माना है, उसे आत्मा मान्यता में नहीं आता। पाटनीजी! आहाहा! बनारसीदास ने भी गजब मूल बात को... आहाहा! लो।

**दासी कियै विन लातनि मारत,... यदि इसे तुमने नौकरानी बनाकर न रखा तो यह तुम्हें लात मारेगी।** हाय, हाय रे! एक लेख आता है सूयगडांग में श्वेताम्बर में। मरे तब लक्ष्मी के ढ़ेर करना तेरे पास और कहना, यह तेरे लिए मेरी जिन्दगी गयी, अब मैं मरता हूँ, कुछ तो मदद कर। लक्ष्मी के ढ़ेर करना, मरे तब सामने आगे। बाथ... बाथ करना मरे तब। फिर प्रार्थना करना लक्ष्मी से—अरे! तेरे लिये मैंने काल गँवाया। खाने के समय खाया नहीं, पीने के समय पीया नहीं, सोने का ठिकाना नहीं और तेरे लिये मर गया २४-२४ घण्टे। तो अब कुछ तो साथ में आ थोड़ी। लक्ष्मी कहे, परन्तु हम किसी के साथ गये हैं? मुफ्त का पागल किसलिए हमारे निकट प्रार्थना करने आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** यही हो रहा है दुनिया में।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यही हो रहा है, उसकी तो बात चलती है। आहाहा! यह साधकपना क्यों प्रगट नहीं होता कि उसे यह चीज़ें जो हैं, पर... पर... पर की रुचि अन्दर में है। उसे यह पोसाता है। आत्मा पोसाता नहीं, ऐसा कहते हैं। सेठ! यह तो गुजराती भाषा समझ में आये ऐसा है। एकदम सादी भाषा है।

भगवान! तुझे सन्मुख जाना हो तो तुझसे विमुख चीज़ की रुचि और प्रेम छूटे बिना सन्मुख जाया जायेगा नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** प्रेम छोड़कर बाहर निकल गया, उसको भी प्राप्ति....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहाँ छोड़ा है? कुछ छोड़ा नहीं। यह कहा न पहले। छोड़ा नहीं। यह साधु हुए न, उसे तुम गिनते नहीं, ऐसा कहते हैं। साधु हुआ ही नहीं। उसे अभी पुण्य से धर्म होता है और महाव्रत पालते हुए पालूँ, राग को पालूँ—यह सब जड़ को पालने का भाव है। छोड़ा नहीं जरा भी। स्पष्टीकरण करावे न सेठी तो। ऐसा छोड़कर बैठे। हम छोड़कर बैठे... परन्तु छोड़कर बैठे, उसे तो गिनो। छोड़ा ही नहीं।

छोड़ा कब कहलाये? कि जिसे आत्मा के विभावभाव का प्रेम छूट गया है। विभावभाव का प्रेम छूटे बिना लक्ष्मी का प्रेम उसे कभी छूटता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** लक्ष्मी को छोड़कर लक्ष्मी बनावे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब वह का वह है। कुछ किया नहीं। कुछ छोड़ा नहीं। आहाहा! जैसे राग पर है, वैसे लक्ष्मी पर है। तो जिसे राग का प्रेम है, उसके बन्धन का पाक पुण्य का प्रेम है और उस बन्धन के फलरूप से लक्ष्मी आवे, उसका भी उसे प्रेम है। उसके प्रेम का हार है उसके पास पूरा। उसने भगवान आत्मा का प्रेम छोड़ दिया है। आहाहा! समझ में आया?

**दासी कियै विन लातनि मारत,...** दासी कर या न कर, वह तो दूसरी चीज़ है। मैं उसका मालिक, मैं उसका स्वामी नहीं। वह तो परचीज़ है। ऐसा यदि माना नहीं, लात मारेगा। हाय, हाय! अरेरे! लक्ष्मी साथ में आयी नहीं। मर गये। लात मारे। आता है न। दोलत कहते हैं न। आहाहा! दो—लत। लात मारे दो। आवे तब मारे और जाये तब मारे। हाय, हाय! अरेरे! हम निर्धन हो गये। अरे! सधन का नाथ है। अनन्त आनन्द और ज्ञान का नाथ तेरा स्वरूप है। वह ज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है, मेरेरूप से माननेयोग्य वह चीज़ नहीं। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! अरे गजब! सम्यग्दर्शन की जवाबदारी गजब! आहाहा!

भगवान आत्मा... साधक की व्याख्या करते हैं। साध्य-साधक द्वार है न? जिसे लक्ष्मी जहाँ ध्येयरूप से—प्रेमरूप से पड़ी है, उसका साध्य तो भटकने का है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा महा आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी का भण्डार प्रभु, आहाहा! उसकी जहाँ दृष्टि और रुचि हुई, राग के विकल्प से लेकर सारी दुनिया की रुचि उड़

गयी। और वह रुचि उड़े बिना आत्मा की रुचि होती नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पैसा, दुकान-बुकान छोड़ी, इसलिए मिठास छोड़ी है, ऐसा नहीं। लड़के करते हों और अपने जो करते हैं, वह अभी करते हैं और अपने को जो प्रेम है, वह चीज़ प्राप्त कराते हैं। मूढ़ है, कहते हैं। यह लड़के होशियार हों तो अधिक प्राप्त करे। वह कहाँ इसके पास था? भीखाभाई के पास इतना नहीं था, वह लड़के ने प्राप्त किया उसने, लो। परन्तु यह सबके पास कहाँ था? अब इनके पिता के पास कहाँ... ? परन्तु लड़के को... कहो, समझ में आया? ऐई! छोटाभाई के पास ३५ हजार रुपये थे। बस इतना कहलाता भाई। नहीं? उसे खबर है। यह तो लोग बेचारे साधारण व्यक्ति....

यहाँ तो कहते हैं कि पैसे के प्रेमवाले और पैसे में लाभ मनानेवाले मूढ़ हैं। चिमनभाई! भारी कठिन! सच्ची बात होगी? परन्तु लड़के अच्छे हों, अमेरिका जा आया हो, हजार-पन्द्रह सौ पैदा करे, दो-दो हजार पैदा करे महीने में। यहाँ काठियावाड़ में तो बहुत कहलाये। वहाँ अमेरिका में बहुत कम कहलाये। अमेरिका में दस हजार का वेतन। साधारण हों। महीने में दस हजार। साधारण। लोगों को बड़ा-बड़ा वेतन १५-२० हजार। उसमें बचे कितना? थोड़ा। परन्तु तो भी उसका प्रेम। यहाँ तो कहते हैं कि आहाहा! कुछ पैदा करनेवाले हुए, बढ़े। मूढ़ है, कहते हैं, भाई! ऐई! ऊपर से आवे न ऐसा कि मानो क्या पढ़कर आये, ऐसा। अमेरिका से पढ़कर आये, इसलिए अपने हवा लेकर आवे, बँगला और वह मोटरें और वह क्या क्या। और कुछ रूपवान शरीर हो तो वहाँ लोग बहुत आदर करे, बाईयाँ-लड़कियाँ, इसलिए वहाँ ही रखना चाहे उसे। यहाँ ही रह तू। वहाँ जाकर क्या करना है? मैं जा आऊँ, चलो जा आऊँ।

कितने ही ऐसे यहाँ आये हो, विवाह करके यहाँ की छोड़ दे, वहाँ की वहाँ रखते हैं। हिम्मतभाई! सर्वत्र, सर्वत्र है। सब हमारे तो बहुत दृष्टान्त हैं न! हिम्मतभाई को खबर है। इनके परिवार में है। यह परिवार की पुत्री वहाँ है हमडिया। सर्वत्र ऐसा ही चलता है। लखुभाई का पुत्र है न। वह वहाँ गया है। यहाँ की से विवाह किया है, वहाँ गया वहाँ रहे। हमडिया के नागरभाई। यह तो दुनिया, आहाहा! कसाई के घर हैं यह सब। ऐई! आत्मा को हिंसा कर डालते हैं। भगवान ज्ञाता-दृष्टा प्रभु को, ऐसी चीज़ को मेरी, ऐसा माननेवाले आत्मा को हिंसा कर डालते हैं, आत्मा की हिंसा करते हैं। हिंसा कर डालते हैं यह हमारी काठियावाड़ी भाषा है। समझ में आया? आहाहा!

**ऐसी अनीति न कीजै गुसांई।** हे महंत! यह अनीति नहीं हो सकती। भाई! यह लक्ष्मी मेरी और मैं उसका और लक्ष्मी से बढ़ा, तो मैं बढ़ गया, प्रभु! यह तेरी अनीति है। आहाहा! गजब! ऐई हीराभाई! सूक्ष्म मिथ्यात्व का शल्य क्या है, यह बताते हैं, भाई! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु गहरे में रस है, वही बताते हैं। आहाहा! और ऐसे पैसेवाले धर्मात्मा गुणी निर्धन हो, उन्हें भी गिने नहीं। हम ऐसे हैं, हमको कमाना आता है, हम ऐसे पाँच-पाँच लाख की आमदनी एक-एक दिन की... ऐसे हम सब व्यवस्था करते हैं। आती है, इसलिए करते हैं। मर जायेगा ...! मर गया है अभी। जीवता जीव ज्ञाता-दृष्टा, उसका तो प्रेम नहीं। आहाहा! और ऐसी चीज़ का जहाँ प्रेम, एकत्वबुद्धि होकर पड़ा है, मर गया है। जीव किसे कहते हैं? तुझे जीव कहा जाये? कहते हैं। ऐसा कहते हैं यहाँ। ऐई! ऐसा सुना नहीं होगा। मूलचन्दभाई!

**मुमुक्षु :** जड़ का प्रेम। थोड़ा-बहुत पुण्य हो तो यह सुनने को मिले।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बात सच्ची। तथापि उस पुण्य का प्रेम हो तो, कहते हैं कि मिथ्यात्व होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे साधकपना प्रगट नहीं होता, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव अरिहन्त परमेश्वर... 'णमो अरिहंताणं।' वे अरिहन्त भगवान एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने। वे अरिहन्त भगवान ऐसा कहते हैं, वह यह साधक जीव की व्याख्या है। क्योंकि जिसे आत्मा का प्रेम और सम्यग्दर्शन होता है, उसे राग का प्रेम छूट जाता है, लक्ष्मी का और लोकालोक स्वर्ग आदि का प्रेम छूट जाता है। आहाहा! और वह छूटे बिना सम्यग्दर्शन हो? तीन काल में नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक ओर भगवान आतमराम और एक ओर विकल्प से (लेकर) पूरा जगत। आहाहा! देखो, साधक की व्याख्या में यह बनारसीदास ने डाला। उसकी आवश्यकता है वहाँ। आहाहा! यह वस्तुस्थिति ऐसी है, भाई! तत्त्व जो अलग, तेरी जाति का नहीं, उसका तुझे रस? मिथ्यात्वभाव है, भाई! उस (राग का) जब तक रस है, तब तक मिथ्यात्व नहीं टलेगा। आहाहा!

ऐ भगवान! तेरी अनीति है। यह नहीं शोभती। **ऐसी अनीति न कीजै गुसांई।** हे महन्त! पर में अपना मानने में महन्तता नहीं। तेरा आनन्दस्वभाव, उसे मानने में तेरी महन्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! नजरें बदल गयीं नजरें। साधनसम्पन्न कुछ हो पैसेवाले और ठीक सा धनी हो, मकान अच्छा हो, उसका परिवार अच्छा हो। उस परिवार का अब उसमें। बड़ा मकान हो दस-दस लाख का, झूले में झूलता हो, ऐई! ऐसे मजा मानता हो। कहते हैं कि मर गया है, सुन न! किसमें मजा मानता है? वहाँ कहाँ मजा था? तेरे जीव का संहार होता है। मैं सुखस्वरूप हूँ, ऐसा नहीं, ऐसा होता है। मेरा जीवस्वरूप सुखरूप है, ऐसा नहीं, ऐसा तुझे होता है। यह सुखरूप है, ऐसा होता है। उसने आत्मा को माना नहीं। मानता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

तेरी नजर में तो चैतन्य निधान की प्रीति और रुचि होनी चाहिए। उसके बदले उस निधान को छोड़कर तुझे धूल के निधान का प्रेम है, (तो) तेरी अनीति है, भाई! किसी की चीज़ मेरी (है ऐसा) माने, (वह) बड़ा चोर है। आहाहा! गजब बात, भाई! परन्तु घर की हवेली तो अपनी है या नहीं? हवेली को घर में इकट्ठा किया। परन्तु इकट्ठी जड़ है, कहाँ तूने की थी? वह तो जड़, मिट्टी-धूल है लक्ष्मी, वह मिट्टी धूल है। समझ में आया? गजब बात की है, हों! **ऐसी अनीति न कीजै गुसांई।** लो। अब दृष्टान्त देते हैं।

★ ★ ★

**काव्य - ८**

**पुनः** (दोहा)

**माया छाया एक है, घटै बढ़ै छिन मांहि।**
**इन्हकी संगति जे लगैं, तिन्हहिं कहूं सुख नांहि।।८।।**

**अर्थः-लक्ष्मी और छाया एक सारखी हैं, क्षण में बढ़ती और क्षण में घटती हैं, जो इनके संग में लगते हैं अर्थात् नेह लगाते हैं, उन्हें कभी चैन नहीं मिलती।।८।।**

## काव्य-८ पर प्रवचन

**माया छाया एक है, घटै बढ़ै छिन मांहि।**
**इन्हकी संगति जे लगैं, तिन्हहिं कहूं सुख नांहि॥८॥**

माया और छाया। छाया आये और जाये, ऐसा वह कहता था हमारे रामजी मोटरवाला। जयपुर में था न वह वांकानेर का जबेरी। कैसा कहा? मावजी त्रिकम। मावजी त्रिकम जबेरी की दुकान थी जयपुर में। फिर उसका पुत्र भीख माँगता था। हम वहाँ (संवत्) २०१३ के वर्ष में गये थे। एक लड़का... ७५ वर्ष की उम्र होगी, ८० वर्ष की। टाल पड़ी हुई, जीर्ण गरीब के कपड़े, जूते फटे हुए, हाथ में भिखारी का जैसा वह... दुकान में, दुकान में ऐसा कहे, ऐई माँ-बाप, एक पैसा दो। मैंने उसे देखा, कहा, यह कोई मूल गरीब नहीं। इसका तालु देखने से कोई गृहस्थ का पुत्र है। तो हमारे रामजी... उसका क्या नाम था? रामजीलाल।

और हमारे भाई बैठे थे साथ में महेन्द्रभाई। महेन्द्रभाई थे। मैंने कहा। यह व्यक्ति कोई मूल गरीब नहीं लगता। यह व्यक्ति कोई गृहस्थ का रूप दिखता है ऐसा। यह तो एकदम फकीर जैसा भिखारी। वस्त्र जीर्ण, हाथ में पात्र चद्दर का, पैसा दो, पैसा दो। ७५ वर्ष की उम्र। सेठ! आहाहा! तब रामजीलाल कहे कि महाराज! यह तो यहाँ एक वांकानेर के मावजी त्रिकम जबेरी वाँकानेर (वाले) की दुकान थी, उनका यह पुत्र है। ऐ... यह! महेन्द्रभाई ने कहा कि उसे पहिचानते हैं। पैसे गये तब मैंने उसे बहुत सहायता की थी। परन्तु यह कब तक? यह गरीब व्यक्ति, पैसा माँगे। चद्दर का पात्र। चद्दर का हो न! ऐई...! पैसा दो। आहाहा!

फिर उसने कहा, हों! रामजीलाल ने, चढ़ती-फिरती छाया है। कहा यह। छाया चढ़ती-फिरती। छाया आवे और जाये। छाया हो न छाया। आवे और जाये। इसी प्रकार लक्ष्मी आवे और जाये। वह कहीं तेरी नहीं, भाई! आहाहा! लक्ष्मी नहीं, इसलिए तुझे निर्धन कहना, यह कलंक है। और लक्ष्मीवाला है, इसलिए सधन है, यह कलंक है प्रभु! तुझे कलंक है, भाई! लक्ष्मी से तुझे पहिचानना कि यह लक्ष्मीवाला, यह पैसेवाला। ऐई! आहाहा! पुत्र से पिता को पहिचानना, वह भी कलंक है, कहते हैं। इसी प्रकार

लक्ष्मी से पहिचानना कि यह लक्ष्मीवाला, इतनी आमदनी जिसे वर्ष में १०-१० लाख और २०-२० लाख की। अरेरे! ऐसे कोयले के धनीरूप से उसे पहिचानना? समझ में आया? आहाहा! परिवार का बाद में आयेगा। उसका पुत्र और उसका पिता और... अरे! परन्तु पुत्र-पिता किसे हो परन्तु? क्या कहता है तू यह? आहाहा! भाई! तू अनादि का सत्तावाला जीव, तेरे अस्तित्व का तत्त्व तेरा, वह किसी के अस्तित्वरूप तू हुआ नहीं और कोई चीज़ तेरे अस्तित्वरूप आयी हो, ऐसी है कोई चीज़? तेरे अस्तित्व में वह चीज़ अस्तिवाली आयी है कोई? आहाहा!

**माया छाया एक है, घटै बढ़ै छिन मांहि।** क्षण में गरीब हो जाये, क्षण में पैसावाला हो जाये। कोई कहे, एक व्यक्ति को बारह लाख की लॉटरी आयी। एक रुपया डाला था, वहाँ बारह लाख। पागल हो जाये। और यह तो फिर कहे.... दिवस। एक बाई को बारह हजार आये थे जामनगर में आसपास। बाई ने एक रुपया डाला। बारह हजार। बारह हजार... बारह हजार करके पागल हो गयी। आहाहा! अरे, भगवान! यह लक्ष्मी का आँकड़ा तो जड़ का है। वह तेरा कहाँ से हो गया? आहाहा! गजब बात, भाई!

**इन्हकी संगति जे लगैं,...** उसके रस में जो चढ़े, **तिन्हहिं कहूं सुख नांहि।** कहीं उसे सुख नहीं। पैसावाला पैसे के संग में जाये, उसे कहीं सुख नहीं। सुख तो आत्मा में है, उसका उसे भान नहीं। आहाहा! लोग ऐसा कहे, हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। हमारे सगे सुखी हैं। हमारी पुत्री सुखी में दी है, बहुत सुखी में। दामाद बहुत सुखी है। पचास लाख है, आधा करोड़ है। और उसे भी कारखाना है। मूर्ख है। अरे, अरे, गजब! वह मूर्ख... मूर्ख न हो तो साधकपना आना चाहिए न, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह वह बात करते हैं न! बात तो सीधी है। कहते हैं, **इन्हकी संगति जे लगैं,...** स्नेह-प्रेम लगाते हैं। बेचारे वे सब दु:खी हैं। आहाहा! वह गरीब है-दीन है। पर से महत्ता मनाते हैं, वे भिखारी हैं। समझ में आया?

**कुटुम्बियों आदि से मोह हटाने का उपदेश।** साधकपना बतलाना है न? तब साधक होगा, वरना नहीं होगा, ऐसा कहते हैं।

★ ★ ★

## काव्य - ९

**कुटुम्बियों आदि से मोह हटाने का उपदेश** (सवैया इकतीसा)

**लोकनिसौं कछु नातौ न तेरौ न,**
**तोसौं कछु इह लोककौ नातौ।**
**ए तौ रहै रमि स्वारथके रस,**
**तू परमारथके रस मातौ।।**
**ये तनसौं तनमै तनसे जड़,**
**चेतन तू तिनसौं नित हांतौ।**
**होहु सुखी अपनौ बल फेरिकै,**
**तोरिकै राग विरोधकौ तांतौ।।९।।**

**शब्दार्थ:-लोकनिसौ=कुटुम्ब आदि जनों से। नातौ=सम्बन्ध। रहै रमि=लीन हुए। परमारथ=आत्महित। मातौ=मस्त। तनमै (तन्मय)=लीन। हांतौ=भिन्न। फेरिकै=प्रगट करके। तोरिकै=तोड़कर। तांतौ (तंतु)=धागा।**

**अर्थ:-हे जीव! कुटुम्बी आदि जनों का तुमसे कुछ सम्बन्ध नहीं है और न तुम्हारा उनसे कुछ इस लोक सम्बन्धी प्रयोजन है, ये तो अपने मतलब के वास्ते तुम्हारे शरीर से मुहब्बत लगाते हैं ओर तुम अपने आत्महित में मस्त होओ। ये लोग शरीर में तन्मय हो रहे हैं, इसलिए शरीर ही के समान जड़बुद्धि है, और तुम चैतन्य हो, इनसे अलग हो, इसलिए राग-द्वेष का धागा तोड़कर अपना आत्मबल प्रगट करो और सुखी होओ।।९।।**

---

### काव्य-९ पर प्रवचन

---

**लोकनिसौं कछु नातौ न तेरौ न,**
**तोसौं कछु इह लोककौ नातौ।**
**ए तौ रहै रमि स्वारथके रस,**
**तू परमारथके रस मातौ॥**

**ये तनसौं तनमै तनसे जड़,**
**चेतन तू तिनसौं नित हांतौ।**
**होहु सुखी अपनौ बल फेरिकै,**
**तोरिकै राग विरोधकौ तांतौ॥९॥**

**तांतौ**—डोरी। आहाहा! **लोकनिसौं कछु नातौ न तेरौ... (हे जीव!) कुटुम्बी आदि जनों का तुमसे कुछ सम्बन्ध नहीं है।** कोई सम्बन्ध है? दो भाईयों के बीच कुछ सम्बन्ध नहीं? भगवानदास शोभालाल सेठ। ...गजब भाई यह! न्यालचन्द मलूकचन्द। नाम आवे कुछ शाह... भिखारी है, शाह किसका आया? ऐई!

**मुमुक्षु :** बोला नहीं जाता, हमारी जरूरत है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसकी जरूरत है अभी थोड़ी। वह लाना है न मशीन लानी है न वहाँ से। **लोकनिसौं कछु नातौ न तेरौ...** भगवान! परन्तु तू कौन? तेरी दशा में—तेरी अवस्था में वह चीज़—कुटुम्बी है? कुटुम्बी तो उनके नित्य और उनकी पर्याय में वे हैं। तुझमें कहाँ से आये वे? देखो! यह सम्यग्दर्शन होने में पर का मोह और प्रीति वह बाधक है, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** पूरे ही बाधक?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु अब पति-पत्नी दो हों तो उनमें तो पूरा प्रेम हो न! पुत्र न हो, पुत्री न हो, कोई लड़का-लड़की न हो। पकाकर खिलावे कौन? स्त्री हो, वह खिलावे, नंगे भूखे ढँके। कहो, ऐसी लोग बातें करे। विवाह करे तब भाई! वृद्धावस्था के बाद विवाह हो न तब... भाई! घर की स्त्री नहीं। उम्र तो बहुत हो गयी है अब ५५। परन्तु अब नंगे-भूखे कौन रखे? कोई घर का व्यक्ति हो तो करे। लो, ऐसा बोले...। ऐई! परन्तु तू घर का व्यक्ति कहाँ से लाया? वह पर का व्यक्ति तेरा कहाँ से हो गया? वह तो अन्दर रुचि के ऊपर चोट मारते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐई चन्दुभाई! भाई! तू परिभ्रमण करता—भटकता-भटकता अनादि का आया, उसमें इस चीज़ के साथ तुझे सम्बन्ध क्या है? कुछ सम्बन्ध है? .... परन्तु कुछ सम्बन्ध है? आहाहा! और जिसने सम्बन्ध 'मेरा है' ऐसा माना, वह उसे आत्मा का—गुण का सम्बन्ध नहीं कर सकता।

भगवान आत्मा आनन्दकन्द प्रभु का सम्बन्ध वह नहीं कर सकता। यहाँ सम्बन्ध में यह पड़ा, यह सम्बन्ध नहीं कर सकता वह। वह सम्बन्ध तोड़े तो यहाँ सम्बन्ध जोड़े। आसक्ति हो, वह बाद में प्रश्न नहीं। वह तो आसक्ति को जानता है वहाँ कि आसक्ति है। परन्तु जहाँ दृष्टि—जहाँ रुचि में ही पूरा कि यह पुत्र और यह स्त्री मेरी। मर गया है, सुन न! आहाहा! कठिन बात, भाई! सम्यग्दर्शन में इतनी सब चीज़ बतलाने की होगी? भाई! तू तो ज्ञानानन्द आदि से परिपूर्ण तत्त्व है। उसकी दृष्टि और श्रद्धा का अनुभव, उसे यह परवस्तु मेरी, यह दृष्टि में रहे कैसे? आहाहा! छह खण्ड के राज में चक्रवर्ती पड़ा हो। वह छह खण्ड में नहीं। मेरा कोई नहीं। मेरा है, वह मेरे पास है। आहाहा! **कुटुम्बी आदि जनों का तुमसे कुछ सम्बन्ध नहीं है और न तुम्हारा उनसे कुछ इस लोकसम्बन्धी प्रयोजन है।** समझे? तुझे वहाँ उनके साथ क्या प्रयोजन है? वह तो सब लुटेरे हैं। समझ में आया? व्यवस्थित हो तब तक हाँ...हाँ। भोग फलाना, ढींकणा... और शरीर जीर्ण हो और पाँच वर्ष चले क्षय, (टी.बी.), (तो कहे) निपट जाये तो ठीक।

यह ताराचन्दभाई थे न तुम्हारे। वह उनका लड़का था न। लड़के का लड़का सोमचन्द का मगन। तब हम वहाँ थे। उसे तो बहुत समय लग गया। देरी बहुत लग गयी। सोमचन्द का मगन। मरते हुए देरी... जवान व्यक्ति। वे तुरन्त कहते थे लो, कि अब तो यह दुःखी होता है, हों! खाट खाली हो तो... अररर! उनका पुत्र का पुत्र। जवान व्यक्ति मगन। मर गया, फिर नहीं उसकी बहू यहाँ दूसरे में गयी? यहाँ थी न.... खबर है न! वहाँ आहार लेने गये थे उसके वहाँ।

आहाहा! नाटक तो देखो यह सब। जवान व्यक्ति रूपवान, मगन रूपवान था। परन्तु यह पानी लगा कुछ, मुम्बई का पानी लगा। वहाँ गये थे न! ऐसे हमारे सम्बन्ध हो न भाई! सन्तोकबा थे न! आहाहा! वृद्ध कहे, अरे! यह लड़का दुःखी होता है। जितने दिन अधिक, उतना दुःखी होता है। इसलिए झट हो खुलासा, ऐसा। आहाहा! जागरण करना पड़े रात्रि में, क्योंकि कब मरा (ऐसा) न कहे तो बाधा करे जातिवाले। कि कोई था नहीं मरते समय ख्याल (रखनेवाला)? कितने बजे मरा? ढाई बजे? भाई बराबर हमको खबर नहीं। कोई वहाँ था ही नहीं? हाय, हाय! समझ में आया? अरे! तुझे उसके साथ क्या प्रयोजन है? वह तो परचीज़ है। रुचि छोड़ और स्वभाव की रुचि कर, ऐसा यहाँ कहते हैं। विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १६४, भाद्र कृष्ण १४, शनिवार, दिनांक १८-०९-१९७१**
**साध्य-साधक द्वार, पद ९ से ११**

यह समयसार नाटक, साध्य-साधक अधिकार। इसमें साधक होने के लिये क्या करना, यह बात चलती है। जिसे धर्म का साधनपना करना हो, उसे पर की प्रीति—रुचि छोड़नी पड़ेगी, ऐसा कहते हैं। पहली तो लक्ष्मी की बात आयी। लक्ष्मी जड़ है और उसकी जो रुचि रही तो सम्यक् दृष्टि की रुचि नहीं होगी। चन्दुभाई! आहाहा! यह दोपहर में चला था परसों और रात्रि में नारणभाई गुजर गये, लो। लक्ष्मी जड़ है। पैसा, इज्जत, कीर्ति, मकान, वस्त्र, जेवरात-गहने, वह सब जड़ है। उसकी जिसे रुचि है, उसे आत्मा की रुचि नहीं होती। एक म्यान में दो नहीं समाते। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती।

**मुमुक्षु :** क्या करना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह कहते हैं न, रुचि छोड़ दे। ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** पैसा नहीं छोड़ना, रुचि छोड़नी?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पैसा तो कहाँ है? छोड़े किसे? रुचि छोड़ दे, ऐसी बात है। पैसे की रुचि छोड़े तो पैसा रखना, ऐसा नहीं। पैसा तो जड़ है, अजीव है। जगत की एक चीज़ है मिट्टी। उसके प्रति रुचि और रस है, तब तक उसे आत्मा के आनन्द का और आत्मा के स्वभाव का रस नहीं आवे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

दुश्मनों की तलवार की अणी में बैठा हो तो वह ऐसा माने कि यह अणी मेरी है और मुझे लगे तो मुझे ठीक है? ऐसा माने? तलवार की धार ऐसा.... लेकर बैठा हो, बीच में खड़ा है लो। उसमें रुचि होगी तलवार में? बहुत अच्छी धार ठीक है, हों! इसी प्रकार लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, मकान, वह सब तलवार की धार जैसी अजीव चीज़ है। उसमें जिसे रस है, उसे आत्मा का रस नहीं। सेठ! ऐसा आया है यह तो। सम्यग्दर्शन कैसे हो? लक्ष्मी की रुचि छूटे तो आत्मा की लक्ष्मी की रुचि हो। भीखाभाई! यह ऐसी बात है कटाकटी की। आहाहा! पश्चात् तो इसमें बहुत दृष्टान्त दिये हैं। कहाँ से तू आया? कहाँ है तू? यह लक्ष्मी कहाँ की? यह तो जड़ चीज़ है। आहाहा! मिट्टी-धूल,

पुद्गल-अजीव। उस अजीव की जिसे रुचि है, उसने अजीव को जीव माना है। समझ में आया? यह कहा न उसमें?

**माया तुम्हारी न जाति न पांति न, वंसकी वेलि न अंसकी झांई...** तेरे वंश में यह वस्तु लक्ष्मी नहीं। तेरे वंश में तो अनन्त आनन्द और शान्ति पड़ी है। उसकी परम्परा रहे, वह तेरा वंश है। लक्ष्मी का वंश, दस पेढी से हम लक्ष्मीवन्त हैं। लक्ष्मीवन्त था कब? वह तो जड़ है। जिसे आत्मा के अतिरिक्त लक्ष्मी की—जड़ की अन्दर रुचि—रस है, वह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है। जिसे पुण्य परिणाम में रस है, वह मिथ्यात्व है।

**मुमुक्षु :** ....आत्मा त्रिकाल ऐसा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु त्रिकाल ऐसा है, कब उसे बैठे? कि यह चीज़ जड़ उसकी रुचि छोड़े तो, त्रिकाल ऐसा है, ऐसा बैठे (जँचे)। पण्डितजी! आहाहा! भाई! आत्मा मानना अर्थात् क्या? भगवान आत्मा आनन्द की लक्ष्मी सम्पन्न ध्रुव है। उसकी जिसे दृष्टि और उसका विश्वास—यही मैं हूँ, ऐसा लाना हो, उसे जड़ की लक्ष्मी का विश्वास, रुचि छोड़ देनी पड़ेगी। समझ में आया? आहाहा!

**ऐसी अनीति न कीजै गुसांई...** आहाहा! तू जड़ का दास होकर रहता है, ऐसा कहते हैं। लक्ष्मी का दास। यह बात ऐसी आयी है अन्दर... जो पुण्य परिणाम का दास है, वह भी मूढ़ और मिथ्यादृष्टि आत्मा की शान्ति का वह घात करता है। जिसे अजीव के लक्ष्मी धूल—मिट्टी, आहाहा! उसका जिसे अन्दर रुचि में प्रेम (है कि) यह ठीक है, मुझे मजा आता है, वह सब सुविधा के साधन अच्छे खड़े हुए हैं—ऐसा माननेवाला जड़ को ही अपना मानता है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** पुण्य की महिमा करता हो, ऐसा आता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पुण्य की महिमा क्या, पुण्य से यह होता है, इतनी बात बतलाते हैं। नामप्रकृति बतलाते हैं, वह प्रकृति मेरी है, ऐसा माने? वह तो जड़ है।

जिस भाव से तीर्थंकर पदवी बँधे, वह भाव जड़-अचेतन है। उस अचेतन का रस जिसे हो, उसे तो वह प्रकृति परिणाम आते ही नहीं।

**मुमुक्षु :** महिमा तो बहुत गायी है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसकी गायी है ?

**मुमुक्षु :** तीर्थंकर नाम गोत्र की।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो उसकी वस्तु का स्वरूप बतलाया, परन्तु है तो जड़। आहाहा! भाई! चैतन्य से विरुद्ध जाति के रसवाले को उससे विरुद्ध जाति का भगवान उसे नहीं बैठता। इसलिए यह बनारसीदास ने स्पष्टीकरण किया है। अपने प्रेम रखो पैसे का और धर्म का प्रेम हो, दो नहीं रहते। आहाहा! समझ में आया ? अब अपने यहाँ तो अभी कुटुम्ब के साथ आया है। **कुटुम्बियों आदि से मोह हटाने का उपदेश।** यह परिवार परवस्तु, उसका जिसे प्रेम है, उसे आत्मा का प्रेम नहीं होता।

**लोकनिसौं कछु नातौ न तेरौ न,**
**तोसौं कछु इह लोककौ नातौ।**
**ए तौ रहै रमि स्वारथके रस,**
**तू परमारथके रस मातौ॥**
**ये तनसौं तनमै तनसे जड़,**
**चेतन तू तिनसौं नित हांतौ।**
**होहु सुखी अपनौ बल फेरिकै,**
**तोरिकै राग विरोधकौ तांतौ॥९॥**

आहाहा! **लोकनिसौं कछु नातौ न तेरौ...** कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र, पैसा, पुत्र, वह कहाँ तेरे थे ? वे तो परवस्तु हैं। समझ में आया ? पत्नी को पति मेरा और पति को पत्नी मेरी, (ऐसा लगता है)। मूढ़ है, कहते हैं। मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** तब तो दुनिया का बड़ा भाग मिथ्यादृष्टि है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बड़ा भाग मिथ्यादृष्टि की ही बात चलती है, यह साधक होने के लिये। जो चीज़ पर है—स्त्री, पुत्र, पुत्रियाँ, दामाद इत्यादि इत्यादि... माता-पिता, वे तो पर हैं, उनके साथ तेरा जरा भी सम्बन्ध नहीं, वह तो परचीज़ स्वतन्त्र जगत की चीज़ है। उसकी तू रुचि करता है कि यह मेरे। मिथ्यादृष्टि को आत्मा की रुचि नहीं होती। ऐ भीखाभाई! यह तो आयी चोट अन्दर, हों!

**मुमुक्षु :** ठण्डा हो गया है सब।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ठण्डा हो गया न? पैसे चूड़ियों के और हीराभाई—दोनों, दोनों आये इसमें। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! जो चीज़ पर है—स्त्री, कुटुम्ब परिवार, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, वह सब परवस्तु है। जगत की (वस्तु) जड़, शरीर वह जड़। उसका आत्मा तो चैतन्य तुझसे पर है। उसकी जिसे रुचि है कि यह मेरे... सम्बन्ध नहीं और सम्बन्ध मानता है। मूढ़ है, भले त्यागी हुआ हो, साधु होकर। ऐ मूलचन्दभाई! बात तो ऐसी है।

**मुमुक्षु :** चेला हो उसे तो अपना माने न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चेला, धूल भी चेला, किसका चेला होगा? चेला किसे? गुरु कौन और चेला कौन? वह वस्तु पर है। आहाहा! समझ में आया? उससे मोह हठे बिना आत्मा में सावधानी की दृष्टि होगी नहीं, ऐसा कहते हैं। बात ऐसी कहते हैं। साधारण बात लगती है, परन्तु उसमें बड़ा मिथ्यात्व और समकित की बात का विवेक है। आहाहा! यह क्या? यह तो पर है। परन्तु पर है, उसकी जिसे ऐसी रुचि है कि यह ठीक है। यह ठीक है, मुझे साधन है, मेरे सब रखवाले ये जगे हैं, मेरी सुविधा के साधन सब हैं। मूढ़ है, कहते हैं। ऐ मूलचन्दभाई! ऐ सेठ!

**मुमुक्षु :** यह तो सबको भिन्न कर देने की बातें हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वस्तु ऐसी है वहाँ। ये पर से ढीला नहीं पड़े, तब तक आत्मा का उग्र पुरुषार्थ नहीं कर सकेगा, ऐसा कहा है। अभी यह कहेंगे। अभी कहेंगे।

**तोसौं कछु इह लोककौ नातौ...** उसके साथ तुझे सम्बन्ध नहीं और तेरे साथ उसे कुछ सम्बन्ध नहीं। वह उसके कारण से आये और तू तेरे कारण से है, भाई! किसी का किसी से कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यग्दृष्टि स्त्री हो तो वह पति मेरा, ऐसा अन्तर में वह मानती नहीं। आहाहा! गजब बात है। कौन पति? कौन पत्नी? आत्मा स्वतन्त्र है। यह पति मेरा और मेरा भरतार, मेरा पालन-पोषण करेगा। भगवान! तू कौन और वह चीज़ कौन? वह चीज़ तो पर है न! पर का कुछ सम्बन्ध भी नहीं था चौरासी के अवतार में। आहाहा! समझ में आया?

अभी नहीं था भाई वहाँ? केंप (वढवाण) में अपने गिरधरभाई थे। गिरधरभाई आते हैं न! उनके भाई का पुत्र चौदह वर्ष का, खेलता था। चौक में खेलता था। उसमें,

**मुमुक्षु :** खून की नस टूट गयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नस टूट गयी। क्या कहते हैं उसे?

**मुमुक्षु :** हेमरेज।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हेमरेज हो गया। अस्पताल में ले गये। कितने घण्टे रहा पंकज?

**मुमुक्षु :** आठ दिन थे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आठ दिन? छह दिन कहता था कोई। दिन, हों, छह घण्टे नहीं।

**मुमुक्षु :** कहीं पर गिर गया था?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खेलते-खेलते नस टूट गयी। चौदह वर्ष का जवान। खेलता था और नस टूट गयी। अब वहाँ उसे टूटने का समय हो, तब टूटे ही न! अस्पताल में छह दिन रहा।

**मुमुक्षु :** आयुष्य पूरा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह दशा जड़ की। जड़ कहाँ तेरा है कि वह उसे रख सके? यह कहेंगे। यहाँ तो अभी परिवार के साथ। पति को पत्नी मेरी और पत्नी को पति मेरा। जो द्रव्य उसका नहीं और वह द्रव्य मेरा माना, यह मिथ्यात्व का मोह है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह तो घर में भारी आया, भाई! इतना सब? सम्यग्दर्शन में इतना सब विघ्न?

**मुमुक्षु :** यथार्थ है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यथार्थ है।

भाई! तू तो आत्मा है न, प्रभु! और वह भी शुद्ध चैतन्य की मूर्ति, वह आत्मा। ऐसे आत्मा के प्रेम के अतिरिक्त यह पुण्य के-पाप के परिणाम का प्रेम, वह भी मिथ्यात्व है। क्योंकि स्वभाव से वह अन्य जाति है। तो यह स्त्री, पुत्र, परिवार, माता-पिता तो कहीं रह गये। आहाहा! वे मेरे और मैं उनका... यह आता है न समयसार

(में)। नोकम्मे कम्मे। यह श्लोक, ऐसे श्लोक उसमें भी आते हैं इस प्रकार के सब। 'त्रिलोक पण्णति'। सब श्लोक उसमें आये थे। त्रिलोक पण्णति। नोकर्म, कर्म और परवस्तु में मैं था, वह मुझमें है और मेरे होंगे, यह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। यह श्लोक उसमें है। समझ में आया? त्रिलोक पण्णति में। समयसार की गाथायें, प्रवचनसार की, पंचास्तिकाय की खास-खास गाथायें। **'अहं एको खलु शुद्धो'।** सब गाथायें। पहले कहा था एकबार। कहा था एकबार। बहुत गाथायें। मूल तो लोक का वर्णन किया, परन्तु उसके साथ वस्तु की स्थिति भी ऐसी है, ऐसा वर्णन करते हैं न साथ में।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है, लोक का ऐसा स्वरूप है, परन्तु है तुझसे भिन्न। समझ में आया?

**ए तौ रहै रमि स्वारथके रस,...** भाई! तेरी पत्नी और तू पत्नी का पति, यह पुत्र और पुत्रियाँ, सास और ससुर, माता और पिता, यह तो अपने स्वार्थ में राच रहे हैं। पुत्र का शरीर ठीक हो, तब तक ठीक। जहाँ ऐसे सूख जाये, दो-चार महीने, छह महीने-आठ महीने-दस महीने वर्ष-दो वर्ष चले, हो गया। अब छूट जाये तो अच्छा, हमे जागरण करना पड़ता है। आहाहा! यह पागल... पहले कहता था न कि मेरे हैं। ऐई! अब पलंग खाली हो तो अच्छा, ऐसा कहे। खुल्ला कहे। हमने सुना हुआ है। डॉक्टर को कहा ताराचन्दभाई उपाश्रय में आकर कहे, अरेरे! मगन तो अब बहुत... रात्रि में जागरण करना पड़े और अब तो पलंग... देह छूट जाये, बहुत दुःखी है। ऐसा करके दुःखी बहुत है। ऐई! यह सब ही ऐसे, हों! तुमको क्या कि मेरा पुत्र अच्छा और उसका ऐसा। सब स्वार्थ के पुतले हैं। ठगों की टोलियाँ हैं सब। आ गया है पहले अपने।

नियमसार में आ गया है। अरे! तेरी चीज़ का तुझे प्रेम नहीं होता और परचीज़ का प्रेम जब तक तुझे रोके, आत्मा हाथ नहीं आवे। आसक्ति अलग चीज़ है और रुचि का प्रेम अलग चीज़ है। सम्यग्दृष्टि को आसक्ति, वह तो अपनी निर्बलता का दोष है। और रुचि है, वह तो परवस्तु उसकी नहीं और मेरी (है-ऐसी) मानी, उसका दोष है। आहाहा! कठिन भाई वीतरागमार्ग का तो स्वरूप! आहाहा! अब लड़का अच्छा हो तो उसकी महिमा करे। हमारा लड़का पका है न! आहाहा! परिवार में कुछ ठिकाना न हो

तो भी मेरा भाई ऐसा है और वह ऐसा है और उसकी इज्जत ऐसी है। परन्तु लेना-देना नहीं होता तुझे, क्या करने बैठा तू? समझ में आया?

**ए तौ रहै रमि स्वारथके रस,...** अरे! जगत के प्राणी पत्नी-पति, पुत्र-पुत्रियाँ, सास-ससुर और माँ तथा पिता अपने स्वार्थ के लिये सब पड़े हैं। कोई मर जाये तो ऐसे रोवे कि कहाँ गया होगा? उसे स्वयं को दिक्कत आयी है। जरा व्यवस्थित कुछ कमाता था, वह गया, उसका रोता है। अपने स्वार्थ को रोता है। अरे! कहाँ गया होगा वह मरकर? है उसका विचार? ऐसा होगा?

**मुमुक्षु :** कोई नहीं रोता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं?

**मुमुक्षु :** यह भी वह शोक मनाने आवे, उसे नुकसान होगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह बातें करे। अरेरे! वह ऐसा था। ऐसे पाँच-छह वर्ष होता तो छोटे लड़के थे, ऐसा है, वैसा है। बालबच्चा लड़का, छोटी उम्र में मर गया, अब पीछे कौन खिलायेगा? कहो, उसका शोक, खरखरा समझ में आता है? हमारी सौराष्ट्र की भाषा।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ बैठने जाते हैं। बैठने जाकर कहे न शोक मनाया। आहाहा!

**मुमुक्षु :** आश्वासन।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आश्वासन। परन्तु किसका आश्वासन? वह स्वार्थ का आश्वासन है। उसे स्वयं को सुहाता है, उस भाव को... यह पाँच वर्ष-दस वर्ष होता तो अपना घर भी तारता और ऐसा होता और वैसा होता। आहाहा!

वह तो **स्वारथके रस, तू परमारथके रस मातौ।** आहाहा! तू तो परम आनन्दस्वरूप प्रभु तुझमें—उसमें रस ले। उसमें **मातौ** हो। आहाहा! तब उसे सम्यग्दर्शन होगा, वरना सम्यग्दर्शन नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन अर्थात् कुछ ऐसा आत्मा है और यह है और मान ले, ऐसा नहीं। समझ में आया? वस्तु का जैसा स्वरूप है, उससे विपरीत तत्त्व को मानता है वह। **ये तनसौं तनमै तनसे जड़,...** वे सब शरीर में तन्मय हैं।

तेरे शरीर को ही मानता है और उसके शरीर में वह तन्मय है। स्त्री, पुत्र, परिवार, माता-पिता के शरीर में तन्मय है। इससे तेरे शरीर में उन्हें मात्र यह शरीर को ही मानते हैं। आहाहा! **ये तनसौं तनमै...** उस शरीर में तन्मय है वे लोग। आहाहा! यह तो दिन-रात इसे सम्हाले, ऐसा सम्हालना और ऐसा खिलाना और ऐसा सुलाना और ऐसा करूँ। ....वह तो जड़ है। जड़ के साथ सगाई की और अब मुर्दे के साथ विवाह करूँगा।

अनुभवप्रकाश में आता है। अनुभवप्रकाश। दीपचन्दजी (कृत)। यह जड़ के साथ सगाई की। आहाहा! अब यह तो जगत के रजकण जड़ मिट्टी-धूल हैं। तन्मय उसमें जो है, उसे आत्मा का तन्मयपना प्रगट नहीं होगा। समझ में आया? और **ये तनसौं तनमै तनसे जड़,...** वह तो शरीर के मोही जीवों को तन में—शरीर के कारण मोह है। तेरा आत्मा है, उसका कुछ है नहीं। आहाहा! जादवजीभाई! गजब यह तो चला पूरा। आहाहा! यह तन से जड़। वह तो शरीर की जड़बुद्धि है। आहाहा! देखो, यह जड़बुद्धियों को मेरा मानना, तू जड़ है, कहते हैं। आहाहा! गजब! बनारसीदास ने साध्य-साधक शुरु करते हुए ऐसी बात ली। मूल मुद्दे की रकम रखी। आहाहा! प्रभु! तू कौन? कहाँ और कैसे? तू तुझमें वैसे रहना वह तू। पर के कारण तू, तेरे कारण वह, ऐसा है नहीं। आहाहा! यह उसकी पद्धति है।

**चेतन तू तिनसौं नित हांतौ।** त्रिकाल तू उससे भिन्न है। तो वर्तमान में कहाँ से तेरे हो गये और सम्बन्ध किया तूने? आहाहा! यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में यह मिथ्यात्वभाव विघ्न करनेवाला है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **होहु सुखी अपनौ बल फेरिकै,...** भगवान! तू दुःखी है इस प्रकार से, हों! पर को मेरा मानना और वे मुझे मानते हैं, मुझे बहुत मान देते हैं, इसलिए मेरे हैं। दुःखी है, भाई! मिथ्याभ्रमणा से दुःखी है। समझ में आया? **होहु सुखी अपनौ बल फेरिकै,...** सुखी हो अब। मैं तो आत्मा हूँ। यह शरीर भी मेरा नहीं। स्त्री, पुत्र, परिवार, व्यापार-धन्धा। हमारी दुकान जोरदार चलती है। परन्तु दुकान कहाँ से आयी तेरी? तेरे पिता की कहाँ और तेरी कहाँ से आयी? ऐई! क्यों हीराभाई के पिता की तो नहीं थी, परन्तु हीराभाई की कहाँ से आयी यहाँ? आहाहा!

**मुमुक्षु :** यह जाननेयोग्य बात....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हमारे कुँवरजीभाई कहते थे। आहाहा! अपनी कुँवरजी जादवजी की दुकान जोरदार पेढी। बहुतों की टूट गयी परन्तु हमारे तो यहाँ चढ़ती... चढ़ती... सात सौ रुपये महीने था। पहले आमदनी वर्ष की। सात सौ। तब (संवत्) १९६३ के वर्ष की बात है। पहली दुकान ६३ में की, मुश्किल से महीने में ७००-८००। परन्तु तब खर्च इतना नहीं था। करते... करते... करते दो लाख की आमदनी वार्षिक। देखो! हमारी दुकान कैसी चलती है! परन्तु दुकान तेरी थी ही कब? सेठ! दुकान जड़ की। आहाहा! यह व्यापार सब अजीवतत्त्व का और यह सब व्यापार की पर्याय अजीवतत्त्व की और तू कहे हमारी पेढ़ी है। मूढ़ है! अरे, अरे गजब!

**होहु सुखी अपनौ बल फेरिकै,...** मैं तो चैतन्य हूँ। जाननेवाला-देखनेवाला आनन्द हूँ। ऐसा अपना बल स्फुरित करके, हों! वह छोड़ दे, कहते हैं, ममता (छोड़ दे)। रुचि से छोड़ दे। छोड़ने के पश्चात् अस्थिरता आवे, वह पर को मेरा मानने की अस्थिरता नहीं। वह तो अपने में स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए जरा अस्थिरता का भाग आता है। समझ में आया? परन्तु वह अस्थिरता भी मेरी नहीं। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात! 'ज्ञानी को भोग निर्जरा को हेतु है।' इसलिए अपने स्त्री और भोग भोगें तो निर्जरा का हेतु है। मर जायेगा, सुन न! परपदार्थ में रुचि और रस आता है, वह मिथ्यात्व का रस है। आहाहा! समझ में आया? अकेला भटकता आता है। नहीं आया नियमसार में? ऐगो मरदि जीवो ऐगो, कर्मरहित होकर मोक्ष अकेला जाता है। रात्रि में आया न? यह तो मूल गाथा है।

**'एगो मरदि जीवो एगो य जीवदि सयं...'** (नियमसार गाथा १०१) कोई साथ में नहीं था, भाई! राग, वह भी तेरी चीज़ नहीं तो फिर रजकण और स्त्री-पुत्र कहाँ से आ गये तेरे? बड़े बँगले बनाये पाँच-दस लाख के मकान। ऊपर नाम ... फलाना नाम। ऐ! नाम भी तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं सब? नाम बड़े-बड़े लिखे सुधरे हुए। वास, निवास, फलाना, ढींकणा।

**मुमुक्षु :** सुन्दर निवास।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सुन्दर निवास। इनके पुत्र का नाम सुन्दर। सुन्दर निवास।

लड़का प्रसन्न हो, आहाहा! ऊपर भी अपना... काम कराया और नाम दिया मेरा, हों! आहाहा! मूर्ख के तो... ऐसी बात है ऐसी। बनारसीदास खुल्ला-खुल्ला करके रखते हैं। जो गूढ़ और गम्भीररूप से भाषा है, उसे स्पष्ट करते हैं। आहाहा! **होहु सुखी अपनौ बल फेरिकै,...** अपना बल स्फुरित करके। मैं आनन्दमय आत्मा हूँ। शरीर, परिवार तो मेरा नहीं, राग भी मेरा नहीं। आहाहा! **अपनौ बल फेरिकै,...** ऐसा कहा न! अपने पुरुषार्थ से। आहाहा!

**तोरिकै राग विरोधकौ तांतौ....** यह मेरे हैं, ऐसा राग और यह मेरे नहीं, ऐसा द्वेष—दोनों का तांता छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? तू तो ज्ञाता-दृष्टा और ज्ञान में ज्ञात हो, ऐसा ज्ञेय है। वह ज्ञेय ज्ञात हो, उसे मेरा (है ऐसा) मान, वह महामूर्खता है, ऐसा कहते हैं। मूलचन्दभाई! ऐसा सुनने का कहाँ मिलता है वहाँ? सब चोपड़े.... आहाहा! मक्खन चोपड़े सब। ऐ सेठ! बापू! दृष्टि को बदलने में अनन्त पुरुषार्थ है। हाँ, यह बात साधक की करते हैं। अनन्त पुरुषार्थ है, भाई! जो इसके नहीं, उनकी रुचि छोड़ना और जो मेरे हैं, उनकी रुचि करना, उसमें अनन्त पुरुषार्थ है। आहाहा! पुरुषार्थ कहीं बाहर में कूदता नहीं। लड़के की व्यवस्थितता न हो तो स्वयं दु:खी हो। अरेरे! लड़के को व्यवस्थितता नहीं है। अरे! मरण का समय आया। अरेरे! लड़का लाईन पर चढ़ गया होता और फिर मौत होती तो चिन्ता नहीं थी। आहाहा!

परन्तु अब यह वह कहीं लग पड़ा है न कचरे को। उकरडा समझते हैं? कूड़े का ढ़ेर। कूड़ा... कूड़ा ढेर। इसी प्रकार जगत का कूड़ा का ढ़ेर वह तेरा कहाँ था? सुन न अब।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बिल्कुल यह बात भी... वह तो लौकिक बात चलती है। निर्धन दु:खी और यह पैसेवाला सुखी। यह बात ही सब व्यवहार की है। वह व्यवहार की बातें आवे। उसे धूल पैसा रखने से रहता है? उसके हैं वे रहें? आहाहा! अरे! पैसे में आसक्ति और रुचि हो, वह चीज़ उसकी नहीं। आहाहा! वह तत्त्व को अतत्त्व मानता है। भगवान आत्मा ज्ञायकतत्त्व जानने-देखनेवाला तत्त्व उन्हें—ज्ञेयतत्त्वों को अपने

माने, वह तो विपरीत है। ज्ञेय को ज्ञायकतत्त्व माना। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है, भाई! यह कहीं पोपाबाई का राज नहीं। आहाहा! गजब परन्तु बनारसीदास ने!

**तोरिकै राग विरोधकौ तांतौ...** यह मुझे ठीक है और यह मुझे ठीक नहीं। तेरी दोनों रुचि झूठी है। समझ में आया? यह दुश्मन है और यह सज्जन है—दोनों तेरी राग-द्वेष की रुचि झूठी है। आहाहा! मलूकचन्दभाई! कैसे होगा परन्तु यह? अब यह न्यालभाई का बँगला देखकर बैठे और बापूजी कहे तो ऐसा कितना हो जाये अन्दर पौरस चढ़े उसमें। आहाहा! बिना खाये पौरस चढ़ जाये अन्दर। परन्तु कुछ बढ़कर बहुत नहीं बढ़ा। थोड़ा बहुत बढ़ा है, ऐसा कोई कहता था। आहाहा! गजब यह गजब!

**मुमुक्षु :** वह तो शरीर को। उसमें उसे क्या है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह शरीर, वह मैं हूँ और यह बढ़ा, इसलिए बढ़ा। अच्छे लड़के की हूंफ हो न ऐसे कुर्सी पर बैठा हो, बड़े-बड़े उसे मानते हों, उसे ऐसा कहे कि यह मेरे बापूजी हैं। आहाहा! मेरे बापूजी हैं, कहे। हें! तुम बड़े ऐसे करोड़पति और ऐसे तुम्हारे वैभव और तुम्हारे पिता यह?

ऐसा जरा हुआ था। वळा में। उमराला के पास वळा है न वळा। वळा में एक सुधारा हुआ व्यक्ति था जवान सुधरा हुआ। बड़ा अधिकारी और उसका पिता ऊँट पर बैठकर निकला। ऊँट... ऊँट। ऊँट समझते हैं। वळा है न वळा। यहाँ उमराला के पास। वल्लभीपुर। हमारे गाँव से सात मील। पहले श्वेताम्बर के शास्त्र वहाँ लिखे गये। वल्लभीपुर (में)। वहाँ एक उसका पिता और पुत्र दोनों ऊँट पर बैठकर कहीं जा रहे थे। उसमें यह वणा को खबर पड़ी। वह बड़ा अधिकारी। उसको खबर पड़ी, इसलिए कहा, बाहर से नहीं जाया जायेगा तुम भोजन करके जाओ। समझे न! वह मिलने आया। उसके पिता को और ऊँट को जरा बाहर रखा और स्वयं मिलने आया। यहाँ भोजन बिना नहीं जाने दूँगा। कोई दूसरा है कोई? हाँ, एक मैं हूँ और एक व्यक्ति है। पिता को व्यक्ति कहा। सादा व्यक्ति और वस्त्र सादा और यह अप-टू-डेट। एक मैं हूँ और एक व्यक्ति है। परन्तु भोजन बिना नहीं जाया जायेगा। ठीक, ऐसा आग्रह किया। जाओ उनके व्यक्ति और ऊँट को बुलाओ, यहाँ आवे।

वह व्यक्ति लेने गया कि अभी साहेब आये हैं, तुम उनके व्यक्ति हो न? कहे, हाँ। उसका बाप हूँ, कहे। बाप ने गाली दी उसकी भाषा में। ...यहाँ मुझे व्यक्ति ठहराया लगता है। ऐसा नहीं कहा कि मेरे पिता हैं। एक मैं और एक व्यक्ति है। सेठ! आहाहा! यह ऐसा सब फटे हुए में सब होगा। यह बाहर खुल्ला पड़ा, किसी को अन्दर में हो। आहाहा! फिर जरा भाई वहाँ की भाषा बोला। तुम उनके व्यक्ति हो? कहे, हाँ मैं उसकी माँ का पति हूँ। यह क्या? उसकी माँ का पति हूँ, ऐसा। वह व्यक्ति सुनकर एक ऐसा... और यह तो साहेब ने ऐसा कहा, मेरा व्यक्ति है। उसने हठ की कि भोजन करके जाना। उसे ऐसा हो गया कि इसने मेरा अपमान किया है यहाँ। वहाँ कहा दरबार साहेब को। वह भोंटा पड़ गया।

एक वेतन कोई पाँच-दस हजार का हो गया और सब परिचित हो गये। यह मेरा व्यक्ति है, ऐसे तुझे ठहराना है? सेठ! बाप का हीनपना देखकर... वस्त्र सादा हो न, सादे व्यक्ति को। ऐसे अधिकारी के ऐसे पिता? ऐसा। यह तो वह सादा वस्त्र देखे। यह सब स्वार्थ का फिर ऐसा है सब। नाटक ऐसे हैं। वह कहे, उसकी माँ का पति हूँ। मैं कहीं व्यक्ति नहीं। और जाकर कहा दरबार को। वह बैठा था। हाय... हाय! व्यक्ति कहता था। आहाहा! इसी प्रकार पूरी दुनिया इस रीति से है, हों! जहाँ व्यवस्थित देखे तो मेरा... मेरा माने। और जहाँ व्यवस्थित हो... साले का साला और उसका साला हो। परन्तु पैसेवाला हो तो उसे कहे, यह मेरे साले का साला। ऐसा करके भी पैसा उसके पास है न बड़ी इज्जतवाला है, ऐसा। दो-पाँच करोड़, दस करोड़ है। उसकी कीर्ति की हूंफ लेने के लिए ऐसा कहे। और सगा साला हो और यदि निर्धन हो तो उसका नाम न ले कि यह मेरा साला है। कोई फलाने गाँव का है। आहाहा! यह दुनिया की रुचि। आहाहा!

कहते हैं, तोड़ राग और विरोध। राग और द्वेष। यह मेरे, ऐसा राग और यह मेरे शत्रु, ऐसा द्वेष है, तब तक मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? चन्दुभाई! ऐसा स्पष्टीकरण गजब भाई यह!

**मुमुक्षु :** सब पोल खोल दी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बनारसीदास ने तो काम किया है न परन्तु वहाँ। यह साधक

की बात करनी, वहाँ उसे कहा। वह तेरी रुचि तुझे अवरोधक है। सम्यक्त्व होने में वह रुचि कि यह मेरे, यह तुझे अवरोधक है। यह मेरे नहीं होने दे। आहाहा!

लो। दसवाँ पद। **इन्द्रादि उच्चपद की चाह अज्ञानता है।** गजब बात रखी है।

★ ★ ★

## काव्य - १०

**इन्द्रादि उच्च पद की चाह अज्ञानता है** (सोरठा)

**जे दुरबुद्धी जीव, ते उतंग पदवी चहैं।**
**जे समरसी सदीव, तिनकौं कछू न चाहिये।।१०।।**

**अर्थः-जो अज्ञानी जीव हैं, वे इन्द्रादि उच्चपद की अभिलाषा करते हैं, परन्तु जो सदा समतारस के रसिया हैं, वे संसार सम्बन्धी कोई भी वस्तु नहीं चाहते।।१०।।**

---

### काव्य-१० पर प्रवचन

---

**जे दुरबुद्धी जीव, ते उतंग पदवी चहैं।**
**जे समरसी सदीव, तिनकौं कछू न चाहिये॥१०॥**

मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव इन्द्रादि उच्च पद की अभिलाषा करते हैं। हम देव में जायेंगे और देव होंगे। अरे मूढ़! तू कहाँ है देव? आहाहा! ऐसी उच्च पदवी को इच्छता है। समझ में आया? परन्तु सदा समतारस के रसिया **समरसी सदीव...** धर्मी तो ज्ञाता-दृष्टा स्वरूप समतावाला है। उसे यह इन्द्र का पद मिलना और अहमिन्द्र हूँ, ऐसी समकिती को इच्छा होती ही नहीं। उसे इच्छा हो तो मुक्ति की। वह इच्छा भी हो परन्तु वहाँ तक विरोध है। आहाहा! समझ में आया? **जे दुरबुद्धी जीव, ते उतंग पदवी चहैं।** संसार की बड़ी सेठाई हो या इन्द्र के पद हों, क्या कहलाये वह मुखिया... समझ में आया? संघवी... संघवी। संघवी का पद मिले। मूढ़ है, कहते हैं, ...! आहाहा! यहाँ तो

ऐसा कहना चाहते हैं कि कोई कदाचित् पुण्य के कारण ऐसा चाहे कि हमको ऐसी पदवी मिले। मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। निजपद को प्राप्त करने की दृष्टि उसे है नहीं। आहाहा! स्वर्ग में तो जाऊँगा, फिर भगवान के पास जाऊँगा। धूल भी नहीं जा, सुन न! आहाहा! कहते हैं, **जे समरसी सदीव, तिनकौं कछू न चाहिये।** एक भी पद चाहिए नहीं। राग नहीं चाहिए, वहाँ फिर पद बाहर के कहाँ से आये? आहाहा!

धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव को अपने निजपद के अतिरिक्त राग और राग के फल की इच्छा नहीं होती। आहाहा! (इन्होंने गजब) बात डाली है न! मर्म की बात खोली है। ऐसा तो कहे, सम्यग्दृष्टि को ९६ हजार स्त्रियाँ होती हैं, आठ... होते हैं, गाँव होते हैं, फलाना होता है, पुत्र होते हैं। होते हैं, परन्तु उसे नहीं, सुन तो सही! उसके नहीं, वह मेरा मानता नहीं। आहाहा! वह तो जैसे जगत की दूसरी चीज़ ज्ञेयरूप से जानता है, इसी प्रकार इन्हें ज्ञेयरूप से जानता है। समझ में आया? पचास लड़के हों, अब इसके ज्ञान में तो पचास ही ज्ञान में आते हैं उसमें, देखो। उसमें यह मेरा पुत्र, यह कहाँ से आया? कहते हैं। आया कहाँ से? ऐई! अरे, गजब भाई यह! पचास घर की गली हो, पचास घर की गली। अब गली है, ऐसा जरा सा ऐसा देखता है कि है। जहाँ उसका मकान आवे, वहाँ कहे, यह मेरा मकान। परन्तु यह तेरा आया कहाँ से? वह तो पचास भी देखे, वह तो ज्ञेय हैं। तेरे ज्ञान में ज्ञात होते हैं कि यह है। वह ज्ञेयरूप से है और कहे, यह मेरा है।

**मुमुक्षु :** यह उसके घर में जाये तो कहीं इनकार न करे और दूसरे के घर में जाये तो ... करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसके घर में जाये और कहाँ जाये और कहाँ निकले? आहाहा!

यह है न वह दृष्टान्त दिया है। श्रीमद् ने दृष्टान्त दिया है। गली में ऐसा कि पचास घर हैं। है वहाँ उसमें। उन पचास को तो ऐसे देखता है वह तो। यह है, बस इतना, ज्ञेयरूप से। उसमें यह घर मेरा। यह तो तूने अधिक मिथ्यादृष्टिपना किया। समझ में आया? परन्तु पैसा खर्चा करके बनाया हो, खड़े रहकर बनाया हो तो उसका है या नहीं? स्वयं खड़े रहकर बनाया हो, लो। संगमरमर यहाँ लगाना, यह वहाँ लगाना। पूर्व

की हवा आवे, पश्चिम की हवा जाये, धूप व्यवस्थित पड़े। पूरी किरणें पड़े मकान में, जिससे हवा व्यवस्थित रहे, उत्तर-दक्षिण भले खिड़की न हो, परन्तु पूर्व-पश्चिम की खिड़की तो रखना, जिससे यह किरणें दोनों ओर पड़े। ऐसा करके बनाया हो और यह कहे तेरा नहीं, ले! आहाहा! यही कहते हैं कि सुविधा पर की रखना, वह मूढ़ है। सेठ! वह तो स्वतन्त्र पदार्थ है। तेरे कारण से है वह ? उसके कारण से वह है, ऐसा कहते हैं। यह तो सब पोल खुले ऐसा है। ऐई चन्दुभाई! आहाहा!

**समरसी सदीव....** धर्मी तो उसे कहते हैं कि जिसे आत्मरस प्रगट हुआ है। मैं आनन्द हूँ। उसे परचीज़ स्त्री, कुटुम्ब आदि सब ज्ञेय में उसे होते हैं। ज्ञेय के भाग करता नहीं। ज्ञेय के दो भाग करे कि यह मेरे और यह तेरे, यह दुश्मन और यह सज्जन। उसमें लिखा है ज्ञेय में ? कहाँ से भाग किये तूने ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! बापू! वीतराग का मार्ग ऐसा है। दृष्टि का विषय ही पूरी चीज़ अलग है। दृष्टि का विषय है वह चीज ? मिथ्यात्व का विषय है, मेरे माने तो। आहाहा! ऐसा विषय वस्तु ही नहीं, ऐसा कहते हैं। वह ज्ञान का विषय ही नहीं, ऐसा कहा न बन्ध अधिकार में। आता है न ? बात सब सच्ची है। सम्यग्दर्शन का विषय है वस्तु। मिथ्यादर्शन का विषय क्या ? आहाहा! खोटी मान्यता का विषय माना इसने यह। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! क्या कहा ? **जे समरसी सदीव, तिनकौं कछू न चाहिये।** आहाहा! मैं तो आत्मा हूँ। आत्मा वह तो ज्ञानस्वरूपी प्रभु है। ऐसा जिसे भान धर्मी को है, उसे राग से लेकर सभी चीज वह मेरी, इस इच्छा का नाश हो गया है। आहाहा! राग का राग नहीं, पर का प्रेम नहीं। तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी बात है, भाई! समझ में आया ?

**समताभाव मात्र ही में सुख है।** ज्ञाता-दृष्टा मैं आत्मा हूँ। मेरा स्वभाव आनन्द और ज्ञान है। और जगत की चीज़ें मेरे ज्ञान में ज्ञात हो, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। मेरा मानना, वह तो मिथ्यात्व है। परन्तु वे ज्ञेय मैं जानता हूँ, वह भी व्यवहार है। वास्तव में तो ज्ञेय सम्बन्धी का अपना ज्ञान, उसे वह जानता है। समझ में आया ? फिर से। सेठ ऐसा कहते हैं फिर से लो। यह स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, लक्ष्मी, मकान, यह मेरे हैं, यह मान्यता तो मिथ्यात्व है। परन्तु यह जानना, उसे मैं जानता हूँ, यह भी व्यवहार है। उसे यथार्थरूप से माने कि उसे ही मैं जानता हूँ, (तो भी) मिथ्यात्व है। समझ में आया ?

अरे! इसकी पद्धति की रीति की खबर नहीं होती और उसे धर्म हो जाये (ऐसा नहीं हो सकता)। आहाहा! अपवास किये और प्रौषध किये और रात्रि में चारों आहारों का त्याग किया और अठ्ठम करे, उसे पाँच-पाँच रुपये दो। यह धर्म वह करे न तो अपने तो कुछ अनुमोदन करें न देकर! धूल भी नहीं, सुन न! वह भी मिथ्यादृष्टि और तू भी मिथ्यादृष्टि... ऐई! अठ्ठम... अठ्ठम समझे? तीन-तीन अपवास करते हैं न। पचास-सौ महिलायें करे और पाँच-पाँच रुपये दूँगा। बेचारे गरीब व्यक्ति। यह लो पाँच-पाँच रुपये। उन्होंने धर्म किया, हम कर नहीं सके तो हम उन्हें अनुमोदन करते हैं।

मिथ्यात्व का अनुमोदन है। वह करनेवाला, वह परवस्तु का त्याग करके अभिमान करता है, वह वहाँ मिथ्यात्व है। परवस्तु तो ज्ञेय थी, उसके बदले मैंने त्याग किया और ऐसे त्यागकर त्याग माना उसने। दोनों मिथ्यादृष्टि हैं। उन्हें जैन सम्यग्दर्शन की चीज़ की खबर नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम भाई ऐसा! तब कहे, ठीक। भाई! अपने राजपाट हो, स्त्री-पुत्र हों, सब हो तो भी समकित को बाधा नहीं। भरत चक्रवर्ती को ९६ हजार स्त्रियाँ थीं। एक भी नहीं थी। राग उनका नहीं था, फिर और स्त्रियाँ कहाँ से आयीं? आहाहा! समझ में आया? समता में तो समता ज्ञाता। वह परवस्तु अपनी नहीं मानना और पर के लक्ष्य से हुआ राग भी अपना नहीं मानना और अन्दर ज्ञाता-दृष्टा के समभाव से रहना, इसका नाम धर्म है, इसका नाम सम्यग्दर्शन का परिणमन है। आहाहा!

★ ★ ★

## काव्य - ११

**समताभाव मात्र ही में सुख है** (सवैया इकतीसा)

**हांसीमैं विषाद बसै विद्यामैं विवाद बसै,**
**कायामैं मरन गुरु वर्तनमैं हीनता।**
**सुचिमैं गिलानि बसै प्रापतिमैं हानि बसै,**
**जैमैं हारि सुंदर दसामैं छबि छीनता।।**

रोग बसै भोगमैं संजोगमैं वियोग बसै,
गुनमैं गरब बसै सेवा मांहि हीनता।
और जग रीति जेती गर्भित असाता सेती,
साताकी सहेली है अकेली उदासीनता।।११।।

शब्दार्थ:-विषाद=रंज। विवाद=उत्तर-प्रत्युत्तर। छबि=कान्ति। छीनता=कमी। गरब=घमंड। साता=सुख। सहेली=साथ देनेवाली।

अर्थ:-यदि हँसी में सुख माना जावे तो हँसी में तकरार (लड़ाई) खड़ी होने की सम्भावना है, यदि विद्या में सुख माना जावे तो विद्या में विवाद का निवास है, यदि शरीर में सुख माना जावे तो जो जन्मता है, वह अवश्य मरता है, यदि बड़प्पन में सुख माना जावे तो उसमें नीचपने का वास है, यदि [1]पवित्रता में सुख माना जावे तो पवित्रता में ग्लानि का वास है, यदि लाभ में सुख माना जावे तो जहाँ नफा है, वहाँ नुकसान भी है, यदि जीत में सुख माना जावे तो जहाँ जय है, वहाँ हार भी है, यदि सुन्दरता में सुख माना जावे तो वह सदा एकसी नहीं रहतती-बिगड़ती भी है, यदि भोगों में सुख माना जावे तो वे रोगों के कारण हैं, यदि इष्ट संयोग में सुख माना जावे तो जिसका संयोग होता है, उसका वियोग भी है, यदि गुणों में सुख माना जावे तो गुणों में घमण्ड का निवास है, यदि नौकरी-चाकरी में सुख माना जावे तो वह हीनता (गुलामी) ही है। इनके सिवाय और भी जो लौकिक कार्य हैं वे सब असातामय हैं, इससे स्पष्ट है कि साता का संयोग मिलाने के लिये उदासीनता सखी के समान है, भाव यह है कि समतामात्र भाव ही जगत में सुखदायक है।।११।।

## काव्य-११ पर प्रवचन

हांसीमैं विषाद बसै विद्यामैं विवाद बसै,
कायामैं मरन गुरु वर्तनमैं हीनता।
सुचिमैं गिलानि बसै प्रापतिमैं हानि बसै,
जैमैं हारि सुंदर दसामैं छबि छीनता॥

१. लौकिक पवित्रता नित्य नहीं है, उसके नष्ट होने पर मलिनता आ जाती है।

**रोग बसै भोगमैं संजोगमैं वियोग बसै,**
**गुनमैं गरब बसै सेवा मांहि हीनता।**
**और जग रीति जेती गर्भित असाता सेती,**
**साताकी सहेली है अकेली उदासीनता॥११॥**

कहते हैं कि हँसी में सुख माने। मश्करी करे और सब बैठे हों पाँच-पचास लोग हँसी करनेवाले। एक व्यक्ति था। हँसी बहुत ऐसी आवे, कोई बात-बात में हँसी।

**मुमुक्षु :** वह तो ऐसा माने कि इससे आयुष्य....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं। प्रसन्न-प्रसन्न रखने के लिये उसमें निरोगता बढ़े। एक यहाँ आया था। हँसी-मश्करी वह तो बात-बात में ऐ... भाषा बोले, उसमें ही मश्करी हो, ऐसा। ऐसा मजाकिया है। है न बड़े-बड़े गाँव में आते हैं न! बड़ी हँसी कराने में बड़ा मशहूर, लो। समझ में आया? नहीं कहा था? अभी ही एक बड़ा गुजर गया। बीस लाख का मकान बनाया था, नहीं? संगीतकार।

**मुमुक्षु :** जयकिशन।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जयकिशन संगीतकार। ऐसा संगीत... ऐसा संगीत... बीस लाख का तो मकान बनाया। फिर क्या हुआ?

**मुमुक्षु :** बेचारा गुजर गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गुजर गया, कहते हैं, यह सुविधा बिना। मुम्बई में बीस लाख का मकान। संगीतकार। ऐसा आये और बोले कि आधे घण्टे का पच्चीस हजार ले, पचास हजार ले। ऐसा कण्ठ कोई लेकर आया हो। यह जड़-मिट्टी। झनझनाहट... झनझनाहट... झनझनाहट। लोग तो प्रसन्न हो जाये। लाख-दो लाख बैठे हों वे, आहाहा!

एक घण्टे के पचास हजार ले संगीत के। यह बीस लाख का तो मकान बनाया था। दूसरे पैसे होंगे या नहीं? मर गया। यह धूल भी नहीं तेरी, सुन न! कण्ठ, वह तो जड़ का है और मैं कण्ठकार और मैं संगीतकार। मूढ़ है। ऐई! कोई महिला गाती थी, नहीं?

**मुमुक्षु :** सरोजिनी नायडू।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सरोजिनी... सरोजिनी। वह बहुत कुछ कण्ठ उसका। हाँ।

एक अभी, एक लड़की थी न जयपुर। अपने गये थे न।

**मुमुक्षु :** आदर्शनगर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आदर्शनगर में लड़की पन्द्रह-सोलह वर्ष की लड़की है। परन्तु बाई कण्ठ की... वह चाहे जैसा बोले तो अन्दर लोगों को मीठा लगे, ऐसा उसका कण्ठ। १५-१६ वर्ष की थी। भाषण करने खड़ी हुई थी, यह महिमा करने, नहीं? वह तो जड़ की दशा। वह दशा मैंने की और वह जड़ की अवस्था मेरी, मैं संगीतकार। मूढ़ है। तूने अजीव को जीव माना। गजब बातें भाई यह!

**हांसीमैं विषाद बसै...** तकरार—लड़ाई। हास्य में तकरार हो। हँसी में सुख माननेवाले को तकरार हो, लड़ाई हो। आहाहा! **विद्यामैं विवाद बसै,...** विद्या पढ़े, वह विवाद बसे। ऐसा होता है और वैसा होता है, ऐसा नहीं होता और वैसा नहीं होता। तत्त्व को समझा नहीं और अकेली विद्या में झगड़ा करना जगत के साथ। उसमें साथ में तो विद्या में विवाद बसता है। उसमें शंका नहीं। आहाहा! **कायामैं मरन...** सुन्दर शरीर, उसे माँस खिलाया हो, मक्खन खिलाया हो और शरीर एक क्षण में एकदम उड़े... आहाहा! जाओ श्मशान में शरीर। आत्मा उड़ जाओ भटकने। आहाहा!

**कायामैं मरन गुरु वर्तनमैं हीनता।** लो। **यदि शरीर में सुख माना जावे तो जो जन्मता है, वह अवश्य मरता है।** मोटापन माने। गुरुवर्तन। बड़े आचरण। लो न, बड़े-बड़े आचरण करे, भाषण करे वह आता हो। कहो, समझ में आया? उसमें दीनता। यह यदि कण्ठ शिथिल पड़ गया, शरीर शिथिल। हाय.. हाय! अब? यह नाचनेवाली महिलायें होती हैं न उसमें—फिल्म में। पाँच-पाँच हजार का वेतन। दस-दस हजार का वेतन। बड़ी फिल्म। अब यह कण्ठ बिगड़े। वे रखे हों उसके बीमावाले। डॉक्टर के बीमावाले साथ में हों। उसका कण्ठ बिगड़े तो बीमा बाँध दे। दस लाख का—बीस लाख का। कण्ठ बिगड़े उसका बीमा। नाचनेवाली बाई होती है न फिल्म में। उसके करण से पैसा उपजता हो सब नृत्य के। उसमें कण्ठ बिगड़े, हाय, हाय! धूल भी नहीं, कहते हैं, बाहर में। सुन न! **कायामैं मरन गुरु वर्तनमैं हीनता।**

**सुचिमैं गिलानि...** शरीर की पवित्रता... सुख माने... यह बड़प्पन में सुख माने, ऐसा लिखा है। नीचपने का वास। उस पवित्रता में सुख माना हो तो पवित्रता में ग्लानि

का वास। शरीर का नहाना-धोना-साफ कपड़े-वपड़े। आहाहा! और क्या डाले? कपड़े को चोपड़े ने ऐसे सवेरे उठकर?

**मुमुक्षु :** सेंट...सेंट...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, सेंट-बेंट क्या कुछ गन्ध मारे। पड़े हों इसलिए गन्ध मारे। सेंट-बेंट गन्ध मारे। खबर पड़ कि यह डाला है। गन्ध मारे। वे कपड़े जब बिगड़ें, ऐसे बटन-बटन करके व्यवस्थित बाँधे, उसमें यदि अग्नि लगे। हाय.. हाय! बटन खुलता नहीं, देरी लगे वहाँ तो सुलगे कपड़े। आहाहा! बापू! पर में कहीं है नहीं। आहाहा! पवित्रता में... पवित्र समझे न? लौकिक भी नीति नहीं, ऐसा। नाश होने पर मलिनता आ जाती है। यह लौकिक की व्याख्या। आहाहा! **प्रापतिमैं हानि बसै,...** प्राप्ति—कुछ पैसा मिले, लड़के हुए। उसका मान करे। यह लड़का हो और तीसरे दिन मर जाये। वह जन्म हो तो हर्ष... हर्ष... हर्ष। जाति में मिश्री बाँटे, श्रीफल दे। एक-एक चाँदी की थाली और सवा सेर बर्फी। लड़का हुआ साठ वर्ष में। उसमें तीसरे दिन उड़ जाये। हाय... हाय! धूल भी नहीं। कहते हैं न?

**मुमुक्षु :** लाभ में सुख माने।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, ग्लानि। **प्रापतिमैं हानि बसै,...**

**जैमैं हारी...** जय में हार। एक जय हुई हो, वहाँ दूसरी बार हार होती है। ऐसा मुख पड़ जाये (उदास हो जाये)। यह तुम्हारे लड़के नहीं (खेलते)? गेंद-डण्डा। क्या कहलाता है उसे?

**मुमुक्षु :** क्रिकेट।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्रिकेट। खेले तब दूसरे लड़के हे... हे... करे। उसमें यदि हारे तो... ऐसे ... पागल हैं। सब पागल के कारखाने हैं। **दसामैं छबि छीनता।** लो। सुन्दर दशा शरीर की। कीड़े पड़े। उसमें यह क्या कहलाता है? शीतला। शरीर सुन्दर हो और शीतला आवे तब, गन्ध की। गोबर जैसा शरीर हो जाये। कपड़े से ढाँके। ढाँका हुआ रहता होगा अब? सुन न! उसे बाहर में कहीं सुख है नहीं। सुख, तेरे आत्मा में वहाँ दृष्टि कर तो शान्ति और सुख मिलेगा। अन्यत्र कहीं बाहर में है ही नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १६५, भाद्र कृष्ण अमावस्या, रविवार, दिनांक १९-०९-१९७१**
**साध्य-साधक द्वार, पद ११ से १३**

यह समयसार नाटक। साध्य-साधक द्वार अधिकार है। ११वाँ पद है।

**समताभाव मात्र में सुख है।** क्या कहते हैं? कि जिसे आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, धर्म की पहली सीढ़ी। जिसे धर्म, स्वभाव—धर्म की दशा प्रगट करना हो, उसे सबमें से सुखबुद्धि उठानी चाहिए। क्योंकि आत्मा के अतिरिक्त आनन्द कहीं है ही नहीं। पहले लिया था कि लक्ष्मी में सुख माने, (वह) मूढ़ मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। लक्ष्मी तो जड़ है। लक्ष्मी में कहाँ सुख था? और (मुझे) मैं लक्ष्मीवाला मानता हूँ, यह भी मूढ़ है। वह धर्मी नहीं।

**मुमुक्षु :** धर्मी नहीं तो कुछ नहीं, परन्तु मूढ़ किसलिए कहें?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो मूढ़ का बड़ा बाप है। आहाहा! तेरी लक्ष्मी जड़वस्तु मिट्टी-धूल अजीवतत्त्व है। यह अजीवतत्त्व मेरा है, (ऐसा) माननेवाला मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। वह धर्मी नहीं, अधर्मी है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। साधकस्वभाव सिद्ध करना है न? आहाहा! ऐसा पहले कहा। फिर कहा कि पुत्र, पत्नी, स्त्री, कुटुम्ब आदि तो परवस्तु है। यह मेरे हैं, यह मान्यता (जिसे है), वह भी मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। वह धर्मी नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

धर्मी (के लिए) लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब आदि अपने हैं ही नहीं। राग अपना है नहीं अन्दर दया-दान-व्रत का विकल्प उठता है, वह मेरा नहीं। मेरे तो ज्ञान और आनन्द हैं। समझ में आया? मैं तो जाननेवाला और आनन्दमय, वह मैं हूँ। ऐसी जिसको दृष्टि है, वह धर्मी है, वह मोक्षमार्ग का साधक है। हाँ, साधक की बात चलती है न! आहाहा! पैसा, पुत्र, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति सब तो पर है। पर मेरा माना तो पर में सुख है, ऐसा माना। अपने में सुख है, यह तो उसे भान नहीं। और यहाँ तो कहते हैं, **हांसीमैं विषाद बसै विद्यामैं विवाद बसै,....** मश्करी में सुख मानते हों तो उसके सामने प्रतिकूलता बतानी है। **हांसीमैं विषाद बसै...** सुख मानते हैं न! खिलखिलाकर... खिलखिलाकर... दाँत निकाले, ओहोहो! उसमें तो विषाद, तकरार, लड़ाई हो।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ तो उसके सामने बात की। यही कहा पहले। बाकी हँसी में सुख है ही नहीं। हास्य—मश्करी...

**मुमुक्षु :** डॉक्टर बताते हैं, हँसते रहो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** डॉक्टर को भान कब है ? डॉक्टर... यह डॉक्टर बैठे साथ में, देखो न ! डॉक्टर को अपनी दवा कैसे करना, उसकी खबर न हो (और) किसी की दवा करने जाये। आहाहा !

**हांसीमैं विषाद बसै...** हास्य-मश्करी करूँ क्या.... यह तो सामने-सामने बात की है। यहाँ बताना तो यह है कि हँसी में सुख नहीं। सुख तो अपने आत्मा में है, यह बताना है। समझ में आया ? पाँच मनुष्य इकट्ठे हों लड़के कुछ जवान दाँत निकाले और खीखाडा करे न, ओहोहो ! मूढ़ है। हँसी में सुख कहाँ आया ? हँसी में तो विषाद भरा है, झगड़ा उत्पन्न होगा। विशेष कषाय—क्लेश होगा। समझ में आया ? अपने भगवान आत्मा में सुख है, यह सिद्ध करना है। अपने में आनन्द है, ऐसी जिसकी दृष्टि है, वह धर्मी मोक्ष का साधक कहा जाता है। समझ में आया ?

**कायामैं मरन...** शरीर में सुख माने... देह तो छूट जायेगी, हाय... हाय ! लो। समझ में आया ? **यदि विद्या में सुख माना जावे तो विद्या में विवाद का निवास है।** काया पड़ी रही उसमें। शरीर में सुख माना, फिर डाला है। विद्या में विवाद बसे, आया न ? **यदि विद्या में सुख माना जावे तो विद्या में विवाद का निवास है।** विद्या में झगड़ा हो। अरे ! मेरी बात नहीं रही, उसकी रही। यह झगड़ा है। चर्चा में—वाद-विवाद में सुख माने कि हम वाद-विवाद करें तो हमें ठीक पड़े। मूढ़ है। उसमें सुख कहाँ आया ? वाद-विवाद में झगड़ा करता है।

कहा न एक बार ? तेरापंथी और स्थानकवासी की है न ? बड़ी चर्चा हुई। महीना-एक महीना। वह स्थानकवासी तेरापंथी है न तुलसी और एक स्थानकवासी है। दोनों मूल स्थानकवासी दोनों। एक महीने चर्चा हुई। क्या ? कि भगवान को दस स्वप्न आये। श्वेताम्बर में ऐसा आया है दसवें ठाणे में। भगवान महावीर को केवलज्ञान प्राप्त

हुआ, उसके पहले दस स्वप्न आये, ऐसा पाठ है। दस स्वप्न आये। बात झूठी है, वह तो उसने बनायी है।

**मुमुक्षु :** वाद-विवाद....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं। वाद नहीं। झूठ की बात कहते हैं। कि दस स्वप्न आये, उसमें (दोनों के बीच में) चर्चा हुई।

एक कहे कि स्वप्न आये, पश्चात् केवलज्ञान हुआ तो वे स्वप्न भले हैं। दूसरा कहे कि स्वप्न है, वह दोष है। दोष से केवलज्ञान होता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? तेरापंथी है न, तुलसी का तेरापंथी। उसकी दलील यह थी। यह तो तब नहीं थे। पहले के आचार्य की बात। किसने कहा?

**मुमुक्षु :** लीलाधरजी ने।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। पहले की बात थी। परन्तु उस समय एक महीना चर्चा। लीलाधरजी कहते थे। हमारे पास रहते थे न तीन-तीन महीने। यहाँ फिर आये। वह भी तेरापंथी साधु था। बाद में छोड़ दिया... हमारे पास बहुत रहता था। उसकी भी आचार्यपद मिले, ऐसी शक्ति थी। उसे ऐसा लगा था कि गड़बड़ है, सब तेरापंथी। हमारे पास यहाँ भी आया था, तीन महीने साथ में रहा था।

तो वह कहता था कि चर्चा ऐसी चले कि दस स्वप्न आये और स्वप्न के पीछे केवलज्ञान हुआ। तो यह स्वप्न, तेरापंथी कहे कि दोष है। स्वप्न आया—आना, यह दोष है। दूसरा कहे, स्वप्न आया, पश्चात् केवलज्ञान हुआ, इसलिए गुण है। उसकी तकरार, कहो। ऐसी चर्चा चले, लीलाधरजी कहते थे। जिसकी दलील ठीक हो बाहर में तो भिक्षा के लिए जायें तो सुहाये नहीं, रुचे नहीं कुछ। आहाहा! हम हार गये ऐसा हो जाये। खेद... खेद... खेद... और अपनी दलील बराबर लगे शास्त्र से, आहाहा! विद्या में तो आशा दुःख है। वाद-विवाद में कुछ है नहीं। 'सदगुरु कहे सहज का धंधा वाद-विवाद करे सो अन्धा।' लोगों को भान नहीं, उसके साथ चर्चा—वाद-विवाद क्या करना? यह कहते हैं कि नहीं दोष है। यह कहे कि गुण है, क्योंकि केवलज्ञान हुआ। बात तो दोनों की झूठी थी। केवलज्ञान से पहले भगवान को स्वप्न आये ही नहीं। समझ

में आया? श्वेताम्बर है न, इसलिए व्यवहार चलाया उन्होंने कि स्वप्न आये, फिर ऐसा हुआ। तो यहाँ कहते हैं कि वाद-विवाद में तो खेद है। आहाहा!

**यदि शरीर में सुख माना जाये तो जो जन्मता है, वह अवश्य मरता है।** धूल में भी सुख नहीं। एक क्षण में कीड़े पड़ें, जीवांत पड़ें और देह में तो एक... अब तो यह सब दर्द, देखो न! सब क्या है? हार्टफेल। हार्ट। आहाहा! नारणभाई इस बारस की रात्रि में गुजर गये न? यहाँ भक्ति में थे। यहाँ बैठे थे। भक्ति। यह बारस। आज अमावस्या है। बारस को गुजर गये न बारस की रात्रि में। बैठे थे, भक्ति में बैठे थे। यहाँ बैठे थे। भक्ति में आये। रात्रि में डेढ़ बजे अन्दर उल्टी हुई। ६७-६८ वर्ष की उम्र.... रात्रि में २.३५ (बजे) देह छूट गयी। ढाई और पाँच (मिनिट)। एक घण्टे में। कहो, डॉक्टर आया, अन्तिम श्वास था। यहाँ बैठते थे सामने। पगड़ी बाँधते थे न! शरीर में ऐसा है। एक क्षण में फू... शरीर में सुख नहीं है, ऐसा कहते हैं। मूढ़ मानते हैं कि शरीर में सुख है। मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं। समझ में आया? आहाहा!

'पहला सुख निरोगी काया।' ऐसा आता है न! ऐसे चार बोल आते हैं।

**मुमुक्षु :** पहला सुख निरोगी काया। दूसरा सुख घर में माया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह निरोगी काया, धूल में है नहीं। पहला सुख निरोगी काया, दूसरा सुख वह घर में माया। लो, शरीर निरोगी तो धूल है। यहाँ साधक को बताते हैं कि शरीर में सुख माननेवाला मिथ्यादृष्टि है, धर्मी नहीं। आहाहा! सुख तो अपने आत्मा में है, ऐसी तो खबर नहीं और जहाँ-तहाँ शरीर में, भोग में सुख माने, वह तो मिथ्यादृष्टि, मूढ़, संसार का साधक है। आहाहा! मोक्ष का साधक नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। इसमें लिखा है।

**गुरु वर्तन में हीनता,....** लो। **यदि बड़प्पन में सुख माना जावे तो उसमें नीचपने का वास है।** हम बड़े, हमको पदवी मिली। संघवी, प्रमुख। समझ में आया? हल्का हो जाये तो कोई गिने नहीं। आहाहा! रोग आ जाये, लो। पदवी छोड़ दो। तुम्हारी पदवी दूसरा लेगा। हाय... हाय! हीनता। पदवी मिली, उसमें सुख है... सेठ! तुम दोनों को समाजभूषण सम्मान दिया है दोनों भाईयों को। धूल भी नहीं पदवी। समाजभूषण में है

क्या ? समाजभूषण क्या आया ? उसमें ठीक आया। आहाहा ! हमें पदवी मिली। पर में, समाजभूषण में सुख मानना तो मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। सेठ ! वह धर्म का साधक नहीं। पर में अधिकपना और सुखपना मानना, वह साधक नहीं। वह संसार में भटकने का साधक है। आहाहा ! समझ में आया ? **यदि बड़प्पन में सुख माना जावे तो उसमें नीचपने का वास है।** यह पवित्रता लौकिक हों। लौकिक पवित्रता नित्य नहीं रहती। शरीर बराबर स्वच्छ रहे, वस्त्र अच्छे सुगन्धवाले और इत्र लगाये शरीर पर। तो कहते हैं कि पवित्रता में सुख माने तो उसमें ग्लानि का वास है। इस शरीर में ग्लानि हो जाये। हाथ भी उठा न सके।

कहा था न एक कन्या का। उसे शीतला हुई। शीतला समझे ? माता। माता हुई तो दाने-दाने में ईयळ—कीड़े पड़े, कीड़े। यह शरीर को सुन्दर माने। नवविवाहित भोग में सुख माने। धूल भी नहीं है। सुन न मूढ़ ! कीड़ा, मिथ्यात्व का कीड़ा है, यह कहते हैं। आहाह ! पवित्रता में सुख माने तो ग्लानि वास है। उस बाई को ऐसा हो गया। पूरे शरीर में शीतला। एक दाने-दाने में। वह है न ईयळ... ईयळ... ऐसे फिर तो... ऐसा कहे, माँ ! ऐसे पाप मैंने इस भव में नहीं किये। गद्दे में... गद्दे में... तळाई समझे ? गद्दा... गद्दे में सुलाया था। ईयळ... ईयळ... ऐसा करे तो यहाँ से कीड़े निकले २५-५०-१००। ऐसा करे तो यहाँ से निकले। ऐसा शरीर करे तो यहाँ दब जाये कीड़े ऐसे। और पीड़ा... पीड़ा। छोटी उम्र थी। रूपवान बाई थी। समझ में आया ? आहाहा ! धूल में भी नहीं सुख, ऐसा कहते हैं। मिथ्यादृष्टि उसमें सुख मानते हैं। वह धर्म का साधक नहीं। आहाहा ! वह तो संसार का साधक है। **सुचिमैं ग्लानि**—पवित्रता में ग्लानि।

**प्रापतिमैं हानि...** लक्ष्मी मिले, बड़ी पदवी मिले। समझ में आया ? लो। उसमें तो हानि हो जाये। घड़ी में सब समाप्त हो जाये। आहाहा ! एक-एक भव में तीन-तीन-चार बार होता है, नहीं कितने ? करोड़पति था। फिर भिखारी हो गया। फिर करोड़पति हुआ, फिर भिखारी हुआ। भिखारी की तरह पूरी जिन्दगी रहा। भिखारी अर्थात् भले रोटी मिले, परन्तु पैसेवाला पहले (जैसा नहीं रहा)। हमने तो ऐसे बहुत देखे हैं। धूल भी नहीं उसमें, कहते हैं। प्राप्ति मिली, लाभ मिला संसार का पैसा, लो। तो दुःखी है। आहाहा !

**जैमैं हारि....** जय हुआ जय। जयकार। जीत मिली। हार मिली, दीनता। अरे! हार जाऊँगा तो। समझ में आया? लड़के लड़ते हैं न, क्या करे यह? गली में क्रिकेट। लड़के जीते और हो... हो करे। और जरा में हारे न, हाय... हाय! ऐसे ताश खेलते हैं न। गंजीफा समझते हैं या नहीं?

**मुमुक्षु :** ताश।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। हाथी, घोड़ा।

**मुमुक्षु :** शतरंज।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसमें जीत हो, प्रसन्न हो। उसमें फिर हार हो जाये तो हाय... हाय... उसमें जीत माननेवाला, सुख माननेवाला मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। चुन-चुनकर रखा है। सेठ! हाथी, घोड़ा होता है न? राजा, रानी, गुलाम, इक्का। इक्का अपने को आवे तो मानो, आहाहा! हम जीते। वह सुख मानता है, मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। तू धर्मी नहीं, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** धर्मी भी खेलता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खेलता ही नहीं। राग आवे, उसे जानता है। समझ में आया? धर्मी, उस बाजी में राग आवे, उसे जानता है। राग में सुख है, ऐसा मानता नहीं। आहाहा! इतना अन्तर है। **जैमैं हारि सुंदर दसामैं छबि छीनता....** शरीर की सुन्दरता में कीड़े पड़े आदि, लो। रोग आदि कारण होता है, शरीर बिगड़ जाता है। एकसी (स्थिति) नहीं रहती।

**रोग बसै भोगमैं...** बहुत दूधपाक, पूड़ी, भुजिया बहुत खाये, स्त्री का भोग बहुत ले। भोग में तो रोग होगा, क्षय होगा, शरीर दुर्बल हो जायेगा। उसमें सुख मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहा जाता है। भोग में सुख है, स्त्री के विषय में सुख है (ऐसी मान्यतावाला) मूढ़ अपने आत्मा के सुख का अनादर करता है। समझ में आया? आहाहा! एक-एक बोल अलग करके समझाया है। बिना भान के पर को अपना मानना मिथ्यात्व है। परन्तु किस-किस प्रसंग में किस-किस चीज़ में अपने को मानता है, उसका स्पष्टीकरण किया है। **रोग बसै भोगमैं...** आहाहा! बहुत भोग ले तो रक्त निकले वीर्य के

बदले। क्षय हो जाये। समझ में आया? यह... यह... ऐसा करे। अरे! कहते हैं कि यहाँ कहने का आशय तो सामने दुःख है, ऐसा बताते हैं। परन्तु यह सुख मानता है, इसे धर्म की खबर नहीं। समझ में आया? भोग में सुख है स्त्री के विषय में, मूढ़ है-मिथ्यादृष्टि है। वह जैन नहीं है। वह जीता गया है (राग में)। आहाहा! भारी सूक्ष्म बात भाई!

**रोग बसै भोगमैं संजोगमैं वियोग बसै,...** लो, ठीक। लड़का हुआ। पुत्र हुआ, पैसा। उसमें साठ वर्ष में पुत्र हो तो, हाश! अपने अब घर की इज्जत रहेगी। उसमें दो-तीन दिन हो वहाँ लड़का मर जाये। पुत्र हो, वह सुख है? यह बाँझ मर जाते हैं न कितने ही ऐसे के ऐसे पुत्र के लिये। और पुत्र हो, उसे माननेवाले कहे, मेरा पुत्र। मूढ़ है। परवस्तु तेरी कहाँ से आयी? समझ में आया? पाटनीजी! एक-एक बात में... आहाहा! पर को अपना मानना। अपने सुख में सुख न मानकर पर में माना, पर कहाँ-कहाँ नहीं मानना, सब बात करते हैं। आहाहा! जिसकी रुचि, हमारे लड़के-लड़की, हम सब सुखी हैं, चारों ओर से सुखी हैं। धूल में भी नहीं, सुन न! सुख तो आत्मा में है। ऐसा न मानकर, पर में सुख माना, वह जैन भी नहीं। वीतराग की आज्ञा माननेवाला भी नहीं। वीतराग की आज्ञा है कि आत्मा में सुख है। यह मानता है कि पर में सुख है। ऐसी गजब बात करते हैं! आहाहा!

**गुनमैं गरब बसै...** समझ में आया? प्रीति में अप्रीति। ऐसा पाठ है। यह पाठ कहते हैं। प्रीति कोई आवे, तब द्वेष सामने होता है। परचीज़ प्रीति करनेयोग्य ही कहाँ है? प्रीति करनेयोग्य चीज़ तो अपनी चीज़ सच्चिदानन्द प्रभु है, जिसे उसकी अरुचि है, उसे राग और परचीज की रुचि है। समझ में आया? आहाहा! **गुनमैं गरब बसै सेवा मांहि हीनता।** सेवा करो, अपने सेवा करो। परन्तु उसमें हीनता... हमें तो सेवा करनी है। ऐसा करके दीनता सेवे। सेवा करे और सुखी माने। अपने बहुतों की सेवा की। बहुतों के पैर दबाये। बहुतों की दवा लाकर दी। अब क्या धूल भी की नहीं, सुन न! उसमें सुख माने, उसे समकित नहीं, ऐसा कहते हैं। वह धर्म का साधक नहीं। आहाहा! **सेवा मांहि...** वह अवेतनिक काम करे, तब डॉक्टर बड़े दवाखाने में जाये मुफ्त। फिर करे घर का, लो। यह तो सेवाभावी डॉक्टर है, सेवाभावी। उसका अपना उघाड़े फिर सेवाभावी नहीं। वह तो पैसावाला। पैसा लाओ लाओ पहले। हाय... हाय! **सेवा मांहि हीनता।**

**और जग रीति जेती...** लो, अब समाप्त। लक्ष्मी की... मांडी पर में सुख। **जग रीति जेती...** जितने आत्मा के अतिरिक्त जगत के प्रसंग हैं, उसमें असाता गर्भित पड़ी है। दु:ख है, ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा! लड़का एक हो, करोड़ पूँजी हो। ऐई! लो न यह तुम्हारे घर हुआ था न! अभी लड़की का विवाह किया। लो, छह लाख खर्च किये, छह लाख। वह वृद्ध गये थे वहाँ। ...न्यालभाई की पुत्री का विवाह हुआ और छह लाख खर्च किये एक विवाह में। दो करोड़ रुपये हैं उसके पास। उसके लड़के के पास दो करोड़।

**मुमुक्षु :** सुखी है सुखी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बड़ा दु:खी है। और उस समय कितना हर्ष हो, लो। वह राजकुमार जैसा दामाद आवे। ऐसे... ऐसे... चले। कोई कहता था, हों! कोई कहता था। ... छह लाख। सामने वह पैसावाला है। जिसे कन्या दी न इन्होंने—न्यालभाई ने, जिनके लड़के को, वह पैसावाला है। बड़ा कारखाना है सोना का। और राजकुमार बनकर आया था, कहते हैं। हमने तो यह बात सुनी हुई हो। कहाँ देखने गये थे? ऐसे बराबर ठाठबाठ कपड़े का। कोई कहता था, नहीं? तुमने तो नजरों से देखा है। यही कहते थे। राजकुमार बन-ठनकर... आहाहा!

किसी ने कहा था। (कहनेवाले) बहुत होते हैं। उसमें सुख माने। लड़की की शादी के समय दहेज बराबर दिया, कपड़े दिये, सोना दिया। पाँच हजार का तो सोना दिया। फलाना दिया, ढींकणा दिया। धूल में भी सुख नहीं। मानता है मूढ़। परप्रसंग में सुख मानता है, वही मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह पिता मर जाये और फिर उसका बारहवाँ करे। बारहवाँ समझे? क्या कहलाता है वह?

**मुमुक्षु :** मृत्युभोजन।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मृत्युभोजन। पैसा न हो, पिताजी मर जाये तो पीपल में चढ़ाया कहलाये उसे। पीपल पर चढ़ावे अभी। फिर पैसा हो, पाँच-दस हजार खर्च करे पिताजी को, ओहोहो! पीपल से नीचे उतारा। मूढ़ है...! ऐई हीराभाई!

**मुमुक्षु :** यह सब विधियाँ भूतकाल में....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं, अभी हुआ। हमारे आणन्दजी को हुआ न! हमारे आणन्दजी के पिता मर गये नागरभाई। वे तो साधारण थे। कुछ बारह रुपये महीने का वेतन। नागरभाई थे न? आणन्दजी, नहीं? अपने पैर से लूले थे। बारह रुपये महीने का वेतन। छोड़ा तब, हों! पहले तो चार रुपये और छह रुपये वेतन महीने था। अब मर गये तो कुछ साधन नहीं था। फिर कहीं यह साधन हुआ। जाति को जीमाया। तीन हजार खर्च किये। लोग कहे, आहाहा! पिता को उज्ज्वल किया, हों! यह तो दृष्टान्त। हमारे घर में बना है। बाहर में बहुत जगह ऐसा बनता है, लो। पिताजी का बारहवाँ किया न! धूल में नहीं है। मूढ़ है। आहाहा! ऐई भीखाभाई! यह बाद में कुछ नहीं करे, यह हीराभाई तो।

**मुमुक्षु :** वहाँ कहाँ देखने आना है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा!

**जग रीति जेती...** शब्द लो। आत्मा के स्वरूप की दृष्टि के अतिरिक्त जितने पुण्य-पाप के भाव और जगत की रीति, सबमें सुख मानना, वह धर्म का साधक नहीं, परन्तु वह विघ्न करनेवाला है। अपने आत्मा को विघ्न उत्पन्न करता है। चार गति में रुलनेवाला है। आहाहा! कठिन बात, भाई! चुन-चुन कर बात की है। **जेती गर्भित असाता सेती,...** लो। **इनके सिवाय और भी जो लौकिक कार्य हैं, वे सब असातामय हैं।** दु:खमय है, बस यह सिद्ध करना है। आहाहा! यह पढ़ाई ऐसी, लो न! बड़ा लड़का। जॉर्ज के साथ, लो। शिवलाल पानाचन्द... जॉर्ज के साथ पास हुआ था। पहला नम्बर इसका था विलायत में। एक शिवलाल पानाचन्द। ...विलायत में पास। आईसीएस नहीं। उसके जॉर्ज के साथ पहला नम्बर इसका। परन्तु हिन्दुस्तानवालों को पहला नम्बर नहीं दे न, दूसरा नम्बर दिया। पहला नम्बर जॉर्ज को दिया। इतनी बुद्धि थी। आहाहा! मानो पदवी मिली इसलिए, ओहोहो! मूढ़ है। धूल में पदवी नहीं। वह तो यहाँ अभी कहेंगे।

**जिहि उतंग चढ़ि फिर पतन, नहि उतंग वह कूप....** ऊँची पदवी मिली और पड़े तो नीचे वापस। वह तो कुँए में पड़ा है। आहाहा! ....कैसा? ऐई चन्दुभाई! शिवलाल पानाचन्द। वहाँ है न वढवाण में। मकान है इस ओर। है न हमारे पास आया था। शिवलाल पानाचन्द बुद्धि बहुत ऊँची, हों! बुद्धि इतनी लौकिक। पूरी अलमारी पुस्तक

की एक बार पढ़ जाये। इस पुस्तक में यह है और इस पुस्तक में यह है, ऐसा कहे। ऐसी शक्ति। धर्म के लिए हराम कुछ... हमारे पास आये थे (संवत्) १९७७ में। बोटाद हमारा चातुर्मास था। उसका ननिहाल था बोटाद में। मोसाळ समझे न ? मोसाळ क्या है ?

**मुमुक्षु :** मामा का (ननिहाल)।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मामा का। व्याख्यान पूरा हो गया। पीछे आये। ७७ के वर्ष। पचास वर्ष हुए, पचास। आये, बैठे। वन्दन किया। देखो भाई! आत्मा है, उसे मानते हो ? मानते हो या नहीं ? कहे, सुना है। शास्त्र में है, आत्मा है, परन्तु निर्णय किया नहीं। यह पचास वर्ष पहले की बात। बड़ा पढ़ा हुआ। यह तो छोटी उम्र में सब। तब तीन हजार वेतन मासिक, हों!

जयपुर का दीवान। तुम्हारे जयपुर के दीवान हुए तब। क्या कहा ?

**मुमुक्षु :** सरकार की ओर से ऐडमिनिस्ट्रेटर थे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, बड़ा वेतन। चालीस वर्ष पहले। वहाँ जयपुर में बड़ा तीन हजार का तब एक महीने का वेतन। ४८ वर्ष की उम्र हुई, वहाँ कुछ हो गया यहाँ। फू... धूल में भी पदवी बड़ी... लोग तो ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये और बड़े-बड़े अंग्रेज मिलने आवे। स्त्री को कहे कि सीखो अंग्रेजी। गाँव जैसा नहीं चलेगा हमारे घर में। वह गाँव की बाई बेचारी। हमने तो सब देखा था न! हमारे यहाँ आती थी न। सुन्दरवळा के उपाश्रय में। ७६ में, ७६-७६। बहुत लोग आवे न। तीनों उपाश्रय के हजारों लोग। उसमें यह बाई आती थी। कोई कहे, उसकी बहू है। वह तो गाँव की बाई है। परन्तु इसका पति कहता है कि नहीं चलेगा, अब अंग्रेजी सीखना पड़ेगा। हमारे यहाँ मैडमें बहुत आती हैं। ऐसे दुखिया हैं बेचारे। आहाहा! मूलचन्दभाई! यह सब दुखिया बेचारे। आत्मा में आनन्द है, ऐसी रुचि जिसे नहीं और ऐसी चीज़ में सुख मानते हैं, मूढ़ मिथ्यादृष्टि नरक और निगोद को साधनेवाला है। समझ में आया ?

**साताकी सहेली है....** यहाँ ऐसा लेना है। साता का अर्थ सुख लेना यहाँ। असाता का अर्थ दुःख। **साताकी सहेली है अकेली उदासीनता।** बनारसीदास। जगत के जितने प्रसंग और रीति, सब दुःखदायक हैं। समझ में आया ? आहाहा! एक भगवान आत्मा... **सुख की सहेली है...** पर—सर्व विकल्प से लेकर, राग से, पुण्य से लेकर सब चीज़ से

उदासीन और अपनी दृष्टि अपने में अनुभव में सुख है—ऐसा माना, यह एक ही सुखी है। वह धर्म का साधक है। आहाहा! समझ में आया? सुख की सहेली है, लो। सुख की सखी... सखी। यह उदास... समकिती जीव धर्मी पुण्य के परिणाम होते हैं, उससे भी उदास है। दया-दान-व्रत-भक्ति के भाव होते हैं, उससे भी समकिती तो उदास है। आहाहा! **सुखकी सहेली है अकेली उदासीनता।** सब ओर से हटकर अपना आत्मा आनन्दमूर्ति है, ऐसी दृष्टि का अनुभव है, वह सुखी है। ऐ सेठ! यह तुमको सुखी कहते हैं न सब लोग। भगवानदास शोभालाल सेठ, लो। दोनों सेठिया, कहते हैं। यह हमारे राम और लक्ष्मण। तुम्हारे राम और लक्ष्मण की उपाधि। राम-लक्ष्मण थे न। तो यह राम और लक्ष्मण हुआ। दोनों भाई। क्या है धूल उसमें? आहाहा! यह पूरा हुआ।

**जिस उन्नति की फिर अवनति है, वह उन्नति नहीं।** कहते हैं, जिसमें बाहर से लौकिक उन्नति मिले, स्वर्ग की गति मिले नौवें ग्रैवेयक की, वह उन्नति नहीं। क्योंकि वहाँ से गिरने से निगोद में जायेगा। आहाहा! दिगम्बर साधु नाम धराकर मिथ्यादृष्टि अन्दर में राग से पुण्य से धर्म माननेवाला एक पुण्य के परिणाम से नौवें ग्रैवेयक तक चले जाये, परन्तु कहते हैं कि **उतंग चढ़ि फिर पतन.... जिस उच्च स्थान पर पहुँच के फिर गिरना पड़ता है, वह उच्च पद नहीं, गहरा कुआ ही है।** आहाहा! गहरा कुँआ है। आहाहा! समझ में आया?

★ ★ ★

## काव्य - १२-१३

### जिस उन्नति की फिर अवनति है, वह उन्नति नहीं है

(दोहा)

**जिहि उतंग चढ़ि फिर पतन, नहि उतंग वह कूप।**
**जिहि [1]सुख अंतर भय बसै, सो सुख है दुखरूप।।१२।।**

१. 'सुखमैं फिर दुख बसै' ऐसा भी पाठ है।

**जो विलसै सुख संपदा, गये तहां दुख होइ।**
**जो धरती बहु तृनवती, जरै अगनिसौं सोइ।।१३।।**

**शब्दार्थः-उतंग=ऊँचा। पतन=गिरना। कूप=कुआ। विलसै=भोगै। तृनवती= घासवाली। जरै=जलती है।**

**अर्थः-जिस उच्च स्थान पर पहुँच के फिर गिरना पड़ता है, वह उच्च पद नहीं गहरा कुआ ही है। उसी प्रकार जिस सुख के प्राप्त होने पर उसके नष्ट होने का भय है, वह सुख नहीं दुःखरूप है।।१२।। क्योंकि लौकिक सुख-सम्पत्ति का विलास नष्ट होने पर फिर दुख ही प्राप्त होता है, जिस प्रकार कि सघन घासवाली ही धरती अग्नि से जल जाती है।।१३।।**

---

काव्य-१२-१३ पर प्रवचन

---

**जिहि उतंग चढ़ि फिर पतन, नहि उतंग वह कूप।**
**जिहि सुख अंतर भय बसै, सो सुख है दुखरूप॥१२॥**
**जो विलसै सुख संपदा, गये तहां दुख होइ।**
**जो धरती बहु तृनवती, जरै अगनिसौं सोइ॥१३॥**

आहाहा! क्या कहते हैं, देखो! **जिहि उतंग** पदवी गर्व की, राजा की, सेठाई की मिले और वहाँ से नीचे गिरे, वह ऊँची चीज़ नहीं। वह तो गहरा कुँआ है। आहाहा! हमारे घर सेठाई थी, हम नगरसेठ थे। अभी तो सब मर गये हैं। रोटी का खाना भी मिलता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऊँची चीज़ ऐसी मिलकर नीचे आये, वह कूप है। आत्मा में ऊपर चढ़कर नीचे कभी गिरते नहीं, ऐसी चीज़ आत्मा है। ऐसा कहते हैं। सबको उड़ा देते हैं। राजा हुआ, सेठ हुआ, अरबपति हुआ। वह क्या उच्च पद है? वह तो पतन में ऐसे पतन होगा। ओहोहो! पहले देवलोक का देव, सौधर्म देवलोक का। दो सागर की स्थिति। एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम, असंख्य अरब वर्ष। परन्तु जब अज्ञानी वहाँ गया, कोई पुण्य क्रिया से, तो कहते हैं, यह ऊँचा पद नहीं। वहाँ से मरकर वनस्पति में जायेगा। समझ में आया? जिसे आत्मा राग से, पुण्य से, पाप से

भिन्न ऐसी अन्तर्दृष्टि हुई नहीं, उसे पुण्य के कारण से बड़ी पदवी मिले, वहाँ से (मरकर) नीचे जायेगा। आहाहा!

दूसरे स्वर्ग का देव मिथ्यादृष्टि, पुण्य की क्रिया से स्वर्ग मिला। जहाँ पुण्य पूर्ण हुआ, मरकर पृथ्वी में एकेन्द्रिय, जल में। खारे जल में नहीं, हों! सुगन्धी जल में। पृथ्वी में भी हीरा-माणेक में उपजे, हों! परन्तु पृथ्वी हीरा-माणेक है या नहीं? यहाँ यह जिथरी के पत्थर में तो वह नहीं उपजे।

**मुमुक्षु :** वसुन्धरा कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं, वह नहीं। यहाँ दूसरी चीज़ कहते हैं। यहाँ दूसरे देवलोक में जो पुण्य के कारण से जाते हैं तो उसे पुण्य का प्रेम है, रुचि है। तो मिथ्यादृष्टि वहाँ से मरकर पृथ्वी में उपजेगा, ऐसा कहते हैं। भाषा दूसरी होगी। मिट्टी में उपजते हैं। वह हीरा-माणेक में उपजते हैं। यहाँ के पत्थर हैं न। यह सब लाल पत्थर आता है न जिथरी का, उसमें नहीं उपजता। हीरा-माणेक में उपजता है। आहाहा! पानी में उपजे। साधारण ऐसे पानी में नहीं उपजे। उसका सुगन्धी पानी हो। क्या कहते हैं ऐसे को? गर्म पानी हो और निकले जरा उसमें नहाने जाये। ऊँचे सुगन्धित पानी में उपजे मरकर। अब धूल में। आहाहा!

और वनस्पति के फूल में उपजे। नीम आदि में नहीं उपजे। सुगन्धित फूल हो गुलाब का। यह दूसरे देवलोक का देव मरकर वहाँ उपजे। आहाहा! पुण्य से धर्म होता है, ऐसी मान्यतावाला पुण्य से तो उच्च गति पाये, परन्तु वहाँ से मरकर नीचे जायेगा। समझ में आया? आहाहा! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। नीचे क्या है? अरे आठवाँ देवलोक... लो। अठारह सागर की स्थिति। परन्तु अपनी चीज़ (आनन्द) स्वरूप है, पुण्य-पाप से रहित है, ऐसा अनुभव और दृष्टि नहीं, वह पुण्य की क्रिया से आठवें स्वर्ग में जाये, भगवान ऐसा कहते हैं कि वहाँ से मरकर पशु में—शूकर में अवतार हो, गधे, कुत्ते में अवतार हो। कुत्ते में। आहाहा!

आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन बिना साधक नहीं होते, इसकी बात चलती है यहाँ। यह तो साधकपना, अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति, ऐसी दृष्टि और साधकपना हुआ

नहीं। साधक साधना करके तो केवलज्ञान पायेगा। यह साधना बिना अज्ञानी ने पुण्य की क्रिया साधी और फल में स्वर्ग मिले। आठवें स्वर्ग में अठारह सागर (आयुष्य) हों। भगवान कहते हैं कि वहाँ से मरकर हिरण की कोख में अवतरे। मृग की कोख में जाये (आठवें) देवलोक का देव। आहाहा! समझ में आया?

एक प्रश्न किया था। बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९७९-७९। ७९ के वर्ष की बात है। मैंने प्रश्न किया था। एक था न वह साधु, एक आया था। वह है न स्थानकवासी। उसमें एक प्रश्न मैंने लिखा था। कहा, समकिती आराधक होकर एक समय में असंख्यात व्यवस्थित स्थिति से स्वर्ग में उपजे? ऐसा प्रश्न था। क्या कहा यह प्रश्न समझना। आत्मा का भानवाला समकिती अनुभवी—राग से भिन्नतावाला, एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में आराधक होकर स्वर्ग में असंख्य एक-सी स्थिति में उपजे? ऐसा प्रश्न था। विचार करने लगा। क्या कहना। नहीं उपजता। क्योंकि असंख्य आराधक है और उपजे समान स्थिति से, परन्तु वहाँ से छूटकर मनुष्यपने में तो आना है और मनुष्य असंख्य तो है नहीं। समझ में आया?

वे आये थे न घासीलालजी, भाई नहीं? (संवत्) १९७९ की बात है। २१ और २७। कितने वर्ष हुए? ४८। यह प्रश्न मैंने किया था। ऐसे तो बहुत प्रश्न किये थे। ७९ के वर्ष। ज्येष्ठ महीना। ७९ का ज्येष्ठ। धर्मी जीव आत्मा का आराधन करके, शास्त्र में पाठ है कि आठवें स्वर्ग में एक समय में असंख्य देव उपजे। ऐसा पाठ शास्त्र में है। किसी समय। एक समय अर्थात् सेकेण्ड के असंख्य भाग में आठवें स्वर्ग में एक समय में असंख्य देव उपजे। यह प्रश्न किया कि असंख्य देव आराधक होकर एक सी स्थिति में उपजे? बिल्कुल नहीं। मिथ्यादृष्टि पुण्य के कारण से एक समय में असंख्य एकसी स्थिति में आठवें स्वर्ग में उपजे। क्या कहा, समझ में आया? भाई! जिसे पुण्य की रुचि है, पुण्य के भाव में धर्म है—ऐसी मान्यतावाला मिथ्यादृष्टि एक समय में तिर्यंच हो तिर्यंच, मनुष्य तो यहाँ इतने हैं नहीं। पशु असंख्य तिर्यंच एक समय में सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में अठारह सागर की स्थिति में उपजे, ऐसा पाठ है। क्योंकि मरकर फिर से जाना है पशु में। मनुष्य (न हो, क्योंकि) आराधक तो है नहीं। समझ में आया थोड़ा या नहीं? सेठ! हिन्दी में आया। क्या कहते हैं?

आत्मा का आराधन करनेवाला एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में, (श्वेताम्बर) सिद्धान्त में ऐसा पाठ है कि आठवें सहस्रार देवलोक में एक समय में असंख्य देव एकसी स्थिति में उपजे। ऐसा पाठ है। तो मैंने प्रश्न किया कि असंख्य उपजे तो आराधक होकर समान स्थिति में उपजे? अभी प्रश्न नहीं समझे। समान स्थिति समान १८ सागर की स्थिति। आराधक होकर आयुष्य समान हो, ऐसा न उपजे। क्योंकि समान स्थिति से उपजे, वहाँ से छूटकर असंख्य को एकसाथ यहाँ जन्मना है। वह (मिथ्यादृष्टि) पशु में जानेवाला जीव है। यह तो सूक्ष्म प्रश्न था। ७९ में। कुछ खबर नहीं होती लोगों को। बेचारे ऐसे के ऐसे भोंट जैसे पड़े रहें। ऐ मूलचन्दभाई! अब जानेवाले हो तुम, रात्रि को तो हो नहीं।

सेकेण्ड का असंख्य भाग (या) एक मिनिट का असंख्यवाँ भाग। एक समय। सिद्धान्त शास्त्र में पाठ है कि बारहवें सहस्त्रार देवलोक में एक समय में एक साथ एकसी स्थितिवाले सब उपजते हैं। तो कहा, कौन उपजे?

**मुमुक्षु :** साधक उपजे या बाधक उपजे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बस। अमरचन्दभाई! समझ में आया? मिथ्यादृष्टि उपजे। क्योंकि वहाँ से स्थिति पूरी होकर निकलना है तो मनुष्य तो संख्यात हैं। समकिती आराधक एक समय में उपजे समान स्थिति से संख्यात हों। यहाँ मनुष्य संख्यात हैं न। कहाँ जाना है। तथापि संख्यात मनुष्य एकसाथ लाखों-करोड़ों संख्या बड़ी... ढाई द्वीप में है न मनुष्य, वह उपजे। समझे न! समान स्थिति से संख्यात जीव उपजे। संख्यात समान स्थिति से उपजे, वहाँ से छूटकर मनुष्य में करोड़ों-लाखों लोग वहाँ से आवे। समझ में आया? यह तो गणित का विषय है। अब इसमें कहाँ... ? इसमें भी लोगों को ऐसा लगता था कि आहाहा! ऐसा क्या कुछ निकाला? निकाला क्या? अब सुन न!

धर्म के आराधक जीव अपनी स्वरूपदृष्टि करके.... पशु की संख्या असंख्य है। समकिती ज्ञानी असंख्य हैं पशु में। ढाई द्वीप के बाहर धर्मी समकिती पंचम गुणस्थानवाले। मरकर स्वर्ग में जायेंगे, दूसरे में नहीं। परन्तु समान स्थिति से संख्यात जायेंगे। स्थिति में फेरफारवाले असंख्य जाये। स्थिति में थोड़ा अन्तर हो।

**मुमुक्षु :** समान स्थितिवाले....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं जा सकते, क्योंकि वहाँ से मरकर यहाँ मनुष्य में आना है। आराधक पशु में जाये नहीं। ओहोहो! यह तो मूल लोगों ने विचार-मंथन किया नहीं। क्या चीज़ है, कुछ खबर नहीं। ऐसे के ऐसे यह बीड़ियाँ और तम्बाकू में चले। बाल (बालक) बीड़ी के स्वामी, लो। सेठ! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि बालक जो प्राणी है, अपने भगवान आत्मा की अनुभव दृष्टि नहीं, वे सब बालक हैं। बालक प्राणी पुण्य की क्रिया उत्कृष्ट करके स्वर्ग में अठारह सागर की स्थिति से तिर्यंच में से असंख्य एक समय में उपजे। अठारह सागर। समझ में आया? समझ में आया या नहीं हीराभाई? ऐसा कैसे कहा कि असंख्यात उपजते नहीं? मनुष्य में आना है। मनुष्य में आराधक हुआ मनुष्य में आवे। यहाँ मनुष्य संख्यात हैं। यह दो-तीन बार कहा गया तो भी समझने में अन्दर यह न समझ में आये। ऐसा नहीं समझते, ऐसा कहा। पाटनीजी!

**मुमुक्षु :** प्रश्न बहुत गम्भीर है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कोई गम्भीर-बम्भीर नहीं है।

(संवत्) १९७९ में प्रश्न किया था। कितने वर्ष हुए? ४८, पचास में दो कम। उस समय कितनी उम्र थी? अभी ८२ है। ३४। ३४ वर्ष की उम्र थी। देह की, हों! तब प्रश्न निकाला था। बहुत निकाले थे। ऐसे-ऐसे लगभग ८५ प्रश्न थे। एक ऐसे ८५। वह एक बड़ा साधु आया था। ८० गाथा का (अर्थ) जानते हैं। ठीक है। हमने कहा, इसका उत्तर दो। वहाँ ऐसा तो कुछ तो... वह तो दूसरी बात है। तब क्या कहा उस दिन? ऐसा प्रश्न तो हमें कभी हुआ नहीं, कहे। यह उत्पाद-व्यय-ध्रुव। उत्पाद-व्यय-ध्रुव का प्रश्न किया था। नियत। ७९। एक साधु आया था घासीलालजी। घासीलाल न? नहीं, नहीं। अमीर साधु।

हमने ऐसा प्रश्न किया था कि उत्पाद-व्यय-ध्रुव ३२ सूत्र में कहाँ आता है? उनका ३२ सूत्र है न श्वेताम्बर का। ७१ हजार श्लोक हैं। मैंने ऐसा प्रश्न किया कि ७१ हजार श्लोक हैं ३२ सूत्र में। हमने तो सब देखा था न। मैंने ऐसा प्रश्न किया कि

उत्पाद-व्यय-ध्रुव, ऐसे तीन शब्द ३२ सूत्र के ७१ हजार श्लोक में कहाँ आये? तो कहे, ऐसा प्रश्न तो हमारे पास कभी आया नहीं। नहीं आया, परन्तु यह तो मूल प्रश्न है न, क्या कहते हो? मैं ऐसा नहीं कहता, उत्पाद-व्यय-ध्रुव किसे कहते हैं? मैं तो इतना कहता हूँ कि ३२ सूत्र में ७१ हजार श्लोक हैं, उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन शब्द कहाँ आये? मैं ऐसा पूछता हूँ। ऐई पाटनीजी! तो उसने जवाब दिया कि अरे, हम तो शिवलालजी का... शिवलालजी था मारवाडी नहीं? मारवाडी था। सब मिलते थे बाहर जंगल में। .....

परन्तु यह जैनदर्शन की मूल चीज़ है कि प्रत्येक पदार्थ एक समय में नयी अवस्था से उपजता है, पुरानी अवस्था से व्यय हो और ध्रुव रहे, यह तो मूल चीज़ है। और हम तो पूछते हैं कि यह शब्द कहाँ है, इतना पूछते हैं। हें... हें... हें... उसे ऐसा हो जाये। तो क्या है? ऐई वकील!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं। ऐसा है नहीं एक साथ में। अलग-अलग जगह लिखा है। उसका मेल कहाँ है? आहाहा! ऐसे तो बहुत प्रश्न किये। ८५ प्रश्न थे। लोगों को, तत्त्व क्या चीज़ है और तत्त्व का आराधक जीव कैसे होता है और तत्त्व का विराधक मिथ्यादृष्टि का शल्य क्या है, (उसकी) खबर नहीं। हम श्रावक हैं, हम साधु हैं। क्या श्रावक-साधु? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **जिहि उतंग चढ़ि फिर पतन, नहि उतंग वह कूप है।** पुण्य की क्रिया बताते हैं यहाँ। धर्म का साधक जीव नहीं, अपने शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान की दृष्टि अनुभव नहीं और अकेली पुण्य की क्रिया करता है, ऊपर चढ़कर पतन होगा। गहरे कुँए में जायेगा, यह कहते हैं। समझ में आया? यह साधक जीव की महिमा और बाधक जीव के फल..., यह बताते हैं। साध्य-साधक द्वार है। समझ में आया?

**जिहि सुख अंतर भय बसै, सो सुख है दुखरूप।** जिस सुख में नष्ट होने का भय है, वह सुख नहीं। लक्ष्मी-स्त्री-कुटुम्ब-राज क्षण में नाश हो जाये, आहाहा! कोई राजा है राजा। एक घण्टे की डेढ़ लाख की उपज है। एक घण्टे की डेढ़ लाख की। वह राजा

है। कुँआ। ईराक। पेट्रोल के कुँए निकले हैं। राज छोटा है, परन्तु राज्य में कुँए इतने निकले हैं कि एक घण्टे की डेढ़ लाख की उपज। एक राजा है। राजा को उसको भतीजे ने उड़ा दिया। राजा है राजा वहाँ ईराक। राज छोटा है, परन्तु कूप में...

**मुमुक्षु :** कुवैत।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह अपने को नाम आता नहीं। यह तो भाव वहाँ... इतनी कीमत—आमदनी। एक घण्टे की डेढ़ लाख की। पेट्रोल की इतनी उपज। बड़ा राजा। उसके भतीजे ने उड़ा दिया। अभी उड़ा दिया। भतीजा राजा हो गया। थोड़े समय की बात है।

वह तो पुण्य का फल कितनी स्थिति का है, यह कहते हैं। सब चीज़ नाशवान है। आहाहा! अविनाशी भगवान का आराधन करके जो पुण्य आया है, वह दूसरी चीज़ है, उसका पतन कभी नहीं होता। आहाहा समझ में आया?

**मुमुक्षु :** शाश्वत सुख....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सुख तो शाश्वत है, परन्तु उसे पुण्य बँधता है, उसमें चक्रवर्ती राजा, तीर्थंकर आदि होता है तो उसका पुण्य भी दूसरी चीज़ है। अज्ञानियों को तीर्थंकरगोत्र कभी नहीं बँधता। ऐसा बन्ध होता ही नहीं। चक्रवर्ती (पद) का बन्ध भी अज्ञानी को नहीं होता। समकित चारित्र न हो तो नहीं होता। कीमत, साधक की कीमत बताते हैं। पुण्य की क्रिया में जो राच रहा है, वह साधक नहीं। शुक्ललेश्या लेकर स्वर्ग में जाओ, वहाँ से गिरकर गहरे कुँए में जाएगा। पशु होकर नरक, निगोद में जायेगा, ऐसा कहते हैं। वह ऊपर उठा नहीं। आहाहा!

आत्मा के धर्म की साधना करके भले पहले देवलोक (सौधर्म) में गया, परन्तु वहाँ से निकलकर महाराजा की रानी के चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि होगा। यह धर्म के आराधक की भूमिका में बँधा हुआ पुण्य का फल है। यह तो भान बिना मिथ्यादृष्टि क्रियाकाण्ड करे, शुक्ललेश्या। समझ में आया? बारह-बारह महीने के अपवास, आजीवन ब्रह्मचर्य। जिन्दगी (पूरी) ब्रह्मचर्य, बालब्रह्मचारी। दृष्टि मिथ्यात्व। वह क्रिया हमारी है, इस क्रिया से हमारी मुक्ति होगी। ऐसा मिथ्यादृष्टि पुण्य के कारण (स्वर्ग में)

जाये, नीचे गिरेगा। उसमें सुख मानता है। सुख है नहीं, नाश है। यह सुख तो दुःखरूप है। अरे! बनारसीदास ने कितना स्पष्ट किया है!

**जो विलसै सुख संपदा, गये तहां दुख होइ। लौकिक सुख सम्पत्ति का विलास नष्ट होने पर फिर दुःख ही प्राप्त होता है।** समझ में आया? एक व्यक्ति है। (संवत्) १९८१ में हमारा चातुर्मास था न गढडा में। कामदार का दामाद था, भावनगर का था। नाम क्या था, खबर नहीं। तो बात चलती थी ऐसी कि सब नाशवान है। अपना अविनाशी का भान नहीं तो सब मिथ्यादृष्टि मूढ़ हैं। तो उसने कहा, महाराज! मैं ४८ वर्ष पहले मुम्बई गया था। ४८ वर्ष पहले मुम्बई गया था। अकेला गया था। फिर शादी हुई, लड़का हुआ, लड़की हुई। सुपारी का व्यापार था। सुपारी, नहीं? सोपारी नहीं समझते?

**मुमुक्षु :** सुपारी भोजन के बाद नहीं लेते? मुखवास।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सुपारी का व्यापार। सुपारी नहीं आती है? हाँ, सुपारी। सुपारी का व्यापार। पैसा हुआ। ४८ वर्ष बाद जैसा गया था, वैसा आया हूँ। उसने कहा। घर में बारह आदमी थे। ग्यारह समाप्त हो गये। एक मैं रहा हूँ। पैसा गया, धन्धा गया, सब गये। मैं अकेला आया हूँ। आहाहा! सेठ! परचीज़ कहाँ साथ में रहती है?

भगवान आत्मा आनन्दकन्द का अनुभव और दर्शन हुआ, वह साथ लेकर जाता है और आगे उसकी वृद्धि होगी। आहाहा! यह बताते हैं। साधक में लाभ क्या और बाधक में नुकसानी क्या, यह बताते हैं। आहाहा! समझ में आया? **गये तहां दुख होइ। जो धरती बहु तृनवती...** आहाहा! देखो! जो सघन घासवाली जो धरती। ऐसी धरती— जमीन पर घास उपजी हो। अग्नि लगे वहाँ समाप्त। आहाहा! पूरा जंगल खाक। इतनी वनस्पति उगी हो। लिखा है न! **जिस प्रकार कि सघन घासवाली ही धरती अग्नि से जल जाती है... धरती बहु तृनवती, जरै अगनिसौं सोइ...** आहाहा! एकदम हरे वृक्ष। अग्नि लगी तो राख एकदम काले... आहाहा! एकदम काले हो जायें। इसी प्रकार आत्मा के भान बिना पुण्य की क्रिया से संयोग मिले। उसकी अवधि (पूरी) होगी, नाश हो जायेगा। समझ में आया? पुण्य और पुण्य के फल सब नाशवान हैं। अविनाशी आत्मा की दृष्टि और ज्ञान, वह अविनाशी को प्राप्त कराते हैं। पुण्य आदि से अविनाशी की प्राप्ति नहीं होती। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन नं. १६६, आसोज शुक्ल १, सोमवार, दिनांक २०-०९-१९७१**
**साध्य-साधक द्वार, पद १४ से २२**

समयसार नाटक है। साध्य-साधक अधिकार। १४वाँ (पद) है न। **श्रीगुरु के उपदेश में ज्ञानी रुचि लगाते हैं और मूर्ख समझते ही नहीं।** साधक का अधिकार है न।

★ ★ ★

**काव्य - १४**

**श्रीगुरु के उपदेश में ज्ञानी जीव रुचि लगाते हैं और मूर्ख समझते ही नहीं**

(दोहा)

**सबद मांहि सतगुरु कहै, प्रगट रूप निज धर्म।**
**सुनत विचच्छन सद्दहै, मूढ़ न जानै मर्म।।१४।।**

**अर्थः-श्रीगुरु आत्म-पदार्थ का स्वरूप वर्णन करते हैं, उसे सुनकर बुद्धिमान लोग धारण करते हैं और मूर्ख उसका मर्म ही नहीं समझते।।१४।।**

**काव्य-१४ पर प्रवचन**

**सबद मांहि सतगुरु कहै, प्रगट रूप निज धर्म।**
**सुनत विचच्छन सद्दहै, मूढ़ न जानै मर्म॥१४॥**

क्या कहते हैं? **सबद मांहि सतगुरु....** ज्ञानी शब्द द्वारा धर्म कहे। **प्रगट रूप निज धर्म।** अपना ज्ञानस्वभाव—धर्म, आनन्दस्वभाव उसे प्रगट कहे। कि भाई! तेरा स्वभाव तो आनन्द और ज्ञान है। उसमें दृष्टि लगा तो तुझे धर्म होगा। साधक का साध्य है न? **प्रगट रूप निज धर्म।** आत्मा का, ज्ञान अतीन्द्रिय आनन्द, वह उसका स्वभाव है और उस स्वभाव में दृष्टि करके—दृष्टि करके निजधर्म जो ज्ञान और आनन्द की दशा प्रगट होती है, वह आत्मा का निजधर्म है। समझ में आया? **सुनत विचच्छन सद्दहै,...**

यहाँ तो यही बात ली है। आहाहा! पात्र जीव हो, भला जीव हो... सुनत—सुनते ही ज्ञानी—विचिक्षण अपना निज स्वरूप अनन्त काल में कभी सुना नहीं, श्रवण में लिया नहीं, अनुभव में लिया नहीं, उसे अनुभव करे, ऐसा यहाँ कहते हैं। पण्डितजी!

**सुनत विचच्छन सद्दहै,...** भगवान आत्मा का धर्म अर्थात् स्वभाव तो त्रिकाल है उसका। उसका आश्रय लेकर, उसका अवलम्बन लेकर, जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति प्रगट हो, वह धर्म है। कहो, मूलचन्दभाई! यह व्रत, तप, पूजा, भक्ति और विकल्प, वह धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। निजधर्म है न? आहाहा! यह दृष्टान्त देकर कहेंगे।

**मूढ़ न जानै मर्म।** धर्म का मर्म अज्ञानी नहीं जानता। ज्ञानी उसे बारम्बार कहे तो भी अज्ञानी को यह बात बैठती नहीं। उसे कुछ भी यह बाहर की क्रिया कुछ व्यवहार, व्रत करना, तप करना, भक्ति-पूजा, मन्दिर बनाना उसमें कुछ धर्म है या नहीं?

**मुमुक्षु :** नहीं। आत्मा आत्मा का है यहाँ तो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ तो यह कहते हैं यहाँ। अज्ञानी उसमें धर्म मानता है। उसे आत्मा के आश्रय से धर्म होता है, उसे मानता नहीं। गजब बात! बहुत संक्षिप्त में कहा, देखो। **सबद मांहि सतगुरु कहै,...** ऐसा। शब्द से बात करे न बात आवे तो, ऐसा कहे। और एकओर कहे कि शब्द आत्मा बोल सकता नहीं। कोई (कहता) तीर्थंकर भी बोल सकते नहीं। वाणी को कौन बोले? वाणी तो जड़ है। परन्तु निमित्त का सम्बन्ध बतलाना है न, कि ज्ञानी उसे वाणी से कहे, भाई! तेरा धर्म तो... तू शुद्ध चैतन्य है। ज्ञानानन्द, वह शरीर-वाणी से तो भिन्न, परन्तु पुण्य-पाप के विकार के विभाव से भी भिन्न है। ऐसी तेरी चीज़ को तू अनुभव कर, वह धर्म है। उसका दृष्टान्त देते हैं। **मूर्ख उसका मर्म ही नहीं समझते। ऊपर के दोहे का दृष्टान्त द्वारा समर्थन।** दृष्टान्त—

★ ★ ★

## काव्य - १५

**ऊपर के दोहे का दृष्टांत द्वारा समर्थन** (सवैया इकतीसा)

**जैसैं काहू नगरके वासी द्वै पुरुष भूले,**
**तामैं एक नर सुष्ट एक दुष्ट उरकौ।**
**दोउ फिरैं पुरके समीप परे ऊटवमैं,**
**काहू और पथिकसौं पूछैं पंथ पुरकौ।।**
**सो तौ कहै तुमारौ नगर है तुमारे ढिग,**
**मारग दिखावै समुझावै खोज परकौ।**
**एतेपर सुष्ट पहचानै पै न मानै दुष्ट,**
**हिरदै प्रवांन तैसे उपदेस गुरुकौ।।१५।।**

**शब्दार्थ:-वासी=रहनेवाले। सुष्ट=समझदार। दुष्ट=दुर्बुद्धि। ऊटव=उलटा रास्ता। ढिग=पास, निकट।**

**अर्थ:-जिस प्रकार किसी शहर के रहनेवाले दो पुरुष बस्ती के समीप रास्ता भूल गये, उसमें एक सज्जन और दूसरा हृदय का दुर्जन था। रास्ता भूलकर उलटे फिरें और किसी तीसरे रास्तागीर से अपने नगर का रास्ता पूछें तथा वह रास्तागीर उन्हें रास्ता समझाकर दिखावे और कहे कि यह तुम्हारा नगर तुम्हारे ही निकट है। सो उन दोनों पुरुषों में जो सज्जन है, वह उसकी बात को सच्ची मानता है अर्थात् अपने नगर को पहिचान लेता है और मूर्ख उसे नहीं मानता; इसी प्रकार ज्ञानी लोग श्रीगुरु के उपदेश को सत्य श्रद्धान करते हैं, पर अज्ञानियों की समझ में नहीं आता। भाव यह है कि उपदेश का असर श्रोताओं के परिणामों के अनुसार ही होता है[१]।।१५।।**

---

### काव्य-१५ पर प्रवचन

जैसैं काहू नगरके वासी द्वै पुरुष भूले,
तामैं एक नर सुष्ट एक दुष्ट उरकौ।

१. चौपाई-सुगुरु सिखावहिं बारहिं वारा। सूझ परै तऊं मति अनुसारा।।

**दोउ फिरैं पुरके समीप परे ऊटवमैं,**
**काहू और पथिकसौं पूछैं पंथ पुरकौ॥**
**सो तौ कहै तुमारौ नगर है तुमारे ढिग,**
**मारग दिखावै समुझावै खोज परकौ।**
**एतेपर सुष्ट पहचानै पै न मानै दुष्ट,**
**हिरदै प्रवांन तैसे उपदेस गुरुकौ॥१५॥**

आहाहा! **जैसें काहू नगरके वासी...** कोई नगर के रहनेवाले ऐसे दो आदमी... दृष्टान्त दिया। **द्वै पुरुष भूले,....** अपने नगर के पास ही हैं, परन्तु भूल गये। दिशामूढ़ हो गये। है तो नगर के समीप में ही घूमते हैं नजदीक। **तामैं एक नर सुष्ट एक दुष्ट उरकौ।** उसमें एक तो भला आदमी है और एक हृदय का कुटिल—उल्टा है। **दोउ फिरैं पुरके समीप...** दोनों नगर के समीप में ही घूमते हैं, कहते हैं। नगर के नजदीक में ही दोनों हैं। समझ में आया? **परे ऊटवमैं**—उल्टे रास्ते जाते हैं। **काहू और पथिकसौं पूछैं पंथ पुरकौ।** दूसरे पथिक को पूछते हैं कि अपना नगर कहाँ आया? हमारा वास नगर—गाँव कहाँ आया? **सो तौ कहै तुमारौ नगर है तुमारे ढिग,...** यह तुम्हारा नगर यही है यहाँ समीप। यह है उसमें तुम घूमते हो। समझ में आया?

पाळियाद में एक (प्रसंग) बना था। खबर है? वह दामा मोती। विसाश्रीमाली था न? फिर पाळियाद से जाना बोटाद। पाँच कोस होता है। गाड़ी में बैठे। अन्धकार घना अन्धकार। उसमें चलते-चलते लगभग पाँच कोस चले, ऐसा लगा। अर्थात् कि.... आया पाळियाद वापस। पाळियाद से चले थे और वापस पाळियाद आया। लीलीयो है पाळियाद के किनारे एक। बहाव। बाबरकोट, लीलीया के ऊपर बाबरकोट छोटा गाँव। पाळियाद के बीच में एक बहाव पानी का और ऐसे बाबरकोट। जहाँ ऐसे पाँच कोस चले। यहाँ पूछा कि कहाँ हो? यह बोटाद? कहे, नहीं बाबरकोट। ओय! भूले, भान नहीं होता। दामा मोती था विसाश्रीमाली। अरे, एक यह तो इतना-इतना चले न! चल-चलकर वापस वहाँ के वहाँ आये। घूम-घूमकर वहीं के वहीं नजदीक। यहाँ तो यह बात है कि अपना आत्मा पास में है। धर्म करनेवाले को कहीं बाहर खोजने जाना पड़े, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**तुमारौ नगर है तुमारे ढिग, मारग दिखावै समुझावै खोज पुरकौ।** यह रहा, परन्तु देखो न! यह अन्दर जो तेरा गाँव। यह दरवाजा है। इस दरवाजे से यहाँ अन्दर जाया जाता है। **एतेपर सुष्ट पहचानै....** भला व्यक्ति हो वह तो जाने कि हाँ,... यह तो नगर यह रहा। और वहीं के वहीं घूमते हैं यह तो। **न मानै दुष्ट....** दुष्ट माने नहीं। **हिरदै प्रवांन तैसे उपदेस गुरुकौ।** जिसका (जैसा) हृदय योग्य या अयोग्य है, ऐसा उपदेश उसे लागू पड़ता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? एक शब्द में.... निहालचन्दभाई... एक शब्द में आत्मा का साधक का पड़े, तुरन्त आत्मा का भान हो, ऐसे भी पात्र जीव होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पाँचवीं गाथा में ऐसा कहा समयसार। **'एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।'** मैं भगवान आत्मा। उसका निर्मल स्वभाव आत्मा से एकपने है, एकत्व है और पुण्य-पाप के विकल्प, वे उससे आत्मा का स्वभाव पृथक् है। यह बात कहूँगा, दिखाऊँगा, प्रमाण करना—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? प्रमाण करना। आहाहा!

भगवान आत्मा... मैं स्वयं जिसे शोधना चाहता हूँ, वह मैं स्वयं हूँ। धर्म करनेवाला कौन है? कि मैं स्वयं ही वह हूँ। समझ में आया? **हिरदे प्रवांन...** है न उसमें? **तुम्हारा नगर तुम्हारे ही निकट है। अपने नगर को पहिचान लेता है और मूर्ख उसे नहीं मानता। इसी प्रकार ज्ञानी लोग श्रीगुरु के उपदेश को ( सत्य ) श्रद्धान करते हैं।** नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता। यहाँ तो सीधी बात करते हैं कि निश्चय आत्मा तेरा स्वभाव तेरे पास है, तू वहाँ जा। कोई राग की क्रिया से और व्यवहार की क्रिया से यह हो, यह बात इसमें है नहीं।

**मुमुक्षु :** इसका नाम अनेकान्त?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसमें है नहीं परन्तु। यह कहा न! निजधर्म तेरा तेरे पास है। राग तो भिन्न है। कहो, भीखाभाई! तो यह क्या हुआ? यह भीखाभाई को चैन पड़ती नहीं। परन्तु चैन अन्दर खोजने जाये तो चैन पड़े न!

कहते हैं, **पर अज्ञानियों की समझ में नहीं आता।** आहाहा! अरे! ऐसा होगा? उसे पहला व्यवहार चाहिए या नहीं? अरे, व्यवहार करेंगे तो निश्चय होगा। परन्तु निश्चयस्वभाव व्यवहार से भिन्न है और समीप में है, उसकी इसे खबर नहीं। समझ में

आया? निज आनन्दस्वभाव और ज्ञानस्वभाव, वह तू स्वयं है। उसके सन्मुख देखने से तुझे उसकी समीपता भासित होती है। वह दूर नहीं है, ऐसा कहते हैं। दूर भासित होता है। आहाहा! कितना करें और क्या-क्या करें तो प्राप्त हो? उसको (-विकल्पवाले को) दूर भासित होता है। करना कहीं नहीं। करना अन्दर चैतन्य भगवान को अन्तर्मुख देखना, इतना करना है इसे। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म है।

**भाव यह है कि उपदेश का असर श्रोताओं के परिणामों के अनुसार ही होता है।** असर का अर्थ निमित्तपना, ऐसा। जो पात्र हो, उसे समझ में आये। पात्र न हो उसे समझ में नहीं आये। यह तो उस पर रहा। असर। भाषा डाली है यहाँ। असर क्या? भाषा तो ऐसी ही कहलाये न! उपदेश में क्या आवे? असर घुस जाता है अन्दर? आहाहा! अब इसके दृष्टान्त का विशेष कहते हैं। एकड़ा कहाँ रखा है?

**मुमुक्षु :** होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, होता है वहाँ। यह रखा है वह चौपाई है न तुलसी। तुलसीदास की चौपाई रामायण की। **'सगुरु सिखावहिं बारहिं बारा, सूझ परै तऊं मति अनुसारा।' 'सगुरु सिखावहिं बारहिं बारा, सूझ परै तऊं मति अनुसारा।'** परमात्मा बारम्बार चाहे (जितना) कहे। बारम्बार कहे, ऐसा लिखा है। चाहे जितना बारम्बार कहे तो समझ में आये। पाँचवीं गाथा समयसार। यहाँ कहते हैं, **सगुरु सिखावहिं बारहिं बारा, सूझ परै तऊं मति अनुसारा।** उसकी मति अनुसार उसे सूझ—समझ में आये। समझ में आया?

राग और ज्ञान भिन्न है, इतना कहा था भाई को—निहालचन्दभाई को। निहालचन्दभाई। राग और ज्ञान भिन्न है, इतना कहा। वहाँ तो फैसला करके उठ गये बाहर से। ज्ञान और राग भिन्न कर दिया। अपने समीप वस्तु है। उसे कुछ भी दूसरा करूँ तो मिले, यह शल्य इसे अन्दर नहीं जाने देती। समझ में आया? आहाहा! स्वयं भगवान जो धर्म करना चाहता है, वह धर्म की दशा तो वीतरागी पर्याय है। तो वीतरागी पर्याय तो वस्तु जो है, उसके समीप में जाये तो वहाँ से प्रगट हो। समझ में आया? राग और पुण्य और निमित्त में जाये, वहाँ है आत्मा?

**मुमुक्षु :** आत्मा को बतावे तो सही।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बतावे उसका अर्थ क्या हुआ? उसे कहा कि यह देख अन्दर देख, ऐसा कहा। देखना तो इसे है या नहीं? कहो, समझ में आया? लोक में ऐसा नहीं कहा जाता? कि भाई! ब्राह्मण इसका विवाह कराये, कहीं घर चला दे? विवाह कराने का अर्थ कि जो यह विवाह करता है। मन्त्र... मन्त्र पढ़ावे। फिर कहे कि तुमने हमारा विवाह कराया, इसलिए अब तुम घर चलाओ। हमारे घर का निर्वाह कर दो तुम। ऐसा कह दे? इसी प्रकार इसे करे ईशारा। भाई! पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड, वह तू स्वयं ही है। आहाहा! समझ में आया? अब दृष्टान्त में कहते हैं। वह भी उसके ऊपर का दृष्टान्त है।

★ ★ ★

## काव्य - १६

**जैसैं काहू जंगलमैं पावसकौ समै पाइ,**
**अपनै सुभाव महामेघ बरषतु है।**
**आमल कषाय कटु तीखन मधुर खार,**
**तैसौ रस बाढ़ै जहां जैसौ दरखतु है।।**
**तैसैं ग्यानवंत नर ग्यानकौ बखान करै,**
**रसकौ उमाहू है न काहू परखतु है।**
**वहै धुनि सुनि कोऊ गहै कोऊ रहै सोइ,**
**काहूकौ विखाद होइ कोऊ हरखतु है।।१६।।**

**शब्दार्थ:-पावस=बरसात। आमल=खट्टा। कषाय=ऐंठायला। कटु=कडुवा। तीखन (तीक्ष्ण)=चरपरा। मधुर=मीठा। खार (क्षार)=खारा। दरखतु (दरख्त)=वृक्ष। उमाहू= उत्साहित। न परखतु है=परीक्षा नहीं करता। धुनि (ध्वनि)=शब्द। विखाद (विषाद)=रंज। हरखतु=हर्षित (आनन्दित)।**

**अर्थ:-जैसे किसी वन में बरसात के दिनों में अपने आप पानी बरसता है तो खट्टा, कषायला, कडुवा, चरपरा, मिष्ट, खारा जिस रस का वृक्ष होता है, वह पानी भी उसी रसरूप हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी लोग ज्ञान के व्याख्यान में अपना अनुभव प्रगट करते हैं, पात्र-अपात्र की परीक्षा नहीं करते, उस वाणी को सुनकर कोई तो ग्रहण करते हैं, कोई ऊंघते हैं, कोई विषाद करते हैं और कोई आनन्दित होते हैं।**

**भावार्थ:-जिस प्रकार पानी अपने आप बरसता है और वह नींब के वृक्ष पर पड़ने से कडुवा, नींबू के वृक्ष पर पड़ने से खट्टा, गन्ने के झाड़ पर पड़ने से मिष्ट, मिर्च के झाड़ पर पड़ने से चरपरा, चने के झाड़ पर पड़ने से खारा और बबूल पर पड़ने से कषायला हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञानी लोग ख्याति, लाभादि की अपेक्षा रहित माध्यस्थभाव से तत्त्व का स्वरूप कथन करते हैं, उसे सुनकर कोई श्रोता परमार्थ ग्रहण करते हैं, कोई संसार से भयभीत होकर यम-नियम लेते हैं, कोई लड़ बैठते हैं, कोई ऊँघते हैं, कोई कुतर्क करते हैं, कोई निन्दा-स्तुति करते हैं और कोई व्याख्यान के पूर्ण होने की ही वाट देखते रहते हैं।।१६।।**

## काव्य-१६ पर प्रवचन

**जैसैं काहू जंगलमैं पावसकौ समै पाइ,**
**अपनै सुभाव महामेघ बरषतु है।**
**आमल कषाय कटु तीखन मधुर खार,**
**तैसौ रस बाढ़ै जहां जैसौ दरखतु है॥**
**तैसैं ग्यानवंत नर ग्यानकौ बखान करै,**
**रसकौ उमाहू है न काहू परखतु है।**
**वहै धुनि सुनि कोऊ गहै कोऊ रहै सोइ,**
**काहूकौ विखाद होइ कोऊ हरखतु है॥१६॥**

**जैसैं काहू जंगलमैं पावसकौ समै पाइ,....** पावस—बरसात का काल। बरसात का टाईम हो, तब **समै पाइ**—उसका समय मिले इसलिए **अपनै सुभाव महामेघ बरषतु है।** वर्षा तो अपने कारण से बरसती है। है न? **अपने सुभाव...** यह मेघ का स्वभाव है।

स्वभाव है कि बरसे। **आमल कषाय,...** लो ठीक। खट्टा-मीठा। जैसा वृक्ष हो, वैसा पानी परिणम जाये। नींबू का वृक्ष हो तो खट्टेरूप से परिणम जाये। अफीम का हो (तो) कड़वेरूप से परिणम जाये पानी। है न? **आमल कषाय कटु तीखन...** लो। कटु— कड़वा। तीक्ष्ण—चरपरा, लो। तीक्ष्ण। तुम्हारे मूल पाठ में **तीखन** है। **तीखन**—हमारे तीखा कहते हैं। तुम्हारे चरपरा, ऐसा। **मधुर—**मीठा, लो। शेरडी—गन्ना... गन्ना। वहाँ पानी जाये तो मीठा हो, करेला में पानी जाये तो कड़वा हो, नींबू में जाये तो खट्टा हो। पानी तो जो है, वह है। जिस प्रकार के वृक्ष, उस प्रकार से परिणमे उसे। समझ में आया? कड़वा, तीक्ष्ण—चरपरा, मधुर, मीठा। **खार,** लो। खारा हो। पानी ऊँचा चढ़े अन्दर से जहाँ यह समुद्र में, खारा हो। वृक्ष का खारापन, चना। चना होता है न। चना नहीं? चना। खार वह खार जमे अन्दर से। पानी तो पानी है। परन्तु जैसा उसके वृक्ष का मूल है जिस जाति का, उस जातिरूप से पानी होता है, लो। **तैसौ रस बाढ़े...** जैसी जिसकी वृक्ष की जाति है, वैसा पानी का रस बढ़े। **जहाँ जैसौ दरखतु है...** जैसा जो द्रव्य हो, ऐसा। **दरखतु—**वृक्ष, ऐसा। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... वहाँ नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प राग आदि कुछ आत्मा में है नहीं। वह तो ज्ञानप्रधान से बात की है। समझ में आया?

**तैसैं ग्यानवंत नर ग्यानकौ बखान करै,...** चैतन्य भगवान ज्ञानस्वरूप है... ज्ञानस्वरूप है। ऐसा कि उसमें दूसरी कोई चीज़ है नहीं। दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा करने का विकल्प भी उसकी चीज़ में नहीं। वह तो ज्ञान की मूर्ति है। आहाहा! **ग्यानवंत नर ग्यानकौ बखान करै,... ज्ञानी लोग ज्ञान के व्याख्यान में अपना अनुभव प्रगट करे। रसकौ उमाहू है न काहू परखतु है....** लो। **उमाहू—**उत्साही। जिसका जैसा उत्साह, ऐसा कहते हैं। **उसी प्रकार ज्ञानी लोग ख्याति, लाभादि की अपेक्षारहित....** वह वर्षा अपने आप बरसती है, ऐसा कहा न! उपदेशक को कोई दुनिया से लाभ लेना है, (ऐसा) कुछ उसके लिये उपदेश नहीं। ऐसा कहते हैं। ख्याति के लिये नहीं। है न? **अपेक्षारहित माध्यस्थभाव से तत्त्व का स्वरूपकथन करते हैं। उसे सुनकर कोई श्रोता परमार्थ ग्रहण करते हैं....** लो।

**रसकौ उमाहू है न काहू परखतु है।** उत्साही है रस का। आहाहा! सुनानेवाला सभा में तो एक बात करे सब। ऐसा कुछ यह पात्र है और अपात्र है, ऐसा (देखकर)

बात करे ? ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं। वाणी को सुन, यह आगे लिखा है। अपेक्षारहित... देखो न अन्दर लिखा है। पाठ में लिखा है। **ख्याति, लाभादि की अपेक्षा रहित माध्यस्थभाव से तत्त्व का स्वरूप कथन करते हैं।** यह कहीं पर को ध्यान रखे नहीं, लो। परतत्त्व, यह आया न ? परीक्षा नहीं करता। परीक्षा नहीं करता। पानी ऐसी परीक्षा नहीं करता कि मुझे नींबू में जाना, फलाने में जाना। वह तो पानी की जैसी योग्यता है, वहाँ पानी जाये। इसी प्रकार ज्ञानी उपदेश करे, उसमें पात्र–अपात्र वह नहीं देखता। यहाँ तो ऐसा आया।

**मुमुक्षु :** पात्र को अनुसरकर उपदेश दे, ऐसा नहीं आया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो एक व्यक्तिगत की अपेक्षा से लो। सभा में तो उपदेश एक ही प्रकार का द्रव्यानुयोग का (होता है)।

कहा न, मोक्षमार्गप्रकाशक में। सभा में मुख्य उपदेश तो द्रव्यानुयोग अध्यात्म का ही हो कि जिसमें मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहा है वहाँ। व्यक्तिगत वह तो जब एक व्यक्ति को उसकी योग्यता प्रमाण कहे। सभा में तो उसका उपदेश (हो) मुख्यरूप से, उसमें ऐसा कहा है। मोक्षमार्गप्रकाशक में। समझ में आया ? **पात्र-अपात्र की परीक्षा नहीं करते हैं,...** देखो, उसमें आया है या नहीं ? **उस वाणी को सुनकर कोई तो ग्रहण करते हैं, कोई ऊंघते हैं।** झोला–झोला खाते हैं। हवा ठण्डी हो, खाकर आया हो ठीक सा। चूरमा–बूरमा खाया हो और अरबी के भजिया और ऐ...य... ऐसे पवन आवे तो झोला खाये (नींद ले)। मोटर में ऐसा होता है न! मोटर चले ठण्डी हवा आवे, यह मानो लोरी लागे मोटर ऐसी। नींद आ जाये उसे। इसी प्रकार कितने ही तो सुनते–सुनते ऊँघते हैं। दरकार नहीं कि यह क्या चीज़ है।

**वहै धुनि सुनि कोऊ गहै कोऊ रहै सोइ,...** सोई... सोई—सोते हैं। झोला खाते हैं ऐसे... ऐसे... थे एक नरसीभाई। मकनभाई नहीं थे यहाँ ? उसके काका थे। होंकार वे दें। चाहे जो व्याख्यान चलता हो तो जी... जी... महाराज। वह वृद्ध व्यक्ति थे बेचारे। यह मकनभाई नहीं ? उनके काका नरसीभाई। यह नरसीभाई नहीं, अपने मकनभाई के काका गोवडिया। नरसीभाई गोवडिया। उसे बहुत नींद आवे। बहुत बार कहें। कुछ

काम की चिन्ता बहुत नहीं उसे। दिखे... ऐसे बराबर बैठे हों निवृत्त होकर। प्रमाण वचन, और ऐसा कहे। नींद ले....

**मुमुक्षु :** अर्धजागृत....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसे तो एकदम निवृत्त... हो जाये। आहाहा! यह बात हमारे चातुर्मास था न तब (संवत्) १९८१ में।

यहाँ तो कहते हैं कि यहाँ तो सुनानेवाला क्या करे, ऐसा कहना है। उसकी पात्रता—अपात्रता पर उसका रस चढ़े नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो, **कोई ऊँघते हैं, कोई विषाद करते हैं,....** लो। **काहूकौ विखाद होइ....** आत्मा... आत्मा की लगाते हो यह। आत्मा... आत्मा... परन्तु कोई भी दूसरी बात नहीं।

**मुमुक्षु :** व्यवहार की तो बात नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बात भी करते नहीं। पण्डितजी! व्यवहार का करना, भक्ति करना, पूजा करना तो लाभ होगा, ऐसी तो बात करते ही नहीं कभी। अज्ञानी सत्य बात को सुनकर विषाद... विषाद। खेद... खेद करता है। **और कोई आनन्दित होते हैं।** आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का हमने तो सुना नहीं, भाई। अन्दर आत्मा आनन्द... आनन्दस्वरूप भगवान परिपर्णू प्रभु... आहाहा! अन्तर में गति कर तो तुझे समकित होगा। बाह्य क्रियाकाण्ड से समकित-बमकित होगा नहीं। आहाहा! प्रसन्नता हो जाये उसे, आहाहा! ऐसी बात।

**जिस प्रकार पानी अपने आप बरसता है।** देखो, अपने आप बरसता है। **और वह नीम के वृक्ष पर पड़ने से कड़वा, नींबू के वृक्ष पर पड़ने से खट्टा, गन्ने के झाड़ पर पड़ने से मिष्ट, मिर्ची के झाड़ पर पड़ने से चरपरा,....** मिर्च। **चने के झाड़ पर पड़ने से,...** खारा। चना... चना आवे न चना खारा। चना भी खारा हो। **और बबूल पर पड़ने से कषायला।** यह बबूल-बबूल। बबूल होती है न बबूल! **उसी प्रकार ज्ञानी लोग ख्याति, लाभादि की अपेक्षारहित माध्यस्थभाव से तत्त्व का स्वरूप कथन करते हैं। उसे सुनकर कोई श्रोता परमार्थ को ग्रहण करते हैं।** ओहो! ऐसी बात कभी सुनने में नहीं आयी। ऐसा मार्ग, धर्म! वीतरागमार्ग ऐसा! आहाहा! भगवान आत्मा अन्तर्मुख की

दृष्टि करने से धर्म होता है। अन्तर्मुख का आत्मा का आश्रय करे तो धर्म होता है। बाकी बाह्य के आश्रय से जितना व्यवहार उत्पन्न हो, सब अधर्म अर्थात् बन्ध का कारण है। वह कहे, अधर्म न कहो। तब भाई! अब पुण्य कहो। ले न, भाई तेरी... आहाहा!

**कोई संसार से भयभीत होकर यम-नियम लेते हैं।** आत्मा का भान करके, आत्मा के आनन्द की रमणता में चारित्र ग्रहण करे। **कोई लड़ बैठते हैं।** परस्पर अन्दर सुनते-सुनते, वह कहे ऐसा, यह नहीं, ऐसा नहीं। वह कहे, नहीं, व्यवहार नहीं। व्यवहार का नाश हो जाता है। व्यवहार... वह कहे, ऐसा नहीं होता। यह झगड़े अन्दर। सुनते सुनते भी... **कोई ऊंघते हैं, कोई कुतर्क करते हैं।** ऐसा धर्म? भगवान का मार्ग तो स्याद्वाद अनेकान्त है। व्यवहार से भी धर्म हो, निश्चय से भी धर्म हो, (ऐसा) दोनों हो। ऐसे कुतर्क करे अन्दर से। समझ में आया? निमित्त से भी अन्दर कार्य हो और उपादान से भी कार्य हो, ऐसा कुतर्क करे, परन्तु वास्तविक तत्त्व समझे नहीं। आहाहा!

**कोई निन्दा-स्तुति करते हैं।** कोई निन्दा करे। ऐसा धर्म कहते हैं। यह मन्दिर के ताला लगाना पड़ेगा। छोटेभाई के गाँव के हैं। रतिभाई मास्टर। यह महाराज कहते हैं, ऐसा यदि धर्म जँचे तो स्थानकवासी के उपाश्रय बन्द करने पड़ेंगे, कहे। क्योंकि उसमें तो क्रियाकाण्ड में धर्म कहते नहीं। ऐसा दूसरा यहाँ आता है। ऐसा यदि कहने जाये तो यह यात्रा नहीं जाये, पूजा नहीं करे। अरे! परन्तु यह भाव आये बिना रहे नहीं। परन्तु धर्मी उस भाव को समझता है कि यह तो पुण्य है, धर्म नहीं। समझ में आया? **और कोई व्याख्यान के पूर्ण होने की वाट देखते हैं।** कितने बजे? अब आये तो पूरा तो करना पड़ेगा। अब बैठे हों सामने। समझे न, वह होशियार व्यक्ति हो तो पीछे बैठे तो उठकर शीघ्र जाना हो तो चला जाये। बैठा सामने आगे, अब क्या करना? उठा नहीं जाता। आहाहा।

जिसे इन्द्र सुनते हैं, जिसे गणधर सुनते हैं, ऐसी वीतराग की वाणी... आहाहा! इन्द्र और गणधर जिसे—भगवान की वाणी सुनने (आते हैं)। स्वर्ग में से बत्तीस लाख विमान का स्वामी है सौधर्म इन्द्र। करोड़ों अप्सरायें। यह नहीं रे नहीं। यह नहीं। यह भोग और साधन सब दुःख के निमित्त हैं और यह दुःख है। ऐसा भान आनन्द का भान

समकिती एकावतारी... सौधर्म इन्द्र और उसकी रानी पत्नी, दोनों एकभवतारी हैं। दोनों व्यक्ति एकभव में मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! अभी सौधर्म इन्द्र है। यह भगवान की वाणी सुनने आवे वहाँ सीमन्धर भगवान के पास महाविदेह में। बत्तीस लाख विमान और उस ईशान इन्द्र को अट्ठाईस लाख विमान। एक-एक विमान में असंख्य देव, उसका स्वामी... अरे! यह नहीं रे नहीं। यह मुझमें नहीं। मैं तो ज्ञानस्वरूप आनन्द हूँ। वह मेरी चीज़ मेरे पास है। दूर है, वह चीज़ मेरी नहीं। ऐसा सुना है, अनुभव किया है, तथापि सुनने आता है। आहाहा!

वह सिंह का बच्चा है न। सिंह नहीं? हरिभाई ऐसे रखते हैं न! भगवान का दसवाँ भव। महावीर भगवान का दसवाँ भव। आहाहा! मुनि कहते हैं... पशु में। आहाहा! ऐसे हिरण फाड़ता था। ऊपर से उतरे। ऊपर से दो मुनि उतरे। अरे! हमारे समीप में निकले, वह दूर जाये। यह ऊपर से नीचे आये मुनि। क्या है यह? सज्जनता है न! एकदम, आहाहा! अरे सिंह! भगवान की वाणी में आया है कि तुम दसवें भव में महावीर तीर्थंकर होओगे। आहाहा! यह तुम तीर्थंकर के जीव हो। दसवें भव में तीर्थंकर होनेवाले हो। यह क्या तुमने...? ऐसा जहाँ सुना है और आँसू की धारा। बाहर में आँसू की धारा और अन्दर में कर्म की निर्जरा, स्वभाव-सन्मुख होकर। आहाहा! समझ में आया? मुनि को राग होता है, परन्तु उनको राग की रुचि नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! दसवाँ भव था सिंह का। है न अपने उसमें—प्रवचनमण्डप में। फिर ऐसे सिंह को खड़ा रखा।

इसी प्रकार कहते हैं, मुनिराज की—धर्मी की वाणी सुनकर कितने ही तो आनन्दित हो जाते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग! अचिन्त्य मार्ग! अद्‌भुत मार्ग! समझ में आया? यहाँ कितने ही अज्ञानी तो ऊँघे, खेद करे। ऐसी बात? एक बार यह (संवत्) १९९५ में राजकोट में चातुर्मास था। दस महीने दस दिन। एक व्यक्ति कोई गाँव में कहे, यह तो आत्मा ही कूटा है दस महीने में। एक और वकील था। वकील न? भाई क्या? शंकर न? क्या नाम? छेलभाई। ब्राह्मण, हों! ब्राह्मण न?

**मुमुक्षु :** नागर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नागर। उसने और ऐसा दस महीने में दस मिनिट सुनकर (कहा), जो कोई महाराज का दस महीने का दस दिन का सुना हो, उसे दस लाईन में लिखे तो उसे दस रुपये दूँगा, ऐसा लिखा था। अन्यमति था नागर। बाकी दूसरे सुनने आते थे। दस महीने और दस दिन का दस लाईन में सार लिखे, उसे दस रुपये दूँगा, ऐसा लिखा था। वे दस। उसे बेचारे को यह प्रसन्नता थी कि आहाहा! ऐसा मार्ग। कितनों को अन्दर खेद हुआ हो और कितनों ने सुना था। दस महीने तक आत्मा कूटा, कहे। अब आत्मा अर्थात् क्या, परन्तु तुझे खबर (नहीं)। आहाहा! पुण्य और व्यवहार कूटना है तुझे? आहाहा!

आत्मा में व्यवहार का विकल्प है नहीं, उसे आत्मा कहते हैं। विकल्प है, वह तो आस्रवतत्त्व है। आहाहा! दया-दान-व्रत-पूजा-भक्ति-नामस्मरण, वह तो राग, वह तो आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व का पोषण करना है तुझे? आहाहा! कठिन लगे कठिन। नहीं? उसका कोई क्रम होगा या नहीं? और ऐसा बोले। क्रम है न, पहला सम्यग्दर्शन हो और फिर चारित्र हो, उसका क्रम है। परन्तु सम्यग्दर्शन में पहला व्यवहार हो और फिर निश्चय हो, ऐसा क्रम नहीं। आवे सही व्यवहार, होवे अवश्य। समझ में आया? परन्तु उसकी रुचि छोड़कर और आत्मा के आनन्द की रुचि करे, उसे सम्यग्दर्शन होता है। चारित्र का क्रम होता है। चारित्र तुरन्त नहीं होता। कितनों को लाखों-करोड़ों वर्ष में भी चारित्र नहीं होता, लो! समझ में आया?

भरत चक्रवर्ती, लो। सम्यग्दर्शन-ज्ञान, तीन ज्ञान तथापि, लाखों कितने... समझे न? छह लाख पूर्व तक चक्रवर्ती पद में रहे। छह लाख पूर्व। चारित्र नहीं आया। ऋषभदेव भगवान एक लाख पूर्व। तीर्थंकर स्वयं। मति, श्रुतज्ञान, तीन ज्ञान, क्षायिक समकित तथापि (तिरासी लाख पूर्व तक) चारित्र नहीं हुआ। चारित्र, वह महा पुरुषार्थ की चीज़ है। .... रानियों में रहे। राग था, जानते थे कि अरे रे! मैं तीर्थंकर होकर आया हूँ, तथापि मुझे चारित्र जब तक नहीं हो, तब तक मेरी मुक्ति नहीं। स्वरूप में रमणता, आनन्द की रमणता बिना मुझे मुक्ति नहीं। ऐसा भान है। आता है न अष्टपाहुड़ में, नहीं? ध्रुव... ध्रुव से हुआ... आहाहा! ध्रुव सिद्धि तीर्थंकर को है, तथापि वे यह चारित्र लेंगे। अन्दर रमणता... मुक्ति होगी। वस्त्रसहित... तीर्थंकर हो तो भी वस्त्रसहित मुनिपना नहीं

होगा उन्हें। साधुपना नहीं आयेगा, ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। तब और कितने ही कहे कि हमारे समयसार मान्य। अष्टपाहुड़ नहीं। क्योंकि अष्टपाहुड़ है, वह किसी का बनाया हुआ है। क्योंकि सम्प्रदायवालों को अवरोधक है। आहाहा!

वह विजयमूर्ति है न एक। अमर मुनि का शिष्य। कहते थे न यह जुगराजजी कहते थे। वह समयसार पढ़े परन्तु अपनी कल्पना से। अष्टपाहुड़ में ऐसा कहा है न? यह जुगराजजी कहे, अष्टपाहुड़ में कहा है कि वस्त्रसहित मुनिपना नहीं होता। तो कहे, यह कुन्दकुन्दाचार्य का कथन नहीं। प्रवचनसार में और सब जगह आया है। आहाहा! भगवान ने २८ मूलगुण कहे हैं, उसमें अचेलपना, यह उनका व्यवहारिक मूलगुण है। अचेलपना हो। वस्त्र का धागा भी रखकर मुनिपना माने, निगोद में जायेगा।

**मुमुक्षु :** अचेल का अर्थ अलग करते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसका कुछ नहीं, वह तो करे। ऐसा कि ऊनोदरी... यह नहीं? कन्या छोटी हो और साधारण पेट छोटा? ऊनोदरी हाँ। पेट बिना की है। पेट बिना की नहीं परन्तु पेट छोटा है, उसे पेट बिना की कहना। इसी प्रकार थोड़े वस्त्र रखना, उसे अचेल कहना, ऐसा वे कहते हैं। परन्तु तुम नहीं, सुना नहीं यह? तुम्हारे घर में तीनों हैं।

**मुमुक्षु :** सत्ताईस गुण....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, यह सत्ताईस दूसरे हैं। सत्ताईस एक इसमें आता है, हों! उसमें। वह दूसरे प्रकार के। कहीं सत्ताईस आते हैं। हाँ, दो आते हैं। एक सत्ताईस सामायिक का प्रतिक्रमण है न अपना, उसमें सत्ताईस आते हैं, परन्तु वह दूसरे प्रकार के। कहे, यह वह नहीं। आते हैं। एक सत्ताईस आते हैं उस पाठ में देखा था।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान ने जो मार्ग कहा, वह मार्ग सुनकर कितनों को प्रमोद आवे कि, आहाहा! ऐसा मार्ग! धन्य अवतार, ऐसा। समझ में आया? वस्त्रसहित मुनिपना तीन काल में जैनदर्शन में नहीं होता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। वस्त्र रखे और मुनिपना हो (और) वस्त्र छूट गये और मुनिपना हो, ऐसा भी कुछ नहीं। अन्तर में दृष्टि राग से धर्म माने और वस्त्र का त्याग है, इसलिए मैं मुनि हूँ, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा का स्वभाव चैतन्यस्वभाव, उस आनन्दस्वरूप का

अनुभव होकर आनन्द में रमणता, आनन्द में घोलन में लीनता रहना, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? महाव्रत के परिणाम चारित्र नहीं, तो नग्नपना तो चारित्र नहीं। कितने ही, कहा न, **व्याख्यान के पूर्ण होने की ही वाट देखते रहते हैं...** लो। कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह एक घण्टा हो गया? यह और ऐसा भी कितने ही कहें। आहाहा! उसमें तो पाँच मिनिट जितना घण्टा हुआ, और ऐसा भी कहे, जिसे रस पड़े उसे। उसको एक घण्टा देख-देखकर घड़ी देखे। आहाहा!

## काव्य - १७

(दोहा)

**गुरु उपदेश कहा करै, दुरासाध्य संसार।**
**बसै सदा जाकै उदर, जीव पंच परकार।।१७।।**

**अर्थः-जिसमें पाँच प्रकार के जीव निवास करते हैं, वह संसार ही बहुत दुस्तर है, उसके लिये श्रीगुरु का उपदेश क्या करेगा?।।१७।।**

### काव्य-१७ पर प्रवचन

**गुरु उपदेश कहा करै, दुरासाध्य संसार।**
**बसै सदा जाकै उदर, जीव पंच परकार॥१७॥**

अहा! बनारसीदास! साध्य-साधक (द्वार)।

यह स्वयं बना लिया। स्वयं ने बनाया है। अन्यत्र कहीं इसका आधार नहीं। **गुरु उपदेश कहा करै,....** ज्ञानी उपदेश क्या करे जगत को? **दुरासाध्य संसार।** संसार के प्राणियों को, आहाहा! **संसार बहुत दुस्तर है।** आहाहा! चौरासी लाख के अवतार से छूटना, वह दुष्कर है। उसमें अज्ञानियों को मार्ग हाथ लगे नहीं, ऐसा है। गृहस्थाश्रम में

समकिती हो, हजारों रानियाँ हों, तथापि वह मोक्ष के मार्ग में है, ऐसा कहा जाता है। और वह (साधु) अट्ठाईस मूलगुण पालता हो और नग्न हो, तथापि पुण्य की क्रिया को धर्म मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा सब अन्तर। दृष्टि की खबर नहीं। **दुरासाध्य संसार। संसार बहुत दुस्तर है। उसके लिये गुरु का उपदेश क्या करेगा?** तीन लोक के नाथ का उपदेश—वाणी सुनी समवसरण में। भगवान के समवसरण में वाणी सुनी। अनन्त बार समवसरण में गया। धर्म की सभा में विराजमान भगवान की वाणी सुनी। क्या करे? क्या कहे? ऐसी की ऐसी श्रद्धावाला धोये हुए मूला जैसा निकला वापस। समझ में आया? उसकी अपनी दृष्टि प्रमाण वह परिणमावे उसे। भगवान की वाणी क्या करे वहाँ? यह पाँच प्रकार के जीव की व्याख्या करते हैं।

★ ★ ★

## काव्य - १८

**पाँच प्रकार के जीव** (दोहा)

**डूंघा प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रूंचक सुद्ध।**
**ऊंघा दुरबुद्धी विकल, घूंघा घोर अबुद्ध।।१८।।**

**शब्दार्थ:-रूंचक=रुचिवाला। अबुद्ध=अज्ञान।**

**अर्थ:-डूंघा जीव प्रभु है, चूंघा चतुर है, सूंघा शुद्ध रुचिवन्त है, ऊंघा दुर्बुद्धि और दु:खी है और घूंघा महा अज्ञानी है।।१८।।**

### काव्य-१८ पर प्रवचन

**डूंघा प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रूंचक सुद्ध।**
**ऊंघा दुरबुद्धी विकल, घूंघा घोर अबुद्ध॥१८॥**

पाँच आ गये। यह **डूंघा जीव प्रभु है...** सिद्ध। डूँघा जीव की व्याख्या की कि

डूँघा किसे कहना कि कि सिद्ध को डूँघा कहना। उनकी दशा पूर्ण हो गयी, यह आगे एक आयेगा। **डूंघा सिद्ध कहै सब कोऊ....** इस ओर है। इस ओर है न। ३४५ पृष्ठ पर है अन्त में यह। **डूंघा सिद्ध कहै सब कोऊ, सूंघा ऊंघा मूरख दोऊ।** सूंघा चतुर पुरुष है, चतुर है। समकिती है। **सूंघा रूंचक सुद्ध।** यह रुचे सही, रुचि हो। समझे नहीं बराबर। **ऊंघा दुरबुद्धी—**उल्टा हो, ऐसा हो। दुर्बुद्धि हो। **ऊंघा विकल—**मूर्ख। यहाँ दोषी कहा है। **घूंघा घोर अबुद्ध—**घूंघा महाअज्ञानी, घोर अज्ञानी। आहाहा!

उसे कहे कि सिद्ध भगवान किसी का करते नहीं। अरे! हम किसी का भला करते हैं और सिद्ध किसी का करे नहीं? वह सिद्ध हमारे नहीं चाहिए, (ऐसा वे) कहते हैं। समझ में आया? एक व्यक्ति ने कहा, महाराज! वे तुम्हारे सिद्ध क्या करे? कहा, सिद्ध आत्मा का अनुभव करे। किसी का कुछ करे? कहा, हराम किसी का करे तो। ऐसे सिद्ध? ऐसे सिद्ध हमारे नहीं चाहिए। परन्तु कहाँ है समय? सुन न अब! अभी किसी का करना है और किसी को लेना-देना है और उसमें से कुछ भला करा देना किसी का। आहाहा! समझ में आया? किसी का पत्र आया था पहले और आज आया है किसी का। फिल्म का नहीं? छहढाला की फिल्म बनानी है उसे। पात्र आया था आज। ऐसा कि आप कुछ इसके दो शब्द लिखो। क्या लिखें? धूल। यहाँ किसे लिखें? किसी को लिखते हैं? आहाहा! फिल्म में नाम आवे, ऐसा कि आहा! महाराज ने, ऐसा कि मेरी महिमा की है। यदि ऐसा हो तो ऐसा हो। मूल तो मान के पोषण के लिये जगत घुस गया सब। हम कुछ बाहर आवें, दूसरे से अधिकपने गिने जायें। मर गये बेचारे क्या करें? यह पाँच की व्याख्या की। डूंघा जीव का लक्षण अब।

★ ★ ★

## काव्य - १९

**डूँघा जीव का लक्षण** (दोहा)

**जाकी परम दसा विषै, करम कलंक न होइ।**
**डूंघा अगम अगाधपद, वचन अगोचर सोइ।।१९।।**

**अर्थ:-जिनका कर्म-कालिमा रहित अगम्य, अगाध और वचन-अगोचर उत्कृष्ट पद है, वे सिद्ध भगवान डूंघा[1] जीव हैं।।१९।।**

### काव्य-१९ पर प्रवचन

**जाकी परम दसा विषै, करम कलंक न होइ।**
**डूंघा अगम अगाधपद, वचन अगोचर सोइ॥१९॥**

**जिनका कर्म कालिमा रहित अगम्य....** सिद्ध भगवान तो अगम्य है। कर्म कालिमा रहित हैं। भगवान को कर्म होते नहीं। कर्म हैं नहीं सिद्ध भगवान को। वह भी एक जीव। पाँच प्रकार में से एक वह जीव की जाति, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **अगाध और वचन अगोचर उत्कृष्ट पद है।** परमात्म सिद्धपद तो वचन अगोचर है। और उत्कृष्ट पद। ऊँचे में ऊँचा जीव है। उससे ऊँचा जगत में कोई है नहीं। **वे सिद्ध भगवान डूंघा जीव हैं,...** लो। उन्हें—सिद्ध भगवान को डूंघा कहा, समझे न? पहला बोल हुआ। नीचे स्पष्टीकरण किया है। इस ओर है न। **डूंघा सिद्ध कहै सब कोऊ....** इस ओर नीचे उस ओर.... उस ओर नीचे हाथ के पास। उस ओर से उस पृष्ठ पर वह। **डूंघा सिद्ध कहै सब कोऊ....** स्वयं स्पष्टीकरण किया है। इसलिए यहाँ फिर स्पष्टीकरण रखा है। **चूंघा जीव का लक्षण।**

★ ★ ★

---

१. यह कथन पं. बनारसीदासजी ने अपने मन से किया है, किसी ग्रन्थ के आधार से नहीं।

## काव्य - २०

**चूंघा जीव का लक्षण** (दोहा)

**जो उदास ह्वै जगतसौं, गहै परम रस प्रेम।**
**सौ चूंघा गुरुके वचन, चूंघै बालक जेम।।२०।।**

**शब्दार्थ:-उदास=विरक्त। परम रस=आत्म-अनुभव। चूंघै=चूसे।**

**अर्थ:-जो संसार से विरक्त होकर आत्म-अनुभव का रस सप्रेम ग्रहण करता है और श्रीगुरु के वचन बालक के समान दुग्धवत् चूसता है, वह चूंघा जीव है।।२०।।**

### काव्य-२० पर प्रवचन

**जो उदास ह्वै जगतसौं, गहै परम रस प्रेम।**
**सौ चूंघा गुरुके वचन, चूंघै बालक जेम॥२०॥**

आहाहा! धर्मी जीव—समकिती जगत से उदास है, विरक्त है। आहाहा! समझ में आया? **संसार में विरक्त होकर आत्म अनुभव का रस सप्रेम ग्रहण करता है....** लो। संसार से विरक्त है अथवा विकल्प से भी विरक्त है। आहाहा! **गहै परम रस प्रेम।** भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के रस का वह प्रेमी है। धर्मी अपने अतीन्द्रिय आनन्द के रस का प्रेमी है, उसे विषय के रस का प्रेम नहीं। हो भाव, परन्तु प्रेम नहीं। आहाहा! समझ में आया? जो **आत्म अनुभव का रस सप्रेम ग्रहण करता है....** आहाहा! राग का रस छोड़कर आत्मा के आनन्द के रस का प्रेम ग्रहण करता है, उसे यहाँ चूंघा जीव कहा जाता है। किसलिए? कि चूसता है, ऐसा कहते हैं।

**श्रीगुरु के वचन बालक के समान दुग्धवत् चूसता है।** आहाहा! धर्मात्मा की वाणी निकले, उसमें से सार-सार चूसता है। बनारसीदास ने स्वयं डाला है। दुग्धवत दूध। जैसे माता के स्तन में से बालक दूध पीवे, चूसे बालक की भाँति। इसी प्रकार धर्मात्मा, धर्मात्मा की वाणी में भाव भरे हैं, उन्हें चूसता है। समझ में आया? वापस बालक की भाँति, ऐसा। बालक का... आहाहा! अभिमान और कुछ नहीं वह तो। ओहो! यह

मार्ग! अतीन्द्रिय आनन्द का रसिक। अतीन्द्रिय आनन्द की बात आवे तो आत्मा में से अतीन्द्रिय आनन्द चूसे। आहाहा! **यह चूंघा जीव है,** लो।

**सूंघा जीव** का लक्षण।

★ ★ ★

## काव्य - २१

**सूंघा जीव के लक्षण** (दोहा)

**जो सुरवचन रुचिसौं सुनै, हियै दुष्टता नांहि।**
**परमारथ समुझै नहीं, सो सूंघा जगमांहि।।२१।।**

**शब्दार्थ:-रुचिसौं=प्रेम से। परमारथ=आत्मतत्त्व।**

**अर्थ:-जो गुरु के वचन प्रेमपूर्वक सुनता है और हृदय में दुष्टता नहीं है-भद्र है, पर आत्मस्वरूप को नहीं पहिचानता ऐसा मन्द कषायी जीव सूंघा है।।२१।।**

### काव्य-२१ पर प्रवचन

**जो सुरवचन रुचिसौं सुनै, हियै दुष्टता नांहि।**
**परमारथ समुझै नहीं, सो सूंघा जगमांहि॥२१॥**

**जो गुरु के वचन प्रेमपूर्वक सुनता है और हृदय में दुष्टता नहीं है।** भद्र जीव है भद्र। **परन्तु आत्मस्वरूप को नहीं पहिचानता।** आत्मा के अनुभव की खबर नहीं। तीसरे नम्बर का (जीव)। आत्मा की बात सुने, हृदय दुष्ट नहीं, भद्र परिणामी, परन्तु आत्म-अनुभव क्या चीज़ है, उसको जानता नहीं। मूल चीज़ आत्मा का अनुभव है, उसे जानता नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** अज्ञानी है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अज्ञानी है। अज्ञानी, परन्तु भद्र है। सुनने की रुचिवाला है, दुष्ट

नहीं। परन्तु अन्दर समझ में आता नहीं। समझ में नहीं आता कि क्या कहते हैं, आत्मा कैसा? लो, आत्मा के आनन्द का अनुभव करो। यह क्या कहते हैं? समझ में नहीं आता। धर्म यह (कि) आत्मा का अनुभव करो। **अनुभव रत्नचिन्तामणि, अनुभव है रसकूप। अनुभव मारग मोक्षकौ अनुभव मोक्ष स्वरूप।** क्या कहते हैं यह? दुष्ट है नहीं, ऐसा। हाँ न करे। क्या कुछ यह समझ में नहीं आता। आहाहा! उसे उसमें डाला। उल्टे जीव का लक्षण। मन्दकषायी जीव है।

★ ★ ★

## काव्य - २२

**ऊंघा जीव का लक्षण** (दोहा)

**जाकौ विकथा हित लगै, आगम अंग अनिष्ट।**
**सो ऊंघा विषयी विकल, दुष्ट रुष्ट पापिष्ट।।२२।।**

**शब्दार्थः-विकथा=खोटी वार्ता। अनिष्ट=अप्रिय। दुष्ट=द्वेषी। रुष्ट=क्रोधी। पापिष्ट=अधर्मी।**

**अर्थः-जिसे सत् शास्त्र का उपदेश तो अप्रिय और विकथाएँ प्रिय लगती हैं, वह विषयाभिलाषी, द्वेषी-क्रोधी और अधर्मी जीव ऊंघा है।।२२।।**

### काव्य-२२ पर प्रवचन

**जाकौं विकथा हित लगै,....** आत्मा की बात उसे ठीक नहीं लगती। विकथा— वार्ता गम्य लगती है। यह राजा था और क्रोधित हुआ और रानी मनाने गयी। ढींकणा, ऐसा बातें, यह यह भारी कथा।

**मुमुक्षु :** कहानी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहानी... कहानी। कहानी—कथा। **जिसे सत् शास्त्र का**

**उपदेश तो अप्रिय... जाकौ विकथा हित लगै, आगम अंग अनिष्ट।** भगवान की वाणी जो सिद्धान्त निश्चय बात आवे तो अनिष्ट लगे। आगम की सत्य बात सिद्धान्त की, वह ठीक न लगे। कथा लगायी हो तो वह कथा प्रतिदिन सुनने आवे, उसका रस लगे उसे। आगम की बात अध्यात्म की अनिष्ट लगे। रूखी-रूखी लगे।

**सो ऊंघा विषयी विकल...** लो। **विकथाएँ प्रिय लगती हैं, वह विषयाभिलाषी है।** सत् शास्त्र का उपदेश तो अप्रिय... सत् शास्त्र का... ऐसा आगम है न! **आगम अंग अनिष्ट।** आहाहा! आगम में तो वीतरागता कहनी है। वीतरागता तो पर की उपेक्षा करके स्वभाव की अपेक्षा करे तो वीतरागता होती है। यह बात है। समझ में आया? ऐसे जीव हैं जगत में। किसे कहते हैं यह? उपदेश लागू पड़े। जो पात्र हो उसे लागू पड़े। साधक पात्र होता है साधकता, ऐसा कहे। आहाहा! **सो ऊंघा विषयी विकल, दुष्ट रुष्ट पापिष्ट।** दुष्ट अर्थात् क्रोधी-द्वेषी, आहाहा! **दुष्ट रुष्ट...** आहाहा! **दुष्ट**—द्वेषी, **रुष्ट**—क्रोधी। दो अर्थ किये हैं न! पाठ में दो कहे हैं। नीचे शब्दार्थ में है। दुष्ट अर्थात् द्वेषी, रुष्ट अर्थात् क्रोधी। पापिष्ट अर्थात् अधर्मी। आहाहा! उस जीव को—यह चौथा बोलवाला अज्ञानी को धर्म समझ में नहीं आता और हृदय में दुष्टवाला है। वह भी एक जगत में जीव की जाति है। उसमें गुरु का उपदेश क्या करे, ऐसा कहते हैं। साधक भी उसकी पात्रता हो तो प्रगट होता है। विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

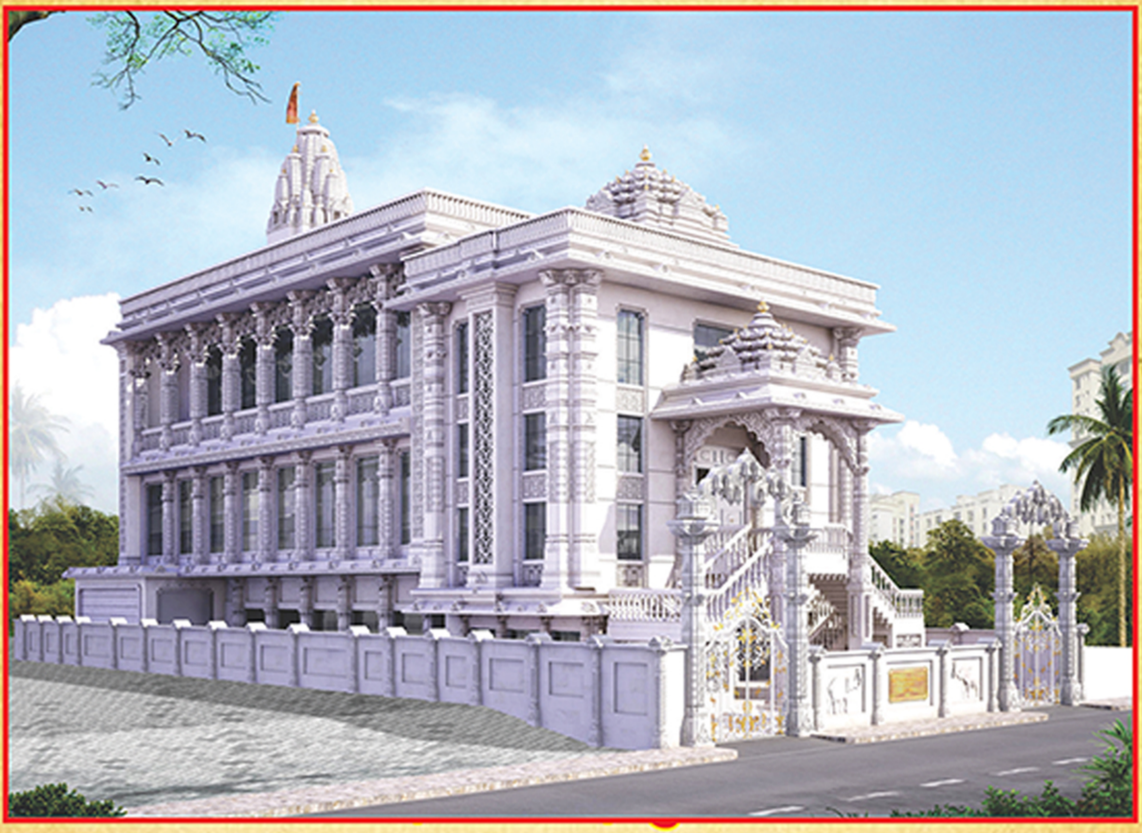

श्री सीमंधरस्वामी दिगंबर जिनमंदिर
विले पार्ला , मुंबई